पृथ्वीराज रासउ

पाठालोचन इतिहास, तथा साहित्यालोचन संबधी भूमिका,
निर्धारित पाठ,पाठान्तर, अर्थ और टिप्पणियो से युक्त

संपादक
डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त, एम ए, डो. लिट्.
प्रोफेसर एव अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय

प्रकाशक
साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

प्रथमवार

स० २०२० वि०

मूल्य ३० •०

श्रीसुमित्रानन्दन गुप्त द्वारा
साहित्य मुद्रण, चिरगॉव (झाँसी) मे मुद्रित,
और
साहित्य-सदन, चिरगॉव (झाँसी) से प्रकाशित।

देश और आदर्शो के लिए मर-मिटने वाले

भारतीय इतिहास के अद्वितीय वीर

पृथ्वीराज

की अमर कीर्त्तिगाथा

और

पुरानी हिन्दी का एक सब से उज्ज्वल रत्न

पृथ्वीराज रासउ

अपने प्रस्तुत वैज्ञानिक सस्करण के रूप मे

नव भारत के निर्माता

और

उसके सर्वोच्च आदर्शो के प्रतीक

माननीय पं० जवाहरलालजी नेहरू

को

समस्त श्रद्धा के साथ समर्पित है

—माताप्रसाद गुप्त

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावना

१९५३ की बात है। पजाब यूनीवर्सिटी मे पी-एच० डी० के लिए 'पृथ्वीराज रासो की लघु वाचना' पर वहाँ के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष स्वर्गीय डॉ० बनारसीदास जैन की प्रेरणा से और उनके निर्देशन मे उनके एक शोध-छात्र श्री वेणीप्रसाद शर्मा ने पी-एच० डी० के लिए कार्य करना प्रारभ किया। किन्तु अकस्मात् १९५४ के अप्रैल मे डॉ० जैन का देहावसान हो गया। तदनन्तर पजाब यूनीवर्सिटी ने मुझसे अनुरोध किया कि श्री शर्मा का निर्देशन मैं करूँ। स्वर्गीय डॉ० जैन मुझ पर बडा स्नेह रखते थे अत मैंने उसके लिए स्वीकृति भेज दी। लघु वाचना की प्रतियाँ बीकानेर मे प्राप्त थी। उन्हे मँगाकर श्री शर्मा ने काम आरभ कर दिया। उस समय रचना की दो और वाचनाएँ प्राप्त हो चुकी थी जो उस वाचना से भी छोटी थी जिस पर श्री शर्मा कार्य कर रहे थे, और इन सब के पूर्व रचना की मध्य और बृहत् वाचनाओ के कई छोटे-बडे रूप प्राप्त हो चुके थे। इसलिए मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि लघु वाचना के पाठ-निर्णय मात्र से समस्या का हल नही होगा, रचना का प्रामाणिक पाठ उसकी समस्त वाचनाओ की सहायता से ही निर्धारित हो सकेगा। किन्तु यह कार्य श्री शर्मा के न बस का ही था और न उनके कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आता था, इसलिए मैंने स्वय इस पर कार्य करने का सकल्प किया। यह सकल्प निरन्तर लगे रहने पर पाँच वर्षो मे पूरा हुआ। गत चार वर्षो से रचना प्रेस मे रही है, और अब वह पाठको के सम्मुख आ रही है, यह देखकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। श्री शर्मा का कार्य १९५७–५८ मे पूरा हो गया था, और पजाब यूनीवर्सिटी से उन्हे पी-एच० डी० की उपाधि उक्त कार्य पर प्राप्त हो गई थी। अब उनका कार्य विश्वभारती प्रकाशन, चण्डीगढ से प्रकाशित भी हो गया है, यह समस्त रासो-प्रेमियो के लिए हर्ष का विषय होगा।

'पृथ्वीराज रासो' के सम्पादन की समस्याएँ अत्यन्त जटिल थी। पाठालोचन के मेरे दीर्घकालीन अनुभव मे हिन्दी की एक भी रचना ऐसी नही आई है जिसका पाठ-निर्धारण इतना उलझा हुआ हो। किंतु मुझे उसके इसी उलझाव ने एक ऐसी नई दृष्टि प्रदान की है जो मुझे पाठालोचन के अपने शेष समस्त कार्य से भी नही प्राप्त हो सकी थी। इसलिए मुझे इस कार्य के सम्पन्न होने मे और अधिक प्रसन्नता है।

इस महान् यज्ञ मे सबसे बडा सहयोग मुझे प्रति-दाताओ से प्राप्त हुआ है, और उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नही है। मैं डॉ० नामवर सिंह तथा मुनि जिनविजय जी का कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे लघुतम वाचना की सामग्री प्राप्त हुई, मैं उपर्युक्त डॉ० वेणीप्रसाद शर्मा और श्री अगरचन्द नाहटा का कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे लघु वाचना की प्रतियाँ प्राप्त हुई; मैं प्रयाग के हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अधिकारियो का कृतज्ञ हूँ जिनसे मुझे मध्य वाचना की प्रतिलिपि प्राप्त हुई, और मैं भाण्डारकर ओरिएटल इस्टीट्यूट, पूना, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई, नेशनल गैलेरी आव् मॉडर्न आर्ट, नई दिल्ली तथा इलाहाबाद यूनीवर्सिटी लाइब्रेरी के अधिकारियो का कृतज्ञ हूँ, जिनसे मुझे रचना की बृहत् वाचना की सामग्री प्राप्त हुई। इन महानुभावो और सस्थाओ के सहयोग के अभाव मे यह यज्ञ किसी प्रकार भी पूरा नही हो सकता था।

इस सस्करण की एक पाण्डुलिपि तैयार करने मे पाठालोचन विषय के इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के मेरे तीन पूर्ववर्ती छात्रो श्री कन्हैया सिंह, श्री हरिशकर शर्मा, और श्री रामपाल उपाध्याय से मुझे सहायता प्राप्त हुई, इसलिए मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ।

प्रकाशको ने रचना को अपनी विवशताओ के कारण कुछ विलब से मुद्रित और प्रकाशित करते हुए भी छपाई की दृष्टि से ऐसी दुर्गम और दुरूह कृति को अधिक से अधिक शुद्ध रूप मे प्रकाशित करने का प्रयास किया है, इसलिए वे मेरे धन्यवाद के पात्र है। फिर भी, पाठको को कुछ न कुछ अशुद्धियाँ मिलेगी, अत सस्करण के अन्त मे एक शुद्धि-पत्र दिया जा रहा है, जिसके अनुसार वे यथास्थान अपनी प्रतियो मे सशोधन करने का कष्ट करेगे।

किन्तु सबमे अधिक मै कृतज्ञ हूँ स्वतन्त्र भारत के निर्माता माननीय प० जवाहरलाल जी नेहरू के प्रति, जिन्होने हिन्दी के आदिकाल के इस सर्व-श्रेष्ठ काव्य-पुष्प की मेरी भेट को ग्रहण करना स्वीकार किया। उनकी इस स्नेहपूर्ण कृपा के लिए मैं आजीवन आभारी रहूँगा।

दो-एक बाते और। भूमिका मे रचना का नाम 'पृथ्वीराज रासो' मिलेगा और रचना मे 'पृथ्वीराज रासउ'। रचना का नाम कृति के केवल अतिम छन्द मे आया है और वहाँ पर लघुतम वाचना की दो प्रतियो मे पाठ क्रमश 'रासु' और 'रासउ' है, तथा शेष प्रतियो मे 'रासौ' है। 'रासु' जिस प्रति मे है, उसमे उ की मात्रा का प्रयोग—जैसा आप भूमिका मे देखेगे—अउ, ओ, और औ के लिए भी हुआ है। लघुतम वाचना की दूसरी प्रति मे पाठ 'रासउ' है, इसलिए उक्त 'रासु' के 'रासउ' होने की ही सभावना सबसे अधिक है। भूमिका मे कृति के नाम मे 'रासो' का प्रयोग केवल इसके अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित होने के कारण किया गया है। शेष ग्रथ मे वह सर्वत्र 'रासउ' है। पाठक कृपया 'रासो' को भी 'रासउ' ही पढेगे।

रचना बारह सर्गो मे विभाजित मिलेगी। सर्ग-विभाजन का आधार मैने यथास्थान भूमिका मे स्पष्ट कर दिया है। किन्तु सर्गो का नामकरण मेरा किया हुआ है, और इसलिए कल्पित कहा जा सकता है। लघुतम वाचना में न सर्गो का विभाजन है और न उनका नामकरण। शेष वाचनाओ मे उनके जो नाम मिलते है उनमे परस्पर साम्य बहुत कम हे, और विषय-वस्तु को देखते हुए वे प्राय अनुपयुक्त भी है, इसलिए इन नए नामो की कल्पना करनी पडी है। भविष्य मे यदि सभव हुआ तो कुछ अधिक ठोस आधारो पर सर्गों का नामकरण किया जा सकेगा।

हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
११ ५ ६३ ई०

माताप्रसाद गुप्त

भूमिका

१. पृथ्वीराज रासो
की
प्रयुक्त प्रतियाँ और उनका पाठ

'पृथ्वीराज रासो' की प्राप्त प्रतियों की सख्या सौ से ऊपर है। इनकी एक अच्छी सूची डॉ० मोतीलाल मेनारिया के 'राजस्थानी पिगल साहित्य' में दी हुई है।[1] उस सूची में ६० के लगभग प्रतियों के प्राप्ति-स्थान दिए हुए हैं। इनके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के वार्षिक और त्रैवार्षिक हिन्दी हस्त लिखित पुस्तकों के खोज-विवरणों, 'राजस्थान मे हिन्दी हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज' के विभिन्न भागों तथा विभिन्न पुस्तकालयों और व्यक्तियो के सग्रहों से जिन प्रतियो की सूचनाएँ प्राप्त हुई है, उनकी सख्या भी ४०-४५ से कम नही है। किन्तु ये अलग-अलग आकार-प्रकार में उन प्रतियों में से किसी न किसी प्रति से मिलती-जुलती हैं जिनका उपयोग इस संस्करण के प्रस्तुत करने मे किया गया है, और ये प्रयुक्त प्रतियाँ अपने आकार-प्रकार की प्रतियों मे अनेक दृष्टियों से प्रायः सबसे अधिक महत्व की भी हैं, इसलिए नीचे इन्हीं का विवरण दिया जा रहा है।

(१) धा० : यह प्रति धारणोज, तालुका पाटन, गुजरात मे बारोट वीराजी पंथूजी के पास बताई जाती है। मैंने १९५३ के अन्त में उन्हे पत्र लिखा था, तो उन्होने लिखा था कि उनके पास एक बहुत पुरानी पुस्तक है जो सस्कृत मे लिखी हुई है, और जिसे वे पढ़ नही पाते है किंतु उनके स्वर्गीय पिता पथूवजा जी कहा करते थे कि वह पोथी 'पृथ्वीराज रासो' की है। उन्होंने मुझे पुस्तक दिखाने के लिए तत्परता भी प्रकट की, किन्तु जो समय उन्होने दिया था वह मुझे अनुकूल नहीं पड़ रहा था, और उनके पत्र से यह भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो रहा था कि जिस पोथी के बारे मे उन्होंने लिखा था वह 'पृथ्वीराज रासो' की ही थी, इसलिए मैने उन्हे लिखा कि यदि वे कुछ दिनों के लिए वह पोथी प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को भेज सकें तो अच्छा हो। इसका उन्होने कोई उत्तर नहीं दिया। इसके बाद भी मैने उन्हे तीन पत्र डाले, और स्पष्ट लिखा कि यदि वे उसे विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को न भेज सकते हों, तो मैं स्वतः वहाँ पहुच कर उसे देखूँ, किन्तु फिर भी किसी पत्र का उत्तर उनसे न मिला। एक अनिश्चित वस्तु के लिए गुजरात की यात्रा और वह भी उसके एक देहात की, व्यावहारिक न समझ पड़ी; अतः मूल प्रति का उपयोग मैं नही ही कर सका। गुजरात के विश्वविद्यालयों मे हिन्दी का अध्यापन हो रहा है। वहाँ के विश्वविद्यालय, उनके कोई उत्साही अध्यापक या अन्वेषण-छात्र इस प्रति की फोटोग्राफ प्राप्त कर सके तो वह बहुत उपयोगी होगा।

इस प्रति का पता कई बर्ष हुए प्रसिद्ध प्राचीन प्रतियों के संग्रहकर्त्ता मुनि पुण्य विजय जी को लगा था। उन्होंने उसी समय इसकी एक प्रतिलिपि करा ली थी। उनसे यह प्रतिलिपि श्रीअगरचंद नाहटा ने ले ली थी। मूल प्रति के न मिलने पर मैने मुनिजी को लिखा कि वे इस कार्य के लिए मुझे

[1] मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी पिंगल साहित्य, पृ० ४४।

कुछ समय के लिए उक्त प्रतिलिपि भिजवा दें, और मुनि जी ने नाहटाजी को इसलिए लिखा भी, किन्तु नाहटाजी ने सूचित किया कि उक्त प्रतिलिपि श्री नरोत्तमदास स्वामी के पास थी, और गुम हो गई; उसकी एक प्रतिलिपि स्वामीजी के पास अवश्य थी, जो उन्हीं की की हुई थी। किन्तु स्वामी जी ग्रंथ के 'लघुतम रूपान्तर' का सपादन कर रहे थे, इसलिए वे उसे देने में असमर्थ रहे।

कुछ समय पीछे मुझे यह ज्ञात हुआ कि स्वामी जी के द्वारा की हुई प्रतिलिपि की भी एक प्रतिलिपि डॉ० नामवरसिंह ने अपने 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' नामक खोज-प्रबध के लिए की थी। मेरे अनुरोध पर इस कार्य के लिए उन्होंने उसे कृपापूर्वक मुझे दे दिया, जिसके लिए मै उनका अत्यन्त आभारी हूँ। स० १६६७ को लिखी प्रति की तीसरी पीढी की यह आधुनिक प्रतिलिपि ही उक्त प्रति और उसकी प्रथम और द्वितीय प्रतिलिपियों के अभाव मे उपयोग में आ सकी है।

मुनिजी के द्वारा कराई गई प्रतिलिपि और उसकी अपनी प्रतिलिपि का परिचय देते हुए श्री नरोत्तमदास स्वामी ने लिखा है, "प्रतिलिपिकार ने बडी सावधानी से प्रतिलिपि तैयार की थी, पर 'रासो' की भाषा और भाषा शैली से परिचित न होने के कारण अनेक अशुद्धियाँ रह गयी। मूल प्रति का पाठ भी सभवतः शुद्ध नहीं था, ऐसा प्रतीत होता है। फिर भी प्रति बड़ी महत्वपूर्ण थी। इस प्रतिलिपि पर से मैंने एक संशोधित प्रतिलिपि बहुत वर्षों पूर्व तैयार की थी। संशोधन प्रधानतया शब्दों की वर्त्तनी (Spelling) से ही सम्बन्ध रखने वाले थे जो छन्दानुरोध के कारण किए गए थे।"[1] इससे यह प्रकट है कि स्वामी जी के द्वारा की हुई प्रतिलिपि 'संशोधित प्रतिलिपि' थी और सशोधन 'प्रधानतया' शब्दों की वर्तनी के सम्बन्ध के किए गए थे। किन्तु स्वामी जी प्राचीन हिन्दी और राजस्थानी साहित्य के मान्य विद्वान हैं, इसलिए ये सशोधन पर्याप्त सावधानी से किए गए होंगे, यह हमें मान लेना चाहिए।

डॉ० नामवरसिंह के द्वारा की हुई इस प्रति-प्रतिलिपि की प्रतिलिपि अवश्य ही सावधानी से ही हुई है—उन्हे 'रासो' की भाषा पर कार्य करना था। किन्तु ऐसा लगता है कि उक्त आदर्श के कुछ उल्लेख, जो पाठ-निर्धारण की दृष्टि से महत्व के थे, उनके कार्य की दृष्टि से महत्व के न होने के कारण अथवा अनजाने ही छूट गए। संयोग से मुझे स्वामी जी की प्रतिलिपि भारतीय हिन्दी परिषद् के जयपुर अधिवेशन के अवसर पर १९५४ के दिसम्बर में हस्त लिखित ग्रन्थों की प्रदर्शिनी में उलट पुलट कर देखने को मिल गई थी। उस समय मैंने अपनी दृष्टि से उसकी एकाध महत्व की बाते लिख भी ली थीं। उन बातों के सम्बन्ध मे डॉ० नामवरसिंह की प्रतिलिपि का मिलान करने पर एक-दो स्थलों पर अन्तर दिखाई पडा। स्वामी जी की प्रतिलिपि में निम्नलिखित दो दोहों के बीच में "तथा अउर पाठान्तर" शब्दावली मुझे मिली थी, जो डॉ० नामवर सिंह की उस प्रतिलिपि में नहीं मिली :—

सुनि वर सुन्दर उभय हुव स्वेद कंप सुर भंग।
मनु कमलिनि कल सम हरि अम्रित करने तंन रंग ॥
सुनि रव प्रिय प्रिथिराज कउ उभद रोम तिन अंग।
सेद कंप सुर भंग भयउ सपत भाइ तिहि अंग ॥[2]

डॉ० सिंह की प्रतिलिपि में बाद वाला दोहा चौकोर कोष्टकों के अन्तर्गत रक्खा हुआ है और उसकी क्रम-सख्या भी नहीं दी हुई है, किन्तु पाठालोचक के लिए 'तथा अउर पाठातर' की शब्दावली स्वतन्त्र महत्व की थी, जो प्रतिलिपि में छोड़ दी गई है। इसी प्रकार स्वामी जी की प्रतिलिपि में निम्नलिखित उल्लेख पुष्पिका के रूप में मिलते हैं :—

[1] 'राजस्थान भारती, अप्रैल १९५४, 'पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपान्तर', पृ० ३।
[2] नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, ६१. ११५९।

" इति श्री कवि भट्ट चंदवरदायी कृत राजा श्री प्रिथीराज चहूआण रासउ रसाल संपूर्ण। सं० १६६७ वर्षे शाके १५३२ प्रवर्तमाने आसाढ मासे शुक्ल पक्षे पंचमी तिथौ महाराजाधिराज महाराजा श्री कल्याण मल्ल जी तत्पुत्र राजा श्री भाव जी तत्पुत्र राजा श्री भगवानदास जी पाठनार्थं।

यह रासो की बुक धारणोजग्राम निवासी बारोट पथुवजा की है। और वह धारणोज निवासी सेठ किशोरदास हेमचद शाह के द्वारा कॉपी करने को प्राप्त हुई है।"

डॉ० सिंह की प्रतिलिपि में केवल प्रथम वाक्य आता है, शेष नहीं।

डॉ० सिंह की प्रतिलिपि के साथ एक और कठिनाई हुई—कन्नौज-प्रयाण तथा कन्नौज-युद्ध सम्बन्धी उसका सम्पूर्ण अंश मुद्रित रूप में ही मुझे प्राप्त हो सका, क्योंकि उस अंश की प्रतिलिपि प्रेस कापी के रूप मे प्रेस चली गई थी और अप्राप्त हो गई थी। स्वाभाविक है कि इस मुद्रित अंश में मुद्रण-जनित कुछ पाठ-विकृतियाँ भी आ गई होंगी। किन्तु इन त्रुटियों के होते हुए भी चूँकि डॉ० सिंह ने अपनी ओर से पाठ-संशोधन का कोई प्रयास नहीं किया था इसलिए यह प्रतिलिपि उतनी ही विश्वसनीय थी जितनी सामान्यतः कोई भी हस्तलिखित प्रतिकृति हो सकती थी, इसलिए मूल प्रति तथा उसकी प्रथम और द्वितीय प्रतिलिपियों के अभाव में इसका उपयोग बिना किसी हिचक के किया जा सका है।

इस प्रति के पाठ की विशेषता यह है कि रचना के प्राप्त समस्त पाठो में यह सब से छोटा है, यद्यपि पूर्ण है। इसमें न खण्ड-विभाजन है और न छन्दों की क्रम-संख्या दी हुई है—कहीं-कहीं वार्त्ताओं के रूप में वर्णित कथा की सूचना मात्र दे दी गई है। गिनने पर कुल रूपक[1]-सख्या ४२२ ठहरती है। ति भी पूर्ण है, यह प्रसन्नता की बात है। इसकी पुष्पिका ऊपर दी ही जा चुकी है।

(२) मो० : यह प्रति प्रसिद्ध जैन विद्वान् मुनि जिनविजय के संग्रह की है। यह 'रासो' के सबसे छोटे पाठ की एक मात्र अन्य प्राप्त प्रति है, और उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी धा० है। इस प्रति के लिए मुनि जी को जब मैंने लिखा, वह श्री अगरचन्द नाहटा के पास थी। कदाचित् प्रति की जीर्णता के ध्यान से नाहटा जी ने मूल प्रति न भेजकर उसकी एक फोटो-स्टैट कापी मुझे भेज दी। इस बहुमूल्य प्रति के उपयोग के लिए मैं मुनि जी का अत्यन्त आभारी हूँ। प्रस्तुत कार्य के लिए इसी फोटो-स्टैट कापी का उपयोग किया गया है। मूल प्रति मैंने १९५६ के जून मे डा० दशरथ शर्मा के पास दिल्ली में देखी थी। फोटो-स्टैट होने के कारण यह कॉपी प्रति की एक वास्तविक प्रतिकृति है।

इस प्रति के प्रारम्भ के दो पन्ने नही है, शेष सभी हैं। इसमे भी खण्ड-विभाजन और छन्दों की क्रम-संख्या नही है। इसमें वार्त्ताओं के रूप मे इस प्रकार के संकेत भी प्रायः नही दिए हुए हैं जैसे धा० मे है। प्रारम्भ के दो पन्ने न होने के कारण इसकी निश्चित छन्द संख्या कितनी थी, यह नही कहा जा सकता है, किन्तु इन त्रुटित दो पत्रों मे से प्रथम पृष्ठ रचना के नाम का रहा होगा, जैसा अनिवार्य रूप से मिलता है, और शेष तीन पृष्ठ ही रचना के पाठ के रहे होगे। तीसरे पत्रे के प्रारम्भ मे जो छन्द आता है वह धा० १७ है, जिसका कुछ अंश पूर्ववर्तीय द्वितीय पत्र पर रहा होगा और धा० की तुलना में इसमे ३०–३१ प्रतिशत रूपक अधिक हैं, इसलिए धा० के १६ रूपको के स्थान पर इसके प्रथम दो पत्रों में २०–२१ रूपक रहे होने चाहिए। फलतः इन निकले हुए दो पत्रों मे २० छन्द मान लेने पर प्रति की कुल रूपक संख्या ५५२ ठहरती है। यह प्रति अत्यन्त सुलिखित है और उपर्युक्त दो पत्रो के अतिरिक्त पूर्णतः सुरक्षित भी है। इसका आकार ६·२५"×३" और इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

[1] ना० प्र० स० संस्करण में प्रारम्भ में रूपक और छन्द-संख्या दोनों दी गई हैं, किन्तु पीछे केवल छन्द-संख्या दी गई है। छन्द-संख्या छन्द के एक वृत्त में जितने चरण होने चाहिए, उसके आधार पर दी जाती है; किन्तु कुछ छन्द मालाओं के रूप में भी चलते हैं, यथा भुजंगी, पद्धडी आदि। ऐसे छन्दों के सम्बन्ध में पूरी माला की गणना एक रूपक के रूप में की जाती है। पुरानी प्रतियों में सामान्यतः रूपक-गणना ही मिलती है।

"इति श्री कविचन्द विरचिते प्रथीराज रासुं संपूर्ण। पंडित श्री दान कुशल गणि। गणि श्री राजकुशल। गणि श्री देव कुशल। गणि धर्म कुशलि। मुनि भाव कुशल लषित। मुनि उदय कुशल। मुनि मान कुशल। सं० १६९७ वर्षे पौष सुदि अष्टम्या तिथौ गुरु वासरे मोहनपूरे।"

यह एक काफ़ी सुरक्षित पाठ-परम्परा की प्रति लगती है, क्योंकि इसमे पाठ-त्रुटियाँ बहुत कम हैं, और अनेक स्थलो पर एक मात्र इसी मे ऐसा पाठ मिलता है जो बहिरंग और अंतरंग सभी सम्भावनाओ की दृष्टि से मान्य हो सकता है। फिर भी श्री नरोत्तमदास स्वामी ने कहा है कि इसका "पाठ बहुत ही अशुद्ध और भ्रष्ट है।" [1] उन्होने यह धारणा इस प्रति के सम्बन्ध मे कैसे बनाई है, यह उन्होने नही लिखा है। किन्तु इस प्रकार की धारणा के दो कारण संभव प्रतीत होते है, एक तो यह कि इसमे वर्त्तनी-विषयक कुछ ऐसी विशिष्ट प्रवृत्तियाँ मिलती है जिनके कारण शब्दावली और भाषा का रूप विकृत हुआ लगता है, दूसरे यह कि इसका पाठ अनेक स्थलो पर अपनी सुरक्षित प्राचीनता के कारण दुर्बोध हो गया है, और उन स्थलों पर अन्य प्रतियों मे बाद का प्रक्षिप्त किन्तु सुबोध पाठ मिलता है। कहीं कही पर ये दोनों कारण एक साथ इकट्ठा होकर पाठक को और भी अधिक उलझा देते है।

वर्त्तनी सम्बन्धी इसकी सबसे अधिक उलझन मे डालने वाली प्रवृत्तियाँ आवश्यक उदाहरणों के साथ निम्नलिखित हैं:—

[१] इसमें 'इ' की मात्रा का अपना सामान्य प्रयोग तो है ही, 'अइ' के लिए भी उसका प्रयोग प्रायः हुआ है, यथाः

गुन तेज प्रताप ति वर्णि 'कहि'। दिन पंच प्रजत न अंत लहइ। (मो० ९५.५१-५२)
ब्रह्म वेद नहि चषि अलप युधिष्ठिर 'बोलि'।
जु शायर (सायर) जल 'तजि' मेर मरजादह डोलइ। (मो० २२४.३-४)
रहि गय उर झंषेव उरह मि (=मइ) अवर न बुझइ।
मुउ न जीवइ कोइ मोहि परमषर 'सूझि'। (मो० ५४५.३-४)
किरणाटी रांणी 'कि' (=कइ) आवासि राजा विदा मांगन गयु। (मो० १२२ अ)
'पछि' (=पछइ) राजा परमारि आवासि विदामांगन गयु। (मो० १२३ अ)
'पछि' (=पछइ) राजा परमारि सुषुली विदा मांगन गयु। (मो० १२४ अ)
'पछि' (=पछइ) राजा वाघेली कै अवास विदा मांगन गयु। (मो० १२५ अ)

तुलना कीजिये:—

'पछइ' राजा कछवाही 'कइ' आवासि विदा मांगन गयु। (मो० १२६ अ)
मनु अकाल टडीअ शवन 'पवि' (=पव्वइ) छूटि प्रवाह। (मो० २३४.२)
तिन 'मि' (=मइ) दसि 'सि' (=सइ) अरि दलन 'उप्पारि' (उप्पारइ) गज दंत। (मो० ४३८.२)
तिन 'मि' (=मइ) कवि गन पंच सिंहि (=सइहिं) साष भाष दिठउ काज।
विन 'मि' (=मइ) दिवगति देवन समह तिन महि पुहु प्रथीराज। (मो० ४३९)
जे कछू साध मन 'मि' (=मइ) भइ सब ईछा रस दीन्ह। (मो० ५१३.२)
'असमि' (=असमइ) सोइ मग्यु सुकवि नृपति 'विचार' (=विचारइ) सब। (मो० ५३०.२)

इस प्रवृत्ति की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि कहीं कहीं 'इ' की मात्रा को 'अइ' के रूप में पढ़ा गया है:—

तम 'सरवगइ' (=सरवगि) सू केवि राज गुरु राज सम। (मो० ४०२.३)

[२] 'इ' की मात्रा का प्रयोग पुनः 'ऐ' के लिए भी हुआ मिलता है, यथाः ऊपर मो० १२२ अ, १२३ अ, १२४ अ, तथा १२५ अ के उद्धरणों मे आए हुए 'कि' की तुलना कीजिए:—

[1] 'पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपान्तर', राजस्थान भारती, अप्रैल १९५४, पृ० ३।

पछइ राजा भटिआनी कै आवासि विदा मांगन गयु । (मो० १२७-अ)

भरी भोज 'भाजि' (=भाजइ) इंही सारि भागि ।

भरि मल मानै नही लोह लागै । (मो० १२७'१९-२०)

सुनि त पंग चहूआन कुं मुष जंपि इह 'विन' (=वैन) ।

बोल सूर सामंत सब कहु एकठु शैन (=सेन) । (मो० २२९)

जल बिन भट सुभट भो करि अपहि भुज 'विन' (=वैन) ।

परमतत्व सूझि (=सूझइ) नृपति मगि मगि फरमांनन (<फरमानेन) । (मो० ५४७)

'ति' (=तै) राषु हींदुआन गंज गोरी गाहंतु ।

'तं' राषु जालोर चंपि चालुक चाहतु ।

'तै' राषु पगुरु भीम भटी 'दि' (=दै) मथु ।

'तै' राषु रणथंभ राय जादव 'सि' (=सइ) हिथु । (मो० ३०८.१-४)

भये तोमर मतिहीन करीय किली 'ति' (=तै) ढिली । (मो० ३३.४)

'ति' (=तै) जीतु गजंनु गंजि अपार हमीरह ।

'ति' (=त) जीतु चालुक विहरि संनाह सरीरह ।

'ति' (=तै) पहुपंग सू गहु इदु जिम गहि सू रहह ।

'ति' (=तै) गोरीय दल दहु वारि कठ जिन वन दहह ।

तुव तुंग तेग तव उचमन ति (=तैं) तो पोशन मिलयु । (मो० ४२४.१-५)

भरे देव दांनव जिम 'विर' (वैर) चीतु । (मो० ४५४.४१)

इस प्रवृत्ति की पुष्टि भी इस प्रकार होती है कि कहीं-कहीं पर 'इ' की मात्रा को 'ऐ' के रूप में पढ़ा गया है, यथा :—

विदुजन 'बोलै' (=बोलि) दिन धरहु आज । (मो० ४०.५४)

[३.] कहीं-कही 'इ' की मात्रा का प्रयोग 'अय' के लिए भी हुआ मिलता है, यथा.—

'किमास' (मो० ७३.४)
वही (मो० ७७.१)
वही (मो० ८२.२)
वही (मो० ९९.२)
वही (मो० १०१.२)
वही (मो० १०५.१)
वही (मो० १०८.३)
वही (मो० ११६.१)
वही (मो० १२१.१)
वही (मो० ५४८.३)

तुलना कीजिए :—

सा मंत्री 'कयमास' कांम अंधा देवी विइदा गति । (मो० ७४.४)

हि (=हइ) 'कयमास' कहूं कोइ जानहुं । (मो० ९८.४)

[४] 'इ' की मात्रा का प्रयोग 'ए' की मात्रा के लिए भी हुआ है, यथाः—

दुहु राय रषत ति रत 'उठि' ।

विहुरे. जन पावस अभ उठे । (मो० ३१४.५-६)

नीयं देह दिषि बिरषि ससांने ।

जिते मोह मज्जा लगये 'आसमानि'। (मो० ४९८.३५-३६)
शकुंने मरंने जनंने निहाने।
वजे दहु दुंभिदे विभू 'मनि'। (मो० ४९८.३९-४०)

इस प्रवृत्ति की पुष्टि भी कहीं-कहीं 'इ' की मात्रा के 'ए' की मात्रा के रूप में पढ़े गए होने से होती है, यथा :—

षिनि गंडु नृप अर्धनिसा सम दासी 'सूरिआते' (सुरिआति)।
देव धरह जल वन अनिल कहिग चंद कवि प्रात॥ (मो० ८७)
पहिचानु जयचंद इहतु ढिलीसुर पेषै।
नहिन चंद उनुहारि दुसह दारुण तब दिषै। (मो० २२३.१-२)
गहीय चद्दु रह गजने जाहां सजन जु 'नरेद'।
कबहू नयन निरषहू मनहु रवि अरविंद। (मो० ४७४)

[५] 'इयइ' या 'इयै' के स्थान पर प्रायः 'ईइ' लिखा गया है यथा :—

सोइ एको बान संभरि धनी बीउ बान नह 'संधीइ'।
घरिआर एक लग मोगरीअ एक बार नृप हुकीयै। (मो० ५४४.५-६)
इम बोल रिहि कलि अंतरि देहि स्वामि 'पारथीइ' (=पारथियइ)।
अरि असीइ लष को अंगमि परणि राय 'सारथीइ' (=सारथियइ)। (३०५.५-६)
मंगल वार हि मरन की ते पति सथि तन 'षडीइ' (=षडियइ)।
जेत चढि युध कमधज सू मरन सव सुष 'मंडीइ' (=मडियइ)। (मो० ३०९.५-६)
छिनु इक दरहि 'विलंबीइ' (विलबियइ) कवि न करि मनु मंदु। (मो० ४८८.२)
सह सहाब दर 'दिषीइ' (=दिषियइ) सु कछू भूमि पर मिछ। (मो० ४७९.२)
सीरताज साहि 'सोभीइ' (=सोभियइ) सुदेसि। (मो० ४९२.१७)
'सुनीइ' (=सुनियइ) पुन्य सभ मझ राज। (मो० ५२.५)

[६] 'इयउ' के स्थान पर प्रायः 'ईउ' लिखा मिलता है :—

इम जंपि चंद 'विरदीउ' (विरदियउ) सु प्रथीराज उनिहारि एहि। (मो० १८९-६; १९०.६)
इम जपि चंद विरदीउ (=विरदियउ) पट त कोस चहुवांन गयु। (मो० ३३५.६)
इम जंपि चंद 'विरदीउ' (=विरदियउ) दस कोस चहुआंन गउ। (मो० ३४३.७)
जिम सेत वज 'साजीउ' (=साजियउ) पथ। (मो० ४९२.२४)

[७] 'उ' की मात्रा का प्रयोग प्रायः 'अउ' के लिए हुआ है, यथा :—

तव ही दास कर हथ सुवंय सुनाययूउ।
बानावलि वि दहु बांन रोस रिस 'दाइयु'।
मनहू नागपति पतिन अप 'जगाइयु'। (मो० ८०.२-४)
पायक धनू धर कोडि गनि असी सहस हयमंत जहु।
पंगुर किहि सामंत सुइ जु जीवत ग्रहि प्रथीराज 'कुं'। (मो० २३०.५-६)
निकट सुनि सुरतांन वांम दिसि उच हथ 'सु' (सउ)
जस अवसर सतु सचि अछि लूटीय न करीय 'भू' (भउ)। (मो० ५३३.३-४)
'सु' (= सउ) बरस राज तप अंत किंन। (मो० २१ की अंतिम अर्द्धाली)
'सु' (= सउ) उपरि 'सु' (= सउ) सहस दीह अगनित लष दह। (मो० २८३.२)
कन [उ] ज राडि पहिलि दिवसि 'शु' (= शउ) मिं सात निवटिया। (मो० २९८.६)

[८] कभी-कभी 'उ' की मात्रा से 'ओ' की मात्रा का भी काम लिया गया है :—

निशपल पंच घटीए दोई 'धातु'।
आखेटकर्मखे नृप० आयौ। (मो० ९२.३-४)

[९] और कभी-कभी 'उ' की मात्रा से 'ओ' की मात्रा का काम लिया गया है:—

कवि देषत कवि कु मन 'रत्तु'।
न्याय नयन कन [उ] जि पहुत्तो। (मो० १७६.१-२)

इसकी पुष्टि एकाध स्थान पर 'उ' के स्थान पर 'ओ' की मात्रा मिलने से भी होती है:—

प्रात राउ संप्रापतिग जहाँ दर देव० 'अनोप'।
सयन करि दरबार जिहि सात सुहस अंस भूप ॥ (मो० २१४)

[१०] इसी प्रकार कहीं कहीं 'उ' वर्ण का प्रयोग 'ओ' के लिए हुआ मिलता है—

तुलंत जू तुज तराजून्ह गोष।
मनु घन मझि तडितह 'उप'। (मो० १६१.२७-२८)
गंग जल जिमन धर हलि 'उजे'।
पंगरे राय राहुर फोजे। (मो० २८४.१५-१६)

प्रति की वर्त्तनी-सम्बन्धी ऐसी ही प्रवृत्तियो का यहाँ उल्लेख किया गया है जो हिदी की प्रतियो मे प्रायः नहीं मिलती है, और इसीलिए हिदी पाठक को ऐसा लग सकता है कि ये प्रतिलिपिकार की अयोग्यता के कारण है। किन्तु ऐसा नही है। नारायणदास तथा रतरंग रचित 'छिताईवार्त्ता' की भी एकप्रति में, जो इस प्रति के कुछ पूर्व की है, वर्त्तनी-सम्बन्धी ये सारी प्रवृत्तियाँ मिलती है, यद्यपि वे परिमाण में कम है;[1] पश्चिमी राजस्थानी तथा गुजराती की इस समय की प्रतियो में तो ये प्रवृत्तियाँ प्रचुरता से पाई जाती हैं।[2] फलतः वर्त्तनी-सम्बन्धी इन प्रवृत्तियो का परिहार करके ही प्रति के पाठ पर विचार करना उचित होगा। और इस प्रकार के परिहार के अनन्तर मो० का पाठ किसी भी प्रति से बुरा नहीं रहता है, वरन् वह प्रायः प्राचीनतर—और इसलिए कभी-कभी दुर्बोध भी—प्रमाणित होता है, यह सम्पादित पाठ और पाठांतरो पर दृष्टि डालने पर स्वतः स्पष्ट हो जायगा।

(३) अ० : अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर मे रचना की तीन महत्व की प्रतियाँ हैं, जिन पर पुस्तकालय की सख्याएँ ५९, ६० तथा ६२ पडी हुई हैं। तीनो प्रतियाँ एक ही पूर्वज आदर्श की हैं—क्योकि अनेक स्थलों पर तीनो मे समान अशुद्धियाँ है, और तीनो मे छन्द-भेद के आधार पर छन्दो की क्रम-संख्या देने की पद्धति, छन्दो का क्रम तथा दो-चार अपवादो को छोड कर छन्द-सख्या भी वही है। अन्तर तीनों में यह है कि ५९ तथा ६२ सख्यक प्रतियो मे त्रुटित स्थल बहुतायत से है, जब कि ६० संख्यक प्रति में त्रुटित स्थल इने-गिने हैं। इससे सामान्यत: यह समझा जाता है कि ६० संख्यक प्रति उक्त पूर्वज आदर्श की उस समय की हुई किसी प्रतिलिपि की परम्परा मे आती है जब वह अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित थी और ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ उसकी उस समय की हुई किसी प्रतिलिपि की परम्परा में आती हैं जब वह कीटभक्षण से अथवा अन्य किसी प्रकार से स्थान-स्थान पर कुछ कट-फट

[1] दे० 'छिताईवार्त्ता', सम्पा० माताप्रसाद गुप्त, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९५८।

[2] दे० 'षष्टि शतक प्रकरण', सम्पा० भोगीलाल ज० साडेसरा, बड़ोदा, १९५४,
'वसन्त विलास फागु', सम्पा० कान्तिलाल व्यास, बंबई, १९४२,
'औक्तिक प्रकरण' [प्राचीन गुजराती गद्य सन्दर्भ], सम्पा० मुनि जिन विजय, अहमदाबाद सं० १९८६,
'सम्यकत्व कथाओ' ,, ,, ,,
'जिन वल्लभसूरि गुरु गुण वर्णन' ,, ,, ,,
'कान्हड दे प्रबन्ध', सम्पा० कान्तिलाल व्यास, जयपुर, १९५३।

गया था।[1] तथ्य यह है कि ५९ तथा ६२ का सामान्य पूर्वज तथा ६० का पूर्वज लगभग एक ही समय उक्त पूर्वज आदर्श से उतारे गए और उस समय ही वह पूर्वज कीटादि के द्वारा क्षत-विक्षत था। किन्तु पूर्वज आदर्श की उक्त प्रतिलिपि तथा ६० सख्यक प्रति के बीच की किसी पीढ़ी मे इन क्षत-विक्षत स्थलों पर त्रुटित पाठ को पूरा करने के लिए काफ़ी मात्रा मे प्रक्षेप-क्रिया हुई, जिसके परिणाम स्वरूप देखने मे ६० सख्यक प्रति ५९ तथा ६२ सख्यक प्रतियो की तुलना मे अवश्य अधिक त्रुटिहीन लगती है, किन्तु ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ प्रायः प्रक्षेपहीन हैं, जो निम्नलिखित उदाहरणो से स्पष्ट हो जावेगा, इसीलिए इस शाखा के पाठ के पुर्ननिर्माण की दृष्टि से ये ६० की अपेक्षा कही अधिक विश्वासनीय और महत्वपूर्ण हैः—

खण्ड १. मोती० ८(=स० २.३५५) इसके दूसरे तथा तीसरे चरणो का पाठ अन्य प्रतियो में है :—

कमोदनि कुदह केतुकि बील। कनैर कसौंदिय केबर कोह।

५९ मे 'कमोदनि' से 'कनैर' तक की शब्दावली छूटी हुई है। प्रति ६० मे चरण २ तथा ३ को मिला कर निम्नलिखित शब्दावली रख दी गई है :—

करिकै सब ग्वारिनि ढुंढे फिरि एक परस्पर अप्पत कोह।

६२ यहाँ खण्डित है।

२. भुजग (= स० १.५—१०) के पूर्व ५९ मे निम्नलिखित शब्दावली और आती है—

लाल माली कवित्तं।
जिनै उच्चरी बुद्धि गंगा पवित्तं।
गिरा शेष वाणी कवि काव्व वंदे।

अन्तिम छूटे हुए चरण के स्थान पर ६० मे हैः—

नाम वष्षाणनं चन्द छन्दे।

और ६२ मे हैः—

प्ररूपं ति वाणी भली कव्वि चन्दे।

वास्तव मे ये त्रुटित चरण पूरे रूपक के अन्तिम चार चरण हैं, जो इन प्रतियों मे भी अन्यत्र प्रायः इसी प्रकार आते हैंः—

सतं दंडमाली सुलाली कवित्तं। जिन बुद्धि तारग गंगा पवित्त।
गिरा शेष वाणी कवि कव्यि वदे। तिनै हि पुछि उच्छिष्ट कवि चंद छदे।

ये चरण इन प्रतियो के पूर्वज आदर्श मे किसी प्रकार से रूपक के प्रारम्भ मे भी त्रुटित रूप मे आ गये थे, और ५९ में उसी प्रकार उतरे रहे, किन्तु ६० तथा ६२ के बीच के किन्ही पूर्वजो मे मनमाने ढंग से ठीक कर लिए गए।

उपर्युक्त रूपक मे ही अन्य प्रतियो मे आने वाला अन्त का निम्नलिखित चरण ५९ तथा ६२ मे नहीं है :—

जिनै सेत बंध्यौ जु भोज प्रबन्धं।

६० मे इसकी अभावपूर्ति निम्नलिखित चरण द्वारा की गई है :—

अनेक अगें अन्न हुए अनहं।

उपर्युक्त रूपक में ही अन्य प्रतियो मे आने वाला अन्त का निम्नलिखित चरण ५९ में नहीं हैः—

गिरा शेष वाणी कवि कव्वि वंदे।

[1] श्री अगरचन्द नाहटा : 'पृथ्वीराज रासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ', राजस्थानी, भाग ३, अंक २, पृ० २३।

६० मे इसकी अभावपूर्त्ति निम्नलिखित चरण द्वारा की गई है :—

कवि एम रच्यो.ज़ु अग्गे सु वदे ।

६२ यहाँ पर खण्डित है।

२. उधोर ८ (= स० १८४१—५६) : इस छन्द के चरण २९—३० अन्य प्रतियो में निम्नलिखित हैं :—

चढि बनसपति सोहत्ति दंति । मानहुं इंद्रधनु की पत्ति ।

५९ तथा ६२ मे 'चढि बनसपति' मात्र शेष है, ६० मे वह भी निकाल दिया गया है।

३. दो० ५ (= स० ४५.२१७) : इस दोहे का प्रथम चरण अन्य प्रतियो मे है :—

घटि बढि केलि कनउज्जनी पेम स दीरघ होत।

५९ तथा ६२ मे 'केलि' के बाद की शब्दावली नहीं है, जब कि ६० मे यह है :—

कलिंग अवर देस कहुंकेन ।

३. कवि० ७ (=स० ४६.१११) का चतुर्थ चरण अन्य प्रतियो मे है :—

छिति छितान घर धर्म कर्म हिय भरतिहि रोचन।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है, और ६० मे है :—

सूर वीर गम्भीर धीर क्षत्रिय मन रोचन।

४. कवि० २ (= स० १२.५४) का प्रथम चरण अन्य प्रतियो मे है:—

आसोजै रानिग .राव परबत वेहानै ।

५९ तथा ६२ में यह चरण छूटा हुआ है, जबकि ६० मे है:—

होलाराइ हमीर धीर कहि कहूं बखानौ ।

४. कवि० ७ (= स० १२.१६९) का अन्तिम चरण अन्य प्रतियों मे है:—

बेदलइ धाइ वध्धाइयां बोल उंचा उंचा भरी ।

५९ तथा ६२ मे यह चरण छूटा हुआ है, जबकि ६० मे है:—

जो चढत दलहं बद्धयौ सुबल धरा धुंधु मिलि धरहरी।

४.कवि० ९ (स० १३.३५) के अन्तिम दो चरणो का पाठ अन्य प्रतियों में है:—

उत्तंग ढाल की बैरषह को हंके अट्ठारहां ।

निसि जाम तीनि वित्तेपतिय पंजू राग सुढारहां।

५९ तथा ६२ मे 'वैरषह' तथा 'पजू' के बीच की शब्दावली नही हैं, जबकि ६० में एक और चरण गढ़कर अभावपूर्ति निम्नलिखित प्रकार से की गई है:—

उत्तंग ढाल की बैरषह पजू राग सुढारहां।

गय थट्टह हया हेषारवां चलियारह हज्जारहां।

५. नारा० १ (= स० १२.२२८) का अन्तिम चरण अन्य प्रतियों में है:—

चरीत्त चारु चालुकं नरिंद को नरथती।

५९ तथा ६२ मे यह छूटा हुआ है, ६० मे इसके स्थान पर है:—

गजत्थटं हयत्थटं नरत्थटं नरप्पति ।

५. दो० ११ (= स० १२.१५५) के दूसरे चरण का पाठ अन्य प्रतियों में है:—

वीरंदाइ वसीठियां द्वै हिंदू सुलतान।

५९ तथा ६२ मे यह चरण छूटा हुआ है और ६० में इसका पाठ है:—

•धर धक्यौ लीनी धरा जित्यौ भीम परांन ।

६. पद्ध० २ (= स० ४८.४९-६१) के चरण ७-१० का पाठ अन्यों में है:—

मुक्कले दूत तब तिहि रिसाइ। असमत्थ सेव किम भूमि षाइ।
बंधौ समेत सामन्त सत्थ। इत्तरे आनि दरबार तत्थ।

५९ तथा ६२ मे 'असमत्थ' के बाद 'सत्थ' तक की शब्दावली छूटी है। किन्तु ६० में इन चरणों के स्थान पर दो चरण निम्नलिखित कर लिये गए हैं:—

मुक्कले दूत तब तिहि समत्थ। रिसाइ उत्तरे अग्गि दरबार तत्थ।

१०. कवि० ५ (=स० ६१.१५३३) का चरण ३ अन्य प्रतियो मे है:—

परयो चंद मुंडीर चंद पिथ्यौ मारंतौ।

५९ तथा ६२ मे प्रथम 'चंद' के बाद दूसरे 'चंद' तक के शब्द छूटे हुए हैं, ६० में इनके स्थान पर 'पुन्नपामार' शब्द रख दिये गए है।

११. कवि० ९ (=स० ६१.१८३१) के चरण १ और २ का पाठ अन्यों मे है

हय हय हय आयास केलि सज्जी सुव्योम सिर।
किल किलंत कामक्कि डक्क वज्जी सुहंस हर।

५९ तथा ६२ मे 'सज्जी' के बाद 'बज्जी' तक की शब्दावली छूटी हुई है। ६० मे दोनो चरणों का पाठ इस प्रकार है:—

हय हय हय आयास केलि सज्जिय सुहंस हरि।
कहुं गधरिग कहुं परिग अरिग थरहरिग सुहड भर।

१२. कवि० ३ (=स० ६१.२१६४) के चरण २ और ३ अन्यो मे हैं:—

हय तुम दुस्सह मिलन स्वामि हुज्जै सुभथ वर।
हौं रविमंडल भेदि जीव लगि सत्त न छंडौं।

५९ तथा ६२ में 'मिलन' के 'मिल' के बाद 'लगि' के 'ल' तक का अश छूटा हुआ है, ६० मे दोनों चरण इस प्रकार कर दिए गए हैं:—

हम तुम दुसह मिलगि सत्त न छंड्यौ सद्दर।
इमह वंस भज्जिग नरेस करि षंड विहंड्यौ।

ये उदाहरण भी ग्रंथ के पूर्वार्द्ध मात्र से हैं, उत्तरार्द्ध मे ६० मे इस प्रकार के प्रक्षेप और भी अधिक हैं; ५९ तथा ६२ उत्तरार्द्ध मे भी वैसे ही हैं, जैसे ऊपर पूर्वार्द्ध मे मिले हैं। प्रकट है कि ६० अपनी शाखा के पाठ की वास्तविक प्रतिनिधि नहीं रह गई है, ५९ तथा ६२ ही मे उसकी प्रतिनिधि होने की योग्यता है। पुनः ५९ और ६२ में से, जैसा हमने ऊपर देखा है, ६२ की अपेक्षा ५९ कम प्रक्षिप्त है। वह कुछ कम खण्डित भी है—केवल प्रारम्भ के ३½ रूपक इसमे नही है, जबकि ६२ मे प्रारम्भ के १७ रूपक नही हैं। इसलिए अ० के पाठ के लिए ५९ संख्यक प्रति का ही उपयोग किया गया है, केवल प्रारम्भ के उस अंश के लिए जो ५९ संख्यक प्रति मे खण्डित है, ६० सख्यक प्रति का उपयोग किया गया है। इस शाखा के पाठ मे कुल १९ खण्ड हैं, और कुल रूपक-सख्या ११३० के लगभग है।

अ० परिवार की ये प्रतियाँ मुझे लुधियाना के श्री वेणीप्रसाद शर्मा के द्वारा प्राप्त हुई थी, जिन्होने इन्हे इस शाखा के पाठ सपादन के लिए प्राप्त किया था। इस कृपा के लिए मैं उनका आभारी हूँ।

५९ सख्यक प्रति सुलिखित है। इसका आकार १०'५"×६'२५" है। इनमें प्रतिलिपि-तिथि नहीं दी हुई है। अन्त में निम्नलिखित दोहा अवश्य आता है जो ६० तथा ६२ मे नहीं है:—

महाराज नृप सूर सुव कूरमचंद उदार।
रासौ पृथीयराज कौ राख्यौ लगि संसार॥

किन्तु यह दोहा पुष्पिका का नहीं लगता है, बल्कि निम्नलिखित पूर्ववर्ती छन्द पर आधारित उसका विस्तार मात्र लगता है:—

प्रथम वेद उद्धरिय बंभ मच्छह तनु किन्नउ।
दुतीय वीर वाराह धरनि उद्धरि जसु लिन्नो।
कौमारिक भद्देस धम्म उद्धरि सुर सष्षिय।
कूरम सूर नरेस हिंदु हद उद्धरि रष्षिय।
रघुनाथ चरितु हनुमंत कृत भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथिराज सुजसु कविचंद्र कृत चंद्रसिंह उद्धरिय तिमि॥

यह छन्द ६२ मे भी है।

६० सख्यक प्रति मे इसी प्रकार निम्नलिखित दोहे आते है :—

मन्त्रीश्वर मण्डन तिलक वच्छा वंश भरभाण।
करमचंद सुत करम बड़ भागचंद सब जाण॥१॥
तसु कारण लिखियो सही पृथ्वीराज चरित्र।
पढता सुख संपत्ति सकल मन सुख होवे मित्र॥२॥

इन कर्मचन्द तथा भागचन्द का ठीक पता लग गया है। कर्मचन्द कल्याणमल्ल के अमात्य थे, जिनके प्रयत्नों से कहा गया है कि अकबर ने कल्याणमल्ल को जोधपुर की अधीशता प्रदान की थी। इन कर्मचन्द के दो पुत्र थे, भागचन्द और लक्ष्मीचन्द। कर्मचन्द का यह वंश उनके एक पूर्वपुरुष 'वत्सराज' के नाम पर 'वच्छावत' कहलाता था। भागचन्द जहाँगीर के शासन काल मे थे और कहा जाता है कि बीकानेर-नरेश सूरसिंह ने इन्हे सपरिवार बीकानेर लाकर धोखे से मरवा डाला था।[1] इसी प्रकार सूरसिंह सुत चन्द्रसिंह कूर्मवशीय का भी पता लग गया है। ये चन्द्रसिंह कूर्म वशी सूरसिंह के पुत्र थे जो प्रायः तीन सौ वर्ष पूर्व विद्यमान थे।[2] अतः यह प्रमाणित हो जाता है कि तीनो प्रतियाॅ परस्पर बहुत आस-पास की हैं और इनमे ६० संख्यक प्रति—जिसमे भागचन्द का उल्लेख होता है—कुछ पूर्व की और ५९ तथा ६२ सख्यक प्रतियाॅ उसके कुछ बाद की है। फलतः ६० सख्यक प्रति प्रायः सवा तीन सौ वर्ष और ५९ तथा ६२ संख्यक प्रतियाँ प्रायः तीन सौ वर्ष पुरानी होनी चाहिए और इन प्रतियों की जीर्णता देखने में भी इतनी ज्ञात होती है।

(४) फ० : यह प्रति मूलतः उसी आदर्श की है जिसकी अ० परिवार की प्रतियाॅ हैं, क्योंकि उस परिवार का पाठ-त्रुटियों में से अधिकतर इसमे भी पाई जाती है। फिर उस परिवार की ६० संख्यक प्रति कि भाँति इसमे भी प्रक्षेप के द्वारा त्रुटि-परिहार का यत्न किया गया है। नीचे दिए हुए उदाहरणों से यह बात देखी जा सकती है :—

१. उधोर ८ : अ० परिवार की प्रतियो की भाँति इसमे भी चरण २१ नही था किन्तु इस त्रुटि का परिहार फ० मे इस प्रकार किया गया कि चरण २३ के अंतिम शब्द बदल दिए गए जिससे उसका तुक चरण २२ से मिल जावे और फिर चरण २४ के बाद निम्नलिखित चरण अर्द्धाली पूरी करने के लिए बढ़ा लिया गया :—

शोभित भृकुटि भामिनि सोइ।

२. कवि० ३ : अ० परिवार की भाँति इसमे भी चरण २ तथा ३ परस्पर स्थानांतरित थे, जिसके कारण अन्त्य-वैषम्य था, फ० मे मूल के चरण ३ तथा ४ के अन्त के शब्दो को बदल कर इसे ठीक कर लिया गया।

३. कवि० ४ : अ० परिवार की भाँति इसमे भी चरण ४ नही था, उसके स्थान पर इसमे निम्न लिखित नया चरण गढ़ लिया गया :—

[1] दे० श्री शिवदत्त शर्मा : 'मन्त्री कर्मचन्द', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, १९८१ पृ० २९५।
[2] दे० श्री नरोत्तमदास स्वामी : 'पृथ्वीराज रासो', राजस्थान भारती, वर्ष २, अंक १, पृ० ६।

तू करिष्य शिष्यहि करै जू प्रीतम दाउन।

३. कवि० ७ : अ० परिवार की भाँति इसमे भी चरण ४ का अधिकाश नही था। उसके स्थान पर इसमे निम्नलिखित चरण गढ़ लिया गया :—

बंस मध्य वरु वीस अरिह संग्राम अरोचन।

४. कवि० २ : अ० परिवार की भाँति इसमे भी चरण १ नही था, उसके स्थान पर इसमें यथा चरण २ निम्नलिखित नया चरण गढ़ लिया गया :—

पुकारइ पम्मार कइत सब जगही जानै।

४ कवि० ७ : अ० परिवार की भाँति इसमे भी चरण ६ नही था, उसके स्थान पर यथा चरण ५ निम्नलिखित नया चरण गढ़ लिया गया :—

सावंत सकल सूरति मिलति इह स बात दढांह करी।

४. कवि० ९ : अ० परिवार की भाँति इसमे भी चरण ५ तथा ६ की शब्दावली छूटी हुई था जो एक चरण की शब्दावली के लगभग थी, इस त्रुटि को ठीक करने के लिए इसमें निम्नलिखित नया चरण गढ़ कर यथा चरण ६ रख लिया गया —

सुलतान राउ प्रथीराज तनु लिषग्गि जेन प्रौढारहह।

५. नारा० १ : अ० परिवार की भाति इसमे भी चरण ४ नहीं था; इसकी पूर्ति निम्नलिखित नवनिर्मित चरण ४ से कर ली गई :—

त्रलोक सोक संहरं सुता सुपाद संमत्री।

५. दो० ११ : अ० परिवार की भाँति इसमे भी चरण २ नहीं था, जिसकी पूर्ति निम्नलिखित नवकल्पित चरण से कर ली गई :—

इच्छन इच्छइ नन भूरि ता भीम नृप मानु।

९. कवि० ३ : अ० परिवार की भाँति इसमे भी चरण १ नही था; इसकी पूर्ति यथा चरण ३ निम्नलिखित नवनिर्मित चरण बढ़ा कर कर ली गई :—[1]

इच्छन इच्छा इच्छनन भूरि ता भीम नृप मानु।

१३ दो० १७ : अ० परिवार की भाँति इसमें भी चरण १ की शब्दावली छूटी हुई थी, उसकी पूर्ति निम्नलिखित नवकल्पित चरण २ जोड कर कर ली गई :—

पृथ्वीराज चहुवान कौ तौ जिनु अप मोहि।

ये सभी प्रक्षेप अ० परिवार के ६० सख्यक प्रति के प्रक्षेपों से भिन्न है, इसलिए दोनो का प्रक्षेप-सम्बन्ध नहीं हैं।

इस प्रकार के प्रक्षेपो के अतिरिक्त इसमे लगभग ९० रूपक और मिलते हैं, जो परिवार अ० की किसी प्रति मे नही मिलते हैं; लगभग ये सभी छन्द आगे उल्लिखित ना० तथा स० मे मिल जाते है, और फ० में उसकी अपनी क्रम सख्याओ के बाहर पडते है। इसलिए यह प्रकट है कि ये छन्द फ० में बाद मे मिलाए गए, और प्रक्षेप अथवा पाठ मिश्रण के द्वारा उसमे आए।

इन दृष्टियों से देखने पर फ० प्रति अ० परिवार की प्रतियों के होते हुए महत्वहीन और भ्रामक प्रमाणित होती है, और इसलिए यह अ० परिवार की प्रतियों का स्थान नहीं ग्रहण कर सकती है। फिर भी इसमे अनेक ऐसे स्थल हैं जो अत्रुटित हैं और अ० परिवार की प्रतियो में त्रुटिपूर्ण अथवा प्रक्षिप्त हैं :—

२. भुजं० १, चरण १५

२. उघोर ८, चरण २८–२९

[1] यह द्रष्टव्य है कि उद्धृत ५. दो० ११ की त्रुटि-पूर्ति भी इसी नवकल्पित चरण द्वारा की गई है।

२. दो० ३, चरण २ ०
३. दो० ५, चरण १ के कुछ शब्द
६. पद्ध० २, चरण ७–१०
९. कवि० ३, चरण १
१२. दो० १२ के पूर्व का कवित्त, चरण १, २ के कुछ शब्द
१५. कवि० ८, चरण १, ४
१५. कवि० १६, चरण १, २ ०
१६. कवि० १६, चरण २
१७. कवि० ४ के बाद की विज्जुमाला, चरण ७, ८
१७. कवि० १५, चरण ४
१७. त्रोटक ५, चरण १४, १५
१८. कवि० २, चरण ३, ४
१८. दो० ११ के कुछ शब्द
१९. दो० १४, चरण २

इन पूर्ण पाठों के सम्बन्ध मे जो कि प्रक्षिप्त नही है—क्योकि अन्य शाखाओं की प्रतियों में भी मिलते हैं—दो बाते सम्भव हो सकती हैं : एक तो यह कि फ० उस समय की प्रतिलिपि है जबकि इसका और अ० परिवार का पूर्वज आदर्श और इतना त्रुटित नही था जितना अ० परिवार की प्रतियो की प्रतिलिपि के समय हो गया : दूसरा यह कि फ० मे किसी अन्य शाखा के पाठ की सहायता से त्रुटियाँ दूर कर दी गईं । किन्तु अब भी फ० मे ऐसे बहुतेरे स्थल हैं जहाँ पर पाठ उसी प्रकार त्रुटित है जिस प्रकार अ० परिवार की प्रतियो मे है; अतः यदि पाठ त्रुटियो को दूर करने के लिए किसी अन्य शाखा की प्रति या प्रतियो का सहारा लिया गया होता तो इस पिछले प्रकार की त्रुटियाँ भी अधिकतर दूर हो गई होतीं, जैसा कि नहीं हुआ है । इसलिए यही सम्भावना अधिक प्रतीत होती है कि इसकी प्रतिलिपि अ० परिवार की प्रतियों के कुछ पूर्व हुई थी जब इन सबका सामान्य मूलादर्श क्षत-विक्षत होते हुये भी इतना क्षत-विक्षत नहीं हुआ था जितना अ० परिवार की प्रतियों की प्रतिलिपि के समय हो गया था । अतः अ० परिवार की प्रतियो के होते हुए भी इस प्रति का महत्व है, विशेष रूप से उन स्थलों पर अपनी शाखा का पाठ-निर्धारित करने के लिए जो अ० परिवार की प्रतियो मे त्रुटित अथवा प्रक्षिप्त हैं ।

इसका आकार लगभग १२″×७·२५″ तथा इसकी पुष्पिका निम्नलिखित है :—

"सं० १७२८ मार्गसिर सुदि १ बुधवासरे फतेपुरा मध्ये लिषत अमरा आत्मार्थे।"

यह महत्वपूर्ण प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह की है और उन्ही से मुझको प्रस्तुत कार्य के लिए प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मै उनका अत्यन्त आभारी हूँ ।

(५) म० : यह भाडारकर आरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट की १४५५ (१८८१–९५) संख्यक प्रति है । इसका पत्रा २ से ४२ तक का अंश खण्डित है । इसका पाठ खण्डों मे विभाजित है । छन्दों की क्रम-सख्या कुछ दूर तक छन्द-भेद के अनुसार प्रायः उसी प्रकार चलती है जिस प्रकार अ० या फ० मे पूरे पाठ मे चला है, किन्तु तदनंतर वह एक सम्मिलित सख्या के रूप मे चलने लगती है, जैसे वह ना० या स० में चली है, जिनका उल्लेख आगे होगा ।

खण्डों के नामों मे भी इसी प्रकार की अनेकरूपता परिलक्षित होती है । प्रथम खण्ड को 'अध्याय' कहा गया है, दूसरे को प्रारम्भ मे 'पर्व' किन्तु अन्त मे 'खण्ड' कहा गया है । इसके बाद एक अंश आता है जिसके न प्रारम्भ मे कोई शीर्षक दिया गया है और न अन्त मे कोई पुष्पिका ही दी गई है । अ० तथा फ० में यह अंश दूसरे ही खण्ड मे सम्मिलित है जबकि ना० तथा स० में यह अंश स्वतन्त्र है

और तीन भिन्न-भिन्न खण्डों मे बॅटा हुआ है। इस दृष्टि से देखने पर यह अंश अ० और फ० के साथ साद्दश्य रखता हुआ प्रतीत होता है, और उपर्युक्त दूसरे खण्ड का परिशिष्ट-सा लगता है। इसके अनन्तर जो खण्ड आता है उसके प्रारम्भ मे कोई शीर्षक नहीं दिया हुआ है और वह पन्नो के निकल जाने से खण्डित है, इसलिए यह नही कहा जा सकता है कि इसे क्या कहा गया था। इस खण्ड के प्रारम्भ के दो रूपको तक क्रम-संख्या छन्द-भेद के अनुसार मिलती है किन्तु तदनतर पद्धति बदल जाती है और प्रति के अन्त तक वह एक सम्मिलित क्रम-सख्या के रूप मे चलती है। इस खण्डित अंश के बाद दो खण्ड आते है जिन्हे 'प्रस्ताव' कहा गया है, दो खण्ड आते हैं जिन्हे पर्व-खण्डादि कुछ नही कहा गया है, एक खण्ड आता है, जिसे 'खण्ड' कहा गया है, तीन खण्ड आते है जिन्हे पर्व-खण्डादि कुछ नही कहा गया है और एक खण्ड आता है जिसे 'प्रस्ताव' कहा गया है और यही प्रति का अन्तिम खण्ड है। 'अध्याय', 'पर्व', 'खण्ड' और 'प्रस्ताव'—चार भिन्न-भिन्न नामो के आधार क्या है, यह स्पष्ट नही होता है। इस प्रकार के अध्याय, पर्व, खण्ड और प्रस्ताव कुल मिलाकर इस प्रति में १० होते हैं। इस प्रति का आकार लगभग ८'५"×४'५" तथा इसकी प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है :—

"सवत् १८०५ वर्षे माग्रसिर सुदि ११ तिथौ शनिवासरे ग्राम मथाणीया लिषतं पं० उदेराज।"

इस प्रति मे कन्नौज-युद्ध के अनन्तर पृथ्वीराज के दिल्ली-आगमन तथा उसकी केलि-विलास तक की कथा आती है। इतने अंश मे यद्यपि यह खण्ड-विभाजन और कथा-क्रम में प्रायः अ० और फ० के साथ साद्दश्य रखती है, किन्तु इसमे 'हासी प्रथम युद्ध' तथा 'हासी द्वितीय युद्ध' नाम के दो खण्ड ऐसे है जो अ० और फ० मे नही है, ना० और स० मे हैं और शेष खण्डों में भी अनेक छन्द अ० और फ० की तुलना मे अधिक है, जो प्रायः संपूर्ण रूप से केवल स० परिवार की प्रतियों मे मिलते हैं, अ० परिवार की प्रतियो मे नही। फलतः जबकि अ० मे कथा के इस अश मे कुल ६८३ रूपक हैं, इसमें प्रति के प्राप्त १८५ पन्नो मे ही लगभग १८५० रूपक हैं, और यदि खण्डित २२ पन्नो में उसी अनुपात से २२० रूपक के लगभग मान लिये जावे तो इस प्रति की कुल रूपक-संख्या २०७० के लगभग पहुँचती है। फलतः इस प्रति के पाठ का आकार अ० की तुलना मे लगभग तिगुना है।

यह प्रति इस प्रकार अपने ढंग की अकेली है। ऐसा लगता है कि इसका कोई पूर्वज प्रायः उसी आकार-प्रकार का था जिस आकार-प्रकार का अ० का था, किन्तु पीछे उसमें इतनी पाठ-वृद्धि की गई कि छन्दों की क्रम-संख्या देने मे कुछ दूर तक, गलत-सही, पूर्ववर्ती विधि का निर्वाह करने के बाद यह असभव दिखाई पड़ा कि और आगे भी उसको चलाया जा सके, इसलिए उक्त दूसरी पद्धति को अपना लिया गया। इस प्रक्रिया के अवशेष म० के खण्ड १० तथा ११ मे अभी तक सुरक्षित हैं। खण्ड १० में १४२ तक छन्द-संख्या लिखी जाकर पुनः १२५ से प्रारम्भ हुई है और ११ में ९८ तक छन्द-संख्या पहुँचकर ९० से और पुनः ९७ तक पहुँच कर ९२ से प्रारम्भ हो गई है।[1]

इस प्रति में खण्ड १ में ही निम्नलिखित छन्द-लक्षण आते है :—

अ० १. नारा० ६ के बाद : पढमो बारह मत्ते लीयां अठारह साहिणा अट्ठो।
जहां पढमं तहां तीयौ दह पंचमि भूमीयं गाहा ॥१॥
: जां पढम ताय पंचम सत्तम असेस होइ गुरुदुग।
गुडिबणी विण पईणा गाहा दोस पयासई ॥२॥

अ० १. दो० ४ के बाद : सगुणा जिह च्यान पडंत परी।
ठचि सोलहमत्त विसामु करी।
सुणि प्यंगलि णा जहि वीर इयं।

[1] दे० आगे 'म० के क्रम-संख्या के बाहर के छन्द' उपशीर्षक 'रचना का मूल रूप' शीर्षक के अन्तर्गत।

यह तोडय, जाणहु पायडियं ॥

अ० १. दो० ५ के बाद — पयोहर च्यारि पसठिय ताम।
ति सोलह मत्तह मुत्तीयदाम।
णपुथइ हारु भरे इय अंत।
ति अठह अगल छप्पण मंत ॥

अ० १. दो० २२ के पूर्व : पढ पंदह हरणं अहसह हूणं फुनि वसु हरणं षट्ठ हरणं।
अंते गुर मोहै सतहुवन मोहै सिठि सरोहै परतोहै।
जे परय मनोहर हरई मनोहर सा सकरं।

ये छन्द 'प्राकृत पैंगल' में क्रमशः १.५४, १.६५, २.१२९, २.१३३ तथा १.१९४ हैं। किन्तु 'प्राकृत पैंगल' में इन लक्षण के छन्दो के साथ 'पृथ्वीराज रासो' का एक भी छन्द उदाहरण में नहीं दिया गया है, इसलिए 'रासो' के इस पाठ में ये छन्द 'प्राकृत पैंगल' से आए होंगे और इस पाठ को अन्तिम रूप 'प्राकृत पैंगल' के बाद मिला होगा।

यह मूल्यवान् प्रति मुझको इन्स्टीट्यूट से ही प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं उसका अत्यन्त आभारी हूँ।

(६) ना० : यह प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह मे है, जिसकी एक प्रतिलिपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग के लिए उन्होंने करा दी थी। मूल प्रति के लिए मैंने नाहटाजी को लिखा था, किन्तु उसकी जीर्णावस्था के कारण उन्होंने भेजने में असमर्थता सूचित की। अतः इसकी उक्त प्रतिलिपि का ही उपयोग किया जा सका है।

इस प्रति का पाठ भी खण्डो मे विभाजित है—कुल ४६ खण्डों मे रचना समाप्त हुई है। यह प्रति आदि से अन्त तक पूर्ण है। कुल मिलाकर इसमे ३३९७ रूपक हैं।

इसके पाठ मे दो बाते ऐसी हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इसके पूर्व की किसी पीढ़ी में न खण्ड-सख्या इतनी थी और न छंद-सख्या ही और दोनो मे वृद्धि हुई है। खण्डों के वर्त्तमान पाठ में भी कुछ खण्डों की पुष्पिकाओं में उनकी पुरानी क्रम-संख्या पड़ी रह गई है जो उनकी वर्त्तमान स्थिति से बहुत पिछड़ी हुई है, यथाः—

पुष्पिका मे दी हुई खण्ड-संख्या	वर्त्तमान पाठ में खण्ड-स्थिति
पृथ्वीराज वंशावलि राजाजन्म कथा : ३	२
मुगलपराजय पृथ्वीराज विजय : ७	८
कान्हपाटी बन्धन कथा : ८	१०
दिल्ली राज्याभिषेक चामण्ड राय हस्तेन पतिसाह ग्रहण : ९	१२
कनवज गमन जयचन्द द्वारे सप्राप्तो : २१	३१

इस सूची में से प्रथम ही ऐसा खण्ड है जो पुष्पिका के अनुसार वर्त्तमान स्थिति से आगे बढ़ा हुआ लगता है, शेष सभी वर्त्तमान स्थिति से पिछड़े हुए हैं। किन्तु प्रथम भी वर्त्तमान स्थिति में कदाचित् इसलिए तृतीय से द्वितीय हो गया है कि पहले वंशावली के सम्बन्ध का जो द्वितीय खण्ड था, वह वर्त्तमान पाठ मे प्रथम के साथ मिला दिया गया, जैसा प्रथम खण्ड की पुष्पिका की वर्त्तमान शब्दावली "आदि प्रबन्ध मंगलाचरण वंशावलि वर्णन" से प्रकट है। पूर्ववर्ती ७,८, ९ क्रमशः वर्त्तमान ८, १०, १२ हैं। अतः इनके बीच मे वर्त्तमान खण्ड ९ तथा ११ पीछे किसी समय मिलाये गए, यह प्रकट है। छन्द-संख्या के बारे मे भी यही बात दिखाई पड़ती है : बीच-बीच में अनेक छन्द ऐसे मिलते हैं जो दी हुई क्रम-संख्या के बाहर पड़ते हैं। वर्त्तमान खण्ड ३१ में तो १४ तक रूपक-संख्या एक बार चल लेने के बाद पुनः १ से प्रारम्भ होकर ६४ तक चलती है।

इस प्रति की पुष्पिका निम्नलिखित है :—

"सम्वत १७९२ वर्षे मार्ग शीर्ष मासे शुक्ल...श्री तोलीयासर ग्रामे वाचक श्री पुन्योदय जी गणि शिष्य...श्रीरस्तु ॥ शुभम्"

इस प्रति का आकार १३.७५" × ९.५" है।

इस पाठ की और भी कुछ प्रतियाँ मिलती हैं, और एकाध कुछ पहले की भी हैं, किन्तु वे खण्डित हैं। यह प्रति पूर्ण और अत्यन्त सुरक्षित है। इस महत्वपूर्ण प्रति का उपयोग मैं सम्मेलन के अधिकारियो की कृपा से कर सका, इसलिए उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

(७) द० : यह रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन के टॉड संग्रह की ८२ संख्यक प्रति है। यह रचना की प्राचीनतम प्राप्त प्रतियो मे से है और सं० १६९२ की है। इसमे कुल ३६ खण्ड हैं। यह 'बान बेध खण्ड' के पूर्व ही समाप्त हो गई है। इसके अतिरिक्त चौथे 'नाहर राय कथा' खण्ड के छन्द ५-१२, सत्ताईसवे 'शुक वाक्य खण्ड' के दो पत्र (छन्द ५-४८) तथा छत्तीसवे 'पृथ्वीराज ग्रहण खण्ड' का एक पत्रा (छन्द ४-१९) त्रुटित है, और सातवाँ खण्ड 'देवगिरि युद्ध' अपूर्ण छूटा हुआ है : केवल ९ रूपक उसके उतारे गए हैं। टॉड सग्रह की ६० तथा १५७ सख्यक प्रतियाँ भी मूलतः इसी परिवार की हैं, किन्तु उनमे 'शुकवाक्य' तथा 'देवगिरि' खण्ड नही है। इसलिए उपर्युक्त त्रुटित अशो मे से शेष तीन के सम्बन्ध मे ही उनका सहारा लिया जा सकता है। नागरी प्रचारिणी सभा के सस्करण तथा उस संस्करण के पाठ वाली प्रतियो मे 'देवगिरि समय' मे द० के ९ रूपको के बाद ४१ रूपक आते हैं और 'बानबेध खण्ड' मे टॉड सग्रह की ६० संख्यक प्रति मे २८६ रूपक हैं। द० के प्राप्त रूपकों मे इतने और रूपक जोड़ने पर उसकी कुल रूपक-संख्या लगभग ३४७० होती है।

द० का आकार १३.८" × ९.५" है। इसकी पुपिष्का इस प्रकार है :—

"संवत् १६९२ वर्ष चैत्र मासे शुक्ल पक्षे २ द्वितीया रविवारे लखितं।"

इसके अनतर कुछ और लिखा हुआ है जिस पर इस समय कुछ पोता हुआ है और इसलिए वह अपाठ्य हो गया है। उसके बाद आता है :—

"संवत् १९२६ वर्ष कार्ती सुद ५ सो यै पोथी दसोरा कृपाराम सीताराम कनै थी मोल लीधु रूपीया २५ आकरा दीधा पोथी वणारणजी श्री रूपचन्द जी...जो री उदैपुर मध्ये लीधी।"

इस पाठ मे भी बाद मे की हुई पाठ-वृद्धि के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं : 'रितु वर्णन' नामक ३४ वे खण्ड के प्रथम पाँच रूपको के बाद ५१ रूपकोका 'शुकचरित्र' रख दिया जाता है, और तदनंतर पुनः 'रितु वर्णन' खण्ड के रूपकों की क्रम-संख्या ५ से प्रारम्भ होकर १४० तक चलती है।

इस महत्वपूर्ण प्रति का माइक्रोफिल्म इलाहाबाद यूनिवर्सिटी पुस्तकालय से मुझे प्राप्त हुआ था, जिसके लिए मैं पुस्तकालय के अधिकारियों का अत्यन्त आभारी हूँ।

टॉड संग्रह में इस परिवार की और भी कुछ प्रतियाँ हैं, किन्तु वे प्राय : खण्डित हैं; ऊपर जिस अन्य प्रति का उल्लेख किया गया है, उसका भी आदर्श कीटादि से बहुत क्षत-विक्षत हो गया था जिसके कारण प्रतिलिपिकार को स्थान-स्थान पर त्रुटित पाठ को छोड़ना पड़ा है। अतः इस प्रति का महत्व अपने परिवार का प्रतियो में सबसे अधिक है।

(८) शा०: यह प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय में है। यह दो मोटी जिल्दो मे है। यह प्रति रचना के सबसे बड़े पाठ की सब से प्राचीन प्रति है। इसमें खण्डो की संख्या तथा रूपक-संख्या प्रायः वही है जो सभा के संस्करण की है, केवल 'महोबा खण्ड' इसमें नहीं है। इसमें कुल रूपक-संख्या अन्त मे १०७०९ दी हुई है।—

इसका आकार १२" × १०" के लगभग है, और इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

"रासारो पोथी रा रूपक सख्या १०७०९ बत्तीस अक्षर मोलने श्लोक ग्रन्थ जेतो छे। ए पोथी

श्री दीवाणजी रै थी उतरी छे। लिषतं गणि ज्ञान विजयै। श्री वड़ा तलाब मध्ये लिषतं। सव...४७वर्षे आश्विन मासे।"

'४७' के पूर्व के अङ्क तथा अक्षर पूर्ववर्त्ती पत्रे के यहाँ पर चिपक जाने के कारण मिट गए हैं।

इस प्रति की एक आधुनिक प्रतिलिपि, जो मशीन के कागज़ पर की हुई है, सौभाग्य से उस समय की की हुई मिल गई है जब यह विकृति नही हुई थी। यह प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई में है और उसकी बी. डी. २७४ है। इसके कुछ खण्डो के अन्त या प्रारम्भ मे निम्नलिखित शब्दावली आती है, जो आदर्श की है —

खण्ड २ अन्त: "महामहोपाध्याय श्री १०६ श्रीअमर विजय गणि। शिष्य चेला गणि ज्ञान विजय लिषतं आत्मार्थे श्री उदयपुर मध्ये सं० १७४७ रा भाद्रवा सुदि २ दिने।"

खण्ड ३ अन्त: "लिषतं गणि ज्ञान विजयै आत्मार्थे।"

खण्ड ४ अन्त: "गणि ज्ञान विजय लिषतं।"

खण्ड ७ अन्त: "सम्वत १७४७ वर्षे सकल वाचक शिरोमणि महामहोपाध्याय श्री अमर विजय गणि। तत् शिष्य ज्ञान विजय गणि लिषतं आत्मार्थे। सकल मासोत्तम भाद्रमासे।"

खण्ड २१ प्रारम्भ: "अथ सकल वाचक शिरोमणि महामहोपाध्याय श्री ५ श्री अमर विजय गणि गुरुभ्यो नमः।

खण्ड २१ अन्त: गणि गिनान विजय लिषतं श्री उदयपूरे।

खण्ड २२ अन्त: सम्वत १७४७ वर्षे आसू सुदि १० दिने।

इधर बहुत दिनो से यह विवाद रहा है कि सभा की प्रति सं० १६४७ की है या १७४७ की। इस प्रतिलिपि से यह प्रवाद समाप्त हो जाता है।

खेद है कि सभा के अधिकारियो से सभा की प्रति न प्राप्त हो सकी, अतः इस प्रतिलिपि का ही उपयोग प्रस्तुत कार्य के लिए करना पड़ा है। इस प्रतिलिपि के लिए मैं रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई के अधिकारियों का अत्यन्त आभारी हूँ।

(९) उ०: यह प्रति पहले आगरा कालेज मे थी और अब भारतीय सरकार की नेशनल गैलेरी आव् मॉडर्न आर्ट में है। यह रचना के सबसे बड़े पाठ की एक अत्यन्त सुरक्षित और मूल्यवान् प्रति है। यह चार जिल्दों में है और १६०० पृष्ठो मे समाप्त हुई है। यह प्रति आगरा कालेज को १८६१ में उदयपुर के महाराजा ने भेंट की थी, यह उक्त प्रति के मुखपृष्ठ पर उस समय के प्रिंसिपल श्री पियर्सन द्वारा सितम्बर २, १८६१ की तिथि देते हुए लिखा हुआ है।

इसमे खण्डों या प्रस्तावों का क्रम और उनकी संख्या वही है जो उपर्युक्त ना० अथवा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण मे है, केवल 'महोबा समय' इसमे भी नहीं है और कुछ खण्ड सभा के संस्करण की तुलना मे इसमें कुछ आगे-पीछे मिलते हैं। प्रस्तुत संस्करण में सुविधा के लिए उनकी क्रम संख्या वही दी गई है जो सभा के संस्करण मे है।

प्रति का आकार लगभग १२"×१०" है। इतनी बडी प्रति एक ही व्यक्ति की लिखी है, केवल अन्त के दो पत्रे अन्य व्यक्ति के लिखे हैं। सम्भावना यह प्रतीत होती है कि पूर्ववर्ती पत्रों के जीर्ण होकर निकल जाने के बाद वे फिरसे जीर्ण पत्रो से ही उतारकर लगाए गए हो। वर्त्तमान अन्तिम पत्रपर पुष्पिका के नाम पर केवल इतना है:—

"ह० गौकुललाल पुरोहित ॥"

कुछ खण्डों की पुष्पिकाएँ दी हुई हैं, किन्तु प्रतिलिपि-सम्बन्धी कोई उल्लेख कहीं नहीं है। 'राजा रयन सी समय' और 'विवाह समय के' बीच 'विज्ञप्ति' शीर्षक के साथ निम्नलिखित छन्द अवश्य आते हैं, जो सभा के संस्करण मे नही हैं:—

मिलि पंकज ग (गुन ?) उदधि करद कागद कातरणी।
कोटी कवीका जलद कमल कटि कते करनी।
इहि तिथि संख्या गुनित कहे कका कवि यानैं।
इह श्रम लेपन (लेपन) हार भेद भेदै सो जानैं।
इन कष्ट ग्रंथ पूरन करय मन बझा दुख ना लहय।
पालियै जतन पुस्तक पवित्र लिखि लेखक विनती करय ॥१॥
गुन मनियन रस पोइ चंद कवियन करि दिद्धीय।
छन्द गुनि ते तुट्टि मंद कवि भिन भिन किद्धीय।
देस देस बिष्षरिय मेल गुन पार न पावय।
उद्दिम करी मेलवत आश्विन आलय आवय।
चित्रकोट रांन अमरेस नृप हित श्री मुख आयस दयौ।
गुन बिन करुना उदधि लिखि रासो उद्दिम कीयो ॥२॥
लघु दीरघ ओछो अधिक जो कछु अन्तर होय।
सो कवियन मुख सुद्ध ते कहो आप बुद्धि सोइ॥
॥ इति विज्ञप्ति ॥

विज्ञप्ति के ये छन्द आदर्श के ज्ञात होते हैं; इनमे राणा अमरसिंह के आदेश से चन्द के बिखरे हुए छन्दों को इकट्ठा कर उसके पाठ के पुर्ननिर्माण का उल्लेख हुआ है। राणा अमरसिंह का राज्यकाल सं० १६५३ से १६७६ तक है। छन्दों का पाठ कुछ विकृत हो जाने के कारण ठीक तिथि नही ज्ञात हो रही है; वह सम्भवतः १६७३ है जो 'गुन' 'उदधि' के उलट कर पढ़ने से बनती है। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि किन्ही कका कवि ने उक्त राणा के आदेश से वह आदर्श विभिन्न प्रतियो की सहायता से बनाया जिससे यह प्रति या इसकी कोई पूर्वज प्रति उतारी गई। अन्य साक्ष्यों के अभाव मे इसे २ सितम्बर, १८६१ (=सं० १९१८) के कुछ पूर्व की प्रतिलिपि मानना चाहिए।

यह महत्वपूर्ण प्रति मुझे भारतीय सरकार की नेशनल गैलेरी आव् मॉडर्न आर्ट, नई दिल्ली के क्यूरेटर, श्री मुकुल डे से प्राप्त हुई थी, इसलिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। इसे मेरे उपयोग के लिए प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व वाइस चांसलर श्री भैरवनाथ झा ने मँगा दिया था, इसलिए मैं उनका भी आभार मानता हूँ।

पिछली शा० तथा यह लगभग एक ही पाठ देती हैं, इसलिए रचना के पूर्वार्द्ध के पाठ के लिए एक तथा उत्तरार्द्ध के पाठ के लिए दूसरी का उपयोग कर लिया गया है।

(१०) स० : यह नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा कई जिल्दों मे प्रकाशित रचना का प्रसिद्ध संस्करण है, जो श्री मोहनलाल विष्णुलाल पाड्या द्वारा संपादित होकर कई वर्षों मे १९१० ई० तक प्रकाशित हुआ था। इसका आकार वही है जो शा० का है, जा इस संस्करण का मुख्याधार है। शा० परिवार की कुछ अन्य प्रतियो का भी उपयोग इसके संपादन मे किया गया है। इसमें 'महोबा समय' भी अन्त मे जोड़ दिया गया है, जो इस पाठ की भी प्रति मे नहीं मिलता है, केवल अलग स्वतन्त्र खण्ड के रूप में मिलता है। यह संस्करण सावधानी से तैयार किया गया है, और मुद्रण की भूलो के अतिरिक्त शा० परिवार के पाठ को प्रायः ठीक-ठीक प्रस्तुत करता है। अब यह संस्करण दुर्लभ हो गया है। इसकी प्रति मुझे प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं उसके अधिकारियों का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

—:०:—

२. पृथ्वीराज रासो
के
मूल रूप के निकटतम प्राप्त पाठ

ऊपर जिन प्रतियों का परिचय दिया गया है, उनमे रूपक-संख्या, हमने देखा है, निम्नलिखित है :—

(१) धा० : ४२२, (२) मो० : ५५२, (३) अ० : १११०, (४) फ० : १२००, (५) म० [अ० परिवार के ६८३ रूपकों के स्थान पर] : २०७०, (६) ना० : ३३९७, (७) द० : ३४७०, (८) शा० : १०७०९, (९) उ० : यथा शा०, (१०) स० : यथा शा०। साथ ही यह भी हम देखते हैं कि धा० के प्राय: सभी छन्द मो० मे, मो० के लगभग सभी छन्द अ० मे, अ० के सभी छन्द फ० मे, फ० के लगभग सभी छन्द म० मे, म० के अधिकतर छन्द ना० मे किन्तु प्राय: सभी छन्द शा० उ० स० में, ना० के अधिकतर छन्द शा० उ० स० मे, और द० के सभी छन्द शा० उ० स० में पाये जाते हैं।[1] अतः पहला प्रश्न यह उठता है कि इस पूरी पाठ-परम्परा में क्या निरन्तर पाठ-वृद्धि होती रही है, और आकार की दृष्टि से मूल या उसके सब से अधिक निकट पाठ धा० का रहा होगा, अथवा मूल या उसके सब से अधिक निकट पाठ शा० उ० स० का पाठ रहा होगा और उत्तरोत्तर सक्षेप होते-होते उस का आकार धा० का हुआ होगा; अथवा मूल पाठ की स्थिति बीच में कहीं पड़नी चाहिए और एक ओर जहाँ उसमें उत्तरोत्तर पाठ-वृद्धि हुई, दूसरी ओर उसका उत्तरोत्तर संक्षेप भी हुआ। ये विकल्प विचारणीय हैं। इन विकल्पो पर विचार कर लेने के पश्चात् ही यह निश्चय किया जा सकेगा कि रचना के मूल पाठ का आकार क्या था। रचनाओ मे पाठ-वृद्धि होना ही सामान्यत: देखा जाता है, संक्षेप-क्रिया अपवाद के रूप मे ही मिल सकती है, इसलिए धा० को आधार मान कर पहले हमे यह देखना चाहिए कि अधिकाधिक छन्द-सख्या वाली प्रतियो के पाठों मे उत्तरोत्तर पाठवृद्धि के प्रमाण मिलते हैं या नहीं; इस विकल्प के लिये सन्तोषजनक प्रमाण न मिलने पर ही अन्य दो विकल्पो के विषय में विचार करना आवश्यक होगा।

उक्ति-शृंखला

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह दिखाई पड़ेगा कि धा० मे अनेक स्थलों पर एक रूपक मे—प्रायः उसके अन्त में—जो उक्ति आई है उसकी कुछ न कुछ शब्दावली बाद वाले रूपक में—प्रायः उसके प्रारम्भ मे—भी है और इस प्रकार एक उक्ति-शृंखला बनी हुई है, यथा निम्नलिखत रूपकों के बीच। जिन प्रतियों में उक्ति-शृंखला बीच मे अन्य रूपकों के आने के कारण त्रुटित हुई है, उनका उल्लेख धा० का पाठ देते हुये नीचे दाहिने सिरे पर किया जा रहा है :—

(१) **धा० ५१ : जो थिर रहै सु कहहुं किन हूं पूछ तुम्ह सोइ।**
धा० ५२ : थिरु बाले वल्लभ मिलनु जउ जोवन दिन होइ।

१ देखिये विभिन्न परिशिष्ट।

(२) धा० ६८ : तदित करिग अंगुलि धरइ बान भरिग प्रिथिराज।
धा० ७० : भरिग बान चहुवान जानि दुर देव नाग नर।
(धा० मा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(३) धा० ७४ : तउ मानउं स्वामिनि सकल जइ तुंसी होइ परतक्खि।
धा० ७५ : भइ परतक्खि कवी मनि आइय। (शा० उ० स०)

(४) धा० ८१ : तिहूं पुर परागवानी अग्गे आउ राय आयेसु।
धा० ८२ : आइसु सुनि सुनि अग्गे दियो मानकर अप्पु। (शा० उ० स०)

(५) धा० ८६ : कै बनाउ कैलास मोहि कै हर सिद्धि वर छंडि।
धा० ८७ : जो छंडइ तपताप करि वरु छंडै कवि चन्द। (शा० उ० स०)

(६) धा० १०१ : अतिबल सूं बल ना कह्यौ किम चल्लइ भूआल।
धा० १०२ : चलौं चन्द सत्थह सेवग सुअ।

(७) धा० १२१ : अरि नयर नीर उत्तर कहे स।
धा० १२२ : भुल्लि भट्ट पुव्वहि चल्यो कहि उत्तर कनवज्ज।
(धा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(८) धा० १२९ : कंचन करस झकोलति गगह जलु भरहि।
धा० १३० : भरंति नीर सुन्दरी। (धा० म० ना० द० शा० उ० स०)

(९) धा० १४१ : अगम हट्ट पट्टन नयर रतन मोति मनियार।
धा० १४२ : अमग्गति हट्टति पट्टन मंझ। (शा० उ० स०)

(१०) धा० १४९ : जु पुच्छत चन्द गयो दरबार।
धा० १४६ : पुच्छत चन्द गयो दरबारह।
(धा० मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(११) धा० १६१ : एक चहुवान प्रिथिराज टारे।
धा० १६२ : सुनि नृपत्ति रिपु कै सबद तामस नयन सुरत्त। (ना०)

(१२) धा० १६६ : वरनइ वइ उनिहारि इह ज्यूं चहुवान संउत्त।
धा० १६७ : इम जंपइ चन्द वरद्दिया प्रिथीराज उनिहारि इहि।

(१३) धा० १७४ : सुमनु भट्ट सत्थइ अछै जिह करति त्रिय लाज।
धा० १७५ : एक कहइ बिट्ठिय सुभट इह न सत्थि प्रथिराज। (म० शा० उ० स०)

(१४) धा० १८३ : पुप्फांजली पंग सिर नाइ जयति पिय कामदेव।
धा० १८४ : पुप्फंजलि सिर मंडि प्रभु गुरु लग्गी फिरि वाइ।

(१५) धा० १८६ : किहु कामिनि मुख (सुख-शोध में) रति समर नृप निय निंद बिसारि।
धा० १८७ : सुक्खं सुक्ख म्रिदंग तार जयनैं रागं कला कोकिलं।...
ए सह सुक्ख सुखाइ तार सहिता जै राय राज्य गता॥ (धा० म० शा० उ० सं०)

(१६) धा० १८८ : तरुने प्रान लटापट प्पगयरा जइ राय संप्राप्तिं।
धा० १८९ : प्राति राउ संपरपतिग जह दर देव अनूप। (म० शा० उ० स०)

(१७) धा० १९१ : द्रव्य दरिस बहु संग लिए भट्ट समप्पन जाइ।
धा० १९२ : गयो राज मिल्लान चन्द वरदिहह समप्पन। (म० शा० उ० स०)

(१८) धा० १९२ ... ... पान देहि दिढ़ हत्थ गहि।
धा० १९३ सुनि तमूळ सा पट्टि करि वर उठिय डिठि वंक्र। (धा० म० ना० शा० उ० स०)

(१९) धा० १९३ : सुनित मूळ सा पट्टि करि वर उट्ठिय डिठि वंक।

धा० १९५ : भुव वंकिय करि पगु नृप अप्पिग हत्थ तंबोल ।
(धा० मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(२०) धा० १९८ : जउ मुक्कहि सत सत्थभनु तो कत लीन्हसि सत्थ ।
धा० १९९ : जउ मुक्कउँ सत सत्थिभनु तो संमरि कुल लाज ।

(२१) धा० २०० : मनु अकाल तिडिय सघन चल्या तु छूटि प्रवाह ।
धा० २०१ : प्रवासी [प्रवाहे-पाठां०] त तज्जी न लज्जी अहारे ।
(मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(२२) धा० २०२ : जल छंडहि अच्छहि करइ मीन चरित्तनु भुल्ल ।
धा० २०३ : भुल्लयो पुहवि नरिंद त जुद्ध विनुद्ध सइ । (म० शा० उ० स०)

(२३) धा० २०३ : भुल्लयो पुहवि नरिंद त जुद्ध विनुद्ध सइ ।
धा० २०४ : भुल्यो रंग सुमीन नृप पंगु चढ्यो हय पुट्ठि । (म० ना० शा० उ० स०)

(२४) धा० २०४ : सुनि सुन्दरि वर वज्जने चढ्ढी अवासन उट्ठि ।
धा० २०५ : दिक्खति सुन्दरि दुर वलनि चमकि चढंति अवास ।

(२५) धा० २०५ : नर कि देउ किधु काम हर गंग हसंत अयास ।
धा० २०६ : इक्क कहै दुर देव है इककह इंदु फनिन्द । (म० ना० शा० उ० स०)

(२६) धा० २०६ : इक्क कहै असि कोटि नर इहु प्रिथिराज नरिंद ।
धा० २०७ : सुनि वर सुन्दर उभय हुव स्वेद कंप सुरभंग । (ना० द०)

(२७) धा० २११ : मनो दान दुज अंध समप्पति अंजुलिय ।
धा० २१२ : अपंति अंजुलीय दान जान सोभ लग्गए । (म० ना० द० शा० उ० स०)

(२८) धा० २१८ : मिलत हस्य (हत्थ-पाठां०) ककम (कंकन-पाठां०)लखिउ कहहिकन्ह यहु काहु ।
धा० २१९ : इह अपुव्व धीरत्त तुहि कंकन हत्थ नरिंद ।

(२९) धा० २३७ : सय रिपु दिल्लियनाथो स एव आला अग्य धुंसनं ।
धा० २३८ : सुनि स्रवननि प्रिथिराज कहु भयो निसानह घाउ ।

(३०) धा० २४२ : [मनुह लंक विग्रह करन चलउ रघुप्पति राउ-पाठां०]
धा० २४४ : [रामइल बंनर सयल] औहि रक्खण बहु बंध ।
(धा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(३१) धा० २४५ ... ... सहु दिक्खइ मयमत्त ।
धा० २४६ : दिक्खयहि मंत मयमत्त मत्ता । (म० ना० द० उ० स०)

(३२) धा० २४६ : जु कहि जु कहि प्रिथिराज गहियो ।
धा० २४७ : गहि गहि कहि सेनान सब चलि हयगय मिलि एक ।

(३३) धा० २४७ : जाणू पावस जुव्वइ (पुव्वइ-पाठां०) अनिल हलि वद्दल वहु भेक ।
धा० २४८ : हयं गयं नरं भरं उने विये जलद्दर (जलद्दरं-पाठां०) ।

(३४) धा० २६३ : [रावत्त कइ स रयरष्षनइ] रखत रक्खहि राव तिह ।
धा० २६४ : तें रक्खे हिंदुवाण गंजि गोरी गाहंतो । (म० ना० द० शा० उ० स०)

(३५) धा० २६४ : पहु परनि जाहु डिल्ली लगै जु होइ घरे वरु मंगुली (मंगली-पाठां०)
धा० २६५ : सूर मरन मंगली सार (स्यार-पाठां०) मंगली ग्रिह आये । (म० शा० उ० स०)

(३६) धा० २६५ : खित चड्ढि राइ राठौर सउं मरण सनंमुख मंडियइ ।
धा० २६६ : मरन दिजइ प्रिथिराज दसहि छत्रिय करि पयठो ।

(३७) धा० २६९ : इक किवियत नयक तठक्क (ठठक्क-पाठां०) परी ।

धा० २७० : ठक्की सेन सभि मीर मिल्ले । (धा० म० ना० द०-शा० उ० स०

(३८) धा० २७० : चंपे चाहि चहुवान हरि सिंघ नायो ।
धा० २७१ : करि जुहार हर सिंघ नयो चहुवान पहिल्लो । (मो० म० शा० उ० स०)

(३९) धा० २७६ : निडर निसंक जुझत रन आठ कोस चहुवान गउ ।
धा० २७७ : सम रठोरनि राठवर निडर जुज्झ गिरि जाम ।
(मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(४०) धा० २७७ : दिनयर दली प्रिथिराज कूं चंपिउ पंग सम ताम ।
धा० २७८ : चंपति पिछोरिय गति चखह हय पट्टन तनु देख । (म० शा० उ० स०)

(४१) धा० २७९ : जब लगि सहु दल रुक्कियो तब सुकन्ह हयवर चढ्यो ।
धा० २८० : चढत कन्ह सामंत हय जय जय कहै सहु देव । (ना० शा० उ० स०)

(४२) धा० २८२ अ : सिर अधौं कर स्वामिकै हनौ गयंदन जोद ।—मो०]
धा० २८३ : सिर तुटै रु वयो गयंद कड्ढ्यो कट्टारो । (म० ना० शा० उ० स०)

(४३) धा० २८३ : तिम थहि सो लोयन गगधर तिमतिम संकर सिर धुन्यो ।
धा० २८४ : धुनि सीस ईस सिर अहहनह धन धन कहि प्रिथिराज । (म० शा० उ० स०)

(४४) धा० २८७ : सामंत पंच खित्तहि खपिग मिरत भंति भइ विक्खहर (विप्पहर-पाठां०) ।
धा० २८८ : विखहर (विपहर-पाठां०) पहट्ट परथं हय गय नर भार सार हत्थेन ।
(म० शा० उ० स०)

(४५) धा० २९० : सामंत निवट तेरह परिग नृपति सुपट्टिअ पंच सर ।
धा० २९३ : संझ सपट्ठिय नृपति रण दिय पारस परिकोट ।
(धा० मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(४६) धा० ३०१ : मरन जानि मन मज्झ रिउ गिर लक्खिनह वघेल ।
धा० ३०० : जिते समर लक्खन वघेल आहनति खग्गवर । (म० शा० उ० स०)

(४७) धा० ३०४ : सामंत सत्त जुज्झे प्रथम ढिल्लीपति प्रिथिराज भड ।
धा० ३०५ : ढिल्लीपति ढिल्लीय संपत्तउ ।
(मो० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स०)

(४८) धा० ३०६ : जस मंडन नरभर सयल महि मंडन महिलानु ।
धा० ३०७ : पहिलहि (महिलहि—पाठां०) मंडन म्रिपति म्रिह कनकंति ललनानि । (मो०)

(४९) धा० ३१३ : गुरुबंधधव (बंधव-पाठां०) भूति लोइ भई विपरीत गति ।
धा० ३१४ : सकल लोक पुच्छत गुरु इच्छहिं ।
(मो० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)

(५०) धा० ३१९ : मरन छंडि महिला मन मोह्यो ।
धा० ३२० : विहि महिला महिला विसराई ।

(५१) धा० ३२० : सुनि सुनि समो राजगुरु नाई ।
धा० ३२१ : समउ जानि गुरुराज रहि कहि कहि कवि सहु बत्त ।

(५२) धा० ३२७ : उभय उभय रिस उप्पज्यो मिलिय चंद गुरुराज ।
धा० ३२८ : मिलिय चंद गुरुराज विराजहि राज दर । (ना० द० शा० उ० स०)

(५३) धा० ३३१ : कहा पयंपइ म्रिपति सूं कहो चंद गुरु भासि ।
धा० ३३३ : कागद अप्पहि राजगुरु मुख जंपइ इहु बत्त ।

(५४) धा० ३३३ : कागद अप्पहि राजगुरु मुखि जंपइ इहु बत्त ।

धा० *३३४ : अन्य महिल दासी निरखि परखि पयंपन जोगु। (अ०फ०ना०द०शा०उ०स०)

(५५) धा० ३४० : स्रवन मंडि कनवज्जिनी स सुपनंतरि तथ्थ ।

धा० ३४१ : सपनंतरि सुंदरिय रभ लग्गी परिरंभह । (मो०)

(५६) धा० ३४२ : तिहि दिवस देव प्रिथिराज वर संझ सुवर भर महल दिय (किय-पाठां०)।

धा० ३४३ : करि महल मंत मंड्यो छंदहि चामंडराय वर वंदी । (द० शा० उ० स०)

(५७) धा० ३४६ : जे भर भीर संमुह सहहि ते बत्तीस हजार ।

धा० ३४७ : लथ्या धर तिणि वरि गणहि ते पहु पंच हजार ।

(५८) धा० ३४७ : लथ्या वर तिणि वरि गणहि ते पहु पंच हजार ।

धा० ३४८ : पंच हजारह मंहि जुडइ जे अग्गा वर स्वामि ।

(५९) धा० ३४८ : कर वज्जी वज्जइ सहइ ते सौ पंच अछामि ।

धा० ३४९ : तिनमंहि सौ जे भयहरण सीलसत्त जमजित्त ।

(६०) धा० ३४९ : तिनमंहि दसवारण दलण उप्पारहिं गयदन्त ।

धा० ३५० : तिनमंहि पंच प्रपंच से लखिय न गति तिन काज ।

(६१) धा० ३५९ : मिले पुब्ब पच्छिम हुती चाहुवान सुरताण ।

धा० ३६० : मिले जाइ चहुवान सुरताण खग्गे । (धा० मो० ना० द० शा० उ० स०)

(६२) धा० ३६५ . दुह दुज्जी दुज्जी घरी दिन पलट्यो (पलट्यो-पाठां०) चहुवान ।

धा० ३६६ : दिन पलट्यौ पलट्यौ न मनु भुज वाहे सब शस्त्र ।

(६३) धा० ३६६ : अरि भिर्‍यौ (भिड्यौ-पाठां०) भिट्टे न को लखो जु धाता पत्र ।

धा० ३६७ : विधात्रा लिखतं यस्य न तेन मुच्चति मानवा ।

(६४) धा० ३६९ : तजि पुत्र मित्र माया सकल गहिय चन्द गज्जनइ रहि ।

धा० ३७० : गहिय चन्द रह गज्जने जह सजन नूं नरिंद । (अ०फ०ना०द०शा०उ०स०)

(६५) धा० ३७५ : भवन भोग रहु छंडिकै किम जोगे (जोगी-पाठां०) रहु भट्ट ।

धा० ३७६ : वहु संजोगी बहु संजोगी जमन परदारु ।

(६६) धा० ३७७ : छन इक दरहि बिलंबिय मन न करिय कवि मंदु ।

धा० ३७८ : तिहि बिलम्ब कवियन करिग सुरुचि अप्पनिय इच्छ । (शा० उ० स०)

(६७) धा० ३८१ : कर अनन्य (अन्यन-पाठां०) दीधो असीस ।

धा० ३८२ : दइत असीस न सिर नयो वन अच्छयो फुरमान ।

(धा० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)

(६८) धा० ३८३ : जिहि बहुत चन्द महिमान कीन ।

धा० ३८४ : करहि चन्द महिमान सब अगर धूप दिव देह ।

(मो० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)

(६९) धा० ३८५ : क्षखत चन्द मन मरनसूं इम इच्छयो सुविहानु ।

धा० ३८६ : भउ विहान दर वजे ता दुव्व निसान । (शा० उ० स०)

(७०) धा० ३९१ : [दौरि चंदि संमुह चलै वे बुल्लै सुरतान ।—मो०]

धा० ३९२ : बोल्यो सु चंद हज्जूर गाहि । (मो० ना० द० शा० उ० स०)

(७१) धा० ३९२ : जोगहि विरुद्ध हम मिलण मत्ति ।

धा० ३९३ : हमहि मिलहि वे चंद सुनि विरहि दलिद्र सलोभ । (ना० द० शा० उ० स०)

(७२) धा० ३९२ : जोगहि विरुद्ध हम मिलण मत्ति ।

धा० ३९४ : जोग भोग रह रीति सब सब जाणउ सुविहान ।

(७३) धा० ३९८ : सु[दु] रोग मन रोग भो कढन करूं सु विहान ।
धा० ३९९ : जू कढ्ढग कूं पतिसाह तुही । (शा० उ० स०)
(७४) धा० ४०० : अंखि हीन बलहीन तउ (भउ-पाठां०) को (का-पाठां०) मग्गइ मति नट्ठ ।
धा० ४०१ : अंखि विनट्ठी बल घट्यो मति नट्ठी सुलतान ।
(७५) धा० ४०५ : पहिचानि चंद वर सुनिग सीस । सिर नयो नहीं मन भई रीस ।
धा० ४०७ : रिस धुनि सीसु निषेधु कीय जिय लुभि चंद मुहाल । (ना०द०शा०स०उ०)
(७६) धा० ४०६ : संभरि नरेस करि रीस सीस धुनहि न धनु सज्जहि ।
धा० ४०७ : रिस धुनि सीसु निषेधु कीय जिय लुभि चद मुहाल ।
(७७) धा० ४१६ : हनौं रिपू वरियार सउ जउ अप्पइ विय बान ।
धा० ४१७ : इक्क वाण चहुवाण राम रावण उथ्थप्पिय ।
(७८) धा० ४२० : सुलताण पर्यो खां पुकरयो त दिन चंद राजन मरण ।
[धा० ४२२ : मरन चंद वरदिया राज पुनि सुनिग साह हनि ।—मो०] ।
(धा० अ० फ० ना० द० शा० उ० स०)

उपर्युक्त को देखने से ज्ञात होगा कि उक्ति-शृंखला के ७८ स्थलों मे से ५४ स्थलों पर विभिन्न प्रतियो मे ऐसे अंश आते हैं जो उस शृंखला को त्रुटित करते हैं, और अलग-अलग प्रतियों मे इस शृंखला-त्रुटि की संख्या है : धा० : १३, मो० : १५, अ० फ० : १५, म० : २९,[1] ना० : ३३, द० : २७, शा० उ० स० : ४९ । शृंखला-त्रुटि उपस्थित करने वाले छन्द इन समस्त प्रतियों मे अन्यथा भी सदोष है और प्रसङ्ग मे अनावश्यक हैं, यह स्वतः देखा जा सकता है ।[2]

उपर्युक्त विश्लेषण से तीन बाते ज्ञात होती हैं :—

[१] धा०, मो० तथा अ० फ० मे उक्ति-शृंखला प्रायः सब से कम स्थलों पर त्रुटित है, ना० और द० में उसके प्रायः दूने स्थलो पर त्रुटित है, म० मे तिगुने और शा० उ० स० मे साढ़े तीन गुने । उक्ति-शृंखला के इस प्रकार अधिकाधिक त्रुटित होने का एक मात्र कारण ऐसे व्यक्तियों के द्वारा की हुई पाठ-वृद्धि होनी चाहिये जो इसे जान नहीं सके और इसलिए इसे सुरक्षित रखते हुए पाठ-वृद्धि न कर सके । अतः यह प्रकट है कि धा०, मो० तथा अ० फ० रचना के मूल पाठ के सबसे अधिक निकट हैं, ना० तथा द० अपेक्षाकृत दूर और म० तथा शा० उ० स० सब से अधिक दूर । यदि संक्षेप-क्रिया हुई होती तो परिणाम इसका ठीक उलटा मिलता—शा० उ० स० म० के पाठ सब से अधिक सुशृंखलित मिलते, उनसे कम ना० तथा द० के और इनसे भी कम अ० फ०, मो० तथा धा० के ।[3]

[1] ऊपर हम देख चुके हैं कि म० में रचना का दो-तिहाई पाठ ही है, पूरा पाठ होता तो यह संख्या कदाचित् ४४ के लगभग होती ।

[2] आगे 'पृथ्वीराज रासो का मूल रूप' शीर्षक के अन्तर्गत धा० में मिलने वाली उक्ति-शृंखला-त्रुटियों पर विचार किया गया है।

[3] कई वर्ष पूर्व जब मुझे रचना के अन्य पाठ प्राप्त नहीं हुए थे, इस समस्या पर विचार मैंने प्राप्त तीन पाठों अ०, ना० तथा स० में मिलने वाले अत्युक्ति-सूत्र की सहायता से किया था । (पृथ्वीराज रासो के तीन पाठों का आकार-सम्बन्ध—हिन्दी अनुशीलन पौष-चैत्र, स० २०११) उक्त पाठों में आए हुए संख्यात्मक विवरणों की तुलना के अनन्तर मैं इस परिणाम पर पहुँचा था कि ना० और तदनंतर स० में उत्तरोत्तर अ० की तुलना में अत्युक्ति-वृद्धि हुई दिखाई पड़ती है, इस लिये वे उत्तरोत्तर अ० के अधिकाधिक प्रक्षिप्त रूपांतर होंगे, यह नहीं कि ना० और फिर अ०

[२] पहले हमने देखा है कि मो० पाठ आकार मे धा० का लगभग सवाया है, अं० फ० पाठ मो० का लगभग दूना है, म० ना० तथा द० पाठ अ० के लगभग तिगुने हैं, और शा० उ० स० पाठ अलग-अलग म० ना० द० का भी तिगुना है। किन्तु यहाँ हम देखते है कि विभिन्न पाठों में श्रृंखला-त्रुटि इस अनुपात मे नहीं मिलती है, यद्यपि मोटे ढंग पर धा०, मो० तथा अ० फ० की तुलना मे वह ना० तथा द० मे अधिक है, और ना० तथा द० की तुलना मे वह म० तथा शा० उ० स० में अधिक है। प्रश्न हो सकता है कि इसका कारण क्या है। इसका कारण यही है कि पाठ-वृद्धि मुख्यतः दो दिशाओं मे हुई है : एक तो नए-नए प्रसङ्गों और नई-नई कथाओ की कल्पना की दिशा मे और दूसरे प्राप्त प्रसंगो और कथाओं को कुछ और विवरणो के साथ प्रस्तुत करने की दिशा मे। ऊपर श्रृंखला-त्रुटियों पर जो विचार किया गया है उसमे इस दूसरी दिशा मे की हुई पाठ-वृद्धि ही ली जा सकी है पहली दिशा मे की हुई पाठ-वृद्धि नहीं, क्योंकि उसमे ऐसे ही कथा-प्रसग देखे जा सके हैं जो रचना के सब से छोटे पाठ धा० तक मे मिलते हैं, शेष कथा-प्रसग छूट गए है।

[३] रचना के जो सब से छोटे पाठ धा० तथा मो० हैं, वे भी इस प्रकार किए गये प्रक्षेपो से मुक्त नहीं है। दो-एक स्थलो तक इस प्रकार की कोई बात होती, तो यह समझा जा सकता था कि धा० तथा मो० मे पाई जाने वाली वह उक्ति-श्रृखला-त्रुटि अन्यो के द्वारा की हुई पाठ-वृद्धि के अतिरिक्त किसी और प्रकार से भी हुई हो सकती है, किन्तु एक दर्जन के लगभग स्थलो पर मिलने वाली यह उक्ति-श्रृखला-त्रुटियाँ प्रक्षेप पूर्ण पाठ-वृद्धि के कारण ही हुई हो सकती हैं, किसी अन्य प्रकार से नहीं।

छंद—श्रृंखला

ऊपर हमने जिस प्रकार धा० के छंदों को लेकर देखा है कि मूल रचना में आदि से अन्त तक उक्ति-श्रृंखलाए रही होगी, जो बीच मे नवीन छंदो के रखने से उत्तरोत्तर त्रुटित होती रही हैं, उसी प्रकार यदि हम धा० के छंदों को लेकर पुनः ध्यान से देखे और विभिन्न पाठो का मिलान करे तो ज्ञात होगा कि पहले अनेक छंद या रूपक एक और अविभक्त थे किन्तु बाद मे उनको विभक्त कर बीच-बीच में नए छंद रख दिए गए, जिससे पूर्ववर्ती छंद-श्रृखला रचना मे अनेक स्थलो पर त्रुटित हो गई। नीचे धा० मे आने वाले ऐसे रूपक दिए जा रहे हैं, जो रचना की किन्ही भी प्रतियो मे त्रुटित हुए हैं। उनकी रूपक-सख्या धा० से देते हुए, जिन प्रतियो मे वे त्रुटित हुए है उन का उल्लेख किया जा रहा है।

(१) धा० ३३-३४ : छंद पद्धडी है। अ० फ०, ना० तथा द० मे यह एक ही रूपक है किन्तु धा० तथा मो० में यह दो रूपकों मे बँटा हुआ है, जिनके छद अलग-अलग बताए गए हैं, यद्यपि बीच मे कोई अन्य रूपक नही आते हैं। म० यहाँ खंडित है। शा० उ० स० मे धा० और मो० के दो रूपको के बीच तीन अन्य रूपक भी आते हैं जो अन्य किसी प्रति मे नही हैं।

(२) धा० ३६. छंद पद्धडी है। धा० तथा अ० फ० में यह एक रूपक है। मो० में यह दो

उत्तरोत्तर स० के संक्षिप्त रूपांतरों के रूप में निर्मित हुए हों, क्योंकि संक्षेप-क्रिया में छन्द कम किए जा सकते हैं, पंक्तियाँ कम की जा सकती हैं, किन्तु यह नहीं हो सकता है कि सख्याएँ घटा-बढा दी जावें। संख्याओं में परिवर्तन केवल प्रक्षेप की दृष्टि से किए जा सकते हैं, और अ० की तुलना में ना० में और ना० की तुलना में स० में जो पाठ-भेद संख्यात्मक विवरणों में मिलता है उसमें अत्युक्ति-मूलक प्रक्षेप की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रबल दिखाई पड़ती है, इसलिए अ० पाठ की तुलना में ना० पाठ तथा ना० पाठ की तुलना में स० पाठ को परवर्ती होना चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि उक्त परिणाम की पुष्टि उक्ति-श्रृखला त्रुटियों के इन अधिक दृढ़ प्रमाणों द्वारा हुई है।

रूपकों में बँट गया है और दोनों के बीच मे तीन नए रूपक आ गए हैं। म० खंडित है। द० शा० उ० स० मे यह तीन तथा ना० मे यही पाँच रूपको मे बँट गया है और इन खंडो के बीच अनेक छंद आते हैं जो धा० अ० फ० मे नहीं मिलते हैं।

(३) धा० ४० : छंद पद्धडी है। धा० तथा अ० फ० मे यह एक रूपक है। मो० मे यह दो रूपकों में बँट गया है, और दोनो के बीच धा० ३९ (=अ० ६. दो० ३) को रख दिया गया है। म० खंडित है। ना० द० शा० उ० स० मे भी यह दो रूपको मे बँटा हुआ है, और बीच मे धा० ३९ (आ० ६. दो० ३) के अतिरिक्त एक अन्य रूपक भी रख दिया गया है।

(४) धा० १९३ : छंद दोहा है। यह धा० मो० अ० फ० ना० द० मे एक रूपक है, किन्तु म० शा० उ० स० मे दो और पंक्तियो को मिला कर दो रूपको मे बाँट दिया गया है।

(५) धा० २४१ : छंद भुजगी है। यह धा० मो० अ० फ० मे एक ही रूपक है, किन्तु म० ना० द० शा० उ० स० मे दो रूपको मे बँट गया है, और उनके बीच मे कुछ अन्य रूपक भी रख दिए गए हैं जो धा० मो० अ० फ० मे नही है।

(६) धा० २६९ : छंद त्रोटक है। यह धा० अ० फ० म० ना० द० शा० उ० स० मे एक ही रूपक है। मो० मे इसे दो रूपको मे बाँट कर धा० २३९ को रख दिया गया है।

(७) धा० २९१ : छद दोहा है। यह धा० मो० अ० फ० द० मे एक ही रूपक है, किन्तु म० ना० शा० उ० स० मे दो रूपकों मे बँट गया है जिनके बीच मे एक और रूपक रख दिया गया है।

(८) धा० २७० : छद त्रोटक है। यह धा० अ० फ० में एक ही रूपक है, किन्तु मो० म० न० द० शा० उ० स० मे इसे दो रूपको मे बाँटकर बीच मे धा० २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४ तथा २९५ को तथा कुछ ऐसे रूपको को भी रखा गया है जो धा० अ० फ० मे नही है।

(९) धा० ३६०-३६२ : छद भुजगी है। यह मो० ना० द० उ० स० मे एक ही रूपक है किन्तु धा० में दो रूपकों मे और अ० फ० मे तीन रूपको मे बँट गया है, जिनके बीच मे अनेक रूपक ऐसे आते हैं जो धा० मो० मे नहीं हैं, यद्यपि वे ना० द० शा० उ० स० मे अन्यत्र आते हैं।

(१०) धा० ३६९ : छंद कवित्त है। यह केवल धा० मे एक रूपक है, शेष समस्त अर्थात मो० अ० फ० ना० द० शा० उ० स० में दो रूपको मे बँट गया है : कवित्त के प्रथम चार चरणों के साथ अन्य दो चरण मिलाकर एक रूपक बना लिया गया है, बीच मे अन्य अनेक रूपक और रख दिए गए है, तदनंतर पूर्ववर्ती कवित्त के शेष दो चरण एक स्वतन्त्र रूपक के रूप मे आते है।

(११) धा० ३८३ : छंद पद्धडी है। यह धा० मो० अ० फ० ना० द० मे एक ही रूपक है। शा० उ० स० मे दो रूपको में बँट गया है जिसके बीच मे एक अन्य रूपक भी रख दिया गया है।

(१२) धा० ४०३-४०५ : छद पद्धडी है। यह अ० फ० मे एक रूपक है, धा० में यह दो रूपकों बँट गया है, मो० ना० द० शा० उ० स० मे यह तीन रूपको मे बँट गया है, और बीच-बीच मे दूसरे रूपक भी आ गए हैं, जिनमे से कुछ धा० अ० फ० मे मिलते हैं और कुछ नही मिलते हैं।

इन छंदो को प्रसंग-शृंखला की दृष्टि से स्वतः देखा जा सकता है।[1] उपर्युक्त में द्वितीय अर्थात् धा० ३६ ही एक मात्र ऐसा छंद है जिसमे सयोगिता और उसकी सखियो की वसंतागमन मे हर्षोत्फुल्लता का वर्णन करके अन्त के चार चरणों मे एक भिन्न बिषय-पृथ्वीराज के सामन्तों का मिलकर कन्नौज पर चढ़ाई करने के निश्चय—का उल्लेख है। शेष छंदो मे आदि से अन्त तक एक ही विषय है और उनकी छद-शृंखला त्रुटित होने के साथ साथ प्रसंग-शृंखला भी त्रुटित हुई है।

[1] धा० के छंद-शृंखला-अतिक्रमण पर विचार 'पृथीराज रासो का मूलरूप' शीर्षक के अन्तर्गत आगे किया गया है।

विभिन्न प्रतियों मे उपर्युक्त बारह छंद-त्रुटियाँ इस प्रकार आती हैं :—

धा०	:	१
अ० फ०	:	२
मो०	:	६
म०	:	४[1]
ना०	:	७
द०	:	७
शा० उ० स०	:	१०

यह ध्यान देने योग्य है कि विभिन्न प्रतियो के पाठो के बारे मे जिस परिणाम पर हम ऊपर उक्ति-श्रृंखला-त्रुटियो के आधार पर पहुँचे है, लगभग उसी परिणाम पर हम ही यहाँ छंद-श्रृंखला त्रुटियो के आधार पर भी पहुँच रहे हैं। अन्तर केवल मो० के सम्बन्ध मे पडा है : वहाँ मो० प्रति धा० तथा अ० फ० के साथ दिखाई पड़ी थी, और यहाँ वह म० ना० द० के साथ है।

सब से कम श्रृंखला त्रुटि वाली प्रतियों में पूर्वापर सम्बन्ध

अब प्रश्न यह उठता है कि जब धा० मो० तथा अ० फ० मे उक्ति-श्रृंखला लगभग समान रूप से कम त्रुटित है, और छन्द-श्रृंखला धा० अ० फ० मे सबसे कम त्रुटित है, फिर भी तीनो की रूपक-संख्या भिन्न भिन्न है, तो इन चारो के पाठो मे कोई पूर्वापर सम्बन्ध भी है या नही, और यदि है तो वह किस रूप मे है।

यदि हम अ० फ० के पाठ को ले, तो देखेंगे कि उसमे निम्न-लिखित उल्लेख-वैषम्य मिलते हैं :—

(१) अ० ८. भुज० १ मे अचलराय, जयसिंह चन्देल, देवराज बारर, बरनराय, बीकम कमधुज्ज, रूपरायदाहिमा, सदाशिव, सारन तथा सेनचन्द्र पृथ्वीराज के साथ कन्नौज जाते है, किन्तु तदनन्तर न इनका उल्लेख उन योद्धाओ मे होता है जो वहाँ युद्ध मे मारे जाते है, और न वहाँ से लौटे हुए योद्धाओ की नामावली (अ० १२. पद्ध० ३) मे होता है।

(२) अ० ९. भुजं० ३ = धा० १६१ मे जिन स्थानो के जयचन्द द्वारा विजित होने का उल्लेख है, उनमे से अधिकतर का उल्लेख, अ० ३. दो० २, ३, तथा नारा० १ मे उसके पिता विजयपाल के द्वारा विजित स्थानों मे उसके पहले ही मिलता है, यथा कर्णाट, गूर्जर, गुंड और मिथिला।

(३) अ० ६. साट० १ = धा० ४७ मे मडोवर को पृथ्वीराज द्वारा दलित कहा गया है, और अ० ६. साट० २ = धा० ४८ में उसी को जयचन्द द्वारा भी दलित कहा गया है।

(४) अ० १०. कवि० ५ = धा० २५६ मे गोविंदराय गुहलौत के मारे जाने का उल्लेख है, जब कि बाद मे अ० १४. कवि० २९ मे शहाबुद्दीन के अन्तिम युद्ध के समय की गोष्ठी मे उसके सम्मिलित होने का भी उल्लेख हुआ है।

(५) अ० ११. कवि० २ = धा० २८९ मे थट्टा का शासक भान भट्टी (एक राजपूत) बताया गया है, जब कि अ० १४. कवि० १२ में उसके ब्राह्मण शासक का चामडराय द्वारा पराजित किया जाना कहा गया है।

(६) अ० ११. कवि० ८ मे पट्टन का स्वामी प्रतापराय कहा गया है, जो कन्नौज के युद्ध में जयचन्द की ओर से लडता है; अ० १८. कवि० ९ मे इसका स्वामी सावलिंग सिंह बताया गया है, जो पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन से लड़ता है।

[1] किन्तु म० में पूरी कथा का केवल दो-तिहाई आता है, इसलिए संपूर्ण कथा के अनुपात से यह संख्या ६ होगी।

(७) अ० ९. भुजगी १ मे० मारूराय कन्नौज गया है और वहाँ लड़ा भी है (अ० ११. कवि० ४ =धा० २९२); पीछे वह पुनः पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन के साथ के उसके अन्तिम युद्ध में भी लड़ता है (अ० १५. कवि० १९, १७. कवि० ७, कवि० ९, कवि० १०, दो० २)। फिर भी उन योद्धाओं की सूची (अ० १२. पद्ध० ३) मे इसका नाम नही है जो पृथ्वीराज के साथ कन्नौज-युद्ध के अनन्तर वापस होते है।

(८) अ० २. पद्ध० ७ में मोरीराज के दल को सोमेश्वर ने नष्ट किया था, यह कहा गया है, अ० ६. साट० १ मे पुनः पृथ्वीराज के सम्बन्ध मे यही बात कही गई है, फिर भी अ० १५. कवि० १८ में वह पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन से लड़ा है।

(९) अ० १३. कवि० १८ तथा अ० १४. वार्त्ता ४ मे शहाबुद्दीन को जलालुद्दीन नन्दन कहा गया है, जबकि अ० १९. कवि० १३ में जलालुद्दीन स्वय शहाबुद्दीन है।

(१०) अ० १६. दो० ४ तथा पूर्ववर्ती कुण्डलिया में जैत के मारे जाने का उल्लेख है, किन्तु अ० १७. साट० ३ तथा अ० १७ भुज० ३ मे उसे शहाबुद्दीन के विरुद्ध लडता हुआ दिखाया गया है।

(११) १८. कवि० १० मे 'बदी' (=कृष्णपक्ष) का उल्लेख है, जबकि उसके पूर्व ही अमावास्या का उल्लेख हुआ है (१६. कवि० ७, १७. त्रो० ५)।

(१२) अ० १४. दो० २९ मे चामड राय को मानपुंडीर के कुल का कहा गया है, किन्तु अ० १४. दो० ३१ और दो० ३३ मे उसे दाहिमा कहा गया है जब कि दाहिमा तथा पुंडीर दो भिन्न भिन्न राजपूत जातियाँ हैं (अ० १४. दो० २९)।

(१३) अ० खण्ड ४ मे जिन योद्धाओं का उल्लेख गोरी-पृथ्वीराज युद्ध में होता है वे है :— चामंडराय, प्रसगराय खींची, देवराय बागरी, महनसिह परिहार, जाज यादव, जामानी यादव, सलष पँवार, तथा आजानु बाहु लोहाना। किन्तु बाद मे (अ० ७ त्रो० २) में जिन सामन्तों को उक्त युद्ध मे विजय का श्रेय दिया जाता है वे हैं : नीडुर, पहाड़राय तोमर और अल्ह, जिनका नाम भी खण्ड ४ में कहीं नही आता है।

(१४) अ० खण्ड ५ में जिन योद्धाओं का उल्लेख भीम-पृथ्वीराज युद्ध में होता है, वे हैं :— देवराय बागरी, जामानी यादव, जाज यादव, रामराय बड़गूजर, जैत पँवार, गोविन्दराय गुहलौत, गाजी गौड़, असाराव हाड़ा, लंगा लगरीराय, बलीराय, कहरराय कूरंभ, नियराय, गजू, अजू, अजून, पहाड़ पारारि, और हमीर : किन्तु बाद मे (अ० ७. त्रो० २) मे जिन सामन्तो को उक्त युद्ध मे विजय का श्रेय दिया जाता है, वे है हरसिह तथा विझराज, जिनका कोई उल्लेख खण्ड ५ मे नहीं होता है।

(१५) अ० ११. कवि० २७ (= धा० २६६) मे अपने सामन्तो मे यह विश्वास दिलाने पर कि वे कन्नौज से दिल्ली के 'पंच घाटि सौ कोस' के मार्ग भर एक-एक करके जूझते हुए जिस प्रकार भी सम्भव होगा पृथ्वीराज और सयोगिता को दिल्ली पहुँचा देगे, पृथ्वीराज दिल्ली की ओर मुड़ पड़ता है। अ० १२. कवि० २३ (=धा० ३०४) मे उन सामन्तो की नामावली मार्ग की उस दूरी के साथ दी गई है जो उन्होने जूझते हुए पृथ्वीराज और संयोगिया को तै कराई है, और इसका योग पूर्वोक्त छन्द मे दी हुई कन्नौज से दिल्ली की दूरी से मिलती है। अ० फ० के विभिन्न अतिरिक्त छन्दों में, जो धा० मे नहीं मिलते हैं, अ० १२. कवि २३ (=धा० ३०४) मे उल्लिखित सामन्तो के अतिरिक्त निम्नलिखित के भी लड़ते हुए जूझ जाने का विवरण मिलता है, और वह भी अ० १२. कवि० २३ (= धा० ३०४) के ठीक पूर्व :—

अ० १२. कवि० १६ : पट्ठन के चालुक कचरा राय का,
अ० १२. कवि० १७, तथा कवि० २० : जंघारा राव भीम का,
अ० १२. भुज ० तथा कवि० १ : सिंह (सादूल) बारर का,

अ० १२ कवि० २० : अजमेर के सागर गौड़ का,
अ० १२. कवि० २० : एक जाँगरा शूर का।

प्रकट है कि यह विस्तार प्रक्षिप्त है।

इस उल्लेख-वैषम्य के अतिरिक्त अ० फ० में तीन ऐसे इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियो के उल्लेख भी आते हैं जो पृथ्वीराज के बहुत पीछे हुए हैं :—

(१) अ० ११. कवि० ६ : महाराष्ट्रपति कन्हराय,
(२) अ० १४. कवि० ६—अ० १६. कवि० २ : चित्तौर नरेश रावल समरसी,
(३) अ० १५. कवि० ८ : हम्मीर देव।

कन्नौज के युद्ध मे महाराष्ट्रपति कन्हराय जयचन्द की ओर से सम्मिलित हुआ है, जब कि उसका राज्य-काल सं० १३०४ से १३१७ तक था।[1] गोरी और पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध मे पृथ्वीराज की ओर से रावल समरसी सम्मिलित हुआ है, जब कि उसके शिलालेखादि सं० १३३० से १३५८ तक के मिलते हैं।[2] वर-प्राप्ति के लिए हम्मीर के द्वारा देवी को अपना सिर काट कर भेंट करने की बात कही गई है,[3] जब कि उसने सं० १३५८ मे अलाउद्दीन से लड़ कर वीर गति प्राप्त की थी।

किन्तु इनमे से एक भी धा० या मो० मे नहीं है, यह तथ्य भी इसी ओर सकेत करता है कि अ० फ० पाठ धा० तथा मो० पाठों के बाद का है।

यहाँ पर यह शंका उठाई जा सकती है कि यदि अ० फ० पाठ धा० तथा मो० के बाद का है तो अ० फ० पाठ मे भी लगभग उतनी ही उक्ति-शृखला-त्रुटि क्यों मिलती है जितनी धा० अथवा मो० मे मिलती हैं और छन्द-शृंखला त्रुटि भी प्रायः बराबर ही किन्तु मो० से बहुत कम मिलती है। इसका समाधान यही है कि अ० फ० के प्रक्षेपकार ने मुख्यतः नवीन प्रसङ्ग तथा कथा-कल्पना की दिशा में प्रक्षेप किया, प्राप्त प्रसंगों मे विवरण-विस्तार का यत्न बहुत कम किया, जिससे कि पूर्व प्राप्त पाठ की उक्ति और छन्द शृखलाएँ बहुत कुछ सुरक्षित रह सकीं; यह भी असम्भव नहीं है कि उक्ति और छन्द-शृखलाओं को जान कर पाठवृद्धि करते हुए उसने उन्हे बचाने का यत्न किया हो।

कुछ समय पूर्व[4] 'पृथ्वीराज-रासो का लघुतम रूपान्तर (?)' शीर्षक एक लेख लिखते हुए मैंने धा० तथा मो० मे कुछ ऐसी बाते दिखाई थीं कि जिनसे धा० और मो० रचना के पूर्ण पाठ की प्रतियाँ न ज्ञात होकर किसी प्रक्षेपयुक्त छन्द-चयन या सक्षेप मात्र की प्रतियाँ प्रतीत होती हैं। ये बाते तीन प्रकार की थीं। एक तो धा० पाठ के अन्त में मिलने वाले दोहे और उसकी पुष्पिका के सम्बन्ध की थी, जिनमें रचना को 'पृथ्वीराज रासउ रसाल' कहा गया है, दूसरी उन प्रसङ्ग-त्रुटियों के सम्बन्ध की थी जो धा० और मो० के पाठों में ही मिलती हैं, अन्य पाठों में नहीं, और तीसरी उन पाठ और प्रसङ्ग-त्रुटियों के विषय की थी जो धा० और मो० के अतिरिक्त अ० फ० में भी मिलती है। नीचे उक्त लेख के आवश्यक अंश दिए जा रहे हैं :—

. ऊपर उद्धृत [धा० तथा मो० का] पुष्पिकाओं को ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा कि यद्यपि मो० मे रचना का नाम "पृथ्वीराज रासु (रासौ)" दिया गया है, धा० मे उसे "राजा श्री प्रिथीराज चहुआण रासु रसाल" कहा गया है। अभी तक जितनी भी अन्य प्रतियाँ रचना की प्राप्त हुई है,

[1] भांडारकर : अर्ली हिस्ट्री ऑव दि डेकन, पृ० १०९।
,, : इन्सक्रिप्शन्स ऑव नॉर्दर्न इण्डिया, पृ० ८२-५२।

[3] तुलना० 'हौं रनथभउर नॉह हमीरू। कलपि माँथ जेहँ दीन्ह सरीरू।' जायसी-ग्रंथावली (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) 'पद्मावत' ४९१.३।

[4] दे० हिन्दी अनुशीलन, जुलाई-सितम्बर, १९५७, पृ० ९-१५।

उनमे से किसी मे उसे "रसाल" नही कहा गया है। इतना ही नही, इस प्रति के पाठ के अन्त मे एक दूहा आता है, और इसमे भी रचना का नाम यही है :—

सा... ... ...मरणहु चद नरिंद।
रासउ रसाल नवरस निबंधि अचरिज इंदु फणिंद॥

और यह दूहा भी अन्य पाठ या प्रति मे नही मिलता है। अतः उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने से पूर्व इस 'रसाल' शब्द पर विचार कर लेना आवश्यक होगा।

कोशो मे इस शब्द के आम, ईख, गेहूँ आदि कुछ अर्थ मिलते है, जिनमे से कोई यहा सगत नहीं है। इससे मिलता हुआ एक शब्द 'रसालु' मिलता है, जिसका प्रयोग प्राकृत ग्रंथो मे हुआ है, और 'पाइअ सद्द महण्णवो' मे इसका अर्थ "मजिका या राज-योग्य पाक विशेष" देते हुए बताया गया है कि यह घृत, मधु, दही, मिर्च तथा चीनी से बनता है। इस अर्थ से भी हमे कुछ अधिक सहायता नही मिलती है। किन्तु इस शब्द का एक और प्रयोग भी मिलता है—वह है संकलन या चयन-ग्रंथ के अर्थ में। एक अज्ञात लेखक द्वारा संकलित 'उपदेश रसाल' नामक एक ग्रन्थ है, जिसमे जैन धर्मोपदेश को लक्ष्य करके अनेक कथा-कहानियाँ रत्नमन्दिर कृत 'उपदेश तरंगिणी' तथा अन्य ग्रन्थो से उद्घृत की गई हैं। उसकी पुष्पिका मे लिखा है :—

"इति श्री उपदेश रसाल नामा ग्रन्थ उपदेश तरंगिणी २४ प्रबन्धादि बहु शास्त्राण्यऽवलोक्यउ [द्] धृतः[१]

यह अवश्य है कि 'रसाल' शब्द का यह प्रयोग पाक-विशेष अर्थ वाले 'रसाल' का ही एक साहित्यिक उपयोग प्रतीत होता है। मुझे ऐसा लगता है कि ऊपर 'पृथ्वीराज रासो' के साथ आए हुए 'रसाल' शब्द का अभिप्राय भी कुछ इसी प्रकार का है : 'पृथ्वीराज रासो' के विविध प्रसगों से कुछ उत्कृष्ट छद लेकर उक्त पाठ को तैयार किया गया, इसीलिए उसे 'पृथ्वीराज रासउ रसाल' कहा गया।

'राउल रसाल' के छन्द-संकलन पर दृष्टि डालने पर यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है।

(१) 'रासउ रसाल' मे खट्टू मे द्रव्य-प्राप्ति प्रकरण[२] का केवल एक छन्द है :—

[खट्टू आखेटक रवन] महिम मुरस्थल थांनु।
नागवरी गवरी गुरन मति निम्मल परधांन॥ (धा० २६ = स० २४.१)

कथा में इस छन्द की संगति क्या है, यह उक्त प्रकरण के अन्य छन्दो के अभाव मे ज्ञात नहीं होता है।

(२) 'रासउ रसाल' में दिल्ली-दान प्रकरण[३] के केवल निम्नलिखित दो छन्द है :—

जोगिनिपुर चहुवान लिय पुत्तिय पुत्त नरेस।
अनंगपार तोंवर तिरण किय तीरथ परवेस॥ (धा० २८ = स० १८.९६)
पटद्दह सह मामन्त सजि बजै निग्घोष सुनिंद।
सोमेसुर नन्दन अटल दिल्ली सुचिर नरिंद॥ (धा० २९ = स० १८.१०४)

स्वभावतः यहाँ पर प्रश्न उठता है कि योगिनीपुर (दिल्ली) को चहुवान पृथ्वीराज ने किस प्रकार लिया। अतः यह प्रसंग भी उसमे अधूरा रह जाता है।

[१] दे० 'कैटेलॉग आव् टॉड कलेक्शन इन दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी,' जर्नल ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, अप्रैल १९४०, पृ० १३२।

[२] अ० २, साट० ३ से अ० २, कवि० ४ तक; स० खंड २४।

[३] अ० २, दो० १७ से अ० २, दो० २१ तक; स० खंड १८।

(३) 'रासउ रसाल' में जयचन्द तथा संयोगिता के पूर्व-परिचय,[१] भीम चौलुक्य तथा शहाबुद्दीन गोरी से पृथ्वीराज के संघर्ष और इंछिनी विवाह[२] के एक भी छन्द नही है। उसमे दिल्ली-दान प्रकरण के बाद ही 'कनवज के राजा की बात' प्रारम्भ हो जाती है और हमें संयोगिता प्रथम दर्शन मे मृगों को अपने हाथों से यवाकुर चुगाती हुई दिखाई पड़ती है।[३] यह संयोगिता कौन है, न इस छंद में कहा जाता है और न इसके पहले कहीं। इसी प्रकार आगे कैंवास-वध प्रकरण[४] मे पट्टराज्ञी इंछिनी के ही बुलाने पर आखेट से आकर पृथ्वीराज कैंवास का वध करता है और 'रासउ रसाल' मे वहाँ इंछिनी पट्टराज्ञी होते हुये भी[५] एक ऐसे पात्र के रूप मे हमारे सामने आती है जिससे पहले से हम बिलकुल परिचित नही हैं। 'रासउ रसाल' की कथा मे जयचन्द, संयोगिता और इछिनी के पूर्व-परिचय का अभाव इसलिए प्रबन्ध-त्रुटि लगता है। कथा मे भीम चौलुक्य और शहाबुद्दीन गोरी से संघर्ष की कथाये इंछिनी विवाह की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती हैं।

(४) 'लघु पाठ' (अ० फ०) मे जयचन्द ने संयोगिता के पास उसकी कुछ सखियों को इसलिए भेजा है कि वे उसे पृथ्वीराज के अनुराग से विरत करें, और इस प्रकरण मे जयचन्द की उन दूतियों तथा संयोगिता का एक अच्छा संवाद है।[६] 'रासउ रसाल' मे इस प्रकरण के कुछ स्फुट छन्द ही है, जिनमे उक्त संवाद सुश्रृंखलित और उत्तर-प्रतिउत्तर-पूर्ण नही है। उदाहरण के लिए दूतियाँ प्रेम की तुलना में यौवन की जो महत्ता प्रतिपादित करती हैं,[७] उसका कोई उत्तर संयोगिता की ओर से नहीं है, जो प्रसंग में अनिवार्य है।

(५) कैंवास-वध प्रकरण मे 'लघु पाठ' (अ० फ०) के वे छन्द 'रासउ रसाल' मे नही हैं जिनमें इछिनी ने पृथ्वीराज को कैंवास को कर्नाटी के कक्ष मे दिखाया है।[८] उक्त प्रकरण मे इस प्रकार के संकेत के अभाव मे पृथ्वीराज का कैंवास को वाण का संधान कर मारना, जैसा बाद के छन्दों में आया है, किसी प्रकार संभव नही लगता है।

(६) 'रासउ रसाल' मे पृथ्वीराज के साथ जाने वाले १०६ योद्धाओ की वह संक्षिप्त परिचय-युक्त सूची नही है जो 'लघु पाठ' (अ० फ०) मे है।[१०] इन योद्धाओ मे से अधिकतर के नाम 'रासउ रसाल' मे भी बाद मे आने वाले कन्नोज-युद्ध प्रकरण मे आते हैं। अतः इस सूची के अभाव मे उक्त युद्धाओ का उल्लेख अत्यन्त आकस्मिक लगता है, और कभी-कभी तो यहाँ तक नही पता चलता है कि कौन किस ओर से युद्ध कर रहा है।

इन प्रबन्ध-त्रुटियों से 'रासउ रसाल' का एक चयनात्मक संक्षेप मात्र होना प्रमाणित है। यह चयन किस पाठ से हुआ, यह दूसरा प्रश्न है जो विचारणीय है। ऊपर हम यह बता ही चुके है कि 'रासउ रसाल' के प्राय: समस्त छन्द 'लघु पाठ' (अ० फ०) मे आते हैं। पुनः 'लघु पाठ' (अ० फ०)

[१] अ० खंड ३; स० खंड ४५—४७।

[२] अ० खंड ४—५, स० खंड १२—१३।

[३] धा० ३५, अ० ६. रासा १, स० ४८. ७९।

[४] अ० खंड ७, स० खंड ५७, धा० ४८—१०६।

[५] धा० ६२।

[६] अ० ६. दो० ४—खंड के अन्त तक; स० खंड ५०।

[७] धा० ५२; अ० ६. दो० ८; स० ५०.४४।

[८] अ० ७. दो० ६—दो० १०, स० ५७.८२—८६।

[९] अ० ७. दो० ११; स० ५७.८७; धा० ६८।

[१०] अ० ८ भुजं० १; स० ६१. १०९—१३२।

के भी समस्त छन्द, आधे दर्जन के लगभग छन्दो को छोडकर, उस पाठ मे आते है जिसे 'मध्यम'(ना०) कहा जाता है, और 'मध्यम' के भी अधिकतर छन्द उस पाठ मे आते है जिसे 'वृहद' (ज्ञा० उ० स०) कहा जाता है। किन्तु 'रासउ रसाल' मे तीन-चार छन्दो को छोड कोई छन्द ऐसे नही है जो 'मध्यम' या 'वृहद' मे हो और 'लघु' मे न हो, इसलिए यह प्रकट है कि 'रासउ रसाल' 'लघु' का ही एक संकलित संक्षेप है।

इस तथ्य की पुष्टि एक और प्रकार से भी होती है। 'रासउ रसाल' मे जो पाठ-भ्रंश आदि के स्थल हैं, उनमे से कुछ 'लघु पाठ' (अ० फ०) मे भी पाए जाते है। नीचे इस प्रकार के दो प्रमुख उदाहरण दिये जा रहे है :—

(१) 'रासउ रसाल' मे नीचे लिखी गद्य-वार्त्ता आती है[1] :—

"पात्र नाम दर्पकांगी नेतचंगी कुरगी कोकाक्षी कोकिला रागीमे भागवतानी अंगाल्ल ले डोल एक बोल अमोल पुर्फांजली पग सिर नाइ जयति पिय कामदेव।"

मो० मे भी पाठ लगभग यही है, केवल साधारण पाठांतर के अतिरिक्त अन्त मे आए हुये 'पिय' के स्थान पर पाठ 'बिअ' है।

प्रकट है कि यह केवल पातरो (नर्तकियो) की नामावली नहीं है, यह किसी छन्द का एक त्रुटित रूप है, जिसमे नर्तकियो के नाम गिनाकर कहा गया है कि उन्होने पंग (जयचन्द) के सिर पर पुष्पाजलि डालते हुये एक स्वर से कहा, "हे प्रिय (मो० पाठ के अनुसार 'दूसरे') कामदेव, तुम्हारी जय हो।"

'लघु पाठ' (अ० फ०) मे भी इस छन्द की स्थिति यही है, केवल इसे उसमे 'वार्त्ता' नही कहा गया है, न 'पात्र नाम' का शीर्षक दिया गया है, और अन्त मे आये हुए 'पिय' या 'बिअ' के स्थान पर पाठ 'तुव' है।[2] केवल एक प्रति 'लघु पाठ' की ऐसी है जिसमे यह अंश एक साटक (शार्दूल विक्रीडित) के रूप मे इस प्रकार आता है[3] :—

दीपांगी चन्द्रनेत्रा नलिन अलि मिली नैनरगी कुरंगी।
कोकांषी दीर्घनाला सुरसरि कलिरवा नारिदं सारवंगी।
इंद्रानी लोल डोला चपल मतिधरा एक बोली अबोली।
दूहपा वानी विसाला सुभ गिरवरा जैतरंभा सुबोली॥

मेरा अपना अनुमान कि पाठभ्रंश के पूर्व 'लघु पाठ' में छन्द कुछ इस प्रकार रहा होगा :—

दीपांगी चन्द्रनेत्रा नेत्रवंगो कुरगी।
कोकाक्षी कोकिलानी राग मे भागवानी।
अंगोले लोल डोलं एक बोलं अमोलं।
पुष्फांजलि पंग सिर नाइ जयति बिअ कामदेव॥

और किसी प्रकार पत्र-क्षति के कारण जब इस छन्द के कुछ अंश त्रुटित हो गए, 'रासउ रसाल' तथा 'लघु पाठ' (अ० फ०) की प्रतियो में इसका त्रुटित पाठ हो उतरा। तदनंतर छन्द का रूप तथा आशय पूरा स्पष्ट न होने के कारण 'रासउ रसाल' मे इसे 'वार्त्ता' कह कर 'पात्र नाम' का शीर्षक दे दिया गया, जब कि 'लघु पाठ' की प्रतियों मे इसे यथावत् रहने दिया गया, केवल 'लघु पाठ' की उपर्युक्त

[1] धा० १८४ के पूर्व; स० ६१.८४४।

[2] भा० ९. साट० ३।

[3] म० १०.४०८; यह प्रति पूना के भांडार ओरिएंटल रिसर्च इस्टीट्यूट की संख्या १४५५ [१८८१-९५] (उपर्युक्त म०) है।

अपवाद वाली प्रति (म०) के आदर्श मे त्रुटित पाठ को प्रक्षेप करके एक भिन्न छन्द के रूप में पूरा कर लिया गया।

(२) 'रासउ रसाल' मे एक—निम्नलिखित में से प्रथम—तथा 'लघु पाठ' की समस्त प्रतियों (अ० फ०) मे निम्नलिखित दो छन्द 'मध्यम' (ना०) तथा 'बृहद्' पाठ (शा० उ० स०) मे मिलनेवाली 'दिल्ली किल्ली कथा' के ऐसे है जो उस कथा के अन्य छन्दों के अभाव में बिलकुल बेतुके लगते है।[1] इन छन्दो मे जगजोति व्यास ने अनगपाल से [दिल्ली की] कीली को ढीली कर देने का भावी दुष्परिणाम घोषित किया है :—

अनंगपाल चक्कवै बुद्ध जो इमी उकिल्लिय।
भयौ तुअर मतिहीन करी तिल्लीय तै ढिल्लिय।
कहै व्यास जगजोति अगम आगम हौ जानां।
तूअर तै चहुआन अंत ह्वै हैं तुरकानां।
तूंअर सु अवट्टि मंडव धरह इक्क राय बलि विक्कवै।
नवसत्त अन्त मेवात पति इक्क छत्त महि चक्कवै॥ (धा० २७=स० ३.२६)
सोरै सै सत्योत्तरै विक्रम साक वदीत।
ढिल्ली धर मेवातपति लैहि षग्ग बल जीत॥
(अ० २. दो० २=स० ३.४४)

यह जगजोति व्यास कौन था, दिल्ली की वह कीली अनंगपाल ने क्यों और कैसे ढीली की—आदि बातो का इनमे कोई उल्लेख नहीं होता है। अतः ऐसा लगता है कि 'लघु पाठ' (अ० फ०) के आदर्श के इस प्रकरण मे बुरी तरह से खण्डित हो जाने के कारण 'लघु पाठ' की प्रतियाँ (अ० फ०) मे केवल दो छन्द आ पाए और 'रासउ रसाल' मे इनमे से भी एक ही लिया गया।

इन दो पाठ-त्रुटियो मे से कोई भी 'बृहद् पाठ' (शा० उ० स०) नही आती है और 'मध्यम पाठ' (ना०) मे केवल प्रथम आती है, दूसरी नहीं, अतः इन पाठ-त्रुटियो से यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'रासउ रसाल' का संकलन 'लघु पाठ' (अ० फ०) से किया गया है, 'मध्यम' (ना०) या 'बृहद्' (शा० उ० स०) से नही।

यह 'लघुतम रूपान्तर' (धा० मो०) प्रक्षेपो से भी शून्य नही है। इसका एक प्रक्षेप तो अति प्रकट है। 'पृथ्वीराज रासो' के 'षट ऋतु वर्णन' के छन्द[2] संयोगिता के साथ पृथ्वीराज के दिल्ली-आगमन के अनन्तर के नवदंपति के संभोग शृंगार के है, यह भली भाँति प्रमाणित है, क्योकि इनमे से एक छन्द मे 'संयोग भोगायते' शब्दावली आती है,[3] और 'सयोगी' ग्रन्थ भर मे सयोगिता के लिए आया है। किन्तु धा० और मो० मे यह छन्दावली पृथ्वीराज के कन्नौज-प्रयाण के पूर्व आती है, और मो० मे यहाँ तक कथा गढ़ ली गई है कि पृथ्वीराज की छः रानियाँ है जो कन्नौज-प्रयाण से उसे कम से कम एक वर्ष तक—प्रत्येक अलग-अलग एक-एक ऋतु की रमणीयता की ओर उसका ध्यान दिलाते हुए—रोक लेती है। इस प्रसंग मे विचारणीय यह है कि 'पृथ्वीराज रासो' के समस्त पाठो मे इस ऋतु-वर्णन के बहुत पूर्व यह कहा जा चुका है कि जयचंद के राजसूय यज्ञ और उसके साथ ही होने वाले संयोगिता के

[1] धा० २७; अ० २. कवि० ६ तथा २. दो० २ आ; स० ३.२६ तथा ३.४४।

[2] धा० १०७-११२, अ० १३. साट० २-साट० ७; स० ६१.९; ६१.१८; ६१.२७; ६१.३९; ६१.४९; ६१.६२।

[3] अ० १३. साट० २; स० ६१.९, धा० १०७ [धा० में यह शब्दावली छूटी हुई है, किन्तु मो० में है]।

स्वयंवर के लिए एक विशिष्ट योग युक्त मुहूर्त निश्चित हो गया और उस मुहूर्त को ध्यान मे रखते हुए पृथ्वीराज ने कन्नौज पर चढ़ाई कर दी :—

'हैयंवर सग अरु जग्गु काज।
विद्वज्जन बुलि दिनधरहु आज ॥[1]
रवि जोग पुष्य ससि तीय धाम।
दिन धरिग देइ पंचमि प्रमान ॥[2]
पर उछह देखित भयो मलान।
विग्रहन देस चढ़ि चाहुवान ॥

अतः यह प्रकरण न केवल सर्वथा असंगत है, यह कल्पना भी कि उक्त मुहूर्त के साल भर आगे-पीछे तक पृथ्वीराज जयचन्द के यज्ञ-विध्वस और सयोगिता के अपहरण के लिए कन्नौज [illegible] सकता था, नितान्त हास्यास्पद है।

यह अवश्य है कि वे गद्य-वार्त्ताएँ जो मो० मे विभिन्न रानियो का इस प्रसग मे उल्लेख करती हैं धा० मे नही है, किन्तु गद्य-वार्त्ताओ के विषय मे, जैसा ऊपर कहा है, इन प्रतियो के प्रतिलिपिकार बहुत साग्रह नही ज्ञात होते है, क्योकि दोनो मे ऐसी अनेक गद्य-वार्त्ताएँ आती है जो एक मे हैं तो दूसरी मे नहीं है, इसलिए दोनो के इस पाठातर पर अधिक बल नही दिया जा सकता।

फलतः (१) 'लघुतम रूपान्तर' की दोनो प्राप्त प्रतियाँ (धा० मो०) 'पृथ्वीराज रासो' के एक छन्द-चयन मात्र की प्रतियाँ है,

(२) यह छन्द-चयन 'पृथ्वीराज रासो' के 'लघु पाठ' (अ० फ०) से किया गया है, तथा

(३) छन्द-चयन के अनन्तर भी इस पाठ (धा० मो०) मे प्रक्षेप किया गया है।

इसलिए इस पाठ (धा० मो०) को 'पृथ्वीराज रासो' का 'लघुतम पाठ' या उन्ही अर्थो मे 'लघुतम रूपान्तर' कहना और यह समझना कि इसे 'पृथ्वीराज रासो' का मूल—या कम से कम प्राचीनतम—पाठ माना जा सकता है, ठीक नही है।

किन्तु इधर और अधिक अध्ययन करने पर उक्त लेख मे उठाई गई शंकाओ मे से कुछ के किंचित् भिन्न समाधान मुझे स्वयं मिले, जिनका उल्लेख यथाक्रम नीचे किया जा रहा है।

धा० पाठ का अंतिम दोहा तथा उसकी पुष्पिका मे दिया हुआ रचना का "प्रिथीराज चहुआण रासु (=रासउ) रसाल" नाम किसी भी अन्य प्रति मे—मो० तक मे—नहीं मिलते हैं। धा० के इस अन्तिम दोहे के स्थान पर जो छन्द समस्त पूर्ण पाठ की प्रतियों मे समान रूप से मिलता है, वह [मो० के अनुसार] निम्नलिखित है :—

मरन चंद बरदीआ राजधुनि साह हन्युं (=हन्यउ) सुनि।
पुष्पांजलि असमांन सीस छोडि (=छोडी) त देवतनि।
मेच्छ अवध्धित धरणि धरणि नव त्रीय सुहसिग।
तिनहि तिही सं योति (=जोति) योति (=जोति) योतिहि (=जोतिह) संपत्तिग।
रासु (=रासउ) असंभु नवरस सरस चद्दु चंदु (छन्दु ?) कीअ अमीअ सम।
श्रृंगार वीर करुण विभछु (विभछु ?) भअ रुद सूत (संत ?) हसंत शम (सम) ॥

धा० के उक्त अन्तिम दोहे का भाव प्रायः वही है जो इस छन्द का है, दोहे की प्रथम पक्ति की शब्दावली तक इस छन्द की भी प्रथम पक्ति मे मिलती है : दोहे के 'मरण', 'चंद' तथा 'नरिंद' इस

[1] धा० ३३; अ० ६. पद्य० २ : स० ४८. ७१।
[2] धा० ३६; अ० ६. पद्य० ४; स० ४८. ९९-१०० तथा ४८. १२७।

छन्द की प्रथम पंक्ति मे मिलते ही है—केवल दोहे के 'नरिंद' के स्थान पर छन्द में उसका पर्याय 'राज' शब्द आता है; दोहे की दूसरी पंक्ति का पूर्वार्द्ध भी इस छन्द की अन्तिम पंक्ति के पूर्वार्द्ध के रूप में मिलता है, केवल दोहे के 'रसाल' के स्थान पर छन्द मे 'असंभु' तथा उसके 'निबंधि' के स्थान पर इसमें 'सरस' शब्द आते है। ऐसा लगता है कि धा० के किसी पूर्वज मे उसके अन्तिम पत्र के क्षत-विक्षेत होने के कारण छन्द इस प्रकार त्रुटित हो गया था कि उसके प्रथम चरण के 'मरन चन्द वरदिआ राज' तथा पंचम चरण के 'रासउ असभु नवरस' मात्र शेष रहे गये थे और इन्ही से, कुछ घटा-बढ़ा कर, सार्थक पाठ देने की दृष्टि से धा० पाठ का उक्त दोहा बना लिया गया, क्योकि इतने बड़े और सुनियोजित काव्य का उपसहार मूल मे 'रासउ रसाल नवरस निबधि अचरिज इदु फणिद' मात्र शब्दो के द्वारा हुआ हो, कथा-नायक पृथ्वीराज का मरण एक अति सामान्य घटना के रूप में 'मरणहु चन्द नरिंद' शब्दो से उल्लिखित मात्र हुआ हो, और गोरी के बध पर कवि ने कोई टिप्पणी उसमे न की हो यह भी सम्भव नही ज्ञात होते हैं। धा० का पाठ प्रक्षेप मुक्त नहीं है, यह जैसा हमने ऊपर देखा है त्रुटित उक्त-श्रृखलाओं से प्रमाणित है, इसलिए इस समाधान के सम्बन्ध मे शंका के लिए कोई कारण न होना चाहिए।

पुष्पिका मे आए हुए 'रसाल' शब्द का समाधान भी उपर्युक्त ही ज्ञात होता है। धा० के किसी पूर्वज आदर्श मे उसके अंतिम पत्रे के क्षत-विक्षत हो जाने के कारण यदि पुष्पिका निकल गई हो और प्रतिलिपि-परम्पराओ मे कही वह भी उपर्युक्त दोहे की भाँति गढ़ ली गई हो तो कुछ आश्चर्य नही।

जहाँ तक 'रसाल' के 'चयन' या 'संग्रह' ग्रन्थ के लिए प्रयुक्त होने की बात है, वह अपनी जगह पर ठीक लगती है, किन्तु दोहे में 'रसाल' शब्द 'नवरस' के प्रसंग में 'रसपूर्ण' के अर्थ में यदि प्रयुक्त हुआ हो, और उसी से वह उस दोहे के साथ गढ़ी गई पुष्पिका मे भी आ गया हो तो असम्भव नही है।

धा० की प्रसंग-त्रुटियो के जो उल्लेख किए गए है, उनमें से प्रथम और द्वितीय 'द्रव्य प्राप्ति' और 'दिल्ली दान' प्रकरणो की है। विवेचन की सुविधा के लिये इन्ही के साथ धा० की उस प्रसंग-त्रुटि को भी लेना होगा जिसका उल्लेख उक्त लेख मे धा० मो० तथा अ० फ० की सामान्य प्रसंग-त्रुटि के रूप मे बाद मे किया गया है, जो 'ढिल्ली किल्ली' प्रकरण की है और उपर्युक्त दोनों के बीच में पड़ती है। ये छन्द ऐसा लगता है कि पहले धा० परम्परा के पूर्वागत पाठ मे नहीं थे, पीछे पाठमिश्रण के द्वारा उसमे आए : उक्त अन्य प्रति में ये छन्द एक ही प्रकरण के रूप मे या एक साथ पृथ्वीराज के 'वंशोत्पति प्रकरण' के बाद दिए हुये थे, और उससे मिलान करने पर मिलान करने वाले को जब यह दिखाई पड़ा कि धा० के उसको उपलब्ध पूर्वज मे ये नही हैं, उसने इन्हे धा० के उक्त पूर्वज में रख लिया। पुन ऐसा लगता है कि यह अन्य प्रति अथवा इसका कोई पूर्वज किसी ऐसे पाठ के छन्द-चयन के द्वारा तैयार किया गया था जिसमे ये समस्त छन्द एक ही प्रकरण मे आते थे। ऊपर हमने देखा है कि म० में उसके दूसरे खण्ड 'अर्बुद खण्ड' के बाद ही बिना किसी अथ-इति के कुछ छन्द आते है जो अ० फ० में उपर्युक्त दूसरे खण्ड मे पूर्ण रूप से सम्मिलित कर लिये गये हैं: अ० फ० में न केवल म० की निम्नलिखित 'अर्बुद खण्ड' विषयक पुष्पिका नहीं रह गई है :—

"इति श्री कवि चन्द विरचिते श्री प्रथीराज रासके अर्बुद खण्ड दुतीयर[२] ॥

इन अतिरिक्त छन्दो की क्रम संख्या भी उसी क्रम मे कर दी गई है जिसमे पर्ववर्त्ती छन्द आते हैं। धा० २५, २६ इस अंश के प्रारम्भ के हैं, धा० २७ इस अंश के मध्य का है और धा० २८, २९ तथा ३० इस अंश केअन्त के है। धा० २६ ऊपर दिया जा चुका है, धा० २५ निम्नलिखित है :—

राजजं अजमेर वेलि कविलं त्रितां रता संभरी।
दुद्धारा भर भार नीर वहनो दहनो दुरम्रं अरी।

सोमेसो सुर नद वद गहिला वहिलावन वासिनं।
निरमानं विवनान जानि कविता दिल्लीपुर भासिनं ॥

धा० २७, २८ तथा २९ भी उद्धृत है। धा० ३० निम्नलिखित है :—

एका दस सय पच दह विक्कम साकु अनन्द ।
तिहि पुर रिपुजय हरण भयो प्रिथिराज नरिन्द ॥

अत: उक्त पाठ-चयन की प्रति यदि म० अथवा अ० फ० परम्परा की किसी प्रति से तैयार की गई हो तो आश्चर्य न होगा। यहाँ पर यह शंका अवश्य उठाई जा सकती है कि छन्द-चयन की यह परम्परा विचित्र सी लगती है, किन्तु इस प्रकार की एक परम्परा के प्रमाण 'पृथ्वीराज रासो' के ही पाठों मे मिलते हैं। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की दो प्रतियाँ इसी प्रकार की है—वे है टॉड संग्रह की प्रति संख्या १६० तथा १६१।[1] इन दोनों मे छन्द-सकलन मनमाने ढग से किया गया है—

उक्त सग्रह की १६० संख्यक प्रति के प्रथम खण्ड मे, जिसे 'आदि पर्व' कहा गया है, केवल दस रूपक हैं और ये दस रूपक ठीक-ठीक वे ही है जो शा० उ० स० के प्रथम दस है। प्रथम चार रूपको तक आदि देव, धर्म, कर्म तथा मुक्ति की स्तुति है, पाँचवे रूपक मे पूर्ववर्ती कवियो की स्तुति है, जिसमे चंद द्वारा अपनी रचना को उनका 'उच्छिष्ट' कहा गया है, रूपक ६ तथा ७ मे उसके 'उच्छिष्ट' कहने पर चंद की स्त्री शका करती है, रूपक ८ मे चद उसका समाधान करता है, रूपक ९ मे वह पुन: उसी सम्बन्ध मे शका करती है, और रूपक १० मे चद उसका समाधान करता है; यही पर 'आदि पर्व' की 'इति' की जाती है। ग्रन्थ का विषय क्या है और किस प्रकार उसके रचयिता को ग्रन्थ-रचना के लिए प्रेरणा मिली, यह सब कुछ नही कहा जाता है। इस प्रकार प्रकट है कि इस पाठ मे खण्ड के प्रारम्भ के ही रूपक देकर उसकी इति दे दी गई है।

द्वितीय खण्ड मे भी उस पाठ के उस खण्ड के केवल प्रारम्भ के तीन रूपक है और वे उसी क्रम मे दिए है जिस क्रम मे वे शा० उ० स० मे मिलते है, तीसरा रूपक तो पूरा दिया भी नही गया है जिससे कृष्ण कथा तक भी पूरी नही हो पाई है, और स० २. ५७ पर खण्ड समाप्त कर दिया जाता है यद्यपि पुष्पिका मे खण्ड को 'दशावतार वर्णन खण्ड' कहा जाता है। किन्तु इसीलिए नवे तथा दसवे अवतारो का नामोल्लेख तक नही हो पाता है।

तृतीय खण्ड मे 'ढिल्ली कीली' कथा है। इस खण्ड के प्रथम २० रूपक वे ही है जो शा० उ० स० के इस खण्ड के हैं और ठीक उसी क्रम मे भी हैं। बीसवे रूपक मे कीली को दोबारा शुभ मुहूर्त मे गाड़ने का उल्लेख होता है और उसके अनन्तर ही खण्ड का ३१वा रूपक (स० ३.४४)—जो बीच का एक रूपक है और जिसमे सं० १६०७ मे मेवातपति के द्वारा दिल्ली की धरा के जीते जाने की भविष्यवाणी है—दे दिया जाता है। यह भविष्यवाणी किसने की, क्यो की, आदि के सम्बन्ध का कोई विवरण नहीं है। यही पर खण्ड की 'इति' दे दी जाती है।

चौथा खण्ड 'कन्हपट्टी समय' है जो उस पाठ मे पाँचवाँ है। इसमे खण्ड के प्रारम्भ के १६ रूपक शा० उ० स० पाठ के अनुसार ही आते है, जिनमे प्रताप सी के पृथ्वीराज की सभा मे आने तक की कथा आती है; आगे क्यो कन्ह ने उसे मार डाला और इस पर किस प्रकार रुष्ट होकर पृथ्वीराज ने उसकी आँखों पर पट्टी बँधने का दण्ड दिया, जो कथा का सबसे आवश्यक भाग है, नही आता है।

इस प्रति का पाँचवाँ खण्ड 'लोहाना आजान बाहु समय' है जो उस पाठ का चौथा खण्ड है। अपवाद-स्वरूप यह खण्ड पूरा है और शा० उ० स० के खण्ड के समान है।

[1] इन प्रतियों के माइक्रोफिल्म प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हैं।

प्रति के शेष खण्डों की दशा वही है जो इन पाँच खण्डों की बताई गई है। कहने को इसमें शा० उ० स० पाठ के प्रायः समस्त खण्ड है, किन्तु है यह छन्द-संकलन मात्र, पूर्ण पाठ नहीं है।

टॉड सग्रह की १६१ सख्यक प्रति प्रथम खण्ड में द० के पाठ का अनुसरण करती है और तदनन्तर ना० परिवार की किसी प्रति के पाठ का।

इसके प्रथम खण्ड के रूपक ३५ (स० १ ११२) तक परीक्षित को सर्पदशन से मृत्यु का शाप मिलने तक की कथा आती है, जो कि पिंगल कर्त्ता नाग के अवतार प्रसग मे कही गई है।' किन्तु इसी रूपक के अनन्तर 'इति ढुढा राकस कथा' उल्लेख मिलता है, जिससे यह प्रकट है कि बीच के अनेक छन्द, जिनमे ढुढा राकस की कथा तक पृथ्वीराज के पूर्वजों की कथा आती थी, छोड़ कर उस कथा की 'इति' मात्र दे दी गई है।

इसके अनन्तर वीसलदेव के छत्र धारण करने से कथा फिर चलती है—यह प्रति के आदर्श का रूपक ९७ (स० १ ३४०) है, और बीसल की कथा भी पूरी नहीं हो पाती कि प्रथम खण्ड समाप्त कर दिया जाता है; पृथ्वीराज के शेष पूर्वजों तथा उसके जन्म आदि की कथा छोड़ दी जाती है, यद्यपि इस खण्ड की पुष्पिका है "इति .. अर्बद उतपति चहुआन उतप्तो ढुढा उतपती प्रीथीराज जन्म नाम कथा प्रथम खण्ड समाप्त।"

इसके बाद 'दशावतार वर्णन खण्ड' आता है, किन्तु कथा वाराह अवतार तक (स० २.१५८) ही आकर रुक जाती है, राम तथा कृष्ण अवतारों तक की कथा नहीं आती है। किन्तु तदनन्तर पुनः अनेक छन्द और कोई खण्ड भी छोड़कर इति 'ढोली कीली कथा' की दी जाती है।

इसके अनन्तर 'अथ हुसेन कथा' लिखकर वह कथा दी जाती है जो स० के खण्ड ११ मे आती है, किन्तु स० ११.२५ तक के ही छन्द आते हैं, जिनमे किस प्रकार अरब खा से शहाबुद्दीन गोरी को चित्ररेखा मिलती है, यहा तक भी कथा पूरी नहीं कही जाती है और इति 'चित्ररेखा पात्र कथा' को दे दी जाती है।

यही दशा प्रति के अन्य खण्डों के पाठ की भी है, यद्यपि प्रति पूर्ण है और 'बाणवेध खण्ड' तक के छन्द इसमे आते हैं।

इन दो उदाहरणो से यह प्रकट है कि रचना की कुछ ऐसी प्रतियाँ भी तैयार की जाती थीं जिनमे प्रत्येक खण्ड के कुछ छन्द रख लिए जाते थे। किसलिए ऐसा होता था, यह एक भिन्न प्रश्न है, जिस पर विचार करना यहा आवश्यक नहीं है।

धा० मो० की प्रसंग-त्रुटियों मे से वे जो लेख मे सख्या (३) पर दी गई हैं, अ० फ० के खण्ड ३, ४, ५ से सम्बन्धित हैं। अ० फ० खण्ड ३ मे जयचन्द तथा सयोगता का पूर्व-परिचय है; खण्ड ४ मे पृथ्वीराज-गोरी युद्ध है, और खण्ड ५ मे पृथ्वीराज-भीम चौलुक्य युद्ध है।

जहाँ तक खण्ड ३ की बात है उसमे, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, विजयपाल की दिग्विजय मे (अ० ३. नारा० १, दो० २, दो० ३) भी उन मे से अनेक देशों का उल्लेख होता है जिनका पीछे जयचन्द की विजयो मे (अ० ६. साट० २, ९ भुज० ३ = क्रमशः धा० ४८, १६१) हुआ है, यथा : तिरहुत, गुड, तिल्लिग, गोवाल-कुड कर्णाट और गूर्जर।

जहाँ तक खण्ड ४ तथा ५ की बात है, ऊपर हम देख चुके है कि जिन सामंतों के उल्लेख इनमें वर्णित युद्धों मे होते है, उनसे सर्वथा भिन्न सामंतो को पीछे (अ० ७. त्रो० २ = धा० ८०) को इन युद्धों मे विजय का श्रेय दिया जाता है। इससे प्रकट है कि अ० के खण्ड ४ तथा ५ की कल्पना अ० ७. त्रोट० २ = धा० ८० की रचना के भी बाद—जो स्वत : एक प्रक्षेप प्रतीत होता है जैसा हम आगे देखेंगे—किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा की गई जिसका ध्यान कैंवास-वध प्रकरण के इस छन्द पर नहीं गया था।

धा० मो० की प्रसंग-त्रुटियों में से वे जो लेख में संख्या (४) पर बताई गई हैं, संयोगिता के पृथ्वीराज-प्रेम विषयक उसके और उसकी सखी के बीच हुए संवाद से सम्बन्धित हैं। अन्य प्रतियों में इस प्रसंग में धा० मो० के अतिरिक्त जो छन्द आते हैं, उन पर विचार करना आवश्यक है। धा० ४६ तथा धा० ४७ के बीच धा० मो० के अतिरिक्त समस्त प्रतियों में एक ही छन्द आता है, जो निम्नलिखित है:—

अथवा राजन राजगृह अथवा माइ लुहानि।
विधि बंधिय पट्टल सिरह मुप कहि मंदौ जानि॥ (अ० ६. दो० ६)

अर्थात् संयोगिता ने कहा, "चाहे वह (पृथ्वीराज) राजन्य और राजगृह में [उत्पन्न] हो चाहे, हे सखी, वह लुहान (लघु या हीन) हो, जो कुछ भी विधाता ने सिर (भाग्य) के पट्ट पर बाँध दिया, [उसके सम्बन्ध में] मुख से कुछ कह कर तुम मानो मद (बुरा) करती हो।"

इस कथन का भाग्यवाद बाद में आए हुये छन्द धा० ४७ के पृथ्वीराज-स्तवन के विरुद्ध पड़ता है, जिसमें संयोगिता ने पृथ्वीराज को एक पराक्रमी वीर बताया है, जिसने अनेक देशों पर विजय प्राप्त की है।

धा० ४७ तथा धा० ४८ के बीच केवल अ० फ० में तीन छन्द आते हैं, जो अन्य समस्त प्रतियों में इनके बहुत पूर्व आते हैं; ये छन्द पूर्ववर्ती वर्णन के हैं भी, संवाद के नहीं हैं। इनका वही स्थान सम्भव है जो इनका अ० फ० के अतिरिक्त प्रतियों में है। इस प्रकार वास्तव में धा० ४७ तथा धा० ४८ के बीच कोई छन्द किसी भी प्रति में नहीं आते हैं। धा० ४८ तथा धा० ५२ के बीच अ० में भी वे ही छन्द आते हैं जो धा० मो० में हैं। धा० ५२ तथा धा० ५३ के बीच धा० मो० के अतिरिक्त सभी प्रतियों में निम्नलिखित दो दोहे आते हैं:—

तुव सम मात न तात तन गात सु रतरियाइं।
जुव्वनु धन अथ्थिर रहै अंभु कि अजुरियाइं॥ (अ० ६. दो० ९)
ताहि अनुग्रह तुम करहु जौ तुम सषी समान।
हौं लज्जा करि का कहौं तुम मो तात प्रमान॥ (अ० ६. दो० १०)

इनमें से प्रथम ही पूर्णत सङ्गत और सुनिर्मित है: सखी ने धा० ५२ में यौवन की जिस महत्ता का प्रतिपादन किया है, उसका अच्छा उत्तर इस दोहे में है, और इसकी आवश्यकता है, क्योंकि अन्यथा, जैसा लेख में कहा गया है, संयोगिता सखी के उक्त कथन को सुन कर निरुत्तर रहती है। दूसरा दोहा अवश्य अनावश्यक ही नहीं प्रक्षिप्त भी लगता है: सखी से अनुग्रह न करने का जो अनुरोध संयोगिता करती है, और फिर उसे "तात (पिता?) समान" कहती है, ये दोनों बातें एक असमर्थ प्रक्षेपकार के प्रयास की ओर स्पष्ट संकेत करती है।

धा० ५३ और ५४ के बीच केवल अ० फ० में दो छन्द आते है, जो संवाद के नहीं हो सकते हैं। ये दोनों छन्द अन्य समस्त प्रतियों में संवाद से कुछ पहले आते हैं और वहीं संगत हो सकते हैं।

इस प्रकार (४) संख्यक प्रसंग त्रुटियों में एक मात्र धा० ५२ तथा ५३ के बीच की प्रसंग-त्रुटि मान्य लगती है, किन्तु उनके बीच में आया हुआ केवल अ० ६. दो० ९ प्रसंगसम्मत है, दूसरा स्पष्ट प्रक्षेप लगता है।

(५) संख्यक प्रसंग-त्रुटि योद्धाओं की उस नामावली के अभाव के विषय की है जो पृथ्वीराज के साथ कन्नौज जाते हैं और कन्नौज-युद्ध में उसके साथ भाग लेते हैं। किन्तु ऊपर दिखाया जा चुका है कि इस नामावली में ऐसे अनेक नाम आते हैं जिनका तदनन्तर कोई उल्लेख नहीं होता है, न जिनके सम्बन्ध में यही कहा जाता है कि वे कन्नौज-युद्ध में मारे गए अथवा वे पृथ्वीराज के साथ दिल्ली लौटे (अ० १२, पद्ध० ३)। अतः यह नामावली भी प्रक्षिप्त लगती है।

इस प्रकार धा० तथा मो० पाठों की जो प्रसंग-त्रुटियाँ लेख में (३), (४), (५), (६)

संख्याओं पर ही दी गई हैं, उनमें से एक ही—जो यौवन की महत्ता विषयक कथोपकथन से सम्बन्धित है—वास्तव में प्रसंग-त्रुटि है, शेष के स्थान पर जो छन्द धा० मो० के अतिरिक्त प्रतियों से मिलते हैं, वे प्रसंग-सम्मत नहीं हैं और प्रक्षिप्त लगते हैं।

जहाँ तक धा० मो० में पाई जाने वाली नर्तकियो की नामावली विषयक छन्द की उस पाठ-त्रुटि की बात है, जो अ० फ० मे भी पाई जाती है, वह सक्षेप-सम्बन्ध के कारण ही नहीं, अन्य प्रकार से भी धा० मो० के अ० फ० सबन्धित होने पर, आ सकती थी।

उक्त लेख मे धा० मो० के प्रक्षेपों की जो बात कही गई है, वह ठीक है और उनमे पाई जाने वाली उक्ति-शृंखला सम्बन्धी त्रुटियों से और भी पुष्ट हुई है।

अतः उक्त लेख मे प्रस्तुत किए गए परिणामों को अब संशोधित रूप मे इस प्रकार रखना अधिक उचित होगा—

(१) 'लघुतम पाठ' की दोनों (प्रतियाँ) प्राप्त धा० तथा मो० मूलतः किसी पूर्ण पाठ की प्रतियाँ थी किन्तु बाद में उस मे कुछ छन्द एक ऐसी प्रति से लेकर मिला लिए गए जो ग्रन्थ के छन्द-चयन के किसी पाठ की थी;

(२) इस अन्य प्रति का छन्द-चयन रचना के 'लघु पाठ' की म० या अ० फ० जैसी किसी प्रति से किया गया था।

(३) धा० तथा मो० के पाठों मे प्रक्षेपो का भी अभाव नही हैं।

(४) फिर भी, धा० तथा मो० के पाठ समस्त प्राप्त पाठों मे से मूल के सबसे अधिक निकट पहुँचते हैं।

अब प्रश्न धा० और मो० के पाठो के बीच शेष रहा। दोनो मे अन्तर अधिक नही है : फिर भी मो० मे ऐसे छन्द हैं जो प्रक्षेप-पूर्ण पाठ-वृद्धि के परिणाम हैं और धा० मे नहीं हैं। उदाहरणार्थ : आबू-राज सलष कन्नौज के युद्ध मे लड़ता हुआ मारा जा चुका है (मो० ३५०=धा० २९९, मो० ३५१=धा० ३०१), उसका पुत्र जैत भी 'आबूपति' होकर गोरी-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हो चुका है (मो० ४५४=धा० ३६२), फिर भी मो० मे सलष को गोरी-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में सम्मिलित किया गया है (मो० ४५६, ४५७, ४५८, ४५९)। धा० मे यह उल्लेख-वैषम्य नहीं है; इसके अरिरिक्त ऐसे कोई भी उल्लेख-वैषम्य नहीं है जो धा० मे हो और मो० मे न हो। और, यह कहा जा चुका है कि धा० के प्रायः सभी छन्द मो० मे आते हैं। अतः यह सुगमता से जाना जा सकता है कि धा० स्थूल रूप मे मो० की तुलना में एक पूर्वतर स्थिति का पाठ देती है।

फिर भी हम ऊपर देख चुके हैं कि धा० का पाठ सर्वथा मूल का नहीं हो सकता है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि आकार-प्रकार मे वह मूल के सबसे अधिक निकट है एव उत्तरोत्तर उससे बड़े पाठ मूल से उत्तरोत्तर दूर और दूरतर होते गए हैं।

—:*:—

३. पृथ्वीराज रासो
का
मूल रूप (आकार)

हम देख चुके है कि धा० पाठ भी रचना के मूल आकार मे सुरक्षित नही है, यद्यपि वह मूल के निकटतम प्रमाणित होता है, अतः रचना का मूल आकार निर्धारित करने की आवश्यकता बनी रही जाती है। प्रश्न यह है कि वह किस प्रकार निर्धारित हो सकता है। किसी लेखक की अपनी प्रति अथवा उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि के अभाव मे उसकी रचना का मूल रूप तभी सुगमता से निर्धारित हो सकता है जबकि उसकी दो या अधिक ऐसी प्रतियाँ उपलब्ध हो जो परस्पर विकृति-सम्बन्ध से सम्बन्धित न हो, अर्थात् जो अलग-अलग प्रतिलिपि परम्पराओ की हो। किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' की ऐसी कोई भी दो प्रतियाँ उपलब्ध नही है। उदाहरण के लिये जिन छन्दो के द्वारा ऊपर उल्लिखित निम्नलिखित छन्द-शृंखलाये त्रुटित होती है, वे सभी प्रतियो मे समान रूप से पाये जाते है :—

(१) धा० ६८ तथा ७० के बीच,
(२) धा० १४२ तथा १४६ के बीच,
(३) धा० १९३ तथा १९५ के बीच, और
(४) धा० २९० तथा २९३ के बीच।

प्रश्न यह है कि ऐसी स्थिति मे रचना के मूल आकार तक पहुँचना किस प्रकार सम्भव है। इसकी एक मात्र व्यावहारिक विधि यही प्रतीत होती है कि मूल के निकटतम प्राप्त पाठ धा० से किसी प्रकार से प्रक्षेपो को अलग किया जाये; और इस दृष्टि से हम निम्नलिखित उपायो का अवलंबन कर सकते है :—

(१) ऊपर हम देख चुके है कि रचना मे अनेक स्थलो पर उक्ति-शृंखला मिलती है, धा० के जो छन्द या वार्तायें इन शृंखलाओ को अतिक्रात करते हो, उन्हे बिना इसके विपरीत प्रमाण के मिले प्रक्षिप्त मान लेना चाहिये।

(२) ऊपर हम यह भी देख चुके है कि रचना मे अनेक स्थलो पर छन्द-शृंखला मिलती है, धा० के जो छन्द या वार्तायें इन शृंखलाओ का अति क्रमण करती हों, उन्हे भी बिना इसके विपरीत प्रमाण के मिले प्रक्षिप्त मान लेना चाहिए।

(३) धा० में जहाँ पर दो छन्द एक ही वृत्त—या लगभग एक ही वृत्त—के हो और उनकी शब्दावली और उनके अर्थो मे इतना ही अन्तर हो जितना 'पाठातर' मे हो सकता है, वहाँ पर दो मे से एक ही छन्द को स्वीकार करना चाहिए।

(४) धा० के जो छन्द शेष अन्य प्रतियो मे न मिलते हो, बिना विपरीत प्रमाण के मिले उन्हे प्रक्षिप्त मान लेना चाहिए।

(५) धा० के जो छन्द या छन्दांश किसी भी प्रति मे किसी भी छन्द या छन्दांश की पुनरावृत्तियों के बीच मे आते हो, उन्हे विपरीत प्रमाण के अभाव मे प्रक्षिप्त मान लेना चाहिये। अन्तिम के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से हमे समझ लेना चाहिए।

किसी भी पहले से प्रस्तुत प्रतिलिपि के पाठ मे जब पाठ-वृद्धि की जाती है, तब यथास्थान हंस पद बनाकर या तो पाठ-वृद्धि का अंश हाशिए में लिख दिया जाता है और या तो—यदि वह अंश कुछ बड़ा हुआ—अलग कागज पर लिख कर उस प्रति मे रख दिया जाता है। हंस पद कभी-कभी भूल से नहीं बनाया जाता है, हाशिए मे लेख यो ही लिख दिया जाता है, अथवा उक्त संशोधित प्रति से प्रतिलिपि करने वाले का ध्यान हंस पद पर नही जाता है। इसके अतिरिक्त, हाशिया कम ही चौड़ा होता है, जिससे एक छोटे से छन्द का भी लेख उसमे किसी एक ही पंक्ति के सामने समाप्त न होकर कई पंक्तियों के सामने लिखा जाकर पूरा होता है। परिणाम यह होता है कि यदि हंसपद न बनाया गया अथवा उसपर प्रतिलिपिकार का ध्यान न गया, तो हाशिए के उक्त लेख के सामने पड़ने वाला छन्द या छन्दांश प्रतिलिपि मे कभी-कभी दो बार लिख उठता है : एक बार तो उक्त बढाये गये लेख के पूर्व और पुनः उक्त लेख के अनन्तर। अतः छन्दो की पुनरावृत्तियो के बीच आने वाले अंशो के बाद मे बढ़ाए हुए होने की संभावना बहुत होती है।

(६) धा० के जो छन्द किसी भी प्रति के छन्दों की क्रम-संख्या मे व्यवधान उपस्थित करते हो, उन्हे विपरीत प्रमाण के अभाव मे प्रक्षिप्त मान लेना चाहिए।

आगे इन्हीं उपायो की सहायता से धा० के प्रक्षिप्त छन्दो का निर्धारण किया जा रहा है।

उक्ति-शृंखला का अतिक्रमण

धा० मे निम्नलिखित स्थलो पर उक्ति शृंखला का अतिक्रमण मिलता है :—

(१) धा० ६८ तथा ७० के बीच, (२) धा० १२१ तथा १२२ के बीच;
(३) धा० १२९ तथा १३० के बीच, (४) धा० १४२ तथा १४६ के बीच;
(५) धा० १८६ तथा १८७ के बीच, (६) धा० १९२ तथा १९३ के बीच,
(७) धा० १९३ तथा १९५ के बीच, (८) धा० २४२ तथा २४४ के बीच;
(९) धा० २६९ तथा २७० के बीच, (१०) धा० २९० तथा २९३ के बीच,
(११) धा० ३५८ तथा ३६० के बीच, (१२) धा० ३८१ तथा ३८२ के बीच, तथा
(१३) धा० ४२० तथा ४२२ के बीच।

नीचे आवश्यक अंश उद्धृत करते हुए अन्तर्साक्ष्य की दृष्टि से क्रमशः इन पर विचार किया जा रहा है।

(१) धा० ६८ : रतिपति मुच्छिय लच्छि तनु तरनी रवन वय काज।
तडित करिग अंगुल धरह वान करिग (भरिग-पाठां०) प्रिथीराज॥

वार्त्ता—एक वाण तो राजा चूक्यो। बांह नै कांख विचि आघात भयो। कइमास परन डारि दिये। कइवासेनोक्तं।

धा० ६९ : अरुजनो नाम नास्ति दशरथो नैव दृश्यते।
स्वामिनो आखेटकव्रती वाणो न चतुरो नरो॥

वार्त्ता—दूसरउ वाण आन दियउ।

धा० ७० : भरिग वान चहुवान जानि हुर देव नाग नर।
छुट्टि दिट्ठि रस डुलिग चुक्कि निक्करिग इक्क सर।
उभय आनि दिय हत्थि पूठि पावारि पचार्‌यो।
वानी वर तरकंत छुट्टि धार धर उपार्‌यो।

इय कव्वु सव्वु सरसइ सुनित फुणि त कह्यो कविचंद तव ।
इम परयो अवास अयासते जिम निस......नछत्रपति ॥

यहाँ हम देखते हैं कि धा० ६८ का 'भरिग वान प्रिथिराज' तथा धा० ७० का 'भरिग वान चहुवान' सर्वथा एक है, और बीच मे आई हुई दो वार्त्ताओ तथा श्लोक मे वे ही बाते कही गई हैं जो धा० ७० मे आती है, और वह भी उपर्युक्त 'भरिग वान चहुवान' के अनन्तर। वार्त्ताएँ तो इस विषय में स्पष्ट हैं, किन्तु श्लोक धा० ६९ का कथन भी पृथ्वीराज के द्वारा छोडे हुए प्रथम वाण के चूक कर निकल जाने पर ही कहा जा सकता था, इसलिए उसकी स्थिति भी वही है जो ऊपर उद्धृत वार्त्ताओ की हैं। फलतः यह प्रकट है कि धा० ६९ तथा ७० के बीच आया हुआ सम्पूर्ण अश प्रक्षिप्त है ।

(२) धा० १२१ : नृप अभिग कहंग (कहिग-शेष मे) पहु पुव्व देस ।
अरिय नीर (अरिनयर-शेष में) नीर उत्तर कहेस ।
वर सिंधु विंधु कनवज्ज राउ ।
तिहि चढ़िउ स्वर्ग धुरि धर्म चाउ ॥

धा० १२२ : रवि तुम्हइ समुहउ उहइ इह तुम्ह मग्ग समुज्झ ।
भुल्लि भट्टि एव्वहि चल्यो कहि उत्तर कनवज्ज ॥

उद्धरण की प्रथम दो पक्तियो तथा अतिम दो पक्तियों मे उक्ति-शृखला स्पष्ट है, बीच की दो पंक्तियाँ सर्वथा निरर्थक और असंगत लगती हैं और उक्ति-शृंखला को भग करती है। ये पक्तियाँ वस्तुतः धा० ३१ के प्रथम दो चरणो से बनी हैं, जो है :—

कलि अथ्थ पथ्थ कनवज्ज राज। सतपित्त सेव धरि धम्म चाउ ॥

(३) धा० १२९ : चख चंचल तन सुद्धि त सिद्धिहु मनु हरिह ।
कचन करस झकोलति गंगह जलु भरहि ।

वार्त्ता—ते किसी एक पनिहारी है।

धा० १३० : भरंति नीर सुन्दरी।
ति पानि पत्त अंगुरी ।

धा० १२९ के 'गंगह जलु भरहि' तथा धा० १३० के 'भरति नीर सुन्दरी' मे उक्ति-शृंखला प्रकट है, बीच मे आने वाली वार्त्ता उस उक्ति-शृखला को भग करती है और साथ ही क्षेपक प्रकृति की तथा अनावश्यक भी है। म० ना० द० उ० स० मे बीच मे कुछ छन्द आते है जो इस उक्ति-शृंखला को और भी अधिक त्रुटित करते है ।

(४) धा० १४२ : दह दिसि देखि इअगय भार ।
जु दिख्खत (पुच्छत-पाठां०) चंद गयो दरबार ।

धा० १४३ : भाखन भाख सुमिल्लहि सि देइ सिसिर बन इंद ।
रथनवै नवि रस्स अरु जोध सुपंग नरिंद ॥

धा० १४४ : निसि नौबति पल प्रात मिलि हय गय दिख्खयो साज ।
विरंचि सुहरु करिवर गह्यो किनहि कह्यो प्रिथिराज ॥

धा० १४५ : कहे चंद दंदु न करहु रे सामन्त कुमार ।
तिन्न लख्ख निसि दिन रहंहि इह जैचन्द दुआर ॥

वार्त्ता—चांद राजा के दरबार ठाढो रह्यो।

धा० १४६ : पुच्छन (पुच्छत—शेष में) चंद गयो दरबारह ।
हेजम जह रघुवंस कुमारह ।

यहाँ हम देखते हैं कि धा० १४२ का 'पुच्छत चन्द गयो दरबार' और धा० १४६ का 'पुच्छत

चन्द गयो दरबारह' एक हैं, बीच में आए हुए धा० १४३ की सार्थकता और संगति स्पष्ट नहीं हैं; शेष के सम्बन्ध में यहाँ पर दर्शनीय यह है कि समय प्रभात का नहीं था। सूर्य तो (धा० १२२) उदित हो चुका था, उसके बाद पृथ्वीराज और उसके साथी गगातट के प्रातः कालीन दृश्यों को देखते हुए (छन्द १२९) नगर-दर्शन करने लगे थे और (छन्द १४२) उन्होंने कन्नोज की हाटों का निरीक्षण कर लिया था। फिर, इसी छन्द के अन्त मे आता है कि "पूछता-पूछता चन्द के दरबार को गया।" पृथ्वीराज को 'सामंत कुमार' कहना भी कुछ ठीक नहीं लगता है। वार्त्ता के बाद आए हुए छन्द धा० १४६ मे 'पुच्छत चन्द गयो दरबारह' द्वारा चन्द के दरबार की ओर जाने मात्र की बात कही गई है, किन्तु वार्ता मे कहा गया है "चन्द राजा (•जयचन्द) के दरबार मे पहुँचकर खड़ा हो रहा।" इन उल्लेख-विरोधों से भी प्रकट है कि धा० १४२ तथा धा० १४६ के बीच का अंश प्रक्षिप्त है। इनमें से धा० १४३ अ० फ० मे नहीं है, शेष मे है, और धा० १४४ तथा १४५ सभी मे है। वार्ता धा० के अतिरिक्त किसी मे नहीं है।

(५) धा० १८६ : जाम एक छनि रास घटि सत्तिहु सत्ति न वारि।
किहु कामिनो सुख (सुष-शेष में) रतिसमर नृप निय निंद विसारि॥

वार्ता— राजा कइसी नींद विसारी।

धा० १८७ : सुक्ख सुक्ख त्रिदंग तार जयनै रागं कला कोकिलं।
कंठी कंठ सुवासिनं मनयितं कामंकला पोखनं।
उर्व्वी रंभ पिता गुना हरिहरी सुश्रीय पवनायता।
ए सह सुक्ख सुखाइ तार साहिता जै राय रायं गता॥

दोनो छन्दों में उक्ति-शृंखला प्रकट है : धा० १८६ के 'सुख' को लेकर धा० १८७ मे उसका विस्तार दिया गया है। दोनो के बीच धा० मे एक वार्त्ता आती है, वार्त्ता-कार को यह ध्यान नहीं था कि धा० १८७ मे धा० १८६ के 'सुख' का विस्तार किया गया है, न कि 'नींद' का। इसलिए वार्त्ता स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है। म० ना० उ० स० मे धा० १८६, तथा धा० १८७ के बीच कुछ छन्द आते हैं। वे भी इसी प्रकार प्रक्षिप्त हैं।

(६) धा० १९२ : थिर रहै थवाहस (थवाइत-शेषमे) विज्जुकर छंडि सिकरहि
... ... पान देहि दिढ़ हत्थ गहि॥

मो० का इन पंक्तियों का अत्रुटित पाठ है :—

थिरु रहिहि थवाइत वज्ज्र कर छंडि सीकारह षिनु परिहि।
जिहि असी लष्ष पल्लाणिइहि तिन पांन देहि दिढ हथ्थ गहि॥

वार्त्ता—राजा आइसुते गीज सोधा चहुवान को भट्ट आयो है ताहि इतनो दज्यो।

धा० १९३ : सुनि तमूल सा पट्टि करि वर उट्टिय डिठि बंक।
मनो मोहनि सुमन मलिग मनु नव उदित मयंक॥

यहाॅ पर धा० १९२ के अन्तिम शब्दो 'पान देहि दिढ हथ्थ गहि' तथा धा० १९३ के 'सुनि तमोल' का उक्ति-सम्बन्ध प्रकट है, और बीच मे आई हुई वार्त्ता उस उक्ति-शृंखला को भंग तो करती ही है साथ ही असंगत और निरर्थक भी है। म० ना० द० उ० स० में यहाॅ कुछ छन्द आते हैं; वे भी उक्त उक्ति-शृंखला को इसी प्रकार भंग करते हैं।

(७) धा० १९३ : सुनि तमूल सा पट्टि करि वर उट्टिय डिठि वंक।
मनो मोहनि सु मन मलिग मनु नव उदित भयंक॥

धा० १९४ : तुलखाइ विप्र हस्तेषु विभूतिः वर योगिनां।
चंद्रिय पुत्र तंवोरह त्रीणि देयानि सादरं॥

धा० १९५ : भुव वंकीय करि पंगुनृप अध्विग हत्थ तबोल।
मनहु वज्जपति वज्ज गहि सह अप्पिया सजोर॥

यहाँ हम देखते है कि धा० १९३ की वर 'उट्ठिय डिठि वक' और धा० १९५ की 'भुव वंकिय करि' की शब्दावली एक है, और बीच मे जो आर्या आती है वह सर्वथा असगत है; उसमे कहा गया है : "तुलसी-दल विप्र के हाथ मे, विभूति श्रेष्ठ योगी के हाथ मे, और तांबूल चंडीपुत्र के हाथ मे सादर देना चाहिये।" किन्तु जयचन्द किन अर्थो मे 'चडी पुत्र' है, यह नही ज्ञात होता है : 'चण्डी पुत्र' का अर्थ 'चण्डी का भक्त' या 'चण्डी का उपासक' ही हो सकता है, किन्तु जयचन्द एक राजा के रूप मे अपने अतिथि चन्द के सामने उपस्थित हुआ है, चण्डी के उपासक के रूप मे नही और न उसे रचना भर मे कही भी चण्डी-भक्त कहा गया है। इसके अतिरिक्त इस आर्या के कथन की प्रतिक्रिया पृथ्वीराज मे क्या दिखाई पड़ी, धा० १९५ मे इसका कोई उल्लेख नहीं किया जाता है। अतः यह प्रकट है कि धा० १९३ तथा धा० १९५ के बीच आई हुई आर्या प्रक्षिप्त है।

(८) धा० २४२ धा० का पाठ प्रथम चरण के पूर्वार्ध के बाद किसी प्रतिलिपिकार की भूल से वही हो गया है जो धा० २०० का है और धा० २४८ का पाठ त्रुटित है, २४३, तथा धा० २४४ का पाठ अत मो० से दिया जा रहा है :—

धा० २४२ : सुनि वज्जन रज्जन चडिग बहु पष्षर समहाउ।
मनुह लंक विग्रह करन चलु (चलउ) रघुप्पति राय॥

धा० २४३ : चढिय सूर सामंत सहु नृप धर्मह कुल काज।
सह समूह दिक्खिय नयन त्रिणवर गिन प्रिथिराज॥

धा० २४४ : राम दल वंनर सबल उहि रष्षण वहु बंधु।
असी लष्ष सु(सउ)सम भिरिग सु धनि प्रथिराज नरेंद॥

धा० २४२ के दूसरे तथा धा० २४४ के प्रथम चरण मे उक्ति-श्रृंखला स्पष्ट है—धा ० २४४ मे कवि ने धा० २४२ की उक्ति पर भी एक विशेषोक्ति जडने की चेष्टा की है; बीच मे आया हुआ धा० २४३ उसे त्रुटित करता है और असंगत भी है।

(९) धा० २६९ : सर एक स विझत (विघ्वत-शेष मे) सत्त करी।
दल लिक्खित नयक तठक (टठक्क-शेष में) परी।
जहं जानइ सूरन भीर परी।
ठिल्लइ चहुवान तु अप्प बरी।
धा० २७० : ठठक्की सेन समि मीर मिल्ले।
विडुरिय सेन सव्वे नकिल्ले (निक्कले-पाठां०)।

धा० २६९ से उद्धृत दूसरी 'दल...ठठक्क परी' तथा धा० २७० की प्रथम पक्ति के 'ठठक्की सेन' में उक्ति-श्रृंखला प्रकट ही है, बीच की दो पंक्तियाँ उस श्रृंखला को भंग करती है और स्पष्ट ही अनावश्यक तथा असंगत हैं : विपक्षी दल का पृथ्वीराज के शौर्य से ठिठक पड़ना उसकी एक निश्चित समय की मनःस्थिति की सूचना देता है, जिसके बाद उसका 'विडरना' एक संलग्न परवर्त्ती क्रिया के रूप में प्रारम्भ हो जाता है। इन दोनो के बीच मे उस दल का पृथ्वीराज के दल पर आक्रमण करते रहना और पृथ्वीराज का उन्हे पिछड़ाते रहना एक भिन्न और अधिक व्यापक समय की अपेक्षा करते हैं।

(१०) धा० २९० : अरि अरुन रत्त कोतुक कलह भयो न भवह भिरंत भर।
सामंत निवट तेरह परिग नृपति सुपट्टिअ पंच सर॥

धा० २९१ : दुइ सर अस्व सि पक्खरह दुइ नृप इक संजोगि।
जुरि धर अत्थि नरत्थि करि अब जंगलवै भोगि ॥

धा० २९२ : रयन रास (राम) रावत्त रनह रन रग रंग रंग रस।
उठत एकु धावत्त पंच वाहत्त वीर दस।
वलि चालउ मोहिल्ल मयंदु मारुत मुह मंधउ।
अरुन अरि लंधिया पग , पारस दल खंधउ।
नारयन नीर बंधउ वरन दिव दिवानै गो देवरउ।
कलहंत जीव सामंत मुअ रहिउ स्वामि सिर सेहरउ।

धा० २९३ : संझ सपत्तिअ (सुपट्ठिअ-पाठा०) नृपति रन द्विय पारस परि कोटि।
रहे सूर सामंत जकि दिक्खिय नृपति तन चोट ॥

धा० २९० की अन्तिम शब्दावली 'नृपति सुपट्ठिय पच सर' और धा० २९३ की प्रारम्भ की शब्दावली 'सझ सुपट्ठिय नृपतिरन' मे साम्य यथेष्ठ है। बीच मे धा० २९१ मे 'प'चसर' का जो विवरण प्रस्तुत किया गया है, वह सर्वथा अग्राह्य है। 'सपट्ठिअ' का अर्थ धा० २९० तथा २९३ दोनो मे 'अलकृत' या 'विभूषित' प्रतीत होता है [दे० पाइअ स द् महण्णवो]। धा० २९० मे कहा गया है कि 'नृपति (पृथ्वीराज) पॉच वाणो से अलकृत हुआ।' और धा० २९३ मे कहा गया है कि "स.्या को [इस प्रकार] अलंकृत नृपति..... " किन्तु धा० २९१ मे पॉच वाणो से अलकृत होने के स्थान पर उसे दो वाणों से अल कृत कहा गया है, शेष तीन मे से दो वाण उसके अश्व के पक्खर मे और एक स योगिता को लगे कहे गए है। यहॉ पर कथन वैषम्य स्पष्ट है। धा० २९२ मे धराशायी सामतो की सूची मात्र बडी करने का प्रयास है। इसलिए प्रकट है कि धा० २९० तथा २९३ के बीच आने वाले छन्द उनकी उक्ति-शृखला को भङ्ग करते हैं और उनके विरुद्ध भी जाते है।

(११) धा० ३५८ . दरस दल वद्दल विषम राग लाग अलि निसान।
मिले पुब्ब पच्छिम हुति चाहुवान सुरताण ॥

धा० ३५९ : दुह दल ढोल सुमाल हलि दुहु' दल सिन्धुअराग।
जु रहिहि सुभग सुभाग तिन मुरि कायरह अभाग।

धा० ३६० : मिले जाइ चहुवान सुरताण खग्गे।
मनो वारुणी छवे वारुणी लग्गे।

धा० ३५८ के दूसरे चरण की शब्दावली धा० ३६० के प्रथम चरण में आई है, इसलिए दोनों मे उक्ति-शृंखला प्रकट है। धा० ३५९ इस शृ खला को भंग करता ही है और असंगत भी है: अभी तो युद्ध प्रारम्भ भी नही हुआ है, केवल दोनो ओर से सेनाएँ इकठी हुई हैं, अतः सैनिकों के युद्ध मे 'जुटने' या युद्ध से 'मुड़ने' का कोई प्रसंग नहीं है।

(१२) धा० ३८१ : बन बहु विभूति अवधूत दीस।
कर अनन्य (अन्यन—मो०) दीधी असीस ।।

वार्ता— विरदावली किसी दीन्ही ।
साहि झार साहिब सार ।
वरिया साहि कंध कुदार ।
सबर साहि मान मर्दन ।
निबर साहि थापना चार ।
दुरी साहि धारी तरक्क ।
नारी साहि मस्तक त्रिसूल ।

लोली साहि पूर्व साहि ।
पश्चिम साहि दखनी साहि ।
च्यारि पाहि बेला वीधालित वलेश्वर ।

धा० ३८२ : दइत असीस न सिर नयो वन अच्छयो फुरमान ।
दुसह भट्ट पिख्यौ नयन के पूछ्यो सुरतान ॥

धा० ३८१ के अन्तिम चरण के 'दीधी असीस' तथा धा० ५८२ के प्रथम चरण के 'दइत असीस' मे उक्ति-शृंखला स्पष्ट है, बीच की समस्त पक्तिया इस उक्ति-शृंखला को भंग करती हैं, और सर्वथा अनावश्यक और बहुत-कुछ निरर्थक हैं। वे स्पष्ट ही बाद मे रखी गई लगती हैं, जैसा उनके शीर्षक 'विरदावली किसी दीन्ही' से प्रकट है।

(१३) धा० ४२० : लइ दसण रसण दस रध्र हुई बहु कपट विध्धिग सघण ।
सुलताण पर्यो खां पुक्कीयो त दिन चंद राजन मरण ।

धा० ४२१ : परत भूमि सुलताण खान मिलि पलक पिट्टि सिर ।
मइं वरजिउ बहु वार साहि दुसमन असंभ वर ।
भोग छडि करि जोग भट्ट आयो जु संधि करि ।
वचन विध्धि तिहि कमय लियो गोरीह नरिंद हरि ।
टुक मंझि टुंट टुकरे करहु तवसु साहि गोरी धरउ ।
हजि जाण खाण इम उच्चरिय अब कवित्त कोइ कवि करउ ।

धा० ४२२ : सो ... ... मरणहु चंद नरिंद ।
रासउ रसाल नवरस निबंधि अचरिज इंदु फणिंद ।।

धा० ४२० के 'चंद राजन मरण' और धा० ४२२ के 'मरणहु चंद नरिंद' में उक्ति-शृंखला अति प्रकट है। धा० ४२१ में केवल धा० ४२० के 'सुलताण पर्यो खा पुक्कर्यो' का अनावश्यक विस्तार किया गया है, जिसके कारण उक्ति-शृंखला समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन तेरह स्थलों पर पाठवृद्धि के कारण धा० मे उक्ति-शृंखला का अतिक्रमण मिलता है, वह प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के कारण है।

परिणामस्वरूप उक्ति-शृंखलाओं को भंग करने वाले धा० के निम्नलिखित अंश प्रक्षिप्त प्रमाणित होते हैं :—

(१) धा० ६८ के अनन्तर की वार्त्ता, धा० ६९ तथा धा० ६९ के अनन्तर की वार्त्ता,
(२) धा० १२१ के अन्तिम दो चरण,
(३) धा० १२९ के बाद की वार्त्ता,
(४) धा० १४३, धा० १४४, धा० १४५ तथा धा० १४५ के बाद की वार्त्ता,
(५) धा० १८६ के बाद की वार्त्ता,
(६) धा० १९२ के बाद की वार्त्ता,
(७) धा० १९४,
(८) धा० २४३,
(९) धा० २६९ के अन्तिम दो चरण,
(१०) धा० २९१, धा० २९२,
(११) धा० ३५९,
(१२) धा० ३८१ के बाद की वार्त्ता, तथा
(१३) धा० ४२१ ।

छंद-शृंखला-अतिक्रमण

धा० मे छंद-शृंखला के अतिक्रमण का एक ही स्थल है, जो निम्नलिखित प्रकार से मिलता है :-

धा० ४०२ : छन्द—सुरतान जमन फुरमान दीन। (१)
सब नयर छोरि घरियार लीन। (२)
मुक्किलिउ चंद राजनहि पास। (३)
तुम गहहु हम दिखवहि तमास। (४)

धा० ४०३ : दस हत्थ रक्खि दीनो असीस। (५)
सिर नयो नयो नहि मान रीस। (६)
राजन है सुरति इक्क। (७)
घरियार सत्त सर विद्ध नेक्क। (८)

वार्ता : हम तमास गीर हा भाई वे हुज [ा]ब खा हबसी इसके साहिब कूं दस हत्थ राखि गल्ही कराउ राजा छइ दिखाउ किस्यो देख्यो।

धा० ४०४ : दूहा—चक्खहीन दुब्बल नृपत बंभन रहियो पासि।
रोस अगनि तन नृप जरइ करि चितइ चिंता स॥

वार्ता : राजा हे समस्या माहि आशीर्वाद दीन्हउ।

धा० ४०५ : धर पंथ राइ आजान बाह।
दुज्जने राइ वर वीर दाह।
चालुक्क राइ पर पैजु पारि।
पंगुरे राइ जग जग्गु हारि।

धा० ४०३ की पुनरुक्ति पर आगे विचार किया गया है : वहाँ हम देखते हैं कि कदाचित् पाठ-मिश्रण के कारण धा० ४०३ मे धा० ४०५ की स्फुट पंक्तियाँ आ गई हैं। शेष पाठ मे से प्रथम वार्त्ता धा० ४०२ के चरण ३ और ४ के भाव का अधिकाश मे विस्तार करती है, द्वितीय वार्त्ता धा० ४०५ का शीर्षक मात्र देती है। अन्य अनेक प्रतियो मे धा० ४०२ तथा धा० ४०५ एक ही रूपक के दो अंश है जो बीच की इन पक्तियो के द्वारा जुड़े हुए हैं :—

गयउ चंद तब तेहि ठाहि।
नृप मित्त वयट्ठउ जहां चाहि।

धा० ४०४ के 'बंभन रहियो पासि' की कोई संगति प्रसग मे नही है और किसी ब्राह्मण की समक्षता मे पृथीराज और चन्द की गोरी का प्राणात करने के सम्बन्ध की कोई बात होना असंभव भी थी, अतः धा० ४०४ स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है। धा० पाठ मे पृथ्वीराज के पास चन्द के जाने का भी कोई उल्लेख नही होता है, जैसा बीच की ऊपर उद्धृत पंक्तियो द्वारा कुछ अन्य पाठो में हुआ है। इन दृष्टियो से विचार करने पर धा० मे जो छन्द-शृखला का अतिक्रमण हुआ है, वह स्पष्ट ही धा० ४०२ तथा धा० ४०५ के बीच प्रक्षिप्त सामग्री को रखने के लिए किया गया है।

पाठांतर-ग्रहण

धा० १५० तथा १५२ :—

धा० १५० : ति कबि आइ कवियहि संपत्ते।
नवरस भाख ज पुच्छन लत्ते।
कवि अनेक वहु बुधि गुन रत्ते।
कहि न एक कवि चन्द समत्ते।

धा० १५२ : ते कवि आइ कवियहि संपत्तउ।
गुण व्याकरणइ रहि रस रत्तउ।
थकि प्रवाह गंगा मुख मंती।
सुर नर स्रवण मंडि रहि चंती।

दोनों छन्दों में अन्तर होते हुए भी प्रथम चरण के विषय मे पूर्ण साम्य है, और दोनो छन्द एक-दूसरे के अत्यन्त निकट आते है, केवल एक छन्द बीच मे पडता है, इसलिए दो मे से एक धा० में अपने कुल के पाठ के अनुसार तथा दूसरा पाठ-मिश्रण के कारण किसी अन्य कुल के पाठ के अनुसार आया होगा। धा० १५२ सभी प्रतियों मे समान रूप से मिलता है, जबकि धा० १५० की स्थिति विभिन्न प्रतियों मे भिन्न-भिन्न है। मो० मे धा० १५० है नहीं, अ० फ० मे उसके केवल चरण २, ३, ४ हैं, दोनों पाठों मे पहला चरण एक ही होने के कारण उसे फिर नहीं लिखा गया है, और म० ना० द० उ० स० मे केवल प्रथम दो चरण हैं, शेष दो चरण नहीं हैं। इसलिए धा० १५० धा० १५२ का 'पाठांतर' मात्र लगता है जो हाशिए की भूल के कारण कुछ पहले लिख उठा।

(२) धा० १५५—५६ इस प्रकार हैं :—

अहो चंद बरदायि कहुं हूँ। (१)
कनवज्जह दिक्खन आय हूँ। (२)
जे सरसइ जवनहुं निूप सचउ। (३)
गजपति गरुव गेह किमि गंजहु। (४)
किनि गुनि पंगु राइ मन रंजहु। (५)
जो सरसइ जानहु वर रचउ। (६)
तो अद्रिस्ट वरनहि निूप संचउ। (७)

उपर्युक्त तीसरी तथा छठवीं पंक्तियाँ एक ही हैं, जिनमे पुनरावृत्ति हो गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ४ थी तथा ५वीं पक्तियाँ ६ठी-७वीं पंक्तियो के 'पाठातर' के रूप मे हाशिए मे लिखी थीं—आशय दोनों पाठों का बहुत-कुछ एक है, किन्तु इन पाठातर की पंक्तियों को सम्मिलित करते हुए उपर्युक्त तीसरी पंक्ति को प्रतिलिपिकार ने दो बार लिख डाला। विभिन्न प्रतियों में उपर्युक्त ४थी तथा ५वीं पंक्तियों की स्थिति इस प्रकार है : मो० में ये पंक्तियाँ नहीं हैं, अ० फ० में ५वीं पंक्ति नहीं है, म० ना० द० उ० स० में ५वीं का एक और पाठ है : 'श्रीधर बरनि पंग मन रंजहु' और इस पाठ को लेकर पक्ति ५ म० उ० स० मे पंक्ति ४ के साथ दो बार आई है। म० द० उ० स० में पंक्तियाँ ४ और ५ पुनः उपर्युक्त पंक्तियाँ १, २ के स्थान पर भी आई हैं।

(३) धा० २०७ तथा धा० २०८ :—

धा० २०७ : सुनि वर सुन्दर उभय हुव स्वेद कंप सुर भंग।
मनु कमलिनि कल समहरि अभ्रुत करने तंन रंग॥
धा० २०८ : सुनि रव प्रिय प्रिथीराज कउ उभइ रोम तिन अंग।
सेद कंप सुरभंग भयउ सपत भाइ तिहि अंग॥

धा० में इन दो छन्दों के बीच लिखा हुआ है "तथा अउर पाठांतर"। मो० में इनमें से केवल धा० २०७ है, अ० फ० मे भी धा० की भाँति दोनो छंद हैं, केवल पाठांतर विषयक उल्लेख नहीं है। म० उ० स० मे धा० २०७ के चरण १ का पूर्वार्द्ध तथा धा० २०८ के शेष अश है; ना० मे म० उ० स० की भाँति एक दोहा की शब्दावली तो है ही, उसके बाद धा० २०७ का दूसरा चरण भी दे दिया गया है। इसलिए प्रकट है कि धा० २०८ धा० २०७ का 'पाठांतर' मात्र है।

पाठांतर-ग्रहण के कारण परिणामतः धा० के निम्नलिखित छंद पाठ-वृद्धि के हैं :—
धा० १५०, १५६, २०८।

मो० अ० फ० म० ना० द० उ० ज्ञा० स० में छन्दाभाव

धा० के निम्नलिखित छन्द मो० अ० फ० म० ना० द० उ० ज्ञा० स० में नहीं हैं :—

(१) धा० १५७ : यह छंद धा० के अतिरिक्त किसी प्रति मे नहीं है। यह प्रहेलिका के रूप में दिया गया नारी का नख-शिख है। यह जयचन्द को सम्बोधित किया गया है (चरण ५), किन्तु अभी चन्द जयचन्द के सामने पहुँचा नहीं है, जयचन्द के कविगण उसकी परीक्षा लेने आए हैं, और उन्होने अदृष्ट जयचन्द का वर्णन करने को चन्द से कहा है। इसमे 'सुजानगिरि' की छाप (चरण ५) आती है, इसलिए यह छन्द चन्द का हो भी नही सकता है। यदि कहा जावे कि 'सुजान गिरि' जयचन्द का विशेषण है :

जयचन्द राय सुज्जान गिरि राठौर राय गुन जानिहै।

तो यह कथन ठीक नही हो सकता है : 'गिरि' शब्द का इस प्रकार का प्रयोग कही नहीं देखा जाता है। अतः धा० १५७ प्रक्षिप्त है।

(२) धा० ४२२: यह छन्द भी धा० के अतिरिक्त किसी प्रति मे नहीं है। यह निम्नलिखित है:—

दूहा—सा ... ... मरणहु चन्द नरिंद।
रासउ रसाल नव रस निबंधि अचरिज इंदु फणिंद॥

निम्नलिखित कवित्त इसी विषय का है, जो शेष सभी प्रतियो मे मिलता है (मो० पाठ) :—

कवित्त—मरन चंद बरदीआ राज धुनि सा हन्युं (= हन्यउ) सुनि।
पुष्पांजलि असमांन सीस छोडि (= छोडी) त देवतनि।
मेछ अवधि त धरणि धरणि नव त्रीय सूहसिग।
तिन हि तिही सं योति योति योतिहि संपत्तिग।
रासु (=रासउ) असंभु नवरस सरस चंद चंदु (छंदु ?) कीअ अमीअ सम।
श्रृंगार वीर करुण विभक्षु (=विभछु) भय रुद सूत (संत ?) हसंत सम॥

दोहे के अधिकतर शब्द इस कवित्त मे मिलते हैं, केवल अन्त के कुछ शब्द नहीं मिलते है। 'रासउ रसाल' शब्दावली पर विचार करते हुए इसलिए, जैसा पहले भी कहा जा चुका है, ऐसा लगता है कि कवित्त के किसी त्रुटित पाठ से धा० के दोहे की रचना की गई है।

मो० अ० फ० म० द० उ० ज्ञा० स० में छन्दाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द मो० अ० फ० म० द० उ० ज्ञा० स० मे नही है :—

(१) धा० ३५९ : ऊपर धा० की उक्ति-श्रृखला-त्रुटियाँ दिखाते हुए यह दिखाया जा चुका है कि धा० ३५८ तथा ३६० मे स्पष्ट उक्ति-श्रृंखला है, जिसको धा० ३५९ त्रुटित करता है जो प्रसग मे संगत भी नहीं है। अतः धा० ३५९ प्रक्षिप्त है।

मो० अ० फ० म० ना० में छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द मो० अ० फ० म० ना० मे नहीं है :—

(१) धा० ३६१ : धा० ३६० तथा ३६२ में स्पष्ट छन्द-श्रृंखला है, धा० ३६१ जिसको त्रुटित करता है। धा० ३६० में केवल निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं:—

मिले जाइ चहुवान सुरताण खग्गे।
मनो वारुणी छवे वारुणी लग्गे।

यह छन्द अधूरा है यह प्रकट है। यह भुजंगी है, जिसे धा० मे गलत ही 'निबधु' कहा गया है, और भुजगी रचना भर मे कहीं भी दो चरणों का नहीं आया है, कम से कम चार चरणो का आया है। फिर इस छन्द का कथन भी अधूरा रह जाता है, वह धा० ३६१ के अनन्तर आई हुई भुजंगी धा० ३६२ मे चलता रहता है। अतः धा० ३६१ प्रक्षिप्त है।

म० ना० द० उ० ज्ञा० स० में छन्दाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द म० ना० द० उ० ज्ञा० स० मे नही है:—

(१) धा० १२३ : आगे हम देखेगे कि यह छन्द ना० की पुनरावृत्तियो के बीच आता है और प्रसंग में अनावश्यक भी है। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त है।

अ० म० मे छन्दाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द अ० म० मे नही है .

(१) धा० १ : इसकी प्रथम पक्ति है :

प्रथम मंगल मूल श्रुत बीय ।

और धा० २ की प्रथम पंक्ति है :

प्रथम भुजंगी सुधारी ग्रहण्णं ।

अतः दोनो छन्दों को प्रामाणिक मानने पर 'प्रथम' विषयक पुनरुक्ति होती है, जिसका मूल रचना मे इस प्रकार होना संभव नहीं लगता है। धा० २ सभी प्रतियों मे मिलता है और धा० २ मे प्रथम, द्वितीय आदि संख्या-श्रृखला भी है, जो धा० १ मे नही है। धा० १ वंदना का है भी नहीं, उसमें श्रुतियों, पुराणों आदि की उत्पत्ति विषयक उक्ति मात्र है, जो कि ग्रंथारंभ मे उपयुक्त नही है। अतः धा० १ प्रक्षिप्त लगता है।

मो० में छन्दाभाव

धा० के निम्नलिखितछन्द मो० में नहीं है :—

(१) धा० १५० : यह, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, धा० १५२ का 'पाठातर' मात्र है और धा० १५२ सभी प्रतियों मे है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(२) धा० १५६ : यह जैसा हम ऊपर देख चुके है, धा० १५५ का 'पाठांतर' मात्र है और धा० १५६ सभी प्रतियो में मिलता है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(३) धा० २०८ : यह, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, धा० २०७ का 'पाठातर' मात्र है और धा० २०७ सभी प्रतियो मे मिलता है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(४) धा० २२४ : यह सुभाषित के ढंग का एक श्लोक है, जिसके न होने पर भी प्रसंग को कोई क्षति नहीं पहुँचती है, इसलिए यह प्रक्षिप्त लगता है।

(५) धा० २४३ : ऊपर हम देख चुके है कि धा० २४२ तथा २४४ मे उक्ति-शृंखला है, जो धा० २४३ से त्रुटित होती है, अतः धा० २४३ प्रक्षिप्त है।

(६) धा० ३९६ : ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० ३९५ तथा ३९७ मे उक्ति-शृंखला है जो, धा० ३९६ से त्रुटित होती है, और धा० ३९६ प्रसग-विरुद्ध भी है, क्योंकि पृथ्वीराज के पूर्व पराक्रम का, जो इस दोहे में आता है, यहाँ कोई प्रसंग नही है, अतः वह प्रक्षिप्त है।

(७) धा० ४२१ : ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० ४२० तथा ४२२ मे उक्ति-शृंखला है, जो धा० ४२१ से त्रुटित होती है, फिर उसमे आया हुआ 'तब सु साहि गोरी धाउ' सर्वथा असगत भी है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त है।

अ० फ० में छन्दाभाव

धा० के निम्नलिखित छन्द अ० फ० में नही हैं :—

(१) धा० ११४ : ना० के सख्या-व्यतिक्रम के छन्दो पर विचार करते हुए आगे देखेंगे कि यह छन्द प्रक्षिप्त है।

(२) धा० १२० : यह छन्द प्रसंग मे आवश्यक है, क्योंकि पूर्ववर्ती छन्द मे दिन का उल्लेख है और परवर्ती मे प्रभात का, अत. बीच मे रात्रि और उसके अनंतर प्रभात होने का उल्लेख होना चाहिए जो इसी छन्द मे होता है। इसलिए यह छन्द अ० फ० मे भूल से छूटा लगता है।

(३) धा० १४३ : हम ऊपर देख चुके हैं कि धा० १४२ तथा धा० १४६ के बीच स्पष्ट उक्ति-शृंखला है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त है।

(४) धा० १७० : प्रसंग में यह छन्द आवश्यक है। धा० १६९ में जयचन्द ने चन्द को पान अर्पित करने के लिए और उसके बहाने उसके अनुचर (पृथ्वीराज) का रहस्य जानने के लिए आदेश किया है कि कुमारियाँ तांबूल के साथ प्रस्तुत हो, धा० १७० उन्हीं कुमारियों के सम्बन्ध में कहता है कि ऐसी कुमारियाँ जिनके हाथों के लिए राजाओ ने याचना की थी, चन्द को पान अर्पित करने के लिए चल पड़ीं, धा० १७१ मे कहा गया है कि उन षोडस वर्षीया सुन्दरियो ने चतुर दासियो को साथ लेकर धवल-गृह छोड़ा। अतः धा० १७० इस प्रसंग मे सगत लगता है और प्रक्षिप्त नही प्रतीत होता है।

(५) धा० २३२ : धा० २३१ तथा २३२ में स्पष्ट प्रसंग-शृंखला है : धा० २३१ मे युद्ध में न प्रवृत्त हुए पृथ्वीराज को आता देखकर संयोगिता ने यह कह कर सिर पीट लिया है कि 'जिस प्रियजन के लिए लोगों उँगलियाँ उठे, उस प्रियजन का क्या प्रयोजन ?' धा० २३२ मे कहा गया है कि संयोगिता के इस वाक्य को सुनकर पृथ्वीराज के सामतो ने कहा कि '[पृथ्वीराज यहाँ युद्ध से भयभीत होकर आया है उसे यह न समझना चाहिए, क्योकि]' इसके साथ जो सामंत-भट है, वे हाथियों को भी ठेल देते है।' अतः धा० २३२ प्रसंग मे आवश्यक है और प्रक्षिप्त नहीं लगता है।

(६) धा० ३०८ : इस छन्द में 'कामाग्नि-भोग' की बात कही गई है, जो युक्ति-औचित्य की दृष्टि से ठीक नही है, अग्नि भोग की वस्तु नही हो सकती है, 'सरइ नि खलु लगत पलिति निप नयनन ति संयोग' के उत्तरार्द्ध का शेष वाक्य से कुछ सम्बन्ध भी नहीं ज्ञात होता है, फिर इस प्रसग मे केवल सामान्य विलास-वैभव का वर्णन किया गया है (धा० ३०६—३१२), उसके बीच सयोगिता और पृथ्वीराज के प्रेम की बाते लाना असंगत लगता है। अतः धा० ३०८ प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

(७) धा० ३५७ : मो० की पुनरावृत्तियों के प्रसग मे हम देखेगे कि यह छद उनके बीच आता है और प्रक्षिप्त है।

म० मे छंदाभाव

धा० के निम्नलिखित छद म० मे नही हैं .—

(१) धा० १५ : आगे हम देखेंगे कि यह छंद ना० की पुनरावृत्तियों के बीच आता है और प्रक्षिप्त है।

(२) धा० ५२ : धा० ५१ के साथ इसकी उक्ति-शृंखला है, यह हम ऊपर देख चुके हैं, अतः यह छद प्रक्षिप्त नहीं है।

(३) धा० ६१ : इसमे कैवाँस-करनाटी केलि के प्रसग मे 'निसि भद्दव' कहा गया है किंतु आगे इसी प्रसग मे धा० ८४ मे 'उदित अगस्त' कहा गया है और कन्नौज-प्रयाण इसी घटना के बाद होता है, इसलिए धा० ६१ प्रक्षिप्त लगता है।

(४) धा० ८२ : आगे स० की पुनरावृत्तियों पर विचार करते हुए हम देखेंगे कि यह उसकी पुनरावृत्तियों के बीच आता है और प्रक्षिप्त है।

(५) धा० १३७ : यह छन्द धा० १३८ से प्रसगतः संबद्ध है, धा० १३७ मे कहा गया है:—

यह चरित्त कब लगि गिनै चलउ संदेह दुवार।

और धा० १३८ की प्रथम पंक्ति है :—

देखिय जाइ संदेह सोह।

अतः धा० १३७ प्रक्षिप्त नहीं हो सकता है।

(६) धा० २८० : धा० २७९ तथा इस छन्द मे उक्ति-शृंखला हम ऊपर देख चुके है, अतः यह छन्द प्रक्षिप्त नहीं लगता है।

ना० मे छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द ना० मे नही हैं :—

(१) धा० ८ : ना० की पुनरावृत्तियो मे, आगे हम देखेंगे, यह उन छन्दो में आता है जो प्रक्षिप्त माने गए हैं।

द० मे छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द द० मे नही है :—

(१) धा० २१ : यह छन्द ग्रन्थ की छन्द-संख्या विषयक है, जिसमे "सहस पच (या 'सहस सत्त') नषसिष" इसका आकार बताया गया है, किन्तु यह छन्द-संख्या ग्रन्थ के किसी पाठ मे नही मिलती है, अतः छन्द प्रक्षिप्त लगता है।

उ० शा० मे छंदाभाव

धा० का निम्नलिखित छन्द उ० शा० मे नहीं हैं :—

(१) धा० ८१ : स० की पुनरावृत्तियों पर विचार करते हुए आगे हम देखेंगे कि यह छन्द उनमे आता है और प्रक्षिप्त है।

उपर्युक्त छन्दों के अतिरिक्त धा० मे अनेक वार्त्ताएँ भी आती हैं, जिनमे से कुछ के सम्बन्ध में हम ऊपर उक्ति-शृंखला-त्रुटियों का विवेचन करते हुए हम विचार कर चुके हैं। शेष भी प्रायः उसी प्रकार की हैं और इनमें से एक भी समान रूप से शेष समस्त प्रतियों मे नही पाई जाती है, अतः इन पर विचार करना अनावश्यक होगा। इस प्रकार धा० की समस्त वार्त्ताएँ प्रक्षिप्त लगती है।

परिणामतः हम देखते है कि विभिन्न प्रतियों मे न मिलने वाले धा० के छन्दो मे से निम्नलिखित प्रक्षिप्त प्रमाणित होते हैं :—

मो० अ० फ० म० ना० द० उ० शा० स०	मे अप्राप्य	:	धा० १५७।
मो० अ० फ० म० द० उ० शा० स०	,,	:	धा० ३५९।
मो० अ० फ० म० ना०	,,	:	धा० ३६१।
म० ना० द० उ० शा० स०	,,	:	धा० १२६।
अ० म०	,,	:	धा० १।
मो०	,,	:	धा० १५०, १५६, २०८, २२४, २४३, ३९६, ४२१।
अ० फ०	,,	:	धा० ११४, १४३, ३०८, ५७।
म०	,,	:	धा० १५, ६१, ८२।
ना०	,,	:	धा० ८।
द०	,,	:	धा० २१।
उ० शा०	,,	:	धा० ८१।

धा० अ० फ० ना० स० ज्ञा० उ० स० मे पुनरावृत्ति

(१) धा० २३९ के चरण २१ तथा ३६ :—

धा० २३९. २१ : निृप जोइ फवज्जनि वट्टि लियं।

धा० २३९. ३६ : निृप जोइ फवज्जइ वंट लियं।

ये दोनों चरण एक-दूसरे से इतने अभिन्न और दूर हैं कि कोई भी किसी के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण न किया गया होगा। मो० के अतिरिक्त सभी प्रतियो मे ये पक्तियाँ इसी प्रकार दो बार आती हैं, केवल मो० मे धा० २३९ ३६ के स्थान पर है :—

निृप इक इक योजन बंटि लियं।

किन्तु यहाँ पर कन्नौज और दिल्ली की दूरी को एक-एक योजन करके बाँट लेने का कोई प्रसंग नहीं है, यह प्रसंग तो काफी बाद मे आता है; और 'निृप' (पृथ्वीराज) ने 'एक-एक योजन बाँट लिया' यह वास्तविक भी नहीं है, कन्नौज से दिल्ली की दूरी को उसके सामन्तों ने आपस में बाँटा है (धा० २६१)। इसलिए मो० का पाठ अग्राह्य है, और दूसरे स्थान पर भी धा० का पाठ ही ग्राह्य है, यह प्रकट है। प्रश्न यह है कि ऐसी पुनरावृत्ति क्यों हुई। यह पुनरावृत्ति पाठ-वृद्धि के कारण ही हुई ज्ञात होती है। पुनरावृत्ति के बीच की पंक्तियो में चामंडराय के सेना के मुख पर नियुक्त होने का उल्लेख होता है, किन्तु पूरे कन्नौज-युद्ध मे चामंडराय का उल्लेख पुनः कहीं नहीं मिलता है; इसी प्रकार आरम्भ, कूरम्भ, और मोरीराज की भी नियुक्तियाँ इन पंक्तियों मे उल्लिखित हुई हैं, किन्तु कही भी इनका उल्लेख कन्नौज-युद्ध मे अन्यत्र नहीं होता है। इसके विपरीत मोरीराज को सोमेश्वर और पृथ्वीराज दोनो ने अलग-अलग पहले दलित किया है (धा० १७, ४७), इस लिए उसका पृथ्वीराज के पक्ष मे लड़ना असम्भव ही है। धा० में पूरे कन्नौज-युद्ध मे ४६ योद्धाओं के नाम आए हैं।[1] इन पंक्तियो में कुल छः नाम ही आते हैं, और उनमें भी तीन इस प्रकार गलत हैं यह प्रमाणित करता है कि ये पंक्तियाँ प्रक्षिप्त हैं और पुनरावृत्ति प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के कारण हुई है।

धा० मो० ना० ज्ञा० उ० स० मे पुनरावृत्ति

(१) धा० ४०३ : दस हत्थ रक्खि दीनी असीस।
सिरु नयो नयो नहि मान रीस।
राजन...... है सुरति इक्क।
घरियार सत्त सर विद्ध नेक्क।

धा० ४०५ : राजन सुदान है सुरत इक्क।
घरिआर सत्त सिर विधन इक्क।...
पहिचानि चंद वर धुनिग सीस।
सिर नयो नयो नहि मान रीस॥

दोनो छन्दो मे साम्य इतना अधिक है कि 'पाठातर' के नाते दोनोंमे से किसी एक को न लिया गया होगा। धा० ४०३ जहाँ पर है, वहाँ पर सर्वथा असंगत है: धा० ४०२ मे गोरी ने चंद से कहा है कि वह पृथ्वीराज से घड़ियालो के वेधने की बात कहे और यदि पृथ्वीराज स्वीकार करे तो वह तमाशा देखे, धा० ४०३ के बाद एक वार्ता आती है, जिसमे गोरी हुजाबखाँ हबशी को हुक्म देता है कि वह चंद को पृथ्वीराज से दस हाथ दूर रख कर उससे बातें करावे, धा० ४०४ मे आता है कि चंद ने राजा को दुर्बल और

[1] दे० धा० २५३, २५६, २८९, २९०, २९२, ३०४।

उदास पाया, इसके अनन्तर धा० मे एक शीर्षक जैसी वार्ता आती है कि चंदने राजा को आशीर्वाद दिया, धा० ४०५ मे उसका राजा को आशीर्वाद देना और उसे उस के वचन की स्मृति कराना आता है जिसमे उसने सात घड़ियालों को एक शर से वेधने की बात कही थी। ऐसी दशा मे प्रकट है कि धा० ४०३ की पंक्तियाँ अपने स्थान पर सर्वथा असंगत हैं। ये इतनी फुटकल भी हैं कि इनमे कोई एकसूत्रता नहीं है। लगता है कि किसी प्रति के क्षत-विक्षत हो जाने के अनंतर एक पूरे रूपक की येही पक्तियाँ ठीक-ठीक पढी जा सकती थी और मिलान करते समय धा० ४०५ से इन्हे भिन्न छद की पंक्तियाँ समझकर उसी प्रति से ये उतारी गई। इसलिए धा० ४०३ उसमे पाठ-वृद्धि के रूप मे आया, यह प्रकट है।

धा० मे पुनरावृत्तियाँ

(१) धा० १२० तथा १८० :—

धा० १२० : भइत निसा दिस मुदित तिम उडनिप तेज विराज।
कथित साथि कथहे कथा सुक्ख सयन प्रिथिराज॥

धा० १८० : भयत निसा दिसि मुदित वनु उड निप तेज विराज।
कथिक सत्थ (सत्थ) कथहित कथा सुक्ख सयन प्रिथिराज॥

पाठ की दृष्टि से दोनो छन्द प्रायः परस्पर अभिन्न हैं और स्थान की भी दृष्टि से एक दूसरे से बहुत दूर हैं, इसलिए कोई भी किसी के 'पाठातर' के रूप मे ग्रहण किया हुआ नही हो सकता है।

अ० फ० के अतिरिक्त शेष प्रतियो मे धा० १२० के स्थान पर (मो० पाठ) है :—

त्रयत यांम वासर विसर घटिग हंस तनु रात।
जुकछु इच्छि चच्छनु हूति (हुती) सैं सव दिषव प्रात॥

प्रसंग से यह प्रकट है कि धा० १२० के स्थान पर प्रभात होने का उल्लेख होना चाहिए जैसा मो० आदि हुआ मे है, क्यो कि धा० १२१ मे प्रभात-कालीन दृश्यो का वर्णन है, और धा० १८० के स्थान पर, जैसा सभी प्रतियो मे है, रात्रि होने का उल्लेख होना चाहिए, क्यो कि धा० १८१ मे जयचन्द के 'अवसर' (नृत्य-संगीत-समाज) का वर्णन है। इसलिए यह स्पष्ट है कि धा० मे छन्द अपने वास्तविक स्थान के अतिरिक्त एक गलत जगह पर भी आ गया है। प्रश्न यह है कि ऐसा क्यो हुआ होगा। एक सम्भावना तो यह है धा० मे भी यहाँ वही दोहा था जो मो० आदि मे है और उसके 'त्रयत' को 'भइत' पढ़कर—क्यो कि पुरानी राजस्थानी लिपि के त्र और भ मे किंचित साम्य मिलता है—प्रतिलिपिकार ने स्मृति-भ्रम से उस दोहे के स्थान पर भी धा० १८० को लिख डाला। दूसरी संभावना यह है कि धा० के किसी पूर्वज मे पत्र त्रुटित होने के कारण इस छन्द का 'त्रइत' मात्र शेष था, उसको 'भइत' पढकर स्मृति-प्रमाद से धा० १८० को यहाँ भी लिख डाला गया? इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं हो सकती है।

(२) धा० २०० तथा २४२ :—

धा० २०० : भय टामक दिसि विदिसि हुइ लोह पषर तिह राउ।
मनु अकाल तिडिय सघन चल्या तु छूटि प्रवाह॥

धा० २४२ : सुनिम वयण राजन चढिय बहु पक्खर भर राहु।
मनु अकाल तेडिय सघन पवय छूटि परवाहु॥

दोनों छन्दो में पाठ-भेद केवल दोनो के प्रथम चरणों के पूर्वार्द्ध मे है, शेष छन्द दोनो मे एक ही है। किन्तु दोनों परस्पर इतने कम भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से इतने दूर हैं कि कोई भी एक दूसरे के 'पाठातर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नही हो सकता है। वस्तुस्थिति क्या रही होगी, यह विचारणीय है।

मो० तथा अन्य प्रतियों मे धा० २०० तो अपने स्थान पर है, किंतु धा० २४२ के स्थान पर (मो० पाठ) है :—

सुनि रज्जन रज्जन चढ़िग बहु पष्पर समहाउ।
मनुह लंक विग्रह करन चलु (=चलउ) रघुपति राय॥

धा० २०० तथा २०१ मे उक्ति-शृंखला प्रकट है :—

धा० २००: मनु अकाल तिडिय सघन चलया तु छूटि प्रवाह।

धा० २०१. प्रवाहीं (प्रवाहे–शेष मे) न तज्जी न लज्जी अहारे॥

इसी प्रकार धा० २४१ तथा २४२ (मो० पाठ) मे प्रसंग-शृंखला है। धा० २४१ मे रण-वाद्यों के बजने का वर्णन है, और फिर कहा गया है :—

उप्पमा खंड नव नयन लग्गी।
मनो राम रावन्न हत्थे विलग्गी॥

धा० २४२ (मो० पाठ) मे वाद्यों को सुनकर चढाई करने का उल्लेख है, और कहा गया है कि पृथ्वीराज जयचन्द से विग्रह करने उसी प्रकार चल पड़ा जैसे रावण से विग्रह करने राम चल पड़े थे। इसलिए प्रकट है कि धा० २४२ के स्थान पर भी गलत ढङ्ग पर धा० २०० आया हुआ है।

यह पुनरावृत्ति भी पूववर्त्ती की भाँति स्मृति-भ्रम से हुई लगती है. प्रथम चरण के उत्तरार्द्ध मे दोनो मे 'बहुपष्पर' आता था और एक का 'समहाउ' तथा दूसरे का 'भरराहु' (महराउ–शेष मे) भी एक से थे, इसलिए धा० २४२ के लिखते समय प्रतिलिपिकार ने 'बहु पष्पर' तक तो ठीक प्रतिलिपि की किंतु उसके बाद वह बहॅक गया और शेष शब्दावली स्मृति-भ्रम से उसने धा० २४२ के स्थान पर भी धा० २०० की लिख डाली। अतः प्रकट है कि यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं हो सकती है।

मो० मे पुनरावृत्तियाँ

(१) मो० २५२ तथा मो० २७२ :—

मो० २५२ : आलोक्य नृप नयनं वचनं धर्मस्य कातरं।
स्वामि दोस भई कावे लेमि निंदा स उदये॥

मो० २७२ : आलोकित नृप नयनं वचनं जिह्वा सु कातरा।
श्रवन सुनत सामतया सुरगामि निंदा उदिमं तया॥

दोनो पाठो मे पर्याप्त साम्य है, किन्तु एक दूसरे से दोनो काफी दूर पड़े हैं इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित हो सकती है, और न 'पाठांतर'-ग्रहण जनित। ऐसा लगता है कि पहले छंद मो० मे उपर्युक्त दो मे से एक ही स्थान पर था, किन्तु किसी अन्य प्रति से मिलान करने पर मिलान करने वाले को यह छंद भिन्न स्थान पर मिला और उसने यह समझा कि उसकी प्रति मे यह छद नही है, इस लिए उक्त अन्य प्रति से इस भिन्न स्थान पर भी उसने छंद को उतार लिया।

(२) मो० ३१४ तथा मो० ४४८ :—

दोनो छंद सर्वथा एक ही हैं, पाठ भी दोनो का सर्वथा एक ही है, यहाँ तक कि दोनो मे निम्न-लिखित गलत पंक्ति अन्त मे रूपान्तर से आती है :—

नृप इक इक योजन बांटि लियं।

और दोनों एक दूसरे से बहुत दूर भी है, एक कन्नौज-युद्ध मे और दूसरा गोरी-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में; अतः दो मे से कोई भी पाठ 'पाठांतर' समझ कर न उतारा गया होगा। इस छंद में निर्वान चन्देल के पृथ्वीराज के द्वारा सेना मे एक विशिष्ट स्थान पर नियुक्त किए जाने की बात कही गई है,

और मो० ३१९ (= धा० २८९) मे निर्वान वीर के युद्ध मे धराशायी होने का भी उल्लेख हुआ है, अत: यह निश्चित है कि छंद का वास्तविक स्थान मो० ३१९ (=धा० २८९) से पूर्व होना चाहिए, और मो० ४५० इसका वास्तविक स्थान नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त इसके द्वितीय तथा पंचम चरण क्रमश: इस प्रकार है —

दुहु राय महा भर यं मिलिय।
दुहु राय रषत्त ति रत्त उठे।

इस लिए भी यह छंद पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध का होना चाहिए, पृथ्वीराज-गोरी युद्ध का नही। अब प्रश्न है कि मो० ४५० के स्थान पर यह पुन: कैसे लिख उठा। धा० मे यह मो० ३१४ के स्थान पर ही है, किन्तु मो० के अतिरिक्त शेष प्रतियों मे यह मो० ४५० के स्थान पर है। ऐसा लगता है कि पहले मो० मे यह पहले स्थान पर ही था किन्तु बाद में किसी अन्य प्रति के अनुसार दूसरे स्थान पर भी रख लिया गया। यह अन्य प्रति भी मो० के ही कुल की लगती है, क्योंकि छन्द के अन्तिम चरण का उपर्युक्त गलत पाठ मो० में दोनो स्थानो पर आता है। फलतः यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

(३) मो० ४४६ के चरण ११, १२ तथा उसी के २९, ३० :—

चरण ११, १२ : प्रजरि (=प्रज्जरइ) पंथ पट्टनि ति सिंध।
मिलि चलहि संग आरम्भ गिधि॥
चरण २९, ३० : प्रजलहि पंथ पट्टनि (= पट्टनइ) सिंधु।
मिलि चलिग अ अरंभ गिधु॥

ये चरण दो बार 'पाठातर'-ग्रहण के परिणाम-स्वरूप आए हुए नहीं हो सकते हैं, क्योंकि दोनो स्थान एक दूसरे से दूर हैं। धा० अ० फ० में ये चरण बाद वाले स्थान पर हैं और ना० शा० स० मे पहले स्थान पर हैं, ऐसा लगता है कि मो० मे पहले स्थान पर ये चरण अपने पूर्ववर्त्ती पाठ के कारण बने रहे, और दूसरे स्थान पर किसी अन्य प्रति के पाठ-मिश्रण के परिणाम-स्वरूप आ गए। फलत: यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

(४) मो० ४४६ के अन्तिम दो चरण तथा मो० ४५० :—

मो० ४४६ के अन्तिम दो चरण .

उचरहि चंद भर भरन काज।
राषीयु (=राषियउ) आज प्रथीराज राज॥
मो० ४५० : उचरह चंदु भर भरन काज।
रषिउ (=रषिअउ) आज प्रथीराज राज॥

दोनो स्थानो पर इन चरणों का पाठ बहुत-कुछ एक ही है और ये दोनो स्थान एक दूसरे से कुछ दूर हैं, इस लिए यह पुनरावृत्ति 'पाठातर'-ग्रहण के कारण हुई नहीं लगती है। दूसरे स्थान पर छन्द के केवल दो चरण हैं, चार भी नहीं—पूरा छंद मो० मे ४० चरणो का है। इस लिए यह भी सम्भव नहीं है कि छंद को किसी अन्य प्रति में दूसरे स्थान पर देख कर वहाँ भी उतार लिया गया हो। यहाँ स्पष्ट ही पाठ वृद्धि जनित पुनरावृत्ति दिखाई पड़ती है। मो० ४४६ और ४५० के बीच आए हुए मो० ४४७, ४४८, ४४९ में से मो० ४४८ के विषय में कुछ ऊपर विचार किया जा चुका है। उसके साथ और दो छद (मो० ४४७, ४४९=धा० ३५६, ३५७) इस स्थान पर मो० के आदर्श में बढ़ाए गए, इसी कारण मो० में यह पुनरावृत्ति हो गई।

(५) मो० ५२२.४ तथा मो० ५२६.४ :

मो० ५२२.४ : सिर नाइ नहीं तिहि करीय रीस।

मो० ५२६.४ : सिर नाइ नही मन भई रीस।

दोनो का पाठ बहुत-कुछ समान है, और दोनो एक दूसरे से काफी दूर भी है, इस लिए दोनों मे से कोई भी दूसरे का 'पाठातर' समझ कर ग्रहण नही किया गया होगा। दोनो के बीच जो छद मो० मे आते हैं, वे अन्य प्रतियों मे भी आते है और प्रसग मे आवश्यक हैं। इस लिए लगता यह है कि मो० मे पहले बीच के छद छूट गए थे, बाद मे वे किसी अन्य प्रति के आधार पर बढ़ाए गए, जिससे पुनरावृत्ति हो गई। फलतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नही लगती है।

(६) मो० ५२६ २ तथा मो० ५२९.३ :—

मो० ५२६.२ : अंषि पांन मनु चितह लग।
मो० ५२९ ३ : अंषि पांन मनु चितह लग।

ये दोनो एक दूसरे से कुछ दूरी पर है, इस लिए यह सम्भव नही है कि दोनो मे से कोई अन्य का 'पाठातर' समझ कर ग्रहण किया गया हो। दोनो के बीच मे जो छद मो० मे आते हैं, वे अन्य प्रतियो मे भी आते है और प्रसग मे आवश्यक हैं, इस लिए ऊपर की पुनरावृत्ति की भाँति यहाँ भी, ऐसा लगता है, मो० मे कुछ छद छूट गए थे जिन्हे किसी दूसरी प्रति की सहायता से जब उतारा गया, उस अन्य प्रति का 'पाठातर' भी उतर आया, यद्यपि वह 'पाठातर' समझ कर नहीं उतारा गया। अतः यह पुनरावृत्ति भी पाठवृद्धि-जनित नहीं लगती है।

अ० फ० में पुनरावृत्ति

(१) अ० १. अन्त तथा अ० २. भुज० १ : अ० फ० मे अ० २. भुज १ के कुछ चरण अ० खण्ड १ के अन्त मे भी आ गए है। दोनों के बीच मे कोई छन्द नहीं है और पाठ भी दोनो का एक ही है, इसलिए लगता है कि अ० फ० के किसी पूर्वज मे इस छन्द की पंक्तियाँ भूल से दो बार लिख उठी थीं।

फ० मे पुनरावृत्ति

निम्नलिखित पुनरावृत्ति फ० मे ही है, अ० मे नही है :—

(१) अ० फ० १४. कवि० १० के बाद फ० मे आया हुआ दोहा तथा अ० फ० १४. दो० ३५ :
अ० फ० १४. कवि० १० के बाद फ० मे है :—

तब सावंत स सिरु धरीय मुष जपी इह वैनु।
तुम काहू के नृपति हौ विभीक गोरी सैन॥

अ० फ० १४. दो० ३५ : तब सावंत जु सिर धरी मुष जंपयिहु वैन।
जा सिर पर प्रिथिराजु है कभौ गोरी सैनु॥

दोनों छन्द एक दूसरे से काफी दूर हैं और दोनो के पाठों मे भी अधिक अन्तर नहीं है, इसलिए इनमे से किसी के भी 'पाठातर' के रूप मे गृहीत हुए होने की सम्भावना नहीं है। अतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित ही लगती है।

इस पुनरावृत्ति के बीच मे धा० ३४४, तथा ३४५ आते हैं।

म० स० मे पुनरावृत्ति

(१) म० १२. ५८६ तथा १२. ६०७ और स० ६१. २४५७ तथा ६१. २४८९ :—
म० १२. ५८६, स० ६१. २४५७ :

एक अंग तिय सकल बिकल उच्चरिय राजमुष।
भृकुटि अंक बंकुरिय सुतिहि लिषिय मद्धि रुष।
विय विमान उप्पारि देव डुल्लिय मिलि चल्लिय।

भ्रम भ्रमंकि आयास प्रान ति अच्छरि मिलीय।
दस एक चवै कवि कवि कमल असि सुगति धूंम करि करिय नृप।
तन राज काज जाजह भिरिग सुमति सीह भई देव वप॥

म० १२.६०७, स० ६१.२४८९ :

एक अग तिय सकल विकल विचरीय राज सुप।
भृकुटि अग्र अंकुरिय प्रमान तरु लपित मद्धि रुप।
विय विमान उचरीय देव डुल्लिय मिलि वल्लीय।
आभा भ्रम कीय ओय पंति अछरीय सु मिल्लिय।
दस एक चवक्कवि कवि कमल अस मग तिन भ्रम करिय नृप।
तन राज काज जाजह भिरिग मित्त सीह मिलि देव विय॥

दोनो छन्द एक दूसरे से दूर है, और दोनो के पाठ लगभग एक है, इसलिए इनमे से कोई भी किसी के 'पाठातर' के रूप मे ग्रहण किया गया होगा, इसकी सम्भावना नही है। पाठवृद्धि के कारण हुई पुनरावृत्ति की भी सम्भावना नहीं है, क्योकि दूसरे स्थान पर युद्ध का कोई प्रसंग ही नही है; वहाँ तो युद्ध से लौटे हुए पृथ्वीराज और संयोगिता का केलि-विलास वर्णन प्रारम्भ हुआ है। इसलिए प्रकट है कि दूसरे स्थान पर यह छंद किसी प्रकार भूल से पहुँच गया है।

स० मे दूसरे स्थान पर अन्तिम दो चरण भिन्न हैं। ऐसा लगता है कि छंद को उस प्रसग मे खपाने के लिए जाज के धराशायी होने की बात ठीक न समझ कर पाठ-परिवर्तन किया गया है। स० में इनका पाठ है :

स० ६१.२४८९ : संजोग जोग रचि ब्याह मन गुरु जन सुत अरु निगम वन।
प्रोहित्त पंग अरु ब्रह्म रिपि प्रसन्न सुष्ष वर दुष्ष मन।

किन्तु व्याह की बात तो बहुत पीछे आती है, और यह शब्दावली कुछ न कुछ वहीं की है :

स० ६१.२५३७ : हेम हयग्गय अंबरह दासि सहस सत दीन।
प्रोहित पंग सुब्रह्म रिपि ब्याहु बिद्धि बहु कीन॥

म० ना० स० मे पुनरावृत्ति

(१) म० ५.१ तथा म० ८.१ (= धा० ५८), ना० २०.४० तथा २८.७२ के बाद का छद और स० ५०.१, ५५.१२२ तथा ५७.३६ :—

सभी स्थानो पर इस छद का पाठ प्रायः एक ही है और निम्नलिखित है :

तिहि तप आखेटक भमै थिर न रहै चहुवान।
वर प्रधान जोगिनि पुरह धर रष्पै वर वान॥

सभी स्थल एक दूसरे से बहुत दूर हैं, इसलिये 'पाठातर'–ग्रहण के कारण पुनरावृत्ति हुई, यह सम्भव नहीं है। म० ८.१, स० ५७.३६, ना० २८.७२ के बाद के छंद के स्थान पर इसकी संगति प्रकट है, वहाँ प्रसंग कैंवास-करनाटी-केलि का है : प्रधान अमात्य (कैंवास) का इसीलिए इस छद मे उल्लेख होता है और जहाँ म० ५.१ है और वहाँ कैंवास का कोई प्रसंग नही आता है, केवल पृथ्वीराज के आखेट का प्रसंग आता है, इसलिए छन्द पूरा-पूरा उक्त स्थल पर सगत नही है। इसी प्रकार ना० २०.४०, स० ४५.१२२ के पूर्व जयचन्द की दिल्ली पर चढाई वर्णित है, जिसका कैंवास-करनाटी-केलि से कोई सम्बन्ध नहीं है जो परवर्त्ती स्थल पर मिलती है। केवल सामान्य प्रसंग-साम्य के कारण यह छन्द वहाँ भी रख लिया गया होगा, ऐसा लगता है; पाठवृद्धि के कारण यह पुनरावृत्ति हुई नही ज्ञात होती है।

म० मे पुनरावृत्ति

(१) म० ९ २४ तथा म० १२.६३० (= धा० ३१३) :—

म० ९.२४ : अह निसि सुधि न जानिय मानिय प्रौढ रति।
गुर बधव भृत भोय भइय रीति गति॥

म० १२.६३० : अह निसि सुध्धि न जानिय मानिय प्रौढ रति।
गुर बंधव भृत भोइ भई रीति गति॥

दोनों छन्द एक दूसरे से बहुत दूर हैं, और पाठ दोनो का सर्वथा एक है यहाँ तक कि 'लोइ' और 'विपरीत' के स्थान पर दोनो मे गलत पाठ 'भोइ' तथा 'रीति' है, इसलिए यह प्रकट है कि दोनों में से कोई दूसरे के 'पाठातर' के रूप मे नही ग्रहण किया गया होगा। किंतु यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित भी नहीं हो सकती है, क्यो कि प्रथम स्थान पर छन्द सर्वथा असंगत है : छन्द के प्रथम दो चरणों मे कहा गया है :—

इन विधि विलसि आसर (असार) सुसार कीय।
दै सुप जोगि संजोगि भोगि प्रथिराज प्रीय॥

किंतु म० खण्ड ९ मे तो पृथ्वीराज ने कन्नौज के लिए प्रयाण तक नहीं किया है, संयोगिता को संयोग-सुख देने की बात तो दूर है। इसलिए किसी प्रकार भूल से यह छन्द म० खण्ड ९ में भी पहुँच गया है।

ना० द० उ० स० में पुनरावृत्ति

(१) ना० १३.५७ तथा १३.३०, द० १५.२८ तथा २६.७७, और स० १४.१६३ तथा ४६. ११२ :—

तीनों प्रतियो मे दोनों स्थानो पर इस छन्द का पाठ प्रायः एक ही है, और निम्नलिखित है :

सुनत कथा अछि बत्तरी गइ रत्तरी बिहाइ।
दुज्ज कही दुजि संभरइ जिहि सुप स्रवन सुहाइ॥

और दोनों छद एक-दूसरे से काफी दूरी पर है, इसलिए यह प्रकट है कि दो में से कोई भी 'पाठातर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। तीनों प्रतियो में ये 'इछनी विवाह' तथा 'विनय मंगल' के समयो के अन्त मे आते हैं, और दोनो स्थानो पर संगत है। अतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित लगती है।

ना० मे इस पुनरावृत्ति के बीच धा० के कोई छन्द नहीं पड़ते हैं, किंतु द० तथा स० में धा० २८ तथा २९ पडते है। ये दोनों छन्द क्रमशः अनंगपाल द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली-दान तथा पृथ्वीराज के दिल्ली-सिंहासनारोहण विषयक हैं, और अन्यथा भी प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं। स० में इनके अतिरिक्त धा० २६ भी पड़ता है, जो 'धन कथा' का है, और वह भी प्रक्षिप्त जान पड़ता है।

ना० उ० स० मे पुनरावृत्ति

(१) ना० १३. ५७ तथा १६. ३४ और स० ४६. २७ तथा ४८. १०१ :—

दोनो स्थानो पर छन्द का पाठ लगभग एक ही है और निम्नलिखित है :

अन्यथा नैव पिप्यति द्विजस्य वचनं यथा।
प्राप्ते च जुग्गिनी नाथे संयोगिता तत्र गच्छति॥

दोनों छन्द एक दूसरे से दूर भी हैं, इसलिए कोई छन्द शेष अन्य के 'पाठांतर' के रूप में ग्रहण न किया गया होगा, यह प्रकट है। प्रथम स्थल पर छन्द 'विनय मंगल' खण्ड के अन्तर्गत द्विज-द्विजी संवाद मे आता है और संगत लगता है, द्वितीय स्थल पर छन्द ना० में शुकवर्णन प्रसंग में

आता है और संगत नही लगता है। स० में भी प्रथम स्थल पर यह संगत है, जहाँ यह 'विनय मंगल' खण्ड मे द्विज-द्विजी संवाद मे आता है, द्वितीय स्थल पर इसके बाद आने वाले छन्दों का प्रथम स्थल पर इसके पूर्व आने वाले छन्दो से कोई सम्बन्ध नहीं है : वे पृथ्वीराज के दूत के द्वारा अपने अपमान की बात सुनकर कन्नौज आक्रमण की तैयारी से सम्बन्धित हैं। इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नहीं है।

ना० में पुनरावृत्तियाँ

(१) ना० १.१६ तथा २.१२४ :—

छन्द का पाठ दोनो स्थलो पर प्रायः एक है और निम्नलिखित है :

छंद प्रबंध कवित्त जुति साटक गाह दुअथ्थ।
लहु गुरु मंडित खंडियह पिंगल अमर भरथ्थ ॥

और दोनो छन्द एक-दूसरे से काफी दूर हैं, इसलिए यह प्रकट है कि उपर्युक्त मे से कोई भी शेष अन्य के 'पाठांतर' के रूप मे ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। प्रथम स्थान पर यह ग्रन्थ के मंगलाचरण के अनन्तर उसकी भूमिका के प्रारम्भ मे आता है। इन दोनो स्थानो के बीच मे ७७ छन्द आते हैं जिनमें पृथ्वीराज के कुल का इतिहास है, और वे भूमिका के नहीं हो सकते है। अतः यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित है, यह प्रकट है।

इस पाठवृद्धि के अन्तर्गत धा० के जो छंद आते हैं, वे हैं धा० ३ से धा० १९ तक।

(२) ना० २८.१ तथा ना० ३० के प्रारम्भ का संख्याहीन छन्द :—

दोनों स्थानों पर इस लम्बे छन्द का पाठ प्रायः एक ही है, केवल बाद वाले स्थान पर प्रथम स्थान के पाठ के चरण ५, ७, तथा ८ नहीं हैं, और दोनों स्थल एक-दूसरे से दूर भी हैं। इसलिए यह सम्भव नही लगता है कि दोनों स्थलों मे से किसी स्थल का पाठ शेष अन्य के 'पाठांतर' होने के कारण ग्रहण किया गया हो। यह छन्द जयचन्द के राजसूय यज्ञ से सम्बन्धित है और ना० के खण्ड २८ के प्रारम्भ में ही आ सकता है। ना० खण्ड ३० 'दुर्गा केदार समय' है, जिसमे कहा गया है कि शहाबुद्दीन के दुर्गा केदार भट्ट और पृथ्वीराज के राज कवि चन्द मे पृथ्वीराज के तत्वावधान मे तन्त्र-मंत्रोपचार तथा वाद-विवाद प्रतियोगिता होती है, जिसमे दोनो तुल्य प्रमाणित होते हैं, और जब दुर्गा केदार लौटकर जाता है, शहाबुद्दीन पृथ्वी पर आक्रमण करता है। प्रकट है कि इस कथा से विवेच्य छन्द का कोई सम्बन्ध नहीं है। ना० खंड ३० के प्रारम्भ मे यह छन्द-संख्या-हीन भी है, इसलिए यह निश्चित है कि यह वहाँ किसी प्रकार बाद मे सम्भवतः किसी भूल के कारण पहुँच गया।

(३) ना० २९. १० तथा ३९. १५१ :—

ना० २९. १० :
ले बेरी लोहान गेह चामंड सपत्तौ।
धरि अग्गै चामुंड दिष्षि प्रज्जरि चित चिंत्तौ।
कहै राइ चामंड सुनौ लोहान तुम्ह घर।
नृप अग्या सिर सजुं नतरु जानौ तुम्ह हित हर।
नीय स्यामि धर्म छंडु नहीं हीय आरोहीय सद्दहर
लिन्नी सु बेरि चामंड विहसि पय आरोहीय अप्प कर।

ना० ३९. १५१ :
ले बेरी लोहान गेह चामंड सपत्तौ।
धरि अग्गै चामुंड ... ...
... ... सुनो लोहान तुम्ह वर।
नृप आज्ञा सिर संजु नतरु जानहु तुम हित हर।

त्रीय स्वामिधर्म छंडु नहीं हत्थ आरोहीय सद्द हर।
लिम्नी सु वेरि चामंड विहसि पय आरोही अप्प कर॥

दोनो छन्दों का पाठ एक ही है, और दोनों एक दूसरे बहुत दूर भी है, इसलिये यह प्रकट है कि इनमे से कोई किसी के 'पाठातर' के रुप मे ग्रहण किया हुआ नही हो सकता है। ना० खंड २९ कँवास-वध विषयक है। वहाँ इस छंद की कोई सगति नहीं है। यह ना० खंड ३९ का ही हो सकता है, जिसके अन्य कुछ छंदो मे भी (ना० ३९ १०९—१११) चामंड की बेड़ी का प्रसग आता है। ना० खड २९ मे यह छद अतः भूल से किसी प्रकार चला गया लगता है और पाठवृद्धि के परिणाम-स्वरूप गया हुआ नहीं प्रतीत होता है।

(४) ना० २९. ८६ के बाद का साटक और ना० ४१.१० :—
दोनों छदों का पाठ प्रायः एक है और निम्नलिखित है :

सामग्गं कल धूत नूत सिषरे मधुरेहि मधु वेष्टिता।
वाता सीत सुगद् मंद सरसा आलोल सा चेष्टिता।
कंठी कूल कुलाहले मुकलया कामस्य उद्दीपनो।
रत्ते रत्त बसंत पत्त सरसा संजोगि भोगाइते॥

दोनों छन्द एक दूर से भी हैं इसलिए कोई किसी के 'पाठातर' के रूप में ग्रहण किया हुआ नहीं हो सकता है। यह छंद पहले स्थान पर असंगत है, क्यो कि तब तक सयोगिता के 'भोगाइत' होने की कोई बात नहीं है और न तब तक उसकी प्राप्ति के लिए कन्नौज-प्रयाण ही पृथ्वीराज ने किया है। पहले स्थान पर यह सख्या-हीन भी है, जिससे यह वहाँ बाद मे रखा गया लगता है, और इस लिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित नही ज्ञात होती है।

(५) ना० ३१.२८ तथा ३१.३७ :—
दोनों छन्दों का पाठ प्रायः एक ही है, और निम्नलिखित है :

हो सावंत सु मंतु कहु सुहरि चित तजि वाज।
त्रिपथ लोक प्रिथिराज सुनि नमसकार किय साज॥

और ये छन्द एक-दूसरे से दूरी पर भी हैं, इसलिए 'पाठातर' समझ कर इनमे से कोई भी ग्रहण न किया गया होगा। यह छन्द ना० ३१.२८ के पूर्ववर्ती तथा ना० ३१.३७ के परवर्ती छन्दों के प्रसंग में हैं, इसलिए पुनरावृत्ति पाठ-वृद्धि जनित ज्ञात होती है।

इस पुनरावृत्ति के बीच धा० १२५ और धा० १२६ आते हैं जो धा० १२७ के होते हुए प्रसंग में आवश्यक भी नहीं है, क्योकि धा० १२७ मे भी गंगा की स्तुति है जैसी इन छन्दों मे है। इसलिए ये छन्द प्रक्षिप्त लगते हैं।

(६) ना० ३३.१०७ तथा ३५.५ (= धा० २४०) :—

ना० ३३.१०७ :
जद्दिन रोस राठौर चंपि चहुवान गहन कहुं।
स उप्परि सैं सहस विवह अगनित्त लष्ष दह।
टुटि डूंगर जल सुरिग भजिग जलगंग प्रवाहहि।
सह अच्छरि अच्छहि विवान सुरलोक नाग तिहि।
कहि चंद दंद दुहु दल भयो घन जिम सिर सारद झरिगु।
धर सेस हार हर ब्रह्मतन त्रिहु समाधि तद्दिन टरिगु॥

ना० ३५.५ :
जद्दिस रोस राठौर चंपि चहुवान गहन कहुं।
सैं उप्परि सै सहस बिवह अगनित्त लष्ष दह।

टुटि डूंगर जल भरिग फुट्टि जल थलति प्रवाहिग।
सह अच्छरि अच्छहि बिवान सुरलोक बनाइग।
कहि चंद दंद हुहु दल भयौ घन जिम मिर सारह झरिग।
धर सेस हार हर ब्रह्म तन त्रिहुं समाधि तद्दिन टरिग॥

दोनों पाठो मे अन्तर अवश्य है, किन्तु इतना नही है कि किसी के 'पाठांतर' के रूप मे शेष अन्य ग्रहण किया गया हो। दोनो छन्द एक दूसरे से काफी दूर है, यह तथ्य भी इसी बात की पुष्टि करता है। साथ ही, कुछ प्रतियों मे यह छन्द पहले स्थान पर है और कुछ मे दूसरे। इसलिए यही सम्भावना प्रतीत होती है कि ना०-मे एक स्थल पर छन्द अपने कुल के पाठ के अनुसार था और दूसरे स्थल पर किसी अन्य कुल के पाठ-मिश्रण के कारण आया। प्रसग से छन्द की स्थिति पर कोई निश्चित प्रकाश नही पडता है।

(७) ना० ३४.६१ तथा ना० ३६.५ :—

ना० ३४ ६१ : दूरि निसान गत भान कलाधर सुद्दयउ।
सुनि सामंत नरेस छिनकु धर धुक्कयउ।
पिष्प पंगदल दिट्ठि क्रिट्ठि निहारयउ।
अंचरि अमा संजोग रेन मझारयो॥

ना० ३५.५ : घुरि निसान उगि भान कलाकर सुद्दयउ।
स्रम सामंत नरिंद छिनकु धर धुक्कयउ॥
सपिष पंग दल दिट्ठि सरोस निहारयउ।
अंचर असी संजोगि रेन मझारयउ॥

ये छंद एक दूसरे से दूर हैं, और इनके पाठ मे अन्तर साधारण है। इस लिए इनमे कोई शेष अन्य के 'पाठातर' के रूप मे ग्रहण किया हुआ नही हो सकता है। साथ ही कुछ प्रतियो मे यह छंद पहले स्थान पर है और कुछ मे दूसरे, इसलिए सम्भावना यही लगती है कि एक स्थान पर छंद अपने कुल की परम्परा के अनुसार है और दूसरे स्थान पर पाठ-मिश्रण के कारण किसी अन्य कुलकी परम्परा के अनुसार आया है। प्रसंग के अनुसार यह छंद पहले स्थान पर ही आना चाहिए, क्यों कि वहाँ दिनांत का वर्णन है, दूसरे स्थान पर दिन उगने का वर्णन आता है। इसलिए छंद वहाँ सगत नहीं है। छद मे दूसरे स्थान पर 'गत भान' के स्थान पर इसीलिए 'उगि भान' किया गया है; किंतु दूसरे चरण में सामंतों और पृथ्वीराज के श्रमित हो कर धरा पर धुकने का उल्लेख होता है, और चतुर्थ चरण में अञ्चल द्वारा सयोगी के पृथ्वीराज की रेणु झाड़ने की बात आती है, जो प्रभात-कालीन परिस्थितियों मे असंभव है।

(८) ना० ३५ १५ : तथा ना० ३५.२० :—

ना ० ३५' १५ : संझ संपत्तिय नरपति रण फिरि सज्जे दलपंग।
चलिग पंग पहु पंति मिलि सौ भर नि किय अंगु॥

ना ० ३५.२० : संझ संपत्तिय रत्त भर कलि सज्जे दल पंग।
चलिग पंग पहुपंति मिलि सौ भर नि किय अंगु॥

दोनों छन्दों में जो पाठ-सादृश्य है, उससे यह नहीं लगता है कि कोई भी छन्द किसी के 'पाठातर' के रूप में ग्रहण किया गया होगा और दोनो के बीच के अश के निकल जाने पर प्रसंग को कोई क्षति भी नहीं पहुँचती है, इसलिए यह पुनरावृत्ति पाठवृद्धि-जनित लगती है।

इन पुनरावृत्ति के बीच धा० २९१ तथा २९२ आते हैं। धा० २९० तथा धा० २९३ मे उक्ति-शृंखला प्रकट है, धा० २९१ में धा० २९० के 'नृपति सपट्टिय पंचसर' का जो विस्तार किया गया है उसमे

दो ही पृथ्वीराज को, शेष दो अश्व के पाखर, मे तथा एक संजोगी को लगे बताये गए हैं, जो स्पष्ट ही धा० २९० से भिन्न कल्पना है। अतः धा० २९१ तथा २९२ प्रक्षिप्त हैं।

द० मे पुनरावृत्तियाँ

(१) द० १३.१ तथा २६.७८ :—
दोनो स्थानो पर छन्द का पाठ प्रायः एक ही और निम्नलिखित है

अटतालीसा सुक्रवार 'पष्षइ पंग अगरीय।
भोरे राइ भीमंग सोर सिवपुरी प्रजारिय।
आरज सांइ सलष्य राज संभरि संभारिय।
चाहुवान सामंत मंति कयमास पुकारिय।
घर जात पवांरां पट्टनह बोले बक दुराइ दिलि।
कै बार कथ्थ नाथह तनी षगे राज क्रिवान षल॥

यह छन्द द० खण्ड १३ के प्रारम्भ मे तो सगत है, द० खण्ड १३ पृथ्वीराज-भीम युद्ध का है, किन्तु खण्ड द० २६ के अन्त मे सगत नही है, क्योंकि द० खण्ड २६ संयोगिता के 'विनय मगल' का है। ना० में 'विनय मगल' खण्ड 'भीम युद्ध' खण्ड के ठीक पहले आता है। द० भी मूलतः उसी परिवार की है, इसलिए यदि इसमे भी वह उसी प्रकार पहले आता रहा हो तो आश्चर्य नहीं होगा। ऐसा लगता है कि पीछे किसी समय 'विनय मगल' खण्ड को द० परम्परा मे बाद मे रखने का जब निश्चय हुआ तो हाशिए में जो तत्सम्बन्धी सकेत लिखा गया वह 'विनय मगल' खण्ड के अन्त और 'भीम युद्ध' खण्ड के प्रथम छन्द–दोनो के सम्मने पड़ता था, इसीलिए द० में यह पुनरावृत्ति हो गई। फलतः इस पुनरावृत्ति के बीच मे जो छन्द पडते हैं, पाठवृद्धि के कारण द० में आए नहीं माने जा सकते हैं।

उ० ग्रा० स० में पुनरावृत्तियाँ

(१) स० ५७.१७१ तथा ५७.२१९ :—
दोनो स्थलों पर छन्द का पाठ प्रायः एक ही है और निम्नलिखित है :।

मद्धि पहर पुच्छै प्रभु पंडिय।
कहि कवि विजै साहि जिहि मंडिय।
सकल सूर बैठवि सभ मंडिय।
आसिष आनि दीय कवि चंदिय॥

दूसरे तथा तीसरे चरणो मे 'मंडिय' 'मडिय' का तुक पुनरुक्तिपूर्ण तो है ही, दूसरे चरण मे 'मंडिय' पाठ असम्भव भी है : आशय शाह के विजय माडने का नहीं है, बल्कि पृथ्वीराज के द्वारा शाह पर माडी हुई उस विजय का है जिसमे शाह दंडित हुआ था। इसलिए अन्य प्रतियों का 'दडिय' ही द्वितीय चरण का अन्तिम शब्द हो सकता है। इस प्रकार स० के दोनो पाठ प्रायः सर्वथा एक ही हैं— क्योंकि दोनों में अशुद्धि तक एक ही है। स० ५७.१७१ के पूर्व तथा ५७.२१९ के बाद के छद प्रसंग द्वारा सम्बन्धित भी हैं : ५७.२१९ के बाद उस सभा का वर्णन है जिसको ५७.१७१.३ मे मॉडा गया है। इसलिए बीच के छन्द पाठवृद्धि के हैं और पुनरावृत्ति पाठवृद्धि जनित है।

इस पुनरावृत्ति के बीच धा० ७९, ८०, ८१, तथा ८२ आते हैं।

परिणामतः विभिन्न प्रतियो मे मिलने वाली पुनरावृत्तियों से प्रक्षिप्त प्रमाणित होने वाले धा० के छन्द निम्नलिखित हैं :—

धा० अ० फ० ना० म० शा० उ० स० : धा० २३९ चरण २२-३५।

धा० मो० ना० शा० उ० स० : धा० ४०३।

मो० : धा० ३५६, धा० ३५७।
अ० फ० : ×
फ० : धा० ३४४, धा० ३४५।
म० उ० स० : ×
म० ना० उ० स० : ×
म० : ×
ना० द० उ० स० : धा० २६, धा० २८, धा० २९।
ना० उ० स० : ×
ना० : धा० ३—१९, धा० १२५, धा० १२६, धा० २९१, धा० २९२।
द० : ×
उ० स० : धा० ७९—८२।

नीचे विभिन्न प्रतियों में आने वाले छन्द-संख्या-व्यतिक्रम और उनके कारणों का विश्लेषण किया जा रहा है।

अ० फ० में छन्द-संख्या-व्यतिक्रम

धा० तथा मो० में छन्दों की क्रम-संख्याएँ नहीं दी हुई हैं, यह बताया जा चुका है, इसलिए इस दृष्टि से उनके छन्दों पर विचार नहीं किया जा सकता है, शेष प्रतियों के छन्दों पर ही विचार किया जा सकेगा।

अ० फ० में छन्दों की क्रम-संख्या छन्द (वृत्त) भेद के आधार पर दी गई है, यथा किसी खण्ड मे आए हुए कवित्त की क्रम-संख्या एक है, दोहा की दूसरी, गाथा की तीसरी, किन्तु वे छन्द जिनकी मालाएँ मिलती हैं, अर्थात् जिनके चरणों के सम्बन्ध मे यह प्रतिबन्ध नही माना गया है कि उनकी संख्या सर्वत्र एक सी हो, यथा भुजगी, त्रिभंगी, त्रोटक, पद्धडी, वे सभी एक सम्मिलत क्रम-संख्या में डाल दिए गए हैं और उनकी क्रम-संख्या छन्द (वृत्त) भेद के आधार पर नहीं चली है।

इस दृष्टि से देखने पर धा० के निम्नलिखित छन्द जो अ० फ० में उपर्युक्त संख्या-विधान के बाहर पड़ते हैं, विचारणीय हैं :—

(१) धा० २८, २९, ३० : ये छन्द अ० फ० के उन पाँच दोहों मे से हैं जो उसके खण्ड २ के अन्त मे आते हैं। इनके पूर्व जो दोहा अ० फ० में मिलता है वह ॥ २० ॥ है, किन्तु अ० मे धा० २८ को ॥ २ ॥, धा० २९ को ॥ २२ ॥ तथा धा० ३० को ॥ २२ ॥ की क्रम-संख्या दी गई है। ॥ २० ॥ के अनन्तर इसी प्रकार फ० मे इन छन्दों की संख्या ॥ १ ॥ से प्रारम्भ कर दी गई है और इस नवीन सख्या-विधान में धा० २८ ॥ १ ॥ है, धा० २९ ॥ ४ ॥ है और धा० ३० ॥ ५ ॥ है। यह ध्यान देने योग्य है कि अ० मे केवल ॥ २१ ॥ नहीं है और ॥ २२ ॥ की सख्या दो दोहों को समान रूप से की गई है, जब कि फ० में इन सभी की क्रम-संख्या नई कर दी गई है। प्रश्न यह है कि धा० २८ को ॥ २ ॥ क्रम-संख्या अ० में किस प्रकार दी गई है। इसका स्पष्ट समाधान यह है कि जब अ० फ० में पूर्ववर्ती दोहा ५ तथा दोहा ६ के बीच एक दोहा बढ़ाया गया और उसके साथ ही अ० फ० दोहा २० के बाद कुछ दोहे बढ़ाए गए, तो प्रथम स्थान की पाठवृद्धि को ॥ १ ॥ तथा द्वितीय स्थान की पाठवृद्धि को ॥ २ ॥ की सख्याएँ देकर छोड़ दिया गया, और इन्हीं के साथ अ० फ० के ॥ २१ ॥ की क्रम-संख्या भी बदल कर ॥ २ ॥ कर दी गई। इसके बाद किसी समय एक और दोहा जोड़ा गया और ऊपर के तीन दोहों मे लगातार ॥ २ ॥ क्रम-संख्या देखकर इस नवीन दोहे को पूर्व-

वर्ती दोहा ॥ २२ ॥ के अनुसरण मे ॥ २२ ॥ की क्रम-संख्या दे दी गई। इस दृष्टि से देखने पर धा० २८ तथा धा० ३० अ० फ० मे बाद मे रक्खे गए लगते है।

(२) धा० १५८, धा० १८७, धा० १८८ : अ० फ० खण्ड ९. साटक १ (=धा० १५१) के बाद उसमें ये तीन साटक और आते हैं जिनकी क्रम-संख्या नहीं दी हुई है। किन्तु ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० १८६ तथा १८७ और इसी प्रकार धा० १८८ तथा १८९ मे स्पष्ट उक्ति-शृंखला है, अतः धा० १८७ तथा धा० १८८ प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के नहीं है। धा० १५८ की स्थिति इतनी स्पष्ट नही है।

(३) धा० १९३ : अ० फ० खण्ड ९ मे यह दोहा संख्याहीन है, और इसके पूर्व अ० फ० खण्ड ९ दोहा ॥ ४३ ॥ तथा बाद मे दोहा ॥ ४४ ॥ आता है, अतः यह प्रकट है यह दोहा अ० फ० की क्रम-संख्या के बाहर पड़ता है। किन्तु हम ऊपर देख चुके है कि धा० १९२ तथा १९३ और इसी प्रकार धा० १९३ तथा १९५ के बीच उक्ति-शृंखला है। अतः यह प्रकट है कि धा० १९३ प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(४) धा० २४८, धा० २५० : अ० फ० खण्ड १० मे ये दोनों छन्द एक रूपक के अन्तर्गत हैं और संख्याहीन हैं। ये उस प्रकार की छन्दमाला मे आते हैं जिनकी अ० फ० मे सम्मिलित क्रम-संख्या दी गई है : इनके पूर्व भुजंगी ॥ २ ॥ है और बाद मे रसावला ॥ ४ ॥ है। ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० २४७ तथा २४८ मे स्पष्ट उक्ति-शृंखला है। और अ० फ० मे धा० २५० अलग छन्द नहीं है, वह धा० २४८ के सिलसिले में ही आता है, इसलिए दोनो की सम्मिलित संख्या ॥ ३ ॥ होनी चाहिए थी, जो किसी प्रकार छूट गई है। अत धा० २४८ तथा धा० २५० प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के नहीं हैं।

(५) धा० ३१०-३१३ : ये रासा अ० फ० मे १३. दो० ७ के बाद आते हैं और पूर्व या बाद में इस खण्ड मे और रासा नहीं आते है। इन छन्दों का संख्या-व्यतिक्रम अतः स्पष्ट नहो है। किन्तु ये छन्द एक वर्णन-शृंखला के हैं और इनमे से अन्तिम का उक्ति-शृंखला सम्बन्ध, जैसा हमने ऊपर देखा है, धा० ३१४ से है, अतः ये प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के नहीं है।

(६) धा० ३४३ : यह दोहा अ० मे १४. कवि० ५ के बाद आता है। इसकी संख्या अ० मे ॥ १ ॥ और फ० में ॥ २१ ॥ दी हुई है, यद्यपि पूर्ववर्ती दोहा ॥ १९ ॥ है और अ० फ० का दोहा ॥ २१ ॥ बाद मे ही आता है, इसलिए संख्या-व्यतिक्रम स्पष्ट है। किन्तु धा० ३४३ की धा० ३४४-३४५ से प्रसंग-शृंखला है, और धा० ३४४ ३४५ फा० की पुनरावृत्तियो के द्वारा प्रक्षिप्त प्रमाणित हो चुके है, अतः यह छन्द भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

(७) धा० ३८६ : यह छन्द अ० मे संख्याहीन है, फ० यहा पर खण्डित है। यह अ० मे १९. दो० १९ के बाद आता है और इसके बाद दो दोहे और आते हैं तब १९. दो० २२ आता है। किन्तु हम ऊपर देख चुके है धा० ३८६ धा० ३८५ से उक्ति-शृंखला से सम्बद्ध है। इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नही हो सकता है।

(८) धा० ३९० : यह छन्द भी अ० फ० खंड १९ मे क्रम-संख्या के बाहर पड़ता है। यह दोहा है और इसके पूर्व का दोहा ॥ २३ ॥ तथा बाद का ॥ २४ ॥ है। यह तातार खाँ और गोरी के संवाद का है, और इसके पूर्व तथा इसके बाद के दोहों अर्थात् धा० ३८९ तथा ३९१ मे परस्पर प्रसग-शृंखला स्पष्ट है : धा० ३८९ में गोरी का आदेश है, और धा० ३९१ मे कहा गया है

यह सहाब सुप उच्चरिय ... ...

इन दोनो के बीच धा० ३९० के रूप मे तातार खाँ का कोई कथन आना असगत है। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का लगता है।

म० में छन्द-संख्या-व्यतिक्रम

(१) धा० ५९ : म० मे ८.२ और ८.३ के बीच यह छन्द आता है। धा० ५८ के साथ यह प्रसंगतः सम्बद्ध है। धा० ५९ मे कहा गया है कि पृथ्वीराज 'अपने श्रेष्ठ प्रधान (प्रधानामात्य) कैंवास को धरा (राज्य) की रक्षा के लिए दिल्ली छोड़ कर आखेट के लिए चला गया था।' इस छंद में कैंवास के सम्बन्ध मे कहते हुए कहा गया है, 'राजं जा प्रतिमा' अर्थात् 'जो राजा का प्रतिनिधि था ......।' इस लिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं लगता है।

(२) म० खण्ड १० मे छन्द-संख्या १४२ तक चल कर पुनः १२५ से प्रारम्भ होती है, और खण्ड के अन्त तक चलती है। इस व्यतिक्रम का एक कारण तो यह हो सकता है कि दूसरी बार की १२५ से १४२ तक की संख्याओं के छन्द पीछे बढ़ाए गए हों और उनकी क्रम-संख्या भी १२४ के बाद दे दी गई हो, दूसरी सम्भावना यह है कि १४२ को भ्रम से ४ तथा २ को विपर्यय से १२४ समझ कर सख्या १४२ के बाद पुनः १२५ से प्रारम्भ कर दी गई हो। दूसरी सम्भावना अधिक युक्ति-सगत लगती है क्योंकि प्रथम के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि यदि बढ़ाए हुए छन्दो की सख्या १४२ तक ही गई होती तो बाद के छन्दो की क्रम-सख्याओ मे भी सशोधन किया गया होता। इसलिए इस खण्ड की १२५ से १४२ तक की सख्या-विषयक पुनरावृत्ति इस प्रसग में विचारणीय नहीं है।

(३) धा० १९६ : म० मे १०.४६४ के अनन्तर यह छन्द पुनः ॥ ४६४ ॥ की संख्या देकर आता है। किन्तु प्रसंग मे यह आवश्यक है, धा० १९५ मे पृथ्वीराज के द्वारा जिस भंगिमा से जयचंद को तांबूल अर्पित करने की बात कही गई है, उसका परिणाम यही होना चाहिए जो इस छन्द मे वर्णित है—कि जयचन्द पहिचान गया हो कि पान देने वाला पृथ्वीराज है। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(४) धा० २०६ : म० मे छन्द का उत्तरार्द्ध मात्र आया है और ११.९० के बाद उसकी कोई संख्या नहीं दी हुई है। ऊपर हम देख चुके हैं कि धा० २०५ तथा धा० २०७ के साथ इसका उक्ति-शृंखला सम्बन्ध है, इसलिए यह छंद प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(५) म० मे ११.९८ के अनन्तर छन्द-सख्याएँ ॥ ९० ॥ से ॥ ९७ ॥ तक दुहरा उठी हैं: यह ९८ को विपर्ययभ्रम से ८९ पढ़ने के कारण हुआ ज्ञात होता है, जैसा हमने ऊपर इस प्रति की एक अन्य सख्या-सम्बन्धी पुनरावृत्ति के विषय मे भी देखा है। अतः इस पुनरावृत्ति के बीच में आए हुए छन्दों पर पाठवृद्धि की दृष्टि से विचार करना उचित न होगा।

(६) म० में उपर्युक्त पुनःआने वाले ११.९७ के अनन्तर की छन्द-संख्याएँ ॥९२॥ से ॥९८॥ तक दुहरा उठी हैं, और तदनतर खण्ड की छद-संख्याएँ इस सख्या के क्रम मे चली हैं। यह भी ९७ के ७ को १ पढ़ने की भूल के कारण हुई प्रतीत होती है—७ की नोक यदि कुछ आगे तक खींच कर न बनाई जावे तो उससे १ का भ्रम हो सकता है। अतः क्रम-सख्या सम्बन्धी इस पुनरावृत्ति के बीच आए छन्दों पर भी प्रक्षिप्त पाठवृद्धि की दृष्टि से विचार करना उचित न होगा।

(७) धा० २४५ : म० मे १२.२८ के बाद पुनः ॥२८॥ की सख्या के साथ यह छन्द दे दिया गया है। किन्तु धा० २४६ के साथ इसकी उक्ति-शृंखला ऊपर देखी जा चुकी है, इसलिए यह छद प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

(८) धा० २९७ : म० मे १२.५३३ के अनन्तर पुनः ॥५३३॥ की सख्या के साथ यह छन्द दिया गया है। धा० २९८ मे विंझ चालुक्य के धराशायी होने पर जयचन्द के दल की प्रतिक्रिया वर्णित है, धा० २९७ मे उसका युद्ध करना और धराशायी होना वर्णित है, उसके पूर्व के एक छन्द से जो

धा० २८६ है, जिसमें कैमास को युद्ध में प्रवृत्त होना कहा गया है, अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं हो सकता है।

ना० में छंद-संख्या-व्यतिक्रम

(१) धा० १९ : ना० में २. १२२ के अनन्तर यह छन्द भी ॥ १२२ ॥ करके दिया गया है। इसमें चन्द के जन्म ग्रहण करने का उल्लेख है। धा० १८ में पृथ्वीराज के जन्म ग्रहण करने तथा धा० २० में 'रासो' की विविध छन्दों में रचना करने की प्रस्तावना है। धा० १९ दोनों के बीच में अतः खटकता है और प्रक्षेप के रूप में रक्खा गया लगता है।

(२) धा० ६६ : ना० में २०.३२ के अनन्तर यह छन्द भी ॥ ३३ ॥ की संख्या के साथ दिया गया है। इसमें पट्टराज्ञी की दूती के साथ कैंवास वध के लिए पृथ्वीराज के आने का उल्लेख किया गया है। धा० ६५ में केवल उसकी दूती के द्वारा पृथ्वीराज के जगाए जाने का कथन है, और धा० ६७ में कैंवास के ऊपर उसके बाण-संधान का; अतः बीच का धा० ६६ का उल्लेख प्रसंग में आवश्यक है, और प्रक्षिप्त नहीं है।

(३) धा० ६७ अ (छन्द ६७ के बाद वार्त्ता के साथ आया हुआ छन्द का अवशेष): ना० में २९.३२ के बाद यह छन्द भी ॥ ३२ ॥ करके दिया गया है। इसमें पृथ्वीराज का इस विषय में आश्चर्यान्वित होना कहा गया है कि दनुज, देवता या गन्धर्व कौन करनाटी के साथ विलास-लिप्त था। किन्तु यह तो पट्टराज्ञी को ज्ञात ही था कि उक्त व्यक्ति कैंवास था और पृथ्वीराज ने भी यही जान कर उसे मारा था, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त लगता है। धा० में यह छन्द कुछ भिन्न और त्रुटित पाठ के साथ आता है और छन्द के पूर्व एक वार्ता भी आती है जिसमें कहा जाता है कि पट्टराज्ञी ने चित्रशाला में काम-रत कैंवास की ओर संकेत किया।

(४) धा० ७६ : ना० में २९.४६ के बाद यह छन्द भी ॥ ४६ ॥ करके दिया गया है। धा० ७५ निम्नलिखित है :—

> भइ परतक्खि कवी मनि आइय।
> उर्कति कंठ कंठह समझाइय (समुहाइय—पाठां०)।
> वाहन हंस हंस (अंस—पाठां०) सुखदाइय।
> तब तिहि रूप चंद कवि धाइय (गाइयं—पाठां०)।

धा० ७६ में सरस्वती के इसी रूप का ध्यान वर्णित है और उसका शिख-नख निरूपित हैं। अतः धा० ७६ प्रसंग में आवश्यक लगता है।

(५) धा० ९२ : ना० में यह छन्द २९.६५ के अनन्तर पुनः ॥ ६५ ॥ करके दिया गया है। धा० ९० में चंद ने कैंवास-वध का रहस्योद्घाटन पृथ्वीराज की सभा में किया है। धा० ९१ में उसके अनन्तर रात्रि में सभा के विसर्जन की बात कही गई है। धा० ९३ में प्रातः ही कैंवास की स्त्री का चंद के पास उसकी सहायता से पति का शव प्राप्त करने के लिए आगमन कहा गया है। धा० ९२ में कहा गया है कि चंद के उक्त रहस्योद्घाटन के अनन्तर कैंवास के वध की बात घर-घर फैल गई थी। अतः यह छन्द प्रसंग में आवश्यक लगता है।

(६) धा० ११३ : यह छन्द ना० में ३१ १ के बाद पुनः ॥ १ ॥ की संख्या देकर रक्खा गया है। इसमें पृथ्वीराज के कन्नौज के लिए प्रस्थान करने की तिथि सं० ११५१, चैत्र तृतीया, रविवार दी गई है। यह तिथि असंभव तो है ही—सं० ११५१ में पृथ्वीराज जन्मा भी नहीं था—इस छन्द के न रहने से पूर्वापर के प्रसंग-क्रम में कोई व्याघात नहीं होता है। इसलिए यह छन्द प्रक्षेपपूर्ण पाठवृद्धि का लगता है।

(७) धा० ११४ : यह छन्द ना० मे ३१ ४ के बाद पुनः ।। ४ ।। करके दिया गया है। इसमे कहा गया है कि पृथ्वीराज ने 'एक सौ सुभटों को लेकर कन्नौज के लिए प्रस्थान किया, (फिर भी वे कहा जा रहे थे) यह या तो चन्द जानता था या पृथ्वीराज।' किन्तु साथ मे सौ योद्धा हो और उन्हे यहाँ तक न बताया गया हो कि उन्हे किधर ले जाया जा रहा है, यह प्रायः असम्भव है, फिर कन्नौज पहुँचने पर इन योद्धाओ ने इस पर कोई आश्चर्य भी नही प्रकट किया है कि वे कहाँ ले आए गए हैं। अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का लगता है।

(८) धा० १४३ : यह छन्द ना० मे ९४ के अनन्तर पुनः ।।४।। की संख्या देकर रक्खा गया है, किन्तु ऊपर हम देख चुके है कि धा० १४२ के साथ इसका उक्ति शृंखला सम्बन्ध है, अतः यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(९) धा० १४७ : यह छन्द ना० मे ९६ के अनन्तर पुन ।।६।। की संख्या देकर रक्खा गया है। धा० १४६ मे चन्द ने हेजम को अपना परिचय दिया है, धा० १४७ मे हेजम जयचन्द को उसके आगमन की सूचना देने गया है, और धा० १४८ मे उसने जयचन्द को उक्त सूचना दी है। अतः धा० १४७ प्रसंगतः पहले तथा पीछे के छन्दो से निकट रूप से संबद्ध है, और प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(१०) धा० २०७ : ऊपर दिखाया जा चुका है कि धा० २०७ तथा २०८ एक ही छन्द के दो भिन्न-भिन्न पाठ हैं, ना० मे धा० २०८ यथा ३३ ३९ है और धा० २०७ का दूसरा चरण भी उसमे ।। ३९ ।। संख्या देकर 'पाठांतर' के रूप मे सम्मिलित कर लिया गया है।

(११) धा० २८१ : ना० मे ३६ २८ के अनन्तर यह छन्द भी ।। २८ ।। संख्या देकर दिया गया है, किन्तु धा० २८० तथा २८२ से प्रसंगतः यह सन्निकट रूप से संबद्ध है : धा० २८० मे कन्ह घोड़े पर युद्ध के लिए चढा है, धा० २८१ मे वह लडता हुआ मारा गया है, और धा० २८२ मे कन्ह के मरने पर जयचन्द के दल की प्रतिक्रिया वर्णित है। इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(१२) धा० ३५३ : ना० मे ४३ ५५ के अनन्तर यह छन्द पुनः ।। ५५ ।। की संख्या देकर दिया हुआ है। किंतु यह पूर्ववर्ती छन्द धा० ३५२ से प्रसंगतः सम्बन्ध है: धा० ३५२ मे गोरी ने तातार खाँ तथा रुस्तम खाँ से कुरान की सौगन्ध लेकर पृथ्वीराज का सामना करने और उसे पकड कर बन्दी करने के लिए कहा है, और धा० ३५३ मे तातार खाँ तथा रुस्तम खाँ ने सौगन्ध लेकर तदनुसार प्रतिज्ञा की है। इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(१३) धा० ४०६ : ना० मे ४६ १३७ के अनन्तर यह छन्द पुनः ।। १३७ ।। की संख्या देकर दिया गया है। किन्तु ऊपर हम देख चुके है कि यह छन्द धा० ४०७ के साथ उक्ति-शृंखला द्वारा संबद्ध है, इसलिए यह प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

द० मे छंद-संख्या व्यतिक्रम

(१) धा० १६ : द० में १ १३५ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। इसमें ढुंढा के द्वारा आनल्ल को राज्य मिलता है। ढुंढा की शेष कथा इसके पूर्व आती है, और धा० १७ की प्रथम पंक्ति मे ही आता है कि आनल्ल ने राजा होकर अजमेर मे निवास किया। अतः यह छन्द प्रसंग में आवश्यक है, और इस प्रति में पाठवृद्धि के परिणाम स्वरूप नहीं आया है, यद्यपि ढुंढा की पूरी कथा के छन्द—जैसा हमने ऊपर ना० स० की पुनरावृत्तियो मे देखा है—प्रक्षिप्त पाठवृद्धि के हैं।

(२) धा० १०९ : द० मे ३४ ५ के अनन्तर 'शुक-चरित्र' के छन्द आते हैं, जो स्पष्ट ही बाद मे

रक्खे गए है, क्योंकि उनकी क्रम सख्याएँ इस खण्ड के बीच होते हुए भी स्वतन्त्र हैं और उनके बाद पुनः पूर्ववर्त्ती क्रम सख्या मे छन्द दिए जाते हैं। किंतु इस बार का प्रथम छन्द भी ।। ५ ।। ही है, जब कि पिछली बार का अन्तिम छन्द ।। ५ ।। था। फिर भी यह छन्द धा० के षट ऋतु वर्णन के छः छन्दो मे से है और इसके अभाव मे एक ऋतु का वर्णन ही नहीं रह जाता है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नही हो सकता है।

(३) धा० १४० · द० मे ३३.६१ के अनन्तर पुनः वही सख्या देकर यह छद दिया गया है। पूर्ववर्त्ती छन्द धा० १३९ मे नगर-वर्णन के अन्तर्गत नायिकाओ के गीत-नृत्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनके भाव का वर्णन करना कठिन लगता है। यह कह कर कहा गया है कि 'उस पट्टन के गृह सँवारे हुए दिखाई पड़े।' इससे ज्ञात होता है कि नायिकाओं का वर्णन धा० १३९ मे ही समाप्त कर दिया गया। अतः धा० १४० मे पुन· उनके गीत-नृत्यादि का वर्णन प्रक्षिप्त लगता है।

(४) धा० १४५ · द० मे ३३.६७ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। इसके पूर्व धा० १४४ में कहा गया है कि 'पृथ्वीराज ने किसी से कहा कि वह सुभट [दरबार तक पहुँचने के लिए] युक्ति पूर्वक कोई श्रेष्ठ हाथी पकड़ लावे।' इस छन्दमे कहा गया है कि यह सुन कर चन्द ने मना किया कि 'यहाँ पर झगड़ा करना ठीक नहीं है, क्योंकि जयचन्द के द्वार पर तीन लाख सैनिक दिन-रात रहते है' और इसके अनन्तर हाथी पकड़े जाने का कोई उल्लेख नही होता है। प्रकट है कि धा० १४५ धा० १४४ से प्रसगतः संबद्ध है, अत. यह धा० १४४ के बाद की पाठवृद्धि का नहीं है, यद्यपि दोनों प्रक्षेपपूर्ण पाठवृद्धि के छन्द हैं, यह हम धा० की उक्ति-शृंखला की त्रुटियो पर विचार करते हुए देख चुके हैं।

(५) धा० २६३ : द० मे ३३.३५५ के अनन्तर पुनः वही संख्या देकर यह छन्द दिया गया है। धा० २६३ मे धा० २६२ मे पृथ्वीराज के इस कथन का उत्तर है कि 'वह अपने सामन्तों का यह बोझ (अहसान) नही चाहता कि, वे अपनी जान गँवा कर इसे बचावें और वह युद्ध छोड़ कर दिल्ली जावे।' धा० २६३ के निकल जाने पर उसके इस कथन का कोई उत्तर नहीं रह जाता है यद्यपि वह सामन्तों के द्वारा उपस्थित की गई इसी युक्ति का अनुसरण करता है, इसलिए यह छन्द प्रक्षिप्त पाठवृद्धि का नहीं है।

(६) धा० २९५ : द० में ३३.४१४ के बाद पुनः वही सख्या देकर यह छन्द दिया गया है। इसमे कन्नौज के युद्ध मे सोलह धराशायी शूरो के नाम देने की बात कही गई है :

✓ परे सूर सोलह तिके नाम आनं।

किन्तु कुल मिला कर केवल बारह ऐसे शूरो के नाम इस छन्द की सूची मे आते हैं; ये हैं : मंडलीराय, माल्हन हंस, जावला, जाल्ह, बाघराय बागरी, बलीराय यादव, सारंग गाजी, पाधरी राय परिहार, साखुला सिंह, सिंहली राव (सिंघ सिंघा—धा०), सातल मोरी, भोज तथा भुआल राय। इसलिए इस छन्द की स्थिति संदिग्ध लगती है। यह अवश्य असम्भव नहीं है कि ऊपर जो बारह नाम दिए गए हैं, उनमें से किन्ही चार में दो-दो नाम मिल गए हों। पूर्ववर्त्ती छन्द धा० २०४ मे भी सोलह सामंतों-शूरों के धराशायी होने की बात कही गई है, और जहाँ-जहाँ धराशायी शूरों-सामंतों की संख्या दी गई है, उनकी नामावली भी दी गई है, इसलिए यह छन्द मूल रचना का भी हो सकता है।

परिणामतः विभिन्न प्रतियो की छन्द-संख्या-व्यतिक्रम से धा० के निम्नलिखित छन्द प्रक्षिप्त ठहरते हैं —

अ० फ० : धा० २८, ३०, ३४३, ३९०।
ना० : धा० ६७ अ, ११३, ११४।
द० : धा० १४०।

धा० के प्रक्षिप्त छंद

ऊपर विभिन्न उपायो का अवलम्बन करके हमने देखा है कि धा० मे वार्त्ताओं के अतिरिक्त निम्नलिखित छन्द और छन्दांश प्रक्षिप्त ठहरते हैं :—

धा० १, ३-१९, २१, २६, २८-३०, ६१, ६७ अ, ६९, ७९-८२, ११३, ११४, १२१ के अंतिम दो चरण, १२५, १२६, १४०, १४३, १४४, १४५, १५०, १५६, १५७, १९४, २०८, २२४, २३९ के चरण २२ ३५, २४३, २६९ के अंतिम दो चरण २९१, २९२, ३०८, ३४३ ३४५, ३५६, ३५७, ३५९, ३६१, ३९०, ३९६, ४०३, ४१४, ४२१ ।

उपर्युक्त के अतिरिक्त धा० का केवल निम्न लिखित छद और प्रक्षिप्त ज्ञात होता है :—

(१) धा ० २७ : यह ढीली कीली कथा का एक मात्र छंद है जो धा० में आया हुआ है : इसमे जगजोति व्यास के द्वारा अनंगपाल को [ढीली की] कीली ढोली करने का परिणाम यह बताया गया है कि तोमरो के बाद चहुवान और चहुवानो के बाद तुर्क दिल्ली के अधीश्वर होगे। किन्तु अनगपाल तोमर ने कीली किस प्रकार ढीली की, और वह कीली कैसी थी आदि किसी बात का उल्लेख धा० के अन्य किसी छद मे नही होता है। अनगपाल तोमर और दिल्ली-दान के संबध के धा० के अन्य छद भी (धा० २६, २८, ३०) ऊपर प्रक्षिप्त प्रमाणित हो चुके है। इसलिए धा० २७ भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है। प्रक्षेप-क्रिया के समस्त चिह्न प्राप्त प्रतियों से किसी न किसी मे सुरक्षित है, यह नही माना जा सकता है, इसलिए इस प्रकार के एकाध अपवाद के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

धा ० मे छूटे हुए छंद

धा ० मे केवल निम्न लिखित दो छद छूटे जान पड़ते है, जिन्हें प्रसग की दृष्टि से मूल का मानना आवश्यक जान पड़ता है :—

(१) मो० ३४५ : यह छंद धा० के अतिरिक्त सभी प्रतियों मे है। इसमें कन्ह के धराशायी होने पर अल्ह के युद्ध मे प्रवृत्त होने का उल्लेख होता है। धा० २८३ में उसके लड़ते हुए धराशायी होने का उल्लेख है। इसलिए उसके युद्ध मे उतरने के सबध का मो० ३४३ भी प्रसग अनिवार्य है।

(२) अ० ६. दो० ९ : यह छन्द धा० मो० मे नहीं है, शेष समस्त प्रतियों मे है। इसमें जयचन्द की दूती द्वारा यौवन की महत्ता प्रतिपादित करने वाले कथन का संयोगिता द्वारा दिया गया उत्तर है। यह उत्तर प्रसंग मे नितान्त आवश्यक है क्योंकि अन्यथा उक्त दूती का कथन उत्तरहीन रह जाता है, यद्यपि सवाद आगे चलता है, और सयोगिता उसका उत्तर न दे इस बात का कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता है। अतः यह छद भी मूल पाठ का प्रतीत होता है।

एक प्रति मे एक छन्द का छूटना साधारण बात है, और दो प्रतियो मे भी किसी एक छोटे छन्द का स्वतंत्र रूप से अलग-अलग छूट जाना असंभव नही है, इसलिए इन दोनों छदो को मूल का स्वीकार करना चाहिए।

उपर्युक्त प्रक्षिप्त छन्दों और वार्त्ताओं को निकाल देने तथा इन को छन्दों दो सम्मिलित कर लेने पर धा० का आकार प्रसग-श्रृंखला, उक्ति-श्रृंखला, प्रबंध-श्रृंखला आदि की समस्त दृष्टियों से इतना सुगठित हो जाता कि वह मूल का प्रतीत होने लगता है।[1] आगे हम देखेगे कि वह अन्य प्रकारों से भी प्रायः मूल का ही प्रमाणित होता है।

[1] इन छदों की ग्रंथ की विभिन्न प्रतियों में पाठ स्थिति के लिए दे० आगे 'पृथ्वीराज रासो के निर्धारित मूल रूप की छद-सारिणी' शीर्षक।

—:*:—

४. पृथ्वीराज रासो
का
मूल रूप (पाठ)

मूल रचना मे कौन-कौन से छंद रहे होंगे यह निर्धारित कर लेने के बाद पाठभेद के स्थलों पर कौन से पाठ स्वीकृत होने चाहिए और कौन-से नहीं, यह निर्धारित करना रह जाता है। इस प्रकार के पाठ-निर्धारण का कार्य सन्तोषजनक रूप से तभी सभव हो सकता है जब विभिन्न प्रतियों का पाठ सबध निर्धारित हो जावे। यह अवश्य है कि इस प्रकार का सबंध-निर्धारण हम विभिन्न प्रतियों के उन्ही अंशो तक सीमित रख सकते हैं जो ऊपर निर्धारित मूल के अन्तर्गत आते हैं, क्यों कि हमारा अभीष्ट इसी मूल का पाठ-निर्धारण है। ये प्रतियाँ अपने अन्तिम रूपो में परस्पर किस प्रकार सबद्ध हैं, यह निश्चय करना प्रस्तुत कार्य के लिए आवश्यक नही है।

इस पाठ-संबंध-निर्धारण के लिए हमे विभिन्न प्रतियो में इन्हीं छदों में आने वाली ऐसी समस्त पाठ विकृतियो का लेखा लेना होगा जो किन्ही भी दो या अधिक प्रतियो के पाठ-संबंध पर प्रकाश डाल सकें। केवल सुनिश्चित पाठ-विकृतियो की ही यहाँ लिया जा सकेगा। ये प्रायः सपादित पाठ मे निर्दिष्ट स्थलो को देखने पर स्वतः स्पष्ट हो जावेंगी, इसलिए नीचे संपादित पाठ और उसके अनतर विकृत पाठ देते हुए इनके सबंध मे वहीं पर कुछ विस्तार से कहा जावेगा जहाँ इनके सबंध मे संकेत करना मात्र पर्याप्त न समझा जाएगा।

धा० मो० म० ना० उ० ज्ञा० स०

(१) धा० ३०३. ३ हर हथ्थहि हरि गहहि वाम रष्षिहि इनि वारहि।
प्रसग पहाड़ राय तोमर द्वारा किये हुए भयानक युद्ध का है। इन प्रतियो मे 'हर हथ्थहि' के स्थान पर धा० मो० मे 'हरि हथ्थहि', ना० मे 'हरि हत्थह' और यह म०उ०स० में 'हरि हथ्था' है।

(२) धा० ३२४. २. संजोगि जीवन जंबनं।
सुनि श्रवण दे गुरुराजनं।

प्रसग सयोगिता के नख-शिख वर्णन का है। इन प्रतियों में 'श्रवण दे' के स्थान पर पाठ 'सर्वदा' है।

(३) धा० ३२४.७ : नग हेम हीर जु थप्पनं।
गय हस मग्ग उथप्पनं।

प्रसंग सयोगिता के चरणो के वर्णन का है। इन प्रतियो मे 'हीर' के स्थान पर पाठ 'हंस' है।

धा० मो०

(४) धा० १३६'३२ : रोहि आरोहि मंजीर संदं।
मन्द मृदु तेज परवीर वंदं।

प्रसंग सयोगिता के नूपुरो की ध्वनि के वर्णन का है। धा० मो० मे परकीर (<प्रकीर) के स्थान पर 'प्राकार' है।

(५) धा० १६९.२ : जे त्रिय पुरुष रस परस बिनु उठिग राय सुर सान।
धवल गृह ते अनसरइं भट्टहिं अप्पन पान॥

प्रसंग स्वतः प्रकट है। धा० और मो० में 'भट्टहि अप्पन' के स्थान पर क्रमशः है 'रिपु मंगन सू' तथा 'रिपु मंगन वह'।

(६) धा० १८८.१ : काती भार पुरा पुनर्विगलित शाखान गंड स्थलं।
उच्छं तुच्छ तुरा स शशिकमन करि कुभ निद्धाडियं।

प्रसग प्रात. की वेला के वर्णन का है। धा० मो० मे 'काती भार' के स्थान पर पाठ 'काता भार' है।

(७) धा० १९३.२ : सुनि तंबोल पट्टिय तुक्र बर उठि दिट्ठिअ बंक।
मनु रोहनि सु यमुन मिलिग मनु बिबि उदित मयंक॥

प्रसंग थवाइत वेषधारी पृथ्वीराज के द्वारा जयचन्द को पान अर्पित किए जाने का है। धा० और मो० में 'मनु रोहनि सु यम्मुन मिलिग' के स्थान पर क्रमशः है 'मनो मोहनि सु मन मलिग;' तथा 'मन मोहनि सुं मन मिलिग'।

मो० ना० उ० ज्ञा० स०

(८) धा० ३४७–३५० : सहहिं भीर त्रिप पी जिहिं जिन सिर झरहि हुवार।
लाज धरहिं तिनबरि गणहिं ते पुहु 'पच हजार'॥
'पंच हजार' ति मझ्झि 'दुइ' जे अगुया बर सामि।
कर वज्जइ वज्जइ सहइ ते 'सै पंच' अछूछामि॥
तिन महि 'सौ' जे भय हरण सील सन्त जम जित्त।
तिन महि 'दस' वारण दलण उपपारहि गयदन्त॥
तिन महि 'पंच' प्रपंच सं लखिय न गति तिन काज।
देवग्गति देवानसउ तिन महि पहु प्रथिराज॥

प्रसंग पृथ्वीराज की सेना-वर्णन का है। इन प्रतियो मे उपर्युक्त (१) 'पच हजार', (२) 'दुइ' [हजार], (३) 'सै पच', (४) 'सौ', (५) 'दस' तथा (६) 'पंच' के स्थान पर क्रमशः (१) 'बीस हजार' (२) 'दस [हजार]', (३) 'पच [हजार]', (४) 'दोइ [हजार]' मो०, 'बीस से'—ना०, 'पञ्च से'—ज्ञा० (५) 'दस' सइं, (६) 'पञ्च सइ' है।

(९) धा० ३६२.२७ : परे सहस 'सोरह' सह सेन गोरी।

प्रसंग गोरी-पृथ्वीराज युद्ध मे गोरी की सेना के सहार का है। इन प्रतियो मे 'सोरह' के स्थान पर 'पचीस' है।

(१०) धा० ३८६ : भय विहान 'सुरितान' दर वज्जि निसांन निसांन।
तम चूरन जूरण किरणि त प्रगटि दिसांन दिसांन॥

इन प्रतियों मे 'सुरितान' के स्थान पर 'सु विहान' है, जब कि पूववर्ती शब्द भी 'विहान' है।

मो० ना०

सुनत बोल हेजमइ उठत दिसित चन्द हित ताहि।
त्रिय अग्गइ गुदरन भयउ जहां पंगु त्रिय आहि॥

ना० मो० में इसके पूर्व निम्नलिखित दोहा आता है (ना० पाठ) :—

सुनत हेत हेजम उद्यो कह्यो चन्द कवि आउ।
बलि समान बलि कान सुत इह भौमी मान राउ॥

ना० मे धा० १४७ के दोहे को इस दोहे का 'पाठान्तर' कहा गया है।

(१२) धा० २९७ ६ : बलि गयउ न मंदिर दिसि रहउ मरण जाणि झुझ्झउ अनी।
विंझ लगि दाग तिलक मिसि 'बहु बहु बहु भग्गुल धनी'॥

प्रसंग पृथ्वीराज की रक्षा के लिए हुए 'विंझराज' के युद्ध का है। इन प्रतियों में 'बहु बहु बहु भग्गुल धनी' के स्थान पर पाठ है : मो० 'बहुल भगि समरि धनी' ना० [वा] हु भंग, समर धनो'। विंझ ने पृथ्वीराज की ओर से युद्ध किया था (धा० ३०४) इसलिए 'बहुल भंगि समरि धनी' अथवा '[वा] हु भंग समरि धनी' पाठ असम्भव है।

(१३) धा० ३१६ १ : तब 'गुरराज राज कवि' बुझ्झइ।
तुहि बरदाइ तिन्न पुरु सुझ्झइ।

इन प्रतियों मे 'गुरराज राज कवि' के स्थान पर पाठ है : मो० 'गुरु राज राज गुरु' और ना० 'कविराय राजगुर'। दूसरे चरण से प्रकट है कि प्रश्न बरदाई से राजगुरु ने किया है।

(१४) धा० ३२४ ४१ : 'मणि बन्ध' पुच्छ सु दीसये।
जानु कन्ह कालीय सीसये।

प्रसग संयोगिता के नख-शिख वर्णन का है। इन प्रतियों मे 'मणि बन्ध' के स्थान पर 'मणि बिब' है।

(१५) धा० ३७६.१ : 'हउं सु जोगिय हउं सु जोगिय' जनन परिहार।

प्रसंग गोरी के दरबान के द्वारा चंद से किए गए 'किमि तइं जोगी भयु भट्ट' विषयक प्रश्न के उत्तर का है। इन प्रतियों मे 'हउं सु जोगिय हउं सु जोगिय' के स्थान पर है : मो० 'तब पेखुरी' ना० 'तव पिष्षै'। किन्तु दरबान चन्द को पहले ही देख चुका है (धा० ३७५.३); यहाँ तो दरबान के प्रश्न का उत्तर चन्द के द्वारा दिया जाना चाहिए था।

धा० अ० फ० म० ना० उ० ना० स०

(१६) धा० १०११ : आनंदउ 'कविचंदु जिय' निप किय सच विचार।

प्रसग कन्नौज ले चलने के लिए चन्द से पृथ्वीराज द्वारा किए गए अनुरोध पर चंद के आनदित होने का है। इन प्रतियो मे 'कवि चंदु जिय' के स्थान पर पाठ है : धा० 'कवि के वयनु', अ०फ० 'कवि सुनि वयनु', म० 'कवि वयन विनु', ना० 'कवि इक वयन', उ०स० 'कवि के वयन'। इस छन्द के पूर्व सभी प्रतियों मे पृथ्वीराज के वाक्य आते हैं, इसलिए इन प्रतियों के पाठ सम्भव नहीं हैं।

(१७) धा० १२१. १३.१४ : पुह फटिग घटिग सरवरि सरीर।
झलकंति वनंक दिष्य गम नीर।

इन प्रतियों में ठीक इसके पहले और है :—

घर हरिग सीत सुर मंद मंद।
उप्पज्जो जुद्ध आवध्ध दंद॥

किन्तु यहाँ प्रसंग पृथ्वीराज के कन्नौज पहुँचने मात्र का है, युद्ध के छन्द तो बहुत बाद में प्रारम्भ होते हैं।

(१८) धा० १७२.१० : धनुष्य भउंह अंकुरे
नयन्न बान बंकुरे।

प्रसंग जयचन्द की दासियों के नख-शिख का है। इन प्रतियों मे 'नयन्न बान' के स्थान पर पाठ 'मनो नयन्न' है, किन्तु 'नयन' भौंहों के उपमान नहीं हो सकते हैं।

(१९) धा० १९६.६ : पारस्व मडि प्रथिराज कउ कहइ भले रजपूत सउ ।

प्रसंग छद्मवेशी पृथ्वीराज को जयचन्द के पहचानने और उसको पकडने की आज्ञा देने पर पृथ्वीराज के सामंतों की प्रतिक्रिया का है। इन प्रतियों मे पाठ है धा० म० उ० स० 'सावत सूर इसि राजसूं (सौं—म०)', अ० फ० 'सावत सूर हरि परसपर', ना० 'भर भरणि आउ पुज्जीय घरीय'। 'पारस्व मडि प्रथिराज कउ' (=पृथ्वीराज के पार्श्व में आकर) के एक दुर्बोध पाठ को हटाकर इन प्रतियों में एक सरल पाठ को रक्खा गया है।

(२०) धा० २१०.१ : जउ इन लष्पन सउ सहित विचार न तत्व करि।

प्रसंग संयोगिता के अपनी दासी को मोतियों का थाल लेकर पृथ्वीराज के पास भेजने का है। इन प्रतियों में 'सहित' शब्द नहीं है। 'इन लष्पन' शब्दों से प्रकट है कि 'सहित' होना चाहिए।

(२१) धा० २११.३ : कमलिति कोमल पांनि कलिकुल अंगुलिय।

प्रसंग उपर्युक्त दासी के मोती अर्पित करने का है। इन प्रतियों में 'कलि कुल' (=कलिका-कुल) के स्थान पर 'केलि कुल' है, जो उँगलियों के लिए निरर्थक है।

(२२) धा० २२९.२ : बहुत जतन संजोगी सम्भवै।
सोम अमृत कमल तुम्ह सु छवै।
इह कहि बाल गवष्षिन पत्तिय।
पति देषत मन महि नहि रत्तिय।

प्रसंग संयोगिता को वरण करके पृथ्वीराज के चले जाने पर उसके विरह का है। इन प्रतियो में दूसरे चरण का पाठ है : धा० अ० फ० 'सोम कमल अम्रित दरसाए,' म० ना० उ० स० 'सोम कमल दिनयर दरसाए'। कहा गया है "[उस विरह-दाह को शांत करने के लिए] संयोगिता ने बहुत से उपाय किए, [किन्तु कोई लाभ न होता देखकर] वह कहने लगी, 'हे सोम, अमृत और कमल तुम्हें [कोई] न छूवे।' और यह कह कर वह गवाक्षों तक गई···।" इन प्रतियो का पाठ चरण तीन के 'इह कहि' को निरर्थक कर देता है। 'दरसाए' तो निरर्थक है ही—कमल और अमृत के दरसाने से कोई शीतलता नही प्राप्त होती है।

(२३) धा० २२९.३ : ऊपर के छन्द में तीसरे चरण का पाठ इन प्रतियों में है : 'उझकि झकि दिष्षउ पन पत्तिय'। यह परिवर्तन पूर्ववर्ती से संबद्ध है।

(२४-२५) धा० २३९.२०, २२ : दरसी दल कांदल झल्लरियं। (१९)
समरे घर कायर बल्लरियं। (२०)
जिनके मुष मुच्छ ति मच्छरियं। (२१)
निरषे तिनके तन अच्छरियं। (२२)

इन प्रतियों में २० तथा २२ वें चरण नहीं है, स्पष्ट है कि वे छूटे हुए हैं।

(२६) धा० २५०.३ : नीच कंधे 'म्रही' रोम सीस।

प्रसंग मीर बंदन के वर्णन का है। इन प्रतियो में 'म्रही' के स्थान पर पाठ 'तुच्छ' है। 'म्रही' का अर्थ 'झड़े हुए' होता है और वही संगत लगता है। यहाँ अर्थ की दुर्बोधता के कारण सरल पर्याय रख दिया गया है।

(२७) धा० २६२.१ : मति घट्टी सामंत मरण 'हउ' मोहि दिखावहु।

इन प्रतियों में 'हउ' के स्थान पर 'भय' है। 'हउ' 'भय' का अपभ्रंश रूप है, किन्तु 'भय' की अपेक्षा 'हउ' (<हउआ) अधिक उपयुक्त शब्द है। 'हउ' दुर्बोध होने के कारण बदल दिया गया, और कर उसके स्थान पर 'भय' कर दिया गया है।

(२८) धा० २६९.९ : धर षेह मऊष त पीत पनी। (९)
दिषि लज्जति रेण सरद् तनी। (१०)

चरण ९ का पाठ इन प्रतियों मे है : धा० अ० फ० 'हरिपत्थि हिमाउत पीत पनी', ना० उ० स० 'हरिपष्ष हुमा (इमा–स०, उमा–उ०) उपवीत (उअपीत–स०, पतिपीत–उ०) बनी (पनी–ना० उ०)' । प्रसग सेना के प्रयाण का है । निर्धारित पाठ का आशय है : 'धरा की धूल [उड़कर] सूर्य की किरणों मे [ऐसा] पीलापन ला रही है ......।' इन प्रतियों के पाठ निरर्थक हैं।

(२९) धा० २७०.२ : 'विजे सव सेन' तिक्के नकरे।

इन प्रतियों मे 'विजे सव सेन' के स्थान पर पठि है : धा० अ० फ० ना० 'विडुरिय सेन', म० उ० स० 'डरं विड्डुरो सेन' । 'विज्' का अर्थ भागना होता है, उसके स्थान पर उसकी दुर्बोधता के कारण प्रसग से समझकर 'विड्डरिय' शब्द दे दिया गया है।

(३०) धा० २७३.१ फुनि प्रथिराज अछि्छ 'देह' वलु रट्टिवर नरेस।
सिर सरोज चहुआंन कउ अमर सस्त्र सम भेस ॥

इन प्रतियो में 'देह' के स्थान पर 'दल' है। संपादित पाठ के प्रथम चरण का अर्थ है : 'फिर पृथ्वीराज को आँखो से देखकर राठौर नरेश [जयचद] धूम पड़ा।' 'देह' का अर्थ देखना है, उसको न समझ कर प्रसग के सहारे पाठ 'दल' कर दिया गया है।

(३१) धा० २८५.३ : मछ्छ तिहेवर फुरहि कछ्छ गज कुंभ 'विदारहि'।
उअहंस उड़ि चलहि हंसमुख कमल विराजहि ॥

इन प्रतियो मे 'विदारति' के स्थान पर भी 'विराजति' है जो उसके तुक में बाद की ही पंक्ति मे आता है।

(३२) धा० ३२७ : उहि उहि उभय रस उप्पजउ मिले चन्द गुरुराज।
कइ बन्धव सउं मनसिनउ कइ धन निरिष्षवति राज ॥

इन प्रतियो मे द्वितीय चरण का पूर्वार्द्ध है : धा० 'के वयनन अयनन' मिलहि, अ० फ० 'कै पिय वहि अवनिहि मिलै', ना० 'के वयन अपन न मिलनि', शा० स० 'कव वयनन आनन मिलै'। प्रसग पृथ्वीराज की विलास-मग्नता का है; दूसरे चरण में गुरु राज तथा चंद का यह सम्मिलित अनुमान दिया गया है कि 'या तो राजा बांधवों से मनसिन् (उनका ध्यान रखने वाला) होगा, और या तो वह अपनी स्त्री (संयोगिता) को ही देखेगा (उसी पर ध्यान देगा)।' प्रकट है कि इन प्रतियों का पाठ निरर्थक है, और एक दुर्बोध पाठ के स्थान पर इनमें एक सरल पाठ प्रसंग की सहायता से रखने का प्रयास किया गया है।

(३३) धा० ३३१.१ : 'आसन आइस सुधि दिय' कच झारिय तइ रेनु।
सुभ सिंगार सुंदरिय 'अंगे आभरनेन' ॥

प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध का पाठ इन प्रतियों में है : धा० 'आसन असु दिय चरन की', अ०फ० 'आसन दिय अनु चरन (बरनि) परि', ना० 'आसन असु दिय चरन किय' शा० स० 'आसन असु दिय चरन रज'। किंतु चरण पड़ने की बात तो पूर्ववर्ती छंद में आ चुकी है :

तब कुडिल भोह चष सोह ति मोहन दास दस।
कछु हंसि कछु पय लग्गि पयंपइ लीय रसि ॥

(३४) धा० ३३१.२ : पूर्वोल्लिखित दोहे के ही द्वितीय चरण का उत्तरार्द्ध इनमें है : धा० अ०फ० शा० स० 'आदर आभर नैन (आभरनेन–धा०)' ना० 'आभर आभ नैन'।

इन प्रतियों का पाठ निरर्थक है यह प्रकट है।

(३५) धा० ३३८.२ : कहु सु प्रिथह पउमिनिय कंत धनु धरउ तउ न धन ।
सुर सुप मार आरोहु 'असर' संसार मरण मन ॥

इन प्रतियों में द्वितीय चरण के 'असर' के स्थान पर पाठ 'सार' है। 'असर' का अर्थ है अ+स्मर काम विहीन है, और वही सार्थक है। 'सार' प्रसंग में निरर्थक है। 'असर' का अर्थ न समझ पाने के कारण पाठ-परिवर्तन किया गया है।

(३६) धा०-३.४.२ : मेछह मरूरति रत्ति किय बंचि कुलीन कुरान।
'बीर थिवकु वतनिह कियउ' दिअउ मिलांन मिलांन ॥

इन प्रतियों में दूसरे चरण के पूर्वार्द्ध का पाठ है : 'बीर विचार ति (त—अ०) रत्त (रत्ति-धा० अ० फ० हुअ)'। स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा 'तथैव उन वीरों ने बातें थोड़ी कीं।' 'थिवक (< स्तोक)' को न समझ पाने के कारण पाठ-परिवर्तन किया गया है।

(३७) धा० ३६०.५ : बढ़े सो ओलग्गी बजी धार धारं।
भयो सेन दुम्मइ दुइ आर आरं।

उद्धृत प्रथम चरण का पाठ इनमें है : धा० शा० स० 'वढ़ी संग लग्गी (लज्जी-धा०, लागी शा०)', अ० फ० 'बड़ी अंग लग्गी', ना० 'दढ़ी लिग लग्गी'। ये सभी पाठ निरर्थक हैं, और 'ओलग्गि (<अवलग्न) भृत्य' के अर्थ को न समझने के कारण पाठ-परिवर्तन किया गया है।

(३८) धा० ३.८.१ : तिहि आयउ तुहि आस करि तुहितु रास चहु आंन।
सोइ दुरोग लग्गहुँ मनह कढ़न कउ सु दिहान ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण का पाठ है : 'अप्रमान (वा सुलंत शा० स०) कंप्यो (करयरो-धा०) हियौ दिल न रह्यौ (रहै–धा० ना० थिर थान (काम–धा०)'। ये पाठ प्रसंग में निरर्थक हैं, यह स्वतः देखा जा सकता है।

धा० अ० फ० ना०

(३९) धा० ३८३.४ : अमिय कलस आयास लिअउ अच्छरी उछंगह।
तब सु भई परतक्खि 'अरीत अरीत कहत कह' ॥

उद्धृत दूसरे चरण के उत्तरार्द्ध का पाठ इन प्रतियों में है 'सद् जय जय सु कह कह'। 'अरीत (<अरिक्त)' का अर्थ न समझने के कारण यह पाठ-परिवर्तन किया गया है : दुर्बोध पाठ को निकाल कर प्रसंग से अनुमोदित एक सुगमतर पाठ दे दिया गया है।

(४०) धा० ३८०.२: हदफ साह पेरन चढ़उ मनुहु 'उब्बउ अरुणंन'।

इन प्रतियों में 'उब्यउ अरुणंन' के स्थान पर पाठ है 'उदधि अररान।' हदफ (=लक्ष्यवेध) खेलने के लिए घोड़े पर सवार हुए शाह की कल्पना 'उदित अरुण' के अप्रस्तुत के साथ ही संगत लगती है, 'उदधि अररान' की उक्ति तो किसी 'सेना' के ही अग्रसर होने के सम्बन्ध में संगत हो सकती थी।

धा० अ० फ०

(४१) धा० ५७.३,.४ : 'जिउ' सूर तेज तुच्छत जल मीनह।
'तिउं' पंगह भय दुज्जन भय षीनह।

इन प्रतियों में दोनों चरणों में 'जिउं' और 'तिउ' नहीं हैं। इनके न होने से अर्थ दुरूहता से लगता है; केवल छन्द में मात्राधिक्य समझ कर इन शब्दों को निकाल दिया गया है।

(४२) धा० १०२.२ : चलउं भट्ट सेवग होइ सत्थहं।
जउ बोलउं 'त हत्थु तुह मत्थहं'।

इन प्रतियों में दूसरे चरण का उत्तरार्द्ध है 'अत्थि डुल्लै धुव', जो निरर्थक है। यह 'तुम्हारे मस्तक पर मेरा हाथ है' की सौगंध न समझ पाने के कारण बदल कर किया गया है।

(४३) धा० १९०.१ : मिसि वज्जहि गंगह रवनि 'दान कवि पति सेइ' ।
चढित सुषासन समुह हुअ सब सामंत समेव ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण का उत्तरार्द्ध है : 'धा०... ..मोह, अ० फ० 'कवि पति मृत (भृति-अ०) समूह (मूह—अ०)'। धा० त्रुटित है किन्तु उसके पाठ के अन्तिम अक्षर 'मोह' 'समूह' का ही कोई अंश है—उकार, ऊकार और ओकार मे प्रायः भ्रम किया जाता रहा है।[1] यह पाठ असगत और अर्थहीन है,यह स्पष्ट है, स्वीकृत पाठ ही सार्थक है।

(४४) धा० २२७.३ विन उत्तर 'तु मौन' मुष रष्षी।
जिम चातुकि पावस रति नष्षी।

उद्धृत प्रथम चरण के 'तु मौन' के स्थान पर धा० अ० में है 'मोहन'; फ० में यह चरण छूटा हुआ है। 'मोहन' प्रसग में निरर्थक है।

(४५) धा० २४७.१,.२ : गहि गहि कहि सेना ति सह 'चलि हय गयं मिलि तव्व।'
जिम पावस पुव्वइ अनिल 'हलि गत वद्दल सव्व॥'

इन प्रतियों मे प्रथम तथा द्वितीय चरणों के उत्तरार्द्ध क्रमशः हैं 'चलि (हलि—फ०) हय गय मिलि इक्क,' तथा 'हति वद्दल (चदलु—फ०) वहु भिष्ष (मेत्र—धा०, मषि—फ०)'। 'इक्क' पाठ प्रसंग में सर्वथा निरर्थक है, यह प्रकट है। दूसरे चरण में पाठ-परिवर्तन 'हलिगत=हिलगत्=—आस-पास आ जाते हैं' को न समझ पाने के कारण किया गया है।

(४६) धा० २६०.१ : यतो नीरं ततो नलिनी यतो नलिनी ततो नीरं।
त्यजति ग्रहं न यत्र ग्रहनी यतो नलनी ततो ग्रहं।

इन प्रतियों मे प्रथम चरण का उत्तरार्द्ध भी वही है जो पूर्वार्द्ध है : 'यतो (जैतो—अ० फ०) नीर ततो नलिनी'। अशुद्धि प्रकट है।

(४७) धा० २८७.६ . सामंत पंच षेतह परिग भिरइ भंति भए 'विप्पहर'।
इन प्रतियों मे 'विप्पहर'=दो पहर, के स्थान पर 'विष्पहर' है। अशुद्धि प्रकट है।

(४८) धा० ३०४.२ : 'काम' वान हर नयन निडर नीडर सोइ सुझ्झर।
इन प्रतियों में 'काम' के स्थान पर पाठ 'इक्क' है। प्रसंग विभिन्न सामतों के पृथ्वीराज को कन्नौज से दिल्ली की दिशा मे आगे बढ़ाने की दूरी का है। धा० २७६ मे नीडर के सम्बन्ध में कहा गया है :

नीडर निसक झुझ्झत रण अट्ठ कोस चहुआंन ग्रयु।

इस 'अठ' की सख्या के लिए 'काम वाण (५)+हर नयन (३)' पाठ ही ठीक है, 'इक्क वाण हर नयन' स्पष्ट ही अशुद्ध है।

(४९) धा० ३११.१ दादुर 'सादुर' सोर नव पुर नारि घन।
इन प्रतियों मे 'सादुर' शब्द नही है। 'दादुर' से वर्ण-साम्य होने के कारण प्रतिलिपि करते समय यह शब्द छूट गया है, यह स्वतः प्रकट है।

(५०) धा० ३१८.३ : 'जिहि' धन त्रिअ सरणु त्रिनि वर जाने।
सो काम देव त्रिअ वसि करि माने॥

इन प्रतियों मे 'जिहि' शब्द नही है। छद का मात्राधिक्य ठीक करने के लिए यह निकाल दिया गया है, यद्यपि इससे वाक्य अपूर्ण रह जाता है।

[1] देखिए इसी भूमिका में 'प्रयुक्त प्रतियाँ और उनके पाठ' शीर्षक के अन्तर्गत [illegible]

(५१) धा० ३५३.१, २ तब षांन षुरासान ततार षांन रुस्तम कर जोरइ।
. आन साहि मरदान आन सुविहान विछोरहि।

इन दो चरणों के स्थान पर धा० तथा अ० में एक ही चरण है:

धा० तबहि षान षुरसान षान रुस्तम विच्छोरहि।

अ० फ० षां षुरसान ततार षान सुविहान विछोरे।

ऐसा लगता है कि प्रथम चरण के 'कर' से लेकर द्वितीय चरण के 'आन' तक का अंश निकला हुआ था, धा० या उसके किसी पूर्वज मे दूसरे चरण के 'सुविहान' तथा अ० या उसके किसी पूर्वज में 'रुस्तम' को निकाल कर पंक्ति की मात्राएँ ठीक करली गईं। फ० मे यह भूल नही है, किंतु फ० के परिचय में ऊपर हम चुके हैं कि उसमे ऐसे लगभग ९० छंद है जो अ० के छंदो की क्रम-संख्या के बाहर पड़ते हैं और ना० तथा स० मे मिलते हैं। इस लिए यदि का फ० का पाठ उक्त पाठ-मिश्रण के अनंतर ठीक कर लिया गया हो तो आश्चर्य न होगा।

(५२) धा० ३६२.१९: परे चाइ चालुक्क ते साटिटूने।
मुरे मोरिआ सब्ब भये जात सूने॥

अ० फ० में उद्धत प्रथम चरण की 'साठि' तक की शब्दावली नही है। धा० मे इस छूटी हुई शब्दावली के स्थान पर है: 'निने नूप सा सूप भ.खेन' जो कि सर्वथा निरर्थक है, और केवल चरण पूर्ति के लिए गढ़ ली गई है।

(५३) धा० ३९३.२ : हमहि मिलइ जि चंद सुनि चरह दलिद्दी लोभ।
अरु जि दुनी महि संचरइ हम सउं मिलत न सोभ॥

द्वितीय चरण का उत्तरार्द्ध इन प्रतियों मे है: धा० 'हय गय गहि न सोभ', अ० फ० 'हय गय महि तन सोभ'। संभवतः पूर्व में पाठ त्रुटित होगया था, उसके स्थान पर प्रसंग के अनुकूल एक नवीन पाठ की कल्पना कर ली गई।

(५४) धा० ३९९.३ : बहुन वउ पतिसाहि तुही।
मन मझ्झ रहउ कवि साल जु ही।
गयउ तु आज करि पइज्ज तुही।
बनि जाउं साहि सुरतान मही।

तीसरे चरण का पाठ इनमें है: 'दे अज्ज किधौं करि हे (करिहुं–अ०, करिहो फ०) जु (कि–अ०, के–फ०) नही'। प्रथम तथा द्वितीय चरणो के साथ स्वीकृत पाठ ही संगत है। प्रसग यहाँ पर 'साल' = 'शल्य' का है। चंद गोरी से कहता है कि "(१) उस शल्य को काढ़ने मे तूही समर्थ है [२] यह जो शल्य कवि के मन में [खटकता] रहा है, [३] वह आज गया ही है यदि तू [उसके निकालने की] प्रतिज्ञा कर, [४] और (तदनतर) हे सुल्तानो के शाह, मैं बन चला जाऊँ [यही मेरे मन में है]।" प्रकट है कि इस प्रसंग में गोरी से 'नही' कराने की बात, जो इन प्रतियों के पाठ मे आती है चंद मुख पर भी ला नहीं सकता था।

अ० फ० म० ना० उ० ज्ञा० स०

(५५) धा० २४२.१ : सुनि वज्जन राजन चढिग 'बहु दब्बर समझाउ।'
मनुह लंक विग्रह करन चलउ रघुप्पतिराउ॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के उत्तरार्द्ध के रूप मे है: 'सहस संष धुनि चाव (चाय–म०, चाउ ना०, चाइ–उ० स०)'। इन प्रतियो मे आगे शंखध्वनि नाम के योगी-दल का प्रक्षिप्त प्रसग है। हो सकता है कि इन प्रतियों के इस पाठांतर का संबंध उक्त प्रक्षेप से हो। अन्यथा युद्ध के प्रसंग में शंखध्वनि का उल्लेख ग्रंथ में नहीं हुआ है।

(५६) धा० ३१२.४ : केवर भाष पराक्रति संक्रति देव सुर।
के गुन ग्यान सुजान विराजहि राजवर।

उद्धृत दूसरे चरण का पाठ इन प्रतियों मे है : 'के वरवीन विराजहि वीर वर', फ० 'के वरि वीन प्रवीनु विराजहि वीर वर', म० 'के वर वीन विराजत राज दरवार वर', उ० स० 'के बर वीन विराजित राजहि वार पर'। किंतु वीणा में प्रवीण दासियों का उल्लेख इसके पूर्ववर्ती छंद में ही हो चुका है।

तहं तहं अथ्यि सुवीन प्रवीन ति दासि दस।

इस लिए इन प्रतियो की पाठ विकृति प्रकट है।

(५७) धा० ३२६.१ : किय अचिरज तब राजगुरु न्यायनु राज रस रत्त।
जस भावी नर भोगवइ तस विधि अप्पइ मत्त।

इन प्रतियों में प्रथम चरण का पाठ है: 'मानि (मन्नि-शा० स०) राजा गुरु राजरस (रसि–फ०) तैं कवि (कविवर-ना० शा० स०) बरनी (चरनी-फ०) सत्ति।' 'न्यायनु राज रसरत्त' मे पृथ्वीराज के भावी पतन की जो व्यंजना है, वही चरण २ के साथ सगत है, इन प्रतियों के पाठ मे वह सगति नहीं है।

श० फ० ना०

(५८) धा० ३०२ : परत बघेल सु मेल किय रन राठउर सु भार।
'जब दसकोस ढिलिय रही' फिरि तोमर पाहार॥

इन प्रतियों में द्वितीय चरण के पूर्वार्द्ध के स्थान पर है 'दस योजन ढिल्लीय रहि (ढिल्ली परहू—ना०)'। कुल दूरी कन्नौज और दिल्ली के बीच 'पाच षाट सो कोस' कही गई है (धा० २६६.३), और इस दूरी को ग्यारह सामन्तों ने निपटाया है, जिनमे से अन्तिम पाहाड़ तोमर है (धा० ३०४)। प्रकट है कि यह दूरी जिसे पाहाड़ तोमर ने तै कराया दस कोस की ही हो सकती है, दस योजन की नहीं।

म० ना० उ० शा० स०

(५९) धा० ४५३-४ : षट छह जिंहि सामंत सोइ प्रथीराज कोइ।
दान षग्ग भय मानि न मुक्कइ तात सोइ॥

इन चरणों के स्थान पर इन प्रतियों में है :

सत्त सेन सामंत सूर छह मंडलिय।
बरन इच्छ वर मो हिम हंति अखंडलिय॥

'षट्+दह'=सोलह के स्थान पर सामन्तो की सख्या १०० करने के लिए उद्धृत प्रथम चरण मे पाठ-परिवर्तन किया गया लगता है, किन्तु इन प्रतियों का चरण का शेष पाठ अर्थहीन हो गया है; उद्धृत द्वितीय चरण का उत्तरार्द्ध भी इसी प्रकार इन प्रतियों मे अर्थहीन हो गया है।

(६०) धा० ६३ : सं साहिस्स 'सहाब' साहि सकलं इच्छामि युद्धाइने।

इन प्रतियों मे 'साहिस्स सहाब' के स्थान पर म० 'साहि साहि', द० 'बसाह', उ० स० 'बसाह साह' ना० 'बसाहि बद्ध' पाठ हैं। ऐसा लगता है कि पूर्ववर्ती पाठ 'साहिस्स [सहा] ब साहि' का 'सहा' निकल गया था, इसलिए इन प्रतियों मे यह पाठ-विकृति हुई : म० में प्रक्षेप का प्रयास कदाचित् नही किया गया, शेष मे प्रसग से 'बसाहि' के बाद 'साहि' जोड़ कर पाठ पूरा कर लिया गया।

(६१) धा० १७८.१ : आयस रावन सथ्थि चलि 'असिअ सहस' तिहि सथ्थ।

इन प्रतियों मे 'असिय सहस' के स्थान पर 'अयुत एक' है, जो स्पष्ट प्रक्षेप है और संख्या बढ़ा कर बताने के लिए किया गया है।

(६२) धा० २८४.१ : पुष्फंजलि 'सिरि मंडिप्रभु' फिरि लग्गी गुर पाय।

'सिरि मडि प्रभु' के स्थान पर इन प्रतियों में है 'दिसि बाम कर' जो कि सर्वथा अर्थहीन है। पूर्व के छन्द से इस छन्द की उक्ति-शृंखला है और उसका अन्तिम चरण स्वीकृत पाठ का ही समर्थन करता है :

पुष्फांजलि पंग छिर णाइ जयति विभ्र कामदेव।

(६३) धा० १८६.१ : जाम एक छनदा घटित 'ससि हू सत्ति' निवारि।
कहु कामिनि-सुख रति समर नृपति हु नींद बिसारि॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'ससि हू सत्ति' के स्थान पर पाठ 'सत्तमि सत्त' है। सप्तमी को केवल एक प्रहर रात्रि गत होने से उसके सत्व का निवारण नहीं हो जाता है, सप्तमी को लगभग दो प्रहर रात्रि तक उसका सत्व बना रहता है, उसके अनन्तर उसमे परिवर्तन आता है। इसलिए इन प्रतियों का पाठ विकृत है।

(६४) धा० १९२.३ : 'बहुत किअउ आलाप' आउ कनवज्ज मुकट मनि।
इह ढिल्लिअसुर दत्त बिअउ नन कहूं तुझ्झ गिनि॥

उद्धृत प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध का पाठ इन प्रतियों मे है 'कवि आदर बहु कियौ'। किन्तु इस पाठ मे आगे आए हुए कथन के विषय मे 'कहा' अर्थ वाची कोई क्रिया नहीं आती; 'बहुत किअउ आलाप' मे यह त्रुटि नही है। अतः इन प्रतियों का पाठ विकृत लगता है।

(६५) धा० १९७.१ : सुनउ सबे सामंत हो कहइ नृपति प्रथीराज।
जउ अछूछउ षिन षेत मइ तउ दक्खिन नयर विराज॥

प्रथम चरण के स्थान पर इन प्रतियो मे है :

सकल सूर सामंत सम वर बुल्यौ प्रथीराज।

इस पाठ में एक तो कोई सम्बोधन नहीं है, दूसरे 'सूर' शब्द अनुपयुक्त है : केवल सूर सामन्तों से नहीं, पृथ्वीराज ने सभी सामन्तो से कहा होगा; फिर 'वर' शब्द भी भरती का है। स्वीकृत पाठ मे ये त्रुटियाँ नहीं है।

(६६) धा० २३३.१ : मदन सराल ति विवहा 'निमिष दइत' प्रांन प्रानेन।
नयन प्रवाह ति विवहा दिवा कथय कथा॥

इन प्रतियों में प्रथम चरण के 'निमषि दइत' के स्थान पर 'जिह्वा रट्योति' है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है 'मदन के शर रूपी काल से विनष्टा [सयोगिता] के प्राण एक निमिष के लिए दयित (प्रिय पति) के प्राणो से [अभिन्न] हो रहे।' प्रकट है कि 'निमिष दइत' स्थान पर 'जिह्वा-रट्योति' शब्द सर्वथा निरर्थक हैं, और पूरे वाक्य के अर्थ को छिन्न भिन्न करते हैं।

(६७) धा० २३४.४ : मोहि कंप सुरलोक 'कंप तप्पिय तह' नाग नर।

इन प्रतियों 'कंप तप्पिय तह' के स्थान पर पाठ है : 'पन्न (पति—म० उ० स०) पन्नग अरु (पंग नरु—म० पंनगरु—उ० स०)'। 'नाग' ठीक बाद मे आता ही है, इसलिए 'पन्नग' वाले कोई भी पाठ सम्भव नहीं हैं।

(६८) धा० २४६.१९ : 'सिंधु सा बंध' बंधे धुरंगा।
संग संगीत डरि येभ संगा।

'सिंधु सा बंध' स्थान पर इन प्रतियो मे है। 'विरद (विरुद—ना०) वरदाइ'। प्रसंग युद्ध मे लाए गए हाथियो का है। प्रथम चरण का आशय है 'सिंधु देश के धुरंगे (हाथी) बन्धनों से बँधे हुए हैं'। यहाँ पर 'विरद वरदाइ' सर्वथा निरर्थक है।

(६९) धा० २७८.१ : 'चंपत पिच्छोरिय गति' चषइ अपन तन दिष्ष।

तन तुरंग तिलु ति तिलु कर भयउ कन्ह मन भिष्प ॥

प्रथम चरण पूर्वार्द्ध का पाठ इन प्रतियो मे है : म० उ० स 'चपत अच्छरि रिढ (रिंठ–उ०) लगि', ना० 'चंपित अच्छरि डिभ लगि' जो सर्वथा अर्थहीन है; अप्सरा का कोई प्रसग यहाँ नही है।

(७०) धा० २८२.२ : धरणी कन्ह परत प्रगट उट्ठि पंगु निृप हंकि।
मनु अकाल 'अवली ज रल' गहि अतुट्टि धनु रंक ॥

इन प्रतियो मे 'अवली जरल' के स्थान पर है 'संकरह हसि'। अकाल के समय शंकर का हँसना एक भद्दी कल्पना है, जो कि पूर्ववर्ती पाठ की दुर्बोधता के कारण उसको हटाकर रक्खी गई है; स्वीकृत पाठ का आशय है : मानो अकाल मे [रंक-] अवली ने, जो रो–चिल्ला रही थी, अटूट धन प्राप्त किया हो।'

ना० उ० ज्ञा० स०

(७१) धा० ३४७ : सहहिं भीर निृप पीर जिहिं 'जिन सिर झरहिं दुधार।'
लाज धरहिं तिन वरि गणहि ते पुहु पंच हजार ॥

इन प्रतियो मे प्रथम चरण के 'जिन सिर झरहिं दुधार' के स्थान पर है, 'लज्या धर (धरन–ज्ञा०) भर भार', तथा दूसरे चरण के 'लाज धरहिं' के स्थान पर है 'धरनि (भिरण–ना०) धरणि।' 'धरनि धरणि' असम्भव है, और 'भिरण धरणि' निरर्थक। स्वीकृत पाठ ही सम्भव है।

(७२) धा० ३५२.५ : तिहि गहन हउं इछ्छहुं 'सुमन सच्च' करतार करु।
मग्गहु अगम्म भृत संगहहु धरहुं लज्ज लज्जहुं न भर ॥

इन प्रतियो में 'सुमन सच्च' के स्थान पर है 'साच झूठ'। यहाँ गोरी अपने सामतों को आक्रमण का उद्देश्य बताता हुआ कह रहा है कि 'उसी पृथ्वीराज को मैं पकड़ना चाहता हूँ, मेरे मन की वह बात कर्त्तार सच्ची (पूरी) करे!' यहाँ पर 'साच' के साथ 'झूठ' असंगत है, 'झूठ' कहने से सामतो से वह उत्साहपूर्ण सहयोग की अपेक्षा नहीं कर सकता है।

(७३) धा० ३६५.२ : सहउं न बोल संमुह हन्यउ बान षांन षुरासन।
'दुहु दुज्जन पूजिअ धरीं' दिन पलटउ चहुआन ॥

इन प्रतियो में दूसरे चरण के पूर्वार्द्ध के स्थान पर है 'इह अपुब्व सजोगि सुनि'। संयोगिता यहाँ पर कही नहीं आती है, युद्ध-विषयक विभाई–सयोगिता सम्वाद के प्रक्षेप को रचना में पिरोने के लिए यह प्रक्षेप किया गया है।

म० उ० स० ज्ञा०

(७४) धा० ११५.३-४ : चहूआंन राठवर जांति पुंडीर गुहिल्ला।
वड गूजर पांमार कुरंभ जांगरा रोहिल्ला।
इत्ते सहित्त भुअ पति चलउ उडी रेन किन्नउ नुभउ।
एक एकु लष्ष वह लष्षवइ चले सथ्थ रजपुत्त सउ ॥

उद्धृत प्रथम दो पंक्तियों का पाठ इन प्रतियो में है :

चाहुआन कूरंभ गौर गाजी वडगुज्जर।
जादव रा रघुवंस पार पुंडीर ति पष्षर ॥

'रा' 'राज' के लिए आता है, किन्तु यहाँ किसी राजा या सामंत का प्रसग नहीं है, यहाँ तो उन राजपूत जातियो का प्रसंग है जो पृथ्वीराज के साथ कन्नौज गई थीं; 'पार पुंडीर ति पष्षर' तो सर्वथा निरर्थक है।

(७५) धा० १८४ अ. ३-४ : अंगोले लोल डोलं एक बोलं अमोलं।
पुप्फांजलि पंग सिर-णाइ जयति विअ कामदेव।

इन पंक्तियों के स्थान पर इन प्रतियों में है :

इंद्रानी लोल डोला चपल मतिधरा एक बोली अमोली।

पूहपा (दूहपा-म०) वानी विसाला सुभग (सुभ-म०) गिरवरा जैतरंभा सुबोली।

स्वीकृत पाठ का अर्थ है : 'उन [नर्त्तकियों की] अगूठियाँ [उनकी घूमती-फिरती उँगलियों के साथ] चपलता पूर्वक डोल रही थीं और [उनके मुखों में] एक ही अमूल्य बोल था, पग (जयचन्द) के सिर पर पुष्पाञ्जलि डाल कर [वे कह रही थीं] "हे दूसरे कामदेव, तुम्हारी जय हो !" इन प्रतियों के पाठ में 'सुबोली' अन्तिम चरण में पुनः आता है, किन्तु 'एक बोली अमोली' और 'जैत रंभा सुबोली' का कोई कर्म नहीं है। 'पूहपा बानी विसाला सुभग गिरवरा' तो निरर्थक है ही।

(७६) धा० १९१ **'दस हथ्थिअ' मुत्तिय सघन 'सत तुरंग जिति भाय।'**

दव्व सरस बहु संगि लिय भट्ट समप्पण जाय॥

इन प्रतियों मे प्रथम चरण के 'दस हथ्थिय' के स्थान पर है 'तीस करिय' (करी—म० उ०) और 'सत तुरग जिति भाय' के स्थान पर है : म० 'द्वे सै चपल तुरंग', उ० स० 'द्वै सै तुरग बनाय'। इसके अतिरिक्त म० मे द्वितीय चरण के 'जाय' के स्थान पर 'अंग' है। प्रक्षेप-क्रिया अति प्रकट है।

(७७) धा० २०४.२ : **सुनि सुंदरि वर वज्जने 'चढ़ी अवासह उट्ठि'।**

इन प्रतियो मे चरण के उत्तरार्द्ध का पाठ है: 'अई अपुब्ब कोइ (कौ—म०) दिट्ठ (दुट्ठ-उ०, दुट्ठि-म०)'। प्रसग मे इस पाठ की कोई सार्थकता नही है। वाक्यो को सुनकर 'अई (?) अपूर्व कोई दिखाई पड़ा' सगतिहीन भी लगता है।

(७८) धा० २२७.४ : **विन उत्तर तु मौनमुष रष्षी।**

जिम चातुकि पावस रति नष्षी॥

उद्धृत दूसरे चरण का पाठ इन प्रतियों मे है : 'मन वच क्रम प्रीतम रस कष्षिय' (चषीय—म०)। ऐसा लगता है कि अन्तिम चरण किसी प्रकार नष्ट हो गया था, इसलिए उसके स्थान पर प्रसग के अनुसार एक सर्वथा नवीन चरण की कल्पना कर ली गई।

(७९) धा० २२८.४ : **दे अंचल चंचल द्रिग मुदइ।**

कुल सुभाउ तुरी जिम कुदइ।

इन प्रतियो मे उद्धृत दूसरे चरण का पाठ है 'विरहायन दाहन रवि उदहिं'। यह पाठ सर्वथा असंगत है। प्रथम मिलन के अनन्तर पृथ्वीराज के चले जाने पर संयोगिता की जो दशा होती है, उसी का इन पंक्तियो मे वर्णन है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है, 'वह अञ्चल देकर अपने चञ्चल नेत्रों को मूदती [किन्तु वे न मान रहे थे] जैसे अपने कुल-स्वभाव के कारण बाँधने पर भी घोड़ा कूदा-उछला करता है।' विरह का भाव कुछ और तीव्रता के साथ लाने के लिए यह प्रक्षेप किया गया लगता है।

(८०) धा० २६७.८ **मिटयउ न जाइ कहनो वय कवि चंद सार सा मंत।**

प्राची हय गय वहनो रहनो गत चिंता नरेंद्र तह॥

इन प्रतियों मे दूसरे चरण का पाठ है :'प्राची क्रम्म विधान नामान भावई गत्त।' किन्तु यहाँ 'क्रम्म विधान' का कोई प्रसंग नहीं है : 'प्राची' को प्राचीन समझ लिया गया है। स्वीकृत पाठ ही सार्थक और संगत है, जिसका आशय है 'जब कि प्राची (पूर्व—कन्नौज) के हय, गय, वाहन, रथादि तथा नरेन्द्र (जयचन्द) गतचिंता हो रहे हैं'।

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित पाठ सम्बन्ध स्थापित होते है :—

१—धा० मो० म० ना० उ० शा० स०

२—धा० मो०

३—मो० ना० उ० ज्ञा० स०
४—मे० ना०
५—धा० अ० फ० म० ना० उ० ज्ञा० स०
६—धा० अ० फ० ना०
७—धा० अ० फ०
८—अ० फ० म० ना० उ० ज्ञा० स०
९—अ० फ० ना०
१०—म० ना० उ० ज्ञा० स०
११—ना० उ० ज्ञा० स०
१२—म० उ० ज्ञा० स०

इन पाठ-सम्बन्धों को हम स्थूल रूप से निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा व्यक्त कर सकते हैं :—
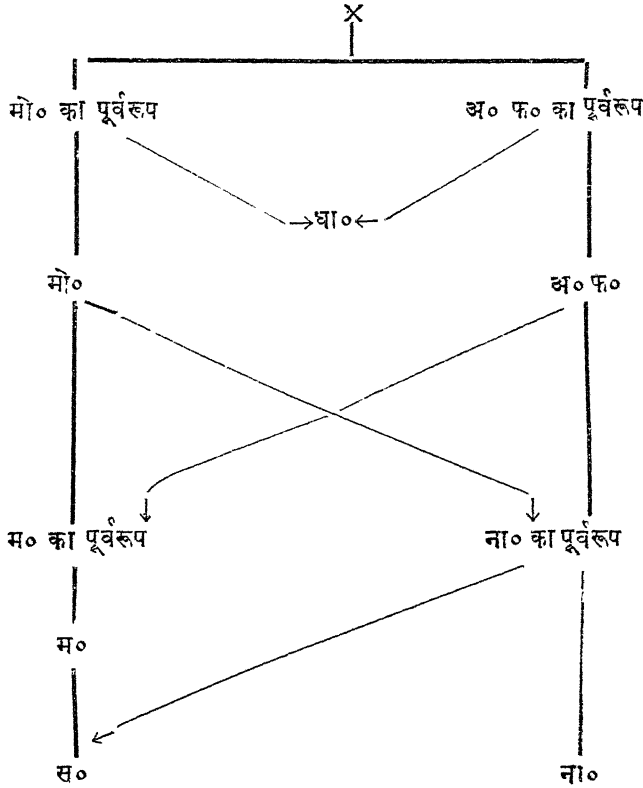
यहा पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह पाठ-सम्बन्ध-निर्धारण विभिन्न प्रतियों के उन्हीं अंशों के आधार पर किया गया है जो रचना के मूल रूप के लिए स्वीकृत हुए हैं।

पाठ-निर्धारण के आधार और सिद्धान्त

ऊपर के पाठ-सम्बन्धों को देखने पर ज्ञात होगा कि रचना के समस्त पाठ स्थूल रूप से मो० तथा अ० फ० के पूर्वरूपों से विकसित हुए हैं, और पाठ की दृष्टि से स्वतन्त्र शाखाओं का निर्माण

केवल मो० तथा अ० फ० के ये पूर्वरूप ही करते हैं, शेष समस्त पाठ उक्त दोनो के मिश्रण से निर्मित होते हैं। इसलिए पाठ-निर्धारण की दृष्टि से मो० तथा अ० फ० सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। धा० पाठ मो० तथा अ० फ० के उक्त पूर्वरूपो के मिश्रण से निर्मित है, उनके प्राप्त पाठो से नहीं, इसलिए उसका भी महत्व है, यद्यपि पाठ-मिश्रण के कारण वह महत्व पाठ-निर्धारण के लिए घट गया है। रचना के प्रारम्भ के जिन अंशों में मो० का पाठ अप्राप्य है, उन अंशों के लिए धा० का महत्व प्रकट है। मो० के अन्यत्र के त्रुटित पाठो के लिए भी धा० की सहायता ली जा सकती है। इसी प्रकार अ० फ० के त्रुटित पाठो के स्थलों पर धा० की सहायता ली जा सकती है। एक बात और धा० के मिश्र पाठ से प्रमाणित होती है, वह यह है कि मो० तथा अ० फ० के वे पूर्वरूप जिनके मिश्रण से धा० तैयार हुआ, धा० से बड़े नहीं थे। ऊपर रचना के मूल रूप का जो आकार निर्धारित हुआ है, वह धा० से भी कुछ छोटा है, यह हम देख चुके हैं।

अतः पाठ-निर्धारण के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त निकलते हैं:—

अपने मूल रूपो मे मो० तथा अ० फ० पाठ मात्र स्वतन्त्र हैं, इसलिए जहाँ पर इन दोनो मे एक पाठ मिलता है, अन्य कोई पाठ मान्य नही होना चाहिए।

जहाँ पर मो० तथा अ० फ० भिन्न-भिन्न पाठ देते हो, और एक दूसरे से विकृत हुआ प्रमाणित होता हो, वहाँ वही पाठ स्वीकृत होना चाहिए जिससे अन्य पाठ विकृत हुआ प्रमाणित होता है।

जहाँ पर मो० तथा अ० फ० एक दूसरे से सर्वथा भिन्न पाठ देते हो, वहाँ पर समस्त प्रकार की सम्भावनाओं पर ध्यान रखते हुए दोनों में से जो पाठ मूल का लगता हो उसे स्वीकार करना चाहिए।

कहना नही होगा कि प्रस्तुत कार्य मे इन सिद्धान्तो का पूर्ण रूप से पालन किया गया है। किंतु प्रतिलिपि-परंपरा मे भाषा निरन्तर अधिकाधिक आधुनिक होती जाती है, केवल इसी बात को ध्यान मे रखते हुए मो० तथा अ० फ० पाठो मे जहाँ पर समान किन्तु अपेक्षाकृत बाद का रूप मिलता है, और धा० या किसी अन्य प्रति मे प्राचीनतर रूप मिलता है, वहाँ पर अपवाद स्वरूप इस प्राचीनतर रूप को स्वीकार किया गया है।

५. पृथ्वीराज रासो
के
निर्धारित पाठ की छंद-सारिणी

संपादित	धा०	मो०	अ० फ०	म०	ना०	द०	स०
१.१	२३	३०	१.साट० १	१. साट०१	१ १	१.८	१.५४
१.२	२४	२९	१. साट० २	१ साट०२	१.२	१.७	१.५३
१.३	२२	२७	१ विरा० १	१. विअ०	१.५	१.११	१.७०-७५
१.४	२	ख०	२. भुजं० १	२. भुजं०	१.८	१.३	१.५ १०
१.५	२०	२५	२. दो० ९	२. दो० ९	१.१६/ २.१२४	१ १६	१.८१
१.६	२५	३१	२. साट० ३	२. साट०	४ १	३.१	३.१
२.१	३१	३८	६. पद्ध० १	ख०	२८.३	२८.५	४८.१९-३२
२.२	३२	३९	६. गाथा १	खं०	२८.५	२८.७	४८.९
२.३	३३-३४	४० ४१	६ पद्ध० २	ख०	२८.६	२८.८	४८ ४९-७४
२.४	३५	४२	६. रासा १	ख०	२८९	२८.११,	४८.७९
२.५	३६/१	४३	६. पद्ध० ४/१	खं०	२८.११, १३,१५,१६	२८ १३, १५	४८ ८१-८२, ८४-८५,९१-९८
२.६	३६/२	४७	६. पद्ध० ४/२	खं०	२८.२६	२८.१७/ २८.२८	४८.९९-१००/ ४८.१२७
२.७	३७	४८	६ भुज० ५	ख०	२८.४२	२९.१	४८.२२५ २६७
२.८	३८	४९	६. दो० १	ख०	२८.४३	२९.२	४८.२७१
२.९	३९	५१	६. दो० ३	४.३	२८.४७	२९.६	४९.२२
२.१०	४०	५० ५२	६. पद्ध० ६	ख०, ४,४	२८.४५, ४८	२९.५, २९.७	४९.१२,२३, २६
२.११	४१	५३	६. दो० ४	५.२३	२८.४९	२९.८	५०.२७
२.१२	४२	५४	६. दो० ५	५.२५	२८.५०	२३.९	५०.२८
२.१३	४३	५७	६. नारा० ७	५.१६	२८.५३	२९.११	५०.१६-२०
२.१४	४४	५८	६. रासा २	५.१८	२८.५४	२९.१३	५०.२२
२.१५	४५	५९	६. रासा ३	५.२७	२८.५६	२९.१५	५०.३०
२.१६	४६	६०	६. गाथा २	५.३०	२८.५७	२९.१६	५०.३३

२.१७	४७	६१	६. साट० १	५.३३	२८.५९	२९.१८	५०.३६
२.१८	४८	६२	६. साट० २	५.३४	२८.६०	२९.१९	५०.३७
२.१९	४९	६३	६. अनु० २	५.३५	२८.६१	२९.२०	५०.३८
२.२०	५०	६४	६. साट० ३	५.४३	२८.६२	२९.२२	५०.४७
२.२१	५१	६५	६. दो० ७	५.३८	२८.६३	२९.२३	५०.४१
२.२२	५२	६६	६. दो० ८	—	२८ ६४	२९.२४	५०.४२
२.२३	—	—	६. दो० ९	५.४०	२८.६६	२९.२६	५०.४४
२.२४	५३	६७	६. साट० ४	५.४१	२८.६७	२९.२७	५०.४५
२.२५	५४	६८	६. अनु० ३	५.४५	२८.६८	२९.२८	५०.४९
२.२६	५५	६९	६. दो० १३	५.४८	२८.६९	२९.२९	५०.५२
२.२७	५६	७०	६. दो० १४	५.५२	२८.७१	२९.३०	५०.५६
२.२८	५७	७१	६. अडि०	५.५५	२८.७२	२९.३१	५०.६६
३.१	५८	७२	७. दो० १	५ १/	२०.४०/	३०.४०	५०.१/
				८.१	२०.७२अ		५७.१२२,५७.३
३.२	५९	७४	७. साट० २	८.२आ	२९.३	३१.३	५७.५८
३.३	६०	७५	७. दो० २	८.३	२९.१८	३१.१६	५७.४५
३.४	६२	७७	७. कवि० २	८.५	२९.२६	३१.२४	५७.६२
३.५	६४	७८	७. गाथा १	८.६	२९.२९	३१.२७	५७.७०
३.६	६३	७९	७ साट० ३	८.७	२९.३०	३१.२८	५७.७१
३.७	६५	८०	७. रासा १	८.९	२९.३३	३१ ३१	५७.७४
३.८	६६	८१	७. रासा२	८.११	२९.३३अ	३१.३३	५७.७९
३.९	६७	८२	७. दो० ५	८.१२	२९.३४	३१.३४	५७.८०
३.१०	६८	८३	७. दो० ११	८.१८	२९.४०अ	३१.४१	५७.८७
३.११	७०	८५	७.कवि० ३	८.२०	२९.४२	३१.४३	५७.९०
३.१२	७१	८६	७. गाथार	८.२१	२९.४३	३१.४४	५७.९१
३.१३	७२	८७	७. दो० १२	८.२३	२९.४४अ/१	३१.४५/१	५७.१०२
३.१४	७३	८८	७. दो० १३	८.२५	२९.४४अ/२	३१.४५/२	५७.११४
३.१५	७४	८९	७. दो० १४	८.२६	२९.४५	३१.४७	५७.१०१
३.१६	७५	९०	७.अडि० १	८.२७	२९.४६	३१.४८	५७.११८
३.१७	७६	९१	७. नारा० १	८.२८	२९.४६अ	३१.४९	५७.११९-१३४
३.१८	७७	९२	७.अडि० २	८.२९.१	२९.४७	३१.५०	५७.१३७
३.१९	७८	९३	७.अडि० ३	८.२९.२	२९.४९	३१.५२	५७.१५१
							५७.२११
३.२०	८३	९८	७.अडि० ४	८.३०	२९.५४	३१.५९	५७.२२४
३.२१	८४	९९	७. दा० १६	८.३४	२९.५५	३१.५८	५७ २२५
३.२२	८५	१००	७. दो० १७	८.३५	२९.५६	३१.५९	५७.२२७
३.२३	८६	१०१	७. दो० १८	८.३६	२९.५९	३१.६०	५७.२२८
३.२४	८७	१०२	७. दो० १९	८.३७	२९.५८	३१.६१	५७.२३०
३.२५	८८	१०३	७. दो० २०	८.३८	२९.५९	३१.६२	५७.२३१

३.२६	८९	१०४	७.दो० २१	८.३९	२९.६०	६१.६३	५७.२३३
३.२७	९०	१०५	७. कवि० ४	८.४१	२९.६२	६१.६५	५७.२३६
३.२८	९१	१०६	७ अडि० ५	८.४३	२९.६४	६१.६७	५७.२४०-२४८
३.२९	९२	१०७	७.ॠा० ५	८.४४	२९.६५अ	३१.६८	५७.२४९
३.३०	९३	१०८	७.भुज० [ ]	८.४५	२९.६७	३१.७०	५७.२५९
३.३१	९४	१०९	७.कवि० ६	८.४७	२९.७३	३१.७६	५७.२६७
३.३२	९५	११०	७.कवि० ७	८.४८	२९.७४	३१.७७	५७.२६९
३.३३	९६	१११	७.कवि० ८	८.४९	२९.७५	३१.७८	५७.२७१
३.३४	९७	११२	७.गाथा० ६	८.५१	२९.७७	३१.८०	५७.२७३
३.३५	९८	११३	७. दो० २२	८.५२	२९.७८	३१.८१	५७.२७४
३.३६	९९	११४	७.कवि० ९	८.५३	२९.७९	३१.८२	५७.२७५
३.३७	१००	११६	७.दो० २२	८.५५	२९.८१	३१.८४	५७.३०८
३.३८	१०१	११७	७.दो० २३	८.५६	२९.८२	३१.८५	५७.३०९
३.३९	१०२	११८	७.अडि० ६	८.५७	२९.८३	३१.८६/	५७.३१०
३.४०	१०३	११५	७. दो० २४	८.५४	२९.८०	३१.८३	५७.३०७
३.४१	१०४	११९	७ अडि० ७	८.५८	२९.८४	३१.८६/	५७.३११
३.४२	१०५	१२०	७. दो० २५	८.५९	२९.८५	३१.८७	५७.३१२
३.४३	१०६	१२१	७.रासा ४	८.६०	२९.८६	३१.८८	५७.३१३
४.१	११५	१३२	८.कवि० १	१०.३४	३१.४अ	३३.५	६१.१०५
४.२	११६	१३३	८.दो० ११	१०.६१	३१.२०	३३.१६	६१.१८१
४.३	११७	१३४	८. दो० १०	१०.६१	३१.२१	३३.१७	६१.१८२
४.४	११८	१३५	८. दो० ९	१०.६१	३१अ.१७	३३.१८	६१.१८३
४.५	११९	१३६	८. दो० १२	१०.१०५	३१अ.२०	३३.२१	६१.२७२
४.६	१२०	१३७	—	—	३१अ.२१ क	३३.२२	६१.२७५
४.७	१२१	१३८	८.पद्ध० २	१०.११९	३१अ.२३	३३.२४	६१.२९०-२९८
४.८	१२२	१३९	८.दो० १३	१०.१२२	३१अ.२५	३३.२६	६१.३०१
४.९	१२३	१४०	८. दो० १४	१०.१२३	३१अ.२६	३३.२७	६१.३०२
४.१०	१२४	१४१	८.भुज० ३	१०.१२६	३१अ.२७	३३.२८	६१.३०५-३१०
४.११	१२७	१४३	८ त्रिभ० ५	१०.१३६	३१अ.३८	३३.३५	६१.३२६-३२९
४.१२	१२८	१४५	८. साट० १	१०.१३४	३१अ.४१	३३.३८	६१.३२४
४.१३	१२९	१४६	८.रासा१	१०.१३९	३१अ.४२	३३.३९	६१.३३५
४.१४	१३०	१४७	८.नारा० [ ]	१०.१४१	३१अ.४४	३३.४०	६१.३३९-३४१
४.१५	१३१	१४८	८. दो० १८	१०.१२५अ	३१अ.४६	३३.४२	६१.३४९
४.१६	१३२	१४९	८. दो० १९	१०.१२६अ	३१ अ. ४७	३३.४३	६१.३५०
४.१७	१३३	१५०	८. दो० २०	१०.१२८अ	३१अ.४९	३३.४५	६१.३५२
४.१८	१३४	१५१	८. दो० २१	१०.१२९अ	३१अ.५०	३३.४६	६१.३५३
४.१९	१३५	१५२	८ दो० २२	१०.१३१अ	३१अ.५२	३३.४८	६१.३५५
४.२०	१३६	१५३	८. भुज० १७	१०.१३३अ	३१अ.५५	३३.५०	६१.३५८-३६९
४.२१	१३७	१५४	८. दो० २३	—	३१अ.५७	३३.५२	६१.४४६

४.२२	१३८	१५५	८. मुजं०८	१०.१५२	३१अ.५८	३३.५३	६१.३८८-३९४
४.२३	१३९	१५७	८. ्ज़ुं०९	१०.१६९	३१अ.६५	३३.६०	६१.४२५-४३०
४.२४	१४१	१६०	८दो०२५	१०.१७२	३१अ.६८	३३.६२	६१.४३५
४.२५	१४२	१६१	८. मोती०[ ]	१०.१७३	३१अ.६९	३३.६५	६१. ४३६-४४५
५.१	१४६	१६५	९.मुडि०१	१०.१९२	३२.४आ	३३.६८	६१.४६४
५.२	१४७	१६८	९. दो०६	१०,२०६	३२.६अ	३३.७३	६१.४७८
५ ३	१४८	१६९	९. रड्डा १	१०.२०९	३२.९-१०	३३.७४	६१.४८१
५ ४	१४९	१७२	९. मुडि०२	१०.२१८	३२.१३	३३.७७	६१.४९०
५.५	१५२	१७३	९. अडि०१	१०.२२१	३२.१५	३३.७९/१	६१ ४९७
५.६	१५३	१७४	९मुडि०[५]/१	१० २२२	३२.१६	३३.७९,२	६१.४९८
५ ७	१५१	१७५	९. साट०१	१०.२२८	३२.२२	३३.८०	६१.५०४
५ ८	१५४	१७६	९.मुडि०[५]/२	१०.२२९	३२ २४	३३.८१	६१ ५०५
५ ९	१५५	१७८	९ मुडि०४	१०.२३४/ १०.२३७	३२.२५	३६ ८२,८५	६१ ५१०, ६१.५१३
५.१०	१५८	१८०	९ साट०२	१०.२४१	३२.३०	३३.८८	६१.५२४
५.११	१५९	१८१	९.दो०२८	१० २४४	३२ ३१	३२.८९	६१ ५२७
५.१२	१६०	१८२	९ दो०११	१०.२४५	३२ ३२	३३.९०	६१.५४९
५.१३	१६१	१८३	९. भुज०३	१० २६७	३२.३६	३३ ९४	६१.५७१-७७
५ १४	१६२	१८४	१ दो०१२	१०.२६८	३२ ४२	३३.९५	६१ ५७८
५.१५	१६३	१८५	९. दो०१३	१० २७७	३२.४४	३३.१००	६१.५८८
५.१६	१६४	१८६	९ दो०१४	१०,३१२	३२.७६	३३ १३२	६१.६४८
५.१७	१६५	१८७	९ दो०१५	१० ३१४	३२.७७	३३.१३३	६१.६५०
५ १८	१६६	१८८	९. दो०१६	१०.३१७	३२.७९	३३.१३५	६१ ६५३
५.१९	१६७	१८९	९.कवि०२	१०.३१८	३२.८०	३३.१३६	६१.६५४
५.२०	१६८	१९०	९. दो०१७	१०.३२१	३२.८२	३३.१३८	६१ ६५७
५.२१	१६९	१९२	९. दो०२३	१०.३३१	३२.८३	३३.१३९	६१ ६८७
५.२२	१७०	१९३	—	१०.३३४	३२.८५	३३.१४१	६१ ६९०
५.२३	१७१	१९४	९. दो०२४	१०.३३५	३२.८६	३३.१४२	६१.६९१
५.२४	१७२	१९५	९. प्रवा०[ ]	१०.३३६	३२.८७	३३ १४३	६१.६९२-७१२
५.२५	१७३	१९६	९. अडि० ३	१०.३३८	३२.८८	३३.१४४	६१.७१४
५.२६	१७४	१९७	९. दो० २५	१०.३४१	३२.९१	३३.१४६	६१ ७१७
५.२७	१७५	१९८	९. दो० २६	१०.३४६	३२.९०	—	६१.७२२
५.२८	१७६	१९९	९. दो० २७	१०.३४७	३२.९२	३३.१४७	६१.७२३
५.२९	१७७	२००	९. दो० २९	१०.३४८	३२.९३	३३.१४८	६१.७२४
५.३०	१७८	२०१	९. दो० ३०	१०.३४९	३२.९४	३३.१४९	६१.७२५
५.३१	१७९	२०२	९. दो० ३१	१०.३८२	३२.११७	३३.१६९	६१.७९०
५.३२	१८०	२०४	९. दो० ३२	१०.३९७	३२.१२७	३३.१७७	६१.८२४
५.३३	१८१	२०६	९. दो० ३६	१०.४०४	३२.१३०	३३.१८०	६१.८३२

५.३४	१८२	२०७	[९. दो० ३७]*	१०.४०६	३२.१३१	३३.१८१	६१.८३४
५.३५	१८३	२०८	[९. दो० ३८]*	१०.४०७	३२.१३२	३३.१८२	६१.८३५
५.३६	१८३ अ	२०९	९. [साट० ३]	१०.४०८	३२.१३३	३३.१८३	६१.८४४
५.३७	१८४	२१०	९. दो० ३९	१०.४०९	३२.१३४	३३.१८४	६१ ८४५
५.३८	१८५	२११	९. नारा० ६	१०.४१२	३२.१३५	३३.१८५	६१.८४८-८५८
५ ३९	१८६	२१२	९. दो० ४०	१०.४१३	३२.१३६	३३.१८६	६१.८५९
५.४०	१८७	२०५	९. साट० [४]	१०.४१५	३२ १३७	३३ १८७	६१ ८६१
५.४१	१८८	२१३	९. साट० [५]	१०.४१६	•३२.१३८	३३.१८८	६१.८६२
५.४२	१८९	२१४	९. दो० ४१	१०.५१९	३२ १३९	३३.१८९	६१.८६५
५.४३	१९०	२१५	९. दो० ४२	१०.४३०	३२.१४०	३३.१९०	६१.८८७
५.४४	१९१	२१६	९ दो० ४३	१०.४३४	३२ १४१	३३.१९१	६१.९००
५.४५	१९२	२१७	९. कवि० ४	१०.४४२	३२.१४२	३३,१९२	६१.९१३
५.४६	१९३	२१८	९. दो० [ ]	१० ४४८ १	३२.१४८	३३.१९३	६१.९१९/१,
				१०.४४५/२			६१.९१६/२
५ ४७	१९५	२२२	९. दो० ४५	१०.४५६	३२.१५३	३३.१९९	६१.९२७
५.४८	१९६	२२३	९. कवि० ५	१०.४६४ अ	३२.१५९	३३.२००	६१.९७५
६.१	१९७	२२६	९. दो० ४६	११.३३	३३.१०	३३.२०७	६१.१०४७
६.२	१९८	२२७	९. दो० ४७	११.३५	३३.११	३३.२०८	६१.१०५०
६.३	१९९	२२८	९. दो० ४८	११.३६	३३.१२	३३.२०९	६१.१०५१
६.४	२००	२३८	९. दो० ५०	११.५६	३३.२५	३३.२२२	६१.१०७८
६.५	२०१	२३५	९. भुज० [ ]	११.५७	३३.२६	३३.२२३	६१.१०७९–१०८०
६.६	२०२	२३७	९. दो० ५३	११.८६	३३.२८	३३.२५	६१.११३६
६.७	२०३	२३८	९. रासा [ ]×	११.९०	३३.२९	३३.२६	६१.११४४
६.८	२०४	२३९	९. दो० ५४	११.९३	३३.३१	३३.२७	६१ ११४७
६.९	२०५	२४०	९. दो० ५५	११.९४	३३.३२	३३.२९	६१.११४८
६.१०	२०६	२४१	९. दो० ५६	११.९०क	३३.३३	३३.२३०	६१.११५८
६ ११	२०७	२४२	९. दो० ५७	११.९१क/१	३३.३९अ	३३.२३७	६१.११५९/१
६.१२	२०९	२४३	९. मुडि० १२	११.९६क	३३.४३	३३.२४१	६१.११६८
६.१३	२१०	२४४	९. रासा० २	११.९८क	३३.४५	३३.२४३	६१.११७१
६.१४	२११	२४५	९. रासा० ३	११.९४ख	३३.४७	३३.२४५	६१.११७४
६.१५	२१२	२४६	९. नारा० ८	११.९७ख	३३.५०	३३.२४८	६१.११७७-११८५
६.१६	२१३	२४७	९. दो० ५९	११.११३	३३.५६	३३.२५०	६१.१२०६
६.१७	२१४	२४८	९. गाथा १	११.११५	३३.५८	३३.२५१	६१.१२०८
६.१८	२१५	२४९	९. दो० ६०	११.१४४	३३.६१	३३ २५४	६१.१२४३
६.१९	२१६	२५०	९. दो० ६१	११.१४५	३३.६२	३३.२५५	६१.१२४४
६.२०	२१७	२५३	९. दो० ६३	११ १४७	३३.६४	३३.२५७	६१.१२४६
६.२१	२१८	२५४	९. दो० ६४	११.१४९	३३.६५	३३.२५८	६१.१२४८

* ये छन्द अ० फ० में नहीं हैं किन्तु उमी कुल की उस प्रति में हैं जो भागचन्द के लिए लिखी गई थी ।

× यह छन्द अ० में नहीं है, किन्तु अ० में बाद वाले दोहे के पूर्व 'रासा' शब्द है; फ० में यह छन्द है ।

६.२२	२१९	२५५	९. दो० ६५	११.१५०	३३.६६	३३.२५९	६१ १२४९
६.२३	२२०-२२३	२५६-२५९	९. चौ० १-३	११.१५३,	३३.७१	३३.२६१	६१.१२५३,
				१५४,१५६	७४-	२६२,२६४	१२५४, १२५६
६ २४	२२५	२६०	९. दो० ६६	११.१६०	३३.७६	३३.२६५	६१.१२६०
६.२५	२२६	२.१	९. मुड्डि० १३	११ १६२	३३.७८	३३.२६७	६१.१२६२
६.२६	२२७	२६२	९. अड्डि० १४	११.१६४	३३.८०	३३.२६९	६१.१२६४
६.२७	२२८	२६३	९. मुडि० ४	११.१६३	३३.७९	३३.२६८	६१.१२६३
६.२८	२२९	२६४	९. मुडि० १५	११ १६७	३३.८१	३३.२७०	६१.१२६७
६ २९	२३०	२६५	९. अनु० ४	११.१७२	३३.८७	३३.२७५	६१ १२७२
६.३०	२३१	२६६	९. द्दो० ७०	११.१७३	३३.८८	३३.२७६	६१.१२७३
६.३१	२३२	२६८	—	११ १७८	३३ ९१	३३.२७८	६१.१२७८
६.३२	२३३	२६९	९. गाथा ५	११.१७९	३३.९२	३३.२७९	६१.१२७९
६.३३	२३४	२७३	९. कवि० १७	११.१९५	३३ १०२	३३.२८४	६१ १२९५
६ ३४	२३५	२७४	९. रासा ४	११ २२०	३३.१०४	३३.२८६	६१.१३२२
७.१	२३६	२७५	९. दो० ८१	१२.१३	३३.१०६	३३ २९५	६१.१३४०
७.२	२३७	२८१	९. गाथा ७	१२.१८	३४.९	३३.२९९	६१.१३४५
७.३	२३८	२८२	९. दो० ७८	१२.१९	३४.१०	३३.३००	६१.१३४६
७.४	२३९	३१४/४५२	१५ भम० [ ]	—	४३.९५	—	६६.८७६-८८५
७.५	२४०	२८३	१२ कवि० १९	१२.२१८	३३.१०७/	३३.३८८	६१.१७०६
				—	३५.३		
७.६	२४१	२८४	१०.भुज० १	१२.२०,२६	३४.११,	३३.३०१,	६१.१३४७ १३५६,
					१३	३३ ३०३	६१.१३६२-१३६६
७ ७	२४२	२८५	९. दो० ७९	१२.२७	३४ १५	३३.३०४	६१.१३६७
७ ८	२४४	२८६	९. द्दो० ८०	१२.२८	३४.१६	३३.३०५	६१.१३६८
७.९	२४५	२८७	१० द्दो० २	१२.२८अ	३४.१७	३३.३०६	६१.१३६९
७.१०	२४६	२८८	१०. भुज० २	१२.३०	३४.१९	३३.३०८	६१.१३७१-७७
७.११	२४७	२८९	१० दो० ३	१२.३१	३४.२०	३३.३०९	६१.१३७८
७.१२	२४८	२९०	१०. प्रवा० [ ]	१२.३२	३४.२१	३३.३१०	६१.१३७९-१३८५
७.१३	२४९	२९१	१०. दो० ४	१२.४१	३४.२३	३३.३१२	६१.१४०१
७.१४	२५०	२९२	१०. [भुज०]	१२.५३	३४.३२	३३.३२१	६१.१४१३
७.१५	२५१	२९३	१०. रसा० ४	१२.५४	३४.३३	३३.३२२	६१.१४१४-१४१९
७.१६	२५२	२९४	१० अडि० १	१२.५५/१	३४.३४/१	३३.३२३/१	६१.१४२०
७.१७	२५३	२९५	१०. भुज० ५	१२.५५/२,	३४.३४/२,	३३.३२३/२	६१.१४२१ १४२२,
				१२.१०६	३४.३६		६१.१५११-१५२१
७ १८	२५४	२९६	१० गाथा १	१२.११२	३४.५०	३३.३३१	६१.१५३१
७.१९	२५५	२९७	१०. दो० १०	१२.११५	३४.५१	३३.३४०	६१ १५३४
७.२०	२५६	२९८	१०.कवि० ५	१२.११४	३४.५३	३३.३४२	६१.१५३३
७.२१	२५७	२९९	१०.कवि० ७	१२.१२०	३४.५५	३३.३४४	६१.१५४३
७.२२	२५८	३००	१०. रासा १	१२.१२५	३४.५९	३३.३४८	६१.१५४८

७.२३	२५९	३०१	१०. राधा १	१२.१२६	३४.६०	३३.३४९	६१.१५४९
७ २४	२६०	३०२	१०. अनु० १	१२.१२७	३४.६२.	३३.३५०	६१.१५५०
७.२५	२८७	३१७	१०. कवि० १	१२.२३०	३५.६	३३.३८९	६१.१७३३
७.२६	२८८	३१८	१०. गाथा १	१२ २२०	३५.७	३३.३९०	६१.१७०८
७.२७	२८९	३१९	११. कवि० २	१२.२२४	३५ ८	३३.३९१	६१.१७१८
७.२८	२९०	३२०	११. कवि० ३	१२.२२५	३५.९.	३३.३९२	६१.१७१९
७.२९	२९३	३२३	११. दो० ३	१२.२४१	३५ १४	३३.३९७	६१.१७७०
७.३०	२९४	३२६	११. कवि० १२	१२.३१९	३५ २८	३३.४०९	६१.१९२६
७.३१	२९५	३२७	११. भुज० ६	१२.३२०	३५.२४	३३.४१४अ	६१.१९२७ १९३२
८.१	२६१	३०५	११ कवि० २२	१२.१३७	३४ ६६	३३.३५४	६१ १५६१
८.२	२६२	३०६	११. कवि० २३	१२.१४०	३४.६७	३३.३५५	६१.१५६४
८.३	२६३	३०७	११. कवि० २४	१२.१४३	३४.७०	३३.३५५अ	६१.१५६७
८ ४	२६४	३०८	११. कवि० २५	१२.१४८	३४.७४	३३.३५९	६१ १५७२
८.५	२६५	३०९	११. कवि० २६	१२.१५०	३४.७५	३३.३६०	६१.१५७४
८.६	२६६	३१०	११. कवि० २७	१२.१५१	३४.७६	३३ ३६१	६१.१५७५
८.७	२६७	३११	११. गाथा २	१२ १६४	३४ ७७	३३.३६२	६१.१५८८
८.८	२६८	३१२	११. गाथा ३	१२.१८७	३४.९०	३३.३७१	६१.१६२८
८.९	२६९	३१३, ३१५	११. त्रोट० ९	१२.१९५	३४.९७	३३.३७८	६१.१६४०–१६४९
८.१०	२७०	३१६, ३३१	१२. छंद १	१२.२१६, १२.४५३/१	३५.४, ३६.१२/१	३३.३८७, ३३.४६४	६१.१६९५-१७४२, ६१.२१४६
८.११	२७१	३३२	१२. कवि० १	१२.४५८	३६.१३	३३.४६५	६१.२१६१
८.१२	२७२	३३३	१२. दो० ६	१२.४५९	३६.१५	३३.४६७	६१.२१६२
८.१३	२७३	३३४	१२. दो० ७	१२.४६०	३६.१६	३३.४६८	६१.२१६३
८ १४	२७४	३३५	१२. कवि० ३	१२.४६० अ	३६.१७	३३.४६९	६१ २१६४
८.१५	२७५	३३६	१२. दो० ८	१२.४६५	३६.१८	३३.४७०	६१ २१७८
८.१६	२७६	३३७	१२. कवि० ४	१२.४७४	३६.१९	३३.४७१	६१.२२०८
८.१७	२७७	३३९	१२. दो० १०	१२.४७३	३६ २२	३३.४७४	६१.२२०७
८.१८	२७८	३४०	१२. दो० ११	१२.४७८	३६.२३	३३.४७५	६१.२२१२
८.१९	२७९	३४१	१२. कवि० ५	१२.४७९	३६.२४	३३.४७६	६१.२२१३
८.२०	२८०	३४२	१२. दो० १२	—	३६.२७	३३.४७७	६१.२२१७
८.२१	२८१	३४३	१२. कवि० ६	१२.४९८	३६.२८ अ	३३.४७९	६१.२२४७
८.२२	२८२	३४४	१२.दो० [१३]	१२ ५१३	३६.२९	३३.४८०	६१ २२८३
८.२३	—	३४५	१२ दो० १४	१२.५१४	३६.३०	३३.४८१	६१.२२८४
८.२४	२८३	३४६	१२. कवि० ७	१२.५१७	३६.३२	३३.४८२	६१ २२९७
८.२५	२८४	३४७	१२. दो० १५	१२.५१९	३६.३३	३३.४८३	६१.२२९९
८.२६	२८५	३४८	१२. कवि० ८	१२.५२५	३६.३४	३३.४८४	६१ २३१२
८.२७	२८६	३४९	१२. दो० १६	१२.५२७	३६.३५	३३ ४८५	६१ २३१४
८।२८	२९७	३५०	१२. कवि० ९	१२.५३३ अ	३६.३६	३३.४८६	६१.२३४५

८.२९	२९८	३५१	१२. दो० १७	१२.५३४	३६.३७	३३.४८७•	६१.२३४६
८.३०	२९९	३५२	१२.कवि० १०	१२.५४२	३६.३९	३३.४८९	६१.२३६२
८.३१	३०१	३५३	१२. दा० १९	१२.५४३	३६.४०	३३.४९०	६१.२३६३
८.३२	३००	३५४	१२.कवि० ११	१२.५४६	३६.४१	३३.४९१	६१.२३७२
८.३३	३०२	३५५	१२. दो० २०	१५.५५०	३६.४२	३३.४९२	६१.२३७६
८.३४	३०३	३५६	१२.कवि० १२	१२.५५७	३६.४३	३३.४९३	६१.२३८३
८ ३५	३०४	३६३	१२.कवि०२३	१२.५३५	३६.४५	३३.४९५	६१.२४०३
८.३६	२९६	३५७	१२. दो० २८•	१२.४१६	३७.२०	३३.४५५	६१.२०९२
९.१	३०५	३६५	१३.अडि० १	१२ ६०५/२	३८.७	३३.५२५	६१.२४८७
९.२	३०६	३६६	१३.दो० ५	१२.६१८	३८.१०	३३.५२७	६१.२४९२
९.३	३०७	३६९	१३.दो० ६	१२.६११	३८ ११	३३.५२८	६१.२४९३
९.४	३०९	३७१	१३.दो० ७	१२.६२५	३८.१३	३३.५३०	६१.२५४०
९.५	३१०	३७२	१३ [रासा १]	१२.६२७	३८.१४/१	३३.५३१ १	६१.२५४२
९ ६	३११	३७३	१३.[रासा २]	१२.६२८	३८.१४/२	३३.५३१,२	६१.२५४३
९ ७	३१२	३७४	१३ [रासा ३]	१२.६२९	३८.१४/३	३३.५३१/३	६१.२५४४
९.८	३१३	३७५	१३.[रासा ४]	९.२४, १२.६३०	३८.१४/४	३३ ५३१/४	६१ २५४५
९.९	१०७	१२३	१३. साट० २	९.२०	२९.८६ आ/ ४१.१०	३४.१७८	६१.९
९.१०	१०८	१२४	१३. साट० ३	९.१	३९.२	३४.१	६१.१८
९.११	१०९	१२५	१३. साट० ४	९.५	३९.६	३४.५ अ	६१.२७
९.१२	११०	१२६	१३. साट० ५	९.१०	३९.१३	३४.१६८	६१.३९
९.१३	१११	१२७	१३. साट० ६	९.१३	४१.३	३४.१७१	६१.४९
९.१४	११२	१२८	१३. साट० ७	९.१६*	४१.६	३४.१७४	६१.६२
१०.१	३१४	३८६	१४. मुडि० १		४२.४१	३६.३५	६६.१९२
१०.२	३१५	३८७	१४. दो० २		४२.४२	३६.३६	६६.१९३
१०.३	३१६	३८८	१४. मुडि० २		४२.४३	३६.३७	६६.१९४
१०.४	३१७	३८९	१४. दो० ३		४२.४४	३६.३८	६६.१९५
१०.५	३१८	३९०	१४. अडि० १		४२.४५	३६.३९	६६.१९६
१०.६	३१९	३९१	१४. मुडि० ३		४२.४६	३६.४०	६६.१९७
१०.७	३२०	३९२	१४ अडि० २		४२.४७	३६.४३	६६.१९८
१०.८	३२१	३९३	१४. दो० ४		४२.४८	३६.४४	६६.१९९
१०.९	३२२	३९४	१४. दो० ५		४२.४९	३६.४५	६६.२००
१०.१०	३२३	३९५	१४. गाथा ३		४२.५०	३६.४६	६६.२०१
१०.११	३२४	३९६	१४. गीता० १		४२.५१	—	६६.२०३-२५
१०.१२	३२५	३९७	१४. दो० ६		४२.५२	३६.४७	६६.२१७
१०.१३	३२६	३९८	१४. दो० ७		४२.५३	३६.४८	६६.२१८

* म० प्रति यहीं पर समाप्त हो जाती है।

१०.१४	३२७	३९९	१४.दो०८	४२.५४	३६.४३	६६.२१९
१०.१५	३२८	४००	१४.रासा१	४२.५९	३६.५५	६६.२२७
१०.१६	३२९	४०१	१४.दो०९	४२.६०	३६.५६	६६.२२८
१०.१७	३३०	४०२	१४ रासा २	४२.६१	३६.५७	६६.२३२
१०.१८	३३१	४०३	१४.दो०१०	४२.६२	३६.५८	६६ २३३
१०.१९	३३२	४०५	१४.दो०११	४२.६४	३६.५९	६६.२३६
१०.२०	३३३	४०६	१४.दो०१२	४२.६५	३६.६०	६६.२३७
१०.२१	३३४	४०७	१४.दो०१४	४२.६९	३६.६४	६६.२४१
१०.२२	३३५	४०८	१४.दो०१५	४२.७०	३६.६५	६६.२४२
१०.२३	३३६	४०९	१४.कवि०२	४२.७१	३६ ६६	६६ २४४
१०.२४	३३७	४१०	१४.दो०१६	४२.७२	३६.६७	६६.२४५
१०.२५	३३८	४११	१४.कवि०३	४२.७६	३६.७०	६६ २४९
१०.२६	३३९	४१२	१४.दो०१७	४२.७३	३६.६८	६६ २४७
१०.२७	३४०	४१४	१४.दो०१९	४२.७८	३६.७२	६६ २५१
१०.२८	३४१	४१६	१४.कवि०४	४२.७९	३६.७३	६६ २५२
१०.२९	३४२	४१७	१४.कवि०५	४२.८०	३६.७५	६६ २५४
११.१	३४६	४३५	१५.दो०१७	४३.४७	३६.२३८	६६.७६८
११.२	३४७	४३६	१५ दो०१८	४३.४८	३६ २३९	६६.७६९
११.३	३४८	४३७	१५.दो०१९	४३.४९	३६.२४०	६६.७७०
११.४	३४९	४३८	१५.दो०२०	४३.५०	३६.२४१	*
११.५	३५०	४३९	१५ दो०२१	४३.५१	३६.२४२	६६.७७१
११.६	३५१	४४१	१५.दो०२२	४३.५२	३६.२४३	६६.७७४
११.७	३५२	४४२	१५.कवि०१५	४३.५४	३६.२४४	६६.७७५
११.८	३५३	४४३	१५.कवि०१६	४३.५५अ	३६.२४५	६६ २४८
११.९	३५४	४४५	१०.दो०१५	४३,७७	—	६६.८२८
११.१०	३५५	४४६, ४५०	१५.छंद०[ ]	४३.७९	—	६६.८३५
११.११	३५८	४५२	१५.दो०२५	४३.१०४	३६.२९०	६६.९३०
११.१२	[illegible]६२ ३६२	४५४	१६.भुज०१	४३.१०६, ४३.१११	३६.२९४	६६.९३२-९३४, ६६.९३८-९४५
११.१३	३६३	४५५	१८.दो०६	४५.७	३६.४१०	६६.१५२४
११.१४	३६४	४६५	१८.दो०७	४५.९	३६ ४१३	६६.१५२७
११.१५	३६५	४६६	१८.दो०८	४५.१०	३६.४१४	६६.१५२८
११.१६	३६६	४६७	१८.दो०९	४५.११	३६.४१५	६६.१५२९
११.१७	३६७	४६८	१८.अनु०१	४५.१२	३६.४१६	६६.१५३०
११.१८	३६८	४६९	१८.कवि०२४	४५.४७	३६.४५१	६६.१६१०
१२.१	३६९	४७०	१८.कवि०२७	४५.५१	३६.४५५×	६६.१६२६

* यह छन्द स में नहीं है किन्तु शा० में ६३.४३० है।

× द० प्रति खड ३६ पर समाप्त हो जाती है। खड ३७ के स्थल-निर्देश टॉड ६० के अनुसार हैं।

		४७३	१८. दे० १४	४६.९	३७.१५	६७.१९
१२.२	३७०	४७४	१९. दो० २	४६.१७	३७.२२	६७.९३
१२ ३	३७१	४७५	१९ दो० ३	४६.१६	३७.२३	६७.७६
१२ ४	३७२	४७६	१९ दो० ४	४६.२१	३७.३४	६७.८९/९५
१२.५	३७३	४८४	१९. दो० १२	४६.३८	३७.५८	६७.१४१
१२.६	३७४	४८५	१९. दो० १३	४६.३९	३७ ५९	६७.१४३
१२.७	३७५	४८६	१९. वयू० १	४६.४१	३७.६६	६७.१७३
१०.८	३७६	४८७	१९. वयू० २	४६.४२	३७.६७	६७.१७४
१२.९	३७७	४८८	१९. दे० १४	४६.४४	३७.७४	६७.१८२
१२ १०	३७८	४८९	१९ दो० १५	४६ ४५	३७.७५	६७.१८७
१२ ११	३७९	४९०	१९ भुज० ४	४६.४७	३७.७६-७९	६७.१८९-१९६
१२.१२	३८०	४९१	१९ दो० १६	४६.४८	३७.८०	६७ १९८
१२.१३	३८१	४९२	१९. पद्ध० ५	४६ ४९	३७.८१ ८८	६७.२०२-२१९
१२ १४	३८२	४९३	१९. दो० १७	४६ ५१	३७ ९०	६७.२२१
१२ १५	३८३	४९४	१९ पद्ध० [ ]	४६.५३	३७ ९१	६७ २२४-३६
१२.१६	३८४	४९६	१९ दो० [१८]	४६ ७२	३७.११४	६७.२३९
१२.१७	३८५	५००	१९. दो० १९	४६ ७७	३७.१२७	६७ २४१
१२.१८	३८६	५०१	१९. दो० [ ]	४६ ७८	३७.१२८	६७.२९५
१२.१९	३८७	५०२	१९ पद्ध० ९	४६.८०	३७.१२७	६७.२९९
१२ २०	३८८	५०३	१९. दो० २२	४६.८३	३७ १३९	६७.३०७
१२ २१	३८९	५०४	१९. दो० ३	४६ ८१	३७.१४०	६७.३०८
१२.२२	३९१	५०७	१९. दो० २४	४६.९१	३७.१४२	६७.३१९
१२.२३	३९२	५१०	१९. पद्ध० १०	५६.९७	३७.१५७-१६६	६७.३३२-३४१
१२ २४	३९३	५११	१९ दो० २५	४६.१०५	३७ १६७	६७.३५७
१२ २५	३९४	५१२	१९ दो० २६	४६.१०६	३७.१६८	६७.३६४
१२.२६	३९५	५१३	१९ दो० २७	४६ १०७	३७ १८२	६७ ३६५
१२.२७	३९८	५१४	१९ दो० २९	४६.१०९		६७.३६६
१२ २८	३९८	५१५	१९. दो० ३०	४६.११०/	३७.९८४	६७ ३६७/
				४६.१११		६७.३६८
१२ २९	३९९	५१६	१९. त्रोट० ११	४६.११२	३७.१८५	६७.३७०
१२.३०	४००	५१७	१९. दो० ३१	४६.११४	३७.१८६	६७.३७१
१२.३१	४०१	५१८	१९. दो० ३२	४६.११५	३७.१८७	६७.३७२
१२ ३२	४०२	५२९	१९ पद्ध० १२	४६.११६		६७.३७७
१२.३३	४०३,	५२१,५२३	१९. पद्ध० १४/४	४६.१२७,	३७.१९२-१९४	६७.३९१ ३९५,
	४०५	५२६,५२९		४६.१३१	३७.२०६	६७.४०२
१२.३४	४०७	५३२	१९. दो० ३४	४६.१३५	३७.२१०	६७.४०८
१२.३५	४०६	५३३	१९. कवि० १	४६.१३७अ	३७.२५२	६७.४०३
१२.३६	४०८	५२५	१९. दो० ३५	४६.१२८	३७.२०१	६७.३९६

१२.३७	४१०	५२७	१९. दो० २६	४६.१३२	३७.२०७	६७ ४०५
१२.३८	४०९	५३४	१९ कवि० ३	४६.१३८	३७.२१९	६७.४११
१२.३९	४११	५२८	१९. [चउ०]१	४६.१३३	३७.२०८	६७ ४०६
१२.४०	४१२	५३७	१९. कवि० ४	४६.१४५	३७.२४४	६७.४३५
१२.४१	४१३	५३८	१९. कवि० ५	४६.१४६	३७.२४५	६७.४३६
१२.४२	४१५	५४२	१९. कवि० ६	४६.१५०	३७.२४८	६७.४५५
१२.४३	४१४	५३९	१९. दो० ३८	४६.१४७	३७.२२५	६७.५३८
१२.४४	४१६	५४३	१९. दो० ३९	४६.१६५		६७.५१४
१२.४५	४१७	५४४	१९. कवि० ७	४६.१६७	३७.२५०	६७.५१५
१२.४६	४१८	५४८	१९. कवि० ९	४६.१७१	३७ २५३	६७.५२४
१२.४७	४१९	५३५	१९. दो० ४०	४६.१६४	३७.२२२	६७.४८८
१२.४८	४२०	५५१	१९. कवि० १०	४६.१७४	३७.२७९	६७.५४९
१२.४९	४२२	५५२	१९. कवि० १२	४६.१७६	३७.२८३	६७.५५६

—:*:—

६. पृथ्वीराज रासो
का
कथा-सार

नीचे रचना के प्रस्तुत संस्करण की कथा का सार दिया जा रहा है। यह सार जान-बूझ कर कुछ विस्तारों के साथ दिया जा रहा है, जो कि सामान्यतः छोड़े जा सकते थे। ऐसा इसलिए किया जा रहा है कि रचना की कथा के समस्त तत्व पाठक की दृष्टि मे एक-साथ आ सके और इस सार को देखकर ही वह न केवल प्रबन्ध की दृष्टि से रचना के सम्बन्ध में धारणा बना सके, वरन् उसके ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक और इतर तत्वो के सम्बन्ध मे भी पूर्ण रूप से अवगत हो सके। इसलिए आशा है कि यह विस्तार रोचक और उपयोगी सिद्ध होगा। विभिन्न सर्गों का सार देते हुए नीचे कोष्टकों मे दी हुई सख्याएँ उनके छन्दो की हैं।

१. मंगलाचरण और कथा की भूमिका

गणेश (१) और सरस्वती (२) की वन्दना करने के अनन्तर शिव को नमस्कार करके (३) अपने पूर्व के कवियो को 'पृथ्वीराज रासो' के कवि ने स्मरण किया है, और ये है शिव, यम, व्यास, शुकदेव, श्रीहर्ष, कालिदास तथा दण्डी (४); छन्द-प्रबन्ध के प्रसंग मे उसने पिंगल[1], [के छन्द-सूत्र] भरत [के नाट्य सूत्र] तथा महाभारत को भी [पीछे ?] छोड़ने का संकल्प किया है (५) और इसके अनन्तर उसने कथारंभ किया है।

पृथ्वीराज का पूर्व-परिचय देते हुए उसने कहा है कि उसकी कपिल (धूल-धूसरित) केलि अजमेर मे हुई थी, रक्त (राग पूर्ण) जीवन के वृत्त साँभर मे हुए थे, वह सोमेश्वर का पुत्र और बहिला वन का निवासी था और दिल्लीपुर मे भासित होने के लिए ही मानो वह विधाता द्वारा निर्मित हुआ था (६)।

२. जयचन्द का राजसूय और संयोगिता का प्रेमानुष्ठान

इसी समय जयचन्द कन्नौज का शासक था जो धार्मिक था तथा हय-गजादि से सम्पन्न था; उसने कीर्ति-वर्धन के लिए राजसूय यज्ञ करने की ठानी; उसने पृथ्वीतल के अनेक राजाओं को जीत लिया (१)। उसने पृथ्वीराज के पास दूत भेजे कि वह भी उसके राजसूय यज्ञ में सहयोग करे; पृथ्वीराज की सभा में उसके इन दूतों ने जयचन्द का सन्देश सुनाया; पृथ्वीराज चुप रहा किन्तु उसके एक गुरुजन गोविन्दराज ने जयचन्द के इस प्रस्ताव का विरोध किया; यह गोविन्दराज यमुना तटवर्ती [कुरु] जागल का निवासी था, उसने कहा कि वह तो जरासंध के वंश के उस पृथ्वीराज को ही

[1] यह सम्भव नहीं है कि कवि का 'पिंगल' से तात्पर्य 'प्राकृत पैंगल' से हो, भरत के भी पूर्व पिंगल का नाम लेने से उसका तात्पर्य उन छन्द-सूत्रों के रचयिता से ही ज्ञात होता है जो पिंगल के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं।

राजा मानता था जिसने तीन बार शहाबुद्दीन को बन्दी किया था और जिसने भीमसेन (भीम चौलुक्य) [की शक्ति] को नष्ट किया था, उसने कहा कि जब तक उस (पृथ्वीराज) के कन्धे पर सिर था, राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता था, उसके इन वचनों को सुनकर कन्नौज के दूत लौट गए; कन्नौज-राज ने इस समय पृथ्वीराज से झगड़ा न करके यज्ञ सम्पन्न करने का निश्चय किया, उसने द्वारपाल के रूप में पृथ्वीराज की एक सोने की प्रतिमा स्थापित की और उसने यज्ञ और उसके साथ ही अपनी कन्या संयोगिता के स्वयंवर की तिथि निश्चित कर दी (३)। सूर्य के पुष्य नक्षत्र में तथा चन्द्रमा के तीसरे स्थान पर होने का देव पंचमी का दिन निर्धारित हुआ; [यह सुनकर] पृथ्वीराज ने कन्नौज पर चढ़ाई करने का निश्चय किया (६)।

पृथ्वीराज ने खोखन्द (कोहकन्द) और बलख के राजाओं को परास्त किया था, गजनी में विक्षोभ उपस्थित कर दिया था (८) और उसने मरुधरा को दण्डित किया था (९), [इस पृष्ठभूमि में] पृथ्वीराज के वैमनस्य की बात सुनकर जयचन्द के उक्त आयोजन का रंग फीका पड़ गया था, और जयचन्द की पुत्री संयोगिता ने पृथ्वीराज के वरण के लिए व्रत लिया था, यह समाचार पृथ्वीराज को मिला (१०)। उसने सुना कि संयोगिता ने पिता के वचन और उक्त आयोजन की उपेक्षा कर यह निश्चय किया है कि वह या तो पृथ्वीराज का पाणिग्रहण करेगी, अन्यथा गंगा में कूद कर प्राण दे देगी (११)। यह सुनकर पृथ्वीराज को उसके अनुराग का विश्वास हो गया (१२)। उधर जयचन्द ने संयोगिता को उसके इस संकल्प से विचलित करने के लिए कुछ दासियाँ उसके साथ रख दीं (१३)। उन्होंने उससे प्रश्न किया कि वह अपने पति के रूप में किसे चाहती थी (१४)। संयोगिता ने बताया कि वह पृथ्वीराज को चाहती थी, जिसके साठ (?) सामन्त थे (१५)। उन दासियों ने कहा कि वह तो लघु (हीन) कुल का था (१६)। इस पर संयोगिता ने कहा कि पृथ्वीराज की ही कृपाण ने अजमेर में धूम मचा रक्खी थी, मण्डोवर को तहस-नहस कर डाला था, मरुस्थल के मोरी राजा को दण्डित किया था, रणस्तम्भपुर (रंथंभौर) को आग की लपटों के समान दग्ध किया था, कालिंजर को जलमग्न कर दिया था, और गोरी-धरा पर वह घन बनकर घहराई थी, क्या फिर भी उसे लघु (हीन) कहा जा सकता था (१७)? इस पर उन दासियों ने कहा कि उसे स्मरण रखना चाहिए कि वह ऐसे महाराज (जयचन्द) की पुत्री है जिसने महाराष्ट्र, थट्टा, नीमच, और वैरागर को भ्रष्ट किया, कर्णाट, करवीर, गुण्ड और गुर्जर की कांति को राहु के समान ग्रस लिया और मालव, मेवाड़ और मण्डोवर को निर्माल्य के समान हस्तगत किया; उसकी सेवा में रहने वाले देव-तुल्य राजाओं में से वह किसी को क्यों नहीं वरण करती थी (१८)। संयोगिता ने उत्तर दिया कि वह किन्हीं भी बातों में नहीं आ सकती थी, और उसने संकल्प कर लिया था कि चाहे सौ जन्म ग्रहण करने पड़े, वह पृथ्वीराज को ही वरण करने वाली थी (१९)। जब अनेक प्रकार से संयोगिता को समझाने पर भी वे दूतियाँ कृतकार्य नहीं हुई तो जयचन्द ने रुष्ट होकर उसको गंगातटवर्ती एक आवास में भिजवा दिया (२७)।

३. कैंवास-वध

[संयोगिता के इस विरह-] ताप में पृथ्वीराज का मन स्थिर नहीं रहता था, इसलिए वह राजधानी में प्रधान अमात्य कैंवास को छोड़कर आखेट में फिरने लगा था (१)। इधर कैंवास पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में उसकी कर्नाटी दासी पर अनुरक्त होकर एक रात्रि उसके कक्ष में पहुँच गया (३)। पटरानी की ताम्बूल वाहिका सखी ने यह देख लिया और उसने पटरानी को इसकी सूचना कर दी; यह सुनते ही पटरानी ने भूर्जपत्र पर पत्र लिखकर एक दासी को पृथ्वीराज के पास भेजा और पृथ्वीराज को दो घड़ियों के भीतर आने के लिए लिखा (५)। जिसने जयचन्द की विशाल सेना से भय नहीं माना था, शहाबुद्दीन से साहस और इच्छापूर्वक युद्ध किए थे, और जो जिस समय चौलुक्य भीम को मन्त्री कैंवास ने बन्दी किया था, स्वतः दूर विश्वासर में रहा था, खेद कि ऐसे पृथ्वीराज

को भी वह कैंवास नही जान पाया था (६)। पत्र पाते ही पृथ्वीराज दो घड़ियों मे आ गया (८)। कैंवास और कर्नाटी को लक्ष्य करके उसने रात्रि के अन्धकार मे ही एक वाण छोड़ा, किन्तु वह वाण क्रोध के कारण उसकी मुट्ठी के हिल जाने से चूक गया, तदनन्तर [पटरानी] परमारिनी ने उसे दो वाण और दिए; उन वाणों के लगते ही कैंवास धराशायी हो गया (११)। दासी के साथ कैंवास को रातो-रात पृथ्वीराज ने गड्ढा खनवा कर गड़वा दिया (१३), और वह आखेट के लिए वन फिर चला गया (१४)। यह घटना और किसी को ज्ञात नही होने पाई, केवल चन्द को इसे सरस्वती ने स्वप्न में बताया (१४)। पृथ्वीराज सवेरा होने पर राजधानी को लौट आया (१८)। मध्य के प्रहर मे उसने पण्डित [जयानक] को बुलाकर उससे शहाबुद्दीन पर प्राप्त अपनी विजय-गाथा के कहने [लिखने] के लिए कहा, और तदनन्तर उसने सभा बुलाई, जिसमे चन्द ने आकर उसे आशीर्वाद दिया (१९)। उस सभा मे पृथ्वीराज ने पहले शूरो [सामन्तो] से कैंवास के बारे मे पूछा, किन्तु कोई बता नहीं सका कि वह कहाँ था (२०)। तदनन्तर उसने चन्द से यही प्रश्न किया (२१)। चन्द ने पहले उत्तर न देना ही ठीक समझा, किन्तु पृथ्वीराज के हठ करने (२५) पर उसने उत्तर दिया (२६)। उसने उस रात्रि की सारी घटना सुना दी (२७)। सभा विसर्जित हुई (२८)। कैंवास की स्त्री को जब यह ज्ञात हुआ, उसने चन्द से मृत पति का शव दिलाने के लिए कहा, चन्द के बहुत कहने पर पृथ्वीराज ने कैंवास का शव दिलाना इस शर्त पर स्वीकार किया कि चन्द उसे जयचन्द का दर्शन करावेगा (३७)। पृथ्वीराज अनुचर के रूप में चन्द के साथ जाने को प्रस्तुत हुआ (३९), दोनों कसकर गले मिले और रोए और पृथ्वीराज ने कहा कि उस अपमानपूर्ण जीवन से मरण अच्छा था (४०)। कवि ने उसके इस विचार का समर्थन किया (४२) और कैंवास का शव उसकी विधवा स्त्री को दिया गया (४३)।

४. पृथ्वीराज का कन्नौज-गमन

पृथ्वीराज ने चंद के साथ कन्नौज के लिए प्रयाण किया, साथ मे अनेक शूर सामन्त भी थे, कुल सौ राजपूत थे (१)। तीन दिन, तीन रात और एक पल कम तीन प्रहर मे वे इक्कीस योजन पहुँच गए (५)। रात्रि के अनंतर प्रभात होने पर वे कन्नौज पहुँच गए (८)। उन्होंने गंगा का दर्शन किया और उसकी स्तुति की (११)। घाटों पर उन्हे जल भरती हुई सुन्दरियाँ दिखाई पड़ीं (१३)। उन्होंने जाकर सदेह देवी के दर्शन किए, पृथ्वीराज को देख कर उसने आशीर्वाद दिया कि विजय उसके पक्ष मे हो (२२)। वे लोग तदनतर नगर-दर्शन करते हुए आगे बढ़े (२३-२५)।

५. पृथ्वीराज का कन्नौज में प्राकट्य

दरबार को पूछता-पूछता चंद कन्नौज के कोटपाल के पास पहुँचा (१)। उसने जयचंद को चंद के आने की सूचना दी (३)। जयचन्द ने अपने गुणीजन को चन्द की परीक्षा ले [कर उसे ला] ने को भेजा (४)। चन्द से मिल कर उन्होंने उसके बिना देखे ही जयचन्द का वर्णन करने के लिए कहा (९)। जयचन्द (१०) तथा उसकी सभा (१२) का वर्णन करते हुए चन्द ने उसकी विजय-गाथा कही: उसने कहा कि जयचन्द ने सिंधु [नदी] का अवगाहन कर तिमिर (म्लेच्छ-दल) को भगाया, उसने हिमालय में स्थित राज्यों को ढहाया और एक दिन में आठ सुलतानों को वश मे किया, तिरहुत में जाकर उसने सेना स्थापित की, उसने डाहल के कर्ण को दो बार बंदी किया, [गूर्जर के] सोलंकी (चौलुक्य) सिद्ध (जैन) राजा को कई बार खदेड़ा, उसने तिलंग और गोवल्लकुण्ड को तोड़ा, गुण्ड के जीरा शासक को बंदी करके छोड़ा, वैरागर के सब हीरे लिए, गजनी के शाह शहाबुद्दीन के सेवक निसुरत्त खाँ को बंदी किया, भूल कर लंका जा पहुँचा और विभीषण से कलह कर बैठा, और खुरासान के अमीर को बंदी किया; ऐसा विजयपाल का पुत्र जयचन्द

था (१३)। इसके अनन्तर वे गुणीजन चन्द को जयचन्द की सभा मे लिवा ले गए (१४)। जयचन्द ने कवि का अ दर करने के अनन्तर उससे पृथ्वीराज के शौर्य तथा रण-कौशल के बारे में पूछ कर (१५-१७) उसकी उनहार पूछी (१८)। चन्द ने बताया कि पृथ्वीराज उस समय ३६ वर्ष तथा ६ मास का था, दुर्जनो के लिए राहु के समान था, और चारो दिशाओं के हिन्दू उसकी मुट्ठी मे थे (१९)। इस समय जयचन्द ने चन्द के अनुचर (अनुचर-वेशी पृथ्वीराज) को स्थिर दृष्टि से देखा तो नेत्रों-नेत्रों मे बल पड़ गया (२०)। जयचन्द ने चन्द को पान अर्पित करने के लिए राज-भवन की कुमारी दासियो को बुलवाया (२१) और वे सुंदरियाँ एक साथ भट्ट (चन्द) को पान अर्पित करने के लिए चल पड़ी (२२)। इनमे एक पहले पृथ्वीराज की दासी रह चुकी थी, और वहाँ से लुप्त होकर जयचन्द की सेवा में आ गई थी, वह बाल खोले रहा करती थी, किन्तु [अनुचर-वेशी] पृथ्वीराज को देखते ही उसने सिर ढँक लिया (२५)। दासी का यह कृत्य देखकर जयचन्द को शका हुई कि वह पुरुष जो चन्द के साथ उसके अनुचर के रूप मे था, कदाचित् पृथ्वीराज था (२६), किन्तु किसी ने कहा कि चन्द पृथ्वीराज का अभिन्न सखा था इसलिए दासी ने चन्द को देखकर इस प्रकार लज्जा की (२७)। तदनन्तर एक सुवासित आवास मे चन्द को ठहराया गया (२८)। उस आवास मे पृथ्वीराज की सभा लगी (३१) और तदनन्तर उसने शयन किया (३२)। इसी समय जयचन्द का अवसर (सगीत-समारोह) नियोजित हुआ (३३)। सबेरा होने पर जयचन्द चन्द के लिए उपहारादि लेकर उसके समक्ष उपस्थित हुआ (४४), किन्तु जब वहाँ पहुँच कर उसने सिंहासन और उस पर अनुचर वेशी पृथ्वीराज को बैठा देखा, वह ठमक गया, चन्द ने उसका स्वागत करते हुए उसे बताया कि यह सिंहासन पृथ्वीराज से उसको मिला था और इसके अनन्तर उसने अपने अनुचर (पृथ्वीराज) से जयचन्द को पान अर्पित करने के लिए कहा (४५)। अनुचर ने उसको पान देने के लिए हाथ आगे बढाया और वक्र दृष्टि से उसे देखा (४६)। जयचन्द ने पहचान लिया कि यह पृथ्वीराज है और उसने आदेश किया कि सगठित रूप मे पृथ्वीराज पर आघात (आक्रमण) किया जावे, ताकि वह भाग न सके (४८)।

६. संयोगिता-परिणय

इधर पृथ्वीराज अपने साथी सामंतों से युद्ध-क्षेत्र मे होने (जाने) के लिए कह कर नगर की प्रदक्षिणा के लिए निकल पड़ा (१)। वह गङ्गा-तट पर पहुँच कर मछलियो की क्रीड़ा मे लीन हो रहा और उन्हें मोती चुगाने लगा (७)। उधर सैनिक वाद्यों को सुनकर संयोगिता जब अपने आवास [की छत] के ऊपर चढी, वह गंगा-तट पर इस नवागंतुक को देखकर विस्मय में पड़ गई कि यह कौन था (८-९)। तदनंतर उसने एक अनुचरी को थाल भर मोतियाँ देकर उस नवागंतुक के पास भेजा, और कहा कि यदि वह इन मोतियो के सम्बन्ध मे कुछ न पूछे, तो वह दासी समझ ले कि वह नवागतुक पृथ्वीराज था और तब वह (सयोगिता) उसे इस शरीर से ही वरण कर ले (१३)। दासी ने वैसा ही किया, और जब थाल के मोती समाप्त हो गए, उसे वह अपनी कण्ठ-माला तोड़ कर उसकी पोते अर्पित करने लगी; पृथ्वीराज ने जब मोतियों के स्थान पर हाथ में पोतें देखी, उसने दृष्टि फेरी और उस सुन्दरी दासी को देखा; प्रश्न करने पर उस दासी ने बताया कि वह जयचन्द के घर की दासी थी, और उसकी पुत्री (संयोगिता) के द्वारा भेजी हुई थी जो कि जीवन का मोह छोड़ कर उस पर अनुरक्त थी, यह सुनकर पृथ्वीराज ने घोड़ा मोड़ दिया और संयोगिता से जा मिला; दोनों का पाणिग्रहण हुआ, और तदनतंर सयोगिता को वही छोड़कर युद्ध के लिए पृथ्वीराज लौट पड़ा। रात्रि हो गई थी, उसके सामत उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे (१९)। कन्ह नामक सामंत ने जब उसके हाथ मे पाणिग्रहण का कंकण बँधा हुआ देखा, तो वह समझ गया कि पृथ्वीराज संयोगिता का परिणय करके आया है (२१)। उसके सामंतो ने उसकी धीरता की

प्रशंसा की (२२), किन्तु उन्होंने उससे कहा कि परिणय करके वह सुन्दरी को छोड़ कर आ सकता था, ऐसा वे नहीं समझते थे (२३)। तदनंतर वे सब उसके साथ संयोगिता के आवास पर पहुँचे (२४)। संयोगिता पृथ्वीराज के विरह में व्यथित हो रही थी (२५-२७), किन्तु जब उसने पृथ्वीराज को लौटते देखा तो [युद्ध छोड़ कर अपने पास आते हुए देख कर] वह [वीर क्षत्राणी] उस पर प्रसन्न नहीं हुई (२८) और सिर पीट कर सखियों से कहने लगी कि जिस प्रियजन की ओर लोगों की उँगलियाँ उठें, उस प्रियजन से क्या प्रयोजन (३०) ? यह सुनकर सामंतों ने उसे समझाने का यत्न किया (३१)। किन्तु उस विनष्टा के नेत्र-प्रवाह उस दिवस की कथा कहते ही रहे (३२)। यह देख कर नरनाह कन्ह ने कहा कि यद्यपि कोटि कादर भृत्य अपने स्वामी जयचन्द के साथ चढ़ाई कर चुके हैं, वह अकेला अपनी भुजाओं के बल से कन्नौज को दिल्ली कर सकता था, और पृथ्वीराज को दिल्ली का सिंहासन दिला सकता था (३३)। [युद्ध के इस उन्माद को देखकर] संयोगिता हर्ष से पूरित हो गई; इसी समय पृथ्वीराज ने उसकी बाँह पकड़ कर उसे अपने साथ घोड़े की पीठ पर बिठा लिया (३४)।

७. पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध (पूर्वार्द्ध)

संयोगिता का परिणय करके पृथ्वीराज ने दिल्ली की ओर प्रस्थान करने की आशा की, इसी समय चन्द ने जयचन्द को ललकार कर बताया कि उसका शत्रु पृथ्वीराज यज्ञ-ध्वंस करने आया था, और उसकी पुत्री का परिणय करके उसके आभूषणों के रूप में जयचन्द से युद्ध माँग रहा था (१-२)। यह सुन कर जयचन्द के धौंसों पर चोट पड़ी (३)। पृथ्वीराज के सौ राजपूतों के ऊपर जयचन्द के सौ हजार सैनिक टूट पड़े, उसकी इस सेना की अगणित पंक्तियों में तो दस लाख सैनिक थे (५)। जयचन्द की इस विशाल वाहिनी के विरुद्ध पृथ्वीराज के सौ योद्धाओं का चल पड़ना वैसा ही था जैसे रावण की विशाल सेना के विरुद्ध राम की वानरी सेना का प्रयाण करना (७)। किन्तु राम के दल में भी वानरों की एक विशाल संख्या थी, यहाँ तो अस्सी लाख सेना से केवल सौ योद्धा भिड़ रहे थे (८)।

जयचन्द ने मीर बदन को पृथ्वीराज को पकड़ने का आदेश किया (१३)। पृथ्वीराज की ओर से कन्ह ने मोर्चा लिया और उसके प्रहार से मीर कट कर गिरने लगे (१७)। दो हजार घोड़े-हाथियों और सात हजार मीरों को मार कर चहुवान (कन्ह) ने रण-स्थल को ढक दिया (१९)। प्रथम दिन के इस युद्ध में गोविन्दराज गहलोत, नागोर निवासी नरसिंह दाहिमा, चन्द्र पुंडीर, सारंग सोलंकी तथा पाल्हन देव कूरंभ अपने दो बांधवों के साथ गिरे : इस प्रकार सौ में से सात योद्धा घट गए (२०)। भरणी के भोग में अष्टमी, शुक्रवार को यह युद्ध हुआ (२१)।

शनिवार के युद्ध में पृथ्वीराज के सामन्तों ने धावा किया (२५) और दोपहर तक में उनमें से पाँच खेत रहे (२५)। ये थे : गुर्जर धरा का माल चंदेल, थट्टा का भूपाल भान भट्टी, सामला शूर अच्छ पमार तथा धार का निरवान वीर (२७)। दोपहर से पृथ्वीराज-पक्ष में जंगलीराय ने युद्ध किया, किन्तु वह भी खेत रहा, इस प्रकार अब तक पृथ्वीराज के तेरह सामंत खेत रहे थे और पृथ्वीराज को भी पाँच बाण लग चुके थे (२८)। संध्या तक पृथ्वीराज के सोलह और सामंत खेत रहे (३०)। इनके नाम इस प्रकार थे : मंडलीराय मालन हंस, जावला, जाल्ह, बाघ बागरी, बलीराय यादव, सारंग, गाजी, पाधरी राय, परिहार राणा, साधुला, सिंह [राय], सिंहली राय, सातल्ल मोरी, भोज, मल्ल तथा मोआल राय (३१)।

८. पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध (उत्तरार्द्ध)

पृथ्वीराज के सामंतों ने अब उससे अनुरोध किया कि वह दिल्ली की ओर बढ़े और उसके मार्ग की रक्षा उनमें से एक-एक भट करे, इस प्रकार वे उसे युद्ध से बचाते हुए दिल्ली पहुँचा देते, अन्यथा अस्सी लाख शत्रु-सेना को कौन झेल सकता था (१) ? पृथ्वीराज ने सामंतो के इस प्रस्ताव का

विरोध करते हुए कहा कि मरण से उसे भयभीत नहीं किया जा सकता था, क्योंकि बिना काल के किसी का मरण नहीं होता है; वे भीम [चौलुक्य] को नष्ट करने के गर्व से मदमत्त होकर ऐसा कह रहे थे, किन्तु उसने भी तो सरवर मे शहाबुद्दीन गोरी को वश मे किया था; जिसकी शरण में हिन्दू और तुर्क दोनों हो चुके थे, उसे वे शरणागत करना चाहते थे (२)! किन्तु सामतो ने कहा कि राजा और रावत अन्योन्याश्रित हैं : वह उनकी रक्षा करता है, तो वे भी उसकी रक्षा करते हैं (३)। उन्होंने कहा, "तुमने शहाबुद्दीन गोरी को बन्दी कर हिन्दुओ की रक्षा की, विजयाकाक्षी [भीम] चौलुक्य का दमन कर जालोर की रक्षा की, भीम भट्टी को हार देकर पंगुर (?) की रक्षा की, यादवराज से रणथम्भ (रथभौर) की रक्षा की, यह युद्ध जयचैन्द की मरण-कीर्त्ति और तुम्हारी जीवन-कीर्ति का है, [हमारी कामना है कि] प्रभु सयोगिता का परिणय करके दिल्ली पहुँचे और घर-घर मगल हो (४)।" पंचानवे कोस दूर दिल्ली तक स्वामी को पहुँचाने के लिए क्रमश. एक-एक वीर जयचन्द की सेना से मोर्चा लेकर कट मरे—यह कहते हुए चन्द ने भी इस योजना का समर्थन किया (६)। फलतः पृथ्वीराज ने इसे स्वीकार किया (७) और नवमी को उसने दिल्ली की दिशा मे अपने घोड़े की बाग मोड़ी (१०)।

पृथ्वीराज-पक्ष का पहला योद्धा जो [इस योजना मे] आगे आया हरसिंह चहुआन था; उसके जूझते-जूझते तक पृथ्वीराज चार कोस आगे निकल गया (११)। इसके अनन्तर कनक बड़गूजर आगे आया; उसके जूझते-जूझते तक पृथ्वीराज छ कोस और आगे निकल गया (१४)। इसके अनन्तर निडर राठौर आगे आया, जो वर सिंह का पुत्र था; उसके जूझते-जूझते तक पृथ्वीराज आठ कोस और आगे निकल गया (१६)। तदनन्तर कन्ह आगे आया (१८), और वह मारा गया (२२)। तदनन्तर अल्हन आगे बढ़ा (२३), और वह मारा गया (२४)। तदनन्तर अचलेस आगे आया (२५), जो बाहर [राय] का पुत्र था (२६), और वह मारा गया। तदनन्तर पट्टनपति और पट्ट प्रभु को छलने वाला विंझ आगे आया (२७), और यह भगुल पति बिझ चालुक्य भी मारा गया (२८-२९)। तदनन्तर आबूपति सलष पमार आगे बढा (३०), और वह भी मारा गया; तदनन्तर लषन बघेल आगे बढा (३१), और वह भी मारा गया (३२)। इस समय तक दिल्ली दस कोस रह गई थी जब पाहार तोमर आगे आया (३३) [और वह भी मारा गया]। इस प्रकार हरसिंह ने ४ कोस, कनक बड़गूजर ने ६ कोस, निडर ने ८ कोस, कन्ह ने १० कोस, अल्हन ने १२ कोस, अचलेस ने १४ कोस, बिंझ ने १६ कोस, सलख ने ५ (?) कोस, लषन ने १० (?) कोस, तथा पाहार ने १० कोस पृथ्वीराज को आगे बढ़ाया; और इतने शूरों के जूझते-जूझते पृथ्वीराज दिल्ली पहुँच गया (३५)।

९. *पृथ्वीराज-संयोगिता का केलि-विलास*

पृथ्वीराज दिल्ली पहुँचा, तो जयचन्द कन्नौज लौट गया (१)। इसके अनन्तर पृथ्वीराज विलास में पड़ गया और अपनी शक्ति को उसने नष्ट कर दिया : निरन्तर उसके मन मे [एक मात्र] संयोगिता को सुख देने की कामना रहती थी और उसकी प्रौढ रति में पड़ कर उसे दिन-रात की सुधि नही रहती थी; परिणाम स्वरूप उसके गुरु, बांधवो, भृत्यों और प्रजा में असन्तोष उत्पन्न हो गया था (८)। ऋतुएँ आती थीं और चली जाती थी किंतु संयोगिता ने पृथ्वीराज को इस प्रकार अपने वश में कर लिया था कि उसको छोड़ कर कहीं जाना उसके लिए असम्भव हो गया था—[यहाँ छः छन्दो मे कवि ने सुन्दर ढङ्ग से षड् ऋतु-वर्णन करते हुए नायिका के प्रेमानुरोधों का उल्लेख किया है (९-१४)]।

१०. *पृथ्वीराज का उद्बोधन*

सारी प्रजा राजगुरु से पूछती कि राजा छः महीने से नहीं दिखाई पड़ा था, इसका क्या कारण था; अतः गुरु इस प्रश्न को लेकर चन्द के पास आए (१) और उससे उन्होंने यही प्रश्न

किया (३)। चन्द ने बताया कि जिस कामिनी के लिए पृथ्वीराज ने कलह किया था, अब उसी कामिनी का वह भोग वह रहा था (४)। गुरु को इस पर विश्वास नही हो रहा था, उन्होंने कहा "जिसने [सदैव] धन, स्त्री और जीवन को तृण के समान गिना था, उसने काम की वश्यता किस प्रकार स्वीकार की ?" (५)। चन्द ने संयोगिता के नख-शिख का वर्णन कर उसकी इस शका का समाधान किया (११)। गुरु ने समझ लिया कि जैसी मनुष्य की भावी होती है, वैसी ही विधाता उसे मति भी अर्पित करता है (१३)। इस वार्तालाप के अनन्तर गुरु और चन्द ने पृथ्वीराज के उद्बोधन का सकल्प किया—उन्होंने कहा या तो वह बाधवो से मनखिन् (उनका ध्यान रखने वाला) होगा, और या तो अब वह उस संयोगिता को ही देखेगा (१४)।

गुरु और चन्द राजद्वार पर पहुँचे, जहाँ संयोगिता का आदेश चलता था (१५)। दासियो के द्वारा उन्होने राजा को एक पत्रिका भेजी और उन्हे मौखिक रूप से यह कहने के लिए कहा, "गोरी तेरी धरा पर अनुरक्त है और तू गोरी (सयोगिता) पर अनुरक्त हो रहा है (२०)!" उस पत्र की पहली पक्ति पढते ही राजा लज्जित होकर भूमि पर जा पड़ा (२२)। पत्र मे लिखा था, "शहाबुद्दीन की आज्ञा से उसकी अपूर्व सेना [पुनः] एकत्रित हुई है और वह उससे आदर प्राप्त कर दिल्ली की दिशा मे बढ रही है, उसमे दस हजार हाथी तथा दस लाख घोडे है, इसी प्रकार उसके अनेक सुभट तथा योद्धा अमीर भी है जो गम्भीर और अविचलित रहने वाले हैं, हे चहुवान, सुन, बाण तो अपने अधीन है, अतः उद्योग करके प्राणो की रक्षा कर और सामन्तो से वह मन्त्र कर कि तेरे कारण दिल्ली की धरा डूब न जावे (२३)।" इस पत्र को सुनते ही [वह विलास-निद्रा से जग गया और] उसने तरकस सँभाला (२४)।

यह देख कर सयोगिता ने जीवन मे काम-सुख का महत्व प्रतिपादित करते हुए उसे उसके संकल्प से विरत करना चाहा (२५), किन्तु पृथ्वीराज ने प्रिया का मुख देखा और जी को निर्भय (कठोर) बना कर कहा, "तुमने हे श्रेष्ठ स्त्री, मेरे बाहुओ की पूजा की है, और वही तुम मुग्धा इस समय काम की बाते कर रही हो (२६)!" इसके अनन्तर पृथ्वीराज ने उसे अपने स्वप्न की कथा सुनाई (२७)। उसने कहा, स्वप्न मे एक सुन्दरी उससे आरम्भ-परिरम्भ करने लगी; उस समय उसका पति भी उसके साथ था, जिसका तेज ग्रीष्म के रवि का था; उस पुरुष ने मुझसे झगडा किया और वह मेरा हाथ पकड़कर बड़बडाने लगा; इन प्रकार वहाँ पर एक संकट उपस्थित हो गया और मै ने देखा कि वह पुरुष [रोष में] दाँतों को दाब रहा है। किन्तु तदनन्तर न मैं था, और न वह सुन्दरी थी; 'हर-हर' का स्वर उत्पन्न हुआ, पता नहीं देवगण का क्या अभिमत है, और ये किस उद्देश्य से क्या करना चाहते हैं (२८)।" सयोगिता ने यह सुन कर गुरु और कवि को बुलाया, उन्होने स्वप्न के अनिष्टकारी प्रभाव के शमन के लिए उपचार किए; तदनन्तर उसी दिन संध्या समय पृथ्वीराज ने सुभटों की सभा की।

११. शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध

पृथ्वीराज की सब सेना सत्तर हजार थी, जिनमें से बत्तीस हजार आगे बढ रहे थे (१)। इनमें पाँच हजार ऐसे थे जो राजा के लिए समस्त संकट सहने को तैयार थे (२)। इनमें भी दो हजार स्वामी की आज्ञा से सब कुछ कर सकते थे, और इन दो हजार में भी पाँच सौ ऐसे थे जो वज्र सहन कर सकते थे (३)। इनमें भी सौ शील और सत्य में यम को जीतने वाले थे और इनमें भी दस हाथियों के दाँत उखाडने वाले थे (४)। इनमें भी पाँच ऐसे थे कि उनके कार्यों की गति अगम्य थी; पृथ्वीराज इन्हीं में (इन्हीं से परिवेष्टित) था (५)। पावस के आगमन पर जब धरा अगम्य हो रही थी, तुर्क और हिन्दू सेनाएँ सुसज्जित हुई (६)।

सिन्धु पार कर शहाबुद्दीन ने खुरासान खाँ, तातार खाँ और रुस्तम खाँ से कहा कि वह उस पृथ्वीराज पर आक्रमण कर रहा था जिसने उसे बन्दी बना कर छोड़ दिया था, और जिसे उसे सात बार कर दिया था : उसने उनसे मार्ग मे और भी भृत्यो का सग्रह करने के लिए कहा (७)। उन्होने उसे पूर्ण आश्वासन दिया (८)।

दोनो दलो मे युद्ध आरम्भ हुआ (११)। दोपहर तक मे चामण्ड (?) वीर ढाई सौ खेत रहे, चालुक्य योद्धा एक सौ बीस गिरे, कूरम शूर छः हजार गिरे, खीची गिरे, आबूराज जैत पमार गिरा, पच्चीस सौ चहुवान गिरे और अन्त मे केवल चौदह सौ योद्धा पृथ्वीराज के साथ शेष रहे; शहाबुद्दीन के सोलह हजार सैनिक गिरे, पृथ्वीराज की सेना रण-क्षेत्र से लौट पडी और शहाबुद्दीन विजयी हुआ (१२)। पृथ्वीराज को शत्रुओ ने घेर लिया (१३), उन्होंने उसे खुरासान खाँ की बाहो मे सिंगिनी अर्पित करने को कहा (१४)। इस बात को पृथ्वीराज सहन न कर सका और उसने खुरासान खाँ को एक बाण से समाप्त कर दिया, किन्तु पृथ्वीराज के दिन अब दिन दूसरे आ गये थे (१५)। अन्त मे एक म्लेच्छ सरदार के द्वारा वह बन्दी हुआ (१७)।

१२. शहाबुद्दीन तथा पृथ्वीराज का अन्त

पृथ्वीराज को बन्दी कर शहाबुद्दीन गजनी गया, उसने दिल्ली का राज्य उसके पुत्र को दिया और छः महीने बाद ही शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज को नेत्रहीन कर दिया, यह बात जब चन्द ने सुनी, उसने गजनी की राह पकड़ी (१)। उसने एक अवधूत की वेष-भूषा बनाई और इस प्रकार [चल कर] वह गजनी पहुँचा (३)। तीसरे पहर शहाबुद्दीन हदफ़ (लक्ष्य वेध) खेलने के लिए निकल रहा था (१२)। आगे आगे निसुरत खाँ चल रहा था; शहाबुद्दीन की कटि मे तूणीर था और हाथ मे सिंगिनी थी, कवि ने दौड़ कर उसका मार्ग रोका, और उसे बाएँ हाथ से आशीर्वाद दिया (१३)। चन्द को अवधूत के उस वेष मे देख कर शाह ने उससे पूछा (१४) तो चन्द ने अपना परिचय दिया; उसने बताया कि उसने पृथ्वीराज के साथ अवतार (जन्म) लिया था, उसके बन्दी हो जाने से वह अनाथ हो गया था और जब उसने सुना कि वह बिना आँख का कर दिया गया था, उसने बदरिकाश्रम में जाकर तप करने का निश्चय किया था; शाह ने कहा कि पृथ्वीराज अंधा होने पर भी अपनी वक्र दृष्टि नहीं छोड़ रहा था, इसलिए उसे थाने मे रख दिया गया था, इस समय वह (शहाबुद्दीन) हदफ़ (लक्ष्य वेध) खेलने जा रहा था, दूसरे दिन वह उससे बाते कर सकता था (१५)।

दूसरे दिन शाह ने चन्द को निसुरत खाँ के द्वारा बुलवाया (१९)। तातार खाँ ने कहा कि चन्द बड़ा चतुर व्यक्ति था, उसका विश्वास न करना चाहिए था (२०)। किन्तु शाह ने कहा कि वह (चन्द) तपस्या करने जा रहा था तो अतः यदि वह चाहता था तो उससे दो बाते कर सकता था या कुछ दान ले सकता था (२१)। तदनुसार चन्द शाह के समक्ष बुलाया गया (२२)। सुल्तान ने पूछा कि योगी-विरागी को उससे मिलने की क्या आवश्यकता हो सकती थी (२३)? चन्द ने कहा कि योग-भोग की बाते वह दूसरे दिन उसे बतावेगा (२५)। इस समय उसे एक अन्य बात कहनी थी—बचपन मे पृथ्वीराज उसकी सब साधे पूरी करता था (२६) और उसी समय उसने कहा था कि बिना फल के बाण से ही वह सात घड़ियालो को सिंगिनी लेकर बेध सकता था (२७), उसी को देखने की इच्छा शेष थी, इसलिए उसके पास वह आया था; वह (शहाबुद्दीन) चाहता तो उसकी यह साध पूरी हो सकती थी (२८), और फिर इस साध के पूरी होते ही वह (चन्द) वन चला जाता (२९)। शाह को इस पर विश्वास नहीं हुआ कि इस अवस्था में भी पृथ्वीराज यह कर सकता था (३०), फिर भी उसने चन्द को इसकी स्वीकृत दे दी (३१)। चन्द अब पृथ्वीराज के पास गया और आशीर्वाद देते हुए उसने उससे कहा, "तुमने चौलुक्य राज (भीम) पर अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया, जयचन्द के यज्ञ का विध्वंस किया, ···तुम साँभर नरेश, और सोमेश्वर के

पुत्र हो; क्या तुम्हे स्मरण है कि तुमने सात घड़ियालों को [एक] वाण से बेंधने का मुझे वचन दिया था ?" चन्द का यह कथन सुनकर एक बार उसका व्यग्र देह मानो नवीन हो गया, किन्तु फिर [निराशा से] उसका सिर झुक गया (३३)। चन्द ने पुनः उसे उत्तेजना दी, और कहा कि शाह निकट ही बाईं ओर पर सौ हाथ ऊपर सुन रहा था; इस समय मानो सौ अवसर एक साथ नाच उठे थे और उसे निर्भय होकर अर्थ-साधन करना चाहिए था (३५)। बडी कठिनाई से किसी प्रकार राजा को तैयार कर चन्द शाह के पार्श्व गया, और उसने कहा कि राजा को कठिनाई से उसने तैयार किया था किन्तु केवल शाह का फ़र्मान पाने पर वह वाण पकडने पर तैयार हुआ था (४०)। तातार खाँ ने कहा कि राजा से कुछ हो नहीं सकता था इसलिए यह उसका बहाना मात्र था, शाह तो तीन फ़र्मान देने को तैयार था (४१)। चन्द प्रसन्न होकर राजा के पास लौट गया (४२)। राजा ने कहा इस कार्य के लिए उसे दो वाण चाहिए थे (४४)। चन्द ने समझा-बुझा कर उसे एक वाण से ही यह कार्य करने को तैयार किया (४५)। उसने कहा कि जो कुछ उसने कैवास के साथ किया था अब उसका फल उसे मिलने वाला था (४६)। राजा प्रस्तुत हुआ (४७)। शाह ने फ़र्मान दिए, तीसरा फ़र्मान होते ही शाह वाण से विद्ध हुआ भूमि पर पड़ा था; राजा का भी अन्त हुआ (४८)। देवताओं ने इस घटना पर आकाश से पुष्प-वर्षा की (४९)। इस प्रकार नव रस से सरस और अपूर्व इस 'रासो' की चन्द ने रचना की (४९)।

—:※:—

७. पृथ्वीराज रासो
की
ऐतिहासिकता

पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता पर विचार करने की दृष्टि से नीचे उसके प्रस्तुत संस्करण मे आए हुए ऐतिहासिक व्यक्तियो और घटनाओं से सम्बन्धित उल्लेखों का विवेचन किया जा रहा है।

(१) कर्ण . डाहल के कर्ण के विषय मे कहा गया है कि जयचन्द ने उसे दो बार बन्दी किया था :

करण डाहल्ल दु बार बांध्यउ । (५.१३)

डाहल का सब से अधिक प्रतापी शासक लक्ष्मी कर्ण कर्ण नाम से प्रसिद्ध था। इसका समय सं० १०९७-११२७ के बीच पड़ता है।[1] स० ११३० से इसके उत्तराधिकारी और पुत्र यशः कर्ण देव के अभिलेख मिलने लगते हैं।[2] प्रकट है कि लक्ष्मी कर्ण जयचन्द का समकालीन नहीं था। किन्तु उसके दो उत्तराधिकारियो—यशः कर्ण और गय कर्ण—के नामों मे भी 'कर्ण' लगा रहा है, इसलिए असम्भव नही कि कवि का आशय यहाँ डाहल के जयचन्द के समकालीन कलचुरि शासक से हो; वैसे जयचन्द के समकालीन डाहल के कलचुरि शासक क्रमशः नरसिंह (सं० १२१२-१२२७), जयसिंह (सं० १२३२), तथा विजयसिंह (स० १२३७-१२५२) थे।[3]

(२) कँवास : प्रस्तुत संस्करण का एक पूरा सर्ग तृतीय कँवास की कथा से सम्बधित है। कहा गया है कि वह पृथ्वीराज का प्रधान अमात्य था, और और पृथ्वीराज की एक करनाटी दासी पर अनुरक्त था और पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में यह उस दासी के कक्ष मे पहुँच गया था; पृथ्वीराज को ज्यो ही इस बात की सूचना मिली, उसने आकर कँवास और दासी का वध किया। रचना के अन्त में भी एक प्रसंग मे (१२.४६) इस वध के सबन्ध मे संकेत हुआ है।

जयानक रचित 'पृथ्वीराज विजय' में मन्त्री कदम्ब वास का उल्लेख है, और कहा गया है कि उसी के संरक्षण में पृथ्वीराज बालक से युवा हुआ था।[4] 'विजय' की प्राप्त प्रति इसके कुछ ही आगे खण्डित है, इसलिए उससे इसके आगे का वृत्त नहीं प्राप्त होता है। जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा लिखित 'खरतर गच्छ पट्टावली' मे मडलेश्वर कँवास का उल्लेख है, और कहा गया है कि जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ मे पृथ्वीराज के विश्राम काल में इसने मध्यस्थता का कार्य

[1] हेमचन्द रे : डाइनेस्टिक हिस्ट्री आव् नॉर्दर्न इण्डिया, भाग २, पृ० ८१८।
[2] वही, पृ० ७८९।
[3] वही, पृ० ८१८।
[4] पृथ्वीराज विजय, सपा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, सर्ग ९, श्लो० ४४।

किया था।[1] कैंवास के पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य होने और पृथ्वीराज के द्वारा उसके निकाले जाने की एक कथा 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध में है, यद्यपि उसके निष्कासन का कारण भिन्न बताया गया है, और यह कहा गया है कि वह इसी कारण शहाबुद्दीन से मिल गया था, और पृथ्वीराज की पराजय का वह कारण बना।[2] इस प्रबन्ध के सम्बन्ध मे अन्यत्र विस्तार से विचार किया गया है।[3] फलतः कैंवास का पृथ्वीराज का अमात्य होना ऐतिहासिक प्रतीत होता है। किन्तु 'रासो' मे उसके वध की जो कथा आती है, वह भी ऐतिहासिक है या नहीं, यह कहना कठिन है।

(३) गोविंदराज : यह पृथ्वीराज के मुख्य सामंतो मे से है और जयचन्द के राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण लेकर जब उसके दूत पृथ्वीराज के पास आते हैं, यह उसके निमन्त्रण का उत्तर देता है : वहाँ यह अपने को [कुरु] जाङ्गल का निवासी बताता है (२.३)। यह पृथ्वीराज-जयचन्द के युद्ध मे मारा जाता है (७ २०)। मिनहाजुस्सिराज की 'तबकात-ए-नासिरी' के अनुसार, जिसकी रचना सं० १३०६ मे हुई थी, गोविंदराय—जो कि दिल्ली का था—शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध मे मारा गया था।[4] यदि 'रासो' का गोविंदराय वही हो जो 'तबकात-ए नासिरी' का है, तो दोनो उल्लेखो मे अन्तर स्पष्ट है, यद्यपि उसका पृथ्वीराज का सामंत होना ऐतिहासिक प्रमाणित होगा।

(४) जयचन्द . रचना के सर्ग २ और ४ से ८ पृथ्वीराज तथा जयचन्द के संघर्ष के है, जो कि जयचन्द के राजसूय यज्ञ तथा उसकी पुत्री संयोगिता के कारण हुआ है। एक छन्द (५ १३) मे जयचन्द के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसने सिंधु नद पार कर म्लेच्छो को भगा दिया था, हिमालय के राज्यों को तहस-नहस किया था और आठ सुल्तानो को वश मे किया था, तिरहुत मे थाना स्थापित किया था, दक्षिण मे सेतुबन्ध तक गया था, डाहल के कर्ण को दो बार बन्दी किया था, सोलंकी (चौलुक्य) सिद्धराज को कई बार खदेडा था, तिलिंग और गोवाल कुण्ड को तोड़ा था, गुण्डके जीरा को बाँध कर छोड़ा था, वैरागर के हीरे लिए थे, गज़नी के शहाब शाह के सेवक निसुरतखाँ को बन्दी किया था [लङ्का जाकर] विभीषण से भिड़ गया था, खुरासान के अमीर को बन्दी किया था, विजयपाल का पुत्र जयचन्द इस प्रकार का था। इतिहास जयचन्द्र को विजयपाल का नहीं, विजयचन्द्र का पुत्र बताता है।[5] इस प्रकार दोनों नामो मे कुछ अन्तर है। जयचन्द्र पृथ्वीराज का समकालीन था, यह इतिहास से प्रमाणित है। अपने पिता विजयचन्द्र के साथ यह दिग्विजय मे सम्मिलित था, यह सं० १२२४ के कमौली के दान-पत्र से प्रमाणित है जो वाराणसी से विजयचन्द्र तथा युवराज जयचन्द्र के द्वारा प्रदत्त है और जिसमे 'भुवन दलन हेला' शब्दावली आती है।[6] किंतु ऊपर उल्लिखित समस्त राजाओं को उसने परास्त किया था, इसके प्रमाण नहीं मिलते हैं, लगता है कि कुछ नाम केवल सूची-वृद्धि के लिए सम्मिलित किए गए हैं; लङ्का के विभीषण से जा भिड़ना तो एक अनर्गल

[1] अगर चन्द नाहटा : पृथ्वीराज की सभा में जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ, हिन्दुस्तानी, भाग १०, पृ० ७१।

[2] पुरातन प्रबन्ध संग्रह, संपा० मुनि जिनविजय, पृ०८६-८७।

[3] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[4] इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९६-२९७।

[5] भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑव नॉर्दर्न इंडिया, अभिलेख सं० ३३३, ३३६, ३३७, ३४०, ३४५।

[6] इपिग्राफिया इंडिका, भाग ४, पृ० ११७।

कल्पना मात्र है। जिन राजाओं के सम्बन्ध के ऐतिहासिक उल्लेख प्राप्त हैं, उनके साथ हुए उसके संघर्ष पर उन राजाओं के नामों से अलग विचार किया गया है।

'रासो' में आए हुए पृथ्वीराज-जयचन्द संघर्ष तथा पृथ्वीराज-संयोगिता विवाह के सम्बन्ध में इतिहास मौन है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का कथन है कि जयचन्द एक बहुत दानी राजा था, जो उसके दिए हुए अनेक दान-पत्रों से प्रकट है, किंतु किसी दान-पत्र में भी राजसूय यज्ञ का उल्लेख नहीं है; नयचन्द्र सूरि ने सं० १४६० के लगभग लिखते हुए 'हम्मीर महाकाव्य' तथा 'रंभा मंजरी नाटिका' में, पृथ्वीराज-जयचन्द के संघर्ष अथवा जयचन्द के राजसूय यज्ञ और संयोगिता-स्वयंवर का कोई उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि 'हम्मीर महाकाव्य' में उसने पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के संघर्ष की कथा विस्तार से दी है, और 'रंभा मंजरी' में, जिसका नायक जयचन्द है, जयचन्द की प्रशंसा में पन्ने रँगते हुए भी उसके द्वारा किए हुए किसी राजसूय यज्ञ अथवा संयोगिता-स्वयंवर का उल्लेख नहीं किया है, इसलिए 'रासो' के ये विवरण अनैतिहासिक हैं। किंतु जहाँ तक दानपत्रों की बात है, 'रासो' के अनुसार पृथ्वीराज ने आरम्भ में ही उक्त राजसूय यज्ञ का विध्वंस किया था, इसलिए तत्सम्बन्धी दानपत्रों का न मिलना आश्चर्यजनक नहीं है। 'हम्मीर महाकाव्य' और 'रंभा मंजरी' को, जो सं० १४६० के लगभग लिखे गए, और काव्य की दृष्टि से लिखे गए, ऐतिहासिक महत्व प्रदान करना उचित नहीं है। 'हम्मीर महाकाव्य' के पृथ्वीराज-चरित्र में पृथ्वीराज और परमर्दि देव के भी युद्ध का भी उल्लेख नहीं है, जो उस युग की एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी, जिसके स्मारक में सं० १२३९ का मदनपुर का शिलालेख है।[2] 'रंभा मंजरी' में तो जयचन्द को मल्लदेव का पुत्र कहा गया है, और कहा गया है कि वह लाट के मदन वर्मा की पुत्री रंभा से विवाह करता है।[3] जयचन्द्र का पिता विजयचन्द्र था, न कि कोई मल्लदेव, यह इतिहास प्रसिद्ध है; मदनवर्मा एक ही ज्ञात है जो चेदि का चंदेल शासक था। लाट से, जो गूर्जर देश का एक प्रान्त रहा है, इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। इस मदन वर्मा का अन्तिम अभिलेख सं० १२१९ का एक दानपत्र है,, और इसके उत्तराधिकारी परमर्दि देव का प्रथम अभिलेख सं० १२२३ का प्राप्त है।[4] इसलिए यह जयचन्द का समकालीन अवश्य था। फलत: जयचन्द्र के उक्त दोनों काव्यों के आधार पर उपर्युक्त प्रकार का कोई परिणाम निकालना उचित नहीं माना जा सकता है।

दूसरी ओर, डॉ० दशरथ शर्मा का कथन है कि पृथ्वीराज से जयचन्द की कन्या के विवाह की की घटना इतिहास-सम्मत ज्ञात होती है, क्योंकि 'पृथ्वीराज विजय' में पृथ्वीराज के तिलोत्तमा के चित्र पर मुग्ध होने और उसके विरह में व्यथित होने की जो कथा है, वह बाद में किसी राजकुमारी से होने वाले उसके विवाह की भूमिका मात्र है, और यह राजकुमारी गङ्गा-तटवर्ती किसी स्थान की थी, यह उक्त काव्य के अंतिम प्राप्त सर्ग के ७८ वें त्रुटित श्लोक के 'नाक नदी तट स्थितः' शब्दावली से ज्ञात होता है, इसलिए यदि 'विजय' में इस कथा के अनन्तर 'रासो' में वर्णित पृथ्वीराज-संयोगिता अथवा 'सुर्जन चरित' में वर्णित पृथ्वीराज-कांतिमती के विवाह की बात आई हो तो आश्चर्य न होगा।[1] जैसा अन्यत्र दिखाया गया है, 'सुर्जन चरित महाकाव्य' में वर्णित पृथ्वीराज का समस्त चरित्र 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण का अनुसरण करता है, इसलिए उसमें आई हुई कांतिमती

[1] पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० १९८६, पृ० ५८।

[2] भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑव नॉर्दर्न इंडिया, पृ० ५८।

[3] ए० एन० उपाध्ये : नयचन्द्र ऐंड हिज रंभा मंजरी, जर्नल ऑव् यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी, ९, पृ० ९०।

[4] भांडारकर : इंस्क्रिप्शंस ऑव् नॉर्दर्न इंडिया, पृ० ४७, ४९।

के साथ पृथ्वीराज के विवाह की कथा 'रासो' में वर्णित पृथ्वीराज-संयोगिता विवाह के सम्बन्ध में स्वतंत्र साक्ष्य के रूप मे नहीं रक्खी जा सकती है। ('पृथ्वीराज विजय' मे आई हुई 'नाक नदी तट स्थितः' शब्दावली ही उसके पक्ष में रक्खी जा सकती है, किंतु वह जयचन्द की कन्या के सम्बन्ध की ही रही होगी, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।)

समसामयिक मुसलमान इतिहास-लेखको मिनहाज उस्सिराज तथा हसन निज़ामी के अनुसार[1] शहाबुद्दीन के दोनो आक्रमणो के समय—मुसलमान इतिहास लेखक पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन में दो ही युद्ध हुए मानते है—पृथ्वीराज अजमेर का शासक था; दिल्ली का शासक गोविंदराय या खाडेराय था जो उसकी ओर से दोनो युद्धों मे लड़ा था। जयचन्द और पृथ्वीराज के संघर्ष की कथा 'रासो' के अनुसार शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के इन दोनों संघर्षों के बीच में पड़ती है, जयचन्द के विरुद्ध अतः पृथ्वीराज ने दिल्ली से प्रस्थान किया था और जयचन्द-पुत्री संयोगिता को लेकर दिल्ली लौटा था, यह काल्पनिक लगता है।

(५) पृथ्वीराज : दिल्ली के शासक होने के पूर्व का पृथ्वीराज का चरित्र 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में अति संक्षेप मे है। उसे एक ही छन्द मे देते हुए कहा गया है कि उसका शैशव अजमेर में व्यतीत हुआ था, उसके जीवन के अनुरागपूर्ण वृत्त साँभर मे हुए थे, वह बहिला वन का निवासी था, और वह सोमेश्वर का पुत्र दिल्ली मे भासित होने के लिए विधाता द्वारा निर्मित हुआ था (१.६)। बहिला वन के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है, किन्तु शेष उल्लेख इतिहास-सम्मत ही हैं।

कहा गया है कि उसने बलख के शासक को हराया था और गजनी के शाह शहाबुद्दीन को हराया था (२.७)। बलख के शासक को हराने की बात इतिहास-सम्मत नहीं प्रतीत होती है। गोरी को पराजित करने के सम्बन्ध मे अलग विचार किया गया है। कहा गया है कि मुर (मरु) धरा को उसने विजित किया था (२.९), मंडोवर को तहस-नहस किया था (२.१७), मरुमंड [मरु स्थल] के मोरी राजा को दंडित किया था (२.१७), रंथंभौर को आग की लपटों के समान जलाया था (२.१७) और कालिंजर को जलमग्न किया था (२.१७)। अन्यत्र कहा गया है कि उसने भीमभट्टी से पंगुर और यादवराज से रथंभौर की रक्षा की (८.४) थी। पृथ्वीराज अपने युग का एक अति पराक्रमी शासक था, और उसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी थीं, कालिंजर के चन्देल शासक परमर्दि पर उसकी विजय-गाथा मदनपुर के सं० १२३९ के शिलालेख मे अंकित है। (असम्भव नहीं कि ये अन्य विजय भी जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है, उसको प्राप्त हुई हों, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि कुछ नाम कल्पना से रख दिए गए हों; इस प्रकार के काव्यो में सूची-वृद्धि एक सामान्य बात रही है।)

(६) भीम चौलुक्य : 'रासो' मे कहा गया है कि पृथ्वीराज ने युद्ध करके भीम की शक्ति को नष्ट किया (२.३, १२-३३); वह दूर के विश्वासर मे था, जब उसने मन्त्री (कैंवास) को भीम को बन्दी करने भेजा था (३.६); उसके सामन्तों ने ही भीमसेन को पराजित किया था (८.२) और भीमसेन से पृथ्वीराज ने जालौर की रक्षा की थी (८.४)।

गूर्जराधिपति भीम (सं० १२३५-१२९८)[2] पृथ्वीराज का समकालीन था, यह प्रमाणित है। 'पृथ्वीराज विजय' में शहाबुद्दीन के भीम पर किए गए आक्रमण की ओर संकेत करते हुए कदम्ब वास

[1] दे० इलियट और डाउसन : भाग २, पृ० २९५-२९७; तथा हेमचन्द रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव नॉर्दर्न इंडिया, पृ० १०८७-१०९३।

[2] हेमचन्द रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् नॉर्दर्न इंडिया', पृ० १०४८।

द्वारा कहलाया गया है कि "जैसे तिलोत्तमा के लिए सुंद और उपसुंद नष्ट हुये थे, वैसे ही मनोज्ञा लक्ष्मी के उद्देश्य से आपके शत्रु स्वयं नष्ट हो जायेंगे।[१]" प्राह्लादन के 'पार्थ पराक्रम व्यायोग' में भीम के सामन्त आबू के परमार धारावर्ष पर जागल-नरेश पृथ्वीराज के किए हुए एक असफल सैनिक प्रस्ताव (रात्रि कालीन आक्रमण) का उल्लेख हुआ है।[२] जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा रचित 'खरतर गच्छ पट्टावली' में पृथ्वीराज और भीम चौलुक्य के सेनापति जगद्देव प्रतिहार के बीच कठिनाई से हो पाई एक संधि का उल्लेख हुआ है।[३] इस प्रकार भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज में पारस्परिक वैमनस्य और छेड़ छाड़ के प्रमाण मिलते हैं। जालोर की रक्षा के लिए भी दोनों में कोई युद्ध हुआ था यह ज्ञात नहीं है।

(७) शहाबुद्दीन गोरी : शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के बीच हुए केवल एक ही—अंतिम युद्ध—का वर्णन 'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में मिलता है, इसके पूर्व के युद्धों के सम्बन्ध में कहा गया है-कि पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को तीन बार बाँधा था (२.३), अन्यत्र यह कि उसने शहाबुद्दीन को सरवर में परास्त किया था (८.४)। एक स्थान पर आता है कि भीम को जब मन्त्री (कैंवास) ने बन्दी किया था, पृथ्वीराज दूर विश्वासर में था (३.६); असम्भव नहीं कि 'सरवर' से तात्पर्य इसी विश्वासर से हो अन्यत्र यह कि उसने गजनी को नष्ट किया (२.१७)। एक स्थान पर शहाबुद्दीन से कहलाया गया है :

जिहि हउं गहि छंडियउ वार सत हउं अप्पउ कर। (११.७)

जिसके कम से कम दो अर्थ सम्भव हैं : एक तो यह कि 'जिसने मुझे सात बार पकडा और छोड़ा और जिसे मैंने कर अर्पित किया', दूसरा यह कि 'जिसने मुझे पकड़ कर छोड़ा और जिसे मैंने सात बार कर अर्पित किया।' मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार शहाबुद्दीन के दो ही युद्ध पृथ्वीराज से हुए थे : एक जिसमें शहाबुद्दीन पराजित हुआ था, और दूसरा जिसमें पृथ्वीराज पराजित हुआ और और मारा गया था।[४] 'रासो' में सरवर और विश्वासर का उल्लेख हुआ है। मुसलमान इतिहासकारों ने स्थान का नाम 'तबर हिन्द' : या 'सर हिन्द' दिया है। सरवर (सर हिंद?) के युद्ध के अतिरिक्त अन्तिम युद्ध से पूर्व के युद्धों का कोई विवरण 'रासो' में नहीं मिलता है, और न तत्कालीन इतिहास में मिलता है; वे काल्पनिक ही प्रतीत होते हैं।

'रासो' के प्रस्तुत संस्करण में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के बीच हुए केवल अन्तिम युद्ध का वर्णन हुआ है। कहा गया है कि शहाबुद्दीन ने पावस में आक्रमण किया था (११.६), युद्ध में पृथ्वीराज पराजित और बन्दी हुआ (११.१७), तदनंतर शहाबुद्दीन इसे गजनी ले गया (१२.१), दिल्ली का हय-गज-भाडार उसके पुत्र को सौंप दिया (१२.१) और कुछ समय बाद उसने पृथ्वीराज की आँखे निकलवा लीं (१२.१); यह सुनकर चन्द ने गजनी की राह पकड़ी (१२.१), उसने वहाँ जाकर शहाबुद्दीन से कहा कि पृथ्वीराज बिना फल के बाण से घड़ियालों को वेध सकता था, यह उसने उससे किसी समय कहा था, और अब चन्द तप के लिए जाना चाहता था, इसलिए इसके पूर्व उस साध को पूरी कर लेना चाहता था, जो कि केवल शाह की अनुमति से ही संभव था (१८.२७-२८); शाह को भी इस कौतुक को देखने की उत्सुकता हुई अतः उसने इसके आयोजन की अनुमति दे दी (१२.३१); चन्द ने पृथ्वीराज को भी इस योजना के लिए तैयार कर लिया, और शाह से उसने

[१] 'पृथ्वीराज विजय', सर्ग ११, प्रारम्भ।

[२] 'पार्थ पराक्रम व्यायोग', गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, पृ० ३।

[३] अगरचन्द नाहटा : जगद्देव और पृथ्वीराज की संधि, हिन्दुस्तानी, भाग १०, पृ० ९८।

[४] मिनहाजुस्सिराज : 'तबकात-ए-नासिरी', इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९५-२९७ तथा हेमचन्द रे, डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव नॉर्दर्न इण्डिया, पृ० १०८८-१०९३।

कहा कि उसके तीन मौखिक फरमान प्राप्त करके ही पृथ्वीराज लक्ष्य वेध करने के लिए तैयार हुआ था (१२.४०), अतः शाह ने इसे भी स्वीकार कर लिया, और जब उसने तीसरा फरमान सुनाया, पृथ्वीराज का वाण उसको वेधता हुआ निकल गया (१२.४८); तदनन्तर राजा का भी मरण हुआ (१२.४८)। प्रायः समसामयिक मुसलमान इतिहासकारों मिनहाजुस्सिराज तथा हसन निजामी के अनुसार[1] पृथ्वीराज अजमेर में शासन करता था, दिल्ली का शासक गोविन्द राय या खाडे राय था जो पृथ्वीराज की ओर से शहाबुद्दीन से दोनो युद्धों में लडा था; हसन निजामी के अनुसार शहाबुद्दीन ने दूसरे आक्रमण के पूर्व अजमेर एक दूत भेजा था और कहलाया था कि वह इस्लाम और उसकी अधीनता स्वीकार करे। चौहान के रोषपूर्ण उत्तर के अनन्तर उसने उस पर आक्रमण किया था। हसन निजामी ने यह भी कहा है इस आक्रमण के समय पृथ्वीराज ने कहला भेजा था कि यदि सुल्तान अपने राज्य की सीमाओं में चला जावे तो वह उसका पीछा नहीं करेगा; इस पर सुल्तान ने उत्तर भेजा कि वह अपने बड़े भाई के आदेश से कठिनाइयाँ झेलता यहाँ आया था, और उससे आदेश लेकर ही लौट सकता था जिसके लिए समय अपेक्षित था; पृथ्वीराज ने यह मान लिया तो रात में सारी तैयारी करके दूसरे दिन प्रातः काल ही जब राजपूत अपने नित्य कर्म में लगे हुए थे सुल्तान ने आक्रमण कर दिया; पृथ्वीराज की सेना इसके लिए तैयार नहीं थी और शीघ्र ही वह पराजित हुआ इसके अनन्तर अजमेर का शासक पृथ्वीराज का पुत्र बनाया गया। दोनो के अनुसार पराजित होने पर पृथ्वीराज भागता हुआ सरस्वती के निकट पकडा गया और मार डाला गया। प्रकट है कि 'रासो' की उपर्युक्त कथा काल्पनिक ही है।

(८) सलष और जैत पमार: 'रासो' के अनुसार सलष आबू-नरेश था और जयचन्द से हुए पृथ्वीराज के युद्ध मे पृथ्वीराज की ओर से लड़ता हुआ मारा गया (८.३०)। इसी प्रकार उसमें कहा गया है कि उसका पुत्र जैत [जो उसके अनन्तर आबू-नरेश था], शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से युद्ध करता हुआ मारा गया (११.१२)।

किन्तु पृथ्वीराज के समय में धारावर्ष परमार आबू-नरेश था[2], जो कि भीम का सामन्त था, जैसा उसके अभिलेख[3] तथा प्राह्लदन के 'पार्थ पराक्रम व्यायोग'[4] से प्रमाणित है। सलष और जैत के आबू-नरेश होने का उल्लेख इतिहास-विरुद्ध है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त 'रासो' के प्रस्तुत सस्करण में पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध के प्रसगो में पृथ्वीराज पक्ष के अनेक योद्धाओं के नाम आते हैं; ये हैं: कन्ह (८.१८ २२), नागोर-निवासी नरसिंह दाहिमा (७.२०), चन्द्र पुण्डीर (७.२०), सारंग सोलंकी (७.२०, ७.३१), पाल्हनदेव कूरंभ (७.२०), गुर्जर का माल चन्देल (७.२७), यट्टा का भूपाल भान भट्टी (७.२७), सामला शूर (७.२७), अच्छ परमार (७.२७), धार का निरवान वीर (७.२७), जगली राय (७.२८), मडली-राय माल्हन हंस (७.३१), जावला (७.३१), जाल्ह (७.३१), बाघ बागरी (७.३१), बलीराम यादव (७.३१), गाजी (७.३१), पाधरी राय (७.३१), परिहार राणा (७.३१), साँखुला (७.३१), सींह (७ ३१), सिंहली राय (७.३१), भोज (७.३१), मल्ल (७.३१), भोआल राय (७.३१), हरसिंह चहुआन (८.११), कनक बड़ गूजर (८.१४), निडर राठौर (८.१६), अल्हन (८.२३-२४)

[1] इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९५-२९७ तथा हेमचन्द रे: डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् इंडिया, भाग २, पृ० १०८८-१०९३।

[2] हेमचन्द रे: डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् इण्डिया, भाग २, पृ० ९२९।

[3] भांडारकर: इंस्क्रिप्शन्स ऑव नार्दन इंडिया, अभिलेख संख्या ४५४ तथा ४८८।

[4] 'पार्थ पराक्रम व्यायोग', गायकवाड ओरिएंटल सीरीज, पृ० ३।

बाहर सुत अचलेस (८.२५), भग्गुल पति विंझ चालुक्क (८.२७-२९), लषन बघेल (८.३१) और पाहार तोमर (८.३३)।

इसी प्रकार शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के युद्ध मे शहाबुद्दीन के तीन योद्धाओ के नाम आते हैं : खुरासानखॉ (११.७; ११.१४), तातारखॉ (११.७) तथा रुस्तमखॉ (११.७); शहाबुद्दीन-वध के प्रसंग मे भी दो नाम आते हैं : तातारखॉ (१२.२०,१२.४१) तथा निसुरतखॉ (१२.१३, १२१९)।

इन नामो के सम्बन्ध मे ऐतिहासिक साक्ष्य अप्राप्य है। युद्ध-विषयक ऐतिहासिक काव्यों में इस प्रकार की नामावली प्रायः कल्पित होती और वैसी ही कदाचित् यह भी है।

परिणामतः हम देखते हैं कि 'रासो' सम्पूर्ण रूप से ऐतिहासिक रचना नहीं है, उसके अनेक उल्लेख या विस्तार अवश्य ही कल्पना-प्रसूत हैं, और इतिहास से समर्थित नही हैं। फिर भी अपने व्यापक रूप मे वह एक ऐसे जिम्मेदार कवि की रचना प्रतीत है जिसने हिंदू सूत्रों से प्राप्त सामग्री का यथेष्ट सावधानी के साथ उपयोग किया, और कथा-नायक के समय के बाद की किसी घटना अथवा किसी व्यक्ति का घाल-मेल कथा मे नहीं किया। 'रासो' के कवि की इन दोनों विशेषताओं पर विचार करने पर ज्ञात यह होता है कि निस्सदेह वह पृथ्वीराज का समकालीन तो नहीं था, किन्तु बहुत बाद का भी नही था, और उसने रचना यद्यपि काव्य की दृष्टि से अधिक और इतिहास की दृष्टि से कम की, फिर भी सुलभ सामग्री का उपयोग जिम्मेदारी और कुशलता के साथ किया है।

यह कहना अनावश्यक होगा कि हमे सम्पूर्ण रचना को प्रायः उसी दृष्टि से देखना चाहिए जिस दृष्टि से हम मध्य युग में लिखे गए एक अच्छे से अच्छे ऐतिहासिक कथा-काव्य को देख सकते हैं, और इस दृष्टि से देखने पर 'पृथ्वीराज रासो' प्रस्तुत रूप मे, मेरी अपनी राय मे, एक सफल रचना मानी जा सकती है।

—:*:—

८. 'पृथ्वीराज विजय और 'पृथ्वीराज रासो

सन् १८७५ ई० में प्रसिद्ध विद्वान् डा० बूह्लर को संस्कृत ग्रन्थो की खोज मे काश्मीर में 'पृथ्वीराज विजय' की एक अति खंडित प्रति प्राप्त हुई थी,[1] जिसने चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को एकदम समाप्त कर दिया। तब से उसकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के प्रयास होते आ रहे हैं, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि वे असफल ही रहे हैं। और, 'रासो' के प्राप्त रूपो मे से किसी के आधार पर भी उसकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना कभी भी सम्भव होगा, यह आशा नहीं करनी चाहिए क्योंकि 'रासो' के प्राप्त सभी रूपो में चिंत्य अनैतिहासिक तत्व मिलते हैं। कुछ विद्वानो ने उसकी इस त्रुटि का समाधान यह बता कर करना चाहा है कि वह काव्य है, इतिहास नहीं है। किन्तु 'विजय' भी तो काव्य है, फिर भी उसमें 'रासो' जैसे अनैतिहासिक तत्व नही मिलते हैं। उदाहरण के लिए 'पृथ्वीराज विजय'[2] के प्रथम छः सर्गों में पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की कथा देते हुए उसके पूर्व-पुरुषों की जो वशावली दी गई है वह इस प्रकार ठहरती है :—
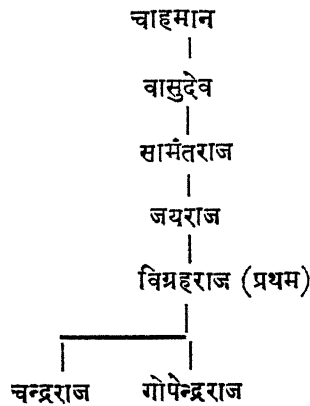
'डिटेल्ड रिपोर्ट आव् ए टूअर इन सर्च, आव् संस्कृत मैन्युस्क्रुप्ट्स मेड इन काश्मीर, राजपूताना ऐंड सेन्ट्रल इंडिया'—लेखक डॉ० बूह्लर, पृ० ६३।

'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य'—संपा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, सं० १९९७।
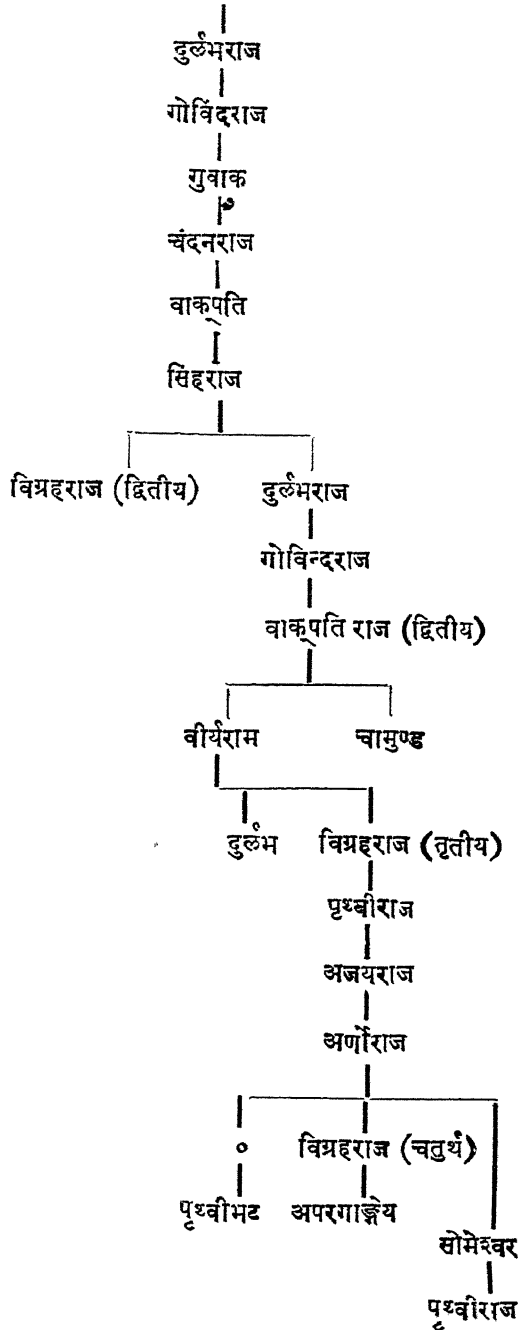
'रासो' के इतिहास-प्रेमी आलोचकों को दिखाई पड़ा कि 'रासो' (नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण) में प्राप्त पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की वंशावली इससे बहुत भिन्न और अनैतिहासिक है। अब 'पृथ्वीराज रासो' के बड़े-छोटे कई रूप मिलते हैं और उनमें तदनुसार वंशावली भी बड़ी-छोटी

मिलती है। कहा गया है कि 'रासो' के इन विभिन्न रूपों में से जो सबसे छोटा है, वही उसका मूल रूप होगा, और उत्तरोत्तर जो बड़े रूप हैं वे अधिकाधिक प्रक्षिप्त होंगे। इसलिए इस सबसे छोटे रूप को जिसे 'लघुतम रूपान्तर' कहा गया है सम्पादित करके प्रकाशित भी किया जा रहा है।[1] उसके अनुसार पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की वंशावली निम्नलिखित है :—

मानिक्कराय
|
वीसल
|
सारंग
|
आनल्ल
|
जयसिंहदेव
|
आनन्द
|
सोमेश्वर
|
पृथ्वीराज

चहुवान वंश की पृथ्वीराज तक की वंशावली के लिए सबसे प्रामाणिक साक्ष्य तीन शिलालेखों से प्राप्त है : एक है सं० १०३० वि० का हरस का,[2] दूसरा है सं० १२२६ का बीजोल्याँ का[3] और तीसरा है सं० १२३९ का मदनपुर का[4]। 'पृथ्वीराज विजय' में जो वंशावली आती है, वह लगभग वही है जो इन शिलालेखों में आई है, किन्तु 'पृथ्वीराजरासो' मे आई हुई वंशावली इस वंशावली से बहुत भिन्न है। 'रासो' के सबसे छोटे रूप की वंशावली के सात नामों मे से तीन ही 'पृथ्वीराज विजय' और इन शिला-लेखों की वंशावली में आते हैं— वीसल, आनल्ल और सोमेश्वर; शेष उसमें नहीं मिलते हैं। कहना नहीं होगा कि 'रासो' के बड़े पाठों मे जो अतिरिक्त नाम आते हैं, वे भी इसी प्रकार भिन्न ठहरते हैं।

यह सब होते हुए भी जो बात आश्चर्य मे डालने वाली है—फिर भी जो अभी तक 'पृथ्वीराज रासो' के पारखियों की दृष्टि में नहीं आई है—वह यह है कि 'रासो' के लेखक को 'पृथ्वीराज विजय' का यथेष्ट ज्ञान था, और उसने 'विजय' की रचना का अपने काव्य मे उल्लेख भी किया है। उसका यह उल्लेख कैंवास-वध-प्रकरण में हुआ है।[5] पूरा प्रसंग 'रासो' मे इस प्रकार है।

कैंवास पृथ्वीराज का मन्त्री है—जैसा वह (कदंबवास) 'पृथ्वीराज विजय' मे भी है। वह पृथ्वीराज की कर्नाट देश की एक दासी पर आसक्त हो जाता है, और एक दिन जब पृथ्वीराज आखेट के लिए बाहर जाता है, वह अवसर पा कर रात्रि के प्रारंभिक प्रहर मे उस दासी के कक्ष में

[1] पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपान्तर'—संपा० नरोत्तमदास स्वामी, 'राजस्थान भारती' भाग ४, अंक १, पृ० १२-३५ तथा परवर्ती कुछ अंक।

[2] देखिए भांडारकर : 'इंस्क्रिप्शन्स ऑव् नादर्न इंडिया', अभिलेख संख्या ८२।

[3] वही ,, संख्या ३४४।

[4] वही ,, संख्या ३९८।

[5] दे० प्रस्तुत संस्करण का सर्ग ३।

घुस जाता है। पट्टरानी को जब इस बात की सूचना मिलती है, वह पृथ्वीराज को बुलवा भेजती है। पृथ्वीराज रात्रि मे ही आकर कैंवास का वध करता है, और उसको भूमि मे गड़वा कर पुनः आखेट पर वह चला जाता है। सबेरा होने पर वह राजधानी लौटता है। यहीं पर 'विजय' के सम्बन्ध का निम्नलिखित कथन आता है[१] :—

मझ्झ पहर पुच्छइ तिहि पंडिय।
कहि कवि 'विजय' साह जिह दंडिय।
सकल सूर बोलवि सभ मंडिय।
आसिष जाय दीध तब चंडिय॥

अर्थात्—प्रहर के मध्य में पंडित से वह (पृथ्वीराज) पूछता (कहता) है, "हे कवि, तुम [मेरी] विजय (का काव्य) कहो, जिस प्रकार मैंने [युद्ध में] शाह (शहाबुद्दीन) को दण्डित किया है।" [तदनन्तर] समस्त शूरों को बुलवा कर उसने सभा माँडी (की) [जिसमे] आकर तब चण्डी-भक्त [चन्द] ने आशीर्वाद दिया।

इस उल्लेख में 'विजय' के सम्बन्ध की कुछ बाते अत्यन्त प्रकट हैं :—

१. 'विजय' की रचना पृथ्वीराज के आदेश से हुई।

२. 'विजय' का कर्त्ता कोई 'पण्डित' कवि था।

३. 'विजय' मे शाह (शहाबुद्दीन) पर प्राप्त पृथ्वीराज की विजय की कथा कही गई।

४. यह 'पण्डित' कवि चन्द नही था, चन्द तो इस प्रसंग के बाद आता है। और 'रासो' भर में चन्द 'भट्ट' है, 'पण्डित' नही है।

'पृथ्वीराज विजय' की जो प्रति प्राप्त हुई है, वह पृथ्वीराज के राज्य-ग्रहण-प्रकरण के कुछ ही पीछे खण्डित हो जाती है। उसके प्राप्त अन्तिम अंशो मे पृथ्वीराज की सभा में काश्मीर के कवि पण्डित जयानक का आगमन होता है[२] और इसकी शैली काश्मीरी काव्यों की शैली का अनुसरण करती है, इसलिए विद्वानो ने अनुमान किया है कि 'विजय' का कवि यही पण्डित जयानक है।[३] इस काव्य के प्रारम्भ मे ही कहा गया है कि पृथ्वीराज ने ['विजय' के] कवि का आदर किया था, और उसी ने यह काव्य लिखने के लिए उसे प्रेरित किया था,[४] इसलिए और इसलिए भी कि इस ग्रन्थ से कुछ उदाहरण स० १२०० ई० के लगभग होने वाले जयार्थ के द्वारा लिखित राजानक रुय्यक के 'अलंकार सर्वस्व' की 'अलंकार विमर्षिणी' नाम की टीका तथा उसी के द्वारा लिखित 'अलंकारोदाहरण' में दिए गए हैं अनुमान किया गया है कि इसकी रचना पृथ्वीराज के जीवन-काल में (सन् ११९३ में उसका देहान्त हुआ) हुई होगी।[५] इसमें ११९१ ई० में प्राप्त शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज के विजय की कथा कही गई थी, यह भी अनुमान किया गया है।[६] उपर्युक्त प्रथम तथा तृतीय अनुमानों की पुष्टि 'रासो' की ऊपर उद्धृत पंक्तियो से भली भाँति हो जाती है। द्वितीय अनुमान बहुत युक्त-संगत नही लगता है, और 'रासो' से उसकी पुष्टि भी पूर्ण रूप से नही होती है। 'रासो' के प्राप्त समस्त रूपों के अनुसार शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज के विजय की घटना कैंवास-वध के पूर्व

[१] प्रस्तुत संस्करण, सर्ग ३, छन्द १९।

[२] 'पृथ्वीराज विजय', सर्ग १२, छन्द ६३ तथा ६८।

[३] वही, प्रस्तावना, पृ० २।

[४] वही, सर्ग १, छन्द ३१-३५।

[५] 'पृथ्वीराज विजय', प्रस्तावना, पृ० २।

[६] वही, पृ० २।

आती है, तदनन्तर कँवास-वध आता है, फिर संयोगिता के लिए पृथ्वीराज और जयचन्द का संघर्ष आता है, जिसमें सफलता पृथ्वीराज को प्राप्त होती है, और अन्त मे पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का वह युद्ध आता है जिसमे पृथ्वीराज पराजित और बन्दी होता है। 'रासो' के अनुसार 'विजय' 'पण्डित' को काव्य कहने का आदेश कवास-वध प्रकरण मे होता है, और यह असम्भव नही है कि उसने 'विजय' काव्य पृथ्वीराज के जीवन-काल में अर्थात् पृथ्वीराज-शहाबुद्दीन के अन्तिम युद्ध के पूर्व समाप्त कर लिया हो। किन्तु 'रासो' मे पुनः किसी प्रसग में पण्डित से 'विजय' काव्य सुनने की या उसकी रचना के लिए उसे पुरस्कृत किए जाने का उल्लेख नही होता है, इसलिए 'रासो' के आधार पर यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है कि उसके कवि 'पण्डित' ने उसे उक्त अन्तिम युद्ध के पूर्व पूर्ण भी कर लिया था।

'पृथ्वीराज रासो' से 'पृथ्वीराज विजय' के सम्बन्ध मे जो यह निश्चित प्रकाश पड़ता है, वह अत्यन्त महत्व का है, और इस प्रकाश के लिए हमे 'रासो' के कवि का अत्यन्त कृतज्ञ होना चाहिए। प्रकट है कि जब 'रासो' के कवि को 'विजय' का ऐसा निकट का परिचय था, तो 'रासो' के मूल रूप मे हमे—अन्य अनैतिहासिक उल्लेखो को यदि छोड़ दिया जाय—ऐसे उल्लेख न मिलने चाहिए 'विजय' के विरुद्ध जाते हैं। और यह बतलाना अनावश्यक होगा कि 'रासो' के प्रस्तुत पाठ-निर्धारण के अनंतर इस परिणाम की पुष्टि पूर्ण रूप से हुई है।

'विजय' के उपर्युक्त उल्लेख से यह भी प्रमाणित होता है कि 'रासो' अपने मूल रूप मे निरा 'भट्ट भणंत' नही था, जैसा प्राय: समझा जाता है; वह एक ऐसे जिम्मेदार कवि की कृति था, जो भले ही कथा-नायक का समसामयिक न रहा हो, पर जिसने उसकी जीवन-गाथा से परिचित होने का यत्न किया था, और जो उसकी सबसे अधिक पूर्ण और प्रामाणिक जीवन-कथा 'पृथ्वीराज-विजय' से भली भाँति परिचित था।

—:*:—

९. 'हम्मीर महाकाव्य और 'पृथ्वीराज रासो

हम्मीर महाकाव्य', जैसा रचना के अन्त में कहा गया है,[१] जयसिंह सूरि के शिष्य नयचन्द्र सूरि द्वारा तोमर नरेश वीरम के समय में रचा गया था। तोमर वीरम की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है, किन्तु सं० १६८८ का रोहतास (जिला–झेलम, पंजाब) का एक शिलालेख तोमर मित्रसेन के समय का है, जिसमे उसके पूर्व-पुरुषों की नवीं पीढ़ी मे गोपाचल (ग्वालियर) नरेश तोमर वीरम आते हैं।[२] यह वंशावली इस प्रकार है :—
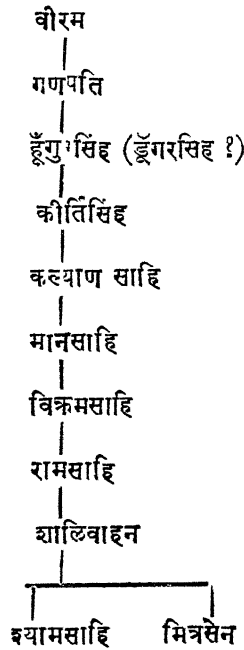
[१] 'हम्मीर महाकाव्य', संपा० नीलकंठ जनार्दन कीर्तने, मुद्रक एजुकेशन सोसाइटी प्रेस, बम्बई, पृ० १३३-१३५।

[२] देखिए भांडारकर : 'इंस्क्रिप्शन्स आव् नार्दर्न इंडिया', अभिलेख संख्या ९८८ तथा 'जर्नल ऑव् एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल' भाग ८, पृ० ६९५।

इन नौ पीढ़ियों के लिए, यदि प्रत्येक पीढी के लिए २५ वर्ष के हिसाब से, २२५ वर्ष मान लिये जावे तो तोमर वीरम का समय सं० १४६३ के लगभग होना चाहिये। इसका समर्थन गोपाचल नरेश डूँगर सिंह के समय के एक अभिलेख से भी होता है जो स० १५१० का है और अलवर (राजपूताना) की एक मूर्ति पर अङ्कित है।[1] अतः प्रकट है कि 'हम्मीर महाकाव्य' का रचना-काल सं० १४६० के आस-पास होना चाहिए।

इस रचना मे हम्मीर के पूर्व पुरुष होने के नाते पृथ्वीराज तथा उनके भी पूर्व-पुरुषों का चरित अङ्कित हुआ है। पृथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की वशावली इसमें इस प्रकार मिलती है[2] :—

भांडारकर : 'इंस्क्रिप्शन्स ऑव् नॉर्दर्न इंडिया', अभिलेख स० ८१२।

'हम्मीर महाकाव्य', उपर्युक्त, संपादकीय वक्तव्य, पृ० १४-१५।

पृथ्वीराज के इन पूर्व-पुरुषो के वृत्त अति संक्षेप मे देकर कवि ने पृथ्वीराज का वृत्त कुछ विस्तार पूर्वक कि है, जो सक्षेप मे इस प्रकार है :—

गङ्गदेव के देहान्त के अनन्तर सोमेश्वर राजा हुआ। उसका विवाह कर्पूर देवी से हुआ, जिसने एक पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र का नाम पृथ्वीराज रखा गया। दिन-दिन शिशु बढता रहा और एक पुष्ट तथा स्वस्थ बालक हो गया। जब उसने पढने और शस्त्रास्त्र के प्रयोग मे क्षमता प्राप्त कर ली, सोमेश्वर ने उसे सिंहासिनासीन कर दिया और स्वयं वन में जाकर योग द्वारा शरीर त्याग कर दिया। जिस प्रकार पूर्वाचल दिनकर की किरणों से प्रकाश पा कर चमक उठता है, उसी प्रकार पृथ्वीराज अपने पिता से राज्य प्राप्त कर चमका।

इसी समय शहाबुद्दीन पृथ्वीराज को वश मे करने का यत्न कर रहा था। पश्चिम के राजागण ने उसके द्वारा त्रस्त होकर गाविंदराज के पुत्र चन्द्रराज को अपना प्रमुख बनाया और मिलकर वे पृथ्वीराज के पास आए। पृथ्वीराज ने उनके मुखो पर विषाद की रेखायें देख कर उनके विषाद का कारण पूछा। चन्द्रराज ने कहा कि एक मुसलमान, जिसका नाम शहाबुद्दीन था, राजागण के विनाश के लिए उदित हो गया था, जिसने उनके अधिकतर नगरों को लूट लिया और जला दिया था, उनकी स्त्रियो को भ्रष्ट कर दिया था, और उन्हें सर्वथा एक दयनीय दशा को पहुँचा दिया था। उसने मुल्तान मे अपनी राजधानी स्थापित कर ली थी। वे उसी नृशंस शत्रु और उसके अत्याचारो से पीड़ित होकर पथ्वीराज की शरण में आए थे।

पृथ्वीराज ने जब शहाबुद्दीन के इन दुष्कृत्यों को सुना, वह रोष से भर गया; भावावेश के कारण उसका हाथ स्वतः उसकी मूछों पर पहुँच गया और उसने आगत राजागण से कहा कि वह इस शहाबुद्दीन को घुटने टेके, हाथ जोड़े और पैरों मे बेड़ियाँ पहने हुए उनसे क्षमा-याचना के लिये विवश कर देगा, नहीं तो वह सच्चा चौहान नहीं।

कुछ दिनों बाद एक अच्छी सेना लेकर पृथ्वीराज मुल्तान पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा और कई पड़ावों के बाद शत्रु के देश मे प्रविष्ट हो गया। जब शहाबुद्दीन को राजा के पहुँचने का समाचार मिला, वह भी उसका सामना करने के लिए बढ़ा। उस युद्ध मे जो इस समय हुआ, पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को बंदी किया, और इस प्रकार उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की; उसने इस अभिमानी मुसलमान को विवश किया कि वह इन राजागण से, जिन्हे उसने बरबाद कर दिया था, घुटने टेककर क्षमा-याचना करे। प्रतिज्ञा पूरी हो जाने पर, पृथ्वीराज ने शरणागत राजाओं को बहुमूल्य उपहार देकर विदा किया और शहाबुद्दीन को भी उसी प्रकार उपहार देकर उसने मुल्तान जाने की अनुमति दी।

शहाबुद्दीन इस प्रकार सद्व्यवहार प्राप्त करके भी प्राप्त पराजय के कारण अत्यधिक लज्जित हुआ। इसके बाद सात बार वह अपनी पराजय का प्रतिशोध लेने के लिए पृथ्वीराज पर चढ़ आया, और प्रत्येक बार पूर्ववर्ती बार की अपेक्षा अधिक तैयारी करके आया, किन्तु वह उस हिन्दू राजा के द्वारा हर बार पूर्ण रूप से पराजित हुआ।

जब शहाबुद्दीन ने देखा कि वह पृथ्वीराज को शस्त्रास्त्र के बल अथवा नीति-बल से परास्त नहीं कर सकता था, उसने घटैक देश के शासक को अपनी बार-बार की पराजय का विवरण लिख भेजा और उससे सहायता की याचना की। यह उसको उस राजा के घोड़ों तथा सैनिकों के रूप में प्राप्त हुई। इस प्रकार से शक्ति-सवर्द्धन करके शहाबुद्दीन ने द्रुत गति से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और उसे शीघ्र ही ले लिया। वहाँ के निवासी इससे भयभीत हो उठे और वे चारो दिशाओं मे भागने लगे। पृथ्वीराज को यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ और उसने कहा कि यह शहाबुद्दीन एक नटखट बालक के समान आचरण कर रहा था, क्योंकि वैसे ही कई बार उसके द्वारा पराजित हो चुका था और हर बार अपनी राजधानी को जाने के लिए सर्वथा निरापद छोड़ दिया जाता था। पृथ्वीराज शत्रु पर प्राप्त अपनी पूर्ववर्ती विजयों के कारण भूला हुआ केवल उस छोटी-सी सेना को इकठी कर जो उसके आस-पास थी आक्रमण-कर्त्ता का सामना करने के लिए आगे बढ़ा।

राजा की सेना यद्यपि छोटी ही थी, उसके आगमन का समाचार पाकर शहाबुद्दीन अत्यधिक भयग्रस्त हुआ, क्योंकि उसे अपनी पूर्ववर्ती पराजयों और दुर्गतियों का स्मरण अत्यन्त स्पष्ट था। रात में, इसलिए, उसने अपने कुछ विश्वस्त भृत्यों को राजा के शिविर में भेजा, और उनके द्वारा प्रचुर धन देने का प्रलोभन देकर उसने राजा के अश्वाधानिक और वाद्यकों को मिला लिया। उसने तब बहुत से मुसलमानो को गुप्त रूप में शत्रु के शिविर मे भेज दिया, जो इसमे बहुत तड़के, जबकि चन्द्रमा पश्चिम के क्षितिज पर पहुँच ही पाया था, और सूर्य ने पूर्व को ज्योतिर्मय करना प्रारम्भ ही किया था प्रविष्ट हो गए।

यह देखकर राजा के शिविर में बड़ा हल्ला हुआ और गड़बड़ी मच गई। जब कि राजा के भृत्य आक्रान्ताओ का सामना करने को सन्नद्ध हो रहे थे, राजा का विश्वासघाती अश्वाधानिक, जैसा कि उससे उसके मिलाने वालों ने कह रक्खा था, राजा के उस घोड़े को जीन कस कर लाया जो नाट्यारंभ कहलाता था; वाद्यक भी जो अपना अवसर देख रहे थे, जब राजा घोड़े पर सवार हो गया, अपने वाद्यों पर वे वे राग बजाने लगे जो राजा को प्रिय थे। इस पर राजा का घोड़ा

वादकों के संगीत पर ताल देता हुआ गर्वोन्मत्त होकर नाचने लगा। राजा का चित्त कुछ देर के लिए इस खेल मे लगा रहा, और उस क्षण के सर्वाधिक महत्व के कार्य को वह भूल गया।

मुसलमानों ने राजा की असावधानी का लाभ उठाया और जोरों का आक्रमण किया। इस दशा में राजपूत कुछ न कर सके। पृथ्वीराज यह देखकर घोड़े से उतर पड़ा। हाथ मे तलवार लेकर उसने अनेक मुसलमानो को काट डाला। इसी बीच एक मुसलमान ने धोखे से पीछे की ओर से उसके गले मे धनुष डाल कर राजा को गिरा दिया, जब कि अन्य मुसलमानों ने उसे बन्दी कर लिया। इसी समय से बन्दी राजा ने भोजन और विश्राम छोड़ दिया।

शहाबुद्दीन का सामना करने के लिए निकलने के पूर्व पृथ्वीराज ने उदयराज को आदेश दे रक्खा था कि वह उसके पीछे आकर शत्रु पर आक्रमण करे। उदयराज रणक्षेत्र मे लगभग उस समय पहुँचा जब मुसलमान राजा को बन्दी करने मे सफल हो चुके थे। शहाबुद्दीन उस समय उदयराज से युद्ध करने मे हार की आशंका करके बन्दी राजा को साथ लिए नगर के भीतर चला गया।

जब उदयराज ने पृथ्वीराज के बन्दी होने का समाचार सुना, उसका हृदय अत्यधिक पीड़ित हो उठा। राजा को अपने भाग्य के सहारे छोड़ कर वह लौटना नही चाहता था, क्योंकि यह करना उसके निर्मल यश के लिए उसके गौड़ देश मे कलंक माना जाता। इसलिए उसने शत्रु के नगर (योगिनीपुर—दिल्ली) के चारो ओर घेरा डाल कर उसके फाटक पर युद्ध करता एक मास तक डटा रहा।

इस घेरे के बीच एक दिन शहाबुद्दीन का एक भृत्य उसके पास गया और उससे कहने लगा कि उसे एक बार उस पृथ्वीराज को मुक्त करना चाहिए था जिसने उसे अनेक बार बन्दी किया था और आदरपूर्वक मुक्त किया था। शहाबुद्दीन इस भले मानस की बात से प्रसन्न नहीं हुआ और उसके बोला कि उसके जैसे परामर्शदाता ही राज्यों के पतन के कारण होते हैं। तब क्रुद्ध शहाबुद्दीन ने आज्ञा दी कि पृथ्वीराज को दुर्ग के भीतर ले जाया जावे। जब यह आदेश दिया गया, वीरों ने लज्जा से अपनी गर्दनें नीची कर ली, और धर्मनिष्ठों ने आँखो में आते हुए आँसुओ को रोकने मे अपने को असमर्थ पाकर नेत्रों को आकाश को ऊपर उठा लिया। पृथ्वीराज इसके कुछ दिनो बाद देह त्याग कर स्वर्ग-वासी हुआ।

जब उदयराज ने अपने मित्र के देहान्त की बात सुनी, उसने सोचा कि अब उसके लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान वही था जहाँ उसका मित्र जा चुका था। उसने इसलिए अपने समस्त अनुचरो को एकत्र किया और उनको लेकर घमासान युद्ध करते हुए अपनी समस्त सेना के साथ वहाँ गिरा और अपने तथा उनके लिए स्वर्ग का शाश्वत सुख प्राप्त किया।

'हम्मीर महाकाव्य' की इस समस्त कथा का आधार क्या है, यह उसके लेखक ने नहीं कहा है। यह तो प्रकट ही है कि 'पृथ्वीराज रासो' का कोई भी रूप इसका आधार नहीं है, क्योकि न इसमे दी हुई उपर्युक्त वंशावली उसमे मिलती है और न इसमे दी हुई पृथ्वीराज की उपर्युक्त कथा ही। इसकी वंशावली प्रायः 'पृथ्वीराज विजय' तथा शिला-लेखो मे आई हुई वंशावली का अनुसरण करती है, केवल कुछ नाम इसमे अधिक हैं।[1] इसकी कथा पूर्णतः किसी ज्ञात ग्रन्थ की कथा से नहीं मिलती है, केवल पृथ्वीराज के अन्त की जो कथा 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध[2] में दी हुई है वह इस ग्रन्थ की तत्सबंधी कथा से कुछ मिलती है। दोनों मे शहाबुद्दीन पराजित होने के

[1] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र आया हुआ 'पृथ्वीराज विजय और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[2] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र आया हुआ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

अनन्तर बन्दी हुआ और पृथ्वीराज के द्वारा मुक्त किया गया है—मुसलमान इतिहास-लेखक मिनहाजुस्सिराज के अनुसार उसकी सेना युद्ध-स्थल छोड़कर भाग गई थी और वह भी अपने एक गुलाम के द्वारा युद्ध-स्थल से दूर हटा लिया गया था, बन्दी नहीं हुआ था,[1] दोनो मे शहाबुद्दीन के सात बार असफल आक्रमण करने की बात आती है—मिनहाजुस्सिराज के अनुसार शहाबुद्दीन ने केवल एक असफल आक्रमण किया था।[2] दोनों में नाट्यारंभाश्व पर सवार होने के कारण राजा का पराभव हुआ है, यद्यपि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध मे उस पर सवार कराने का षड्यन्त्र कदम्बवास के द्वारा किया गया लगता है और इस ग्रन्थ में वह शहाबुद्दीन के भृत्यो द्वारा पृथ्वीराज के अश्वाधानिक और वाद्यकों को मिलाकर किया गया है। इसी प्रकार पृथ्वीराज को मुक्त किए जाने के विषय में शहाबुद्दीन से दोनों रचनाओं में कहा गया है, यद्यपि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज प्रबन्ध में यह स्वयं पृथ्वीराज से कहलाया गया है जब कि इस रचना मे किसी अन्य के द्वारा। फलतः आंशिक रूप में दोनों रचनाओं मे साम्य प्रकट है।

अन्यत्र हम देखते हैं कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' का पृथ्वीराज-प्रबन्ध निस्सदेह 'पृथ्वीराज रासो' के बाद की रचना है—उसमे 'रासो' के दो छन्द उद्धृत हैं जो कि किसी सुनियोजित प्रबन्ध-काव्य के अश हैं और उसमे आई हुई कथा भी अशतः इस ग्रन्थ की कथा का भी अनुसरण करती है।[3] यहाँ हम देखते हैं कि वह अंशतः इस ग्रन्थ की कथा का भी अनुसरण करती है। और 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध का इन दोनों की अपेक्षा निकटतर साम्य किसी प्राचीन रचना से ज्ञात नहीं है। इसलिए यह प्रतीत होता है कि उसकी रचना 'रासो' तथा 'हम्मीर महाकाव्य' अथवा उसके आधार-सूत्रों की सहायता से, जो अब उपलब्ध नहीं हैं, हुई। 'रासो' के विभिन्न पाठो में समान रूप से मिलने वाली कथा सादी है और लगभग उतनी ही सादी कथा 'हम्मीर महाकाव्य' की भी है जो हमें ऊपर मिली है, जब कि 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह' के पृथ्वीराज प्रबन्ध की कथा काफी पेचीली बनावट-बिनावट की है।[4] इसलिए यह किसी प्रकार संभव नहीं लगता है कि 'हम्मीर महाकाव्य' की कथा 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृथ्वीराज-प्रबन्ध की कथा के आधार पर लिखी गई हो। उसको लेकर निर्मित किए जाने पर उसके कैंवास और चन्द का भी इसमे किसी न किसी मात्रा मे आना प्रायः अवश्यंभावी होता।

—:*:—

[1] दे० इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९५-९७।
[2] दे० वही।
[3] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र आया हुआ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।
[4] दे० वही।

१०. 'पुरातन प्रबंधसंग्रह' और 'पृथ्वीराज रासो'

इक्कीस वर्ष हुए प्रसिद्ध जैन विद्वान् श्री मुनि जिनविजय ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' नाम से कुछ जैन लेखकों द्वारा लिखे हुए कथा-प्रबन्धो का एक संग्रह प्रकाशित किया था,[1] जिन में अन्य प्रबन्धो के साथ 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'जयचन्द प्रबन्ध' भी थे। इन प्रबन्धों के अन्तर्गत क्रमशः पृथ्वीराज तथा जयचन्द की कथाएँ दी हुई हैं, और साथ ही दो-दो छप्पय भी उद्धृत किए गए हैं जो चन्द बलिद्दिक (बरदाई) के रचे हुए कहे गए हैं। इन प्रबन्धों से चन्द बरदाई और एक अन्य कवि जल्ह के समय पर नया प्रकाश पड़ा है।[3] यहाँ हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि उसमें दिए हुए पृथ्वीराज-प्रबन्ध से चन्द की पृथ्वीराज सम्बन्धिनी रचना के स्वरूप पर क्या प्रकाश पड़ता है। यह प्रबन्ध-संग्रह संस्कृत में है, इसलिए नीचे इसके पृथ्वीराज-प्रबन्ध का एक हिन्दी भाषातर दिया जा रहा है और साथ ही इसमे उद्धृत चन्द के छप्पयों का अर्थ भी पाद-टिप्पणी में यथास्थान प्रस्तुत किया जा रहा है। कोष्ठकों में आई हुई शब्दावली आशय के स्पष्टीकरण के लिये प्रस्तुत लेखक द्वारा दी जा रही है।

"शाकंभरी नगरी मे चाहमान वंश में श्री सोमेश्वर नामक राजा था। उसका पुत्र पृथ्वीराज था और उस (पृथ्वीराज) का भाई यशोराज था। उस (पृथ्वीराज) का शल्यहस्त श्रीमाल जाति का प्रताप सिंह था और मन्त्री कैंवास था। इन दोनों में परस्पर विरोध था। वह राजा पृथ्वीराज योगिनीपुर (दिल्ली) मे राज्य करता था। उसके धवलगृह के द्वार पर न्याय का घंटा था। वह महा बलवान और धनुर्धरों का धुरीण राजा था। यशोराज आशी (हाँसो) नगर मे कुमारभुक्त (गुजारेदार) था। उस (पृथ्वीराज) का वाराणसी-अधिपति जयचन्द से वैर था।

एक बार गर्जनक (गजनी) के तुर्काधिपति (शहाबुद्दीन) ने पृथ्वीराज से वैर रखते हुए योगिनीपुर (दिल्ली) पर चढ़ाई की। पृथ्वीराज का अमात्य दाहिमा जाति का कैंवास नाम का मन्त्रीश्वर था। उसकी अनुमति (मन्त्रणा) से राजा (पृथ्वीराज) दो लाख घोड़े तथा पाँच सौ हाथी लेकर (तुर्क सेना के) सामने चल पड़ा। तुर्क सेना से युद्ध हुआ। शक (तुर्क) सेना छिन्न-भिन्न हो गई। सुल्तान (शहाबुद्दीन) जीवित पकडा गया। सोने की बेड़ियों मे डाला जाकर वह योगिनीपुर (दिल्लो) लाया गया और [पृथ्वीराज की ?] माता के कहने पर छोड़ दिया गया। इसी प्रकार वह सात बार बँध-बँध कर मुक्त हुआ और करद बना लिया गया।

[1] पुरातन प्रबंध संग्रह, प्रकाशक सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९३६ ई०।

[2] वही, पृ० ८६–८७ तथा ८८–९०।

[3] देखिए अन्यत्र 'पृथ्वीराज रासो का रचना-काल' शीर्षक।

[शल्यहस्त] प्रतापसिंह कर वसूल करने गर्जनक (गजनी) जाया करता था। एक बार वह एक मसजिद देखने गया और वहाँ दरवेश आदि को उसने एक लक्ष स्वर्ण टकक (सिक्के) दिए। [इस पर] मन्त्री (कैंवास) ने राजा से कहा, 'देव, गर्जनक (गजनी) के [कर के] धन से [राजकार्य का] निर्वाह होता है [और उसे] वह (प्रतापसिंह) इस प्रकार बर्बाद कर रहा है।' राजा ने [प्रतापसिंह से] पूछा, तो उसने कहा 'देव की ग्रहविषमता जान कर ही उस समय मैंने [यह धन] धर्म में व्यय किया था। ज्योतिषियों से मैंने पूछा था, उन्होंने आप को कष्ट बताया था।'

इधर शल्यहस्त (प्रताप सिंह) ने राजा के कानों में लगकर कहा, 'मन्त्री कैंवास ही बार बार तुर्कों को लाता (बुलाता) है।' राजा [यह सुनकर] रुष्ट हुआ, और इसलिए उसने मन्त्री (कैंवास) को मारने की ठानी। इसके बाद रात्रि में सर्व अवसर (दरबार-ए-आम) के उठने पर मन्त्रीव (कैंवास) जब प्रतोली (मुख्यद्वार) से निकल रहा था, राजा ने दीपक के अभिज्ञान से बाण छोड़ा। वह (बाण) मन्त्री (कैंवास) की कक्ष (काँख) के नीचे से होता हुआ दीपधर के हाथ में जा लगा और [उसके] हाथ से दीपक गिर गया। कोलाहल होने पर राजा ने पूछा, 'अरे, यह (कोलाहल) क्या (क्यों) है?' [लोगो ने कहा,] 'देव, घातक के द्वारा मन्त्री (कैंवास) पर बाण छोड़ा गया था।' [पृथ्वीराज ने पूछा,] 'अरे! क्या मन्त्री [कैंवास] जीवित है?' [लोगों ने कहा,] 'देव, वे कुशल पूर्वक हैं।' इसके बाद रात्रि के पिछले भाग में द्वारभट्ट चन्द बलिद्दिक (बरदाई) ने राजा [पृथ्वीराज] से कहा—

(१)
इक्कु बाण पहुवीसु जु पइं कैंवासह मुक्कओ।
उर भिंतरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।
बीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरि वणु।
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
नं जाणउं चंद बलद्दिउ किं न विछुट्टइ इह फलह॥[1]

(२)
अगहु म गहि दाहिमओ [राय ?] रिपु राय खयंकरु।
कूडु मंत्र मम ठवओ एहु जंबूय मिलि जग्गरु।
सह नामा सिक्खवउं जइ सिक्खिवउं बुज्झइ।
जंपइ चंद बलिद्द मज्झ परमक्खर सुज्झइ।
पहु पहुविराय सइंभरि धणी सयंभरि सउणइ संभरिसि।
कइंबास बिआस विसट्ठ विणु मच्छि बंधि बद्धओ मरिसि॥[2]

[1]. अर्थात् 'हे पृथ्वीश (पृथ्वीराज), तुमने जो एक (पहला) बाण कइंबास को [लक्ष्य करके] छोड़ा, उस बाण ने [उसके] हृदय के भीतर खलबली कर दी और धीर (कइंबास) की काँख के नीचे से यह चूक [कर निकल] गया। हे सोमेश्वरनन्दन, तुमने दूसरा बाण हाथ में साँधा तो [उसके लगने से] वह भ्रमित हो गया। इस प्रकार वह दाहिमा (कइंबास) [पृथ्वी में] गड़कर साँभर के बन को खन खोद रहा है। इस लोभी और पलक्क (लंपट) से इस बार (समय) [पृथ्वी का] यह खल गुड (कवच) स्फुट रूप में नहीं छोड़ा जा रहा है। बलिद्दिक चन्द कहता है, न जाने क्यों यह (कइंबास) [अपने कर्मों के] इस फल से नहीं छूट पा रहा है।'

[2] अर्थात् '[हे राजा,] रिपुराज (शहाबुद्दीन) को क्षय (नष्ट) करने [की सामर्थ्य रखने] वाला दाहिमा (कइंबास) अगह (अग्राह्य अथवा अगाध) मार्ग में [जा चुका] है [जिससे वह वापस नहीं बुलाया जा सकता है]। [तुम] कूट मन्त्र मत स्थित करो [क्योंकि] इस प्रकार [तुम्हारा शत्रु] जम्बू [-पति] से

राजा (प्रथ्वीराज) ने भेद के भय से अन्धकार करा दिया। पहले प्रहरिक काल में सर्व अवसर (दरबार-ए-आम) में [जब] मत्री (कैंवास) आया, तो वह विसूत्रित (अलग) कर दिया गया। भट्ट (चंद बलिद्दिक) निषकसित कर दिया गया। उस (चंद) ने कहा, 'पुनः तुम्हारे कल्याणमत के परे मैं [कुछ] नहीं कर रहा हूँ। मैं सिद्ध सारस्वत (सरस्वती-पुत्र) हूँ। तुम म्लेच्छ के द्वारा बँधकर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होगे।' [ऐसा कहता हुआ] वह निकल कर वाराणसी चला गया। [वहाँ पर] राजा जयचन्द ने [उससे] कहा, 'मैंने तुम्हे बुलाया, किंतु तुम नही आए।' [चंद ने उत्तर दिया,] 'देव, तुम भी मृत्यु के निकट हो, इसलिए मैं यहाँ भी नहीं ठहरूँगा।'

इधर कैंवास के हटने पर नया मन्त्री हुआ। राजा ने [शल्यहस्त] प्रताप सिंह के भतीजे को अत्यधिक शक्तिसपन्न समझकर कारागार मे डाल दिया। मन्त्री (कैंवास) अलग होने पर भी [राजा को] छोड़ नहीं (चैन लेने नहीं दे) रहा था। वह सुल्तान (शहाबुद्दीन) से मिला। उसने शकों (तुर्कों) का कटक बुलाया। [तुर्कों को] आया सुनकर पृथ्वीराज सामने निकल आया। तीन लाख घोडे, दस सहस्र हाथी, पद्रह लाख मनुष्य, इस प्रकार····· । आशी (हाँसी) का अतिक्रमण करके [तुर्क] कटक आगे चला गया। इसके अनन्तर सुल्तान (शहाबुद्दीन) की मन्त्री (कैंवास) से बातें हुईं। उसने कहा, 'समय आने पर बुलाऊँगा।'

अब पृथ्वीराज दस दिन तक सोया रहा, परन्तु कोई उसे जगाता नहीं था, [क्योंकि] जो उसे जगाता था, उसी को वह मार डालता था। इसी समय प्रधान (कैंवास) के द्वारा सुल्तान बुलाया गया। राजा जागता नहीं था। धीरे धीरे कितने ही सामत युद्ध करके मारे गए। कुछ भाग भी गए। सहस्र अश्वों······के शेष रहने पर बहिन ने कहा, 'तुम अपने ही लोगों को मारते हो। तुम्हारे सोते सोते [तुम्हारा] सारा कटक मारा गया।' राजा [पृथ्वीराज] ने कहा, 'मैं मंत्री (कैंवास)···।' उसके विनष्ट होने पर राजा (पृथ्वीराज) शाकंभरी [देवी] को स्मरण करके नाटारंभाश्व पर चढ़कर भागा। भाई (यशोराज) सहित वह पीछा करने वाले तुर्कों के हाथ में नहीं आया।

इधर आशी (हाँसी)····· देश में दो पर्वतिकाओं के बीच में भट्ट [चन्द] था। [वहाँ] राजा (पृथ्वीराज) को भेजकर जसराज (यशोराज) खड़ा हो गया। वह [सुल्तान के] कुछ कटक को [काट कर] खलिहान कर चुका था [जब] वह वहाँ मारा गया। सुल्तान साहबदीन (शहाबुद्दीन) ने उस मन्त्री (कैंवास) को······। '[राजा] पूँछ रहित सर्प के समान कर दिया गया है, [अपने] स्थान पर पहुँच जाने पर यह किस प्रकार पकड़ा जा सकेगा?' उस [मन्त्री] ने कहा, 'छल से।' जैसे ही घोड़ा [नाटारंभाश्व] नाचने लगा, बाजा बजाया जाने लगा, ऐसा करने से घोड़ा [नाटारंभाश्व] नाचता ही रह गया, चला नहीं [और] राजा के गले में सिंगिनी डाल दी गई। सुल्तान ने राजा को पकड़ लिया। स्वर्ण की बेड़ियों मे [उसे] डाल कर और योगिनीपुर (दिल्ली) लाकर [सुल्तान ने उससे] कहा, 'राजा, यदि तुम्हे जीवित छोड़ दूँ तो तुम क्या करोगे?' राजा (पृथ्वीराज) ने कहा, 'मैंने तुम्हे सात बार मुक्त किया है; क्या तुम मुझे एक बार भी नहीं छोड़ रहे हो?'

मिलकर झगड़ रहा है। मैं तुम्हे सब परिणाम सिखा रहा हूँ कि तुम सीख कर भी जान सको। बलिद्द चन्द कहता है, मुझे परम अक्षर (ज्ञान) सूझ रहा है। हे प्रभु पृथ्वीराज, साँभरपति, साँभर के शकुन को सँभालो (स्मरण करो)। व्यास (बुद्धिमान) और वशिष्ठ (श्रेष्ठ) कइंवास के बिना तुम [शत्रु द्वारा] मत्स्यबंध (मछली की भाँति जाल) में बँधकर मृत्यु को प्राप्त होगे।'

अब जिसकी [आँखों की] पुतलियाँ निकाल ली गई थीं, ऐसे राजा (पृथ्वीराज) के सम्मुख सुल्तान (शहाबुद्दीन) सभा मे बैठा। राजा (पृथ्वीराज) खेद कर रहा था। उससे प्रधान (कँवास) ने कहा, 'देव, क्या किया जाए ? दैव से ही यह [सकट] उत्पन्न हुआ है।' राजा ने कहा, 'यदि मुझे सिंगिनी और वाण दे दो, तो इस (सुल्तान) को मार डालूँ।' उसने कहा, 'ऐसा ही करिए।' फिर उसने जाकर सुल्तान (शहाबुद्दीन) से, निवेदन किया, 'यहाँ पर तुमको नहीं बैठना चाहिए।' [अतः] वहाँ अपने स्थान पर सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने लोहे का एक पुतला बिठा दिया। राजा (पृथ्वीराज) को सिंगिनी दी गई। राजा (पृथ्वीराज) ने वाण छोड़ा [और] लोहे के पुतले के दो टुकड़े कर दिए। राजा (पृथ्वीराज) ने [तदनंतर] सिंगिनी त्याग दी। [उसने अपने मन मे कहा,] मेरा काम तो हो नहीं पाया, [इसलिए अब] कोई और [मुझे ही] मारेगा।' इसके बाद वह सुल्तान (शहाबुद्दीन) के द्वारा गढ़े में डाला जाकर ढेलों से मारा गया। सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने कहा, 'इसके रुधिर का भूमि पर गिरना ही शुभ है।' तदनुसार वह मारा गया। सम्वत् १२४६ मे वह स्वर्ग सिधारा। योगिनीपुर (दिल्ली) लौट कर सुल्तान वहीं रह गया।"

'पुरातन प्रबन्ध सग्रह' मे उपर्युक्त प्रबन्ध के अतिरिक्त नीचे लिखा हुआ वृत्त भी दिया हुआ है—

"योगिनीपुर (दिल्ली) मे श्री प्रथिमराज (पृथ्वीराज) के ऊपर अठारह लाख घोड़ो (घुडसवार सेना) के साथ बादशाह (शहाबुद्दीन) चढ़ आया। तब एकादशी का पारण करके राजा निद्राभिभूत हो सो गया था। तब महायुद्ध के [उपस्थित] होने पर (गढ़ का) प्राकार टूटकर गिर पड़ा। डर के मारे राजा को कोई जगाता नहीं था। कुब्जिका ने (उसका) अँगूठा दबाकर जगाया। तब उसको मारकर वह फिर सो गया। दूसरे दिन चार वीरों के द्वारा वह जगाया गया। स्वरूप (परिस्थिति) को जानने पर वह प्राकार के वातायन मे बैठा। शत्रुओं ने खूब युद्ध किया। [वह पकड़ा गया] तब अत्यधिक व्याकुलता के साथ राजा (पृथ्वीराज) ने तारा देवी का स्मरण किया। वह प्रकट हुई। उसी के द्वारा बादशाह के समीप वह रात्रि में मुक्त किया गया। जब उसे मारने के लिए प्रहार किया गया, विष्णु के दर्शन हुए और वह छोड़ दिया गया, दूसरी बार [इसी प्रकार] जटाधारी (शिव) दिखाई पड़े वह छोड़ दिया गया, तीसरी बार ब्रह्मा दिखाई पड़े और [तारा] देवी ने कहा भी, इसलिए [वह] मारा नहीं गया। [अपने] वस्त्र, हथियार आदि लेकर वह चला आया। सबेरे बादशाह ने वह सब देखा और कहा, '[तुम] जैसे वस्त्र लाये हो, वैसे मारे [भी] जाओगे।' बादशाह ने सारे वस्त्र माँगे। राजा ने कहा, 'जाने पर इसका सतगुना भेजूँगा।' ऐसा होने पर सेना वापस चली गई। तदनन्तर राजा जीवग्राह के द्वारा पकड़ा गया। [उसके] बन्दी हो जाने पर उसको दिया गया भोजन कुत्ता खा गया, यह देखकर वह विषण्ण हुआ। [उसने मनमे कहा] 'अरे, यह क्या ? मेरी रसोई सात सौ साँड़नियो के द्वारा लाई जाती थी [और अब यह अवस्था हो गई !] तब तो हम लोग युद्ध के द्वारा मारे गए।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह अन्तिम वृत्त कथा-प्रबन्ध की दृष्टि से नहीं, तारा देवी और देवताओं के स्मरण का महत्व प्रतिपादित करने के लिए लिखा गया है। कथा-प्रबन्ध की दृष्टि से केवल पृथ्वीराज-प्रबन्ध ही विचारणीय है।

पृथ्वीराज-प्रबन्ध के लेखक ने यह नहीं बताया है कि उसकी कथा उसे किस रचना से प्राप्त हुई है। अतः इस प्रसंग में पहला विचारणीय प्रश्न यह है कि उपर्युक्त पृथ्वीराज-प्रबन्ध की कथा का आधार क्या है। ऊपर दिए हुए 'पृथ्वीराज-प्रबन्ध' मे तीन कथाये आती हैं—एक तो पृथ्वीराज पर किए हुए शहाबुद्दीन के असफल आक्रमण की है, दूसरी कँवास के मन्त्रिपद से हटाए जाने और द्वारभट्ट चन्द के निष्कासित किये जाने की है, और तीसरी पृथ्वीराज पर किए हुए शहाबुद्दीन के

अन्तिम आक्रमण और पृथ्वीराज के अन्त की है। अभी तक 'पृथ्वीराज रासो' के जितने पाठ प्राप्त हुए हैं उनमे भी ये तीन कथाएँ आती हैं—केवल एक पाठ में जो 'लघुतम' कहा जाता है शहाबुद्दीन के उक्त असफल आक्रमण की कथा नहीं आती है, फिर भी उसमें शहाबुद्दीन के एक असफल आक्रमण का उल्लेख स्पष्ट रूप से होता है। किन्तु दोनो का मिलान करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'पृथ्वीराज रासो' में इन कथाओ की कल्पना, कुछ अति प्रचलित सामान्य तत्वों को छोडकर, भिन्न भिन्न प्रकार से हुई है।

'पृथ्वीराज रासो' मे उपर्युक्त तीनो कथाएँ इस प्रकार विवृत हैं:—

१—उसके तीन पाठो बृहत्, मध्यम तथा लघु मे पहली कथा इस प्रकार कही गई है: गुर्जर का चौलुक्य नरेश भीम आबू के सलष पँवार की कन्या इच्छिनी से विवाह करना चाहता था। उसने सलष के पास इस आशय का सदेश भेजा। सलष के अस्वीकार करने पर उसने उक्त आबूपति पर आक्रमण कर दिया। सलष ने जो पृथ्वीराज का सामन्त था, जब इस आक्रमण की सूचना पृथ्वीराज को भेजी, पृथ्वीराज सेना लेकर भीम का सामना करने के लिए चल पड़ा। तब तक दूसरी ओर से शहाबुद्दीन ने भी आक्रमण कर दिया था, इसलिए उसने उक्त सेना के दो भाग कर एक को कैंवास के नायकत्व मे भीम का सामना करने के लिए भेज दिया और दूसरे को लेकर शहाबुद्दीन का सामना करने के लिये स्वयं बढ़ा। शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की सेनाओ की मुठभेड़ सरवर मे हुई, और भीम से कैंवास का युद्ध सोझत्ती मे हुआ। दोनों युद्धों मे पृथ्वीराज को एक साथ विजय प्राप्त हुई, इससे पृथ्वीराज की आन बहुत बढ़ गई। 'लघुतम पाठ' मे इन दो युद्धों के विवरण नहीं आते हैं, किंतु उसमे भी ऐसे छन्द आते हैं जिनमे इन दोनो युद्धों मे पृथ्वीराज को विजय प्राप्त होने का उल्लेख होता है।[1]

२—'पृथ्वीराज रासो' के समस्त पाठों मे दूसरी कथा इस प्रकार कही गई है: पृथ्वीराज की एक दासी थी जो कर्नाट देश की थी। उस पर पृथ्वीराज का मन्त्री कैंवास अनुरक्त हो गया था। अवसर पाकर एक दिन जब पृथ्वीराज आखेट के लिए गया हुआ था, रात्रि मे कैंवास उस दासी के कक्ष में गया। पटरानी को एक दासी ने यह सूचना दी, तो उसने पृथ्वीराज को अविलम्ब आने के लिए सन्देश भेजा। सदेश पाकर पृथ्वीराज आ गया। उसने वाण का संधान किया। पहला वाण तो कैंवास की काँख के नीचे से होता हुआ निकल गया, किन्तु दूसरा वाण उसके प्राण लेकर निकला। पृथ्वीराज ने मृत कैंवास को गड्ढा खुदवा कर गड़वा दिया। यह घटना रातोरात इस प्रकार घटित हुई कि किसी को पता तक नही लगा। पृथ्वीराज पुनः आखेट के लिए लौट गया। दूसरे दिन आखेट से आकर उसने दरबार किया। उसमे उसने कैंवास के सम्बन्ध मे प्रश्न किया कि वह कहाँ था किन्तु किसी को भी यह ज्ञात नही था कि कैंवास कहाँ था। पृथ्वीराज ने चन्द से भी यही प्रश्न किया। रात्रि में चन्द से सारी घटना सरस्वती ने बता दी थी, इसलिये चन्द ने कैंवास के वध की समस्त घटना विवृत्त कर दी। दरबार समाप्त हुआ। इधर कैंवास की स्त्री को जब यह ज्ञात हुआ, उसने चन्द से कैंवास का शव दिलाने के लिये अनुरोध किया। चन्द ने पृथ्वीराज से कैंवास का शव उसकी स्त्री को प्रदान किए जाने के लिये प्रार्थना की, तो पृथ्वीराज ने उसकी प्रार्थना इस शर्त पर स्वीकार की कि वह उसे अपने साथ ले जाकर कन्नौज दिखावेगा। चन्द के इसे स्वीकार करने पर कैंवास का शव उसकी विधवा को दिया गया, जिसको लेकर वह सती हुई।

३—तीसरी कथा पृथ्वीराज के तीन पाठों बृहत्, मध्यम तथा लघु मे इस प्रकार कही गई है: कन्नौज से संयोगिता को लाने के अनन्तर पृथ्वीराज विलास मे लिप्त हो गया। वह महल के

[1] दे० प्रस्तुत संस्करण के २.३, ३.६, ८.२ तथा ८.४।

भीतर ही पड़ा रहता था, और इस विलासाधिक्य के कारण उसका पौरुष भी घट गया था। उसके सामंत उसके इस आचरण से बहुत असन्तुष्ट हो गए थे। उधर शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर आक्रमण करने की घात में निरन्तर रहता था। अतः उपयुक्त अवसर समझकर उसने पृथ्वीराज पर आक्रमण कर दिया। राजगुरु तथा चन्द के प्रयत्नों से पृथ्वीराज की विलास-निद्रा भग हुई। किन्तु विलम्ब हो चुका था। संयोगिता के लिए किए हुए कन्नौज के युद्ध मे उसके अधिकतर वीर सामन्त कट चुके थे, रहे सहे जो थे, वे भी रूठ गए थे, और एक प्रमुख सामन्त हाहुलीराय जो जम्बू (जम्मू) का अधिपति था शहाबुद्दीन से मिल भी गया था। इसलिए पृथ्वीराज इस बार शहाबुद्दीन का सामना सफलता पूर्वक नहीं कर सका। युद्ध में सम्मिलित सामन्तो में से अधिकतर के कट जाने के बाद वह स्वयं युद्ध करने लगा। इसी समय एक तुर्क सरदार के द्वारा वह बन्दी हुआ। तदनन्तर शहाबुद्दीन उसे गजनी ले गया जहाँ उसने कुछ समय पीछे उसकी आँखे निकलवा ली। इस बीच चन्द जम्बूपति हाहुलीराय को मनाकर पृथ्वीराज के पक्ष मे करने के लिए उसके पास गया हुआ था, तो हाहुलीराय ने उसे जालन्धर की देवी के मंदिर में देवी का आदेश प्राप्त करने के बहाने ले जाकर बन्द कर दिया था। किसी प्रकार वहाँ से मुक्त होकर जब चन्द दिल्ली लौटा, तो उसने पृथ्वीराज के बन्दी बनाए जाने और नेत्रविहीन किए जाने की सारी घटना सुनी। उसने अविलम्ब गजनी की राह ली और अपने स्वामी पृथ्वीराज का शहाबुद्दीन से उद्धार कराने का संकल्प किया। गजनी पहुँचकर शहाबुद्दीन को उसने पृथ्वीराज का शर-सन्धान कौशल देखने के लिये राजी कर लिया। पृथ्वीराज शब्दवेध मे अत्यन्त कुशल था। कौशल-प्रदर्शन का आयोजन हुआ। चन्द ने शहाबुद्दीन से कहा कि जब तक शहाबुद्दीन स्वयं तीन बार पृथ्वीराज को बाण चलाने का आदेश न देगा, वह बाण न चलाएगा। अतः शहाबुद्दीन ने उसे तीन बार आदेश देना भी स्वीकार कर लिया। शहाबुद्दीन का तीसरा आदेश होते ही पृथ्वीराज ने जो बाण छोड़ा, उसने शहाबुद्दीन का प्राणांत कर दिया। इसके अनन्तर पृथ्वीराज का भी प्राणांत हो गया। 'पृथ्वीराज रासो' के लघुतम पाठ मे भी यह समस्त कथा है, केवल हाहुलीराय के सम्बन्ध के विस्तार उसमे नहीं है।

ऊपर दी हुई 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'पृथ्वीराज रासो' की इन कथाओं मे जो साम्य तथा अन्तर है वह इस प्रकार है :—

पहली कथा में साम्य इतना ही है कि पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन में एक युद्ध हुआ जिसमें शहाबुद्दीन को पराजय मिली। अन्तर दोनों में यह है कि उसी समय 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पृथ्वीराज ने भीम चौलुक्य जैसे एक अन्य प्रबल शत्रु का भी सफलता पूर्वक सामना किया, जिससे उसकी शक्ति की आन बहुत बढ़ गई।

दूसरी तथा तीसरी कथाओं के सम्बन्ध में दोनों मे जहाँ पर साम्य इस बात में है कि पृथ्वीराज ने कैंवास और शहाबुद्दीन पर बाण छोड़े, अन्तर यह है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' मे दोनों अवसरों पर वह अकृतकार्य हुआ है, जब कि 'पृथ्वीराज रासो' में वह दोनों अवसरों पर पूर्ण रूप से कृतकार्य हुआ है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में कैंवास पर बाण-प्रहार पृथ्वीराज यह समझकर करता है कि वही शहाबुद्दीन को बार बार बुलाता है, जब कि 'पृथ्वीराज रासो' मे उसकी लम्पटता के कारण वह उसे मारता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' मे पृथ्वीराज कैंवास पर एक ही बाण छोड़ता है, जब कि 'पृथ्वीराज रासो' में उसके चूक जाने पर वह दूसरा बाण भी छोड़ता है, जो कैंवास का प्राणांत कर देता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में कैंवास और चन्द दोनों को पृथ्वीराज उनके पदों से अलग कर देता है, किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' मे वह कैंवास का प्राणांत कर देता है और चन्द को पूर्ववत् अपना कृपापात्र और सहचर बनाए रखता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' मे अलग किए जाने पर कैंवास अपने स्वामी के शत्रु से मिलकर स्वामी का पराभव और अन्त कराता है, और चन्द भी अपने स्वामी के एक शत्रु के पास जाता है,

यद्यपि वह वहाँ रुकता नहीं है, किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' मे दो में से एक बात भी नहीं घटती है; 'पृथ्वीराज रासो' मे शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर स्वयं यह जानकर आक्रमण करता है कि उसकी शक्ति कन्नौज के युद्ध में क्षीण हो चुकी है, और उसके सामन्त उससे रूठे हुए हैं। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में पृथ्वीराज इस युद्ध में नाटारंभाश्व पर चढ़ कर भाग निकलता है, यद्यपि मन्त्री कैंवास के छल से पकड़ा जाता है; 'पृथ्वीराज रासो' मे वह उठ कर युद्ध करता है और युद्ध करते हुए छल से पकड़ा जाता है। दूसरी ओर, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' मे उस जम्बूपति हाहुली राय का कोई उल्लेख नही होता है जिसने 'पृथ्वीराज रासो' में शत्रु पक्ष से मिल कर अपने राजा पृथ्वीराज का पराभव कराया है। अतः यह नितान्त प्रकट है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' की कथा सर्वथा 'पृथ्वीराज रासो' के किसी भी ज्ञात रूप का अनुसरण नहीं करती है। अन्यत्र हम देखते हैं कि वह सर्वथा 'हम्मीर महाकाव्य' की कथा का भी अनुसरण नहीकरती है। फिर भी वह अंशतः इसका और अंशतः उसका अनुसरण करती है,[१] इसलिए ऐसा लगता है कि वह 'रासो' तथा 'हम्मीर महाकाव्य'—दोनों की कथाओ को सामने रखते हुए कुछ नई कल्पना का भी पुट देते हुए बिनी-बनाई गई है।

कहा जा सकता है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सम्मुख 'पृथ्वीराज रासो' का कोई अन्य पाठ रहा होगा जो अभी तक हमें प्राप्त नहीं हुआ है, और बहुत सम्भव है कि 'रासो' का वही मूल अथवा कम से कम प्राचीनतर पाठ रहा हो। किन्तु यदि उद्धृत छन्दों को ध्यान पूर्वक देखा जाए तो यह कल्पना निराधार प्रमाणित होती है।

उद्धृत प्रथम छन्द मे कहा गया है कि प्रथम वाण-प्रहार से अकृतकार्य होने पर कैंवास पर 'पृथ्वीराज ने दूसरा वाण छोड़ा : **'बीअं कर संधीउ भंभइ सूमेसरनंदण।'** यह विवरण स्पष्ट ही 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के विवरण के विरुद्ध है। फिर छन्द में कहा गया है कि 'इस प्रकार दाहिमा (कैंवास) [पृथ्वी मे] गड़ कर साँभर के वन को खन-खोद रहा है' : **'एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरि वणु'** और 'स्फुट रूप से इस लोभी और लंपट (कंवास) से [पृथ्वी का] वह खल (कठिन) गुड (कवच) नहीं छोड़ा जा रहा है' : **'फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह'**, जिससे यह प्रमाणित है कि कैंवास मारा जाकर भूमि में गाड़ दिया गया था। यह विवरण तो 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के कैंवास सम्बन्धी समस्त विवरणों के विरुद्ध जाता है। इतना ही नही, छन्द मे जो 'पलकहु' (पलक्क = लंपट) शब्द आता है, वह भी कैंवास-वध की उस कथा को प्रमाणित करता है जो 'रासो' के समस्त पाठों मे आती है।

दूसरे छन्द में भी इसी प्रकार कहा गया है कि 'यह (शत्रु) [इस बार] जम्बू [पति] से मिल कर तुम से झगड़ रहा (युद्ध कर रहा) है' : **'कूड मंत्र मम ठवओ एहु जंबूय मिलि जग्गए'**, और जम्बू पति (हाहुलीराय) से मिल कर शहाबुद्दीन के पृथ्वीराज से युद्ध करने की कथा 'रासो' के ही पाठों में आती है, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' मे नहीं।

साथ ही ऊपर उद्धृत दोनो छन्द 'पृथ्वीराज रासो' मे मिल जाते हैं। पहला तो सभी प्राप्त पाठों मे मिलता है, दूसरा उसके मध्यम तथा वृहत् पाठो मे मिलता है। इसलिए यह प्रकट है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' मे उद्धरण के लिए छन्दों को 'रासो' से लेते हुए भी कथा-योजना मे पूरी स्वतंत्रता बरती गई है और इसलिए 'पृथ्वीराज प्रबंध' के आधार पर हम यह नहीं मान सकते हैं कि 'रासो' का कोई ऐसा रूप भी था जिसमे कथा लगभग वह आती थी जो 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' मे आती है।

अन्यत्र हम देखते है कि 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' के 'जयचन्द-प्रबन्ध' में जो छन्द चन्द के कहे गए बताए गए हैं, वे चन्द के नही हैं जल्ह कवि के है—'जल्ह कवि' की छाप स्पष्ट रूप से उक्त

[१] दे० इसी भूमिका में आया हुआ 'हम्मीर महाकाव्य और पृथ्वीराजरासो' शीर्षक।

दोनों छन्दो में आई हुई है।[१] अतः इन जैन प्रबन्धों की कथा के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' या चंद द्वारा रचित पृथ्वीराज विषयक काव्य की कथा की कल्पना करना उचित न होगा।

किंतु क्या, इसी प्रकार, हम यह भी कह सकते है कि 'पृथ्वीराज प्रबंध' मे उद्धृत चन्द के छन्दो से 'पृथ्वीराज रासो' के स्वरूप के सम्बन्ध मे भी हम कोई कल्पना नहीं कर सकते है ? कुछ विद्वानो का यही मत है। एक विद्वान ने लिखा है, "मुनि जिन विजय जी को मिले चार फुटकर छप्पयो से 'पृथ्वीराज रासो' का रचा जाना सिद्ध नहीं होता है। हो सकता है कि चन्द नामक किसी कवि ने 'पृथ्वीराज' की जीवन-घटनाओं पर कुछ फुटकर छन्द ही लिखे हो, इस चन्द का अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो से सम्बन्ध जोडना अनुचित है।"[२] किंतु इन छन्दो से यह स्वतः प्रकट है, जैसा हमने ऊपर देखा है, कि ये स्वतन्त्र या फुटकर ढंग पर लिखे हुए छन्द नहीं है: ये तो कुछ विवृत प्रकरणों के छन्द हैं, और उनके अभाव मे इनकी रचना की कल्पना नहीं की जा सकती है। अतः यह मानना पड़ेगा कि ये छन्द चन्द की किसी प्रबंध कृति से लिए गए हैं, भले ही उसका नाम 'पृथ्वीराज रासो' रहा हो या कुछ और। और हम ऊपर यह भी देख चुके हैं कि 'पृथ्वीराज प्रबंध' में उद्धृत उपर्युक्त छन्द 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' के कथाप्रबंध मे पूर्ण रूप से ठीक बैठते हैं, उसमे वे मिलते तो है ही। अतः 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' से इन छन्दों के रचयिता चंद का सम्बन्ध जोडना किसी प्रकार भी अनुचित नहीं माना जा सकता है। यह प्रश्न भिन्न है कि 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' में इन छन्दों के रचयिता चन्द की रचना कितनी है, और कितनी दूसरो की है।

अब दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि उपर्युक्त 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सामने 'रासो' का कौन सा पाठ था। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के ऊपर उद्धृत दो छन्दो मे से द्वितीय इस सम्बन्ध मे एक निश्चयात्मक प्रकाश डालता है। नीचे बहिरंग तथा अन्तरंग संभावनाओं की दृष्टि से इस पर विचार किया जा रहा है।

'रासो' के विभिन्न पाठो मे से यह केवल मध्यम तथा बृहत् पाठो की प्रतियो मे मिलता है, शेष मे नहीं मिलता है, और मध्यम तथा बृहत् की प्रतियो में भी एक स्थान पर नही मिलता है, भिन्न-भिन्न स्थानों पर और भिन्न-भिन्न प्रसंगों में मिलता है; मध्यम की ना० प्रति मे यह छन्द धीर पुडीर के द्वारा शहाबुद्दीन के पराजित और बन्दी होने के अनन्तर पृथ्वीराज के द्वारा उसके मुक्त किए जाने के प्रसग में आता है (खड ३९, छन्द १४९), टॉड सग्रह की प्रति स० ६० मे यह छन्द वाण-वेध-प्रकरण में आता है, जिसमें शब्द-वेध कौशल से पृथ्वीराज शहाबुद्दीन का प्राणात करता है (वानवेधखड, छन्द २१६); शा० उ० तथा स० मे यह छन्द शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के पूर्व हुई पृथ्वीराज के सामन्तों की विचार-गोष्ठी के प्रसग मे आता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' मे हम ऊपर देख ही चुके हैं कि यह छन्द कैंवास वध-प्रकरण मे आता है। अतः जब हम यह देखते हैं कि यह छन्द रचना के लघुतम तथा लघु पाठों की किसी भी प्रति मे नहीं आता है और उसके मध्यम तथा बृहत् पाठों मे और 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' मे भिन्न-भिन्न स्थानो और प्रसगों में मिलता है, इसकी प्रामाणिकता नितान्त सदिग्ध लगने लगती है।

यदि हम प्रसंग की दृष्टि से देखे तो प्रकट है कि यह छन्द कैंवास-वध प्रकरण का नहीं हो सकता है, क्योंकि उस समय तक जम्बूपति और शहाबुद्दीन की कूट सधि का प्रसग 'रासो' के किसी भी पाठ मे नहीं आता है और इस छन्द मे जम्बूपति और शहाबुद्दीन की कूट संधि का स्पष्ट उल्लेख होता है;

[१] दे० 'हिन्दी रासो परंपरा का एक विस्मृत कवि जल्ह', हिन्दी अनुशीलन, भाग १०, अंक १, पृ० १।

[२] श्री मोतीलाल मेनारिया 'राजस्थान का पिंगल साहित्य', क्रमशः पृ० ४९ तथा ३८।

धीर पुडीर द्वारा शहाबुद्दीन के पराजित और बन्दी होने तथा पृथ्वीराज के द्वारा उसके मुक्त किए जाने के प्रसंग का भी यह नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय तो शहाबुद्दीन पृथ्वीराज के एक सामन्त द्वारा पराजित और बन्दी था ही; वाण-वेध प्रसंग का भी यह नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय तो सारा युद्ध समाप्त था, पृथ्वीराज स्वयं शहाबुद्दीन का बन्दी था : ऐसे समय में जब कि चन्द पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन के वध के लिए तैयार करने गया था वह और भी पृथ्वीराज को निरुत्साह करने वाले ऐसे वाक्य नहीं कह सकता था कि वह शत्रु द्वारा मत्स्य बन्ध मे बँधकर मृत्यु को प्राप्त होगा। यदि यह छन्द किसी हद तक प्रसंग-सम्मत कहा जा सकता था तो केवल शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के पूर्व हुई पृथ्वीराज के सामन्तो की विचार-गोष्ठी के प्रसग मे, जिसमे यह 'रासो' के वृहत् पाठ की प्रतियों मे आता है। उक्त अन्तिम युद्ध मे लघु, मध्यम तथा वृहत् पाठो की समस्त प्रतियों के अनुसार जम्बूपति हाहुलीराय शहाबुद्दीन से मिल गया था। किन्तु यहाँ पर भी प्रश्न यह उठता है कि चन्द को अपने स्वामी पृथ्वीराज को इस प्रकार उसके मरण की विभीषका दिखाकर निरुत्साह करने की कौन सी आवश्यकता थी जब कि उसके सभी सामन्त उक्त विचार-गोष्ठी में शहाबुद्दीन का वीरतापूर्वक सामना करने के लिए उसे परामर्श दे रहे थे। चन्द के इस कथन पर पृथ्वीराज की प्रतिक्रिया क्या हुई, यह भी इस प्रसंग मे 'रासो' के उपर्युक्त किसी पाठ मे नहीं बताया गया है। इसलिए यह प्रकट है कि 'रासो' के जिन दो पाठो की प्रतियो मे यह छन्द आता है, उनमे भी यह छन्द पहले से नहीं था, बाद में मिलाया गया और असगत है।

इस प्रसंग मे एक और बात भी विचारणीय है : 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' मे उद्धृत प्रथम छन्द में चन्द ने ही कैंवास को लोभी और पलक (लंपट) कहा है :—

फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भउ बारइ पलकउ खल गुलह।

जबकि इस दूसरे छन्द मे उसे चन्द ही ने व्यास (बुद्धिमान) और वसिष्ठ (श्रेष्ठ) कहा है :—

कैंवास विआस विसट्ठ विनु मच्छि बन्धि बद्धओ मरिसि।

चन्द के ही कहे जाने वाले इन दोनो कथनो मे विरोध प्रत्यक्ष है। और कैंवास को लोभी-लंपट कहने वाला चन्द का उक्त छन्द रचना की समस्त प्रतियो मे उसी स्थान पर पाया जाता है जिस पर वह 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' मे पाया जाता है, इसलिए यह प्रकट है कि 'पृथ्वीराज-प्रबन्ध' का उपर्युक्त दूसरा छन्द मूल रचना का नहीं है, प्रक्षिप्त है, और 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सामने 'रासो' का प्रामाणिक रूप नहीं, कोई प्रक्षिप्त रूप ही था।

११. 'सुर्जन चरित महाकाव्य' और 'पृथ्वीराज रासो'

चंद्रशेखर कृत 'सुर्जनचरित महाकाव्य'[१] की रचना अकबर के समकालीन और उसके अधीनस्थ हाड़ा राय सुर्जन की प्रेरणा से प्रारम्भ हुई थी,[२] किंतु उसकी समाप्ति उसके उत्तराधिकारी राय भोज के समय मे हुई थी।[३] कवि ने ग्रन्थ का रचना-काल नही दिया है, किन्तु इसमे उसने राय सुर्जन के देहान्तोपरान्त राय भोज के राज्यारोहण का वर्णन मात्र किया है, उसके शासन-काल की घटनाओं का कोई विवरण नहीं दिया गया है, इसलिए समझना चाहिए कि ग्रन्थ उसके राज्यारोहण के कुछ ही बाद समाप्त हुआ था। 'आईन-ए-अकबरी' मे अकबर के शासन से सम्बन्धित व्यक्तियो की नामावली देते हुए राय सुर्जन (सख्या ९६) तथा राजा भोज (संख्या १७५) दोनो के नाम दिए गए हैं, और राय सुर्जन के सम्बन्ध मे 'आईन-ए अकबरी' के योग्य सपादक ने टिप्पणी देते हुए लिखा है कि 'तबकात-ए-अकबरी' (रचना-काल १००१ हि० = १६४९ वि०) से स्पष्ट है कि राय सुर्जन सं० १६४९ वि० के कुछ पूर्व ही दिवगत हो चुका था।[४]

राय सुर्जन के एक पूर्वज होने के नाते इसमे चौहान पृथ्वीराज का भी वृत्त आया है। यह रचना के दसवे सर्ग मे है। नीचे इस सर्ग के श्लोको का उल्लेख करते हुए उस वृत्त का सार दिया जा रहा है :—

श्लोक १-१० : गगदेव का पुत्र सोमेश्वर हुआ, जिसने कुलपरम्परागत राज्य का शासन किया। सोमेश्वर ने कुन्तलेश्वर की पुत्री कर्पूर देवी से विवाह किया और कर्पूर देवी से उसके दो पुत्र पृथ्वीराज तथा माणिक्यराज हुए। पिता के दिए हुए राज्य को आपस मे बाँट कर श्रेष्ठ बाहुबल से दोनो भाइयों ने शासन किया। पृथ्वीराज ने अपने पराक्रम से राज्य का विस्तार किया।

११-५२ : एक दिन जब पृथ्वीराज नगर के बाहर एक उद्यान में था, कान्यकुब्ज से कोई महिला आकर पृथ्वीराज से मिली और कान्यकुब्जेश्वर की पुत्री कातिमती के सौन्दर्य की प्रशसा करने के अनन्तर उससे कहने लगी की कातिमती पिता के चारणों से उसका हाल सुन कर उस पर अनुरक्त हो चुकी थी और उसने एक रात स्वप्न मे एक सुन्दर पुरुष को देखा था, तब से वह सर्वथा—

[१] 'सुर्जनचरित महाकाव्य', हिन्दी अनुवाद सहित : सम्पादक और प्रकाशक डॉ० चन्द्रधर शर्मा, प्राध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९५२।

[२] वही १.७, तथा २०.६४।

[३] वही, २०.६३।

[४] 'आइने-ए-अकबरी', सम्पादक एच० ब्लॉचमैन, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, पृ० ४५०।

काम के वश में हो रही थी; उन्हीं दिनों उसने यह भी सुना था कि कान्यकुब्जेश्वर उसे और किसी से व्याहना चाहते थे, इससे वह बहुत व्यथित थी और इसी लिए उसने पृथ्वीराज के पास सन्देश लेकर उसे भेजा था। यह सुन कर पृथ्वीराज ने कहा कि वह उसके गुणों को बार-बार सुन चुका था, और उसके इस सन्ताप को दूर करने का उपाय अवश्य करेगा। दूती यह आश्वासन लेकर चली गई।

५३-११२ : इसके अनन्तर अपने वन्दी को आगे कर पृथ्वीराज कान्यकुब्ज गया। वेश बदल कर और १५० सामन्तों को साथ लेकर उसने उस वैतालिक का अनुसरण किया। जयचन्द की सभा में वह उस वैतालिक का पार्श्वचर बन कर रहता। वह प्रति दिन घोड़े पर चढ़ कर गंगा तट पर चक्कर लगाता। एक दिन चाँदनी रात मे वह घोड़े को नदी मे पानी पिला रहा था। घोड़े के मुख से निकलते हुए फेन की गन्ध से मछलियाँ जब ऊपर आईं, वह उन्हें अपने कंठहार के मोती निकाल-निकाल कर चुगाने लगा। कान्यकुब्जेश्वर की कन्या ने उसका यह कृत्य देखा, तो उसे उसके सम्बन्ध मे जानने की उत्सुकता हुई। उस दासी ने, जिसने उसका सन्देश पृथ्वीराज को पहुँचाया था, उसे पहचान कर बताया कि यह तो पृथ्वीराज ही था और यदि उसे इस विषय मे सन्देह था तो वह उसकी परीक्षा कर सकती थी। यह सुनकर राजकुमारी ने मुक्तामाल देते हुए एक दासी को वहाँ भेजा। वह जाकर पृथ्वीराज के पीछे खड़ी हो गई। कंठहार के मोतियों के समाप्त होते ही राजा ने पीछे हाथ बढ़ाया तो दासी ने वह मुक्तामाल उसके हाथो पर रख दिया। जब वे बिना गूँथे हुए मोती भी समाप्त हो गए, तब उस दासी ने अपना कंठहार उतार कर राजा के हाथो पर रक्खा। स्त्रियों के उस कंठभूषण को देखकर राजा विस्मित हुआ और पीछे मुड़कर देखा तो वह दासी वहाँ मिली। पूछने पर उसने बताया कि कान्यकुब्जेश्वर की कन्या की वह परिचारिका थी। राजा ने उससे कहा कि वह अपनी स्वामिनी से कुछ प्रहर और धैर्य रखने के लिए कहे, दूसरे दिन रात्रि में उसके हृदय को निश्चय हो जावेगा। दूसरे दिन रात्रि मे वह राजकुमारी से मिला और उसने कहा कि वह अपने सामंतों को बिना बताए यहाँ आया था, इसलिए उसे लौटना ही था, और उनसे मिलकर वह पुनः आ सकता था। किन्तु राजकुमारी को भावी विरह से व्यथित देखकर उसने उसे साथ ले लिया, और घोड़े पर उसके साथ सवार होकर अपने शिविर को चला गया।

११३-१२८ : इस समय एक सामंत आकर कहने लगा कि पृथ्वीराज को नववधू के साथ दिल्ली के लिए प्रस्थान कर देना चाहिए, जब तक वह चार योजन आगे जावेगा, वह शत्रु सेना को रोकेगा। एक दूसरे सामंत ने उसे छः गव्यूति (तीन योजन) आगे बढ़ाने की प्रतिज्ञा की। इसी प्रकार इन्द्रप्रस्थ तक का सारा मार्ग सामंतों ने परस्पर बाँट लिया। तब तक शत्रु-सेना आ पहुँची थी। उसने पीछा किया, किंतु संघर्ष होते-होते पृथ्वीराज इन्द्रप्रस्थ पहुँच गया। जब पृथ्वीराज इन्द्रप्रस्थ पहुँचा, उसके पराक्रमी वीरगण इने-गिने ही बच रहे थे। पृथ्वीराज से हार कर कान्यकुब्जेश्वर यमुना के जल मे डूब मरा।

१२९-१३२ : दिग्विजय करके पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को बाँधा। इक्कीस बार उसे बन्दी करके छोड़ा। किंतु उसने उपकार नहीं माना और छल-बल से एक युद्ध मे पृथ्वीराज को बन्दी करके उसे अपने देश ले गया और वहाँ उसे नेत्र-हीन कर दिया।

१३३-१६८ : घूमता-फिरता पृथ्वीराज का मित्र चन्द नामक वन्दी भी वहाँ पहुँच गया और उसने पृथ्वीराज को प्रतिशोध के लिए प्रोत्साहित किया। राजा ने कहा उसके पास न सेना थी, और न नेत्र थे; प्रतिशोध लेना किस प्रकार सम्भव था? किंतु वन्दी ने जब उसे उसके शब्द-वेध कौशल का स्मरण कराया, पृथ्वीराज ने उसका आग्रह स्वीकार कर लिया। तदनंतर वह वन्दी यवनराज की सभा मे गया और कुछ ही दिनो मे उसके मंत्रियो का तथा उसका विश्वास उसने अपने विद्या-कौशल

से प्राप्त कर लिया। किसी प्रसंग मे एक दिन उसने कहा कि नेत्रहीन होते हुए भी पृथ्वीराज वाण-द्वारा लोहे के कड़ाहों को वेध सकता था, और उसका यह कौशल दर्शनीय था। यवनराज उसकी बातों मे आ गया। एक स्वर्ण-स्तंभ पर लोहे के कड़ाह रखे गए और पृथ्वीराज को वाण चलाने की आज्ञा हुई। तब वन्दी ने कहा कि यवनराज के तीन बार स्वयं कहने पर वह लक्ष्यवेध करेगा। इस पर शहाबुद्दीन के मुख से वाण चलाने की आज्ञा के निकलते ही पृथ्वीराज का वाण छूटकर उसके तालुमूल से जा लगा और यवनराज का प्राणांत हुआ। वहाँ हलचल देखकर वन्दी ने राजा को घोडे पर बिठाया और कुरु जागल देश ले गया, जहाँ पृथ्वी को यशःपूर्ण करके राजा परलोक सिधारा।

'महाकाव्य' के लेखक ने यह नहीं बताया है कि पृथ्वीराज की उपर्युक्त कथा उसे कहाँ से प्राप्त हुई, अतः इस प्रसंग मे पहली विचारणीय बात यह है कि इस कथा का आधार क्या हो सकता है? इस कथा में प्रतिशोध-प्रकरण मे वन्दी चन्द का नाम आता है, जिसके बारे मे यह भी कहा गया है कि वह उसका मित्र था। चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' मे जो कथा आती है, उससे उपर्युक्त कथा का पर्याप्त साम्य भी है यह सुगमता से देखा जा सकता है, और 'पृथ्वीराज रासो' 'सुर्जनचरित महाकाव्य' से काफी पहले की रचना है, यह इस बात से प्रमाणित हो चुका है कि उसके छन्द पुराने जैन प्रबधो मे मिलते हैं, जिनमे से एक की प्रति स० १५२८ की है।[1] अतः प्रश्न वास्तव में इतना ही रह जाता है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे यह कथा सीधे 'पृथ्वीराज रासो' से ली गई है, अथवा 'रासो' पर आधारित किसी रचना से।

नीचे उदाहरण के लिए 'पृथ्वीराजरासो' से कुछ ऐसे छन्द दिए जा रहे है जिनमे वे ही कथा-विस्तार मिलते हैं जो 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा में आए है[2] :—

(१) तिहि पुत्तिय सुनि इन इतउ तात वचन तजि काज।
कइ बहि गंगहि सचरउ कइ पानि गहउ प्रथीराज॥

(प्रस्तुत सस्करण, २.११)

(२) सुनत राइ अचरिज भयउ हियइ मन्यउ अनुराउ।
नृप वर अनि उर अगमइ दैवहि अवर स भाउ॥

(वही, २.१२)

(३) चलउं भट्ट सेवग होइ सथ्थह।
जउ बोलउं त हथ्थु तुह मथ्थह।
जबइ राइ जानइ संमुह हुअ।
तब अंगमउं समर दुहुनि भुअ॥

(वही, ३.३९)

(४) कनवज्जिय जयचन्द चलउ ढिल्लियपुर पेषन।
चन्द विरद्दिआ साथि बहुत सामन्त सूर घन।
चहूआन राठवर जांति पुंडीर गुहिल्ला।
वडगूजर राठवर कुरंभ जांगरा रोहिल्ला।

[1] दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा लिखित : (१) 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह, चंद वरदाई और जल्ह का समय' नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सं० २०१२, अंक ३-४, पृ० २३४ तथा (२) 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह और पृथ्वीराजरासो', शीर्षक इसी भूमिका में अन्यत्र।

[2] स्थल-निर्देश की प्रथम संख्या सर्ग तथा द्वितीय संख्या छन्द की है।

इत्ते सहित्त भुअपति चलउ उडी रेन छिपउ सुभउ।
एकु एकु लष्ष वर लष्यवइ चले सथ्थ रजपुत्त सउ ॥

(वही, ४.१)

(५) करिग देव दक्खिन नयर गंग तरंगह कुल्ल।
जल छंडइ अछूछइ करह मीन चरित्तनु भुल्ल ॥

(वही, ६.६)

(६) भूलउ नृप तिहि रग तहि जुध्ध विरुद्ध सहु।
मूगति मीनलु मुत्ति लहंति सु लष्प दहु।
होइ तुछूछ तु तमोर सरंत जु कंठ लहु।
वंक प्रवेस हसंत तु झरंत जु गग मह ॥

(वही, ६.७)

(७) पंगुराइ सा पुत्तिय मुत्तिय थार भरि।
यो त्रिय जउ प्रथीराज न पुछूछइ तोहि फिरि।
जउ इन लष्षन सब सहित विचार न सोइ करि।
हइ व्रत मोहि नृ जीव सु लेउ सजीव वरि ॥

(वही, ६.१३)

(८) सुन्दरि आइ स धाइ विचार न बोलइय।
जउ जल गंगह लोल प्रतीत प्रसगु लिय।
कमल ति कोमल पांनि कलिकुल अंगुलिय।
मनहु अध्व दुजदान सु अप्पति अंजुलिय ॥

(वही, ६.१४)

(९) अपंति अंजुलीय दान जान सोभ लग्गए।
मनउ अनंग रंग वस्य रंभ इंद पुज्जए।
जु पानि बाहु वार थक्कि थार मुत्ति विस्तए।
पुनेपि हथ्थ कंठ तोरि पोति पुंज अप्पए।
निरष्षि नयन टेरि वयन ता त्रिरत्ति चाहियं।
तरप्पि दासि पासि पंक (पक्क) संकियं न वाहियं।
अनेक (अनिक्क ?) संग रंग रूप जूप जानि सुंदरी।
उहंग गंग मझ्झि धुक्कि सर्गपत्ति अछूछरी।
हउं अछूछरी नरिंदु नाहि दासि गेह राय पंगुरे।
तास पुत्ति जंम छाडि ढिल्लि नाथ आदरे।
सा जम सूर चाहुवान मान इंम जानए।
करेन केहरीन पीन इंदु मीन थानए।
प्रतष्षि हीर जुध्ध धीर यो सु वीर संचही।
परन्तु प्रान मानिनी चलंति देत गंठही।
सुनंत सूर अस्व फेरि तेजि ताम हंकियं।
मनउ दलिद्द रिध्धि पाय जाय कंठ लग्गियं।
कनक्क कोटि अंग घात रास वास माल ची।
रहंत भउंर झौंर झौंर साह छत्र कांम ची।

सुधा सरोज मोज मंग अलक्क रंग हल्लए।
मनउ मयन्न फंद पासि काम केलि घल्लए।
करिस्य कांम कंकनं सुपानि बंध बंधए।
जु भावरी सषी सलज्ज रुझ तुरयं वज्जए।
आचारु चारु देव सव्व दोइ पष्ष जंपही।
गंठि दिढ्ढ इक्क चित्त लोक लोक चंपही।
अनेक सुष्ष मुष्ष सीस जुध्ध साध लग्गियं।
सु कंत कंत अंत ता तमोरि मोरि अप्पियं॥

(वही, ६.१५)

(१०) मिले सव्व सामंत बोल मग्गहि त नरेसर।
अप्प मग्ग लग्गिअइ मग्ग रष्षिइ ति इक्क भर।
एक एक झूझंति दंति दंती ढंढोरइ।
जिके पग राय भिच्च मारि मारिक्कइ मोरइ।
इम बोल रहइ कलि अंतरि देहि स्वामि पारिथ्थिअइ।
अरि असीइ लष्ष को अंगमइ परणि राय सारथ्थिअइ॥

(वही, ८.१)

(११) वेद कोस हरसिंघ उभय त्रियत वड गुज्जर।
काम वान हर नयन निडर नीडर सोइ सुझ्झर।
छगन पढन पहल्लानि कन्ह षची दिगपालह।
अल्हन द्वादस सकल अचल विद्या गनि कालह।
सिंगार विझ सलषह सुकथ लषन पाहार आहार सुउ।
इत्तनइ सूर झूझंति ही ढिल्लियपति प्रथीराज भउ॥

(वही, ८.३५)

(१२) गहि चहुआंन नरिंद गयउ गज्जने साहि घरि।
सा ढिल्ली हय गय भंडार तेहि तनय अप्पि धर।
वरस एक तिहि अध्ध मुध्ध किन्हउ नयन्न विनु।
जंम जम जुग अवरुध्ध जाइ प्रथिराज इक्क षिनु।
सुनत श्रवन्ननु धरि परउ हरि हरि हरि हरि देव सु कह।
तजि पुत्त मित्त माया सकल गहिग चद गजनेव रह॥

(वही, १२.१)

(१३) अंषहीन दोउ भयउं तुं चहु अंषिन चूक।
असुर वध्धु किम विन सुरइ मइ सुर बंधउ अलूक॥

(वहो, १२.३७)

(१४) भयउ एक फुरमान एक वानह गुन संधउ।
सोइ सवद्द अरु वांन अग्ग अग्गइ षल बधउ।
भयउ बीय फुरमान षंचि रष्षिअउ श्रवन पर।
तीअउ सबद सुनत सुनउ सुरतान परउ धर।
लगि दसन रसन दस रुधिअउ विहु कपाट बंधे सघन।
धरि परउ साहि षाँ पुकरउ भयउ चंद राजहि मरन॥

(वही, १२.४८)

यदि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के विवरण और 'रासो' से ऊपर उद्धृत पंक्तियों को मिलावे तो देखेंगे कि साम्य प्राय. छोटे से छोटे विस्तारो तक मे है। यथा :—

(१) दोनों मे पृथ्वीराज को यह समाचार मिलता है कि जयचन्द की पुत्री उस पर अनुरक्त है और जयचन्द उसे किसी अन्य से ब्याहना चाहता है, इसलिए वह बहुत व्यथित है।

(२) दोनो मे पृथ्वीराज अपने वन्दी के साथ उसके अनुचर के वेश मे कन्नौज जाता है और उसके साथ १०० या कुछ अधिक शूर-सामन्त है।

(३) दोनो मे ठीक एक ही प्रकार से जयचन्द-पुत्री उसे गंगातट पर रात्रि मे मछलियो को मोती चुगाते हुए देखती है और एक ही उपाय से इस बात का निश्चय करती है कि वह व्यक्ति पृथ्वीराज ही है।

(४) जयचन्द-पुत्री का अपहरण वह दोनो मे एक ही प्रकार से करता है।

(५) दोनो मे एक ही समान यह योजना स्थिर होती है कि वह जयचन्द-पुत्री को लेकर दिल्ली की ओर बढ़े और उसके सामन्तगण एक-एक करके जयचन्द की पीछा करने वाली सेना को रोके; इस योजना का निर्वाह भी दोनो मे एक ही सा होता है।

(६) दोनो मे वह शहाबुद्दीन के साथ के अंतिम युद्ध मे बन्दी होता है और गजनी ले जाया जाकर नेत्रविहीन किया जाता है।

(७) दोनो मे एक ही प्रकार से चन्द की युक्ति से पृथ्वीराज शहाबुद्दीन से प्रतिशोध लेने मे कृतकार्य होता है।

अन्तर दोनों मे बहुत साधारण है और मुख्यतः इतना ही है कि :—

(१) 'रासो' मे पृथ्वीराज के जयचन्द-पुत्री के अनुरक्त होने का समाचार मात्र मिलता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे उसकी एक दूती पृथ्वीराज से उसका सदेश लेकर मिलती है।

(२) 'रासो' में उस जयचन्द-पुत्री का नाम संयोगिता है, और 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे कान्तिमती।

(३) 'रासो' मे पृथ्वीराज जयचन्द-पुत्री से पहचाने जाने पर ही जा मिलता है, यद्यपि उसे लिवा जाता है बाद मे, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे वह उसे मिलता है दूसरे दिन और उसी समय उसे लिवा जाता है।

(४) 'रासो' मे पीछा करता हुआ जयचन्द पृथ्वीराज के दिल्ली पहुँच जाने पर कन्नौज लौट जाता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे वह यमुना मे डूब मरता है।

(५) 'रासो' मे पृथ्वीराज गजनी मे ही शाह-वध के अनन्तर मृत्यु को प्राप्त होता है, 'सुर्जन-चरित महाकाव्य' मे उसे चन्द कुरु जांगल प्रदेश भगा ले आता है, जहाँ वह पीछे मृत्यु को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त सन्निकट साम्य की पृष्ठभूमि मे जब हम इस अन्तर पर विचार करते है तो लगता है कि ये अन्तर 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के रचयिता की कल्पना अथवा किन्ही जनश्रुतियो के परिणाम है— जयचन्द का यमुना में डूब मरना अथवा पृथ्वीराज का गजनी से सकुशल कुरु जांगल लौट आना 'रासो' की पूर्वकल्पित दिशा मे एक कदम आगे बढ़े हुए विस्तार मात्र प्रतीत होते है, यह किसी भी अन्य प्राप्त प्राचीन रचना मे नही मिलते है, यह भी इस अनुमान की पुष्टि करता है। फलतः यह प्रकट है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार सीधा 'पृथ्वीराज रासो' है।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार 'रासो' का कौन सा पाठ है : 'रासो' के जो चार मुख्य पाठ प्राप्त हैं, उनमे से कौन सा 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार हो सकता है?

इस प्रसंग मे द्रष्टव्य यह है कि—

(१) 'रासो' के जो छन्द ऊपर उद्धृत हुए हैं, वे लघुतम से लेकर वृहत् तक 'रासो' के

समस्त प्राप्त पाठों मे समान रूप से पाए जाते है।

(२) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' का एक भी मुख्य विस्तार उपर्युक्त को छोडकर ऐसा नही है जो 'रासो' के समस्त पाठो मे न पाया जाता हो, और अन्तर वाले उपर्युक्त विस्तार 'रासो' के किसी भी पाठ मे नही मिलते है।

(३) ऐसे कोई भी प्रसग या विस्तार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नही हैं जो 'रासो' के लघुतम पाठ मे न मिलते हों और उसके अन्य किसी पाठ मे मिलते हों।

अंतिम विशेषता के उदाहरण मे निम्नलिखित प्रसंगों और विस्तारों को लिया जा सकता है, जो कि लघुतम पाठ को छोड़कर 'रासो' के समस्त पाठो मे पाए जाते हैं—

(१) गुर्जराधिपति भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज का युद्ध।

(२) उसी के साथ-साथ हुआ पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का युद्ध।

(३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध मे पृथ्वीराज के एक सामंत धीर पुंडीर और शहाबुद्दीन का युद्ध।

(४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध मे पृथ्वीराज की ओर से चित्तौड़ के रावल समरसी का सम्मिलित होना।

(५) उसी युद्ध मे पृथ्वीराज के एक सामंत जबूपति हाहुलीराय हम्मीर का शहाबुद्दीन से जा मिलना।

(६) हाहुलीराय हम्मीर के पास जाकर उसे पृथ्वीराज के पक्ष मे लाने के लिए चन्द का प्रयत्न करना।

और ये प्रायः ऐसे प्रसग या विस्तार है जो यदि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के लेखक के सामने होते तो उसके द्वारा सबके सब कदाचित् छोड़े न गए होते। अत यह स्पष्ट है कि उसकी उपर्युक्त कथा का आधार 'रासो' का लघुतम या उससे मिलता जुलता ही कोई पाठ हो सकता है।

अब विचारणीय यह है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के उपर्युक्त विवरण का आधारभूत 'रासो' का पाठ उसके प्राप्त लघुतम पाठ से भी किन्ही बातों मे तो लघुतर नही था।

'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा की 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ से तुलना करने पर निम्नलिखित बाते द्रष्टव्य ज्ञात होती है :—

(१) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे कथा जयचन्द-पुत्री कांतिमती के प्रेम-प्रसंग से प्रारम्भ होती है, पृथ्वीराज का उसमे कोई वृत्त इसके पूर्व नहीं आता है, जैसा कि 'रासो' के लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठो मे आता है।

(२) उसमे पृथ्वीराज के पूर्व पुरुषो की जो नामावली आती है वह उस नामावली से बहुत भिन्न है जो 'रासो' के लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों मे मिलती है।

(३) अनगपाल तोमर द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की जो बात 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठो मे आती है, वह भी 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे नही आती है।

(४) पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य कैंवास अथवा उसके वध का कोई उल्लेख 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं है, जो कि 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठो मे पाया जाता है।

(५) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे वे तिथियाँ भी नहीं आती है जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठो मे पाई जाती हैं।

असम्भव नहीं है कि इनमे से कुछ प्रसंग या विस्तार संक्षेपीकरण के कारण 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे छोड़ दिए गए हो, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि उसकी कथा के आधारभूत

'रासो' के पाठ मे उपर्युक्त मे से कुछ न भी रहे हो। यह बात ठीक इसी प्रकार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की समकालीन रचना 'आईन-ए-अकबरी' मे भी दिखाई पड़ती है।[1]

इस सम्बन्ध मे यह जान लेना कदाचित् उपयोगी होगा कि सुर्जनचरित महाकाव्य' की रचना सं० १६४९ के लगभग हुई थी, और 'रासो' के प्राप्त सभी पाठो की प्रतियाँ उसके बाद की है: लघुतम की प्राचीनतम प्राप्त प्रति जो धारणोज (गुजरात) की है, सं० १६६४ की है; लघु की प्राचीनतम प्राप्त प्रति जो बीकानेर की है, जहाँगीर के समकालीन किसी भागचन्द के लिए लिखी गई थी, मध्यम की प्राचीनतम प्राप्त प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की है और स० १६९२ की लिखी है, बृहत् की प्राचीनतम प्राप्त प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की है और स० १७४७ की है।

प्राप्त लघुतम पाठ की तुलना मे 'पृथ्वीराज रासो' का प्रस्तुत संस्करण तो निश्चित रूप से उसके उस पाठ के निकटतर होना चाहिए जिसका आधार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे ग्रहण किया गया होगा, यह निम्नलिखित बातो से प्रकट है :—

(१) प्रस्तुत सस्करण मे भी कथा 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की भाँति सयोगिता के प्रेम-प्रसग से प्रारम्भ होती है, केवल जयचन्द के राजसूय का प्रसग और प्रस्तुत संस्करण में साथ-साथ चलता है।

(२) प्रस्तुत संस्करण मे पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषो की नामावली आती ही नही है, केवल उसे सोमेश्वर का पुत्र कहा गया है, इसलिए इस बात मे दोनों में कोई विरोध नही है।

(३) प्रस्तुत संस्करण मे अनगपाल तोवर द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की बात भी नहीं आती है, जिस प्रकार वह 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे नही आती है।

(४) प्रस्तुत सस्करण मे भी कोई तिथियाँ नही आती हैं, जिस प्रकार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे वे नही आती है।

प्रस्तुत सस्करण मे कैंवास-वध की कथा अवश्य आती है जो 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे नही है, किन्तु मुख्य कथा से उसका कोई अनिवार्य सम्बन्ध नही है, इसीलिए यदि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' मे उसे न दिया गया हो तो आश्चर्य नहीं।

[1] दे० 'आईन-ए-अकबरी और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक अन्यत्र इसी भूमिका में।

१२. 'आईन-ए-अकबरी'
और
'पृथ्वीराज रासो'

'आईन-ए-अकबरी' मे दिल्ली के शासन का इतिहास देते हुए पृथ्वीराथ के विषय में निम्नलिखित प्रकार से कहा गया है :—

"विक्रमीय वर्ष स० ४२९ (३७२ ई०) मे तोवर कुल का अनंगपाल न्यायपूर्वक राज करता था और उसने दिल्ली की स्थापना की। उसी चान्द्रसौर वर्ष के सं० ८४८ (७९१ ई०) में उस प्रसिद्ध नगर के निकट पृथ्वीराज तोंवर और और बीलदेव (बीसलदेव) चौहान मे घमासान युद्ध हुआ और शासन बाद वाले कुल के हाथो मे चला गया। राजा पिथौरा (पृथ्वीराज) के राज्य-काल मे सुल्तान मुईजुद्दीन साम ने हिन्दुस्तान पर अनेक आक्रमण किए, जिनमे उसे कोई उल्लेखनीय सफलता नही मिली। हिन्दू इतिहासो का कथन है कि राजा (पृथ्वीराज) ने सुल्तान से सात बार युद्ध किए और उसे पराजित किया। ५८८ हि० (११९२ ई०) मे थानेसर के पास आठवॉ युद्ध हुआ और राजा बन्दी हुआ। एक सौ प्रसिद्ध योद्धा (कहा जाता है) उसके विशिष्ट अनुयायी थे। वे अलग-अलग 'सामत' कहलाते थे और उनके असाधारण शौर्य का न वर्णन हो सकता है और न अनुभव या तर्क से उसका समाधान किया जा सकता है कि इस युद्ध मे इनमे से कोई नही था, राजा भोग-विलास मे अपने महल मे ही पडा काम-केलि मे समय नष्ट करता रहा और उसने न राज्य के शासन पर ध्यान दिया और न अपनी सेना के कुशल पर।

कथा इस प्रकार कही जाती है कि राजा जयचन्द राठौर, जो हिन्दुस्तान का सर्वोच्च शासक था, कन्नौज मे राज्य कर रहा था। दूसरे राजा किसी न किसी मात्रा में उसकी वश्यता मानते थे, और वह स्वयं इतना उदार था कि ईरान और तूरान के अनेक निवासी उसके भृत्य थे। उसने राजसूय यज्ञ करने की घ पणा की और उसकी तैयारियॉ प्रारम्भ कर दीं। इस यज्ञ का एक नियम यह है कि निम्न कोटि की सेवाऍ भी राजागण के द्वारा ही प्रतिपादित होती हैं, यहॉ तक कि राजकीय भोजनालय के बर्तन मॉजने-धोने और आग सुलगाने तक के जैसे कार्य भी उनके कर्त्तव्यो के अग होते हैं। इसी प्रकार उसने वचन दिया कि वह आगत राजाओं मे सर्वोच्च शूर राजा को अपनी सुन्दरी कन्या भी देगा।

राजा पिथौरा ने यज्ञ मे उपस्थित होने का निश्चय किया था, किन्तु उसकी सभा के किसी सभ्य के इस आकस्मिक कथन ने कि जब तक चौहान कुल का साम्राज्य था, राजसूय किसी राठौर राजा के द्वारा किया जाना विहित नहीं था, पृथ्वीराज के वंशाभिमान को जागृत कर दिया और वह रुक गया। राजा जयचन्द ने उसके विरुद्ध सेना भेजने की सोची, किन्तु उसके मन्त्रियो ने युद्ध में समय अधिक लगने की संभावना और (राजसूय) सभा की तिथि की सन्निकटता के ध्यान से उसे इस विचार

से विरत कर दिया। यज्ञ को विधि पूर्वक संपन्न करने के उद्देश्य से राजा पिथौरा की एक स्वर्ण-प्रतिमा बनाई गई और वह दरबान के रूप मे राजद्वार पर रख दी गई।

इस समाचार से क्रुद्ध होकर राजा पिथौरा छद्मवेष मे ५०० चुने हुए योद्धाओ के साथ (कन्नौज के लिए) निकल पड़ा और (राजसूय) सभा मे अकस्मात पहुँच कर अनेक को अपनी तलवार से मारते हुए वह उस प्रतिमा को शीघ्रता के साथ उठा ले गया। जयचन्द की कन्या जिसका वाग्दान एक अन्य राजा से हो चुका था, पृथ्वीराज के इस शौर्य-प्रदर्शन का समाचार सुन कर उस पर अनुरक्त हो गई और उसने वाग्दत्त राजा से विवाह करना अस्वीकार कर दिया। उसके पिता ने इस आचरण पर क्रुद्ध होकर उसे राज भवन से निकाल दिया और एक अन्य भवन मे भेज दिया।

इस समाचार से व्यग्र होकर पिथौरा उस (राज कन्या) से विवाह करने का निश्चय करके लौट पड़ा और योजना यह बनाई गई कि चाँदा, एक भाट जो कि चारण कला में पटु था, जयचन्द की सभा में उसके गुण-गान के बहाने पहुँचे और राजा (पृथ्वीराज) स्वयं अपने कुछ चुने हुए अनुयायिओं के साथ उसके अनुचर के वेष मे उसके साथ जावे। प्रेम ने उसकी आकांक्षा को क्रियात्मिक रूप प्रदान किया और इस कौशलपूर्ण उपाय तथा वीरता के द्वारा उसने अपने हृदय की उस कामना (राजकन्या) का अपहरण किया और बल-वीर्य तथा शौर्य के अद्भुत प्रदर्शन के अनन्तर अपने राज्य में वापस पहुँच गया।

[इस प्रत्यावर्तन मे] उसके (उपर्युक्त) सौ सामन्त विभिन्न छद्म वेषों में उसके साथ थे। एक के बाद दूसरे ने उसके भागने मे उसकी रक्षा की और पीछा करने वालो से वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए उन्होने प्राण दिए। गोविन्दराय गहलोत ने सर्वप्रथम [शत्रु का] सामना किया और वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए प्राणोत्सर्ग किया। शत्रु के सात हजार सैनिक उसके समक्ष धराशायी हुए। तदनंतर नरसिंह देव, चाँदा, पुंडीर, सादूंल सोलंकी तथा अपने दो भाइयो के साथ पाल्हनदेव कछवाहा ने प्रथम दिन के युद्ध में अद्भुत शौर्य-प्रदर्शन करते हुए महँगे मूल्यों में प्राण दिए, और ये सभी योद्धा उस प्रत्यावर्तन मे समाप्त हुए। चाँदा तथा अपने दो भाइयो के साथ राजा अपनी नव-वधू को लेकर जगत् को आश्चर्य-मग्न करता हुआ दिल्ली पहुँच गया।

दुर्भाग्य से राजा अपनी इस सुन्दरी स्त्री के प्रेम मे ऐसा लिप्त हो गया कि और सब काम-काज छोड़ बैठा। इस प्रकार एक वर्ष बीत जाने पर, ऊपर वर्णित घटनाओं के कारण सुल्तान शहाबुद्दीन ने राजा जयचन्द से मैत्री स्थापित करली, और एक सेना इकट्ठी कर इस देश पर आक्रमण कर दिया और बहुत से स्थानो को हस्तगत कर लिया। किन्तु किसी को कुछ बोलने तक का साहस न हुआ, उसका प्रतिकार करना तो दूर की बात थी। अन्त मे मुख्य सामन्तों ने सभा करके राजभवन के सप्त द्वार से चाँदा को भेजा, जिसने रनिवास मे पहुँच कर अपने कथनो से राजा के मन मे कुछ क्षोभ उत्पन्न किया। किन्तु राजा अपनी पूर्ववर्ती विजयो के अभिमान मे युद्ध मे एक छोटी ही सेना लेकर गया। उसके वीर योद्धा अब नहीं थे, [जिसके कारण] उसके राज्य की पुरानी धाक जाती रही थी, और जयचन्द जो उसका पहले का सहयोगी था अपनी पुरानी नीति बदल कर शत्रु के पक्ष मे था, फलतः राजा उस युद्ध मे बन्दी हुआ और सुल्तान के द्वारा गजनी ले जाया गया।

चाँदा अपनी स्वामिभक्ति के कारण तुरन्त गजनी गया, सुल्तान की सेवा मे नियुक्त हो गया और उसका विश्वास-भाजन बन गया। प्रयत्नों से उसने राजा का पता लगा लिया और बन्दीगृह मे पहुँच कर उसे सान्त्वना प्रदान की। उसने सुझाया कि वह सुल्तान से उसके धनुर्विद्या के कौशल की प्रशंसा करेगा और जब वह उसके इस कौशल को देखने के लिए तैयार होगा, राजा को उस अवसर से लाभ उठाने का सुयोग प्राप्त हो जावेगा। यह प्रस्ताव मान लिया गया और राजा ने सुल्तान को

एक वाण से विद्ध कर दिया। सुल्तान के भृत्य राजा और चाँदा पर टूट पड़े और उन्होने उन्हे टुकडे-टुकड़े काट डाला।

फारसी इतिहासकार एक भिन्न विवरण देते है और कहते है कि राजा युद्ध मे मारा गया।[1]

'आईन-ए-अकबरी' के लेखक ने यह नहीं बताया है कि उपर्युक्त कथा उसे किस 'हिन्दू इतिहास' से प्राप्त हुई, अतः इस प्रसंग मे पहला विचारणीय प्रश्न यह है कि 'आईन-ए-अकबरी' में दी हुई उपर्युक्त कथा का आधार क्या हो सकता है। इस विवरण मे 'चाँदा' नामक एक भाट का उल्लेख हुआ है। प्रकट है कि यह 'चन्द' है। चन्द के 'पृथ्वीराज रासो' में जो कथा आती है उससे उपर्युक्त विवरण मे पर्याप्त साम्य भी है, यह सुगमता से देखा जा सकता है; और 'पृथ्वीराज रासो' 'आईन-ए-अकबरी' से काफी पहले की रचना है यह इस बात से प्रमाणित हो चुकी है कि उसके कुछ छन्द पुराने जैन प्रबन्ध-संग्रहों मे मिले हैं जिनमे से एक की प्रति सं० १५२८ की है।[2] अतः प्रश्न वास्तव मे इतना ही रह जाता है कि 'आईन-ए-अकबरी' मे यह कथा सीधे 'पृथ्वीराज रासो' से ली गई है, अथवा 'रासो' पर आधारित किसी रचना से ली गई है।

नीचे उदाहरण के लिए 'रासो' से कुछ ऐसी पंक्तियाँ दी जा रही है जिनमे वे ही कथा-विस्तार मिलते है जो 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरण मे आए है[3]—

(१)

पहु पग राउ राजसू जग्गु।
आरंभ रंभ कीनउ सुरंग।
जित्तिआ राउ सब सिन्धु आर।
मेलिया कंठ जिम मुत्तिहार।
जोगिनी पुरेस सुनि भयउ षेद।
आवइ न माक मझ इह अभेद।
मोकले दूत तब ही रिसाइ।
असमत्थ सेव किम भूमि खाइ।
बंधू समेत सामंत सत्थ।
उत्तरे आनि दरबार तत्थ।
बोलउ न वयण प्रथिराज ताहिं।
संकरिउ सिंघ गुरजनन चाहि।
उच्चरउ गुरुअ गौयंद राज।
कलि मज्झि जग्गु को करइ आज।
कलि मज्झि जग्गु को करण जोग।
विग्गरइ तु बहु विधि हसइ लोग।
दल दब्ब गब्ब तुम अप्रमांन।

[1] 'आईन-ए-अकबरी' (एच० एस० जैरेट द्वारा अनूदित) संशोधित संस्करण, द्वितीय भाग, पृ० ३०५-३०७ का यह हिन्दी रूपान्तर है।

[2] दे० प्रस्तुत लेखक का 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह, चन्द बरदाई और जल्ह का समय', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २०१२ अंक ३-४, पृ० २३४।

[3] छन्दों का यह 'पृथ्वीराज रासो' के प्रस्तुत संस्करण का है, स्थल-निर्देश की प्रथम संख्या उसके सर्ग की तथा दूसरी संख्या उसके छन्द की है।

बोलहु त बोल देवन समान ।
तुम जानउ षित्री इह न कोइ ।
निव्वीर पुहवि कबहुं न होइ ॥
सइंभरि सकोप सोमेस पुत्त ।
दानव ति रूव अवतार धुत्त ।
तिहि कधि सीस किम जग्य होइ ।
जु प्रिथिमी नहीं चहुआन कोइ ।
बोल्यउ सु मंत परधान तव्व ।
कनवज्ज नाथ करि जग्गु अव्व ।
जब लग्गि गहिहि चहुआन चाहि ।
तब लग्गि ताहि टलि काल जाहि ।
ये आसमुद्द नृप करहिं सेव ।
उच्चरहु कामु सो करहु देव ।
सोवन्न प्रतिमा प्रथीराज थांन ।
थापउ जु पोलि जिम दरब्बान ।
सइंवरह संग अरु जग्गु काज ।
विद्दुजन बोलि दिन धरहु आज ।...

(प्रस्तुत संस्करण, सर्ग २. छन्द ३)

(२) संवादेव विनोदेव देव देवेन रक्ष्यते ।
अन्य प्राणेथवा प्राणे प्राणेश दिल्लीश्वरः ॥

(वही, २. २५)

(३) तब झुकित राइ गंगह तट त रचिपचि उच्च अवास ।
चाहि गहउं चहुआन तकु जु मिट्टइ बाला आस ॥

(वही, २. २७)

(४) चलउं भट्ट सेवग होइ सत्थहं ।
जउ बोलउं त हत्थु तुह मत्थहं ।
जवह राइ जानइ संमुह हुअ ।
तव अंगमउं समर दुइ भुअ ॥

(वही, ३. ३९)

(५) कनवज्जिय जयचन्द चलउ ढिल्लियसुर पेषन ।
चन्द विरद्दिआ साथि बहुत सामंत सूर घन ।
चहुआन राठवर जाति पुंडीर गुहिल्ला ।
बडगूजर राठवर कुरंभ जांगरा रोहिल्ला ।
इत्ते सहित्त भुअपति चलउ उडी रेन किन्नउ सुभउ ।
एकु एकु लष्ष वर लष्षवइ चले सत्थ रजपुत्त सउ ॥

(वही, ४. १)

(६) उभय सहस हय गय परित निसि निग्रह गत भांन ।
सात सहस असि मीर हणि थक्क विंटउ चहुआंन ॥

(वही, ७. १९)

(७) परउ गजि गहिलुत्त नाम गोविंदराज वर।
दाहिम्मउ नरसिंघ परउ नागवर जास घर।
परउ चंद पुंडीर चंद पेक्खो मारंतउ।
सोलंकी सारंग परउ असिवर झारंतउ।
कूरंभराय पालन्नदेउ बंधव तीन निवट्टिया।
कनवज्ज राडि पहिलइ दिवसि सउ मइ सत्त निवट्टिया॥

(वही, ७. २०)

(८) मिले सब्ब सामंत बोलु मग्गहि त नरेसर।
अप्प मग्ग लग्गिअइ मग्ग रष्षिइ ति इक्क भर।
एक एक झूझंति दंति दुती ढंढोरइ।
जिके पग राय भिच्च मारि मरिक्कइ मोरइ।
इम बोल रहइ कलि अंतरि देहि स्वामि पारथ्थिअइ।
अरि असीइ लष्ष को अगमइ परणि राय सारथ्थिअइ॥

(वही, ८. १)

(९) इह विधि विलसि विलास असार सुसार किअ।
दइ सुष जोगि संजोगि सोइ प्रथिराज जिय।
अह निसि सुध्धि न जानहि माननि प्रौढ रति।
गुरु बंधव भृत लोइ भई विपरीत गति॥

(वही, ९. ८)

(१०) कग्गरु अप्पिअ राजकर मुष जपइ आ वत्त।
गोरी रत्तउ तुव धरा तुं गोरी अनुरत्त॥

(वही, १०. २०)

(११) इह कहि दासी अप्पि कर लिषि जु दिअउ कवि चंदु।
पहली आवलि वंचि करि हिरि घर जाय नरिंदु॥

(वही, १०. २२)

(१२) भयउ एक फुरमान एक वानह गुन संधउ।
सोइ सबद अरु बान अग्ग अग्गइ षल बंधउ।
भयउ बीअ फुरमान पंचि रष्षिअउ श्रवन पर।
तीअउ सबद सुनंत सुनउ सुरतान परउ धर।
लगि दसन रसन दस रुंधिअउ विहु कपाट बंधे सघन।
धरि परउ साहि षां पुक्करउ भयउ चंद राजहि मरन॥

(वही, १२. ४८)

यदि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण और 'रासो' की उपर्युक्त पक्तियों को मिलावे तो देखेगे कि साम्य प्रायः छोटे-से-छोटे विस्तारो तक में है :—

(१) जयचन्द के राजसूय के साथ ही उसकी कन्या के स्वयंवर का आयोजन जिस प्रकार 'आईन-ए-अकबरी' मे हुआ है उसी प्रकार वह 'रासो' मे भी हुआ है।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' मे कहा गया है कि एक सभ्य के आकस्मिक कथन के कारण पृथ्वीराज उस राजसूय में सहयोग देने से रुक जाता है : 'रासो' मे इस सभ्य का नाम भी दिया हुआ है—गोविंदराज।

(३) 'आईन-ए-अकबरी' में कहा गया है कि जयचन्द पृथ्वीराज के विरुद्ध सेना भेजने की बात सोच रहा था, किन्तु उसके मंत्रियो ने पृथ्वीराज के साथ युद्ध मे समय अधिक लगने की सभावना तथा [राजसूय] सभा की तिथि की सन्निकटता के ध्यान के उसे इस विचार से विरत किया, ठीक यही बात 'रासो' मे कही भी गई है।

(४) दरबान के रूप मे पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा की स्थापना की बात दोनो मे कही गई है।

(५) जयचन्द को कन्या ने पृथ्वीराज पर अनुरक्त होकर दोनों में किसी अन्य से विवाह करना अस्वीकार किया है और इसलिए दोनों में उसे राजभवन से निकाल कर एक अन्य भवन मे रख दिया गया है।

(६) चन्द के साथ पृथ्वीराज के उसके अनुचर के वेष मे कन्नौज जाने की योजना दोनो में हुई है।

(७) कन्नौज से पृथ्वीराज के प्रत्यावर्त्तन की योजना दोनों मे एक ही है।

(८) प्रथम दिन के युद्ध में गिरे हुए सामंतों की सूची दोनों में सर्वथा एक है, और समस्त नाम एक ही क्रम से भी दोनो मे आते हैं ['आईन अकबरी' के अनुवाद में 'चाँदा' और 'पुंडीर' दो नाम भ्रम से कर दिए गए हैं, वास्तव मे दोनों मिला कर एक नाम है] 'सारंग' का 'सार्दुल' अरबी-फ़ारसी लिपि के 'गाफ़' और 'लाम' के साम्य के कारण हुआ प्रतीत होता है।

(९) पृथ्वीराज का जयचन्द-पुत्री (सयोगिता) के प्रेम मे लिप्त होकर राजकीय कार्यों की उपेक्षा करना और चन्द का उसको उद्बुद्ध करना भी दोनों में लगभग समान हैं।

(१०) चन्द का गजनी जाना और युक्ति से पृथ्वीराज के द्वारा शहाबुद्दीन का वध कराना भी दोनो मे एक ही सा है।

(११) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार शहाबुद्दीन के वध के अनंतर राजा तथा चन्द दोनों को मार डाला गया है; 'रासो' मे शब्दावली है :—

भयउ चद राजहि मरन।

जिसका अर्थ यह है कि 'चन्द कहता है कि राजा का मरण हुआ,' जो अधिक समीचीन है, किंतु कदाचित् दूसरा अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि 'चन्द और राजा का मरण हुआ', जैसा कि 'आईन-ए-अकबरी' में लिया गया है।

अन्तर दोनो मे बहुत साधारण है और मुख्यतः इतना ही है कि :—

(१) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार जयचन्द की कन्या पृथ्वीराज पर अनुरक्ता होने के पूर्व किसी अन्य को वाग्दत्ता होती है, जो 'रासो' मे नही है।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार पृथ्वीराज कन्नौज दो बार जाता है : एक बार तो वह अपने ५०० चुने योद्धाओ के साथ जाकर अपनी स्वर्ण-प्रतिमा उठा लाता है, और दूसरी बार जाकर जयचन्द की कन्या का अपहरण करता है, 'रासो' मे वह एक ही बार कन्नौज जाता है और केवल जयचन्द पुत्री का अपहरण करता है।

(३) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर किए गए अन्तिम आक्रमण के पूर्व जयचन्द से मैत्री स्थापित करता है। 'रासो' मे यह नहीं है।

उपर्युक्त सन्निकट साम्य की पृष्ठभूमि में जब इस अन्तर पर हम विचार करते हैं तो लगता है कि ये अतिरिक्त विस्तार या तो कल्पित हैं अथवा जनश्रुति के आधार पर 'आईन-ए-अकबरी' में रख लिए गए हैं। किसी प्राप्त प्राचीन रचना में इनमें से कोई भी नहीं मिलता है, यह भी इस अनुमान की पुष्टि करता है।

फलतः यह प्रकट है कि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण का आधार 'पृथ्वीराज रासो' है।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरणों का आधार 'रासो' का कौन-सा पाठ है। 'रासो' के जो चार मुख्य पाठ प्राप्त हैं, उनमें से कौन-सा पाठ 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरण का आधार हो सकता है ?

इस प्रसंग मे द्रष्टव्य यह है कि—

(१) ऊपर 'रासो' के जो छन्द उद्धृत किए गए हैं, वे 'रासो' के लघुतम से लेकर के बृहत् पाठ तक समस्त पाठों मे समान रूप से पाए जाते हैं।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' का एक भी विस्तार उपर्युक्त तीन को छोड़ कर ऐसा नहीं है जो 'रासो' के समस्त पाठो मे न पाया जाता हो, और ये तीन विस्तार 'रासो' के किसी भी पाठ मे नहीं मिलते है।

(३) ऐसे कोई भी प्रसग या विस्तार जो लघुतम के अतिरिक्त रचना के शेष किसी भी पाठ में मिलते हैं 'आईन-ए-अकबरी' मे नहीं हैं।

अन्तिम विशेषता के उदाहरण मे निम्नलिखित प्रसंगों और विस्तारों को लिया जा सकता है जो कि लघुतम को छोड कर 'रासो' के शेष समस्त पाठों में पाए जाते हैं :—

(१) गूर्जराधिपति भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज का युद्ध;

(२) जयचन्द के युद्ध से पूर्व हुआ पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का एक युद्ध;

(३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध के पूर्व पृथ्वीराज के एक सामन्त धीर पुंडीर और शहाबुद्दीन के बीच हुआ युद्ध;

(४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध मे पृथ्वीराज की ओर से चित्तौड़ के रावल समरसी का भाग लेना;

(५) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध मे पृथ्वीराज के एक सामन्त जम्बूपति हाहुलीराय हम्मीर का शहाबुद्दीन पक्ष में जा मिलना; और

(६) चद का उस हाहुलीराय हम्मीर के पास जाकर उसे पृथ्वीराज के पक्ष में लाने का प्रयत्न करना।

ये प्रायः ऐसे प्रसग या विस्तार हैं जो यदि 'आईन-ए-अकबरी' के लेखक के सामने होते तो उसके द्वारा कदाचित् छोड़े न गए होते। अतः यह स्पष्ट है कि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरणों का आधारभूत 'रासो' का पाठ उसका लघुतम या उससे मिलता-जुलता ही कोई पाठ था।

अब विचारणीय यह है कि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण का आधारभूत यह पाठ 'रासो' के वर्त्तमान लघुतम पाठ से भी किन्ही बातों मे तो लघुतर नहीं था।

'आईन-ए-अकबरी' के विवरणों से 'रासो' के लघुतम पाठ की विवरणों की तुलना करने पर निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य ज्ञात होती हैं:—

(१) 'आईन-ए-अकबरी' में कथा जयचन्द के राजसूय से प्रारम्भ होती है, पृथ्वीराज का कोई वृत्त इसके पूर्व नहीं आता है। उसमें पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषों के विषय में कोई उल्लेख तक नहीं होता है, और उसमें अन्यत्र चहुवान कुल के शासकों की जो नामावली आती है, वह उस नामावली से बहुत भिन्न है जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में मिलती है।[१]

(२) अनंगपाल से पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की जो बात 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में आती है, वह भी आईन-ए-अकबरी' में नहीं आती है।

[१] 'आईन-ए-अकबरी', उपर्युक्त, पृ० ३०२।

(३) पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य कैंवास अथवा उसके वध का कोई उल्लेख 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं होता है, जो कि 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक में पाया जाता है।

(४) 'आईन-ए-अकबरी' मे वे तिथियाँ भी नहीं आती हैं जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक मे पाई जाती हैं।

असम्भव नहीं है कि इनमे से कुछ प्रसंग या विस्तार संक्षेप की दृष्टि से 'आईन-ए-अकबरी' में छोड़ दिए गए हों, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि उसके विवरण के आधारभूत 'रासो' के पाठ में उपर्युक्त में से कुछ न भी रहे हो। इस लिए यह विषय गम्भीरता पूर्वक विचारणीय है। इस सम्बन्ध में यह जान लेना उपयोगी होगा कि 'आईन-ए-अकबरी' की रचना अकबर के राज्य के बयालीसवे वर्ष (सं० १६५४-५५) मे समाप्त हुई थी और 'रासो' के विभिन्न पाठों की प्राप्त प्रतियाँ सभी उसके बाद की हैं. लघुतम की सबसे प्राचीन प्रति धारणाज (गुजरात) की है जो सं० १६६४ की है; लघु की सब से प्राचीन प्रति बीकानेर की है, जो जहाँगीर के समकालीन किन्हीं भागचन्द के लिए लिखी गई थी, मध्यम की सब से प्राचीन प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की है, जो सं० १६९२ की है; और वृहत् की सब से प्राचीन प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की है जो सं० १७४७ की है।

प्रस्तुत संस्करण 'आईन-ए-अकबरी' के आधारभूत 'रासो' के पाठ के सर्वथा निकट पहुँचतता है, क्योंकि 'आईन' मे 'रासो' के विशिष्ट प्रसगो और विवरणो की जो स्थिति ऊपर बताई गई है उनकी लगभग वही स्थिति प्रस्तुत संस्करण मे भी मिलती है :—

(१) प्रस्तुत संस्करण में भी कथा जयचन्द के राजसूय यज्ञ से प्रारम्भ होती है और इसके पूर्व पृथ्वीराज का कोई वृत्त नहीं आता है, इसके अतिरिक्त इसमे भी पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषो के विषय मे कोई उल्लेख नहीं होता है।

(२) प्रस्तुत संस्करण में भी अनंगपाल से पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की बात नहीं आती है।

(३) प्रस्तुत संस्करण में भी कोई तिथियाँ नहीं आती है।

कैंवास-वध की कथा अवश्य प्रस्तुत संस्करण मे ऐसी है जो 'आईन-ए-अकबरी' मे नहीं आती है, किन्तु इस कथा का मुख्य कथा से कोई अनिवार्य संबंध न होने के कारण ही यदि इसे 'आईन' मे छोड़ दिया गया हो तो आश्चर्य न होगा।

—:*:—

[१] 'आईन-ए-अकबरी', उपर्युक्त, तृतीय भाग, पृ० ५१६।

१३. 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा

डॉ० नामवर सिंह ने 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' नामक अपने डॉक्टरेट के निबन्ध मे धा० पाठ के कन्नौज प्रकरण—प्रस्तुत सस्करण के सर्ग ४-८ तथा ९ के पूर्वार्ध—के छन्दो को लेकर रचना की भाषा पर विस्तृत विचार किया है और उसकी भूमिका मे तत्सबंधी परिणामो का साराश दिया है।[1] भाषाशास्त्रीय विश्लेषण के अनंतर निकाले गए ये परिणाम महत्व के है, इसलिए नीचे इन्हे उन्ही के शब्दो मे दिया जा रहा है।

अ. ध्वनि-विचार

(१) छन्द के अनुरोध से प्रायः लघु अक्षर को गुरु और गुरु अक्षर को लघु बना दिया गया है। लघु को गुरु बनाने के लिए शब्दान्तर्गत (क) ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण, (ख) व्यजन-द्वित्व, (ग) स्वर का अनुस्वार-रजन, तथा (घ) समास मे द्वितीय शब्द के प्रथम व्यजन का द्वित्व करने की प्रवृत्ति है। इसके विपरीत गुरु को लघु बनाने के लिए (क) दीर्घ का ह्रस्वीकरण, (ख) व्यंजन-द्वित्व वा क्षतिपूर्ति-रहित सरलीकरण, तथा (ग) अनुस्वार के अनुनासिकीकरण की विधि प्रयोग मे लाई गई है।

(२) छन्दोनुरोध के अतिरिक्त भी स्वर-व्यजन मे परिवर्तन हुए हैं। उत्तराधिकार में प्राप्त प्राकृत के अर्ध-तत्सम शब्दो का प्रयोग करने के साथ ही आधुनिक आर्य भाषाओं की प्रवृत्ति के अनुसार नये तद्भव रूपो की ओर भी झुकाव लक्षित होता है। अन्य स्वर के ह्रस्वीकरण की जो प्रवृत्ति प्राकृत-अपभ्रंश काल से ही शुरू हो गई थी, वह 'रासो' मे पर्याप्त प्रबल दिखाई पड़ती है; जैसे जोध (=योद्धा), सेन (=सेना) इत्यादि।

(३) शब्द के अन्तर्गत आद्य अक्षर मे प्रायः स्वर की मात्रा में परिवर्तन हो गया है और मात्रा-संबंधी यह परिवर्तन प्राय: दीर्घ से ह्रस्व की ओर दिखाई पड़ता है, जैसे अनद (=आनद) अहार (=आहार), जियण (=जीवन) इत्यादि।

(४) शब्द के अन्तर्गत अनादि अक्षर मे स्वर के गुण-सबंधी परिवर्तन की प्रवृत्ति है, जैसे—अ > इ : तुरङ्ग > तुरिय; अ > उ : अञ्जलि > अंजुलिय; ई > अ : निरीक्ष्य > निरख, उ > अ : मुकुट > मुकट; उ > इ : कौतुक > कोतिग; ऊ > ओ : ताम्बूल > तंबोल; ए > इ : नरेन्द्र > नरिन्द, इत्यादि।

[1] 'पृथ्वीराज रासो की भाषा', सरस्वती प्रेस, बनारस, पृ० ३३-४१।

(५) प्राकृत-अपभ्रंश में जहां स्वरान्तर्गत अथवा मध्यग क, ग, च, ज, त, द, प, य, व के लोप से उद्वृत्त स्वर अवशिष्ट रह जाता था, उसके स्थान पर धीरे-धीरे य, व श्रुति के आगम अथवा पूर्ववर्ती स्वर के साथ उन्हें संयुक्त करने की प्रवृत्ति अवहट्ट अवस्था से प्रारम्भ हो गई थी, जिसकी प्रबलता 'रासो' में भी दिखाई पड़ती है। 'रासो' में उद्वृत्त स्वर की (क) स्वतन्त्र रूप से सुरक्षित, (ख) य, व श्रुति के रूप में उच्चरित और (ग) पूर्ववर्ती स्वरों के साथ संयुक्त, तीनों स्थितियाँ मिलती हैं, किन्तु प्रधानता द्वितीय स्थिति की है और तृतीय स्थिति विकास की अवस्था में दिखाई पड़ती है। तीनों स्थितियों के उदाहरण निम्नलिखित हैं:—

(क) चउसट्ठि < चतुष्षष्टि; (ख) नयर < नगर; (ग) रावत < राउत < रावउत < *राअवुत < राजपुत < राजपुत्र।

(६) उद्वृत्त स्वर को पूर्ववर्ती स्वर के साथ संयुक्त करने की प्रवृत्ति पदान्त में विशेष दिखाई पड़ती है, जिसका व्याकरण की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। इस प्रवृत्ति के कारण 'रासो' के क्रियापद अपभ्रंश से विशिष्ट हो गए हैं और संज्ञा तथा सर्वनाम पदों में विकारी रूपों के निर्माण की अवस्था दिखाई पड़ती है। है, कहै, जानिहै, आयो, सो आदि क्रियापद तथा हत्थैं, तैं आदि संज्ञा-सर्वनाम के विकारी रूप इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं।

(७) उद्वृत्त स्वर के अतिरिक्त मूल स्वरों में भी स्वर-संकोचन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। मोर (=मयूर), समै (=समय), स्रोन (=श्रवण) इत्यादि शब्द इसी प्रकार के स्वर-संकोचन के परिणाम कहे जा सकते हैं।

(८) प्राचीन व्यंजन ध्वनियों में से य और व 'रासो' में अधिकांशतः केवल श्रुति के रूप में सुरक्षित प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त य ज में तथा व ब में परिवर्तित हो गया था। प्रतिलिपिकार ने यद्यपि ब के लिए भी व का ही प्रयोग किया है, तथापि उच्चारण में वह ब ही प्रतीत होता है।

(९) श, ष, स तीन ऊष्म ध्वनियों में से केवल स का अस्तित्व प्रमाणित होता है। श और ष भी प्रायः स में परिवर्तित हो गए थे। ष के अन्य परिवर्तित रूप ख और ह मिलते हैं। ख के लिए ष का प्रयोग मध्य युगीन नागरी लिपि शैली की सामान्य विशेषता है, जिससे सभी लोग परिचित हैं।

(१०) वर्गीय अनुनासिक व्यंजनों में से केवल न, म का अस्तित्व प्रमाणित होता है। क्वचित्-कदाचित् ण भी दिखाई पड़ जाता है किन्तु इसका प्रयोग या तो तत्सम शब्दों में परंपरा-निर्वाह के लिए दिखाई पड़ता है या राजस्थानी प्रभाव के अन्तर्गत हुआ है।

(११) लिपि-शैली से ड़, ढ, न्ह, ल्ह, म्ह पाँच नवीन व्यंजन ध्वनियों के प्रचलन का प्रमाण मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन ड, ढ क्रमशः ड़, ढ़ में परिवर्तित हो गए थे।

(१२) असंयुक्त व्यंजनों में क > ह, ज > ग, ट > र, र > ल परिवर्तन महत्वपूर्ण हैं, जिनके उदाहरण निम्नलिखित हैं:—

क > ह: चिकुर > चिहुर; ज > ग: कनवज > कनवग; ट > र: भट > भर; र > ल: सरिता > सलिता।

(१३) असंयुक्त महाप्राण घोष और अघोष व्यंजनों का केवल महाप्राणत्व ही अवशिष्ट रह गया था। यह परिवर्तन प्रायः स्वरान्तर्गत अथवा मध्यग स्थिति में हुआ है। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:—

ख: दुह, सुह; घ: सुहर; थ: पहिल, पुहली; ध: कोह, विहि, भ: लहै, हुअ।

(१४) असंयुक्त अल्पप्राण व्यंजनों को आदि और अनादि दोनों ही स्थितियों में कहीं-कहीं महाप्राण कर देने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, जैसे: कंधार>खधार; अंकुर>अंखुली।

(१५) अघोष व्यजनों का घोषीकरण : जैसे अनेक>अनेग, कौतुक>कौतिग; चातक>चातग।

(१६) मूर्धन्यीकरण : जैसे ग्रन्थि>गंठि, गर्त>गड्ढा, दिल्ली>ढिल्ली।

(१७) संयुक्त व्यजनों के परिवर्तन मे सबसे महत्वपूर्ण अन्य व्यंजन+र तथा र+अन्य व्यजन हैं। ऐसे स्थलों पर 'रासो' मे या तो सम्प्रसारण अथवा स्वरभक्ति की प्रवृत्ति है या फिर परवर्ती-व्यजन-द्वित्व की। कहीं-कहीं व्यजन-द्वित्व के साथ ही रेफ-विपर्यय भी हो गया है। फलतः 'रासो' में धर्म के धरम, धरम्म, ध्रम्म तीन प्रकार के रूप मिलते हैं। इसी प्रकार गर्व>गरव, गब्व, ग्रब्व रूप भी।

(१८) अन्य सयुक्त व्यंजनों मे प्राकृत-अपभ्रंश की भाँति यथास्थान पूर्वसावर्ण्य तथा पर-सावर्ण्य की प्रवृत्ति प्रचलित दिखाई पड़ती है। फलस्वरूप इस रचना मे भी प्राकृत-अपभ्रंश की तरह व्यंजन-द्वित्व की बहुलता मिलती है। 'रासो' के मुक्क, अग्ग, बच्च, कज्ज, तुट्ट, नित्त, सद्द, अप्प, सब्ब, जम्म जैसे शब्द इसी प्रवृति के परिणाम हैं।

(१९) परन्तु आधुनिक भारतीय आर्यभाषा की व्यंजनद्वित्व को सरलीकृत करने की मुख्य प्रवृत्ति 'रासो' मे भी मिलती है। व्यजन-द्वित्व का सरलीकरण दो प्रकार से किया गया है—(क) क्षतिपूरक दीर्घीकरण-सहित और (ख) क्षतिपूरक दीर्घीकरण-रहित। दोनों के उदाहरण निम्न-लिखित हैं :—

(क) अट्ठ > आठ, किज्जइ > कीजइ, लक्ख > लाख ।

(ख) अलक्ख > अलख; उच्छग > उछंग, चड्ढिड > चढिड।

दीर्घाक्षरिक शब्द मे भी क्षतिपूरक दीर्घीकरण के बिना ही व्यंजन-द्वित्व का सरलीकरण हो जाता है, जैसे : चैत्र > चैत्त > चैत।

(२०) सयुक्त व्यंजन तथा व्यजन-द्वित्व का सरलीकरण क्षतिपूरक अनुस्वार के साथ भी होता है; जैसे : दर्शन > दंशन, प्रजल्प्य > पयपि, पक्षी > पंखी।

आ. रूप-विचार

(१) रूप-रचना की दृष्टि से 'रासो' की भाषा अपभ्रंशोत्तर और उदयकालीन नव्य भारतीय आर्य भाषा की विशेषताओं से युक्त दिखाई पडती है। इनमे से पहली विशेषता है निर्विभक्तिक सज्ञा शब्दों का सभी कारकों मे प्रयोग। अपभ्रंश मे इस प्रवृत्ति का प्रारम्भ ही हुआ था और नव्य भारतीय आर्यभाषा मे प्रत्येक कारक के लिए परसर्ग का विकास होने से पूर्व बहुत दिनों तक ऐसे निर्विभक्तिक सज्ञा शब्दो के प्रयोग की बहुलता थी।

(२) उकार बहुला अपभ्रंश मे कर्त्ता-कर्म एक वचन मे जिस -उ विभक्ति का प्रचलन था, वह 'रासो' की प्राचीन प्रतियों में प्रचुर मात्रा मे मिलती हैं। सभा के मुद्रित संस्करण में इसका अभाव दिखाई पड़ता है।

(३) अपभ्रंश की–ह परक विभक्तियों के अवशेष 'रासो' में काफी मिलते हैं। कनवज्जह, कनवजहे, कनवज्जहि जैसे रूप विरल नहीं हैं। परवर्ती हिंदी मे धीरे-धीरे यह विभक्ति घिस कर विकारी रूप बन गई।

(४) करण-कारण एकवचन की–इ,–ए,–ऐ अपभ्रंश विभक्तियाँ भी 'रासो' मे प्रचुर मात्रा में मिलती हैं; जैसे कारणइ, कवज्जइ, हत्थे, हत्थैं इत्यादि।

(५) कर्त्ता-करण तथा कर्म-सम्प्रदान के बहुवचन में -न, -नि, –नु विभक्ति का प्रयोग 'रासो' की ऐसी विशेषता है जो अपभ्रंश मे नहीं मिलती लेकिन 'वर्ण रत्नाकर', 'कीर्तिलता' इत्यादि अवहट्ट रचनाओं से –ह से युक्त अर्थात् –न्ह, –न्हि रूप मिलने लगते हैं। यही –न आगे चलकर विकारी रूप ओं तथा आँ मे विकसित हुआ। रासो मे-ओं, –आँ वाले विकारी रूप नहीं मिलते।

(६) परसर्गों की दृष्टि से 'रासो' अपभ्रंश तथा अवहट्ट दोनो की अपेक्षा समृद्ध है। कर्तृ-करण परसर्ग नैं अथवा ने को छोड़कर प्रायः शेष सभी परसर्ग किसी न किसी रूप मे यहाँ मिलते हैं। कर्म-परसर्ग कहुँ, कहुँ, कू रूप मे; करण-अपादान-परसर्ग तैं, ते तथा सहु, सो, सूँ; अपादान-परसर्ग हुति, सम्बन्ध-परसर्ग को, का, की, के तथा कउ, कै, अधिकरण-परसर्ग मज्झहि, मज्झे, मज्झि, मंझ, मधि, महि, मह आदि विविध रूपो में प्राप्त होता है, किंतु लघुतम रूपान्तर के कनवज्ज समय में अधिकरण-परसर्ग मैं अथवा मे कही नही मिलता।

(७) सर्वनामो के विषय मे 'रासो' की भाषा अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक है। उत्तम पुरुष सर्वनाम के मैं, हूँ, हम तथा विकारी रूप मो, मोहि मिलते हैं। मध्यम पुरुष के तुम, तुम्ह, तुम्मइ, तथा तैं, तुज्झ, तोहि रूप; अन्य पुरुष के सो तथा तासु जैसे प्राचीन रूपो के अतिरिक्त वह, उह, तथा उस रूपो का भी प्रयोग मिलता है।

(८) प्रश्नवाचक सर्वनाम के को, कौन, तथा किस, किन रूप; निज वाचक अप्पु, अप्प, अपन, सर्वनाम-मूलक विशेषण अस, इसो, तस, तेसे आदि प्रकार-वाचक और इत्तनहि, इत्तनउ, इत्तने तथा कितकु आदि परिमाणवाचक रूप 'रासो' को अपभ्रंश अवस्था से बाद की रचना प्रमाणित करते है।

(९) सख्यावाचक विशेषण— १ से १० की सख्याएँ एक, दुइ, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस नाम से मिलती हैं। १०० के लिए सै, सौ दोनो रूप आते हैं। १००० के लिए सहस के अतिरिक्त हज्जार (फारसी) का भी प्रयोग है। क्रमवाचक पहिलइ, बीय, तिअ, अपूर्ण सख्यावाचक अड्ढ, आवृत्तिवाचक दुहु इत्यादि।

(१०) क्रियापदों मे यदि √भू के सभी काल के रूपो पर दृष्टिपात किया जाय तो अपभ्रंश से विकसित अवस्था के स्पष्ट लक्षण मिलते हैं। वर्तमान काल मे है, भविष्यत् में होइहै तथा भूतकाल में कृदन्त रूप भो, भयो, भयी, भये तथा हुअ, हुवो इत्यादि।

(११) कही-कहीं पूर्वी हिंदी का आहि वाला क्रिया रूप भी 'रासो' में मिलता है, परन्तु इसका प्रयोग अधिक नहीं है।

(१२) भविष्यत् काल मे अपभ्रंश का–स्स मूलक रूप, जो पीछे राजस्थानी में विशेष प्रचलित हुआ तथा पश्चिमी और पूर्वी हिंदी मे नहीं आया, 'रासो' मे कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है।

(१३) सामान्य वर्त्तमान काल के लिए 'रासो' मे अपभ्रंश के तिङन्त तद्भव –अइ वाले रूप के साथ ही स्वरसंकोच युक्त –ऐ वाले रूप भी मिलते हैं और गणना करने पर पता चलता है कि अनुपात की दृष्टि से दोनों का प्रयोग लगभग समान है।

(१४) -इग अन्तवाला भूतकालिक क्रियापद जैसे चलिग, कहिग, करिग इत्यादि 'रासो' की अपनी विशेषता है। इस प्रकार के क्रियापद अपभ्रंश मे नहीं थे और पश्चिमी हिंदी मे भी इस प्रकार के जो क्रियारूप मिलते हैं, उनका प्रयोग भूतकाल में न होकर केवल भविष्यत् काल तक ही सीमित है।

(१५) -अत कृदन्तयुक्त क्रियापदो से वर्तमान काल-रचना का सूत्रपात 'रासो' में हो चुका था किंतु इसके साथ अस्तिवाचक सहायक क्रिया के रूप जोड़कर आधुनिक हिन्दी की भाँति संयुक्त काल-रचना की प्रवृत्ति उसमे नहीं मिलती। यह अवस्था स्पष्टतः अपभ्रंश के पश्चात् और व्रजभाषा के उदय के आस-पास की है।

(१६) संयुक्त क्रियाएँ 'रासो' मे अपभ्रंश से अधिक किंतु व्रजभाषा से बहुत कम मिलती हैं: साथ ही अर्थ की दृष्टि से भी वे काफी सरल हैं। धरि राखनो, लेहि बइठो, उड़ चल्लहि, हुइ जाइ जैसी सरल सयुक्त क्रियाएँ ही 'रासो' में प्रयुक्त हुई हैं।

इ. शब्द-समूह

(१) कनवज्ज समय (लघुतम रूपान्तर) में कुल मिलाकर लगभग साढ़े तीन हजार शब्द हैं और यदि रूप-विविधता को ध्यान मे रखते हुए किसी शब्द के विविध रूपो मे से केवल एक रूप की गणना की जाय तो शब्द-सख्या लगभग २००० होती है। इनमें से लगभग ५०० शब्द संस्कृत तत्सम हैं और २० शब्द फारसी के हैं, शेष शब्द मुख्यतः तद्भव है। केवल थोड़े से शब्द अर्धतत्सम अर्थात् प्राकृत अपभ्रंश के अवशेष है और उनसे भी कम देशी अथवा स्थानीय हैं। इस प्रकार 'रासो' में तत्सम शब्दों का अनुपात १६ प्रतिशत से अधिक नही है। अपभ्रंश को देखते हुए तत्सम शब्दों का यह अनुपात बहुत अधिक कहा जायगा, किन्तु नव्य आर्य भाषा की प्राचीन रचनाओ को देखते हुये 'रासो' मे तत्सम शब्दों का यह अनुपात कम कहा जायगा। इससे साबित होता है कि भक्ति कालीन रचनाओं की अपेक्षा 'पृथ्वीराज रासो' कुछ प्राचीन रचना है और सोलहवी शताब्दी के व्यापक सास्कृतिक पुनर्जागरण का प्रभाव उस पर कम पड़ा है। इसी तरह मुसलमान बादशाहों के प्रभाव से इस रचना मे जिन फारसी शब्दों की बहुलता की बात कही जाती है, वह केवल वृहत् रूपान्तर के लिए सही हो सकती है। लघुतम रूपान्तर मे फारसी शब्द बहुत कम हैं।

यह कहना अनावश्यक होगा कि धा० पाठ के आधार पर ऊपर 'रासो' की भाषा के सम्बन्ध में जो परिणाम डॉ० सिंह ने निकाले हैं वे सर्वथा तथ्यपूर्ण हैं। किन्तु प्रस्तुत संस्करण मे निर्धारित पाठ अनेक विषयों में धा० पाठ की तुलना मे प्राचीनतर—अर्थात् अपेक्षाकृत अपभ्रंश के निकटतर प्रमाणित होता है। नीचे इस विशेषता के कुछ प्रमाण दिए जा रहे हैं।

अ. ध्वनि-विचार

डॉ० सिंह ने ध्वनि-विचार की प्रथम प्रवृत्ति जो बताई है, उसका सम्बन्ध मूलतः रचना के कवि को शैली से है, उसकी भाषा से नहीं, छठी प्रवृत्ति के रूप मे उद्वृत्त स्वर को पूर्ववर्ती स्वर के साथ सयुक्त करने की जो प्रवृत्ति उन्होने बताई है, वह प्रस्तुत संस्करण मे अपवाद स्वरूप ही कहीं-कहीं मिलेगी, सामान्य प्रवृत्ति उद्वृत स्वरो को स्वतन्त्र रूप से सुरक्षित रखने की है, यथा धा० के 'है' 'कहै', 'जानिहै' के स्थान पर प्रस्तुत संस्करण मे प्रायः 'हइ', 'कहइ', 'जानिहइ' रूप मिलेंगे और इसी प्रकार 'आयो' तथा 'भो' के स्थान पर प्रायः 'आयउ' तथा 'भउ' मिलेंगे।

ध्वनि-विचार की आठवी प्रवृत्ति के रूप में 'य' के 'ज' तथा 'व' के 'ब' मे परिवर्तित होने की जो बात उन्होंने कही है, वह भी अंशतः ही प्रस्तुत संस्करण मे मिलेगी : 'य' अवश्य ही अधिकतर 'ज' हो गया है किन्तु वह अपने 'य' रूप में भी अनेक स्थलों पर सुरक्षित है, और सामान्य रूप से 'व' के 'ब' हुए होने के कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं, केवल 'व' और 'ब' के एक-से लिखे जाने के कारण यह अनुमान करना बहुत उचित न होगा; प्रस्तुत संस्करण मे 'व' अधिकतर सुरक्षित मिलेगा, केवल कहीं-कही पर 'व' का 'ब' हुआ दिखाई पड़ेगा।

ध्वनि-विचार की ग्यारहवीं प्रवृत्ति के रूप में 'ड़', 'ढ़', 'न्ह', 'ल्ह', 'म्ह' की पॉच नवीन व्यंजन-ध्वनियों के प्रचलन की बात कही गई है। प्रस्तुत सस्करण में 'ड़' 'ढ़' एक स्थान पर भी नही आते हैं—वे धा० की मूल प्रति में भी होंगे इस विषय मे मुझे पूरा सदेह है और असंभव नहीं कि वे उसमे आधुनिक प्रतिलिपि-क्रिया द्वारा आए हों; 'न्ह', 'ल्ह' और 'म्ह' भी प्रस्तुत संस्करण मे नवीन व्यंजन-ध्वनियों के रूप मे नहीं मिलते हैं, वे अपनी संयुक्त व्यजन ध्वनियों के रूप में ही इसमे मिलते है।

ध्वनि-विचार की चौदहवीं प्रवृत्ति के रूप में अल्पप्राण व्यंजनों को महाप्राण करने की जो बात कही गई है, वह भी प्रस्तुत सस्करण मे प्रायः नहीं मिलती है : दिए हुए उदाहरणों में से 'खंधार' 'कंधार' से कदाचित् नही व्युत्पन्न होता है, वह 'स्कधार' से व्युत्पन्न है और इसलिए 'खंधार' के 'ख'

का महाप्राणत्व 'स्कंधार' के स् > ह् के क के साथ मिल जाने के कारण हुआ लगता है : 'अंखुली' भी 'अंकुर' से व्युत्पन्न नहीं है, वह कदाचित् 'उक्खलिय' है जो 'उत्खण्डित' से व्युत्पन्न है।

ध्वनि-विचार की सत्रहवीं प्रवृत्ति के अन्तर्गत व्यंजन-द्वित्व के साथ रेफ-विपर्यय की जो बात कही गई है, वह भी प्रस्तुत सस्करण मे न मिलेगी : 'ध्रम्म' और 'ग्रव्व' के स्थान पर 'धर्म' और 'गर्व' के दिए हुए अन्य रूप तथा 'धम्म', 'गव्व' ही मिलेगे।

आ. रूप-विचार

रूप-विचार के अन्तर्गत सातवी प्रवृत्ति के रूप में सर्वनामो के जिन रूपों का उल्लेख किया गया है, उनमे से अनेक नही हैं; 'उस' के प्रयोग की जो बात कही गई है, वह तो धा० पाठ के सबंध मे भी ठीक नही है। डॉ० सिंह द्वारा दी हुई शब्दानुक्रमणिका मे—जो उनके ग्रन्थ के अन्त में दी हुई है—'उस' उनके संस्करण के छन्द ५४ मात्र मे आया हुआ बताया गया है, किन्तु यह 'उस' नहीं है 'उसनेह' का एक खड मात्र है, पूरी पक्ति है :—

सीत उसनेह रितु दोख रंभं।

'उसनेह' < 'उष्ण' से व्युत्पन्न है, अर्थ से यह भली भाँति प्रमाणित है।

रूप-विचार के अन्तर्गत नवी प्रवृत्ति के रूप मे चार, पाँच, छह, सात तथा आठ के मिलने का जो उल्लेख किया गया है, वह भी अशतः ही ठीक है : चार, पाँच, छ, सात, तथा आठ प्रस्तुत संस्करण मे 'च्यारि', 'पंच', 'सत्त' तथा 'अठ्ठ' के रूप मे ही सामान्यतः मिलते हैं, अन्य रूपों में अपवाद स्वरूप ही मे मिलेगे।

रूप-विचार के अन्तर्गत तेरहवी प्रवृत्ति के रूप में '—अइ' के साथ '-ए' वाले रूपों का लगभग बराबर-बराबर पाया जाना बताया गया है। प्रस्तुत संस्करण मे '-ए' वाले रूप बहुत ही कम हैं, अधिकता '-अइ' वाले रूपो की ही मिलेगी।

इ. शब्द-समूह

तत्सम और अर्धतत्सम शब्दों की जो सख्या डॉ० सिंह द्वारा ऊपर शब्द-समूह के अन्तर्गत बताई गई है, प्रस्तुत सस्करण मे उसमे कदाचित् कमी दिखाई पडेगी, और तद्भव शब्दों की सख्या में कदाचित् कुछ आधिक्य दिखाई पड़ेगा। फ़ारसी शब्दों का अनुपात लगभग वही होगा जो डॉ० सिंह के परिणामों में दिया हुआ है।

डॉ० सिंह ने कहा है कि 'रासो' की भाषा पर सोलहवीं शताब्दी के व्यापक पुनर्जागरण का प्रभाव कम पड़ा है, किंतु प्रस्तुत सस्करण के पाठ मे वह कदाचित् बिलकुल नहीं पड़ा दिखाई देगा। फारसी शब्दों की बहुत-कुछ बहुलता मुसलमानी शासन के प्रभाव के कारण अवश्य है, किन्तु कुछ न कुछ शहाबुद्दीन के प्रसंगों के वर्णन की अनिवार्य आवश्यकता के कारण भी है, जैसा हम अन्यत्र[1] देखेगे। इस प्रकार प्रस्तुत संस्करण मे रचना की भाषा का स्वरूप धा० पाठ के भाषा-रूप की तुलना में प्राचीनतर प्रमाणित होगा।

दोनों मे कितना और किस प्रकार का अंतर है, यह स्पष्ट करने के लिए एक छोटे प्रसंग की पंक्तियाँ नीचे पहले धा० तथा फिर सपादित पाठ से दी जा रही हैं।[2]

धा० पाठः दूहा—उदय अगस्त ... उज्जल जल ससि कास।
मोहि चंद इह विजय मनु कहहु कहाँ कइमास ॥
नागप्पुर नरपुर सयल कथिसु देवपुर साज।
दाहिमो दुल्लह भयो कहि न जाय प्रिथिराज ॥

[1] दे० इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त विदेशी शब्द' शीर्षक।

[2] धा० छद ८४-९० ; संपादित पाठ ३.२१—२७।

का भुजंग का देवनर निकमु कव्व कवि खंडि।
कै बताउ कैवास मोहि हर सिद्धि वर छंडि॥
जो छंडइ ... ...।
...... तप ताप करि वरु छडै कवि चन्द॥
हठ लग्गयो चहुवान नृप अंगुली मुखहि फनिंद।
जिह पुरि तुअ मति सचरई सु कहि विनइ कवि चन्द॥
सेस सिरप्परि सूरतर जइ पुच्छइ नृप ऐसु।
दहु बोलां मंडव मरनु कहहु त कव्व कहेसु॥

कवितु—इक्कु वान पुहमी नरेस कैवासह मुक्क्यो।
उर उप्परि खरहरयउ वीर कक्खंतरु चुक्क्यो।
बीउ बान सधानि हन्यो सोमेसुर नंदन।
गाढो कै निग्गहयौ खन्यौ गड्ढौ संभरि धन।
धर छडि न जाइ न भग्गलो गारे गड्यो गुन खले।
इम जंपइ चन्द वरद्दिया तह न वटे इह प्रज्जले॥

संपादिता पठ: दोहरा—उदय अगस्त नयंन दिठि उज्जल जल ससि कास।
मोहि चंद इइ विजय मन कहहुं कहां कयमास॥ (३.२१)
नागप्पुर सुरपुर सयल कथित कहउं सब साज।
दाहिम्मउ दुल्लह भयउ कहउ न जाइ प्रथीराज॥ (३.२२)
कहा भुजंग कहा उदे सुर निकमु कव्व कवि षंडि।
कइ कयमास वताहि मो कइ हर सिद्धी वर छडि॥ (३.२३)
जउ छंडइ सेसह धरणि हर छंडइ विष कंदु।
रवि छंडइ तप ताप कर तउ वर छंडइ कवि चंदु॥ (३.२४)
हठि लग्गउ चहुआन नृप अगुलि मुषह फणिंदु।
तिहु पुरि तुव मति संचरइ सु कहे बनइ कवि चंदु। (३.२५)
सेस सिरुप्परि सूरतर जइ पुच्छइ नृप एस।
दोहुं बोलि मंडन मरनु कहइ तउ कव्वु कहेस॥ (३.२६)

कवित—एकु वान पुहवी नरेस कयमासह मुक्कउ।
उर उप्परि खरहरिउ वीर कष्षह तर चुक्कउ।
बीउ वान संधानि हनउ सोमेसुर नंदन।
गाडउ करि निग्गहउ षनिव षोदउ संभरिधनि।
थर छंडि न जाइ अभागरउ गारइ गहउ जु गुन षरउ।
इम जंपइ चंद विरद्दिया सु कहा निमट्टिहि इह प्रलउ॥ (३.२७)

इसी प्रसंग मे 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' मे आए हुए 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' मे उद्धृत निम्नलिखित छद[1] को भी लिया जा सकता है, जो कि ऊपर धा० तथा सपादित पाठो का उद्धृत अंतिम छंद है:—

इक्कु बाणु पहुवीसु जु पइं कइंबासह मुक्कओ।
उर भितरि खडहडिउ धीर कक्खतरि चुक्कउ।

[1] 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह', संपा० मुनि जिन विजय, पृ० ८६।

बीअं करि सधीउं भमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुदइ सइंभरिवणु।
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खलगुलह।
नं जाणउ चंद बलद्दिउ किं न विछुट्टइ इह फलह॥

'पृथ्वीराज-प्रबध' का यह पाठ जिन दो प्रतियो पर आधारित है, उनमे से एक स० १५२८ की है,[1] और संग्रह के योग्य सपादक ने कोई पाठभेद इस छद के नहीं दिए है, इसलिए समझना चाहिए कि दोनो प्रतियो मे छद का पाठ एक ही या प्रायः एक ही है। 'रासो' की भाषा के प्राचीन रूप के परिज्ञान के लिए सं० १५२८ के इस पाठ का महत्व प्रकट है, और यह दिखाने की आवश्यकता नही है कि पाठ-विषयक अन्य प्रकार का अंतर होते हुए भी प्रस्तुत सस्करण के संपादित पाठ और सं० १५२८ के 'पृथ्वीराज-प्रबध' के उपर्युक्त पाठ मे भाषा-विषयक कोई अतर नही है, जब कि धा० के पाठ तथा पृथ्वीराज-प्रबन्ध के इस पाठ मे भाषा-विषयक अन्तर है। यह अंतर किस प्रकार का है, यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है : धा० का पाठ स० १५२८ के उपर्युक्त पाठ तथा प्रस्तुत सस्करण के सपादित पाठ के कुछ बाद की भाषा-स्थिति को हमारे सामने रखता है। फलतः डॉ० नामवर सिंह ने रचना की भाषा के विषय मे जो परिणाम निकाले हैं, वे अधिकाश में ग्राह्य होते हुए भी प्रायः उपर्युक्त प्रकार से संशोधन की अपेक्षा रखते हैं।

अब रही रचना की भाषा के देश-काल की बात। डॉ० नामवरसिंह ने अपने उपर्युक्त शोध-निबन्ध मे 'रासो' की भाषा के इस पहलू पर भी विस्तार से विचार किया है, और युक्तिपूर्वक यह दिखाया है कि न वह अपभ्रंश है, न डिंगल या पुरानी पश्चिमी राजस्थानी, और वह पुरानी ब्रज-भाषा भी नहीं है, वह पुरानी पूर्वीय राजस्थानी है जिसे पिंगल कहा जाता रहा है, और इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि ग्रन्थ की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति पर 'तारीख प्रिथूराज बजबान पिंगल तसनीफ़ कर्दा कबि चन्द बरदाई' लेख मिलता है।[2] इसके अनन्तर उन्होने दिखाया है कि 'रासो' की यह भाषा परम्परा के अनुसार पिंगल होते हुए भी 'प्राकृत पैंगल' (रचना १४वीं शती ईस्वी) से अधिक विकसित है; इसमे प्राकृत-अपभ्रंश के रूढ़ रूपों के अवशेष अपेक्षाकृत कम हैं और नव्य भारतीय आर्यभाषा के रूप अधिक हैं।[3]

जहाँ तक रचना की भाषा के देश-पक्ष की बात है, मैं डॉ० सिंह से प्रायः सहमत हूँ, यद्यपि हो सकता है कि पिंगल किसी क्षेत्र-विशेष की बोल-चाल की भाषा के सामान्य रूप का नहीं वरन् उसके साहित्यिक रूप का नाम रहा हो और वहाँ की बोल-चाल की सामान्य भाषा और पिंगल में लगभग उतना ही अन्तर रहा हो जितना आज की मेरठ की खड़ी बोली और साहित्यिक हिन्दी मे है। वह शौरसेनी अपभ्रंश से निकली हुई उस युग की काव्य-भाषा थी जिस युग में 'रासो' की रचना हुई।[4] किन्तु जहाँ तक रचना की भाषा के काल-पक्ष की बात है, मैं डॉ० सिंह से आशिक रूप मे ही सहमत हूँ। उसमें प्राकृत-अपभ्रंश के रूढ़ रूपों के अवशेष अधिक हैं और नव्य भारतीय आर्य-भाषा के रूप कम हैं, और यह बात ऊपर दी हुई मेरी युक्तियो तथा रचना के उदाहरणों से भली भाँति देखी जा सकती है। प्रस्तुत लेखक का अपना विचार है कि 'रासो' में पिंगल भाषा का वह

[1] 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह', उपर्युक्त, प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ३।

[2] 'पृथ्वीराजरासो की भाषा', सरस्वती प्रेस, बनारस, पृ० ४१–४६।

[3] वही, पृ० ४३—५३।

[4] पिंगल भाषा के सम्बन्ध में प्रस्तुत लेखक के विचारों के लिए दे० 'हिंदी साहित्य कोश' (ज्ञान मंडल, वाराणसी) में 'पिंगल काव्य' शीर्षक।

रूप हमें मिलता है जो 'प्राकृत पैंगल' के कुछ ही पीछे विकसित हुआ था, और उसकी भाषा और 'प्राकृत पैंगल' के सबसे पीछे रचे हुए छंदो की भाषा मे अन्तर बहुत कम है। नीचे इस बात को दिखलाने के लिए 'प्राकृत पैंगल' से वे छन्द दिए जा रहे है जो हम्मीर (सं० १२९५–१३५८) के विषय के हैं[१] :—

गाहिणी—मुंचहि सुन्दरि पाअं अप्पहि हसिऊण सुमुहि खग्गं मे।
कप्पिअ मेच्छ सरीरं पेच्छइ बअणइ तुमह धुअ हम्मीरो ॥ (पृ० १२७)

रोला— पअभरु दरमरु धरणि तरणि रह धुल्लिअ झंपिअ।
कमठ पिट्ठ टरपरिअ मेरु मंदर सिर कंपिअ।
कोह चलिअ हमीर बीर गअजूह संजुत्ते।
किअउ कट्ठ हाकंद मुच्छि मेच्छह के पुत्ते ॥ (पृ० १५७)

छप्पअ— पिंधउ दिढ सण्णाह बाह उप्पर पक्खर दइ।
बन्धु समदि रण धसउ समि हम्मीर बअण लइ।
उड्डुल णहपह भमउ खग्ग रिउ सीसहि डारउ।
पक्खर पक्खर ठेल्लि पेल्लि पव्वअ अप्फालउ।
हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ कोहाणल मुहमह जलउ।
सुलताण सीस करवाल दइ तेज्जि कलेवर दिअ चलउ ॥ (पृ० १८०)

कुंडलिआ— ढोल्ला मारिअ ढिल्लि मह मुच्छिअ मेच्छ सरीर।
पुर जज्जल्ला मतिवर चलिअ बीर हम्मीर।
चलिअ बीर हम्मीर पाअ भर मेइणि कंपइ।
दिगमग णह अंधार धूलि सूरह रह झंपइ।
दिगमग णह अंधार आणु खुरसाणक ओल्ला।
दरमरि दमसि बिपक्ख मारअ ढिल्लि मह ढोल्ला ॥ (पृ० २४९)

गगणांग— भंजिअ मलअ चोलवइ णिवलिअ गंजिअ गुज्जरा।
मालव राअ मलअगिरि लुक्किअ परिहरि कुंजरा।
खुरासाण खुहिअ रण मह मुहिअ लंघिअ साअरा।
हम्मीर चलिअ हा रव पलिअ रिउ गणह काअरा ॥ (पृ० २५५)

लीलावती— घर लग्गइ अग्गि जलइ धह धह
कइ दिग मग णह पह अणल भरे।
सब दीस पसरि पाइक्क लुलइ
धणि थण हर जहण दिआव करे।
भअ लुक्किअ थक्किअ बइरि तरुणि जण
भइरव भेरिअ सद्द पले।
महि लोट्टइ पिट्टइ रिउ सिर टुट्टइ
जक्खण बीर हमीर चले ॥ (पृ० ३०४)

जलहरण— खुरि खुरि खुदि खुदि महि घघर रव कलइ
णणणण गिदि करि तुरअ चले।
टटट गिदि पलइ टपु धसइ धरणि धर

[१] 'प्राकृत पैंगलम्', संपा० चन्द्रमोहन घोष, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, १९०२।

चकमक करि बहु दिसि चमले ।
चलु दमकि दमकि बलु चलइ पइक बलु
घुलकि घुलकि करि करि चलिआ।
बर मणु सअल कमल विपख हिअअ सल
हमिर बीर जब रण चलिआ ॥ (पृ० ३२७)

क्रीडाचक्र—जहा भूत बेताल णच्चंत गावंत खाए कबंधा।
सिआ फार फेक्कार हक्का रवंता फुले कण्ण रंधा।
कआ टुट्ट फुट्टेइ मंथा कबंधा णचंता हसंता।
तहा बीर हम्मीर संगाम मज्झे तुलंता जुअंता ॥ (पृ० ५२०)

इन छन्दों को भाषा पर विचार करते समय गाहिणी के—जो कि गाथा का एक प्रकार है—उदाहरण को छोड देना चाहिए, क्योकि गाथाओं को प्राकृत या प्राकृताभास में ही लिखने की उस युग मे परम्परा रही है, और 'पृथ्वीराज रासो' में भी इस परम्परा का सम्यक् निर्वाह हुआ है। शेष छन्दों की भाषा और 'पृथ्वीराज रासो' के छन्दों की भाषा में अन्तर साधारण है।

उल्लेखनीय अन्तर एक तो यह है कि हम्मीर-विषयक इन छन्दों मे ड तथा र के स्थान पर कहीं-कहीं ल का प्रयोग हुआ है :—

ड > ल : पडिअ > पलिअ (पृ० २५५), पडे > पले (पृ० ३०४), पडइ > पलइ (पृ० ३२७), फुडे ? > फुले (पृ० ५२०)।

र > ल : लुरइ > लुलइ (पृ० ३०४), करइ > कलइ (पृ० ३२७), चमरे > चमले (पृ० ३२७), तुरंता > तुलंता (पृ० ५२०)।

'पृथ्वीराजरासो' में भी इस वृत्ति के उदाहरण मिलते हैं, यथा : सरिता > सलिता (७.४.१) (९.११.३), आरुद्ध > आलुझ्झ (४.२०.२२), (१२.३६.२), (८.१४.५); प्रसरण > प्रसलन्न (७.१२.२०), रट > रल (८.२२ २); रुरिग > रुलिग (८.३२.३); मुकुर > मुकल (९.४.२); आर्द्र > आल (९.११.१); दर्दुर > दादुल्ल (९.११.२); सारिका > सालि (१०.११.२६); मुहडा > मुहुल्ल (१२.१३.११)। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि 'रासो' मे यह प्रवृत्ति कम है।

उल्लेखनीय दूसरा अन्तर यह है कि हम्मीर-विषयक छन्दों मे सर्वत्र 'व' के स्थान पर 'ब' मिलता है। डॉ० सिंह ने 'रासो' के ध्वनि-विचार के सम्बन्ध की आठवीं प्रवृत्ति में, जो ऊपर दी जा चुकी है, लिखा है कि श्रुति रूप मे प्रयोग के अतिरिक्त 'व' 'रासो' 'ब' में परिवर्तित हो गया था। किंतु हम्मीर-विषयक इन छन्दो में तो 'व' रह ही नही गया है, जिन शब्दों में हिन्दी में 'ब' कभी सुना भी न गया होगा, उनमें भी 'व' के स्थान पर 'ब' कर दिया गया है, यथा : करबाल (पृ० १८०), कलेबर (पृ० १८०), चोलबइ (पृ० २५५), मालब (पृ० २५५), रब (पृ० २५५), भइरब (पृ० ३०४), रब (पृ० ३२७), गाबत (पृ० ५२०), रबंता (पृ० ५२०)। हिन्दी की किसी बोली मे इन शब्दों में 'ब' नहीं आता है, 'व' ही आता है, ऐसी दशा में इस 'ब' का क्या कारण है ? स्पष्ट ही कारण यह है कि 'प्राकृत पैंगल' के सम्पादक को जहाँ भी 'व' मिला, उसने कदाचित् अपनी भाषा की प्रवृत्ति से प्रभावित होकर सर्वत्र उसे 'ब' कर दिया, यहाँ तक कि 'व' इन छन्दों मे देखने को भी नही रह गया ! असम्भव नही कि इसी प्रकार के प्रयासों के फल-स्वरूप यह धारणा बन गई हो कि हमारी बोलियो मे श्रुति के रूप मे प्रयोग के अतिरिक्त 'व' का अस्तित्व ही किसी समय समाप्त हो गया था, और 'रासो' मे भाषा की यह बाद में आई हुई स्थिति व्यापक रूप से पाई जाती है। 'व' और 'ब' अधिकतर एक प्रकार से लिखे जाने लगे थे, यह अवश्य हुआ था।

किंतु समस्त 'व' 'ब' मे बदल गए, अथवा यह भी कि श्रुति के रूप में उसके प्रयोग के अतिरिक्त 'व' रह ही नहीं गया था, मेरी समझ मे ठीक मत नहीं है। उदाहरण के लिए 'रासो' के लघुतम पाठ की शेष अन्य प्रति मो० (स० १६९७) मे ही अनेक स्थलों पर 'ब' स्पष्ट बना हुआ है और 'व' भी।

इन दोनों के बाद हम्मीर-सम्बन्धी छन्दावली तथा 'पृथ्वीराज रासो' के छन्दों मे भाषा-विषयक उल्लेखनीय अन्तर उद्वृत्त स्वर तथा श्रुति-प्रयोग मात्र का रह जाता है। यद्यपि उद्वृत्त स्वर का सर्वथा अभाव 'रासो' मे नहीं है, यह सुगमता से देखा जा सकता है, शेष प्रवृत्तियाँ दोनो मे लगभग समान है। इसलिए मेरी राय मे 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा हम्मीर विषयक ऊपर उद्धृत छन्दो की भाषा से थोड़े ही बाद की है, यही मानना अधिक युक्ति-संगत होगा।

इस प्रसंग मे जिस प्रकार हमने ऊपर हम्मीर-विषयक छन्दों को देखा है, जिनकी रचना संभवतः हम्मीर के जीवन-काल मे सं० १२९५ तथा १३५८ के बीच हुई होगी, उसी प्रकार श्रीधर कृत 'रण मल्ल छन्द'[1] के छन्दो को भी देख सकते हैं, जिनकी रचना सं० १४५४ में मानी गई है[2] :—

चुप्पई—'हल ऐयार इकारवि बुल्लइ।
भुजबलि सबल मुट्ठि दल घल्लइ।
गयु खान खुद नगतलि चल्लिअ।
शकदल दहु दिसि दिट्ठ डहल्लिअ ॥ २६ ॥
मलिक मंत्र मज्झिम निशि किद्धउ।
तब हेजव फुरमाण स दिद्धउ।
ईडर गढि अस्सइय जडि चल्लिउ।
जइ रणमल्ल पासि इम बुल्लिउ ॥ २७ ॥
सिरि फुरमाण धरवि सुरताणी।
धर दूय हाल माल दीवाणी।
अगर गरास दास सवि छोडिअ।
करि चाकरी खान कर जोडिअ ॥ २८ ॥
रा असि सरिसु बाहु उठभारिअ।
बुल्लइ हठि हेजव हक्कारिअ।
मुझ सिर कमल मेच्छ पय लग्गइ।
तु गयणङ्गणि भाण न उग्गइ ॥ २९ ॥

सिंह विलोकित—जां अम्बर पुडतलि तरणि रमइ।
तां कमधज कंध न धगड नमइ।
वरि वडवानल तण झाल शमइ।
पुण मेच्छ न आपूं चाच किमइ ॥ ३० ॥
पुण रण रस जाण जरइ जडी।
गुण सींगणि खञ्ची खग्गि चडी।
छत्तीस कुलह बल करिसु घणूं।
पय मग्गिसु रा हम्मीर तणूं ॥ ३१ ॥

[1] 'प्राचीन गुर्जर काव्य', संपा० केशवलाल हर्षद राय ध्रुव, गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी, अहमदाबाद, सं० १९८३, पृ० ५-७।

[2] वही, प्रस्तावना, पृ० ११

दल दारुण दप्फरखान जयी।
मिइ भग्गउ अग्गइ खग्गरयि।
हित्र पट्टण पद्धरि धरिसु पय।
नइ खिनडिसु सत्तिरि सहस सयं ॥ ३२ ॥
मिइ लङ्करि समसुद्दीन नडी।
पडि भग्गउ अङ्गो•अङ्गि भिड्डी।
जव मण्डिसि मुझ रणमल्ल समं।
तव देखिसि लसकरि सद्दिसु जमं ॥ ३३ ॥
मम मोडि म मण्डि मलिक्क घणूं।
हूं समरि विडारण मेच्छ तणु।
जव ऊठिसि हठि हक्कन्त रणि।
तव न गणू त्रण सुरताण तणि ॥ ३४ ॥
वल बुल्लि म वल्लि मलिक्क कहि।
म म वरणि सिमुणसिम दूत मुहि।
जब चम्पिसि ईडर सिहर तलं।
तव पेक्खिसि मुह रणमल्ल बलं ॥ ३५ ॥

इन पंक्तियों में यह सुगमता से देखा जा सकता है कि:—

(१) उद्वृत्त स्वर के स्थान पर सर्वत्र य, व, श्रुति आ गई है।

(२) व्यंजन-द्वित्वों की बहुलता है, जिनमें से कुछ तो प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा में हैं, और कुछ छंदोनुरोध-अथवा ओजपूर्ण शैली की आवश्यकताओं के कारण आए हुए हैं। किंतु कहीं-कहीं पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ करके व्यजन द्वित्व को सरलीकृत करने की भी प्रवृत्ति दिखाई पडती है।

(३) प्राय. सभी कारकों में निर्विभक्तक सज्ञा शब्द प्रयुक्त हुए हैं, और परसर्गों का विकास पूर्ण रूप से नहीं हुआ है।

(४) शब्द-समूह की दृष्टि से यह रचना काफी विकसित है. फारसी के शब्द बहुतायत से आ गए हैं।

फलत. 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा 'प्राकृत पैंगल' के हम्मीर-सबन्धी छंदों तथा 'रणमल्ल छंद' की भाषाओं के बीच की लगती है।

१४. 'पृथ्वीराज रासो' में प्रयुक्त विदेशी शब्द

नीचे 'रासो' के प्रस्तुत पाठ मे व्यवहृत विदेशी शब्दों की सूची दी जा रही है। इस सूची मे व्यक्तिगत नाम नहीं रक्खे गए हैं, फिर भी देखा जा सकता है कि विदेशी शब्दो की यह सूची छोटी नहीं है। पुनः ये विदेशी शब्द शहाबुद्दीन के प्रसंगो मे ही नहीं, प्रायः सभी प्रसगों मे आते है, यद्यपि शहाबुद्दीन के प्रसंगों में इनका व्यवहार अन्यत्र हुए इनके व्यवहार की तुलना में लगभग ६-७ गुना अधिक हुआ है, जो कि कदाचित् स्वाभाविक भो है। एक बात और इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य है : शहाबुद्दीन के प्रसंगो के बाहर प्रयुक्त विदेशी शब्द अधिकतर ऐसे हैं जिनके भारतीय पर्याय प्रचलित रहे हैं और इस ग्रथ मे भी प्रयुक्त हैं। अतः ऐसा लगता है कि जिस समय इस ग्रन्थ की रचना हुई, शहाबुद्दीन के प्रसंगों के बाहर प्रयुक्त विदेशी शब्द उत्तर भारत की बोलचाल की भाषा मे आ चुके थे, और वे उसके अंग बन गए थे।

शहाबुद्दीन के प्रसंगों के बाहर प्रयुक्त शब्द इस प्रकार हैं:—

रिंद (१.३.२०), दरब्बान (२. ३.५२), बग्ग (< बाग २. ५.२१), दरबार(४.२५.२६), दरबार (.५.१.१), दरबार (५.३.७), सुरतान (५.१३.८), दरिआइ (५.१३.२२), बंदा (५.१३.२३), मीर (५.१३.२३), दरबार (५.४२.२), जोर (५.४८.२), तेग (६.२३.१०), तषत (६.२३.१२), रुष (७.१.१), निसान (७.३.१), दरिआइ (७.४.८), सहनाइ (७.४.९), नफेरिय (७.४.९), समसेर (७.४.१५), फवज्ज (७.४.२३), फोज (७.६.१६), फोज (७.६.१७), जिरह (७.६.३१), जंगी (७.६.३१), तबल (७.६.४१), तंदूर (७.६.४१), जगी (७.६.४१), सहनाइ (७.६.४७), नफेरी (७.६.४९), नवरंग (७.६.४९), मगूल (= मगोल ७.१०.९), वाजू (७.१०.१०), सोर (७.१०.१७), निसान (७.१२.३), दुम्मी (= दुमवाले ७.१४.२), फोज (७.१४.४), हजार (७.१५.१७), हजार (७.१६.३), मनार (< मीनार ७.१६.४), जग (७.१७.१२), मीर (७.१७.२१), कम्मान (७.१७.२३), मीर (७.१९.२), गाजी (७.३१.११), हीदू (८.२.५), तुरक (८.२.५), कमान (८.९.२१), कसीस (< कशिश ८.९.२२), मीर (८.१०.१), महिल (९.२.२), महिल (९.३.१), हरम्य (९.४.१), सोर (९.६.१), सोर (९.११.२), दर (१०.१५.१), गूदरना (= गुजारना १०.१६.२), कग्गर (< कागज १०.२०.१), महिल (१०.२१.१), रुष (१०.२१.२), कग्गर (<कागज १०.२४.१)।

शहाबुद्दीन के प्रसंगों में प्रयुक्त शब्द इस प्रकार हैं:—

हजार (११.१.२), हजार (११.२.२), हजार (११.३ १), देवान (<दीवान ११.५.२), दीन (११.६.१), सुलतान (११.७.६), आलम आलम (११,७.३), मरदान (११.८.२),

हमीर (< अमीर ११.८.३), हिन्दू (११.८.३), दीन (११.८.३), रमजान (११ ८.३), निवाज (< नमाज ११.८.४), बिकाज (< बेकाज ११.८.४), गुम्मान (११.८४), दुरोग (११.८.६), दोजक (११.८.६), मसूरति (<मशवरत ११.९ १), कुरान (११ ९.१), साहि आलम (११ १०.१), तेग (११.१०.६), कमान (११.१०.६), पातिसाह (११.११.२), निसान (११.११ १), सुरताण (११.१२.१), जग (११ १२ ७), तेग (११.१२.७), बाज (११.१२.१०), हमीर (< अमीर ११.१२.१७), कुफार (< कुफ्फार ११.१४.१), फरजंद (११.१४.१), साहि (१२.१.१) रह (<राह १२.१.६), रह (राह १२.२ १), पीर (१२.४ २), दरबार (१२.६.२), दरबान (१२.७.१), परदार (पहरादार १२.८.१), दर (१२.९.२), दर (१२.१०.२), लगभग ढाई दर्जन विदेशी मुसलमान जातियो के नाम (१२ : ११.१-८), सेषजादा (१२.११.९), पठाण (१२ ११.९), साहि (१२.११.१०), हदफ (१२.१२.२), सलाम (१२.१३.१), मीर (१२.१३.१), फोज (१२.१३.८), मसंद (१२.१३.३), नजरिमंद (नजरमदी ? १२.१३.४), जीन (१२.१३.१०), अदब्ब (१२.१३.११), ताज (१२.१३.१३), साहि (१२.१३.१३), फरमान (१२.१४.१), सुरतान (१२.१४.२), बे (१२.१४.२), साहि (१२.१५.५), सूरतान (१२.१५.८), अदब्ब (१२.१५.११), हदप्प (१२.१५.१३), फुरमान (१२.१५.१५), महिमान (१२.१५.१६), महिमान (१२.१६.१), हदफ (१२.१७.१), सुरतान (१२.१७.१), सुरतान (१२.१८.१), दर (१२.१८.१), निसान (१२.१८.१), दुनिआ (१२.१९.४), अरदास (< अर्जदाश्त १२.२०.१), आदमी (१२.२०.१), सुरतान (१२.२०.२), फकीर (१२.२१.१), करामाति (१२.२१.१), मियाँ (१२.२२.१) मलिक्क (१२.२२.१), षान (१२.२२.१), हज्जूर (१२.२३.१), पातसाहि (१२ २३.२), दुरोग (१२.२८.२), पतिसाहि (१२.२९.१), सुरतान (१२.२९.४), मुहाल (१२.३४.२), बकस (< बख्श १२.३९.४), साहि (१२.४०.२), फुरमान (१२.४०.६), पातसाहि (१२.४१ २), मरद (१२.४१.४), फुरमान (१२.४१.५), पातिसाहि (१२.४२.२), फुरमान (१२.४२.६), फुरमान (१२.४३.२), साहि (१२.४४.२), कमान (१२.४६.१), फुरमान (१२.४८.१), फुरमान (१२.४८.१), फुरमान (१२.४८.३), साहि (१२.४८.६), षा (१२.४८.६), साह (१२.४९.१), असमान (<आसमान १२.४९.२)।

यहाँ पर यह जान लेना उपयोगी होगा मुसलमान शासकों से हुए युद्ध-विषयक प्राचीन हिंदी ग्रंथों मे विदेशी शब्दों के प्रयोग की स्थिति पूर्ण रूप से वही है जो 'रासो' के उन अशों में है जो शहाबुद्दीन से संबंधित हैं। श्रीधर रचित 'रणमल्ल छन्द', जिसकी रचना स० १४५४ में मानी गई है[1], तथा पद्मनाभ रचित 'कान्हड दे प्रबन्ध' में, जिसकी रचना सं० १५१२ मे हुई थी[2], 'रासो' के प्रायः उपर्युक्त सभी शब्द और लगभग इसी अनुपात मे आते हैं।

—:*:—

[1] दे० 'प्राचीन गुर्जर काव्य,' संपा० केशवलाल हर्षदराय ध्रुव, गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी, अहमदाबाद, प्रस्तावना, पृ० ११। रचना का पाठ भी इस काव्य सग्रह में पृ० १ से १४ तक दिया हुआ है।

[2] 'कान्हड दे प्रबन्ध', सपा० कान्तिलाल बलदेवराम व्यास, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जदपुर, खंड ४, छन्द ३४३।

१५. 'पृथ्वीराज रासो' का रचना-काल

मुनि जिनविजय द्वारा सपादित 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' मे दो प्रबन्ध ऐसे हैं जो पृथ्वीराज तथा जयचन्द से सम्बन्धित हैं। इन दो प्रबन्धो में चार ऐसे छन्द उद्धृत हुए हैं जिनमे से तीन नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में भी पाए जाते हैं। इसलिए इन प्रबन्धो से चन्द तथा 'पृथ्वीराज रासो' के समय पर एक नया और महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है।

मुनि जी ने 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह' के प्रास्ताविक वक्तव्य मे 'सग्रह के कुछ महत्व के प्रबन्ध' शीर्षक देते हुए इन दो प्रबन्धो के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से विचार भी किया है। उनका कथन है कि "इस सग्रह के उक्त प्रकरणों मे जो ३–४ प्राकृतभाषा-पद्य उद्धृत किए हुए मिलते हैं, उनका पता हमने उक्त 'रासा' मे लगाया हैं, और इन चार पद्यों में तीन पद्य, यद्यपि विकृत रूप मे लेकिन शब्दशः, उसमे हमे मिल गए है। इससे यह प्रमाणित होता है कि चन्द कवि निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसीने पृथ्वीराज के कीर्तिकलाप का वर्णन करने के लिये देश्य प्राकृत भाषा मे एक काव्य की रचना की थी जो 'पृथ्वीराज रासो' के नाम से प्रसिद्ध हुई।"[1] मुनि जी के इस निष्कर्ष के आधार क्या है, यह उन्होने स्पष्ट रूप से नही कहा है, किंतु इतना कहने के बाद ही उन्होने उक्त तीन छन्दो के पाठ प्राप्त सग्रहों तथा नागरीप्रचारिणी सभा के 'पृथ्वीराज रासो' के सस्करण से तुलना के लिए देते हुए प्रबन्धों के पाठ की भाषा-विषयक प्राचीनता पर जो बल दिया है[2], उससे अनुमान यही होता है कि उनके कथन का मुख्य आधार कदाचित् वही है।

यहाँ पर प्रश्न यह हो सकता है कि भाषा के स्वरूप का साक्ष्य क्या इतना निश्चयात्मक है? भाषा का जो स्वरूप प्रबन्धो के इस पाठ मे मिलता है, वह विद्यापिति की 'कीर्त्तिलता' तक अनेकानेक अन्य रचनाओ मे भी मिलता है, इसलिए यदि उसी के आधार पर निष्कर्ष निकालना हो तो कदाचित् हम इतना ही कह सकते है कि भाषा की दृष्टि से इन छन्दो की रचना १४०० ई० के पूर्व की होनी चाहिए। केवल इतने साक्ष्य के आधार पर यह परिणाम निकालना कि चन्द "दिल्लीश्वर हिंदू सम्राट पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एव राजकवि था" तर्क-सम्मत नही लगता है। इन प्रबन्धो मे यदि रचना का कम से कम इतना अंश उद्धरण के रूप मे उपलब्ध होता कि हम ऐतिहासिक दृष्टि से भी उसकी परीक्षा कर सकते, तो हम भाषा की सहायता लेते हुए

[1] पुरातन प्रबंध-संग्रह, सिंघी जैन ग्रंथमाला, भातीय विद्याभवन, बबई, प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ८, ९।

[2] वही।

इस सम्बन्ध मे किसी अंश तक निश्चयात्मक रूप से कुछ कह सकते थे। केवल उद्धृत तीन-चार छन्दो के बल पर इस प्रकार का परिणाम हम नहीं निकाल सकते।

यदि ध्यान से देखा जावे तो ज्ञात होगा कि जो चार छन्द उक्त प्रबन्धो मे चन्द के कहकर उद्धृत किए गए है, उनमे से दो, जो जयचन्द प्रबन्ध मे आते हैं, चन्द के नही जल्ह के है। ये दो छन्द निम्नांकित है:—

(१) त्रिण्हि लक्ष तुषार सबल पाखरीअइं जसुहय।
चऊदसइं मयमत दंति गज्जंति महामय।।
वीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर।
ल्हूसडु अरु बलुयान संख कु जाणइ तांह पर।।
छत्तीस लक्ष नराहिवइ विहि विनडिओ हो किम भयउ।
जइचद न जाणउ जल्हु कइ गयउ कि मुउ कि घरि गयउ।।

(२) जइतचंदु चक्कवइ देव तुह दुसह पयाणउ।
धरणि धसवि उद्धसइ पडइ रायह भंगाणओ।।
सेसु मणिहिं संकियउ मुक्कु हयखरि सिरि खंडियों।
तुट्टओ सो हरधवलु धूलि जसु चिय तणि मंडिओ।।
उच्छलीउ रेणु जसगिग गय सुकवि ब (ज) ल्ह सच्चउ चवइं।
वग्ग इंदु बिंदु भुय जुअलि सहस नयण किण परि मिलइ।।

इनमे से ऊपर उद्धृत प्रथम छन्द नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' मे अवश्य मिलता है,[१] किंतु यह दर्शनीय है कि इस छन्द को 'रासो' मे स्थान देने के लिए प्रक्षेपकर्ता को छन्द की अन्तिम पंक्ति से 'जल्हु' का नाम निकाल कर उसमे 'चन्द' का नाम रखना पड़ा और तभी यह सम्भव हो सका। वहाँ 'रासो' में उसका पाठ है:—

जैचंद राइ कवि चंद कहि उदधि बुडि कै घर लियौ।

इस प्रसग में इतना और जान लेने योग्य है कि सभाद्वारा प्रकाशित रचना के वृहत् पाठ के अतिरिक्त उसके अन्य किसी पाठ की प्रतियो मे ऊपर उद्धृत प्रथम छन्द नहीं मिलता है, और ऊपर उद्धृत द्वितीय छन्द तो उसके किसी भी पाठ की प्रतियो मे नहीं मिलता है। फलतः ये दो छन्द निश्चित रूप से जल्ह के है, चन्द के नहीं हैं, और चन्द की रचना या स्वरूप अथवा उसका समय निर्धारित करते समय इनका आधार नहीं ग्रहण करना चाहिए।

किंतु प्रबन्ध लेखक इन दो छन्दो को 'जयचन्द प्रबन्ध' में उद्धृत करके ही संतोष नहीं करता है। वह ऊपर उद्धृत प्रथम छन्द के पूर्व कहता है, 'तदनु चन्द बलिद्द भट्टेन श्री जैत्रचन्द्र प्रत्युक्तम्'; और इसी प्रकार वह ऊपर उद्[धृ]त द्वितीय छन्द के पूर्व कहता है, 'पतनागत वर्षद्वयेनोक्तम्। तेनैव पूर्वमुक्तम्।' इससे यह ज्ञात होगा कि प्रबन्ध-लेखक विश्वसनीय नहीं है, और ऐसे प्रबन्धो के अंतर्साक्ष्य के आधार पर पृथ्वीराज और चन्द के सम्बन्ध मे उपर्युक्त प्रकार के परिणाम निकालना किसी प्रकार भी युक्ति-संगत न होगा।

फिर भी इन प्रबन्धो का बहिर्साक्ष्य महत्वपूर्ण है, और उसके आधार पर चन्द तथा जल्ह के समय पर कुछ विचार किया जा सकता है। नीचे हम उसी के आधार पर चन्द तथा जल्ह के समय के सम्बन्ध मे विचार करेंगे।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'जयचन्द प्रबन्ध' नाम के ऐसे दो प्रबन्ध हैं जिनमे उल्लिखित छन्द मिलते है। इनमे से 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तो दो प्रबन्ध संग्रहो में

[१] 'पृथ्वी राज रासो', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० २५०२।

मिलता है, जिन्हे मुनि जी ने 'पी' तथा 'बी' कहा है, और 'जयचन्द प्रबन्ध' केवल 'पी' मे मिलता है। और इन दोनो प्रबन्ध-संग्रहो की एक-एक प्रतियाँ ही मिली है, अतः उन्ही को लेकर हमे आगे बढना होगा। नीचे दी हुई सूचनाएँ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के प्रास्ताविक वक्तव्य से हैं।

'पी' सग्रह मे ४० प्रबंध है और 'बी' संग्रह मे ७१। किंतु 'बी' प्रारम्भ मे तथा बीच-बीच मे भी खण्डित है, इसलिए उसके १७ प्रबन्ध अनुपलब्ध है, केवल ५४ प्रबन्ध प्राप्त हैं। 'पी' इस प्रकार खण्डित नही है, इसलिए उसके समस्त प्रबन्ध प्राप्त है। 'पी' के उपर्युक्त ४० तथा 'बी' के उपर्युक्त ५४ प्राप्त प्रबन्धो मे से, जिनकी सूची विद्वान् सपादक ने ग्रंथ के प्रास्ताविक वक्तव्य मे दी है, अनेक प्रबन्धो के शीर्षक ऐसे है जो समान हैं। उन समस्त प्रबन्धों का पाठ भी दोनों मे समान है, यह कहना उपर्युक्त प्रतियो को देखे बिना सम्भव नही है। 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह' मे केवल निम्नलिखित आठ प्रबन्ध ऐसे हैं जो दोनों से समान रूप से संकलित किए गए हैं, कारण यह है कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' मे केवल वे ही प्रबन्ध सकलित हुए है जिनका सम्बन्ध मेरुतुङ्ग के 'प्रबन्ध चिंतामणि' के प्रबन्धो से है:—

१. विक्रम सम्बन्धे रामराज्य कथा प्रबन्ध
२. वसाह आभड प्रबन्ध
३. कुमारपाल कारिताभारि प्रबन्ध
४. वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध
५. पृथ्वीराज प्रबन्ध
६. लाखण राउल प्रबन्ध
७. न्याये यशोवर्म्म प्रबन्ध
८. अम्बुचीच नृप प्रबन्ध

और यह संख्या 'पी' और 'बी' के पाठो के तुलनात्मक अध्ययन के लिए पर्याप्त है।

इन आठ प्रबन्धो का जो पाठ 'पी' तथा 'बी' मे मिलता है, उससे निम्नलिखित बाते नितांत स्पष्ट रूप से ज्ञात होती हैं:—

१. दोनों संग्रहो मे इन आठ प्रबन्धों का जो पाठ मिलता है, उसका पूर्वज एक ही है, कारण यह है कि दोनों सग्रहों मे इनका पाठ समान है।

२. दोनो संग्रहो में इन आठ प्रबन्धो के पाठ उस सामान्य पूर्वज की दो स्वतन्त्र शाखाओ की प्रतियो से लिए गए हैं, अर्थात् दोनों संग्रहों के आदर्श भिन्न-भिन्न और स्वतन्त्र शाखाओं के हैं, क्योंकि दोनों मे समान पाठ-प्रमाद, समान-पाठभ्रंश अथवा समान-प्रतिलिपि-प्रमाद एक भी स्थल पर नहीं पाए जाते हैं।

३. 'बी' में पाठ-वृद्धि के रूप मे प्रक्षेप-क्रिया दर्शित होती है। कुछ स्थानों पर उसमें अतिरिक्त छन्द और अतिरिक्त वाक्य मिलते हैं (यथा: वसाह आभड प्रबन्ध, कुमारपाल कारिताभारि प्रबन्ध, वस्तुपाल तेजःपाल प्रबंध, तथा न्याये यशोवर्म्म नृप प्रबध मे); कही-कही पर पूरा अनुच्छेद या प्रसग ही बढ़ा हुआ है (यथा : वस्तुपाल तेजःपाल प्रबंध मे), और कहीं-कही पर जो बात 'पी' मे सक्षेप मे कही गई है, 'बी' में कुछ बढ़ाकर कही गई है (यथा : वसाह आभड प्रबध तथा वस्तुपाल तेजःपाल प्रबध में)। 'पी' में भी उपर्युक्त तीनों प्रकार की प्रक्षेप-क्रिया दिखाई पड़ती है, यद्यपि मात्रा में 'बी' से कुछ कम (यथा : वस्तुपाल तेजःपाल प्रबंध मे)। हो सकता है कि इनमे से दो-एक उदाहरण प्रक्षेप के न हो, सामान्य लेखन-प्रमाद के कारण उत्पन्न हो, किंतु इससे निष्कर्ष मे कोई अन्तर नही पड़ता है।

४. यह पाठ वृद्धि वर्त्तमान 'पी' तथा 'बी' की किसी पूर्ववर्ती पीढी मे हुई, क्योंकि वर्तमान 'पी' तथा 'बी' की प्रतियो मे पाठ-वृद्धि के रूप में लिखे हुए कोई वाक्य या छन्द नही मिलते हैं।

इन तथ्यो को हम निम्नलिखित रूप में व्यक्त कर सकते हैं—

यहाँ हम देखते है कि आधार कृति (यथा चद की कृति) और 'पी' अथवा 'बी' के बीच चार पीढ़ियो का अन्तर है।

यहाँ तक तो आधार कृति के उस रूप की बात रही जो प्रबंध-लेखक को प्राप्त था। किंतु अन्यत्र हम देखते हैं कि वह रूप प्रक्षिप्त था और हमे ऐसे रूप प्राप्त हैं जिनमे वह प्रक्षेप नही आता है: 'रासो' के लघुतम पाठ की दो प्रतियाँ, जैसा हम देख चुके हैं, प्राप्त हैं किंतु दोनो मे से किसी मे भी 'पृथ्वीराज|प्रबंध' का 'अगह मगह दाहिमउ' वाला छन्द नही मिलता है, 'रासो' लघुपाठ की भी किसी प्रति में वह छन्द नही मिलता है; केवल उसके मध्यम तथा वृहत् पाठों की प्रतियों मे वह छन्द मिलता है और वह भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न-भिन्न स्थानों पर।[१] और प्रस्तुत संस्करण 'रासो' के लघुतम पाठ से भी लघुतर है—जिसमे लघुतम पाठ के भी कुछ अंश प्रक्षिप्त प्रमाणित होने के कारण नही रक्खे गए हैं।[२] इसलिए अप्रक्षिप्त 'रासो' का पाठ प्रबध-लेखक की उपर्युक्त आधार-कृति के पाठ से कम से कम एक पीढी ऊपर अवश्य पडता है और इस प्रकार मूल 'रासो' के पाठ और वर्त्तमान 'पी' प्रति मे कम से कम चार पीढ़ियों का अन्तर होता है। यदि 'रासो' के मूल पाठ और प्रबन्ध-लेखक के आधारभूत पाठ के बीच ५० वर्षों का समय तथा शेष प्रत्येक पीढ़ी के लिए पच्चीस वर्षों का[३] समय रक्खे तो प्रस्तुत संस्करण का पाठ सं० १४०० के लगभग जा पहुँचता है।

रचना कथा-नायक की समकालीन नही हो सकती है, क्योंकि जैसा हमने अन्यत्र देखा है उसके प्रस्तुत संस्करण के पाठ में भी कुछ न कुछ इतिहास-असम्मत विवरण है,[४] उस में भी अनेक ऐसे शब्द

[१] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पुरातन प्रबध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[२] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'रचना का मूल रूप' शीर्षक।

[३] पहले (नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६०, अंक ३-४, पृष्ठ २३९) मैंने प्रत्येक पीढ़ी के लिए पचास वर्षों का समय मानकर रचना-काल का अनुमान किया था, किन्तु जैन महात्माओं में ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करना एक पवित्र कार्य माना जाता रहा है, इसलिए प्रति पीढ़ी के लिए पचीस वर्षों का समय पर्याप्त होना चाहिए।

[४] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो की ऐतिहासिकता' शीर्षक।

आते है जो लगता है कि उत्तरी भारत की बोलचाल की भाषा मे सम्मिलित हो गए थे[1] और उसकी भाषा भी 'प्राकृत पैंगल' मे संकलित हम्मीर के सम्बन्ध के छन्दों (रचना-काल सं० १३५८–अर्थात् हम्मीर की देहाततिथि) और 'रणमल्ल छन्द' (रचना-काल स० १४५४) के बीच की प्रतीत होती है।[2] इसलिए सभी दृष्टियों से 'पृथ्वीराज रासो' की रचना स० १४०० के लगभग हुई हो मानी जा सकती है, इससे पूर्व नहीं।

—:*:—

[1] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो में प्रयुक्त विदेशी शब्द' शीर्षक।

[2] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो की भाषा' शीर्षक।

१६. 'पृथ्वीराज रासो'

का

रचयिता

कवि चद रचना मे दो रूपो मे आता है, एक तो कथा-नायक के कवि-मित्र के रूप मे और दूसरे रचना के कवि रूप मे। केवल रचना के कवि के रूप मे वह प्रस्तुत सस्करण मे इने-गिने स्थलो पर ही दिखाई पडता है, और इन स्थलो पर 'चद' या 'चद विरदिआ' नाम से वह आता है :—

चद या कवि चंद · १ ४.१६, ७.५.५, ८.३४.५, ९ १.४, १२.४८.१ तथा १२.४९.६।

चद विरद्दिया : ८.११ ६ तथा ८.१४.६।

कथा-नायक के कवि-मित्र के रूप में ही वह रचना मे प्रायः दिखाई पडता है, और इन स्थलो पर वह प्रस्तुत संस्करण मे निम्नलिखित भिन्न भिन्न नामो से आता है :—

चद या कविचंद : २ १३ २, २.१४ २, २ १६.४, २ २१ १, २ २४.२, २ २५ २, २ ३५ २, २.४२.१, ४ ४ १, ४ १४.१२, ४.१६ १, ४ २५.३३, ५ १ १, ५.२.१, ५.३.७, ५.१५.१, ५ १६ २, ५.३१.१, ५ ४८.१, ६.५ २७, ७.१.२, ७ ५ ५, ७ २० ३, ७.३१ २१, ८ ७.१, १०.१.४, १० २ १, १०.४ १, १०.५.१, १० १४.१, १०.१५ १, १० १९.२, १०.२२ १, १२.१३ २२, १२.१.६, १२.२.१, १२.६.१, १२.१० ९, १२ १५ १३, १२ १५.१६, १२ १६.१, १२ १७.२ १२.१९.३, १२ २२ २, १२ २०.१, १२ २३.३, १२.२४.१, १२.२५ १, १२.३२.३, १२ ३३ १, १२ ३३.१९, १२.३४.२, १२.४२.१, १२.४४.१, १२.४७ २।

केवल 'कवि' या 'राजकवि' शब्द का भी प्रयोग स्थान-स्थान पर हुआ है, जिसका स्थल-निर्देश करना अनावश्यक होगा।

चद विरद्दिआ · ३.२७.६, ३.२९.३, ४.१.२, ५.१९ ६, ५.४५.१, १२.४० १, १२.४९ १।

चंद वरदाइ या वरदाइ : ३.३०.४, ५.९.१, १०.३.२, १२.४२.३।

भट्ट चद या भट्ट : २.२८.१, २.३९, ४.८ २, ५.२१.२, १०.२४.१, १२ ७ ७, १२.१४.२, १२ १५ २, १२.१९.२, १२.३०.१, १२.४१.१।

चंडिय · २ १९.४।

चंड चद : ५.१३.१९।

कवियन ४.१३.१, १२ १०.१।

उपर्युक्त प्रयोगो से निम्नलिखित बाते ज्ञात होती है :—

(१) 'रासो' का कवि तथा कथा-नायक का कवि-मित्र रचना मे एक ही व्यक्ति के रूप मे आते है।

(२) 'रासो' के कवि के लिए 'चंद', 'कवि चंद' या 'चंद विरद्दिया' नाम आते हैं और कथा-नायक के कवि-मित्र के लिए भी उसी प्रकार 'चद', 'कवि चंद' या 'चंद विरद्दिआ' नाम आते हैं।

(३) कथा-नायक के कवि-मित्र के कुछ और नाम भी आते हैं जो 'रासो' के कवि के नामो मे नहीं मिलते है. ये है 'चंद वरदाइ' या 'वरदाइ' मात्र, 'भट्ट चंद' या 'भट्ट' मात्र, 'चंडिय', 'चंड चंद' और 'कवियन'।

अतः 'विरद्दिआ', 'वरदाइ', 'भट्ट', 'चंडिय', 'चड', तथा 'कवियन' उपाधियाँ विचारणीय हो जाती हैं।

'विरद्दिआ', या 'विरुदिया', जैसा वह प्रायः ना० प्रति मे पाया जाता है, विरुद (प्रशस्ति) गान करने वाले के अर्थ मे आता है।

'वरदाइ' या 'वरदाई' शब्द का अर्थ भाषा के सामान्य नियमो के अनुसार 'वर देने वाला' होना चाहिए किन्तु चंद के सम्बन्ध मे इस उपाधि का प्रयोग 'वर प्राप्त' के अर्थ मे हुआ लगता है। एक स्थान पर कथा-नायक और उसके कवि-मित्र की कहा-सुनी मे कवि का 'हर' से 'सिद्धि' का 'वर' प्राप्त हुए होने का उल्लेख भी आता है :—

कहा भुजग कहा उदे सुर निकसु कव्व कवि षंडि।
कइ कयमास बताहि मो कइ हर सिद्धीवर छंडि॥ (३.२३)
जउ छंडइ सेसह धरणि हर छंडइ विष कंदु।
रवि छंडइ तप ताप कर तउ वर छंडइ कवि चंदु॥ (३.२४)

किन्तु निम्नलिखित कथन से ध्वनित होता है उसे सरस्वती का वर प्राप्त था :—

अहो चंद वरदाइ कहावहु।
कनवज्जह दिष्षन नृप आवहु।
जउ सरसइ वरु जानहु रंचउ।
तउ अदिठ्ठ वरनउ नृप संचउ॥ (५.९.१)

यह असम्भव नही है कि अन्तिम उद्धरण के तृतीय चरण का 'वरु' 'बल' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ हो, इसलिए उपर्युक्त अन्तर अथवा वैषम्य निश्चित अन्तर या वैषम्य नही कहा जा सकता है।

'भट्ट' शब्द का प्रयोग प्रसिद्ध स्तुति-पाठक जाति 'भाट' के अर्थ मे हुआ है।

'चंडिअ' नाम का प्रयोग केवल एक स्थल पर निम्नलिखित प्रकार से हुआ है :—

सकल सूर बोलिव सभ मंडिय।
आसिष जाइ दीध कवि चंडिय। (३.१९.३-४)

'चंडिअ' का अर्थ 'कृत्त', 'छिन्न' अथवा 'काटा हुआ' होता है, जो यहाँ असंगत लगता है। प्रसग के अनुसार यहाँ पर 'चंडिय' से आशय 'चद' का होना चाहिए क्योकि आगे ही चद से पृथ्वीराज ने प्रश्न किया है (३ २१) और 'चंड' 'चन्द्र' से भी व्युत्पन्न माना गया है[१], अतः असम्भव नही है कि इससे चद्र < चद का आशय सिद्ध होता हो।

इसी प्रकार 'चड' उपाधि का प्रयोग भी केवल एक स्थल पर निम्नलिखित प्रकार से हुआ है :—

जंपिअ सच्च सो चंद चंडं।
थप्पियं जाइ तिरहूति पिंडं। (५.१३.८-९)

'चंड' का अर्थ 'उग्र' होता है, और वही कदाचित् यहाँ भी अभिप्रेत है। 'कवियन'=

[१] दे० 'पाइअ सद्द महण्णवो' पृ० ३९२।

'कविजन', सत्कवि के लिए प्रयुक्त होता रहा है—यथा नारायणदास रचित छिताई वार्त्ता[2] में—और उसी अर्थ में यहाँ भी प्रयुक्त लगता है :-

रतनरंग कवियन बुधिलई।
समौ विचारि कथा वर्नई ॥५०४॥
कवियन कहै नरायनदास ॥१२८, १४३, ५४२, ६६०, ७४६॥
कविअण तुच्छ कहइ समझाइ ॥७३२॥

फलतः कथा-नायक का कवि-मित्र चन्द 'विरुदिआ' या 'भाट' था, और उसे हर से सिद्धि का वर प्राप्त हुए होने के कारण 'वरदाई' भी कहा जाता था, स्वभाव से वह कदाचित् किंचित् उग्र था, इसी कारण 'चंड चंद' भी वह कहा गया है।

यह हम अन्यत्र देख चुके हैं कि 'रासो' पृथ्वीराज के समकालीन किसी कवि की रचना नहीं हो सकती है।[3] इसलिए यह प्रकट है कि यह रचना चन्द के नाम पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की हुई है। वह अन्य व्यक्ति कौन था, यह जानने के लिए हमारे पास कोई साधन इस समय नहीं हैं।

—:*:—

[2] 'छिताई वार्ता' संपादक प्रस्तुत लेखक, नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस, सं० २०१५।
[3] दे० इसी भूमिका में अन्यत्र 'पृथ्वीराजरासो का रचना-काल' शीर्षक।

१७: रासो काव्य-परंपरा और 'पृथ्वीराज रासो'

'रास' और 'रासो' नाम किस वस्तु के परिचायक है, ये एक ही काव्यरूप का निर्देश करते है अथवा दो काव्यरूपो का, इनके आधार विषय, रस, शैली छन्द आदि क्या होने चाहिए और इनका सूत्रपात किस प्रकार हुआ—आदि बातो के सम्बन्ध मे अनेक भ्रान्तियो का सर्व-प्रमुख कारण यह है कि प्रायः आलोचक-गण रास और रासो नामो से अभिहित काव्य-समूह पर बिना किसी पूर्वग्रह के दृष्टि नहीं डाल पाते हैं। (प्रस्तुत लेखक के विचार से नाम-साम्य होते हुए भी दो भिन्न-भिन्न काव्यरूप इन नामों से अभिहित हुए है जिनमे से एक गीत-नृत्य-परक है और दूसरा छन्द-वैविध्य-परक।)

(ये दोनो काव्यरूप अपभ्रंश-काल से इसी प्रकार अलग-अलग मिलने लगते है। इन दोनों का साहित्य भी अलग-अलग अत्यन्त समृद्ध रहा है।) सामान्यतः यह कहा जाता है कि गीत-नृत्य-परकरूप ही रास-रासो का प्रारम्भ मे एक मात्र या कम से कम प्रमुख रूप रहा है, किन्तु यह एक भ्रामक कथन है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि इसका सूत्रपात जैन महात्माओ और कवियो द्वारा हुआ, यह कथन भी उतना ही भ्रामक है, जितना प्रथम। पुनः इसी प्रकार, यह कहा जाता है कि इस काव्य-रूप का प्रारम्भ पश्चिमी राजस्थान और गुजरात मे हुआ और इसका विकास भी बहुत समय तक उसी भूभाग तक सीमित रहा; किन्तु यह कथन भी उसी प्रकार भ्रामक है जिस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय हैं। आगे आने वाले परिचयात्मक विवेचन से इन कथनों का निराकरण हो जावेगा।

प्रथम अर्थात् गीत-नृत्य-परक रास परंपरा मे सैकड़ो रचनायें बताई जाती हैं। अभी तक उनके जो नाम मिले हैं, उनकी संख्या भी सौ से ऊपर ही होगी। और ये समस्त रचनाएँ प्रायः एक ही ढंग की हैं। ऐसी दशा मे संक्षेप मे और परंपरा की आरम्भिक दो शतियों—सं० १२०० से १४०० वि० तक—की ही प्रमुख रचनाओ का उल्लेख करना यथेष्ट होगा, उसी से उसका पर्याप्त परिचय मिल जावेगा। शुद्ध साहित्यिक परंपरा वास्तव मे दूसरी है। उसका विवरण अपेक्षाकृत अधिक पूर्णता के साथ दिया जावेगा और स० ११०० से १९०० वि० तक की उसकी प्रायः सभी महत्वपूर्ण कृतियो को उस विवरण में सम्मिलित किया जावेगा।

गीत-नृत्य-परक रास-परम्परा

(१) **उपदेश रसायन**—इस परंपरा की सबसे प्राचीन प्राप्त रचना 'उपदेश रसायन' है, जिसके रचयिता श्री जिनदत्त सूरि हैं। इसमे रचना-काल नहीं दिया हुआ है। किन्तु ग्रन्थकार की एक अन्य रचना 'कालस्वरूप कुलक' है, जिसकी रचना-तिथि स० १२०० वि० के कुछ ही बाद

होगी, जैसा कि उसके एक छन्द से प्रकट है[१], इसलिए इस रचना का भी समय सं० १२०० के लगभग माना जा सकता है। यह रचना अपभ्रंश में है। इसका विषय धर्मोपदेश है। प्रयुक्त छन्द चउपई है। रचना ३२ छन्दों में समाप्त हुई है। यद्यपि इसमें रास या रासो नाम नहीं आया है, किन्तु इसके टीकाकार जिनपाल उपाध्याय ने टीका के प्रारम्भ में ही इसे रासक माना है और लिखा है कि यह पद्धटिका-बद्ध काव्य सभी रागों में गाया जाता है।[२] रचना में इसे रसायन कहा गया है। सम्भवतः इसे प्रस्तुत करने के लिए ही इसके अन्त में ताला और लउडा (लकुटा) रासों का उल्लेख हुआ है, ताला रास से रात्रि में और लउडा रास से दिन में।[३]

(२) **भरतेश्वर बाहुबलीरास**—इसके रचयिता शालिभद्र सूरि हैं, जिन्होंने इसकी रचना सं० १२४१ में की।[४] इसमें भगवान ऋषभदेव के दो पुत्रों भरतेश्वर और बाहुबली के बीच राज्य के लिए हुए संघर्ष की कथा है। यह रचना २०३ छन्दों में समाप्त हुई है। इसमें कुछ छन्द-वैविध्य है किन्तु फिर भी यह रचना गेय परंपरा की प्रतीत होती है। वीर रस का परिपाक इसमें अच्छा हुआ है।

(३) **बुद्धिरास**—यह रचना भी उन्हीं शालिभद्र सूरि की है जिनकी उपर्युक्त भरतेश्वर बाहुबली रास है। इसमें रचना-सम्वत नहीं दिया हुआ है। किन्तु यह अनुमान सुगमता से किया जा सकता है कि रचना 'भरतेश्वर बाहुबली रास' के रचना-काल सं० १२४१ के लगभग होगी। इसका विषय 'उपदेश रसायन' की भांति धर्मोपदेश है। यह रचना ६३ छन्दों में समाप्त हुई है। यह रचना भी 'उपदेश रसायन' की भाँति गाई जाती रही होगी, ऐसा प्रतीत होता है।

(४) **जीवदया रास**—इसकी रचना आसगु ने सं० १२५७ में की थी[५]। इसका विषय नाम से ही स्पष्ट है : वह है दया-धर्मोपदेश। इसकी भाषा शैली में काव्यात्मक दृष्टिकोण का अभाव प्रतीत होता है।

(५) **चंदन बाला रास**—इसके रचयिता भी वही आसगु है।[६] रचना-काल इस कृति में नहीं दिया हुआ है, किंतु यह सुगमता से अनुमान किया जा सकता है कि यह रचना भी ग्रंथकार की उक्त अन्य रचना 'जीवदया रास' के आसपास अर्थात् सं० १२५० के लगभग रची गई होगी। यह जालौर में रची गई थी। इसमें लेखक उद्देश्य चंदनबाला की धार्मिक कथा कहना है[७] इसमें प्रयुक्त छंद चउपई तथा दोहा हैं। यह रचना ३५ छंदों में समाप्त हुई है।

(६) **जंबूस्वामी रासा**—यह रचना श्री धर्मसूरि ने सं० १२६६ में की थी।[८] इसका विषय है जंबू स्वामी का चरित्र तथा गुण-वर्णन।[९]

(७) **रेवंत गिरि रासु**—यह कृति श्री विजय सेन सूरि की है। रचना-काल सं० १२८८

१ छन्द ३, अपभ्रंश काव्य त्रयी संस्करण, गायकवाड, ओरियंटल सीरीज, बड़ौदा।
२ वही, टीका, छन्द २—४।
३ वही, छन्द ३६।
४ भरतेश्वर बाहुबली रास, छन्द २०३, अपभ्रंश काव्यत्रयी, गायकवाड ओरियंटल सीरीज, बड़ौदा।
५ 'गुजराती साहित्यना स्वरूपो' : प्रो० मंजूलाल मजमुदार लिखित, पृ० ८१९।
६ 'राजस्थान भारती' भाग ३, अंक ३-४, पृ० १०६-११२, श्री अगरचंद नाहटा द्वारा संपादित पाठ।
७ 'सम्मेलन-पत्रिका', भाग ३५, संख्या ७-९, पृ० २३१।
८ देखिए 'हिन्दी जैन साहित्य-नाथूराम प्रेमी, पृ० २५।
९ वही।

के लगभग माना गया है।[1] इसकी रचना सौराष्ट्र मे हुई।[2] इसमें गिरनार के जैन मन्दिरो के जीर्णोद्धार की कथा है। यह रचना ७२ छंदो मे समाप्त हुई है।

(८) नेमि जिणंद रासो (आबू रास)—यह पाल्हण द्वारा सं० १२८९ मे रची गई थी।[3] इसका उद्देश्य भी धार्मिक है। यह ५४ छंदो मे समाप्त हुई है।

(९) गय सुकुमाल रास—यह कृति देल्हण की है। इसका रचना-काल सं० १३०० के लगभग अनुमान किया गया है।[4] इसका उद्देश्य गयसुकुमाल का धार्मिक चरित्र-वर्णन है। यह कुल ३४ छदो की है।

(१०) सप्त क्षेत्रिरासु—इसके लेखक का नाम अज्ञात है। यह रचना स० १३२७ वि० में हुई थी।[5] इसमे सप्त क्षेत्रो—जिन मंदिर, जिन प्रतिमा, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका की उपासना का वर्णन है। यह रचना ११९ छंदो मे समाप्त हुई है।

(११) पेथड रास—इसके लेखक मडलिक हैं। इसका रचना-काल सं० १३६० के लगभग माना गया है।[6] इसमे संघपति पेथड़ का चरित्र वर्णित हुआ है। नृत्य के साथ गाए जाने के लिए इसकी रचना की गई है :—

रास रमेउजिण भुवणि ताल मेलि ठवि पाउ ॥३॥[7]

यह रचना ६५ छदो में समाप्त हुई है।

(१२) कच्छूलि रास—लेखक का नाम अज्ञात है। इसका समय सं० १३६३ वि० है।[8] इसका उद्देश्य भी धार्मिक है। इसमे एक जैन तीर्थ कच्छूलि ग्राम का वर्णन है। इस रचना में कुल ३५ छंद है।

(१३) समरा रासु—इसके रचयिता श्री अंबदेव सूरि हैं, जिन्होने इसकी रचना स० १३७१ के बाद की होगी, क्योंकि इसमे वणित घटना की तिथि इस प्रकार दी हुई है :

संवच्छरि इक्कहत्तरए थापिउ रिसह जिणिंदो ॥[9]

इसमे संघपति समरा का धार्मिक चरित्र वर्णित हुआ है। यह रचना कुल ११० छंदो में समाप्त हुई है।

(१४) बीसलदेव रास—इसकी रचना नरपति नाल्ह ने की थी। इसका रचना-काल विवाद का विषय रहा है। राजस्थान के कुछ विद्वानों का मत है कि 'बीसलदेव रास' की भाषा सोलहवीं शताब्दी की है, और उन्होने यह भी सुझाव दिया है कि इसका रचयिता नरपति नाम का गुजरात

[1] 'जैन साहित्य का इतिहास'—नाथूराम प्रेमी, पृ० २६।

[2] 'रेवंत गिरि रासु' प्राचीन गुर्जर-काव्य संग्रह भाग १ (गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज) में संपादित संस्करण, पृ० १।

[3] राजस्थानी, भाग ३, अंक १ पृ० ८३-८८।

[4] श्री अगर चंद नाहटा, राजस्थान भारती, भाग ३, अंक २, पृ० ८७।

[5] 'सप्त क्षेत्रि रासु', छंद ११८, प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, भाग १, गायकवाड़ ओरएंटल सीरीज।

[6] 'इतिहास नी केडी', श्री भोगीलाल सांडेसरा, पृ० १९९।

[7] 'पेथडरास', छंद ३, प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह भाग१, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज, बड़ौदा।

[8] वही, पृ० ६२।

[9] 'समरासु', प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, भाग १, उपर्युक्त, पृ० ३७।

का एक कवि है, जिसने सं० १५४५ तथा १५६० में दो अन्य ग्रंथों की रचना की है।[1] इस प्रसंग में श्री मोतीलाल मनोरिया ने नरपति की एक रचना से सात स्थलों पर की कुछ पंक्तियाँ देते हुए उनकी समानांतर पंक्तियाँ 'बीसलदेव रास' से उद्धृत की हैं।[2]

जहाँ तक भाषा के स्वरूप का प्रश्न है, इन विद्वानों ने रचना के नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के संस्करण वाले पाठ को लेकर ऐसा कहा है। सभा का पाठ सबसे अधिक प्रक्षिप्त है—उसमें मूल के निर्धारित १२८ छन्दों के स्थान पर ३१४ छन्द हैं, और मूल के १२८ छन्दों का पाठ भी उसमें बहुत बदला हुआ है। उसका जो पाठ अब निर्धारित हुआ है[3], उसको ध्यान में रखते हुए यदि देखा जावे, तो भाषा इतनी आधुनिक नहीं लगती है। सं० १४०० के लगभग की प्रमाणित राजस्थानी की अन्य रचनाओं से यदि इस संस्करण की भाषा का मिलान किया जावे[4], तो यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि 'बीसलदेव रास' की भाषा सं० १४०० के आस-पास की ही है।

जहाँ तक गुजरात के नरपति और 'बीसलदेव रास' के रचयिता नरपति नाल्ह के एक होने का प्रश्न है, यह नहीं कहा गया है कि गुजरात के नरपति ने भी अपने को कहीं नाल्ह कहा है, 'बीसलदेव रास' के रचयिता ने तो अपने को अनेक स्थलों पर नाल्ह कहा है। जो पंक्तियाँ तुलना के लिए दोनों कवियों से दी गई हैं, उनमें से चार तो निश्चित रूप से बीसलदेव रास' के प्रक्षिप्त छन्दों की हैं।[5] शेष तीन में जो साम्य है वह साधारण है, उस प्रकार और उतना साम्य देखा जावे तो मध्य युग के किन्हीं भी दो कवियों में मिल सकता है। इसके अतिरिक्त रचना काल के ७५ या १०० वर्षों के भीतर ही किसी भी रचना की इतनी विभिन्न पाठों की प्रतियाँ नहीं मिलतीं जितनी कि सं० १६३३ और सं० १६६९ की रचना की दो तिथियुक्त प्रतियाँ तथा प्रायः उसी समय की अन्य तिथि-हीन प्रतियाँ हैं।[6] अतः सं० १६०० के लगभग की रचना-तिथि 'बीसलदेव रास' के लिए मान्य नहीं हो सकती है।

इस रचना का विषय बीसलदेव की प्रवास-कथा है। अजमेर के चहुवान बीसलदेव का विवाह भोज परमार की कन्या राजमती से होता है। इस विवाह में उसे अनेक प्रान्त दायज में तथा अतुल संपत्ति विदाई में मिलती है। इस नव प्राप्त वैभव के पृष्ठभूमि में जब वह अपनी संपदा पर विचार करता है, तो उसे अभिमान होता है, और वह गर्वपूर्वक अपनी नवविवाहिता राजमती से कहता है कि उसके समान दूसरा राजा नहीं है। राजमती कहती है कि उसे गर्व नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसके समान अनेक राजा हैं: एक तो उड़ीसा का ही राजा है, जिसके राज्य में खानों से उसी प्रकार हीरा निकलता है जिस प्रकार बीसलदेव के राज्य में साँभर की झील में से नमक निकलता है। यह बात बीसलदेव को लग जाती है, और बीसलदेव उड़ीसा चला जाता है और वहाँ के राजा की सेवा में लग जाता है। बारह वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, राजमती अपने पुरोहित को उसे लौटा लाने के लिए उड़ीसा भेजती है। उड़ीसा पहुँच कर पुरोहित बीसलदेव से मिलता है, और

[1] श्री अगरचन्द नाहटा, राजस्थानी, जनवरी १९४०, पृ० २१ तथा श्री मोतीलाल मेनारिया 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पृ० ८७-८८।

[2] श्री मोतीलाल मेनारिया, 'राजस्थानी भाषा और साहित्य,' पृ० ८८-८९।

[3] दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा संपादित और हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पाठ।

[4] दे० 'पुरानी राजस्थानी' एल० पी० टेसिटरी द्वारा लिखित और श्री नामवरसिंह द्वारा अनूदित ना० प्र० सभा, काशी द्वारा प्रकाशित।

[5] दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा संपादित और हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पाठ।

[6] दे० वहीं, भूमिका।

उसे राजमती का संदेश देता है। उड़ीसा के राजा को जब यह ज्ञात होता है कि वह अजमेर का चौहान शासक है, उसको प्रचुर रत्न-राशि देकर विदा करता है। बीसलदेव अजमेर लौट कर राजमती से मिलता है। इस रचना में शृंगार के अतिरिक्त कोई अन्य रस नहीं है। इसमें विप्रलंभ और संयोग दोनों प्रकारों के शृंगार का अच्छा परिपाक हुआ है। नायिका ने अनेक स्थलों पर पति को 'मूरख नाह' और 'निगुणा नाह' कहा है। इसे देखकर कुछ लोगों को इस रचना में अशिष्टता का आभास मिला है। किन्तु इन सम्बोधनों के पीछे जो आत्मीयता की प्रेरणा है, जो सहज प्रेम का आग्रह है, वह तो इस काव्य की विशेषता है। ठीक इसी प्रकार के सम्बोधन 'संदेश रासक' में उसकी प्रोषित पतिका ने भी किए हैं।

इस रचना में आदि से अन्त तक एक ही छन्द का निर्वाह हुआ है। सम्पूर्ण रचना गेय है, यह स्वतः प्रकट है। रचना के प्रारम्भ में ही केदारा राग के अन्तर्गत इसके गीतिबद्ध होने का निर्देश किया गया है। यह रचना नृत्य-गीत के साथ प्रस्तुत भी की जाती रही है, इसका प्रमाण हमें इसके एक प्रक्षिप्त छन्द में मिलता है।[1]

यद्यपि इसमें एक राजा की कथा है, यह रचना किसी राजा के आश्रय में रची गई नहीं हो सकती है। राजाओं के आश्रय में रची गई रचनाओं में उनकी तथा उनके पूर्व-पुरुषों की विजय-गाथायें अनिवार्य रूप से होती हैं, जो इसमें एकदम नहीं हैं।

यह कहना अनावश्यक होगा कि गीत-नृत्य-परक रासो-परंपरा का यह जैनेतर अपवाद अत्यन्त मूल्यवान है, इसीलिए इसका परिचय कुछ विस्तार से दिया गया है। इस परंपरा में हमें अभी अन्य जैनेतर रचनाएँ नहीं मिली हैं, किन्तु यह रचना उनके निश्चित अस्तित्व की सूचना देती है। ऐसा लगता है कि जैन कृतियों की भाँति वे सुरक्षित नहीं रह पाईं, इसलिए वे धीरे-धीरे काल-कवलित हो गईं।

छन्द-वैविध्य-परक रासो-परम्परा

(१) **मुंज रास**—आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण 'सिद्ध हैम' (रचना सं० ११९० वि०) में मुंज-विषयक दो दोहे उदाहरण में उद्धृत किए हैं। मेरुतुंग ने अपने 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' (रचना सं० १३६१ वि०) में 'मुंजराजप्रबन्ध' शीर्षक देते हुए मुंज की कथा दी है, और उसके विभिन्न प्रसंगों में दोहे, सोरठे, गाथाएँ, तथा अन्य प्रकार के अनेक छन्द उद्धृत किए हैं[2]। 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में एक प्राचीन जैन-प्रबन्ध-संग्रह में संकलित 'मुंजराज-प्रबन्ध' दिया गया है जिसका वृत्त प्रायः 'प्रबन्ध-चिंतामणि' वाले वृत्त जैसा ही है। इसके उद्धृत छन्द भी दो एक को छोड़कर उन्हीं में से हैं जो 'प्रबन्ध-चिंतामणि' में उद्धृत हैं।[3] इससे यह प्रमाणित होता है कि सं० ११९७—'सिद्धहैम' के रचना-काल—के पूर्व ही मुंजराज के चरित्र को लेकर अपभ्रंश में लिखा गया कोई काव्य था। असम्भव नहीं कि यह छन्द-वैविध्य-परक रासक-परम्परा की रचना रही हो और इसका नाम 'मुंजरास' या 'मुंजरासक' रहा हो। इसके रचयिता के सम्बन्ध में हमें कोई ज्ञान नहीं है; न इसका निश्चित रचना-काल ही हमें ज्ञात है। वाक्पति मुंजराज का समय सं० १०३१–१०५२ वि० माना गया है।[4] और 'सिद्धहैम' की तिथि सं० ११९७ वि० है। 'मुंजरास' का समय दोनों के बीच में कहीं होना चाहिए।

मंजुराज विषयक उपर्युक्त जैन प्रबंधों में आई हुई कथा संक्षेप में इस प्रकार है। मुंज का कर्ना-

[1] नागरी प्रचारिणी सभा, काशी संस्करण, छन्द ११।

[2] देखिए 'प्रबन्ध चिंतामणि', सिंघी जैन ग्रन्थ माला, पृ० २१-२५।

[3] देखिए 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह', सिंघी जैन ग्रन्थमाला, पृ० १३-१५।

[4] हेमचन्द्रराय: 'डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् इंडिया,' पृ० ९२७।

टक के राजा तैलप से घोर वैमनस्य था। यद्यपि मुंज का महामात्य रुद्रादित्य उसे रोकता रहा, फिर भी मुंज ने तैलप के बल की पूरी जानकारी किए बिना ही उस पर आक्रमण कर दिया। मुंज हार गया और बंदी हुआ। बंदीगृह में तैलप की विधवा बहिन मृणालवती से उसका प्रेम हो गया। मुंज के शुभेच्छुओं ने उसे बंदीगृह से निकाल भगाने की एक योजना बनाई। मुंज ने उस योजना की बात बताते हुए मृणालवती से भी भाग निकलने के लिए कहा। मृणालवती उसके साथ नहीं जाना चाहती थी, और यह भी नहीं चाहती थी कि मुंज से उसको अलग होना पड़े। इसलिए उसने इस षड्यन्त्र की सूचना अपने भाई तैलप को दे दी। तैलप ने षड्यन्त्र समाप्त कर मुंज का बड़ा अपमान किया—उससे घर घर भीख मँगवाई—और तदनंतर उसे हाथी से कुचलवा कर मरवा डाला।

यह स्पष्ट है कि यह रचना मुंज ही नहीं मुंज के किसी वंशज की प्रेरणा से भी न की गई होगी, क्योंकि अपने एक अत्यन्त सम्मान्य पूर्वज का इस प्रकार पराजय और अपमान पूर्वक विनाश कोई भी वंशज प्रबन्धबद्ध नहीं करा सकता था। यह सम्पूर्ण रचना लोकरंजन तथा लोकशिक्षण के लिए निर्मित की गई प्रतीत होती है।

(२) संदेश रासक—इसका रचयिता अब्दुल रहमान है, जिसने अपना परिचय ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ही देते हुए बताया है कि पश्चिम के पूर्व-प्रसिद्ध म्लेच्छ देश में तंतवायु मीरसेन हुआ; यह उसी का तनय था जो प्राकृत काव्य तथा गीत विषय मे प्रसिद्ध था।[1] 'संदेश रासक' ऐसे ही सुकवि की रचना है।

इसकी रचना तिथि-ज्ञात नहीं है। किन्तु इसके सम्पादक मुनि जिनविजय जी के अनुसार इसका रचना काल शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी के आक्रमण के कुछ ही पूर्व होना चाहिए, कारण यह है कि मूलस्थान-मुलतान-का इस रचना मे एक समृद्ध हिन्दू तीर्थ रूप में उल्लेख हुआ है। शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण के अनंतर मुल्तान की वह समृद्धि सदैव के लिए मिट गई होगी। भाषा की दृष्टि से भी वह उनके अनुसार उसी समय की प्रतीत होती है।[2]

इसका विषय विप्रलम्भ शृंगार है जिसका अन्त मिलन मे होता है। विजय नगर (जैसलमेर) की एक विरहिणी अपने पति के पास सन्देश भेजना चाहती है। उसे एक पथिक आता हुआ दिखाई पड़ता है। उस पथिक को रोककर वह अपने पति के लिए सन्देश देती है। ज्योंही पथिक चलने को होता है वह कुछ और भी कहने लगती है। इसी प्रकार कई बार होता है, यहाँ तक कि अन्त मे जब पथिक चलने को उद्यत होता है, और पूछता है कि उसे और तो कुछ नहीं कहना है, वह रो पड़ती है। पथिक सान्त्वना देते हुए उसे पूछता है कि उसका पति किस ऋतु मे प्रवास के लिए गया था; वह कहती है, ग्रीष्म ऋतु मे, और तदनंतर वह छः ऋतुओं के अपने विरह-जनित कष्टों का वर्णन करती है। यह सब समाप्त होने पर जब पथिक चल पड़ता है, विरहिणी का पति लौटता हुआ दिखाई पड़ता है, और दोनों मिल जाते हैं।

रचना केवल २२३ छन्दों मे समाप्त हुई है, किन्तु इतने में ही २२ प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसी बहुरूप-निबद्ध रासकत्व के बारे में कवि ने रचना मे एक स्थान पर संकेत किया है :—

कहव ठाइ चउवेइहिं वेउ पयासियइ।
कह बहुरूवि णिबद्धउ रासउ भासियइ॥ ४३॥

[1] 'सन्देश रासक', सम्पादक मुनि जिनविजय, भारतीय विद्या भवन, बंबई, छंद ३-४।
[2] 'सन्देश रासक', उपर्युक्त, प्रस्तावना, पृष्ठ ११-१५।

(३) **हम्मीर रासो**–इस नाम की कोई रचना अभी तक नही मिली है, किन्तु 'प्राकृत पैंगल' के आठ छन्दो में हम्मीर का स्पष्ट नामाल्लेख होता है।[१] असम्भव नही कि उसमे और भी कुछ छन्द ऐसे हो जो हम्मीर के चरित्र से सम्बन्धित हों यद्यपि उनमे हम्मीर का नाम न आया हो। ये छन्द भी कम से कम आठ विभिन्न वृत्तों (छन्दो) के उदाहरण मे आते हैं। अतः यह प्रकट है कि विविध छन्दो से विभूषित हम्मीर के जीवन से सम्बन्धित कोई समादृत कृति उस समय थी जब 'प्राकृत पैंगल' की रचना हुई, और असम्भव नहीं कि यह कृति छन्द-वैविध्य-परक रासो-परंपरा की ही रही हो।

इस कृति का रचना-काल क्या होगा, यह विचारणीय है। हम्मीर का समय सं० १२९५ से सं० १३५८ है, और 'प्राकृत पैंगल' के ये छन्द प्रायः हम्मीर की प्रशस्तियुक्त हैं, इसलिए ये उसके जीवन-काल मे ही रचे गए होगे ऐसा सामान्यतः समझा जाता है, किंतु यह असंभव नही है कि इनकी रचना हम्मीर के कुछ बाद हुई हो।

इन छन्दों का अथवा इनके स्रोत 'हम्मीर रासो' का रचयिता कौन रहा होगा, यह छन्दों से ज्ञात नही होता है। हमारे साहित्य के इतिहासो मे शार्ङ्गधर द्वारा रचित एक 'हम्मीर रासो' माना जाता रहा है। शार्ङ्गधर के पितामह राघव, जो पीछे 'छिताई वार्त्ता' तथा 'पद्मावत' आदि अनेक अलाउद्दीन सेसंबन्धित काव्यो मे विवध प्रकार से आए है, हम्मीर देव के आश्रय मे रहते थे, और उनका एकाध पद्य 'शार्ङ्गधर पद्धति' में संकलित है इसलिए यद्यपि यह असंभव नही कि शार्ङ्गधर ने 'हम्मीर रासो' नामक किसी कृति की रचना की हो किन्तु इसके कोई निश्चित प्रमाण नही है।

इसके दो छन्दो मे एक जज्जल आता है।[२] उसी के आधार पर श्री राहुल साकृत्यायन ने जज्जल को इन छन्दो का रचयिता माना है।[३] किन्तु इन छन्दो के अर्थ पर विचार किया जावे तो यह स्पष्ट हो जावेगा कि जज्जल इनमे हम्मीर-पक्ष के वीर योद्धा के रूप मे आया है, कवि के रूप में नहीं। अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों से भी जज्जल के हम्मीर के एक सामत होने का समर्थन होता है।[४] अतः जज्जल इन छन्दो का रचयिता नहीं है।

हम्मीर सम्बन्धी ये समस्त छन्द वीर रस के है, और काव्य की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

(४) **बुद्धि रासो**–इसका रचयिता जल्ह नामक कवि है। रचना अप्रकाशित है। श्री मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है कि रचना-शैली से कवि जैन प्रतीत होता है, और उन्होंने रचना से कुछ पंक्तियाँ भी उद्धृत की हैं। किन्तु इन पक्तियो मे कोई बात भाषा-शैली की दृष्टि से ऐसी नहीं मिलती जिससे रचयिता को जैन कवि माना जा सके। एक जल्ह के दो छन्द 'पुरातन प्रबंध-संग्रह' में 'जयचन्द-प्रबन्ध' मे उद्धृत हुए है। इस 'प्रबंध-सग्रह' के प्रबन्धों का समय १५ वी शती वि० माना जाता है, इसलिए यदि दोनों जल्ह एक ही हो तो असम्भव नहीं कि यह जल्ह १५ वीं शती वि० के प्रारम्भ मे हुआ हो। मेनारिया जी ने अपने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' मे लिखा है कि जल्ह का आविर्भाव-काल सं० १६२५ है।[५] पता नहीं किस आधार पर उन्होने ऐसा लिखा है।

इसका विषय एक प्रेम-कथा है, जो इस प्रकार है :—चंपावती नगरी का राजकुमार अपनी

[१] श्री चन्द्रमोहन घोष द्वारा संपादित तथा एशियाटिक सोसायटी बंगाल द्वारा १९०२ ई० में प्रकाशित संस्करण, मात्रा वृत्त के छन्द ७१, ९२, १०६, १४७, १५१, १९०, २०४, तथा वर्ण वृत्त का छन्द १८३।

[२] वही, मात्रा वृत्त, छन्द १०६, १४७।

[३] दे० 'हिन्दी काव्य धारा', पृ० ४५२।

[४] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल : जाज या जज्जल, हिन्दी अनुशीलन, पौष-चैत्र, सं० २०११, पृ० १।

[५] 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ० १२१।

राजधानी से आकर कुछ दिनों के लिए जलधितरंगिनी के साथ समुद्र के किसी स्थान में रहता है और तदनंतर एक मास मे लौटने का वचन देकर कहीं चला जाता है। अवधि के बाद भी कई मास बीत जाते है, किन्तु वह लौटता नहीं, तब विरहिणी जलधितरंगिनी जीवन से विरक्त हो जाती है, और अपने आभूषणादि उतार फेकती है। इस पर उसकी माँ उसके समक्ष संसार के विलास-वैभव तथा शारीरिक सुखों की महत्ता प्रतिपादन करने लगती है। इतने ही मे राजकुमार वापस आ पहुँचता है, और दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है, जिसके अनंतर दोनों आनन्द और उत्साह के साथ जीवन व्यतीत करने लगते हैं।

इस कथा को पढ़कर एक ओर 'सन्देश रासक' तथा दूसरी ओर हिंदी की प्रेम-कथाओं का स्मरण आप से आप हो जाता है। यदि यह रचना १५वीं शती वि० के प्रारम्भ की प्रमाणित हो, तो निस्संदेह इसका स्थान हमारे साहित्य के इतिहास मे अत्यन्त महत्व का होगा।

इसमे दोहा, छप्पय, गाहा, पाधड़ी, मोतीदाम, मुडिल्ल आदि छन्द हैं, और रचना कुल १४० छन्दो मे समाप्त हुई है।[1]

(५) **परमाल रासो**–सं० १९७६ में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से यह रचना प्रकाशित हुई है। इसके संपादक डॉ० श्याम सुन्दरदास ने भूमिका में लिखा है कि "जिन प्रतियों के आधार पर यह संस्करण संपादित हुआ है, उनमे यह नाम नहीं है, उनमें इसको चंद कृत 'पृथ्वीराज रासो' का महोबा खण्ड लिखा हुआ है, किंतु वास्तव मे यह 'पृथ्वीराज रासो' का महोबा खण्ड नहीं है, वरन् उसमे वर्णित घटनाओ को लेकर मुख्यतः 'पृथ्वीराज रासो' मे दिए हुए एक वर्णन के आधार पर लिखा हुआ एक स्वतन्त्र ग्रंथ है। यद्यपि इस ग्रंथ का नाम मूल प्रतियो में 'पृथ्वीराज रासो' दिया हुआ है, पर इस नाम से इसे प्रकाशित करना लोगों को भ्रम मे डालना होता, अतएव मैंने इसे 'परमाल रासो' यह नाम देने का साहस किया है।"[2]

किन्तु वास्तविकता यह है कि 'पृथ्वीराज रासो' के नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करण में दिए हुए महोबा खण्ड का यह एक परिवर्धित रूपान्तर मात्र है, स्वतन्त्र रचना नहीं। 'पृथ्वीराज रासो' मे सम्मिलित महोबा खण्ड भी प्रामाणिक रचना नहीं है, क्योंकि वह अलग से ही मिलता है, और 'पृथ्वीराज रासो' की किसी पूर्ण प्रति मे नहीं मिलता है। यह सिद्ध करने के लिए कि 'रासो' के अन्त मे प्रकाशित महोबा खण्ड का यह परिवर्धित रूपान्तर मात्र है, यही देखना पर्याप्त होगा कि पूर्ववर्ती की लगभग समस्त पंक्तियाँ कुछ मिलाई हुई पंक्तियो के बीच इसमें भी मिल जाती हैं। इसका रचना-काल क्या होगा, यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसकी जो प्रतियाँ मिली हैं, वे १९वीं शताब्दी वि० की हैं। आश्चर्य नहीं कि महोबा खण्ड का प्रस्तुत रूप १६वीं १७वी शताब्दी विक्रमीय का हो। इससे अधिक इस प्रक्षेप के प्रक्षेप पर विचार करना अनावश्यक होगा।

(६) **राउ जेतसी रो रासो**—यह रचना कुछ ही दिन हुए प्रकाशित हुई है। इसका रचयिता अज्ञात है।[3] रचना में रचना-काल भी नहीं दिया हुआ है। वर्णित घटना सं० १६०० के लगभग की है, और वर्णन सजीव है, इसलिए अनुमान किया जाता है कि रचना बहुत कुछ समसामयिक होगी। इसमे बीकानेर के महाराजा राव जैतसी (सं० १५८३-१५९८ वि०) तथा हुमायूँ के भाई कामराँ के उस युद्ध का वर्णन हुआ है जिसमे कामराँ को पराजित होकर लौटना पड़ा था।

[1] 'राजस्थान में हिंदी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज', भाग १, पृ० ७६।

[2] 'परमाल रासो', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, भूमिका, पृ० ३-४।

[3] 'राजस्थान भारती', सं० नरोत्तमदास स्वामी, भाग २, अंक २, पृ० ७०।

संपूर्ण रचना में वीर रस का परिपाक हुआ है। छन्द दोहा, मोतीदाम तथा छप्पय हैं। कुल ९० छन्दों में ही रचना समाप्त हुई है। भाषा डिंगल है।

(७) **विजय पाल रासो**—इसका रचयिता नल्हसिंह भाट है। लेखक का प्रामाणिक इतिवृत्त प्राप्त नहीं है। रचना मे कहा गया है कि लेखक विजयगढ़ (करौली राज्य) के यदुवंशी शासक विजयपाल का आश्रित था,[1] इसलिए वह सं० ११०० के आसपास की होनी चाहिए। किन्तु यह रचना सं० १६०० के बाद की ही हो सकती है क्योंकि इसमे तोपो तक का उल्लेख हुआ है। इसका विषय विजयपाल की दिग्विजय की कथा है। इसका मुख्य रस वीर है। रचना पूरी प्राप्त नहीं हुई है। इसके केवल ४२ छन्द प्राप्त हुए हैं।[2]

(८) **राम रासो**—इसके रचयिता माधवदास चारण हैं। इसका रचना-काल स० १६७५ है।[3] इसका विषय राम का चरित्र तथा गुण वर्णन है। इसमें विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। बीच-बीच में गीत भी हैं। ग्रन्थ में कुल लगभग १६०० छन्द हैं।

(९) **राणा रासो**—यह दयाल कवि की रचना है, जिनका पूरा नाम दयाराम कहा जाता है। रचना में समय नहीं दिया हुआ है। किन्तु उसकी एक प्रति स० १९४४ की मिली है, जो कवि की सं० १६७५ की हस्तलिखित प्रति की प्रतिलिपि बताई गई है।[4] इसलिए इस ग्रंथ की रचना सं० १६७५ में या उसके कुछ ही पूर्व हुई होगी। सं० १९४४ की प्रति में महाराजा जयसिंह (सं० १७३७-१७५५) तक का वर्णन है। संभव है कि ये वर्णन बाद में सं० १६७५ की प्रति मे हाशिए में लिखकर किसी के द्वारा बढ़ाए गए हो और प्रतिलिपि में उतार लिए गए हो। इसमें अन्त मे एक छन्द है जो इस प्रकार है :—

सेवे सबे करंन को रान मान के पाइ।
चिंता उर उपजे नहीं दरसन ही दुख जाय ॥[5]

जिससे यह प्रमाणित है कि कवि कर्णसिंह का आश्रित था।

इस रासो में सीसौदिया वंश का इतिहास दिया गया है और उस वंश के मुख्य राजाओ तथा कुंभा, उदय सिंह, प्रतापसिंह तथा अमर सिंह के युद्धादि का वर्णन विस्तार से किया गया है। इसमें रसावला, विराज, साटक-शार्दूल विक्रीड़ित-आदि विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसकी कुल छन्द-संख्या ८७५ है।

(१०) **रतन रासो**—इसके रचयिता कुंभकर्ण हैं। इसका रचना-काल सं० १६७५ तथा १६८१ के बीच अनुमान किया जाता है।[6] इसमें रतलाम के महाराजा रतनसिंह का चरित्र वर्णित है। रचना साधारण प्रतीत होती है। इसमे विविध प्रकार के छन्दो का प्रयोग हुआ है।

(११) **कायम रासो**—इसके रचयिता न्यामत खाँ जान कवि हैं[7], जो स्वरचित कथा साहित्य के लिए हमारे साहित्य के इतिहास मे प्रसिद्ध हैं। यह रचना उन्होंने सं० १६९१ मे की थी :—

[1] 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', मोती लाल मेनारिया', पृ० ८३।

[2] दे० मुंशी देवीप्रसाद द्वारा मुसिफ सपादित : 'कविरत्न माला' भाग १।

[3] 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का खोज विवरण', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९०१, संख्या ८०।

[4] 'राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज', भाग १, पृ० ११९।

[5] वही, पृ० ११९।

[6] दे० 'राजस्थान भारती'; भाग ३, अङ्क ३-४, पृ० ८३ तथा 'राजस्थान में हिंदी हस्तलिखित ग्रथों की खोज', भाग ४, पृ० २२३।

[7] 'कायम रासो', राजस्थान पुरातत्व मंदिर, जयपुर।

सोरह से एक्यानवे ग्रंथ कियो इहु जान।

किन्तु इस तिथि के बाद की सं० १७१० तक की कुछ घटनाओं का उल्लेख इसमे हुआ है। इसके बाद भी वे बहुत दिनों तक जीवित रहे थे। ऐसा लगता है कि अपने जीवन-काल में ही बाद की घटनाओं का भी उन्होंने इसमे समावेश कर दिया।

इसका विषय कायम खानी वंश का इतिहास है, जिसमे अलफ खॉ का चरित्र विस्तृत रूप से दिया हुआ है। कायम खाँ उनके वह पूर्वपुरुष जिनके नाम पर उनका वंश कायम खानी कहाने लगा। ऐतिहासिक दृष्टि से यह रचना महत्व की है। इसमे इतिवृत्त की प्रधानता है।

(१२) **शत्रुसाल रासो**—इसके रचयिता बूँदी के राव डूँगरसी हैं, जिन्होंने इसे सं० १७१० के लगभग रचा होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसमे बूँदी के राव शत्रुसाल का इतिवृत्त है जो वीर रस प्रधान है। इसकी कुल छन्द-संख्या ५०० के लगभग है। कहा गया है कि इसकी भाषा-शैली 'पृथ्वीराज रासो' का अनुकरण करती है।[1]

(१३) **मांकण रासो**—यह रचना कान्ह कीर्त्तिसुन्दर की है और सं० १७५७ की रची हुई है।[2] यह विनोदात्मक है, और अपने विषय-वैशिष्ट्य के कारण उल्लेखनीय है। कुल केवल ३९ छंद इस रचना में है, किन्तु यह पॉच विविध छन्दो मे रची गई है।

(१४) **सगत सिंह रासो**—इसके रचयिता गिरधर चारण हैं। इसका रचना-काल अज्ञात है। श्री मोतीलाल मेनारिया के अनुसार इसका रचना-काल सं० १७२० के लगभग है।[3] किन्तु श्री अगर चन्द नाहटा के अनुसार यह सं० १७५५ के बाद की रचना है।[4] इसमें राणा प्रताप सिंह के भाई शक्तसिंह तथा उनके वंशजो का चरित्र है। इसका मुख्य रस वीर है। यह रचना भी विविध छन्दो मे की गई है। इसकी कुल छंद-संख्या ९४३ है।

(१५) **हम्मीर रासो**—यह रचना जोधराज की है, और सं० १७९५ की है।[5] इसमें हम्मीर का वीर चरित्र विशदता के साथ वर्णित हुआ है। हम्मीर पर एक संस्कृत रचना सं० १४६० के लगभग रचित नयचन्द्र सूरि कृत 'हम्मीर महाकाव्य' है, जो प्रायः ऐतिहासिक मानी गई है। प्रस्तुत रचना मे अधिकतर उसका आधार ग्रहण किया गया है, किन्तु अनैतिहासिक बातें भी मिला दी गई हैं। इसमें हम्मीर का जन्म सं० ११४१ में होना बताया है, और हम्मीर के आत्मघात करने के अनन्तर अलाउद्दीन के द्वारा समुद्र मे कूद कर प्राण देने का उल्लेख है, जो इतिहास-सम्मत नहीं हैं। इसका मुख्य रस वीर है, और यह विविध छन्दों मे प्रस्तुत किया गया है। इसकी छन्द-संख्या लगभग १००० है।

(१६) **खुमाण रासो**—इसके रचयिता दलपत विजय है, जो दौलत विजय भी कहे जाते हैं। यह एक प्राचीन रचना मानी जाती रही है। अनुमान किया जाता रहा है कि यह खुमाण (सं० ८००-८९० वि०) के समकालीन उनके किसी आश्रित कवि की रचना रही होगी।[6] किंतु इधर इसकी जो प्रतियॉ मिली हैं, उनमें राणा संग्रामसिंह द्वितीय (सं० १७६७-९०) तक का उल्लेख है, इसलिए यह

[1] श्री मोतीलाल मेनारिया: 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ० १५८।

[2] 'राजस्थान भारती', भाग ३, अंक ३-४, पृ० १००।

[3] श्री मोतीलाल मेनारिया : 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ० १६०।

[4] 'राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज', भाग ३, पृ० २०७।

[5] 'हम्मीर रासो', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, छन्द ९६८।

[6] डॉ० श्याम सुन्दर दास : 'हिन्दी भाषा का इतिहास', पृष्ठ २२३।

रचना अपने इस समय के रूप मे अठारहवीं शताब्दी वि० के अन्त की प्रतीत होती है।[1] अन्य साक्ष्यों की सहायता से भी दलपति विजय का समय अठारहवीं शताब्दी निश्चित किया गया है।[2]

इसका विषय मेवाड़ के सूर्य वंश का इतिवृत्त है :—

कवि दीजे कमला कला जो डण कवित जुगत्ति।
सूरजि वंस तणो सुजस वरणन करूं बिगत्ति[3] ।।४।।

इस प्रकार वंश के नाम से लिखे गए रासो के उदाहरण हमे ऊपर भी मिल चुके है—यथा: 'कायमरासा', इसलिए कुछ आश्चर्य नहीं कि 'खुमाण रासो' केवल खुमाण के चरित को लेकर नही, वरन् उनके वंश के इतिहास को लेकर लिखा गया हो।

यह ग्रन्थ विविध छन्दो मे प्रस्तुत किया गया है, और कविता की दृष्टि से भी सरस है।

(१७) रासा भगवंत सिंह का—इसके लेखक सदानन्द हैं।[4] कृति मे रचना-काल नही दिया हुआ है, किंतु इसमे स० १७९७ के एक युद्ध का वर्णन है :—

सवत सत्रह सतानवे कार्तिक मंगलवारा।
सित नौमी संग्राम भी विदित सकल संसारा ॥

इसलिए इसकी रचना इस तिथि के कुछ बाद की होनी चाहिए। इसमे भगवत सिंह खीची का चरित्र वर्णित हुआ है। इसका मुख्य रस वीर है। यद्यपि रचना केवल १०४ छन्दों की है, किंतु इसमें छन्द-वैविध्य है।

(१८) करहिया को रायसो—इसके रचयिता गुलाब कवि हैं, जिन्होंने इसकी रचना सं० १८३४ वि० में की थी।[5] इसमे करहिया के परमारों तथा भरतपुर के जवाहरसिंह के बीच सं० १८३४ मे हुए युद्ध का वर्णन है। इसका रस वीर है। यह रचना भी विविध छन्दों में प्रस्तुत की गई है।

(१९) रासा भैया बहादुर सिंह का—इसके रचयिता शिवनाथ है। इसका रचना-काल सं० १८५३ के कुछ ही बाद ज्ञात होता है, क्यों कि इसमे सं० १८५३ की एक घटना का उल्लेख है।[6] इसमें बलरामपुर के शासक भैया बहादुर सिंह का चरित्र वर्णित हुआ है। मुख्य रस वीर है। इसमें भी विविध छन्दो का प्रयोग हुआ है।

(२०) रायसो—यह उपर्युक्त शिवनाथ की एक अन्य रचना है।[7] इसमे रचना काल नही दिया हुआ है। किन्तु उपर्युक्त रचना सं० १८५३ कुछ ही बाद की है, इसलिए यह भी उसी समय के लगभग की होगी। इसमें धारा के महाराजा जसवत सिंह तथा रीवा के महाराजा अजीतसिंह का युद्ध वर्णित है। इसका मुख्य रस वीर है। इसमें भी विविध छन्दो का प्रयोग हुआ है।

(२१) हम्मीर रासो—इसके रचयिता महेश कवि हैं।[8] रचना-काल अज्ञात है। इसकी प्राप्त प्रतिलिपि सं० १८६१ की है। इसका विषय भी वही है जो जोधराज की इसी नाम की रचना का है। प्रधान रस वीर है। यह रचना विविध प्रकार के लगभग ९०० छन्दो मे समाप्त हुई है।

[1] श्री मोतीलाल मेनारिया : 'खुमाण रासो', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, स० २००९, पृ० ३५४।
[2] वही।
[3] 'राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज', भाग ३, पृ० ८२।
[4] दे० नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ५, पृ० ११४-१३१।
[5] दे० वही, भाग, १०, पृ० २०८।
[6] 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का खोज विवरण', काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९२०-२२, संख्या १८२।
[7] वही।
[8] वही, १९०१, संख्या ६१।

(२२) कलियुग रासो—यह रचना अलि रसिक गोविन्द की है।[1] इसका रचना-काल सं० १८६५ है। इसमे कलियुग का प्रभाव वर्णित है। यह रचना लगभग ७० छन्दो में समाप्त हुई है। उद्धृत अंशो मे केवल मनहरण कवित्त छन्द मिलता है। असम्भव नहीं कि पूरी रचना मनहरण कवित्त छन्द मे हो। यदि ऐसा ही हो तो यह रासो की छन्द-वैविध्य परक परम्परा की एक अन्तिम रचना प्रतीत होती है, क्योंकि इसमें छन्द-वैविध्य का आग्रह नहीं है। हो सकता है कि इस समय रासो-परम्परा की छन्द-वैविध्य सम्बन्धी आवश्यकता विस्मृत हो चुकी हो, और 'रासो' शब्द एक उत्कृष्ट काव्य मात्र का पर्याय समझा जाने लगा हो।

परिणाम

अब हम रासो काव्यधारा के विषय मे कुछ परिणाम सुगमता से निकाल सकते है :—

(१) रास तथा रासो नामों मे प्रायः कोई भेद नहीं है, दोनो नाम एक ही अर्थ मे और कभी-कभी साथ-साथ एक ही रचना मे प्रयुक्त हुए हैं। यह धारणा निराधार है कि रास कोमल भावनाओ का परिचायक रहा है और रासो युद्धादि सम्बन्धी कठोर भावों का। यदि देखा जाय तो अनेक प्रकार के विषय रास और रासो द्वारा अभिहित काव्यों के वर्ण्य बने हैं।

(२) रासो के अन्तर्गत प्रबन्ध की दो विभिन्न परंपराएँ आती हैं: एक तो गीत-नृत्य-परक है और दूसरी छन्द-वैविध्य-परक। दोनो परंपराओं को मिलाया नहीं जा सकता है।

(३) गीत-नृत्य-परक परंपरा की रचनाएँ प्रायः आकार में छोटी है, क्योंकि उन्हे गाकर सुनाने के लिए स्मरण रखना पड़ता था, जबकि छन्द-वैविध्य-परक परपरा मे रचनाएँ छोटे-बड़े सभी आकारो की हैं।

(४) गीत-नृत्य-परक परपरा का प्रचार जैन धर्मावलंबियों मे अधिक रहा है। उनके रचे हुए प्रायः समस्त रासो इसी परपरा मे है। दूसरी परंपरा का प्रचार जैनेतर समाज मे अधिक रहा है।

(५) गीत-नृत्य-परक रासो रचनाएँ प्रायः पश्चिमी राजस्थान और गुजरात मे लिखी गई, जबकि छन्द-वैविध्य-परक रासों की रचना प्रायः पूर्वीय राजस्थान तथा शेष हिंदी प्रदेश मे हुई।

(६) काव्य का दृष्टिकोण दूसरी ही परंपरा मे प्रधान रहा, प्रथम में नहीं और इसीलिए शुद्ध साहित्य की दृष्टि से दूसरी परंपरा प्रथम की अपेक्षा अधिक महत्व की है।

उद्भव

इन दोनो परंपराओं का उद्भव किस प्रकार हुआ होगा, इस पर भी हमें संक्षेप मे विचार कर लेना चाहिए।

रासक एक अति प्राचीन भारतीय नृत्य रहा है। इसको लास्य का एक भेद मानते रहे हैं। शारदातनय (सं० १२२५-१३०० वि० के लगभग) ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाव प्रकाशन' मे लिखा है कि लास्य के चार भेद होते हैं : (१) शृंखला, (२) लता, (३) पिंडी तथा (४) भेद्यक, और इनमे से लता के पुनः तीन भेद होते हैं: (१) दण्ड रासक, (२) मण्डल रासक तथा (३) नाट्य रासक।[2] संभवतः इसी 'नाट्य रासक' से उस नाम के उप रूपक की उत्पत्ति हुई होगी, क्योंकि शारदातनय ने 'नाट्य रासक' उप रूपक मे रागो के साथ उपर्युक्त शृंखला, लता, पिंडी तथा भेद्यक नृत्यों का प्रयोग भी बतलाया है।[3]

[1] 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का खोज विवरण', १९०९-११, संख्या २६३।

[2] भावप्रकाशन, गायकवाड़ औरियंटल सीरीज, बड़ौदा, पृ० २९०।

[3] वही।

ऐसा प्रतीत होता है कि यही नाट्य-रासक उप रूपक नाटकीय संकेतो और उसके कुछ अन्य तत्वों से विरहित होकर गीत-नृत्य-परक रास काव्यरूप मे ढल गया। इस परंपरा की रचनाओ में उनके गाए जाने और कभी कभी नृत्य-समन्वित होने का जो उल्लेख मिलता है, यथा 'उपदेश रसायन' मे ऊपर हमने देखा है, वह इस उद्‌भव की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

दूसरी परपरा का उद्‌भव किंचित् भिन्न है। उसकी कल्पना छन्द मूलक प्रतीत होती है। अपभ्रंश के प्रायः सभी छन्द-निरूपको ने रासा नाम के छन्द के लक्षण बताए है और दो ने रासक तथा रासाबन्ध नाम से एक काव्यरूप का भी लक्षण बताया है। ये दो छन्द निरूपक हैं विरहाक तथा स्वयंभू।

विरहाक ने लिखा है[1] :—

अडिलाहिं दुवहएहि व मत्तारड्डहि तहअ ढोसाहिं।
बहुएहिं जो रइज्जइ सो भण्णइ रासओ णाम॥

अर्थात् जिसमे बहुत से अडिल्ला, दोहा, मात्रारड्डा और ढोसा छन्द पाये जाते हैं, ऐसी रचना रासक कहलाती है।

स्वयभू ने लिखा है[2] —

घत्ता छडडणिआहिं पद्धडिआ सु अण्ण रूएहि।
रासा बघो कव्वे जणमण अहिरामो होइ॥

अर्थात् काव्य मे रासाबन्ध अपने घत्ता, छप्पय, पद्धडी तथा अन्य रूपकों के कारण जनमन-अभिराम होता है।

छन्द-वैविध्य-परक रास-परपरा अन्य काव्योचित गुणो के साथ अपने इसी छन्द-वैविध्य को लेकर आई और उपर्युक्त गीत-नृत्य-परक परंपरा से अलग विकसित हुई। अपनी इसी रासकता का उल्लेख 'संदेश रासक' करता है जब वह कहता है[3] :—

कह बहु रूवि णिबद्धउ रासउ भासियउ

और 'पृथ्वीराज रासो' इसी छन्द-वैविध्य वाली परपरा का काव्य है।

—:*:—

[1] 'वृत्त जाति समुच्चय', ४.३८।
[2] 'स्वयंभूच्छंदस्', ८.४९।
[3] 'संदेश रासक', छन्द ४३, भारतीय विद्या भवन, बम्बई।

१८. 'पृथ्वीराज रासो' की वस्तु-कल्पना

'रासो' का कवि पृथ्वीराज के संपूर्ण जीवन की कथा को नही कहना चाहता है, वह एक प्रकार से कथा-नायक के जीवन के अन्तिम वर्षों की कथा को ही अपनी रचना का विषय बनाना चाहता है। उसके शेष जीवन का परिचय वह रचना के प्रारम्भ मे केवल एक छन्द मे देता है, जिसका आशय है कि पृथ्वीराज की कपिल (धूल-धूसरित) केलि अजमेर मे हुई थी, उसके रक्त (अनुरागपूर्ण) जीवन के वृत्त साँभर मे हुए थे, वह सोमेश्वर का पुत्र बहिलावन (?) का निवासी था और दिल्लीपुर में भासित होने के लिए ही मानो विधाता द्वारा निर्मित हुआ था (१.६)। प्रश्न होता है कि ऐसा उसने क्यो किया। क्या कथा-नायक के पूर्ववर्ती जीवन मे कवि को ऐसी कोई घटनाएँ नही मिलीं जो महाकाव्य के उपयुक्त होतीं, या कथा-नायक के चरित्र में ऐसे कोई विशेष तत्व नहीं विकसित हुए थे जो महाकाव्य के नायक के लिए आवश्यक होते अथवा नायक के जीवन के उस अग मे रस के वे विशेष तत्व कवि को नही मिले जो एक महाकाव्य के लिए आवश्यक होते?

वस्तुतः ऐसी कोई बात नही दिखाई पड़ती है। नायक के पूर्ववर्ती जीवन का चित्रण न करते हुए भी कवि ने उसके सम्बन्ध मे स्थान-स्थान पर संकेत किए है। एक स्थान पर कथा-नायक के द्वारा कवि ने कालिंजर के जलमग्न किए जाने की बात कही है (२.१७)। कालिंजर के पराक्रमी चंदेल शासक परमर्दि पर उसकी विजय उस युग की एक असाधारण घटना थी—सं० १२३९ के मदनपुर के शिलालेख में उसकी वह विजय-गाथा अंकित हुई है[1], और जगनिक के नाम से प्रसिद्ध आल्ह खण्ड उसी घटना को अपना वर्ण्य बनाता है। उस युग के अति पराक्रमी शासक गुर्जर-नरेश भीम चौलुक्य पर भी उसने विजय प्राप्त की थी; 'रासो' में यह बार-बार कहा गया है (२.३, ८.४, १२.३३)। इतना ही नहीं, यहाँ तक कहा गया है कि उसने स्वयं भीम के साथ युद्ध करना आवश्यक नही समझा था, उस समय वह दूर विश्वासर मे था जब उसके मत्री (कैवास) ने भीमसेन को परास्त करके बन्दी बनाया था (३.६)। इतिहास से यह घटना कहाँ तक अनुमोदित है, यह एक भिन्न प्रश्न है।[2] किंतु यह तो निश्चित ही है कि कवि के मानस पर पृथ्वीराज की ये असाधारण विजये भी अंकित थी। शहाबुद्दीन पर भी उसे जीवन के उस अंश मे एक महान् विजय प्राप्त हुई थी, यह कवि ने बार बार कहा है, और इतिहास से भी यह भली भाँति अनुमोदित है। और ये घटनाएँ ऐसी हैं जो अलग-अलग महाकाव्यो का विषय बन सकती थीं—कदाचित् इसी बात

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता' शीर्षक।

[2] दे० वही।

को देखकर पीछे महोबा खंड, भीम-युद्ध खड तथा शहाबुद्दीन खंड की कल्पना की गई, जो रचना के कुछ पाठो मे पाए भी जाते है। किंतु पाठ-निर्धारण के प्रसंग मे ऊपर हम देख चुके है रचना के मूल रूप मे ये खड नहीं हो सकते है। इसलिए ऊपर जो प्रश्न उठाया गया है वह बना रहता है।

प्रस्तुत लेखक के विचार से इस प्रश्न का समाधान इस तथ्य मे निहित है कि कवि उन घटनाओ को अपने काव्य का वर्ण्य नही बनाना चाहता था जो जयानक (?) के 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य मे वर्णित हो चुकी थी। परमर्दि पर पृथ्वीराज के विजय की कथा उसमें आती थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है; भीम के साथ पृथ्वीराज के संघर्ष की कथा उसमे आती थी यह निश्चित तो नही है किन्तु दोनो मे वैमनस्य था, इस विषय के संकेत उसमे मिलते है।[1] शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज को जो विजय प्राप्त हुई थी, वह तो उस काव्य का लक्षित विषय ही था, यह 'रासो' के कवि के तत्सम्बन्धी कथन से प्रमाणित है। उसने कहा है कि पण्डित [जयानक] को पृथ्वीराज का यह आदेश हुआ कि वह शाह शहाबुद्दीन पर उसको प्राप्त हुई विजय का काव्य लिखे।[2] और यह उल्लेख उसने रचना के एक प्रारम्भिक प्रसंग मे किया है, जिसके पूर्व काव्य की कोई प्रमुख घटना नहीं आती है। इससे यह प्रकट है कि 'रासो' का कवि उन घटनाओ को अपने काव्य का विषय नही बनाना चाहता था जो 'पृथ्वीराज विजय' का विषय बन चुकी थीं, और परिणामतः यह भी प्रकट है कि वह एक सर्वथा मौलिक काव्य की रचना करना चाहता था। वह अपनी प्रतिभा का चमत्कार कथा-नायक के जीवन की उन्ही घटनाओ को अपने महाकाव्य का विषय बनाकर प्रदर्शित करना चाहता था जो पृथ्वीराज के जीवन मे शहाबुद्दीन पर प्राप्त विजय के अनन्तर घटित हुई थी, और यही कारण है कि पूर्ववर्ती घटनाओ का उल्लेख करते हुए भी उसने अपने काव्य को कथा-नायक के जीवन के अन्तिम वर्षों की घटनाओ तक सीमित रक्खा।

इस रचना मे चार ही घटनाएँ आती है: (१) कैंवास-वध, (२) पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध, (३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध तथा (४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज अंत। तीसरी और चौथी घटनाएँ सन्निकट रूप से परस्पर सम्बद्ध है। कवि कथा-नायक को पराजित नही छोड़ना चाहता था, इसलिए उसने अन्तिम घटना की कल्पना की, यह बहुत सम्भव है; उक्त घटना इतिहास अनुमोदित नही है, यह तथ्य इसी ओर सकेत करता है। शेष तीन घटनाओं मे ऊपर से देखने पर परस्पर कोई सम्बन्ध नही ज्ञात होता है। (एक सामान्य धारणा प्रचलित रही है कि जयचन्द ने पृथ्वीराज के वैर के कारण शहाबुद्दीन को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया था, या कम से कम उस युद्ध मे जिसमे पृथ्वीराज पराजित हुआ था उसने शहाबुद्दीन की सहायता की थी, किंतु 'रासो' में इस प्रकार का एक भी उल्लेख नही हुआ है।) ऐसा उसका कवि बडी सुगमता से कर सकता था, किंतु फिर भी उसने नही किया है और कदाचित् इसलिए नही किया है कि वह प्राप्त इतिहास की उपेक्षा नहीं करना चाहता था। कैंवास-वध की घटना को भी किसी प्रकार उसने पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध अथवा शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध से सम्बन्धित नहीं किया है, यद्यपि यह भी असम्भव नही था: 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' मे संकलित पृथ्वीराज-प्रबन्ध मे दिखाया गया है कि कैंवास के वध का जो प्रयत्न पृथ्वीराज ने किया था उसमे वह अकृतकार्य रहा: तदनन्तर वध के इसी प्रयत्न से रुष्ट होकर कैंवास ने शहाबुद्दीन से वह आक्रमण कराया, और प्रच्छन्न रूप से उस युद्ध मे उसकी सहायता की जिसमे पृथ्वीराज का पराभव हुआ, और अन्त तक उसने विश्वासघात करके

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता' शीर्षक।

[2] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज विजय और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

पृथ्वीराज का वध भी कराया।[१] किंतु 'रासो' के कवि ने इस प्रकार की कोई कल्पना नहीं की है। कदाचित् प्राप्त इतिहास मे इस प्रकार की कोई बात न पाकर ही उसने उपर्युक्त प्रकार की कोई कल्पना नहीं की। फिर भी यह न समझना चाहिए कि 'रासो' के कवि का ध्यान इस विषय पर नहीं था, अथवा वह केवल एक चरित लिख रहा था, जिसमे एक दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र घटनाओं को भी स्थान मिल सकता था। उसने इन तीनो घटनाओ को अपनी सरस कल्पना से जिस प्रकार सूत्रित करने का प्रयत्न किया है, वह दर्शनीय है।

कैंवास-वध और पृथ्वीराज जयचन्द युद्ध मे जो सम्बन्ध-हीनता रहती है, वह उसका परिहार एक कथा-सूत्र का विकास कर करता है। कवि कहता है कि कैंवास-वध की घटना का समाचार जब उसकी विधवा स्त्री को मिलता है, वह चन्द से मृत पति का शव दिखाने का अनुरोध करती है, और चन्द जब पृथ्वीराज से इस विषय का अनुरोध करता है, वह बड़े आग्रह के अनंतर इस शर्त पर शव के दिए जाने की स्वीकृति देता है कि चन्द उसे छद्म वेश मे कन्नौज ले जावेगा (३.३७-३९)। इस प्रकार कवि कैंवास-वध की प्रासंगिक कथा को भी मुख्य या आधिकारिक कथा का एक उपयोगी अंग बना देता है।

पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध और शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध मे जो सम्बन्ध-हीनता रहती है, उसका परिहार भी वह एक कथा-सूत्र का विकास कर करता है। किन्तु यह विस्तार अत्यन्त स्वाभाविक और सरस है। प्रस्तुत संस्करण के सर्ग ९ मे कवि कहता है कि जयचन्द से युद्ध के अनंतर पृथ्वीराज संयोगिता का दिल्ली लाकर केलि-विलास मे पड गया और अपनी शक्ति को उसने नष्ट कर दिया; उसे इस प्रौढ़ रति के समक्ष दिन और रात की सुधि नहीं रहती थी, परिणाम स्वरूप उसके गुरुजन, बांधव, भृत्य और प्रजा मे असन्तोष फैल गया। संयोगिता ने पृथ्वीराज को इस प्रकार वश मे कर रक्खा था कि उसके लिए संयोगिता को छोड़ कर कहीं भी जाना असम्भव हो गया था: ऋतुएँ आती थीं और चली जाती थीं और संयोगिता के प्रणयानुरोधों के कारण पृथ्वीराज उसे छोड़ कर राजभवन से निकल तक नहीं पाता था। प्रस्तुत संस्करण के सर्ग १० मे वह इस अवस्था से चन्द तथा गुरुराज के उद्बोधनों से मुक्त होता है, किन्तु उसकी मोह-निद्रा जब खुलती है, शहाबुद्दीन उसके सिर पर पहुँचा हुआ होता है (१०.२०—२४)। संयोगिता अंतिम बार विलास-मय जीवन की रमणीयता की ओर उसका ध्यान आकृष्ट कर उसे रोकना चाहती है, किन्तु पृथ्वीराज फिर नहीं रुकता है (१०.२५-२६)। फिर भी, इस मोह-निद्रा का जो अनिष्टकारी परिणाम हो सकता था, वह हुए बिना नहीं रहता है, और शहाबुद्दीन के साथ अंतिम युद्ध मे पृथ्वीराज पराजित होता है (सर्ग ११)।

उपर्युक्त के अतिरिक्त भी कथा के अन्त में कथा-नायक के अन्त के साथ कवि कैंवास-वध तथा संयोगिता के केलि-विलास का एक ऐसा सामंजस्य प्रस्तुत करता है जो अत्यन्त सार-गर्भित है। यह चन्द के मुख से कहलाए गए एक कथन के रूप मे है.—

प्रथमि राज कमान बांन द्रिढ मुट्ठि गहहि कर।
जिन बिसमउ मत करहि करहि भुअपत्ति अप्पु वर॥
जि कछु किअउ कयमास किअउ अप्पनउ सु पायउ।
सोइ संभरी नरेसु तुहि ज अम्मर पुर आयउ।
विधिना विधान मेटइ कवन दीन मान दिन पाइयइ।
सर एक फोरि सभरि धनी सत्तहि सबुद गमाइयइ॥ (१२.४६)

[१] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

चंद यहाँ यह कहना चाहता है "जिस विलासिता के गर्त मे गिरने के कारण कैंवास की दुर्गति हुई—और तुम्हारे द्वारा हुई—उसी विलासता-गर्त मे तुम स्वयं जानते-बूझते गिरे, तो अब उसके परिणाम से कैसे बच सकते हो ? वह गति तो तुम्हारी होनी ही है जो कैंवास की हुई; इस अवस्था मे तुम शत्रु के भी प्राण ले सको यही बहुत है।" जैसा हम आगे देखेंगे यह चद ही जैसा पात्र था जिसके द्वारा इस प्रकार की उक्ति कवि प्रस्तुत करा सकता था। सम्पूर्ण कथा चन्द की उपर्युक्त उक्ति की पृष्ठभूमि मे कितनी सगतिपूर्ण और सुसबद्ध लगने लगती है, यहाँ दर्शनीय इतना ही है। एक अकुशल कवि जिस प्रभाव को प्रचुर प्रयासो के बाद भी कदाचित् ही संपादित कर सकता था, 'रासो' का कुशल कवि एक सहज उक्ति मात्र से सपादित कर देता है, यह उसके सच्चे कलाकार होने का एक ज्वलंत प्रमाण है।

विभिन्न कथाओं के विकास मे भी उसकी यह प्रबन्ध-कुशलता देखी जा सकती है। समस्त रचना मे एक भी प्रसंग ऐसा नहीं मिलता है जो विषयान्तर उपस्थित करता हो, न कोई अनावश्यक वर्णन-विस्तार मिलता है, यहाँ तक कि एक-एक छद और एक-एक उक्ति अपने-अपने स्थान पर अनिवार्य लगते हैं। ऐसा लगता है जैसे सम्पूर्ण रचना एक सुनिश्चित योजना के सहारे खड़ी की गई हो, जिसमे उसके हर एक अग और हर एक अंश का स्थान और कार्य निर्धारित हो। इतना सुगठित प्रबन्ध, कहना नही होगा, समूचे प्राचीन और मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य मे दुर्लभ है।

'रासो' की सम्पूर्ण कथा इस प्रकार सम्यक् रूप से सर्गों मे विभाजित है कि वह भी उसके कवि का प्रबन्ध-कौशल सूचित करती है, लघुतम पाठ मे सर्ग-विभाजन नहीं है, किन्तु उसमे छदों की क्रम-संख्या तक नहीं है, इसलिए 'रासो' के मूल रूप मे भी स्थिति यही रही होगी यह कल्पना करना उचित न होगा। प्रस्तुत सस्करण का सर्ग-विभाजन 'रासो' के समस्त शेष पाठो के अनुसार किया गया है—केवल कथा की भूमिका का छंद मंगलाचरण के साथ रक्खा गया है, जो शेष पाठो में किसी स्वतन्त्र सर्ग में है, और पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध उसकी प्रबन्ध-कल्पना के अनुसार पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में विभक्त किया जाकर दो सर्गो मे रक्खा गया है, जो लघु मे तीन सर्गों मे तथा शेष पाठों मे प्रायः एक ही सर्ग मे आता है। इन सर्गों की कथाएँ परस्पर इतनी अलग-अलग हो जाती हैं, कि यह मानना असम्भव हो जाता है कि 'रासो' के कवि के मन मे कोई सर्ग-कल्पना नहीं थी। सर्गों के नामों के सम्बन्ध में अवश्य लघु, मध्यम तथा बृहत् पाठों में प्राय: कोई साम्य नही है, और सर्गों के बीच-बीच मे प्रक्षित कथाओ के आने के कारण नाम-परिवर्तन होता रहा होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है। अतः प्रस्तुत सस्करण के लिए सर्गों के नामो या शीर्षकों की कल्पना वर्णित कथा को ध्यान मे रखते हुए एक प्रकार से नए सिरे से करनी पड़ी है।

१९. 'पृथ्वीराज रासो' की चरित्र कल्पना

'रासो' की चरित्र-कल्पना ही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है—जैसा कि वह प्रत्येक महाकाव्य की हुआ करती है। एक प्रकार से उसके सभी पात्र असामान्य वीर हैं, किन्तु प्रायः उनके अपने-अपने व्यक्तित्व हैं, जिन्हे नीचे स्पष्ट करने का यत्न किया जा रहा है।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज इस महाकाव्य का नायक है। उसके समस्त कार्य धर्म-बुद्धि से होते हैं। कथा के आरम्भ में ही हम देखते हैं कि वह धीर और विनयशील है और गुरुजनों के समक्ष सकोच करता है। जब जयचन्द के दूत उसकी सभा मे राजसूय मे सम्मिलित होने का जयचन्द का निमन्त्रण लेकर आते हैं, गुरुजनों को देख कर वह वीर सकुच जाता है और उत्तर नहीं देता है; उत्तर उसका एक गुरुजन गोविंद राज देता है :—

> बोलइ न वयण प्रथिराज तांहि।
> संकरिउ सिंघ गुरजनन चाहि॥ (२. ३. ११. २२)

इसी प्रकार कन्ह जब उसे 'अयान' कहते हुए एक स्थान पर संबोधित करता है, वह इससे तनिक भी बुरा नही मानता है :—

> बोलउ कन्ह अयान न्रिप मति मंडन समरत्थ।
> जउ मुक्कइ सथ सथ्थिअनु तउ कत लिन्ने सथ्थ॥ (६.२)

चन्द को तो जैसे उसने पूरी स्वतन्त्रता दे रक्खी है कि वह जब चाहे जो कुछ कहे, यह हम चंद के चरित्र का निरीक्षण करते हुए देखेगे।

जयचन्द से उसका सघर्ष उसकी सौन्दर्य-लिप्सा के कारण नहीं हुआ है, जैसा सामान्यतः समझा जाता है। ऐसा नहीं है कि उसने संयोगिता के रूप-लावण्य की प्रशंसा सुनी हो और वह कन्नौज पर चढ़ दौड़ा हो; एक दीर्घ मानसिक संघर्ष के बाद अपना कर्त्तव्य समझकर ही उसने यह किया है। और यह समझ लेना उसके सपूर्ण चरित्र को समझने के लिए नितान्त आवश्यक है : कर्त्तव्य के सामने प्राणों की चिन्ता उसने कभी नहीं की है।

'रासो' का कवि कहता है कि जयचन्द की पुत्री सयोगिता ने पृथ्वीराज को वरण करने के लिए व्रत लिया था, यह उससे किसी ने, सभवतः उसके चर ने, कन्नौज के समाचार देते हुए कहा :—

> संयोगि जोग वर तुम्ह आज।
> व्रत लिअउ वरण प्रथीराज राज॥ (२.१०)

तिहि पुत्तिय सुनि गन इतउ तात वचन तजि काज।
कइ बहि गगाह संचरउं कइ पानि गहउं प्रथीराज ॥ (२.११)

चर की बाते सुनकर उसे आश्चर्य होता है, किन्तु उसे विश्वास हो जाता है कि संयोगिता हृदय से उसपर अनुरक्त है और राजा (जयचन्द) उसे अन्य से ब्याहना चाहता है, यद्यपि दैव को कुछ और ही मजूर है :—

सुनत राइ अचरिज भयँउ हियइ मन्यउ अनुराउ।
नृप बर अनि उर अंगमइ दैवहि अवर स भाउ ॥ (२.१२)

जब से उसने यह सुना है, और फिर यह सुना है कि उसकी स्वर्ण-प्रतिमा दरबान के स्थान पर जयचन्द ने स्थापित की है, उसका चित्त अशान्त रहने लगता है। कैंवास-कर्नाटी प्रणय और उनके वध की घटना उसकी इसी मानसिक अशाति के बीच पड़ती है। कवि ने कहा है कि इस मानसिक ताप से जी को बहलाने के लिए वह आखेट मे रहने लगा था, राज-काज उसने अपने प्रधान 'अमात्य' कैंवास को सौप रक्खा था :—

तिहि तप आखेटक भमइ थिर न रहइ चहुवान।
वर प्रधान जुग्गिनिपुरह धर रष्षइ परवान ॥ (३.१)

जब कैंवास उसकी इस मानसिक स्थिति मे राजभवन के नियमो का उल्लंघन कर उसकी दासी के कक्ष मे प्रवेश करता है, तो उसका प्राण गँवाना अवश्यभावी हो जाता है। असभव नहीं कि भिन्न मानसिक स्थिति मे वह अपने प्रधान 'अमात्य' को, जिसने किसी समय भीम चौलुक्य जैसे उसके प्रचंड शत्रु को पराजित किया था (३.६), इतना कठोर दण्ड न देता।

किन्तु तब तक उसके मानसिक संघष की स्थिति समाप्त हो जाती है, कैंवास-वध के अनन्तर अपने बाल-सहचर चन्द से गले मिलकर वह रोता है, क्योकि अपने उपहासपूर्ण जीवन का अन्त करने के लिए उसने प्राणोत्सर्ग का सकल्प कर लिया है :—

दोइ कठ लग्गिय गहन नयनह जल गल न्हांतु।
अब जीवन वछिहि अधिक कहि कवि कोन सयानु ॥ (३.४०)

इस संकल्प पर उसके वीर सहचर चन्द का आनन्दित होना स्वाभाविक ही है, जब वह जान लेता है कि पृथ्वीराज का संकल्प उसके सिर से गुरुतर तथा उसका जीवन हल्का और सिर [कंधो पर] भारी हो रहा है :—

आनन्दउ कवि चन्दु जिय त्रिर किय संच विचार।
मन गरुअर सिर हरुअ इइ जीवन हरउ सिर भार ॥

और इस संकल्प का समर्थन करते हुए वह कहता है :—

धरि वरु पंगु प्रगट्ट अरु थट्ट विहडिहइं।
इत उपहास विलास न प्रान पमूकिहइं ॥ (३.४३.३-४)

उसकी वीरता के सम्बन्ध मे तो अधिक कुछ करना ही व्यर्थ होगा : उसकी सारी जीवन-गाथा वीरता की अनुपम कथा है। सयोगिता का वरण करके वह चुपचाप कन्नौज से चल नहीं देता है, अपने सहचर चन्द के द्वारा वह घोषित करा देता है कि जयचन्द-पुत्री का परिणय करके जयचन्द से दायज के रूप मे वह उससे युद्ध चाहता है:—

सज रिपु ढिल्लियनाथ सो ध्वसनं जग्गियं आये।
परणेवं तव पुत्ती युध्धं मंगति भूषनं सोइ ॥ (७.२)

उसके सामंत जब देखते है कि युद्ध विषम है और यह सम्भव नहीं है कि कन्नौज मे रुक कर युद्ध किया जावे, वे पृथ्वीराज से अनुरोध करते है कि वह दिल्ली की दिशा मे प्रस्थान करे और

वे सब एक-एक करके जयचन्द की विशाल वाहिनी को रोकें और जिस प्रकार भी सम्भव हो उसे दिल्ली तक सुरक्षित पहुँचा दें। किन्तु पृथ्वीराज इस प्रस्ताव से सहमत नहीं होता है, और कहता है :—

मति घट्टी सामंत मरण इउ मोहि दिखावहु।
जम चोटी विणु कदन होइ जउ तुमउ बतावहु।
तुम गंजउ भर भीम तासे गव्वह मयमत्ता।
मइ गोरी साहब्बदीन सरवर साहंता।
मुह सरणहि हींदू तुरक तिह सरणागत तुम करहु।
बूझिअइ न सूर सामंत हो इतउ बोझ अप्पन धरहु॥ (८.२)

उनके अनेक प्रकार से समझाने पर भी वह उनके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता है, जब तक कि उसका बाल-सहचर चन्द इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं करता है (८.५-६)। चन्द के कथन को सुनकर पृथ्वीराज कहता है कि उसका कथन उसके लिए अमिट है :—

मिट्टयउ ण जाइ कहणो वय कवि चंद सार सा मत।

और तब वह इस प्रस्ताव को स्वीकार करता है।

उसके इस वीर और कर्त्तव्य-सजग जीवन में केवल एक बार शिथिलता आती है—और यह शिथिलता उसकी समस्त जीवन-साधना पर पानी फेर देती है। 'रासो' की यह श्रृंगार-कथा वास्तव में उसकी सबसे करुण गाथा है। सकुशल दिल्ली पहुँचकर पृथ्वीराज संयोगिता के साथ केलि-विलास में इस प्रकार लिप्त हो जाता है कि अपनी शक्ति को वह नष्ट कर देता है, और उसके मन में केवल एक बात रहती है—वह किस प्रकार संयोगिता को सुख प्रदान करे। परिणाम यह होता है कि उस मानिनी की प्रौढ रति में उसे दिनों और रातों का होना-जाना नहीं ज्ञात होता है, और उसके गुरुजन, बांधव, भृत्य तथा प्रजागण उससे खिन्न हो जाते हैं :—

इह विधि विलसि विलास असार सुसार किअ।
दइ सुष जोग संजोगि सोइ पृथ्वीराज जिय।
अहनिसि सुधि न जानहि माननि पौढ रति।
गुरु बंधव भृत लोइ भई विपरीत गति॥ (९.८)

उसकी यह मोह-निद्रा तब भंग होती है जब उसका बाल-सहचर चन्द राजगुरु के साथ उसे शहाबुद्दीन के होने वाले आक्रमण की सूचना देता है (१०.२२)। और फिर कर्त्तव्य की पुकार के सामने उसे सुन्दरी का मोह रोक नहीं सकता। वह उसी प्रकार अपने कर्त्तव्य में पुनः स्थित हो जाता है जिस प्रकार कोई नट वेष बदल कर आ जाता हो:—

सुणि कग्गरु पिट्टउ सुकर धर रष्पइ गुरु भट्ट।
तरकि तोन सजियउ सकिरि जिम वेष छंडि सु नट्ट॥ (१०.२४)

इसके बाद संयोगिता काम-सुख में उसे पुनः प्रवृत्त होने को आमन्त्रित करती है, किन्तु पृथ्वीराज उसके सम्मोहन में नहीं पड़ता और कहता है कि जिस वीर-पत्नी ने उसके बाहुओं की पूजा की थी वह मुग्धा काम की बातें किस प्रकार कर रही है?

सुनि प्रिय प्रिय दिष्यौ वदन किय जिय निर्भय पाथ।
बाहू पुज्जउ वरह तुह कहि स मुग्ध रतिनाथ॥ (१०.२६)

यह संयोगिता से उसकी अन्तिम भेंट है।

शहाबुद्दीन की सेना उसकी सेना से कई गुना बड़ी है, उसके सामंत -जयचन्द से हुए उसके

युद्ध में प्रायः कट चुके हैं—इसलिए पराजय तो निश्चित है, फिर भी वह वश्यता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता, और अन्त तक लडता है, जब तक कि वह बन्दी नही कर लिया जाता है।

बन्दी ही नहीं, अन्धा किए जाने के बाद भी उसकी वीरवृत्ति मे कोई अन्तर नही पड़ता है: चन्द जब शहाबुद्दीन से मिलता है, तो शहाबुद्दीन कहता है कि अन्धा होने पर भी अपनी वक्रदृष्टि नही छोड रहा था, इसलिए उसे थाने मे रख दिया गया था:—

• वै चंद अन्ध' मइ रिस ज कीन।
वर वंक दीठ छंडइ न भीन॥
विहान थान रषि ज अदब्बु।
किरतारि हथ्य करिअ न गब्बु॥ (१२.१५.९-१२)

किन्तु जीवन के अन्त में वह निराश हो चलता है। चन्द के संजीवन-मंत्र को सुनकर एक बार उसकी नसो मे नवजीवन का संचार अवश्य होता है, किन्तु फिर वह निराशा से सिर झुका लेता है:—

विम्र देह नव तनह सुभग्ग।
अषि पांनि मनु चितह लग्ग।
पहिचानि चन्दु वर धुनिग सीस।
सिर नयो नही मन भई रीस॥ (१२. ३३. १७-२०)

यह चन्द ही है कि उसने उसको शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए तैयार कर लिया है।

पृथ्वीराज की अंतिम झाँकी बाण-सन्धान के पूर्व मिलती है; 'रासो' का कवि कहता है कि इस समय चन्द का मुख चन्द्र का सा हो रहा था और राजा के मन की सधि (शका) मलिन हो चुकी थी:—

इलि षसि पांनि पविस्ट किय सिंगिनि सर गुन बंधि।
चरचि चंद मुष चंद भयु मलिय राज मन सधि॥ (१२. ४७)

इसके बाद तो 'रासो' का कवि इतना ही कहता है शहाबुद्दीन के धरती पर गिरते ही राजा का भी मरण हुआ। किन्तु यही पर 'रासो' का अन्त करते हुए वह कहता है कि "देवताओं ने उसके सिर पर पुष्पांजलि छोड़ी, जो धरणी म्लेच्छों से आबद्ध हो गई थी वह अब नव स्त्री के समान हँस पड़ी, तृण (शरीर के भौतिक तत्व) तृणो (भौतिक तत्वों) को तथा ज्योति (जीव) ज्योति (परमात्मा) को संप्राप्त हुए":—

मरन चन्द वरदिआ राज धुनि साह हन्यउ सुनि।
पुह पंजलि असमान सीस छोडी त देवतनि।
मेछ अवध्धित धरणि धरणि नवत्रीय सुहस्सिग।
तिनहि तिनहि सं जोति जोति जोतिहि संपत्तिग।

कहना नही होगा कि पृथ्वीराज के इस अमर-चरित्र की कल्पना समूचे हिन्दी साहित्य में अनुपम है, और इसके लिए हमे 'रासो' के कवि का चिरकृतज्ञ होना चाहिए।

संयोगिता

संयोगिता की पहली झाँकी काव्य में एक मनोरम रूप मे प्राप्त होती है: वह यवाङ्कुरों को हाथ मे लिए मृग-वत्सों को चरा रही है, और ऐसी लग रही है मानो उस मानिनी के मिस इंदु ही [मृग-शावकों को] नेत्रों से देख कर आनंदित हो रहा हो; उसकी सखियाँ और सहचरियाँ परस्पर बातें कर रही हैं कि शुभा संयोगिता के सयोग (विवाह) के लिए विधाता ने मानो मन्मथ को ही निर्मित किया होगा:—

जब अंकुर करि पानि चरावते बच्छ मृगु।
मनु मानिनि मिस इदु आनंदइ देषि दृगु।
सहि सहचरि ति चरन परसपर बत्तु किअ।
सुभ संजोगि संजोग जानुइ मनमथ्थ किअ॥

संयोगिता के इस प्रथम दर्शन में कवि उसे जो 'मानिनी' कहता है, वह प्रसंग-सापेक्ष नहीं है, बल्कि चरित्र-सापेक्ष है—प्रारम्भ मे कवि ने संयोगिता का चरित्र ही एक मानिनी के रूप में चित्रित किया है। उसने एक बार पृथ्वीराज को वरण करने का निश्चय कर लिया है (२-१०) तो फिर उसमे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता है। जयचन्द उसको इस निश्चय से विरत करने के लिए दासियाँ नियुक्त करता है (२-१३)। अनेक प्रकार के तर्कों से दासियाँ उसे इस निश्चय से डिगाना चाहती हैं, किन्तु संयोगिता स्पष्ट कहती है कि वह उनकी बातो मे नहीं आ सकती है, और उसने संकल्प कर लिया है कि चाहे उसे सौ जन्म ग्रहण करने पड़े, वह पृथ्वीराज को ही वरण करेगी :—

न मो राजन संबादे न मो गुरुजनागरे।
वरमेकं सर्व देह अन्यथा पृथिराजह॥ (२. १९)

जयचन्द ने उसके इस हठ पर रुष्ट होकर उसे गंगा तट के एक अन्य आवास में भेज दिया है। वह इसी आवास में रहती है। जब कन्नौज की प्रदक्षिणा के प्रसङ्ग में गंगा-तट पर मछलियों को मोती चुगाते हुए पृथ्वीराज का दूर से उसे प्रथम दर्शन प्राप्त होता है, तत्काल उसे इस नवागतुक के सम्बन्ध में निश्चित रूप से ज्ञात नहीं होता है; किन्तु किसी के मुख से पृथ्वीराज का इस समय नाम सुनते ही उसके शरीर में प्रेम के सात्विक अनुभाव प्रकट हो जाते हैं :—

सुनि रव सुंदरि उभ्भ तन स्वेद कंप सुर भंग।
मनु कमलिनि कल संभरी अग्नित किरन तन रंग॥ (६. ११)

यह उसका प्रेमिका का रूप है। उसको इस प्रकार प्रेम कातर देख कर उसकी एक सखी जब उसे सतर्क करती है कि वह इस सम्बन्ध में आगे कदम नभी बढाए जब उसे निश्चय हो जावे कि यह पृथ्वीराज है (६.१२), तब वह रुकती है। पृथ्वीराज का निश्चय कर इसके अनंतर संयोगिता की भेजी हुई एक सखी उसे संयोगिता से मिलाती है, और दोनों का पाणिग्रहण होता है। उसका वरण कर पृथ्वीराज जब जाने लगता है, उसको विदाई का पान देने हुए वह कह उठती है, "संयोगिता की रक्षा करो! हे योगिनीपुरेश, तुम्हारी जय हो, जय हो! सभी प्रकार से [तुम्हारे जाने के] निषेध का जो तांबूल है, उसे ग्रहण करो।"

पायातु पंग पुत्तीय जयति जयति योगिनि पुरेसं।
सर्व विधि निषेधस्य यः तंबोलस्य समादायं॥ (६.१७)

किन्तु वही प्रेमिका, जिसकी कामाग्नि प्रेमी के पाणि-स्पर्श तथा दर्शन से संदीप्त हो चुकी थी, जिसने प्रेमी के चले जाने पर मन छोटा कर लिया था, जिस प्रकार जल के न रहने पर मछली का हो जाता है (६.२५), बार-बार जिसकी आँखे जाते हुए प्रेमी को देखने के लिए गवाक्षों में जा लगती थीं, जो सखियों के समझाने पर भी चुपचाप उसी प्रकार व्यथित हो रही थी जैसे चातकी पावस को बिताती है, (६.२६) जो अपने विरह-दाह को शीतल करने के लिए शरीर मे चन्दन का लेप कर रही थी, जो लज्जापूर्वक अपने नेत्रों को बार-बार अंचल से ढँक रही थी, कि उसकी प्रेमातुरता प्रकट न हो (६.२७), जिसके विरह ताप का निवारण करने में सोम, अमृत और कमल भी व्यर्थ हो रहे थे (६.२८), जब पृथ्वीराज को पुनः आते देखकर वह समझती है कि वह युद्ध से

विमुख होकर अपनी प्रेमिका के पास आ रहा है, सिर पीट लेती है और कह उठती है, "जिस प्रिय जन की ओर लोक की उँगलियाँ उठें, उस प्रियजन से क्या काम !"

जिहि प्रिय तन अंगलि फिरइ तिहिं प्रियजन कहा कज्ज । (६.३०)

यह संयोगिता का वीराङ्गना का रूप है। सामन्तगण उसे बहुतेरा समझा रहे हैं, और उस मदन-शर से विनष्टा के प्राण एक क्षण के लिए दयित (प्रिय पति) के प्राणों से अभिन्न भी हो रहे हैं, किन्तु उस के नेत्र-प्रवाह उस दिवस की कथा कहते ही रहते हैं :—

मदन सरालति विनष्टा निमिषि इइत प्रान प्रानेन ।
नयन प्रवाहति -विनष्टा दिदा कथय कथा ।। (६.३२)

और जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि पृथ्वीराज युद्ध में जा रहा है, केवल उसे लेने के लिए आया हुआ है, हर्ष से पूरित होने के कारण उसका गला भर जाता है और वह पृथ्वीराज के साथ घोड़े की पीठ पर जा बैठती है :—

सुन्दरि सोचि समच्छिम गद्द गद्द कंठ भरि ।
तबहि प्रान प्रथिराज त षचिय बाहु करि ।
दिय हय पुट्ठिय भार सुलब्ब सुलष्षिनउ ।
करति तुरंग सुरंग स पुच्छित वच्छनउ ॥ (६.३४)

युद्ध के अन्तर्गत हमें उसका पत्नी का स्निग्ध मधुर रूप दिखाई पड़ता है जब प्रथम दिन के युद्ध के अनन्तर रात्रि के आगमन पर तारिकाओं के [हर्ष के] लिए इन्दु का उदय होता है, और नील कमल खिलता है, और नव विरही मिलकर नव स्नेह के नव जल (अश्रु) का रुदन करते दिखाई पड़ते हैं। वे आभूषणों को समीप ही पड़ा रहने देते हैं, उन्हें धारण नहीं करते हैं; फिर भी वे परस्पर मिलकर मृदु मंगल मनाते हुए मन मे सभी प्रकार के मनोर्थ करते हैं :—

षेचरह कउ उयउ इदु इंदीवर उइयउ ।
नव बिरही नव नेह नव जल नय रदुइयउ ।
भूषन सोभ समीपनि मंडित मंडि तन ।
मिलि मृदु मंगल कीन मनोरथ स्रब्ब मन ।। (६.२३)

किन्तु दिल्ली पहुँच कर यही सयोगिता एकदम परिवर्तित हो जाती है और उसका विलासिनी का वह रूप हमारे सामने आता है (९.१-८), जो पृथ्वीराज के सर्वनाश का कारण होता है : वह संयोगिता जो किसी समय पृथ्वीराज का वरण करने के लिए सौ जन्म ग्रहण करने को उद्यत थी (२.१९), जीवन की सार्थकता काम-केलि मे मानने लगती है, और उस मानिनी की प्रौढ़ रति में पृथ्वीराज भी इस प्रकार दीन और दुनिया को भुला देता है कि उसे दिन-रात की सुधि नही रहती है, जिसके परिणाम-स्वरूप उसके गुरु, बाधव, भृत्यादि की गति विपरीत हो जाती है :—

इह बिधि विलसि विलास असार सुसार किअ ।
इह सुष जोग संजोगि सोइ प्रथिराज जिअ ।
अह निसि सुध्धि न जानहि माननि प्रौढ रति ।
गुरु बंधव भृत लोइ भई विपरीत गति ॥ (९.८)

ऋतुएँ आती हैं और चली जाती हैं, संयोगिता उनमें पृथ्वीराज द्वारा भोगांकित होती रहती है (९.९), उसका प्रिय (पति) कहीं जाने को होता है तो वह ऋतु की रमणीयता का प्रतिपादन करते हुए उसे रोक लेती है (९.१३), वह कह उठती है कि जो तरुणी बाला है, वह निवृत्तपत्र नलिनी के सदृश ऐसी दीन हो रही है कि क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकती है; कान्त के जाते ही वह विरह-वारण से अपनी शरीर-वाटिका को ध्वस्त होने देना नहीं गवारा कर सकती है :—

रोमाली वन नीर निध्ध वरये गिरि ढंग नारायते ।
पव्वय पीन कुचानि जानि लयला फुंकार झुंकारये ।
शिशिरे सर्वरि वारणे च विरहा मम हृदय विदारये ।
भाकांत मृगवध्ध सिव गमने किं देव उव्तारये ॥ (९.१४)

इसी समय पृथ्वीराज पर शहाबुद्दीन आक्रमण कर देता है । चन्द तथा गुरुराज पृथ्वीराज को उस विलास-निद्रा से जगाते हैं, तब इस संयोगिता का 'कामिनी रूप' प्रकट होता है । जो सयोगिता पृथ्वीराज को कन्नौज के युद्ध में अपनी ओर वापस आता देखकर क्षुब्ध हुई थी, और जिसने कहा था:—

जिहि प्रिय तन अगलि फिरइ तिहिं प्रियजन वहा कज्ज । (९.३०)

वही इस भयानक स्थिति में जीवन की सार्थकता काम को तुष्ट करने मे बताती है । पृथ्वीराज से वह कहती है कि वही धन धन है जिसका भोग किया जा सके, वही सुख सुख है जिसमे काम का आरोह हो, काम-विहीन जीवन मे संसार मरण-तुल्य है; प्रतिदिन दिनकर आता है, चन्द्र आता है, दिन होता है, रात होती है, किन्तु मनुष्य का जीवन तो एक दिन समाप्त हो जाता है, घरा यदि पृथ्वीराज की अर्द्धाङ्गिनी है, तो सयोगिता भी तो है, उसका अर्द्धाङ्ग होना भी उसे सार्थक करना चाहिए; हंस और हंसिनी अन्त तक साथ रहते हैं, इतना ही नहीं, सर और पकज जैसे जड़ पदार्थ भी अन्त तक साथ निभाते हैं :—

कहु सु प्रियह पउमिनिय कंत धनु धरउ तउ न धनु ।
सुष सुषमार आरोहु असर संसार मरन मन ।
दिन दिनियर दिन चन्दु रयनि दिन दिन ही आवहि ।
जंतु जंतु इह रमनि स्रवन लग्गवि समझावहि ।
अरधंग धरा अरधंग हम अरधगी अरधंग भरि ।
जस हंस हंस तह हंसिनी [सर सुक्कइ] पंकज न परि ॥ (१०.२५)

पृथ्वीराज इस पर जी कड़ाकर ठीक ही कहता है कि उसे आश्चर्य है कि जिसने उसके बाहुओं की पूजा की थी, वह मुग्धा आज रतिनाथ की बातें कर रही है :—

सुनि प्रिय प्रिय दिष्यौ वदन किय जिय निर्भय पाथ ।
वाहू पुज्जउ वरह तुह कहिस मुग्ध रत्तिनाथ ॥ (१०.२६)

और 'रासो' का कवि उचित ही इस प्रसग के बाद एक बार भी इस नारी का स्मरण नहीं करता है ।

चन्द

चन्द का प्रथम आगमन कथा में कंवास-वध के अनन्तर होता है । आखेट से लौटकर जब पृथ्वीराज सभा बुलाता है, चन्द उसमें उपस्थित होकर राजा को आशीर्वाद देता है (३.१९) । इसके पूर्व केवल यह कथन आता है कि कैंवास-वध की सारी घटना सरस्वती ने उसको स्वप्न में सुना दी थी (३.१४) । इस प्रथम दर्शन में ही चन्द एक निर्भीक व्यक्ति ज्ञात होता है, कवि कहता कि कैंवास-वध के बारे में चन्द से पृथ्वीराज का प्रश्न करना और उससे उत्तर के लिए हठ करना फणीन्द्र के मुख मे उॅगली देने के सदृश था :—

हठि लग्गउ चहुआन न्रिप अंगुलि मुषह फणिंदु ।
तिहु पुरि तुअ मति संचरइ सु कहे बनइ कवि चंदु ॥ (३.२५)

और चन्द अपने प्राणों की बाजी लगा कर उसी प्रकार उत्तर भी देता है :—

सेस सिरप्परि सूर तर जह पुच्छइ न्रिप एस ।
डोहु बोलि मंडन मरणु कहइ तउ कव्वु कहेस ॥ (३.२६)

इस दृष्टि से देखने पर ज्ञात होगा कि उसे काव्य मे जो 'चन्ड चन्द' (५.१३) या 'कविचंडिय' (३.१९) कहा गया है, वह सर्वथा तथ्यपूर्ण है। यह उसी का साहस था और पृथ्वीराज ने उसी को जैसे इसका अधिकार भी दे रखा था कि पृथ्वीराज जैसे उग्र स्वभाव के शासक को जिस प्रकार वह चाहे मार्ग पर ला सकता था और कथा भर मे इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं; यथा :

पृथ्वीराज को दिल्ली की ओर मोड़ने में सामन्तों के अकृतकार्य होने पर इस कार्य मे वही कृतकार्य होता है, और पृथ्वीराज ठीक ही कहता है :—

मिटयउ ण जाइ कहणो वय कवि चन्द सार सामंत। (८.७)

विलास-मग्न पृथ्वीराज को वही कहला भेजता है :—

गोरी रत्तउ तुव धरा तुं गोरी अनुरत्त। (१०.२०)

और उसको लिख भेजता है कि वाण तो अपने अधीन है, यदि और कुछ उससे नहीं हो सकता तो उसके द्वारा ही उद्योग करके वह प्राणों की रक्षा करे और सामन्तो से वह मन्त्र करे कि दिल्ली की धरा उसके कारण न डूब जावे :—

अप्पज्ज वान चहुआन सुनि प्रान रषिक प्रारंभ करि।
सामंत नहीं सामंत करि जिनि बोलइ ढिल्लिय जु धरि।। (१०.२३)

गजनी पहुँच कर पृथ्वीराज को प्रतिशोध लेने के लिए प्रेरित करने पर उसको जब आगा-पीछा करते देखता है, वह कह उठता है :—

अरे नरिंद वा बंध पिंड कचउ सुर सचउ।
अप्पु तेज संमीर धरा आयास ज पंचउ।
जरा जाल बंधियउ काल आनन महि षिल्लइ।
हंतुह हंतुह अजप जप्पि सरु बरु कर मिल्लइ।
जिम चलइ हंस हंसी सरिस छंडि मोह तन पंजरहि।
प्रथीराज आज तिहिं मत्ति करि करि नरिंद जिनि उब्बरहि ॥ (१२ ३८)

और राजा के मन मे अन्त तक दुविधा शेष देखकर कह उठता है कि कैंवास के साथ उसने जो कुछ किया था, वही तो उसके साथ भी हो रहा था, जिस विलासिता के कारण कैंवास के प्राण उसने लिए थे, उसी विलासिता का परिणाम अब उसे स्वयं भोगना पड रहा था, फिर क्यों यह आगा-पीछा वह कर रहा था :—

प्रथमिराज कंमान बांन द्रिढ मुट्ठि गहहि कर।
जिन बिसमउ मन करहि करहि भुअपत्ति अप्पु बर।
जि कछु दिअउ कयमास किअउ अप्पनउ सु पायउ।
सोइ संभरी नरेसु तुहि ज अम्मरपुर आयउ।
विधना विधान मेटइ कवन हीनमान दिन पाइयइ।
सर एक फोरि संभरि धनो सत्तहि सबुद गमाइयइ ॥ (१२.४६)

ऐसे निर्भीक किन्तु प्रबुद्ध सहचर दुर्लभ होते है, यह पृथ्वीराज का सौभाग्य था कि उसे ऐसा कवि-मित्र प्राप्त हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि पृथ्वीराज इस रचना मे जो कुछ है, उसका अधिकाश वह चन्द के कारण है।

सुख मे, दु.ख मे, हर्ष मे और विषाद मे वह हर जगह पृथ्वीराज के साथ है, यथा :

जयचन्द के किए अपमान का प्रतीकार करने के लिए जब पृथ्वीराज प्राणोत्सर्ग का संकल्प करता है, तो दोनो गले मिलकर खूब रोते हैं और चन्द हर्षपूर्वक उसका समर्थन करता है :—

दोइ कठ लग्गिय गहन नयनह जल गल न्हांतु।
अब जीवन बंछिहि अधिक कहि कवि कोन सवातु ॥

आनंदउ कवि चंदु जिय निप किय संच विचार।
मन गरुअर सिर हरुअ हइ जीवन हरअ सिर भार॥ (३.४२)

और कह उठता है :—

धरि बरु पंगु प्रगट्ट अरु थट्ट विहडिहइं।
इत उपहास त्रिकाल न प्रान पमूकिहइ॥ (३.४३)

वस्तुतः चन्द से अलग करके पृथ्वीराज को देखा नहीं जा सकता है।

अन्य पात्र

कथा के शेष पात्र विकसित नहीं किए गए हैं। जयचन्द और शहाबुद्दीन पृथ्वीराज के अच्छे और समर्थ प्रतिद्वन्दी हैं, किन्तु उनमे उस प्रकार की जान-तोड़ वीरता का विकास कवि नहीं करता है जैसी कथा-नायक में करता है, किन्तु वे कापुरुष भी नहीं हैं।

जयचन्द और पृथ्वीराज की तुलना करते हुए कवि ने एक स्थान पर ठीक ही कहा है कि पृथ्वीराज वास्तविक शूर है, जब कि जयचन्द अपनी पारसीक सेना से शूर बना हुआ है :—

सत भड किरण समूरउ सुरंगो अरेन जां न आयेस।
जोगिनिपुर पति सूरो पारस मिसि पंगु रायेस॥ (८.८)

शहाबुद्दीन में कवि ने वीरता का वैसा विकास नहीं किया है जैसा नृशंसता का। वह पृथ्वीराज को पराजित करने के बाद न केवल उसे बंदी करता है, उसकी आँखे तक निकलवा लेता है—उस पृथ्वीराज की जिसने उसे बन्दी करके भी अनेक बार छोड़ दिया था (११.७)। और काव्य में जब पाठक देखता है कि इस कृतघ्न और नृशंस शत्रु का चन्द युक्तियों से कथा-नायक द्वारा वध कराता है, यद्यपि वह स्वयं भी मारा जाता है, उसे वह सन्तोषपूर्ण आनन्द प्राप्त होता है जो भारतीय साहित्य में काव्य का लक्ष्य माना गया है।

पृथ्वीराज के समस्त सामंत उसी के अनुरूप वीर है। उनके वीर कृत्यों के वर्णन में अतिशयोक्ति देखी जा सकती है, किन्तु वह अतिशयोक्ति भी औचित्यपूर्ण लगती है : हरसिंह, कनकवड गूजर, निडर राठौर, कन्ह, अल्हन, अचलेस, विझ, सव्व, लखन और पाहार तोमर के प्राणोत्सर्ग, जो अपने राजा की रक्षा मे उन्होने जयचन्द की विशाल सेना को रोकते हुए किए हैं (८.११-३५), अद्भुत हैं।

इस वीर काव्य मे एकमात्र कैंवास ऐसा अभागा पात्र है, जिसका केवल कालिमापूर्ण चरित्र विकसित किया गया है (सर्ग २)।

—*:—

२०. 'पृथ्वीराज रासो' की रस-कल्पना

सम्पूर्ण काव्य का अगी रस वीर है, ऊपर आये हुए 'पृथ्वीराज रासो की प्रबन्ध-कल्पना' तथा 'पृथ्वीराज रासो की चरित्र-कल्पना' शीर्षकों से यह बात स्वतः प्रकट हुई होगी। किन्तु अन्य रस भी इसमे यथास्थान अंग बन कर आते है। सारी रचना मे पृथ्वीराज, उसके सामन्तों और चन्द के कथन पाठक के मन को उत्साह की उमड़ती हुई नदी मे डाल देते हैं, जिसमें वह डूबता-उतराता आगे बढ़ता जाता है, उनके अतिमानवीय कृत्य उसे आश्चर्य-चकित करते रहते है, संयोगिता के चरित्र मे उसे पूर्वानुराग, मिलन, विरह और सभोगरति के अति मनोरम चित्र मिलते हैं, आदर्श के लिए जीवन की उपेक्षा पूर्वक बलिदान की भावना रचना भर मे स्थान-स्थान पर निर्वेद की सृष्टि करती है, रचना के अंतिम अशो मे शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए कथा-नायक से की गई चन्द की सारी प्रेरणा निर्वेद का सहारा लिए चलती है, कैंवास के शव के लिए उसकी विधवा पत्नी की याचना और उसके साथ उसका चितारोहण करुणा जाग्रत करते हैं, युद्ध की विभीषिका का कहीं-कहीं पर जो वर्णन होता है, वह भयानक की अच्छी सृष्टि करता है, युद्ध मे सहार के वर्णन कहीं-कहीं बीभत्स की झलक दिखाते हैं, कैंवास-वध में पृथ्वीराज की क्रोध युक्त मुद्रा किंचित् रौद्र का दृश्य उपस्थित करती है। केवल हास्य चंड (उग्र) चन्द द्वारा कदाचित् स्वभावतः उपेक्षित हुआ है, अन्यथा काव्य के नव रस इस रचना मे अपने प्रकृत रूप मे अनायास आए हुए मिलते हैं।

रचना की धुर अन्तिम पंक्तियों में उसके कवि का किया हुआ यह कथन कि यह अपूर्व रासो नवरसों से सरस है, इसके छन्दो को चन्द ने अमृत के समान किया है, और यह शृंगार, वीर, करुणा, वीभत्स, भय, अद्भुत और शात रसो से सयुक्त है :—

> रासउ असभु नवरस सरस छदु चदु किअ अमिअ सम।
> शृंगार वीर करुणा बिभछ भय अदभुत्तह संत सम ॥

अक्षरशः सत्य है। अनेक उतार-चढाव के साथ, जो कवि का अन्य रसों का समावेश करने का कवि को पर्याप्त अवसर देते हैं, वीर का इतना अद्भुत परिपाक समूचे हिन्दी साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता है।

—:*:—

२१. 'पृथ्वीराज रासो'
के
वर्णन

'रासो' एक वर्णन-सम्पन्न काव्य है, और ये वर्णन प्रायः सुन्दर हैं। कवि के वर्णन-कौशल और तत्सम्बन्धी उसकी मुख्य प्रवृत्तियों से परिचय प्राप्त करने के लिए इन्हें निम्नलिखित वर्गों में रक्खा जा सकता है:—

(१) युद्ध-सज्जा तथा युद्ध-वर्णन
(२) नख-शिख-वर्णन
(३) सामान्य प्रकृति-वर्णन
(४) षड् ऋतु-वर्णन
(५) अन्य वर्णन

नीचे यथाक्रम इन पर विचार किया जाएगा।

(१) युद्ध-वर्णन

रचना में दो युद्ध आते हैं, प्रथम है पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध, और द्वितीय है शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध।

जयचन्द की युद्ध-सज्जा का वर्णन करते हुए प्रथम के प्रसग मे सब से पहले हमें अश्व-सेना का वर्णन मिलता है (६.५)। इसमें कई जातियो के अश्वों का वर्णन किया गया है, जिनमें प्रमुख हैं लाहोर के लोहित वर्ण के तुर्की, सिन्धु के पश्चिम के देशों के सिंधी, अरबी, कच्छी, ताज़ी और पडुवे। कहीं-कहीं पर इस वर्णन में अच्छी उक्तियाँ मिलती हैं: यथा उनकी वल्गा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह ऐसी लगती है मानो आउझ (ढोल की जाति के एक प्रकार के वाद्य) पर [दोनों] हाथों से ताल बजाए जा रहे हों:—

साहियं वग्ग कहुइ जि लारा।
मनउ आवझ्झइ हथ्थ वज्जंति तारा॥ (६.५.५-६)

सुसज्जित होकर उनके बढ़ने का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वे ऐसे लगते हैं मानों उच्च (श्रेष्ठ) उपमा हो जो [कवि के मानस मे] आगे बढ़ती चली आ रही हो:—

राग वागे नहीं सुधि उरक्की।
मनउ उप्पमा उच्च आवइ धुरक्की॥ (६.५.१९-२०)

शेष वर्णन सामान्य है।

इसी प्रकार अन्यत्र हाथियो की सेना का वर्णन किया गया है (७.१०)। वर्णित जातियाँ हैं: सिंहली तथा सिंधी। वर्णन सामान्य है।

रचना के सर्ग ७ का पूर्वार्द्ध युद्ध की तैयारी के वर्णन से भरा है। इस वर्णन मे कवि-प्रथा के अनुरूप प्रायः अतिशयोक्ति का आश्रय लिया गया है, यथा निम्नलिखित छन्द मे :—

य दिन रोस रट्ठिवर चरि चहुवांन गहन कह।
सउ उप्परि सउ सहस वीह अगनित्त लष्ष दह।
तुटि गिर जस थल भरिग भजिग जल गंग प्रवाहह।
सह अच्छरि अच्छहि विमान सुरलोक नाग तह।
कहि चंद दंद दुहु दलि भयउ घन जिमि सिर सारह झरिग।
भर रोस हरी हर ब्रह्म तत तिहि समाधि तिहि दिन टरिग ॥ (७.५)

इसी प्रकार की कल्पना निम्नलिखित पंक्तियों में भी मिलती है:—

सज्जंत धूम धूमे सुनतं।
कपियं तीनपुर वेलि पत्तं।
डमरु डह डह किय गवरि कंतं।
जानिय जोग जोगादि अंतं।
किम किमे मेरु सिर भार रहियं।
किमे उच्चासु रवि रथ्थ नहियं।
कमल सुत कमल नहि अंबु लहियं।
संकियं ब्रह्म ब्रह्मांड गहियं।
राम रावन्न कवि किंन कहिता।
सकति सुर महिष बलिदान लहिता।
कस सिसुपाल पुरजवन प्रभुता।
आमिया जेन भय लषिष सुरता। (७.६.१-१२)

किन्तु इसी वर्णन मे सादृश्य-प्रधान उक्तियाँ सुन्दर हैं, यथा :-

सेन सन्नाह नव रूप रगा।
मनउ झिल्लिवइ ति त्रिनेत्र गंगा।
टोप टंकार दीसे उतंगा।
मनउ वद्दले पंति बंधी विहंगा।
जिरह जंगीन गहि अंगि लाई।
मनउ कंठ कंथीन गोरष पाई।
हथ्थरे हथ्थ कग्गे सुहाई।
घाय लग्गइ न थक्कइ थकाई।
राग जरजीन बानइत अच्छे।
देषिअइ जाणु जोगिंद कच्छे। (७.६.२७-३६)

इस प्रसग मे युद्ध-वाद्यों का जो वर्णन है, वह भी सुन्दर है; 'रासो'-कालीन वाद्य-समूह पर प्रकाश डालने के कारण वह उपयोगी भी है :—

नीसाण सादं ति बाजे सुचंगा।
दिसा देस दक्खिन्न लच्छी उपंगा।
तबल तदूर जंगी मृदगा।
मनउ नृत्य नारद्द कहुं प्रसंगा।
बजहि बंस बिसतार बहु रंग रगा।

जिने मोहि कर सथ्थि लग्गे कुरंगा।
वीर हंडीर सा सोभ श्रृंगा।
नचइ ईस सीसं धरो जासु गंगा।
सिंधु सहनाइ श्रवने उतंगा।
सुने अछ्छरिअ अछ्छ मज्जइ सुअंगा।
नफेरी नवरंग सारंग भेरी।
मनउ नृत्य नइ इंद्र आरंभ केरी।
सिंधु सावझ्झनं गेन भेरी।
झझे आवझ्झ हथ्थ करेरी।
उछ्छरहि धाउ घन घंट घेरी।
चिन्तिता अधिक वध्धे कुवेरी।
उप्पमा षड नव नैन झग्गी।
मनउ राम रावन्न हथ्थेव लग्गी। (७. ६. ३९–५६)

इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियो मे युद्धारंभ से उठी हुई धूल का जो अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है, वह मनोरम है :—

हयग्गय नरम्भरं।
उनव्विय जलध्धरं।
दिसा निसान वज्जये।
समुद्द सद्द लज्जये।
रजोद मद्द उष्पली।
व्योम पंक संकुली।
तटाक वाऊ रगिनी।
चकी चक वियोगिनी।
पयाल पाल पल्लये।
दिगंत मंत हल्लये।
अनंद ते निसाचरे।
कु कपि तुद्द साचरे।
भगंत गंग कुल्लये।
समुद्द सून फुल्लये।
प्रवत्ति छत्त छत्तये।
सरोज मोज हल्लये।
अषंड रेन मंडने।
हरप्पि इंदु छंडने॥ (७. १२. १–१८)

यद्यपि इसी प्रसंग मे सरोवर के रूपक का आश्रय लेते हुए युद्ध-स्थल का जो वर्णन किया गया है, वह प्रायः रूढ़ि-मुक्त है:—

सरं श्रोनि रंग पलं पारि पंकं।
वजइ मंस षंचि गधि वासि करंकं।
द्रुमं ढाक लोलति हालं ति देसं।
गये हंस नंसीग्र गेहे सुवेसं।

परे पानि जंघं धरंगं निनारे।
मनउ मच्छ कच्छं तरे तीर मारे।
सिर सा सरोजं कचे सा सिवाली।
गहे अत ग्रध्धी सु सौहै मराली।
तटं रुभ रत्तं भरंतं विचीरं।
वत स्याम' स्वेतं कत नीर पीरं। (७. १७.२७-३६)

द्वितीय युद्ध अपेक्षाकृत बहुत कम विस्तृत है, और इसी प्रकार उसका वर्णन भी संक्षिप्त है। सेना के प्रयाण से उठी रेणु के आडम्बर का वर्णन इसमे बहुत सुन्दर वर्णन हुआ है : दिन में रात्रि का आगमन समझकर चकवी-चकवे और सारस-युग्म को जो भ्रम होता बताया गया है, वह प्रभावपूर्ण है, और सरोवर के जल मे तारागण के प्रतिबिम्ब का जो वर्णन किया गया है, वह संश्लिष्ट चित्रण प्रणाली के कारण अत्यन्त सरस हुआ है :—

चक्कीय चक्क मुक्किवि चलंति।
रस सरस दरस सारस मिलति।
प्रतिबिंब अंभ अबरन तार।
भुगतइ न मुगति मंजरि सिवार।
चक्कित सुचित्त मन मित्त मित्त।
सर उभय भमिय आनंद चित्त।
दप्प आदप्प आलोल नयन।
विसरीय कोक सुरमग्ग वयन।
हसि चक्क चक्यि सम कहिग छदु।
माननिय मान यामिनिय चद। (११.१०.११-२०)

शेष युद्ध-वर्णन साधारण है।

इस प्रकार हम देखते है कि 'रासो' के युद्ध-वर्णन अतिशयोक्तियो और परंपरा-भुक्त कल्पनाओं से युक्त होते हुए भी सुदर है और कही-कही पर उनमे कवि ने कल्पना का आश्रय लेते हुए संश्लिष्ट चित्रण का भी यत्न किया है। तथ्य-प्रधानता की नही, उक्ति-प्रधानता की प्रवृत्ति प्रमुख है।

(२) नख-शिख वर्णन

'रासो' के वर्णनो मे नख-शिख-वर्णन अपनी विशेषता रखते है : वे परंपरा-भुक्त कम हैं, कल्पना की सरसता के साथ-साथ वर्ण्य पात्र के व्यक्तित्व का ध्यान उनमे कवि को सदैव रहा है।

नायिका संयोगिता का नख-शिख कथा के पूर्वार्द्ध मे नहीं आता है, कारण यह है कि 'रासो' के कवि ने कथा-नायक पृथ्वीराज को उसके रूप अथवा गुणो के कारण उस पर अनुरक्त नहीं किया है, वह तो केवल सयोगिता के प्रेमानुष्ठान के कारण उससे परिणय करता है। किंतु बाद मे पृथ्वीराज के केलि विलास के प्रसंग मे वह उसका वर्णन करता है। इस वर्णन मे कुछ कल्पनाएँ सरस हैं, यथा:

नितंब पर पड़ी हुए श्रृंखला को कवि कामदेव के धनुष की प्रत्यंचा कहता है :—

रसनेव रंज नितंविनी।
कुसुमेष पुष विलंविनी। (१०.११.११-१२)

उसके हृदय को वह मदन का अयन कहता है, जहाँ वह निरस्त होकर (निकाला जाकर) छिपने के लिए आगया है :—

हिय अयन मयन ति संथयउ।
भज गहन गहन निरंथयउ। (१०.११.१७-१८)

उसके अधरों को वह पक्व बिंब कहता है, जिनके शुक-सारिकादि से खंडित होने का भय बना रहता है :—

अधर पक्क सु बिंबन ।
सुक सालि आलिन पंडनं । (१०.११.२५-२६)

उसके नेत्रो के अपागो को वह सित-असित उररि (बकरे) अथवा उड़ने का अभ्यास करते हुए खंजन-वत्स कहता है:—

सित असित उररि अपंगयो ।
अभ्भिसहिं पंजन बच्छयो ।

उसके देदीप्यमान ललाट पर लगे हुए मृदमद के तिलक की उपमा वह सिधु से निकले हुए नवीन चंद्रमा की गोद मे बैठे हुए इन्दुपुत्र (मृग) से करता है:—

तस मध्य मृगमद विंदु जा ।
जस इंदु नंद ति सिंधुजा । (१०.११.४१-४२)

'रासो' के कवि ने कथा के प्रारम्भ में ही संयोगिता की वयस्का सहचरियों का जो वर्णन किया है, वह भी सुन्दर है, और उनकी जो कल्पना वसंत-प्रियाओं के रूप मे की है, वह दर्शनीय है :—

अधरत्त पत्त पल्लव सुवास ।
मजरिय तिलक षंजरिअ पास ।
अलि अलक कठ कलयंठ मंत ।
संजोगि भोग वरु भयु वसत । (२.५.१-२०)

आगे चलकर उसने कन्नौज-वर्णन के प्रसग में जल भरती हुई सुन्दरियों का वर्णन किया है। इस वर्णन मे कुछ कल्पनाएँ चमत्कारपूर्ण हैं, यथा:

कवि कहता है कि उनकी कटि मे जो शृंखला पडी हुई है, उसके कारण ऐसा लगता है मानो वे वनिताएँ सिंहिनियाँ हों:—

कटिस्त सोभ सेडरी ।
वनिस्त जानि केसरी । (४.१४.९-१०)

उनकी नासिका की वह बँधे हुए क्रीडा-कीर से तुलना करते हुए वह कहता है कि वे उनके [बिंब-तुल्य] रक्त अधरों को खण्डित नहीं कर रहे हैं—इसलिए वे क्रीडा-कीर और वह भी बँधे हुए क्रीडा-कीर उचित ही कहे गए हैं:—

अधर आरत्त रत्तये ।
सुकीक कीर बंधये । (४.१४.२१-२२)

पृथ्वीराज के इस कथन पर कि ये सुन्दरियाँ तो दासियाँ थीं, चन्द ने उन नागरियों के रूप का वर्णन नहीं किया है जो असूर्यम्पश्या हैं, वह स्वकीयाओं के रूप में कन्नौज की अन्य नागरी नारियों का वर्णन करता है। इस वणन में तुलनात्मक तथ्यपूर्णता दर्शनीय है, यथा:

जहाँ उसने जल भरने वाली सुन्दरियों के कटाक्षों का वर्णन किया है, उसने कहा:—

दुराय कोय लोचने ।
प्रतष्ष काम मोचने ।
भवध्भि ओट भौंहये ।
चलंति सोह सौंहये । (४.१४.२९-३२)

किंतु इन स्वकीयाओं के नेत्रों को उसने निर्वात दीप के समान अचंचल कहा है:—

पंगुरे अयन ने नयन दीसं।
बिचि जोत सारंग निर्वात रीसं। (४.२०.९-१०)

कवि ने कहा है कि ये दिव्य-दर्शना है और धीमे स्वर में बोलती हैं:—

दिव्य दरसी तिहां ढिल्ल बोलं।

उनके चरण-नखो की निर्मलता का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि उनमे उनके स्वकीय पतियो का जो प्रतिबिब पड़ रहा है, वह ऐसा लगता है मानो उन्होंने मानकर रक्खा हो और उनके पति उनके चरणो मे पड़े हो:—

नषं निर्मलं दर्पनं भाव दीस।
समीपं सुकीयं किय मानरीसं। (४.२०.३५-३६)

यहाँ तक मानवीय नख-शिख वर्णन की बात रही; सरस्वती के नख-शिख-वर्णन मे 'रासो' के कवि के देव-विषयक नख-शिख वर्णन का भी एक उदाहरण मिल जाता है। यह नख-शिख नही, शिख-नख है, अर्थात् वर्णन शिखा से नख की ओर बढ़ता है। यह वर्णन भी सुन्दर है, यथा

कपोलों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे प्रातःकाल मे उदित उस चन्द्रमा के समान है जो राहु के कलंक से बचने के लिए [अपने मृगरथ के] जूए को बहुत खींच रहा हो—सश्लिष्ट कल्पना दर्शनीय है:—

कपोल रेख गातयो।
उवत इंदु प्रातयो।
बभूव जूव षचये।
कलंक राह वंचये। (३.१७.७-१०)

नेत्रों की उपमा दो छोटे वारि-खजनो से दी गई है, जो रूप जल मे तैर रहे हो:—

उछंमि वारि खजयो।
तिरति रूप रंजयो। (३.१७.१३-१४)

ग्रीवा पर पड़ी हुई मुक्ता माल की तुलना सुमेरु पर गिरती हुई गङ्गा की धारा से की गई है:—

सुग्रीव कंठ मुत्तया।
सुमेर गंग पत्तयो। (७.१४.१९-२०)

उसके नखो को आर्द्र और रक्षित कहा गया है—वीणा-वादन के लिए रक्षित नखो की आवश्यकता को कवि ने ध्यान मे रखा है:—

नषाद्रि अद्द रष्षियं।
धरंति सच्छ कच्छयं। (७.१४.२३-२४)

इन नख-शिख-वर्णनो से ज्ञात होता है कि 'रासो' के कवि ने सर्वत्र सुरुचि और कल्पना से काम लिया है; उसके नख-शिख केवल परंपरा-मुक्त और निर्जीव नहीं हैं, उनमे सजीवता है और वे वर्ण्य पात्र को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत किए गए हैं।

(३) सामान्य प्रकृति-वर्णन

सामान्य प्रकृति वर्णन 'रासो' में अधिक नहीं है, किन्तु जितना है, सुन्दर है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

एक स्थान पर प्रातः काल की मद गज से तुलना करते हुए 'रासो' के कवि ने सुन्दर कल्पना की है—वह कहता है कि यह मद विन्दु चुवाता हुआ मद गज का गण्डस्थल नहीं है वरन् [पुष्प चुवाती हुए] तरु शाखा है, यह नीचा जाने वाला शशि है न कि हाथी का निर्घाटित कुंभ है, उसी

प्रकार यह [पुष्पों पर गुञ्जार करने वाला] मधुकर-वृन्द है न कि गज के मद से आकृष्ट अलिकुल है, [ऐसी उन्मत्तता कारिणी प्रात: काल की वेला में] तरुण प्राणों वाला राजा जयचन्द [रात्रि में जागने के कारण] लटपट पैर रखता हुआ आ पहुँचा :—

कांती भार पुरा पुनर्मद गजं शाखा न गंडस्थलं।
उच्छं तुच्छ तुरा स शशि कमनं करि कुंभ निद्रादलं।
मधुरे साइ सकाइता अलिकुलं गुंजार गुंजा तहा।
तरुणे प्राण लटापटा पगपग जयराज संप्रापता ॥ (५.४१)

प्रभात और मद गज की तुलना की इस पृष्ठभूमि में रात्रि में किसी कामिनी के सुख-रति-समर में नींद को विस्मृत कर जगे हुए होने (५.३९-४०) के कारण लटपट पैर रखते हुए जयचन्द का जो चित्र कवि ने उपस्थित किया है, वह अपनी सरस व्यजना के कारण अवश्य ही रमणीय बन गया है।

संध्या का वर्णन, इसी प्रकार, एक अन्य स्थान पर भावपूर्ण हुआ है; उसमें कवि ने संयोगिता की मनोस्थिति की जो व्यंजना संध्या के उपादानों को लेकर की है, वह कोमल हुई है। वह कहता है, 'मित्र (सूर्य) महोदधि में जा चुके थे, दिशाओं को तम ने ग्रस लिया था, पथिक-वधू की दृष्टि [उसके प्रियतम के] पथ में उसी प्रकार अधिस्थित हो चुकी थी जैसी [खिंची हुई] चग होती है, युवाओं और युवतियों की सुमति उसी प्रकार नष्ट हो चुकी थी जिस प्रकार रस-लुब्ध सारस अथवा [मधु-] मुग्ध मधुप की होती है :—

मित्त महोदधि मझ्झ दिसंत ग्रसंत तम।
पथिक वधू पथि दिट्ठ अहुट्टिय चंग जिम।
जुव जन जुवती गंजि सुमत्ति अनंगमय।
जिमि सारसरसलुध्ध त मुध्ध मधुप्प लय ॥ (७.२२)

बाद में रणक्षेत्र में गए पृथ्वीराज के आगमन की संध्या काल में प्रतीक्षा करती हुई सयोगिता के भावों की (७.२३) जो व्यजना इस पृष्ठभूमि के योग से हुई, है वह अवश्य ही ललित हो उठी है।

जो ऋतु-वर्णन षड्ऋतु-वर्णन के रूप में मिलता है, उसके अतिरिक्त उल्लेखनीय ऋतु-वर्णन केवल एक स्थान पर आता है और वह वसतागम का है। कल्पना शिशर पर वसत के आक्रमण के रूप में की गई है, जिसमें शिशर पराजित होता है और वसंत विजयी :—

वनि वग्ग मग्ग हलि अंब मउर।
सिर ढरहि मनहुं मनमथ्थ चउंर।
चलि सीत मंद सुगंध वात।
पावक्क मनहुं विरहिनि निपात।
कुहु कुहु करंति कलयंठि जोटि।
दल मिलइ मनहु अनअग कोटि।
करि पल्लव पत्त ति रत्त नील।
हलि चलहि मनहु मनपथ्थ पील।
कुसुमेष कुसुम तेन धनुष साजि।
भृंगी सुपंति गुन गरुव गाजि।
संजर सुवान सुमनाइ नेह।
विहारवे बीर जुवजननि देह।

उच्छलिअ कलिअ चपक सरीप ।
प्रज्वलिअ प्रगट कंदर्प दीप ।
करवत्त केत केतकि सुकरि ।
विहरंति रत्त वितरंति छत्ति ।
परिरंभ अनिल कदली कपान ।
सिर-धुनहि सरस सुनि जानु तान ।
झंकुलिय झाम अभिराम रम्य ।
नहु करइ • पीय परदेस गम्य ।
फुल्लिग पलास तजि पत्त रत्त ।
रण रंग सिसिर जित्तउ वसंत । (२.५.२५-४६)

इस वर्णन में कवि ने प्रस्तुत विषय के साथ अप्रस्तुत का निर्वाह किस प्रकार सफलता पूर्वक किया है, यह स्वतः देखा जा सकता है।

फलतः सामान्य प्रकृति-वर्णन मे भी 'रासो' का कवि सफल रहा है; उसने पृष्ठभूमि के रूप में जो प्रकृति-वर्णन किया है, वह अपनी अनुकूल व्यजना के द्वारा रमणीय बन गया है, और इस वर्णन में उसने अप्रस्तुत की जो योजना की है वह भी सरस हुई है।

(४) षड्ऋतु-वर्णन

'रासो' का षड्ऋतु-वर्णन कथा-नायक और उसकी नव विवाहिता पत्नी के सम्भोग शृंगार का है। कथा-नायक उस नव विवाहिता को भोगायित कर रहा है, किंतु उसका जीवन युद्धो मे बीता है, इसलिए वह उसके प्रेम-पाश से बार-बार निकल कर जाने का प्रयत्न करता है। नायिका ऋतुओं की रमणीयता का प्रतिपादन करते हुए अपने प्रणयानुरोधो से उसे रोकती है, यही इस षड्ऋतु-वर्णन का वर्ण्य है। ऋतुओं का क्रम वसंत से प्रारम्भ होता है:—

सामग्गं कलधूत नूत शिखरा मधुलेहि मधुवेष्टिता ।
वाता सीत सुगध मंद सरसा आलोल साचेष्टिता ।
कंठी कंठ कुलाहले मुकलया कामस्य उद्दीपनी ।
रत्ते रत्त वसंत पत्त सरसा संजोगि भोगाइते ॥ (९.९)

[जिस वसंत में तरु-] शिखरों पर [रंग-बिरंगे पुष्पों के कारण मानो] नूतन कलधूत (चाँदी-सोने) की समग्रता हो गई है और मधुकर मधु से आवेष्टित [हो रहे] हैं, वात शीतल, मंद, सुगंधित और सरस होकर चेष्टाओं मे विशेष लोल हो रही है, कंठी (कोयलों) के कंठ के कोलाहल से मुकुलों (कलियों) में कामोद्दीपन हो रहा है और जो वसत सरस [नवीन] पत्तों के कारण लाल हो रही है, ऐसे वसंत में संयोगिता [पृथ्वीराज के द्वारा] भोगायित हो रही है।

दीहा दिव्व सहंग कोप अनिला आवर्त्त मित्ताकरं ।
रेने सेन दिसान थान मलिना गोमग्ग आडंबरं ।
नीरे नीर अपीन छीन छपया तपया तरुण्या तनं ।
मलया चंदन चंद मंद किरणा सु ग्रीष्म आसेचनं ॥ (९.१०)

"[जिस ग्रीष्म में] दिन दिव्य (तप्त लौहादि) [के समान] हो रहे हैं, अनिल (वायु) कुपित हो रही है, मित्र (सूर्य) के करों से उत्पन्न आवर्त्त (बवंडर) उठने लगे हैं, रेणु की सेनाओं से दिशाएँ और स्थान मलिन हो रहे हैं, [यथा] गोमार्ग [की धूल] के आडबर से हों, जहाँ जो भी नीर था, वह अपीन (क्षीण) हो गया है, रात्रि क्षीण हो गई है और तप (गर्मी) का तनु तरुण

हो गया है, मलय [समीर], चंदन और चन्द्रमा की मंद किरणें ही [ऐसे] ग्रीष्म में [मुरझाते हुए प्राणों का] सिंचन करने वाले हो रहे हैं।"

आद्रे बद्दल मत्त मत्त विषया दामिन्नि दामायते।
दादुल्ले दल मोर सोर सरसा पप्पीहान् चीहायते।
श्रृंगाराय वसुन्धरा ललितया सलिता समुद्रायते।
यामिन्या सम वासरे त्रिसरता॰ प्रावृट्ट पश्यमते ॥ (९.११)

"[जल से] आर्द्र बादल विषय में मत्त हो रहे हैं, और [उनकी प्रिया] दामिनी दमक रही है, दादुरदल मोरों के साथ शोर कर रहा है, और पपीहा चीत्कार कर रहा है; वसुन्धरा ने लालित्यपूर्वक श्रृंगार कर लिया है, और सरिता [उमड कर] समुद्र बन रही है; वासर (दिन) भी [अपर्याप्त प्रकाश के कारण] यामिनी के समान [अन्धकार पूर्ण] हो रहे हैं, वर्षा में ऐसा दिखाई पड़ रहा है।"

पित्ते पुत्त सनेह गेह भुगता युक्तानि दिव्या दिने।
राजा छत्रनि साजि राजि छितया मंदाननभासने।
कुसुमे कातिग चंद निर्मल कला दीपानि बर दायते।
मां मुक्के पिय बाल नाल समया सरदाय दर दायते ॥ (९.१२)

"जो पिता-पुत्रादि के स्नेह और गृह का भोग कर रही हैं, अथवा जो सयोगिनी हैं, उनके लिए [शरद के] दिन दिव्य हैं, राजा-गण छत्रों को साज कर और क्षिति पर शोभित होकर आनन्द-युक्त आननों से भासित हो रहे हैं। कार्तिक में कुसुमों की और चन्द्रमा की कलाएँ निर्मल हो रही हैं, और दीपक वरदायी हो रहे हैं (दीपदान करके लोग मनोरथ की प्राप्ति कर रहे हैं), हे प्रिय, बालाको इस नाल (कमल-नाल के निकलने) के समय न छोड़ो, [क्योंकि] शरद का दल दिखाई पड़ रहा है।"

क्षीनं वासर स्वास दीघ निसया शीत जनेतं वने।
सज्जं संजरवान यौवन सया आनग आनंगने।
यउ बाला तरुणी निवृत्त पत्त नलिनी दीना न जीवा षिणे।
मा कांत हिमवत मत्त गमने प्रमदा ने आलंबने ॥ (९.१३)

"वासर (दिन) क्षीण होकर स्वास [मात्र] हो गए हैं, और निशाएँ दीर्घ हो गई हैं, जनेत (बस्तियों) और बन में [सर्वत्र] शीत व्याप्त हो रहा है; यौवन के कारण शय्या संज्वर-कारिणी हो गई है और अनग ही अनग का अधिकार हो गया है; जो बाला तरुणी है वह निवृत्त-पत्र नलिनी के समान हो रही है, वह दीना क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकेगी; [इसलिए] हे कान्त इस मत्त हेमंत में गमन न करो, अन्यथा प्रमदा निरबलंब हो जायगी।"

रोमाली वन नीर निम्ब वरये गिरि डंग नारायते।
पव्वय पीन कुचानि जानि सयला फुंकार झुंकारये।
शिशिरे सर्वरि वारुणे च विरहा मम हृदय विद्दारये।
मा कांत मृग बद्द सिंघ गमने किं देव उब्बारये ॥ (९.१४)

"[स्त्री की] रोमावली ही घन (वन) है, श्रेष्ठ स्नेह-नीर ही गिरि और द्रंग [के पास बहती हुई] जल की धारा है; उसके पीन कुच ही मानो समस्त पर्वत हैं; वह जो फुकार (सीत्कार) छोड़ती है, वही मानो [पवन का] झकोर है, शिशिर की रात्रि में विरह ही वह बारण (हाथी) है जो उसकी हृदय रूपी वाटिका का विदारता (तहस-नहस करता) है; उस विरह रूपी मृग (वन-

चारी वारण) का वध करने वाले सिंह, हे कान्त, तुम मत गमन करो, हे देव ! क्या तुम नारी के हृदय को विरह-वारण से उबारोगे ?"

इस षड्ऋतु-वर्णन की सरसता स्वतः प्रकट है। शिशिर-सम्बन्धी छन्द मे जो रूपक का चमत्कार है, वह भी दर्शनीय है।

(५) अन्य वर्णन

'रासो' मे कुछ अन्य वर्णन भी है, किन्तु वे काव्य की दृष्टि से प्रायः इतने सरस नहीं है जितने उपर्युक्त है, यद्यपि वे अन्य दृष्टियों से कभी-कभी बहुत उपयोगी है। उदाहरणार्थ, कन्नौज का जो नगर-वणन कवि ने चौथे सर्ग के प्रारम्भ में किया है, और पीछे जयचन्द के नृत्य-गीत समारोह का जो वर्णन पॉचवे सर्ग मे किया है, 'रासो' कालीन नागरिक जीवन तथा नृत्य-संगीत की परम्पराओं पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। फिर भी कल्पना से चमत्कृत सरस वर्णनो का सर्वथा अभाव नही है। नीचे दिया हुआ गङ्गा का वर्णन देखिए, किस प्रकार कवि ने गङ्गा को एक कामिनी का रूप दे दिया है:—

उभय कनक सिंभ भ्रिंगं कठीव छीला।
पुनरपि पुहप पूजा वद्दति रति विप्पराज।
उरसि मुत्तिहारं मध्धि घटीव सबद।
मुगति सुकल वल्ली नंग रंग त्रिवल्ली॥ (४.१२)

"[इसके दोनो तटों पर जो दो कनक शंभु हैं [वे ही इसके दोनों कुच हैं], भृगो की कठध्वनि [ही इसकी कठ-ध्वनि] है, पुनः इसे पुष्प-पूजा [अर्पित] करके विप्रराज (श्रेष्ठ विप्र) इससे अपनी रति (भक्ति) निवेदित करते हैं, इसके उर मे [जल-कणों का] मुक्ताहार है, और मध्य मे [पूजकों द्वारा किया जाने वाला] घटी [कटिकी घंटी] का शब्द है, इस प्रकार यह सुन्दर मुक्ति की वल्ली अनंग-रंग ('काम-क्रीड़ा) की त्रिवल्ली है।'

दूसरी ओर काम-कला को कवि ने संगीत कला और कामिनी-पूजा को देव-पूजा मे किस प्रकार ढाल दिया है, यह दर्शनीय है:—

सुक्खं सुक्ख मृदंग तार जघनो रागं कला कोकनं।
कंठी कंठ सुभासनं सम इतं कामं कला पोषनं।
उरंभी रंभकिता गुणं हरि हरो सुरभीव पवनापिता।
एवं सुष स काम कुंभ गहिता जयराज रात्रिगता॥ (५.४०)

अर्थात् [रति-]सुख में [संगीत-]सुख का, [कामिनी के] जघनों मे मृदंग के ताल का, कोक-कला मे राग-कला का, [कामिनी के] कठ मे [गायिकाओं के] कंठ का, यहाँ (कामिनी के) सुभाषण मे उनके सुभाषण का, इस प्रकार [काम-कला] मे [संगीत-कला] का [जयचन्द ने] पोषण किया; उसने [कामिनी के] उर से [परि-] रंभण करते हुए [रात्रि के अंतिम प्रहर में मानो] हरि और हर के गुणों से [रंभण] किया; इस प्रकार सुख-पूर्वक काम-कुंभों (कुचों) को ग्रहण किए हुए राजा जयचन्द की रात्रि व्यतीत हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'रासो' में वर्णन विविध है, और विविध प्रकार से वे कवि के द्वारा सरस बनाए गए हैं। रचना की वर्णन-सपत्ति अतः असाधारण है, यह भली भाँति प्रकट है।

—:*:—

२२. 'पृथ्वीराज रासो' के छंद

जैसा ऊपर कहा जा चुका है[१] 'पृथ्वीराज रासो' रासो-परंपरा की छंद-वैविध्य-परक शाखा की रचना है। इसलिए इसके छंदों के संबंध मे कुछ जान लेना आवश्यक होगा। इसमें कुल दो दर्जन से अधिक प्रकार के छंदो का प्रयोग किया गया है, जिनमें से आधे से कम प्रकार के छंद मात्रिक और शेष आधे से अधिक प्रकार के वर्णिक हैं। किंतु इससे यह समझना उचित न होगा कि रचना भी इसी अनुपात से इन छंदों मे हुई है। स्थिति यह है कि वर्णिक छंद केवल रचना का लगभग $\frac{1}{6}$ निर्मित करते हैं और उसका शेष $\frac{5}{6}$ मात्रिक छंद निर्मित करते हैं।

इन छंदों का अध्ययन एक और दृष्टि से भी करने की आवश्यकता है : वह यह कि इनका कोई विशेष संबंध वर्ण्य विषय से भी है या नहीं।

वर्णिक छंदों में सबसे अधिक प्रयुक्त साटिका तथा भुजंग प्रयात (भुजंगी) हैं। भुजंग प्रयात (भुजंगी) तो प्रायः सभी प्रकार के प्रकरणों में आए हैं, किंतु साटिका केवल कोमल प्रसगों में प्रयुक्त हुआ है, परुष प्रसगो मे नहीं हुआ है। शेष वर्णिक छंद इतने कम बार प्रयुक्त हुए है कि उस के आधार पर उनके प्रयोगों की प्रवृत्तियों का कोई अनुमान लगाना उचित न होगा।

मात्रिक छंदों में से सब से अधिक प्रयुक्त छंद दोहरा (दूहा) है, जो रचना का भी सर्वाधिक प्रयुक्त छंद है। यह रचना के सभी प्रकरणो में समान रूप से आया है। किंतु परुष प्रसंगो में यह उतना अधिक नहीं प्रयुक्त हुआ है जितना शेष प्रकार के प्रसंगों मे हुआ है। इसके बाद सर्वाधिक प्रयुक्त छंद कवित्त (छप्पय) है : वह कोमल प्रसंगों मे रचना मे कहीं भी नहीं प्रयुक्त हुआ है, परुष प्रकार के प्रसगों में ही प्रयुक्त हुआ। इनके बाद सर्वाधिक प्रयुक्त मात्रिक छंद रासा, पद्धडी, गाथा, मुडिल्ल तथा अडिल्ल हैं। रासा तथा पद्धडी क्रमशः कोमल और परुष प्रसगों में प्रयुक्त हुए हैं; मुडिल्ल तथा अडिल्ल परुष प्रसंगों को छोड़ कर प्रायः सभी प्रकार के प्रसंगो मे प्रयुक्त हुए हैं। गाथा विविध प्रसंगों मे प्रयुक्त हुआ है, फिर भी परुष प्रसंगों में कम आया है। शेष मात्रिक छंद इतनी कम बार आए हैं कि उसके आधार या उनकी प्रयोग संबधी प्रवृत्तियों के विषय मे कोई अनुमान करना उचित न होगा। विभिन्न मात्रिक और वर्णिक छंद रचना मे जहाँ-जहाँ पर आते हैं, नीचे उसकी तालिका दी जा रही है।

[१] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'रासो काव्य-परंपरा और पृथ्वीराजरासो' शीर्षक।

मात्रिक छंद

(१) दोहरा (दूहा): १.५; २.८, २.९, २.२१, २.२२, २.२३, २.२६, २.२७, २.२८; ३.१, ३.३, ३.९, ३.१०, ३.१३, ३.१४, ३.१५, ३.२१, ३.२२, ३.२३, ३.२४, ३.२५, ३.२६, ३.३५, ३.३७, ३.३८, ३.४०, ३.४२, ४.२, ४.३, ४.४, ४.५, ४.६, ४.८, ४.१५, ४.१६, ४.१७, ४.१८, ४.१९, ४.२१, ५.२, ५.११, ५.१२, ५.१४, ५.१५, ५.१६, ५.१७, ५.१८, ५.२०, ५.२१, ५.२२, ५.२३, ५.२६, ५.२७, ५.२८, ५.२९, ५.३०, ५.३१, ५.३२, ५.३३, ५.३४, ५.३५, ५.३७, ५.३९, ५.४२, ५.४३, ५.४४, ५.४६, ५.४७; ६.१, ६.२, ६.३, ६.४, ६.६, ६.८, ६.९, ६.१०, ६.११, ६.१६, ६.१८, ६.१९, ६.२०, ६.२१, ६.२२, ६.२४, ६.३०, ६.३१; ७.१ ७.३, ७.७, ७.८, ७.९, ७.११, ७.१३, ७.१९, ७.२९; ८.१२, ८.१३, ८.१५, ८.१७, ८.१८, ८.२०, ८.२१, ८.२२, ८.२३, ८.२५, ८.२७, ८.२९, ८.३१, ८.३३, ८.३६; ९.२, ९.३, ९.४, ९.५; १०.२, १०.४, १०.८, १०.९, १०.१२, १० १३, १०.१४, १०.१६, १०.१८, १०.१९, १०.२०, १०.२१, १०.२२, १०.२४, १०.२६, १०.२७; ११.१, ११.२, ११.३, ११.४, ११.५, ११.६, ११.९, १२.२, १२.३, १२.४, १२.५, १२.६, १२.९, १२.१०, १२.१२, १२.१४, १२.१६, १२.१७, १२.१८, १२.२०, १२.२१, १२.२२, १२.२४, १२.२५, १२.२६, १२.२७, १२.२८, १२.३०, १२.३१, १२.३४, १२.३६, १२.३७, १२.४३, १२.४४, १२.४७ = १६५

(२) कवित्त (छप्पय): ३.४, ३.११, ३.२७, ३.२९, ३.३१, ३.३२, ३.३३, ३.३६; ४.१; ५.१९, ५.४५, ५.४८; ६.३३; ७.५, ७.२०, ७.२१, ७.२५, ७.२७, ७.२८. ७.३०; ८.१ ८.२, ८.३, ८.४, ८.५, ८.६, ८.११, ८.१४, ८.१६, ८.१९, ८.२४, ८.२६, ८.२८, ८.३०, ८.३२, ८.३४, ८.३५; १०.२३, १०.२५, १०.२८, १०.२९; ११.७, ११.८, ११.११, ११.१३, ११.१४, ११.१५, ११.१६, ११.१८, १२.१, १२.३५, १२.३८, १२.४०, १२.४१, १२.४२, १२.४५, १२.४६, १२.४८, १२.४९ = ५९

(३) रासा: २.४, २.१४; ३.७, ३.८, ३.४३; ४.१३; ६.७, ६.१३, ६.१४, ६.३४; ७.२२, ७.२३; ९.६, ९.७, ९ ८; १०.१५, १०.१७ = १७

(४) मुडिल्ल: ३.२०, ३.३९; ५.१, ५.४, ५.५, ५.६, ५.८, ५.९; ६.१२, ६.२३, ६.२७, ६.२८; १०.१, १०.३, १०.६, १०.७ = १६

(५) पद्धडी: २.१, २.३, २.५, २.६, २.१०, २.११, २.१२; ४.७; ११.१०; १२.१३, १२.१५, १२.२३, १२.३२, १२.३३ = १४

(६) गाथा: २.२, २.१६; ३.५, ३.१२, ३.३४; ६.१७, ६.३२; ७.२, ७.१८, ७.२६; ८.७, ८.८; १०.१० = १३

(७) अडिल्ल: ३.१६, ३.१८, ३.१९, ३.२८, ३.४१; ५.२५; ६.२६; ९.१; १०.५ = ९

(८) वस्तु: ५.३; १२.७, १२.८ = ३

(९) चउपई: १२.१९, १२.३९ = २

(१०) गाथा मुडिल्ल: ६.२५ = १

(११) त्रिभंगी ४.११ = १

वर्णिक छंद

(१) साटिका : १.१, १.२, १.६, २.१७, २.१८, २.२०, २.२४, ३.२, ३.६, ५.७, ५.१०, ५.४०, ५.४१, ९.९, ९.१०, ९.११, ९.१२. ९.१३, ९.१४ = २०

(२) भुजग (भुजंगी) १.४; २.७, ४.१०, ४.२०, ४.२२, ४.२३, ५.१३, ६.५, ७.६, ७.१०, ७.१६, ७.१७, ७ ३१, ८.१०; ११.१२, १२.२१ = १६ •

(३) श्लोक : २.१९, २ २५; ६ २९; ७.२४, ११.१७ = ५

(४) अर्धनाराच : ३.१७. ४.१४; ५.२४, ७.१२ = ४

(५) नाराच : २.१३, ५.३८, ६.१५ = ३

(६) त्रोटक : ८.९; १२.२९ = २

(७) साटक : ५.३६ = १

(८) डंडमाल : १०.११ = १

(९) आर्या : ३.३० = १

(१०) मोतीदाम : ४.२५ = १

(११) रूपया : ७.१४ = १

(१२) वसंत तिलक : ४.१८ = १

(१३) भमरावलि : ७.४ = १

(१४) रसावला : ७.१५ = १

(१५) विराज : १.३ = १

—:*:—

२३. 'पृथ्वीराज रासो' की शैली

किसी भी प्राचीन रचना की शैली पर विचार करते समय यह आवश्यक होता है कि उसकी भाषा के प्रकृत तत्वों को अलग कर लिया जावे, और इनको सुलझा लेने के अनन्तर[1] उसकी शैली के तत्वो को समझना सुगम हो जाता है। शैली के भी दो रूप होते हैं, एक तो उसका सामान्य रूप होता है, जो रचना मे व्यापक रूप से मिलता है, और दूसरा उसका विशिष्ट रूप होता है, जो वर्ण्य विषय अथवा छन्द सापेक्ष्य होता है। प्रस्तुत रचना की शैली पर विचार करते समय दोनों रूपों पर अलग-अलग विचार करना सुविधाजनक होगा।

सामान्य शैली

रचना की सामान्य शैली पर विचार करने के लिए उदाहरण के लिए संपादित पाठ का कैंवास-वध का वह उद्धरण (३.२१–२७) लिया जा सकता है जो ऊपर रचना की भाषा के सम्बन्ध मे विचार करते हुए दिया गया है। डॉ० नामवर सिंह ने रचना की ध्वनि-विषयक प्रवृत्तियों का निर्देश करते हुए कहा है, "छन्द के अनुरोध से प्रायः लघु अक्षर को गुरु और गुरु अक्षर को लघु बना दिया गया है। लघु को गुरु बनाने के लिए शब्दान्तर्गत—

(क) ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण,

(ख) व्यंजन-द्वित्व,

(ग) स्वर का अनुस्वार-रंजन, तथा

(घ) समास मे द्वितीय शब्द के प्रथम व्यंजन का द्वित्व करने की प्रवृत्ति है। इसके विपरीत गुरु को लघु बनाने के लिए—

(क) दीर्घ का ह्रस्वीकरण,

(ख) व्यंजन-द्वित्व का क्षतिपूर्ति रहित सरलीकरण, तथा

(ग) अनुस्वार के अनुनासिकीकरण

की विधि प्रयोग मे लाई गई है।"[2] उन्होंने इस प्रवृत्ति के उदाहरण भी दिए हैं,[3] जो कि प्रायः ठीक हैं और इस संस्करण मे भी मिलेंगे। केवल यह कहना आवश्यक होगा कि यह प्रवृत्ति उतनी

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराजरासो की भाषा' शीर्षक।

[2] डॉ० नामवर सिंह: 'पृथ्वीराजरासो की भाषा', सरस्वती प्रेस, बनारस, पृ० ११।

[3] वही, पृ० ५९-६१।

व्यापक नहीं है जितनी सामान्यतः समझी जाती या समझी जा सकती है। इसके प्रमाण में संपादित पाठ के ऊपर उल्लिखित उद्धरण को लिया जा सकता है। उसमें छन्दोनुरोध के कारण हुए (क) ह्रस्व स्वर के दीर्घीकरण का कदाचित् एक ही प्रयोग मिलता है, वह है सिद्धि > सिद्धी (३.२३.२); (ख) व्यंजन द्वित्व के कदाचित् केवल चार प्रयोग मिलते है : नागपुर > नागप्पुर (३.२२.१), दाहिमउ > दाहिम्मउ (३.२२.२), विरदिया > विरद्दिया (३.२७.६) तथा निमटिहि > निमट्टिहि (३.२७.६)। स्वर के अनुस्वार-रंजन का कोई प्रयोग नहीं मिलता है, और न समास के द्वितीय शब्द के प्रथम व्यजन के द्वित्व करने का कोई प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार सपादित पाठ के उपर्युक्त उद्धरण में (क) दीर्घ के ह्रस्वीकरण का कोई प्रयोग नहीं मिलता है, (ख) व्यंजन-द्वित्व के क्षतिपूर्त्ति रहित सरलीकरण का कदाचित् एक ही प्रयोग मिलता है : दिट्ठि > दिठि (३.२१); और (ग) अनुस्वार के अनुनासिकीकरण का भी कदाचित् एक ही प्रयोग मिलता है : भुजग > भुजग (=भुजँग)।[१]

विशिष्ट रूप

इस प्रसंग में यह बताना आवश्यक होगा कि शैली मे अन्तर छन्द-भेद के आधार पर बहुत अधिक हो जाता है। कुछ छन्द ऐसे हैं जिनमे संस्कृताभास लाना 'रासो' के कवि को आवश्यक प्रतीत हुआ है, यथा श्लोक, साटिका या वसंत तिलक में; कुछ छन्द ऐसे हैं जिनमें प्राकृताभास लाना उसे आवश्यक प्रतीत हुआ है, यथा गाथा मे; शेष में सामान्यतः भाषा का प्रकृत रूप रखना उसके लिए स्वाभाविक था, केवल जैसा हम नीचे देखेंगे, वर्ण्य विषय-भेद से शैली में भी यत्किंचित अन्तर उसने अवश्य ही प्रस्तुत किया है। छन्द भेद के आधार पर रचना की शैली का अध्ययन कवि की भाषा के प्रकृत रूप को समझने के लिए आवश्यक है, यह बात कुछ प्रस्तुत रचना के ही सम्बन्ध मे नहीं, छन्द-वैविध्य-प्रधान हिन्दी की समस्त प्राचीन रचनाओं के सम्बन्ध में लागू होती है : अन्तर केवल परिणाम का हो सकता है। और यदि रचना के मात्रिक और वर्णिक छन्दों पर हम ध्यान दें[२], तो डॉ० नामवर सिंह द्वारा उल्लिखित प्रवृत्ति पर ही नहीं, शब्द-योजना और शैली पर भी एक निश्चयात्मक प्रकाश पड़ेगा। हम देखेंगे कि—

(१) जहाँ तक मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है, प्रायः सर्वत्र भाषा का प्रकृत रूप मिलेगा, अनुस्वार-रंजन न मिलेगा, समास और तत्सम के प्रयोग कम ही मिलेंगे, सामान्य व्यंजन-द्वित्व अधिक मिलेंगे; इस प्रकार के छद हैं : दोहरा (दूहा), कवित्त (छप्पय), रासा, पद्धडी, मुडिल्ल, अडिल्ल, वस्तु, चउपई तथा गाथा मुडिल्ल। त्रिभंगी ही इस परम्परा का एक मात्र अपवाद है, जिसमे निम्नलिखित (२) के वर्णवृत्तों की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं; गाथा में भी एकाध उदाहरण (यथा ६.१७) इस प्रकार के मिलते हैं, किन्तु वे अपवाद-स्वरूप ही हैं।

(२) जहाँ तक वर्णिक छंदों का प्रश्न है, कुछ प्रकार के वृत्तों मे संस्कृताभास लाने का प्रयत्न मिलेगा, और इसलिए अनुस्वार-रंजन बहुत होगा, समास और तत्सम शब्दों का प्रयोग भी अपेक्षाकृत अधिक होगा, सामान्य व्यंजन-द्वित्व कम मिलेंगे। इस प्रकार के छन्द हैं : श्लोक (अनुष्टुप), साटिका, वसंततिलक तथा डंडमाल।

(३) वर्णिक छंदों में ही कुछ ऐसे मिलेंगे जिनमें संस्कृताभास लाने का प्रयत्न अधिक नहीं मिलेगा, केवल अनुस्वार-रंजन लाने का प्रयत्न विशेष मिलेगा, शेष बाते यथा उपर्युक्त (१) में

[१] ये विशेषताएँ प्रायः इसी प्रकार अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' शीर्षक में उद्धृत 'प्राकृत पैंगल' के हम्मीर-विषयक छन्दों तथा श्रीधर के 'रणमल्ल छन्द' के छन्दों में भी मिलेंगी।

[२] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराजरासो के छन्द' शीर्षक।

होंगी। ऐसे छन्द हैं : विराज, आर्या, रूपया, भमरावली और रसावला। यह अवश्य है कि इन छन्दो का प्रयोग रचना मे बहुत ही कम हुआ है।

(४) वर्णवृत्तो मे ही कुछ ऐसे भी मिलेंगे जो कभी तो उपर्युक्त (३) की भाँति प्रयुक्त होंगे[१] और कभी (१) की भाँति प्रयुक्त होंगे–अर्थात् उनकी शैली सर्वथा मात्रिक छन्दो के समान होगी।[२] ऐसा भी देखा जाता है कि कभी-कभी इन छन्दो मे कुछ अंश (३) के समान और कुछ अंश (१) के समान होंगे।[३] ऐसे छन्द है : भुजंगी (भुजंग प्रयात), नाराच (वृद्ध नाराच), अर्द्धनाराच, और त्रोटक।

और हम अन्यत्र देख चुके है[४] कि संपूर्ण रचना का लगभग ⅘ मात्रिक छन्दो द्वारा निर्मित है, केवल ⅕ वर्णिक वृत्तो द्वारा बना है, अतः प्रकट है कि संस्कृताभास, अनुस्वार-रंजन, तत्सम-बाहुल्य और समास की ओर झुकाव रचना मे बहुत सीमित अंश मे मिलेंगे। फिर, ऊपर बताया जा चुका है कि ये तत्व वर्णिक वृत्तो मे ही प्रायः मिलते हैं, जिनका प्रयोग संस्कृत साहित्य से अपभ्रंश तथा भाषा-साहित्य मे आया है। इनके सम्बन्ध मे 'रासो' की रचना के पूर्व भी कवियों की सामान्य धारणा रही है कि इनमे रचना तभी सरस हो सकती है जब कि संस्कृताभास अथवा उसका कोई न कोई उपकरण, यथा अनुस्वार-रंजन, इनमे लाया जा सके।[५] अतः यह प्रकट है कि 'रासो' के कवि की सामान्य शैली पर विचार करते समय ऐसे वृत्तो को छोड़ देना चाहिए जिनकी ऐसी विशिष्ट शैली रही है जो आयासपूर्वक एक परम्परा का पालन करने के लिए प्रयोग मे लाई जाती रही है। 'रासो' के कवि की प्रकृत शैली वह है जो रचना के शेष वृत्तो मे मिलती है, अतः संपादित पाठ से ऊपर कैंवास-वध की जो पंक्तियाँ (३.२१-२७) उद्धृत की गई है, वे उसकी प्रकृत शैली का वास्तविक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

वर्ण्य विषय के अनुसार रचना मे शैली-भेद बहुत कम मिलता है। ऊपर रचना के विविध प्रकार के वर्णनों की समीक्षा करते हुए[६] प्रायः समस्त प्रकार के उदाहरण दिए गए है। उनका विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि पदय, विशेष रूप से युद्ध-वर्णन सम्बन्धी, प्रसंगो मे ही शैली-भेद कुछ दिखाई पड़ता है, शेष प्रसंगो के छन्दो मे वह प्रायः नही है। युद्ध-वर्णन के प्रसगों मे भी कृत्रिम रूप से ध्वनि-प्रभाव उत्पन्न करने का यत्न, जैसा कि परवर्ती रचनाओ मे प्रायः मिलता है, 'रासो' मे बहुत ही कम मिलता है। यहाँ भी शैली-भेद छन्द-भेद से बहुत कुछ संबद्ध मिलेगा। शहाबुद्दीन सम्बन्धी प्रसंगो मे स्वभावतः विदेशी शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है, यह बताया ही जा चुका है।[७]

कवि की सामान्य शैली की विशेषताएँ स्वतः प्रकट हैं। वह एक सुकवि की अत्यन्त समर्थ शैली है, भावों की अभिव्यक्ति करने में वह सर्वत्र भली भाँति सफल हुई है, उसकी शब्द-योजना

[१] यथा : १.४, ४.२०, ४.२१, ७.१७, ८.१०, ११.१२, ५.३८, ६.१५, ३.१७, ५.२४, ७.१२, ८.९।

[२] यथा : ४.२३, ७.१६, १२.२९, ४.१४।

[३] यथा : २.७, ४.१०, ५.१३, ६.५, ७.१०, ७.३१, २.१३।

[४] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो के छन्द' शीर्षक।

[५] दे० 'प्राकृत पैंगल' (संपादक चन्द्रमोहन घोष) में सादूलसट्ट, वसंततिलका, इंदवज्जा, रूपमाला तथा अन्य अनेक वर्णवृत्तों के उदाहरण।

[६] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो के वर्णन' शीर्षक।

[७] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त विदेशी शब्द' शीर्षक।

रमणीय है, कहीं भरती के शब्द रखने की आवश्यकता कवि को नहीं पड़ी है, न व्यर्थ के अलंकारों से वह दबी हुई है, और न रीति और गुणों से संबन्धित रूढ़ियों का वह अनावश्यक अनुसरण करती है। यह शैली कभी-कभी संक्षेप-प्रवण अवश्य प्रतीत होती है, ऐसे स्थलों पर संगति लगाने में पाठक को अपनी ओर से प्रायः कुछ न कुछ शब्दावली लानी पड़ती है। वस्तुत: जैसा उसे होना चाहिए था, अपने विषय-प्रधान महाकाव्य के लिए वह संपूर्ण रूप से उपयुक्त एक गरिमा पूर्ण, सन्तुलित और सुव्यवस्थित साधन बन सकी है।

—:*:—

२४. 'पृथ्वीराज रासो' का महाकाव्यत्व

महाकाव्य के लक्षणो के सम्बन्ध मे भामह (५वी शती ईस्वी) से विश्वनाथ कविराज (१६वी शती ईस्वी) तक प्रायः समस्त काव्य-शास्त्रियो ने विचार किया है, जिसे देखने पर महाकाव्य के रूप के विकास के साथ साथ उनके द्वारा निरूपित लक्षणो मे भी विकास दिखाई पडता है। 'रासो' की रचना तक संस्कृत और प्राकृत मे ही नही अपभ्रंश मे भी अनेकानेक महाकाव्य रचे जा चुके थे। असभव नहीं है कि नव्य भारतीय भाषाओं मे भी कोई महाकाव्य रचे गए हो, किन्तु वे प्राप्त नही हैं। महाकाव्य विषयक मान्यताओं मे भी परिणामतः परिवर्तन होता रहा होगा। इसलिए 'रासो' के पूर्ववर्ती काव्य-शास्त्रियों द्वारा निरूपित लक्षणों की अपेक्षा उसके परवर्ती काव्याचार्यों के मतो पर विचार करना अधिक उचित और उपयोगी होगा।

'रासो' की रचना के बाद के आचार्यों में सर्वप्रमुख विश्वनाथ कविराज है, जिन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतो का समाहार करते हुए और उनके परवर्ती महाकाव्यो पर भी दृष्टि रखते हुए महाकाव्य की सबसे व्यापक परिभाषा दी है, इसलिए केवल उन्ही के मत को दृष्टि मे रखते हुए 'रासो' के महाकाव्य पर विचार करना पर्याप्त होगा। उनके मत[1] का विश्लेषण करने पर महाकाव्य की आवश्यकताएँ निम्नलिखित ज्ञात होती है :—

(१) प्रबन्ध की दृष्टि से उसको सर्गबद्ध होना चाहिए। सर्गों की सख्या [सामान्यतः] आठ से अधिक होनी चाहिए। उनका आकार न अति स्वल्प और न अति दीर्घ होना चाहिए। महाकाव्य का आरम्भ नमस्कार, आशीर्वाद तथा वस्तु-निर्देश के साथ होना चाहिए और प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर आने वाले सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए।

(२) छन्द की दृष्टि से उसका प्रत्येक सर्ग एक एक वृत्त का होना चाहिए, किन्तु सर्ग के अन्त में उससे भिन्न वृत्त आना चाहिए। उसका कोई सर्ग ऐसा भी होना चाहिए जो नाना वृत्त युक्त हो।

(३) वस्तु की दृष्टि से उसका निर्माण किसी इतिहास-प्रसिद्ध अन्यथा सुजन-समाज मे प्रचलित कथानक को लेकर होना चाहिए और उसका विकास विभिन्न सधियों की सहायता से प्रायः उसी प्रकार किया जाना चाहिए जिस प्रकार नाटक मे किया जाता है।

(४) उसका नायक या तो कोई देवता, या धीरोदात्त गुणान्वित कोई क्षत्रिय होना चाहिए।

[1] 'साहित्य-दर्पण', श्लोक ३१३-३२२।

(५) उसमें शृङ्गार, वीर और शान्त रसों में किसी एक को अंगी तथा अन्य रसों को अंग के रूप में आना चाहिए।

(६) उसका लक्ष्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में से किसी एक की प्राप्ति होना चाहिए।

(७) उसमें, जहाँ पर अवसर हो, विविध वर्णनीय विषयों का सांगोपांग वर्णन होना चाहिए: यथा संध्या, सूर्य, इन्दु आदि का। कहीं-कहीं पर खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण-वर्णन भी होना चाहिए।

(८) उसका नामकरण कथानक, नायक के नाम अथवा अन्य किसी आधार पर किया जाना चाहिए।

इन आवश्यकताओं की दृष्टि से विचार करने पर पृथ्वीराज 'रासो' पूर्णरूप से एक महाकाव्य ठहरता है। उसमें उपर्युक्त समस्त तत्व पाए जाते हैं:—

वह सर्ग बद्ध है: न केवल प्रबन्ध की आवश्यकताओं का उसमे सम्यक् निर्वाह हुआ है, सर्गों में रचना सम्यक् विभाजन भी हुआ है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, यद्यपि उसके लघुतम पाठ की प्रतियों मे सर्ग-विभाजन नहीं मिलता है, शेष समस्त पाठों मे वह मिलता है, और एक मिलता है, इसके अतिरिक्त संपूर्ण रचना में कथाएँ इस प्रकार बँटी है कि सर्ग-विभाजन 'रासो' के कवि की दृष्टि में था, यह प्रस्तुत संस्करण के सर्गों को देखकर सुगमता से समझा जा सकता है; अतः 'रासो' का सर्गबद्ध होना भली भांति प्रमाणित है।[1] ये सर्ग संख्या और आकार मे भी 'साहित्य-दर्पण' में प्रतिपादित मत का अनुसरण करते हैं: ये आठ से अधिक हैं और प्रायः न अति स्वल्प हैं और न अति दीर्घ हैं। रचना का आरम्भ नमस्कार और संक्षिप्त वस्तु-निर्देश के साथ हुआ ही है।[2] विभिन्न सर्गों के अन्त मे आने वाले सर्ग के कथानक की सूचना अवश्य नहीं है, किन्तु यह प्रबन्ध-विषयक कोई अनिवार्य आवश्यकता भी नहीं है।

छन्द की दृष्टि से 'रासो' 'साहित्य-दर्पण' के लक्षणों के अनुरूप अवश्य नहीं पड़ता है और उसका कारण यह है कि महाकाव्य होने के साथ-साथ यह छन्द-वैविध्य-परक रासो-परंपरा की रचना है। यह रासो-परंपरा संस्कृत और प्राकृत मे नहीं थी, अपभ्रंश मे प्रारम्भ हुई और वह भी कदाचित् बहुत पीछे।[3] इसमें महाकाव्यों की रचना 'पृथ्वीराज रासो' के पूर्व भी हुई थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। इसलिए 'साहित्य-दर्पण' कार की महाकाव्य की छन्द-योजना विषयक मान्यता यदि बदली न हो तो आश्चर्य न होगा। और छन्द की एक रूपता एक सर्ग के अन्तर्गत सामान्यतः उपयोगी भी होती है, क्योंकि उसके द्वारा कथा-प्रवाह और वर्णन-प्रवाह अधिक सुरक्षित रह सकते हैं। किन्तु विश्वनाथ कविराज ने ही महाकाव्य के अन्तर्गत कोई सर्ग ऐसा भी रखने की अर्थात् आवश्यकता मानी है जिसमें विविध वृत्त हों। इसलिए विविध छन्दों मे यदि समूचे महाकाव्य की अर्थात् उसके समस्त सर्गों की रचना की जावे, तो उसमें कोई मौलिक आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

वस्तु की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' का कथानक इतिहास-प्रसिद्ध तो रहा ही है, सुजन-समाज में प्रचलित भी रहा है: देश के विदेशी जातियों के हाथों में जाने की यह दुःखपूर्ण कथा सदियों तक कही-सुनी जाती रही होगी और 'हम्मीर महाकाव्य' और जैन प्रबन्धों में इस कथा के दो अन्य रूप

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की प्रबन्ध-कल्पना' शीर्षक।

[2] वही।

[3] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'रासो काव्य-परंपरा और पृथ्वीराजरासो' शीर्षक।

भी मिलते हैं,[1] यह इस अनुमान का समर्थन करते हैं।

इसका नायक धीरोदात्त क्षत्रिय है, यह भी सुगमता से देखा जा सकता है। किसी महान आदर्श के लिए जीवन के सुखों का त्याग ही चरित्र मे उदात्तता लाता है। पृथ्वीराज के चरित्र मे यह बात प्रचुर परिमाण मे पाई जाती है : जयचन्द के आमन्त्रण पर उसकी वश्यता स्वीकार कर वह उसके राजसूय में सम्मिलित हो सकता था, और असम्भव नहीं कि ऐसी दशा मे उसकी प्रेमिका संयोगिता भी उसको अनायास मिल जाती, किन्तु राजसूय में उसके सम्मिलित न होने पर दरबान के रूप मे उसकी स्वर्ण-प्रतिमा के प्रतिष्ठापित किए जाने को वह कैसे सहन कर सकता था? इसीलिए तो उसने चन्द के गले लग कर रोते हुए कहा, 'इस जीवन की और अधिक वाञ्छा करे—ऐसा कौन सयाना होगा (३.४९)!' और उसके अभिन्न हृदय चन्द ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा, 'उपहास-विलासो में यहीं पडे रह कर हम प्राण न छोड़ेगे, हम तो जयचन्द की धरा पर उसकी सेना से टक्कर लेगे (३.४३)।' अपने शत्रु शहाबुद्दीन को परास्त कर उसने एक से अधिक बार अपनी उदारतावश मुक्त कर दिया था (२.३)। शहाबुद्दीन के अन्तिम आक्रमण के पूर्व ही उसके प्राय. सभी वीर सामन्त जयचन्द के साथ हुए उसके युद्ध मे कट चुके थे, और शहाबुद्दीन एक विशाल सेना लेकर इस बार आया था, पृथ्वीराज चाहता तो संधि असंभव नहीं थी, किन्तु जैसा चन्द ने कहा, 'और कुछ नहीं है तो सिंगिनी और बाण तो अपने हैं; सामन्त नहीं हैं तो भी कम से कम वह मत्र कर कि दिल्ली की धरा को डुबो न दे (१०.२३)।' इस भावना से प्रेरित होकर वह अपने पवित्र उत्तरदायित्व को कैसे छोड़ सकता था? स्वभावतः उसने फिर भी शहाबुद्दीन का सामना किया, यद्यपि वह पराजित और बन्दी हुआ। अत' महाकाव्य के उपयुक्त ही उसका यह धीरोदात्त नायक है, यह भी प्रकट है।[2]

'पृथ्वीराज रासो' का अंगी रस वीर है, जो कि अन्य रसो से परिपुष्ट हुआ है—विशेष रूप से शृंगार से, और उत्साह का जैसा पूर्ण और परिष्कृत चित्र इस रचना मे उपस्थित किया गया है वह स्वतः एक महान् कल्पना है।[3] इसलिए महाकाव्य का रस-संबंधी लक्षण भी पूर्ण रूप से इस काव्य मे मिलता है।

इसका लक्ष्य धर्म की प्राप्ति है : धर्म के लिए ही जीवनोत्सर्ग के लिए नायक युद्धों मे कूद पड़ता है। इस काव्य में वर्णित पहला युद्ध, जैसा अन्यत्र बताया जा चुका, सौन्दर्य-लिप्सा के कारण नहीं वरन् संयोगिता के प्रेमानुष्ठान की पूर्ति तथा अपने मान की रक्षा के लिए नायक ने किया है, दूसरा युद्ध उसने देश की रक्षा के लिए किया ही है।[4] बीच मे संयोगिता के साथ उसका केलि-विलास काव्य मे अवश्य वर्णित हुआ है, किन्तु स्वतः वह रचना का वर्ण्य नहीं है, वह तो काव्य मे यह दिखाता है कि काम-लिप्सा नायक के लिए कितनी घातक सिद्ध हुई; वह पाठक के मन पर यह प्रभाव डालता है कि असंभव नहीं कि यदि नायक काम-लिप्सा मे इस प्रकार न पड़कर अपने गुरु-बांधव-भृत्य-लोक को अपने से उदासीन न कर देता, और अपनी सैनिक शक्ति का ह्रास न होने देता, तो शहाबुद्दीन को कदाचित् वह फिर पराजय देता। अन्त में चन्द की युक्तियों से अधर्मी शत्रु का संहार कर वह 'धरती को नव-वधू के समान उत्फुल्ल' करने में भी सफल होता है (१२.४९)। इसलिए स्पष्ट है कि रचना उद्देश्य धर्म की प्राप्ति है, और 'रासो' का कवि उसको भली भाँति प्रतिपन्न करता है।

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'हम्मीर महाकाव्य और पृथ्वीराज रासो' तथा 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक।

[2] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो की चरित्र-कल्पना' शीर्षक।

[3] वही।

[4] वही।

विविध वर्णनीय विषयों का सांगोपांग वर्णन भी यथावसर रचना में मिलता है और यह वर्णन संपूर्ण रचना में केवल आवश्यक मात्रा मे आता है, यह रचना की एक बड़ी विशेषता है; केवल वर्णन के लिए वर्णन एक स्थान पर भी नहीं हुआ है।[1] इसलिए महाकाव्य का यह लक्षण भी रचना में पूर्ण रूप से मिलता है।

रचना का नामकरण नायक के नाम पर हुआ ही है।

अतः विश्वनाथ कविराज की बताई हुई महाकाव्य की सारी आवश्यकतायें इस रचना मे यथेष्ट रूप में मिलती हैं और यह निस्सदेह एक महाकाव्य है।

आधुनिक पाश्चात्य आलोचकों ने महाकाव्य के लक्षण किंचित् भिन्न बताए हैं। एक प्रसिद्ध आलोचक का कहना है, "महाकाव्य एक ऐसे नायक का चित्रण करता है जो किसी देश अथवा किसी आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है, और जो उसकी विजय के साथ विजयी होता है। वह कोई महान् अथवा महत्वपूर्ण व्यापार हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है और उसी प्रकार उसके पात्र भी महान् अथवा महत्वपूर्ण होते हैं। सारी रचना में एक गरिमा होती है। नाटक की तुलना में महाकाव्य के व्यापार की गति मंद होती है: उसमें घटना-बाहुल्य होता है और उसका वस्तु-संकलन शिथिल होता है। मानव जीवन की जितनी ही विस्तृत भूमिका उसमें ग्रहण की जाती है, उतनी ही अधिक सफलता महाकाव्य को मिलती है। वह कल्पना को अतीत के उस देश में ले जाता है जो स्वप्नों और आदर्शों का होता है, जिसमें दुःखान्त नाटकों का प्रवेश निषिद्ध है।"[2]

महाकाव्य ये लक्षण भी 'पृथ्वीराज रासो' में पूर्ण रूप से मिलते हैं, बल्कि यदि देखा जावे तो इन लक्षणों के अनुसार वह और भी अधिक महाकाव्य है : सारी रचना एक महान् आदर्श को लेकर नायक के जीवन के एक विस्तृत क्षेत्र में प्रस्तुत की गई है, और अन्त में पराजय के बाद भी रचना में नायक के उस आदर्श की—अधर्मी से मातृभूमि को मुक्त कर उसको पुन हँसने का एक अवसर देने की—प्राप्ति दिखाई गई है, अतः इस दृष्टि से यह रचना अवश्य ही एक अमर महाकाव्य कृति के रूप में बनी रहेगी।

—:*:—

[1] दे० अन्यत्र इसी भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो के वर्णन' शीर्षक।

[2] डब्ल्यू० एम० डिक्सन : 'इंगलिश इपिक ऐंड हीरोइक पोइट्री', १९१२, पृ० २१।

पृथ्वीराज रासउ

१. मङ्गलाचरण और भूमिका

[१]

साटिका — [१]छत्त या[२] मद गंध घ्राण लुब्धा[३] अलि भूरि[४] आच्छादिता[५] । (१)
गुजाहार अधार[१] सार गुन या[२] रुजा पया[३] भासिता । (२)
अग्रे या[१] स्रुति कुंडला[२] करि नवं[३] तुंडीर[४]× उद्दारया[५]× । (३)
सोय पातु गणेस सेस सफल[१] प्रिथिराज काव्ये हित[२] । (४)

अर्थ—(१) जिनका छत्र मद-गंध के घ्राण-लुब्ध भूरि अलियों से आच्छादित है, (२) जो गुजा का हार धारण करने वाले, सार गुणों के आधार हैं, और जिनके पदों (चरणों) मे रुझा (रुनझुन करने वाला पैरों का आभूषण—घुंघुरू) भासित होता है, (३) जिनके कानों के अग्र [भाग] मे कुंडल हैं, जो नव हाथी की तुंड वाले हैं और उदार हैं, (४) ऐसे वे गणेश रक्षा करें और 'पृथ्वीराज काव्य' के हित मे जो शेष हो उसको सफल करें।

पाठान्तर— × चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।
÷ चिह्नित शब्द ना. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. में यहाँ 'पुन' है, जो अन्य किसी प्रति में नहा है। २. धा. या, मो. जा, शेष में 'जा'। ३. मो. रागुरु वासं, धा० गधरसिका, स. राग रुचथं, म. अ. घ्राण (घ्रान—म.) लुब्धा, ना.—लुब्धा। ४. मो. भार, ना. अ. भोर, स. भूर, म. भौंर। ५. म. आच्छादितं।

(२) १. मो. आधार, स. अथार, ना. म. अ. विहार। (तुल० अगले छन्द का चरण १)। २. मो. गुन।जा, धा. गुनिजा, म. गुनया, ना. अ. गुणजा। ३. मो. झ ा पया, धा. रुजा पिया, अ. रुजा पया, ना. रंजा पया, स. झझा पया।

(३) १. धा. म. या, शेष में 'जा'। २. मो. सुत कुंडल। ३. मो नवु; धा. नवं, ना. णव., अ. फ.करा, म. कारि, स. कर। ४. मो. थुंडीर, अ. तुद्दीर, म. जुडीर, ना. थुदीर। ५ मो उदारवं।

(४) १. मो. स. सेस सफलं (शेश मफल—मो.। धा. सतत फल, अ. ना. सेषित फल। २. मो. काव्यहितं, म. स. काव्यं कृत।

टिप्पणी— (१) छत्त < छत्र । (२) पय < पद ।

[२]

साटिका— मुक्ता[१] हार विहार मार[२] सबुधा[३] अबुधा[४] बुधा गोपिनी[५] । (१)
सेतं[१] चीर[२] सरीर नीर गहिरा[३] गौरी[४] गिर[५] योगिनी । (२)
वीना[१] पानि सुवानि[२] जानि× दधिजा[३] हंसा रसा आसनी [४] । (३)
लंबी[१] या[२] चिहुरार[३] भार जघना[४] विघना घना[५] नासिनी ॥ (४)

अर्थ—(१) जो मुक्ता का हार धारण करने वाली है, जो बुद्धिमानों के [कल्पना] विहार का सार है, और जो बुद्धिमानों की अज्ञता का गोपन करने वाली है, (२) जो श्वेत चीर धारण करने वाली है, जो गहरी कांति वाले शरीर की है, जो गौरा—गौर वर्ण वाली है, जो गिरा (वाणी) का योग करने वाली है, (३) जो वीणा पाणि (हाथों में वीणा धारण करने वाली) है, जो सुवर्णी (अच्छे वर्ण वाली) है, मानो उदधि-पुत्री (लक्ष्मी) है, जो हंसिनी रूपी रसा (पृथ्वी) पर बैठने वाली है, (४) जिसकी चिकुरावली लम्बी है, और जो भारी जघनों की है, वह [सरस्वती] घने विघ्नों का नाश करने वाली है—या होवे ।

पाठान्तर—× धा में चिह्नित शब्द नहीं है ।

(१) १. धा ना. म. मुत्ता । २. ना हार हार । ३. मो. मवधा, म स. सुबुधा; ना. विबुधा, अ. वसुधा । ४. मो. अछूधा (< अबुधा), म. अब्धा । ५. धा गोपनी ।

(२) १ अ श्वेत । २. मो. ना. वीर, स चीर । ३. मो. गिहिरा, म. गहिरी, ना. अ. गहरी । ४. म. गवरी । ५. धा. गुन, ना. अ. फ. गुण, स गिरा ।

(३) १. मो वाना (< वीना), धा. अ. वीणा । २. धा. अ. सुवाणि । ३. म. दधिती । ४. ना. आसिनी ।

(४) १. मो. लवा, धा. लम्बी, ना. लंब, अ. लबं, म. लबो, म. लबि । २. धा. मो. 'या', शेष में 'जा' । ३. ना. विहुरार । ४. मो. जघनी । ५. मो. विधना वना, धा. विना घन । ६. धा. नासनी, मो. सनी ।

टिप्पणी— (२) सेत < श्वेत । (४) चिहुरार < चिकुरावली ।

[३]

विराज— जटा जूट[८] बध[१] । (१)
ललाटीय[१] चंद । (२)
विराजादि छंद[१] । (३)
भुजंगी गलिदं[१] । (४)
सिरोमाल[१] लद्द[२] ।[३] (५)
गिरिज्जा अनदं[१] । (६)
सुरे[१] सिग[२] नद्द । (७)
उगो[१] गंग हद्दं । (८)
रगो[१] वीर[२] मद्दं ।× (९)
करी चम्म[१] छद्द[२] ।× (१०)
करे[१] काल षद्द[२] ।× (११)
चष्षे अग्गि दद्द[१] । (१२)
पुलै[१]* यद्दि[२] जद्द । (१३)
जयो जोग[१] सद्द । (१४)
घटा[१] जाग्गि भद्दं । (१५)
जुरे[१] काम तद्दं ।× (१६)
हरे त्राहि वद्दं[१] । (१७)

१. मङ्गलाचरण और भूमिका

रचे मोह[१] कदं ।+(१८)
बचे[१] दूरि[२] दंद[३] । (१९)
नटं भेष रिद[१] । (२०)
नमो ईस इद[१] ।[२](२१)

अर्थ—(१) जो जटा-जट बाँधे हुए है, (२) और जिनके ललाट पर चन्द्रमा है (३) आदि के विराज [छन्द] मे उनको वन्दन करता हू । (४) भुजगी (सर्पिणी) जिनके गले मे है, (५) और सिरो की माला [जिनके गले मे] लगी हुई है, (६) जो गिरिजा को आनन्द देने वाले है, (७) जो शृंग (सींग) को निनादित करते है, (८) जो गगा के हद के पवित्र करने वाले है, (९) जो रण मे वीरता के मद वाले है, (१०) जो गज-चर्म के आच्छादन वाले है, (११) जो काल को खाद्य करते (खाते) है, (१२) जिनके नेत्रो मे अग्नि की उग्रता (ज्वाला) होती है (१३) जब जब प्रलय होता है, (१४) योग के शब्द (अनाहत नाद) के जो विजेता है, (१५) जो [शब्द] मानो भाद्रपद की घटा का होता है, (१६) जिन्होने काम को तत्काल जलाया था, (१७) ऐसे तुम्हे हे हर, मैं 'त्राहि' कहता हूँ । (१८) जो मोह का कदन (नाश) करने वालो पर अनुराग करते है, (१९) द्वन्द्व जिनसे दूर बचता है (२०) और जो नट के वेष मे रिद (मस्तमौला) है, (२१) उन ईशेन्द्र (महेश) को नमस्कार करता हूँ ।

पाठान्तर—— फ में पूरे छन्द के स्थान पर केवल 'जटा जटयो' लिखा हुआ है ।
*चिह्नित शब्द संशोधित पाठके हैं ।
× म में चिह्नित चरण नहीं है ।
+ अ. में चिह्नित चरण नहीं है ।

(१) मो धा. वध, इनके अतिरिक्त सभी में 'वद' (वद—म.) है ।
(२) १. मो ललाटीय, धा. अ ललाटेय, ना. लिलाटीय, स लिलाटन ।
(३) १. धा. ना. अ. सिरोजाइ (सिरोजाय—धा) छंद, म उ स विराजत ।
(४) १ धा. गलद, मो. गलिद, ना गलद्दं, म उ. स गलिंद, अ गलेदं ।
(५) १. मो. सिरोमल, म, सिरोसाल । २ धा. लदं, उ म इदं । ३. ना. स में यहाँ और भी है :

हर्यौ डोरु नद । हस्यौ (हन्या—ना.) पुत्र वद्दं ।
खिजी मात भारी । साराप विचारी ।
करी जाकु ईसं । धरयौ पुत्र सीस ।
सबे किन्न अग्गे । तुही नाम लग्गं ।
कलानत छप । गनेस सरप ।
इक दत दत्तं । विराजत कत्ती ।
सु दीपत्ति असे । कोविद्दा प्रससे ।
मनु भूमिधारी । वराहा उपारी ।
इमौ दत्ति तेजं । कला सोम केजं ।
नमो देव कद । प्रना ईस मद ।
भषं भूत प्रेत । तिजारी न हेत ।
इक दाह एक । दुनी देह मेक ।
भगत्त सुचक्री । दीउ लछि बक्री ।
इक चोष अठं । करे नाग नठं ।
सुरं जक्कि मुत्ती । जलं माहि पत्ती (मात्ती—ना.) ।
धरै आक सीसं । त्रिलोकी स ईस ।

रत रत्त भारी । करुन्ना विचारी ।
लीउ माल वष्य । बीउ साष्यि नष्य ।
मिले एक दाह । रम काम सीह ।
इके जाख्यि आयौ । दायौ काम घायौ ।
[षिजी रिष्षि भारी—केवल स. में] । कीयौ काम डारी ।
भयौ पुत्र तब्बं । धुजा मोर सव्व ।
सिरो माल धारी । गनेम विचारी ।
[खिजे तब्ब ईस । भयौ रोम बीस ।
अवल्ला इकल्ली । बियौ पुर्ष मिल्ली—केवल स. में]

(६) १. अ. गिरीजाय नदं ।

(७) १ अ. उरो, म. सुरे, उ. अरं, स. सिरं । २ मो सिध, धा. सिघ, म. सिंगि, उ. स. सिंघि ।

(८) १. धा. उरे, अ. शिरो, मो उणे, म. स. उन्नें ।

(९) १ उ. रिनौ । २. धा धीर ।

(१०) १. धा. चम्म, मो. अ. चर्म । २. मो. मद्द ।

(११) १. मो. कले, अ. जरे । २. अ कद्द ।

(१२) १. मो. चष्पि (=चप्पे) अग ददं, धा चखे अग्गि तद्द, म चषे अगि तद, अ चले अग्गि छद्द, स. चषो अग्गि दद्द ।

(१३) १. मो. पुलि (=पुलै), अ प्रले, धा म. स. प्रलै । २. म जादि ।

(१४) १. धा. जये योगि, अ. जय योगि ।

(१५) १. धा. धरा ।

(१६) १ मो. जुरे, शेष में 'जरे' ।

(१७) १. अ. तद्द भद्द, धा. ताहि भद्द ।

(१८) १. मो. धा. मोहि ।

(१९) १. मो. बचि (=बचे), म चवे, शेष में 'बचे' । २ म. रारि । ३ मो. दद

(२०) १. मो. रढ ।

(२१) १. धा. सिद्ध । २. म. में यह चरण इसी स्थान पर दुहराया हुआ है ।

टिप्पणी—(३) छन्द < वन्द्=वदन करना, प्रणाम करना । (७) सिंग < शृंङ्ग=सींग । (८) उण < पुण < पू= पवित्र करना । (१०) छद्द < छद=आच्छादन, आवरण । (११) षद्द < खाद्य=भोजन । (१२) ददं < द्वन्द्व=शीत उष्ण, किंतु यहाँ पर ताप । (१३) पुले < प्रलय=सृष्टि का अन्त । (१५) भद्द < भाद्र=भादौं । (१७) वद<वद्=कहना (१८) रच < रञ्ज्=रचना, अनुराग करना । (२१) रिंद (फा०)=मस्तमौला ।

[४]

भुजंगी :—

प्रथम्मं भुजंगी सुधारी[१] महत्वं[२] । (१)
जिनै[१] नाम× एकं× अनेकं कहत्वं ॥ (२)
दुती लभ्भय[१] देवता[२] जीवतेसं । (३)
जिनै विस्व राष्यौ[१] बल[२] मत[३] सेस[४*] ॥[५] (४)
त्रिती[१] भारथी व्याम भारथ्य भाष्यौ[२] । (५)
जिनै उत्त[१] पारथ्य सारथ्य साष्यौ[२] ॥ (६)
चवं सुक्क देवं[१] परिष्षत्त*[२] पायं[३] । (७)
जिनै[१] उद्धरे[२] सव्व[३] कुरु वंस[४] रायं ॥ (८)

१. मङ्गलाचरण और भूमिका

नलै रूव[1] पंचम्म[2] श्रीहर्ष सारं[3] ।[4] (९)
नलै राय कंठं दिय नैषध्ध हारं[1] ॥ (१०)
छठं कालिदास[1] छ भासा समुद्द[2] । (११)
नियं[1] सेतु बधं[2] सु भोज[3] प्रबध ॥× (१२)
सत[1] दंड माली सु लालिय[2] कवित्तं । (१३)
जिनै बुद्धि तारग[1] सु गंगा सरित्त[2] ।[3] (१४)
गिरा सेष[1] बानी कवी कव्व[2] बंध[3] ।[4] (१५)
जिनै सेस[1] उच्चिष्ट[2] कवि चद[3] छंद[4] ॥[5] (१६)

अर्थ— (१) [अपने वंदनीय कवियो के रूप मे] मै पहले उन भुजंगिनी को धारण करने वाले (शिव) को ग्रहण करता हूँ (२) जिनका नाम एक है [किन्तु] अनेक कहा जाता है। (३) दूसरे मै उन जीवितेश (जीवन के स्वामी—यम) को पाता हूँ, (४) जिन्होने विश्व को मन्त्र-बल से शेष (बचा) रक्खा है—अथवा जिन्होने विश्व मे मत्र-बल को शेष (बचा) रक्खा है। (५) तीसरे मै महाभारत के [कवि] व्यास को पाता हूँ जिन्होने महाभारत कहा, (६) जिन्होने [उसमे] पार्थ सारथी द्वारा उक्त गीता की साक्षी दी। (७) चौथे मै शुकदेव और परीक्षित को पाता हूँ, (८) जिन्होने कुरुवश के समस्त राजाओ का उद्धार किया। (९) पाँचवे नल के रूप (अवतार) श्रीहर्ष को मै प्रसिद्ध करता हूँ, (१०) जिन्होने नैषध (नल) के कंठ मे 'नैषधीय' का हार दिया (डाला)। (११) छठे मै कालिदास को पाता हूँ, जिन्होने षट्भाषा समुद्र पर (१२) भोज के प्रबन्ध (आयोजन) से ['सेतु बध' काव्य के रूप मे] निज (अपना) सेतु बाँध दिया। (१३) सातवे मै कविता का लालन करने वाले दंडमाली (दडी) को पाता हूँ, (१४) जिनकी बुद्धि की तरंग सरिता गंगा [की तरगो के समान] थी। (१५) गिरा (सरस्वती) की शेष वाणी को लेकर अन्य कवियो ने काव्य-प्रबन्ध किए, (१६) जिनके भी [अनन्तर] शेष उच्छिष्ट को कवि चंद छद-निबद्ध कर रहा है।

पाठान्तर— – फ. में यह पूरा छन्द दो बार आता है : एक तो प्रथम खंड की समाप्ति पर और दूसरे दूसरे खंड केप्रारम्भ में, अ. में चरण १३ का उत्तरार्द्ध, १४ तथा १५ पहले एक बार आ लेते है तब पूरा छन्द भी इसीके बाद आता है। नीचे अ फ. का पाठान्तर परवर्ती स्थान पर आए हुए पाठ के अनुसार दिया गया है जो अ. फ. दोनों में पूरा मिलता है।

* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

× चिह्नित चरण अ. में नहीं है।

(१) १. ना. सधारीं। २. धा. ग्रहण्णं, अ गृहनं, फ. म. गहन (=गहन्नं)।

(२) १. अ. भिनै, ना. जि—।

(३) १. अ. फ. लभ्यतं, म. लभ्यते। २. अ. फ देता, ना. उ. स. देवत।

(४) १. म. जनै जस्व सच्यौ । २. अ. म उ. स. ना. बली, फ. बले। ३. धा. मित्र, अ. ना. मत्त (<मत), फ. मति। ४. म. जेसं। ५. उ. स. में यहाँ और है (म. पाठ) :—
चव बेद बभं हरि कित्ति भार्मा। जिनै ब्रम्म स। ब्रम्म संसार साषी।

(५) १. ना. विनी। २. म. भष्या।

(६) १. अ. उत्ति, फ उत्ते (<उक्ति)। २. म. पारथ सारथ सिष्यौ।

(७) १. अ. चवै सुकदेव, फ. परी सुक देउ, म. चवे सुषदेवं। २. धा. परिष्षत्थ, ना. अ. म. परीछत्त,फ .

परीक्षत, स. परीषत्त । ३. अ फ. राय ।

(८) १. म जिन । २ उ स उद्धर्यौ । ३. धा. सव्य । ४. धा. कुरुपस, ना. अब्ब कुक (कुरु) वस, म. सव कुर वस, उ. अब्ब कुर वस, स अब्ब कुरुस ।

(९) १ फ नले रूप, उ स. नर रूव (रूप-स.), म नले रूव । २. धा पचमा । ३. फ. पचम नैषधि हारं । ४. ना. में अगला चरण ह इस चरण के स्थान पर भी है ।

(१०) १ म उ नले राइ कठे दि नेपद्ध हार, स. नले राइ कठ दिने पद्ध हार, अ. नले राय कठ नेषद्ध हारं, फ श्री हर्ष सिंगार अनिसार मार ।

(११) १ ना म अ. फ. छठे कालिदास (कालदास—म. ना.)। २. म सभा सुष घद, ना सुभाषा समुद्द, उ. स. सुभाषा सुवद्ध । २. उ स में यहाँ और है :—

जिनं वाग वानी सुवानी सवद्ध । क्रियो कालिका मुक्ख वाम सुसुद्ध ।

(१२) १. फ. निरे, म उ स ना जिन । २. म. वध्या । ३. ना ज भोज प्रबध, फ. रु भोजस्य बद, म. सुभो य प्रबंद, उ स. ति भोज प्रब ।

(१३) १. म. सुत । २ धा दडमा माल लालिय, फ दंडाय लाल माली, म अ डड (दंड—अ.) माली सुलाली, ना. उ स. दड (डड—ना) माली उ गाली ।

(१४) १ धा. म अ जिण बुद्ध (बुद्—म) तारग, फ जिने उद्धरी पुब्व (तुल० चरण८)। २. अ. फ. ना. गगा पवित्त, ना. गुण सरित्त, म गगा सुरीनं । ३. ना उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—जयदेव अट्ठ कवी कविराय । जिनै केवल कित्ति गोविंद गायं । उ. स. में यहाँ पुन. और हैः—

गुरं सव्व कव्वी लइ चद कव्वी । जिन दर्सिय देवि सा अग अव्वी ।

(१५) १. ना. गिरी सेव, म गिरो शेष । २. ना काव, म कवि । ३. अ. फ. ना म बंदे । ४ उ. स. में पूरे चरण का पाठ है : कवी कित्ति कित्ति उकत्ती सुदिक्खी । फ. में परवर्ती स्थान पर के पाठ में चरण छूटा हुआ है, किंतु पूर्ववर्ती स्थान पर के पाठ में यह चरण भी है ।

(१६) १. धा जिण सेस, अ. फ. तिनहि पुच्छि, ना. तिनें शेष, म. नवूतास । २. अ. में शब्द छूटा हुआ है फ. उच्छिष्ट । ३. धा कवि छन्द, फ कवि कवि । ४ ना. म. अ फ. छदे । ५ उ. स. में चरण का पाठ है : तिन की उच्छिष्टी कवि चद भष्षी ।

टिप्पणी—(२) यम ऋगवेद का कुछ रिचाओं, एक विष्णु-स्तोत्र तथा एक स्मृति के रचयिता माने जाते हैं । (४) मत < मत्र । सेस < शेष । (९) रूव < रूप । सार < सारय् = प्रख्यातकरना, प्रसिद्ध करना । (११) षटभाषा : प्राकृत, सस्कृत, मागधी, शौरसेनी, पैशाचिका और अपभ्रंश (१२) नय = जिन । (१५) कव्व < काव्य ।

[९]

दोहा— छंद[१] प्रबध कवित्त जति[२] साटक[३] गाह दुहत्थ[४] । (१)
लहु गुरु मडि त छडिहउ[१]* पिंगल[२] भरह[३] भरत्थ[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) कविता के जितने [प्रकार के] छंद-प्रबध होते है, साटक [-बध], गाहा [बंध,], दूहा [-बंध] [आदि], (२) उनमे लघु-गुरु का मडन करके पिंगल [के छंद-सूत्र], भरत [के नाट्य शास्त्र] और महाभारत को [पीछे ?] छोड दूँगा—उनसे बढ़ कर रचना करूँगा ।

पाठान्तर— * चिह्नित सशोधित पाठ वा है । (१) १ ध. बध । २. धा. अ. फ. रस, ना. स. जुति, म. चित । ३. म. साटकि । ४. मो. अ दूहथ, अ फ दुअथ्य, ना दुअर्थ, म. दुरथ्य ।

(२) १. मो. पडित छडिहु (=छडिहउ), धा मंडित पडियहु, अ मंडित षडिया, ना. मडित षडइहि फ. मंडित षंया, म. भजिमडी इहै, उ. स मडित खडयहि । २. म. प्यगल । ३. ना. म. उ. स. अमर । ४. मो. भरथ ।

टिप्पणी—(१) जति < जत्तिय < यावत्=जितने । (२) भरह < भरत ।

[६]

साटिका— राज जा अजमेरि[1] केलि कविर[2] वृत्ता* रता[3] सभरि[4] । (१)
दुद्धारा भर×[1] भार[2] नीर×[3] वहनो दहनो दुरग्गो[4] अरि । (२)
सोमेसुर नर×[1] नंद दंग[2] गहिला[3] वहिला वन वासिन[4] । (३)
निर्मान[1] विधिना त* जान[2] कविना ढिल्ली[3] पुरं भासिन[4] ॥ (४)

अर्थ—(१) जिस राजा की कपिल (धूलि-धूसरित) केलि अजमेर मे हुई, जिसके अनुराग-पूर्ण वृत्त साँभर मे हुए, (२) जिसका दुधारा (दो धारों का खड्ग) उस भारी भट के नीर (उसकी काति) को वहन करता था, और शत्रुओं के दुर्गों को ध्वस करने वाला था, (३) वह नर (पौरुष युक्त) सोमेश्वर का पुत्र, जो दग गहिल (युद्ध के लिए पागल) रहा करता था, जो वहिलावन का निवासी था, (४) वह विधाता के द्वारा, मानो कवि के द्वारा, दिल्लीपुर मे भासित (द्योतित) होने के लिए बनाया गया था।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के है।
× चिह्नित शब्द म में नहीं है।

(१) १. धा. मो. स ना अजमेर, फ अजमेरु । २ धा कविल, म कवीला, ना अ फ. कलय । ३. धा. त्रिता (=त्रित्ता) रता, मो. वृता नता, अ. फ ना वृंद नृत, म. वृतानिना, स व्रदं व्रत । ४. अ. फ. ना. सुदरी ।

(२) १. ना. दुर्धारा धर, अ. दुद्धारा धर, फ. दुद्धारध् धरि, म दुदार भार । २. ना. धीर, अ. म. स. भीर, फ. भीरु । ३. मो. ना. स. मीर । ४. धा दहनो दुरग्र, ना. दहनोपि दुर्ग्र, मो. म. स. दहनो दुरंगो (दहनौ दुरगो–म. स.), अ. फ दहनोपि दुर्ग्ग ।

(३) १. धा. सोमेसो सुर, अ. सोमेसुर बर, फ. सोमेस्वर वरु, ना स. सो सोमेसर, म सोमेसुर । २. धा. नद वद, अ. द–, फ. में दूसरा शब्द नही है, ना. म नद नद, म. नद दद । ३. म गवहला । ४. मो. म. स. वासर्न, फ. वासनी ।

(४) १. म निवर्ण । २. धा विरनान जानि, मो विधिना न जान, अ फ. विविना सुजानि, म. वि ना निजानि, ना. चहुवान जान । ३. धा. अ फ दिली । ४. मो म. वासन, धा. भासिन, अ वासिन, . वासनी ।

टिप्पणी—(१) कविर < कपिल=भूरा, मटमैला । रत्त < रक्त=अनुरागपूर्ण । (२) दुरग्ग < दुर्ग । ( ) गहिल < ग्रहिल [दे०]=भूतग्रस्त, पागल, उद्भ्रान्त । (४) भासिन्=द्युतिमान् ।

—:०:—

२. जयचंद राजसूय यज्ञ और संयोगिता का प्रेमानुष्ठान

[१]

पद्धड़ी— [1]कल[2] अथ्थ[3], पथ्थ[4] कनवज्ज राउ[5] । (१)
सत षित्त सेव*[1] धरि* धम्म चाउ[2] ॥[3] (२)
वारणा*×[1] भूमि× हय गय[2]× अनग्गु[3] । (३)
परठिआ पूनि[1] राजसू जग्गु[2] ॥ (४)
सुद्धिग*[1] पुराण बलि[2] वस वीर । (५)
भुवगोल[1] लिषित[2] दिष्षित[3] सहीर ॥ (६)
छिति[1] छत्रबंध राजनि[2] समान । (७)
जित्तिआ[1] सयल[2] हय बल[3] प्रमान ॥ (८)
पुच्छइ[1] सुमत[2] परधान तव्व[3] । (९)
अब[1] करहि[2] जग्गु जे[3] लेहि*[4] कव्व*[5] ॥ (१०)
ऊतरु त दीअ[1] मंत्रिय[2] सुजान[3] । (११)
कलिजुग्ग नही[1] अर* जुग[2] प्रमान[3] ॥ (१२)
करि धम्म[1] देव देवर[2] अनेय[3] । (१३)
षोडसा[1] दान दिनु[2] देहु देव[3] ॥ (१४)
मुंहु सिष्ष मानि[1] नृप पग[2] नीव[3] । (१५)
कलि अथ्थि[1] नही अर्जुन सु भीव[2] ॥ (१६)
मुकि पंगु राय[1] मन्त्रिय[2] समान । (१७)
लहु लोह[1] अब्ब जो लहु* अयान[2] ॥ (१८)

अर्थ—(१) कल (मनोहर) अर्थ के पथ मे कन्नौजराज था, (२) जो सप्त क्षेत्र (जैन धर्म के अनुसार जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक, और श्राविका) । का सेवन करता था और धरा पर धर्म मे रुचि रखता था । (३) [उसके] भूमि के वारण (शत्रुओं से बचाव या सुरक्षा के साधन) अनग्न (झूलो से परिवेष्ठित) हय और गज थे । (४) [ऐसे कन्नौजराज ने] पवित्र राजसूय यज्ञ की परिस्थापना की । (५) उसने पुराणो के बलशाली और वीर वंशो का शोध किया (६) और जो कुछ लिखित भूगोल (भू-वृत्त) था, उसको हेला-पूर्वक देखा । (७) क्षिति के छत्रबन्ध [छत्र धारण करने वाले] राजाओ से (८) [उसने] सब कुछ अपने हय-बल (अश्व-सेना) के द्वारा जीता । (९) [तदनतर] अपने प्रधान (अमात्य) से वह यह मन्त्र (विचार) पूछने लगा—इस मन्त्र (विचार) के सम्बन्ध मे परामर्श करने लगा । [illegible]

(१०) वह अब यज्ञ करे [जिससे] कि काव्य (यश) का लाभ करे। (११) ज्ञानी मन्त्री ने तो उत्तर दिया, (१२) "कलियुग इतर युगों का सा नहीं है—अथवा कलियुग में इतर युग प्रमाण (प्रामाण्य) नहीं है। (१३) हे देव, अनेक देवालय [निर्मित करा] कर (१४) षोडस [प्रकार के] दान [प्रति] दिन दे। (१५) हे नृप पंग जीव, मेरी सीख मान, (१६) यह कलियुग है, [इस युग में] अर्जुन और भीम नहीं हैं [जिनके पराक्रम के बल पर युधिष्ठिर ने राजसूय किया था]।" (१७) [इस उत्तर को सुनकर] पंगराज मंत्री से क्षुब्ध (क्रुद्ध हुआ) (१८) और उसने कहा, 'यदि मैं अब लघु लोभ-लाभ करता हूँ [और• उसके लिए यज्ञ नहीं करता हूँ] तो यह [मेरा] अज्ञान होगा।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द धा में नहीं है।

(१) १. धा. में इसके पूर्व है : वारता—हिव कनवज का राजा की वात कहइ छइ। ना. में इसके पूर्व है . वचनिका। कनवज्ज को राजा जैचद दल पागुरो ताकौ स्थान कौन है तहा की वात प्रवध अब राजसूजग्य की वात मडो है। २ उ स में इसके पूर्व और है :—

थप्पै सुभट्ट राजसू पग। पर हरै पाप कर वत्त गग।
धुनि धुनि सु विप्र बोलै तिवेद। तन करै त्रिमल अघ करै छेद।
ग्रह ग्रहन हेम कसि कसि सुनारि। मानो कि सूर ससि क्रिन्न तार।
जगमगे हेम बिधि विधि बनाइ। जिम निगम अत वम्मि वरुन आइ।
ग्रह ग्रहन कलस तोरन समान। कैलास सिषर प्रतपै सु भान।
ग्रह ग्रहन गौण रज्जत बनाइ। कैलास डरह ससि अद्ध पाइ।
ग्रह ग्रह किपाट जगमग जराइ। कैलास लग्गि नवग्रह रिमाइ।

(तुल० स. ४८. ७२-७४ जो सभी प्रतियों में हैं।)

३. धा. कल अव्य, मो. कल यथ, फ कलि अथ, ना कल हत, द. उ. स कलि अत। ४ धा पव। ५. मो. राअ, अ. फ. राव, उ. स राइ।

(२) १. मो. उं सत षित सिव (=औ सतषित सेव), धा० सत षेत सीव, अ सत सील रत, फ. सब सील रत्त, ना. द. सत पत्ति (सतिपत्त–ना) सील, उ म सतपत्ती मील। २ धा धुरि धम्म चाउ, मो. ना धर धर्म वाउ (चाउ–ना.), अ धर धर्म चाव, फ धर धर्म पाउ, उ. म. धर ध्रम्म चाव। ३. उ. स. में यहाँ और है :—

सुनि रोम कियो पहु पग राव। मागधहु सूत बदनि बुलाव।
पुच्छयौ सुवंस कमधज्ज ग्रब्ब। हम बस जग्य किहि कियौ पुब्ब।
जिहि बस जग्य नन होइ राज। सुगतौ न भूप सुष सर समाज।
तुम बंस भए कमधुज्ज सूर। दीनौ सुराज राज्ञ रस भूर।
तव बस भयौ बाहन नरिंद। अतरिष रथ्थ चलि स्वग्ग कद।
तुम बस भयौ पूरूर रूर। रथ च्यारि चक्र जिहि जोति सूर।
सत सिंधु सूर जिह रथ्थ चीलह। तुम बस भयौ नृप राज नील।
तुम बस भयौ नलराइ अंद। नैषद्ध हार ही धरयौ बध।
षट चक्र भए कमवज्ज आदि। किन्नौ नरिंद जिह वरुन वाद।
जीमूत धर्यौ जिहि चक्र सीस। मनार किति कीनौ जगीस।
को करे पंग सों दुष्ट आय। मड सुजग्य निहच त राय।

(३) १. मो. वर निसाण, धा. त्रुटित है, अ. फ. वर अथ्य, ना. वारुर्णाय, द. बारुनि, उ स. बारुन्न। २. मो. भूमिह उधम। ३. मो. अंनगु, धा. अनग्गू।

(४) १. धा. परठिया पुन्य, मो. परठिउ (=परठ्ठिअउ) पूनि, ना. परठीय पुन्य, अ. पठया पंग, फ. परठव्या पंग, उ. स. परठ्य पुन्न। २. मो. राजसूअ जग्गु, धा. राजसु जग्गु, अ. राजभूजग्ग, फ. राज भुयग अग्ग।

(५) १. वा. सुद्धिय, मो. सोधी, अ. फ. उ. स. सोधिग (< सुधिग)। २. फ. बल।

(६) १. मो. ना द. उ. स. भूगोल, अ. फ मुवबोल। २. फ. लिष्षति। ३. मो. दिषित, ना दिष्पत, उ. स. दिष्षित।

(७) १. मो छति। २. मो राजा, अ फ ना उ. स. राजन।

(८) १. मो. जितीआ, धा. ना जित्तिया, उ. स. जित्तेति। २. मो उ. स. ना. सकल, फ. सबल। ३. ना. द उ. स गग।

(९) १ मो. पुच्छि (=पुच्छइ), वा. पुच्छई अ पुच्छया, उ स पुच्छ, ना. पुच्छे। २. अ. समति, फ. समत। ३ धा. परित तत्थ, अ फ परवान तच्छ (< तत्थ)।

(१०) १ वा. हम। २ मो करु (=करउ) यग, ना उ स करहु जग्य। ३ धा इह, मो जे, अ फ जिहि, ना. द उ स जिम। ४ वा लही (< लहि=लहइ), मो. लिहि (< लेहि), ना. चले, द उ. स चलहि। ५. धा. कत्थ।

(११) १ धा उत्तर सु देइ, मो ऊतर त दीअ, फ. उत्तर तौ दीय, उ स उत्तर सु दीन। २. मो. मत्री। ३. उ. स सुजानि।

(१२) १ उ स. नाहि। २. वा अरजनु, मो अर्जुन, अ अरज्जुन, फ अरजन, ना द. उ, स. बिय जुग। ३. अ फ समान।

(१३) १. मो. ना अ फ धर्म, वा धम्म, द उ स ध्रम्म। २ मो द ना उ. स. देवल, फ़ देवरु। ३ अ फ ना उ स अनेव।

(१४) १ धा. षोडस (=षोडस्स) २ मो दितु (< दिनु), धा नित। ३ धा देव देय, मो देहु देय।

(१५) १. धा मो सिक्ख सुणवि, मो. सुहु सीष मान, अ फ ना द उ. स. मो सीख मानि। २. धा. न्रप पग, मो. नृपग, अ. फ प्रभु पग। ३ ना नेय।

(१६) १. मो. अजू, फ. अच्छि, ना. द. उ. स जुग्ग। २ वा राजा सुग्रीव, मो. अर्जुन सुसीव, ना. अर्जुन सयेव।

(१७) १ ना. द. उ स राव। २. मो. मत्रीअ, ना. मत्रिनि।

(१८) १ धा. मो ना लोभ। २ धा बुल्यो नियान [पाठा० लहिन आन], अ बुल्यौ नियान, फ. बुड्यो लही आन, मो. जो लुहु (=लुहउ) अयान, ना. द उ स. बोलहु अयान।

टिप्पणी—(१) अथ्थ < अर्थ। (२) षित < क्षेत्र। धम्म < धर्म्म। (३) वारण्ण > वारण = बचाव या सुरक्षा के साधन। अनग्ग <अनग्न=जलादि से परिवेष्ठित। (४) परिठ्ठवण <परिस्थापना। (६) हीर > हेला=अनादर, तिरस्कार। (७) समान=साथ (दे० बाद का चरण १७)। (८) सयल < सकल। (९) मत < मंत्र। (१०) जेम=यथा, जैसे, जिस तरह से। कव्व < काव्य=यश। (११) त < तु=तो। (१२) अउर < अपर=अन्य। (१३) धम्म < धर्म। देवर < देवालय। अनेय < अनेक। (१४) षोडसा < षोडस। [षोडस दानों की सूची के लिए दे० मोनियर विलियम्स की 'संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी']। (१६) अथ्थि < अस्ति=है। भीव < भीम। (१७) समान=से [दे० ऊपर का चरण ७]। (१८) लोह < लोभ। अयान < अज्ञान।

[२]

गाथा—के के[1]न गया महि मंडलंमि[2] धर ढिल्लाय[3] दीह दीहाइ[4]। (१)
विप्फुरइ[1] जासु[2] कित्ती ते गया[3] नहु[4] गया[5] हुंति[6] ॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचन्द ने कहा,] "इस महि मण्डल से धरा को दीर्घ (बहुत) दिवसों तक ढीला करके (भोग करके ?) [भी] कौन कौन नहीं गए ? (२) जिसकी कीर्त्ति विस्फुरित होती है, वही गत गत नहीं होता है।

पाठान्तर—(१) १. ना. को के। २ धा. न गया मह मंडलानि, मो. ना. न गया महि मंडलनि, अ. फ. न गए महि मंडल, द. ना. उ. स. न गया महि मंडलाइ (मंडलाय—ना. उ. म.)। ३ धा. धर ढिल्लिय, मो. धर धर्वलिऊग, अ. फ. ढिल्ली ढिल्लार, ना. बनाए, द. उ. म. बन्नाए। ४ धा. दीह दोहाइ, मो. दह दाहा, अ. दीह दोहाय, फ. दीह दाहहौ, ना. द. दाह दिवहाइ, उ. म. दह इम्हाइ।

(२) १. धा. द. उ. स. विष्फुरे, अ. विहुरनि, फ. बिहुरन। २ धा. तासु, ना. जासु। ३ अ. त गय, फ. त गया। ४ धा. नहि, अ. फ. नहीं, ना. नह, द. म. नवि। ५ अ. फ. गये। ६. उ. म. हूती।

टिप्पणी—(१) गय < गता। दीह < दीर्घ। दाह < दिवस। (२) विष्फुर- < विस्फुर्-। गया < गताः।

[३]

पद्धडी— पहु[1] पंगु राउ[2] राजसू[3] जग्गु[4]। (१)
आरंभ रभ[1] कीनउ*[2] सुरग्ग[3] ॥ (२)
जित्तिआ[1] राउ[2] सव सिंधु आर[3]। (३)
मेल्लिया[1] कंठ[2] जिम[3] मुत्ति हार[4] ॥ (४)
जोगिनी पुरेस[1] सुनि भयउ*[2] पेद। (५)
आवइ[1] न माल मझ्झ इह[2] अभेद ॥ (६)
मोकले[1] दूत तब ही[2] रिसाइ। (७)
असमथ्थ सेव[1]× किम[2]× भूमि× खाइ× ॥ (८)
बंधू[1]× समेत[2]× सामंत सथ्थ[3]×। (९)
उत्तरे[1] आनि[2] दरबार तथ्थ[3] ॥[4] (१०)
बोलउ*[1] न वयण[2] प्रथिराज तांहि[3]। (११)
सकुरिउ*[1] सिघ[2] गुरजनन चाहि[3] ॥ (१२)
उच्चरउ*[1] गुरुअ[2] गौयंद[3] राज। (१३)
कलि मझ्झि[1] जग्गु[2] को करइ[3] आज ॥ (१४)
सत जुग्ग[1] कहइ[2] बलिराइ[3] विन[4]। (१५)
तिनि[1] किंत्ति काज त्रैलोक[2] दिन[3] ॥ (१६)
त्रेता[1] ज*[2] कीन्ह[3] रघुनंद साइ[4]। (१७)
कुव्वेर कोट[1] वरिषउ*[2] सुभाइ[3] ॥ (१८)
धनि[1] धम्म पुत्त[2] द्वापर[3] सुणाइ[4]। (१९)
तिहि पथ्थ[1] वीर अरु[2] हरि सहाइ[4] ॥ (२०)
कलि मझ्झि[1] जग्गु[2] को करण[3] जोग।— (२१)
विग्गरइ* तु बहु विधि[1] हसइ*[2] लोग ॥ (२२)
दल दव्व[1] गव्व[2] तुम[3] अप्रमांन[4]। (२३)
बोल्लहु[1] त बोल देवन[2] समान ॥ (२४)
तुम जानउ*[1] षित्री हइ न[2] कोइ। (२५)

निव्वीर[१] पुहवि[२] कवहू न होइ ॥ (२६)
हम जगलि[१] वास कालिंदि[२] कूल[३] । (२७)
जानहि[१] न राइ[२] जयचद मूल ॥ (२८)
जानहि[१] त देसु[२] जोगिनि[३] पुरेसु । (२९)
जरासिध वंसि[१] पुहुमी[२] नरेसु ॥ (३०)
तिहु.वारि[१] साहि बधिआ[२] जेनि[३] । (३१)
भंजिआ[१] भूप झडि[२] भीमसेन[३] ॥ (३२)
सइंभरि*[१] 'सकोप[२] सोमेस पुत्त[३] । (३३)
दानव ति[१] रूव[२] अवतार धुत्त[३] ॥ (३४)
तिह कंधि[१] सीस किम[२] जग्ग[३] होइ । (३५)
जु प्रिथिमी[१] नही[२] चहुआन कोइ ॥ (३६)
देपइ सभ्भ तेहि[१] सिघ[२] रूप । (३७)
मानहि न जग्गु[१] मनि अन्न[२] भूप ॥ (३८)
आदरह मद उठि गयु*[१] वसिठ[२] । (३९)
जिम गामिनी सभा[१] बुध जन[२] उविठ[३] ॥ (४०)
फिरि चलिग तव्व[१] कनवज्ज मझ[२] । (४१)
भयु मलिन[१] मुक्ख[२] जांनु कमल[३] सझ[४] ॥ (४२)
तिनि दूर दूत[१] जइ* कहिग[२] वयन । (४३)
अति रोस किए[१] रत्ते[२] नयन्न ॥ (४४)
बोल्यउ[१] सुमंत परधान तव्व । (४५)
कनवज्ज नाथ[१] करि जग्गु[२] अव्व ॥[३] (४६)
जव[१] लग्गि[२] गहिहि[३] चहुआन चाहि । (४७)
तव लग्गि ताह[१] टलि[२] काल जाहि[३] ॥ (४८)
ये*×[१] आसमुद्द[२] नृप करहि[३] सेव । (४९)
उच्चरहु[१] कासु सो करहु[२] देव ॥ (५०)
सोवन्न[१] प्रतिमा[२] प्रथीराज वांन[३] । (५१)
थापउ* जु[१] पोलि जिम दरव्वान[२] ॥ (५२)
सइंवरह* सग[१] अरु जग्गु[२] काज । (५३)
विहु जन[१] बोलि*[२] दिन धरहु[३] आज ॥ (५४)
मत्रीनु राउ[१] परबोधिआ[२] जांम । (५५)
घुम्मिआ[१] वार[२] नीसान ताम ॥ (५६)
सुनि सद्दनि[१] वधिअ[२] बदनवार[३] । (५७)

कट्टहि त[१] हेम ग्रहि ग्रहि[२] सोनार[३] ॥ (५८)
भूषन सुदान[१] सुग समि आचार । (५९)
आनंद इद[१] सम किय[२] विचार ॥ (६०)*
धवलेह[१] धाम[२] देवर[३] सुचीय[४] । (६१)
तसु[१] हरहि×[२] कलस कल बिब[३] लीय[४] ॥ (६२)
धज बंधन[१] सोम[२] जनु[३] मधु वह्वीय[४] । (६३)*
मनु सज्जिआ[१] बंभ केलास बीय ॥[३] (६४)

अर्थ—(१) प्रभु पंगराज (कन्नौजराज) ने राजसूय यज्ञ का (२) समारभ राग (अनुराग) पूर्वक किया। (३) सिधु (समुद्र) के आस-पास [तक] सब राजाओं को उसने जीता (४) [और उन्हे इस प्रकार अपने अधीन कर लिया] जैसे उसने कठ मे मोतियों का हार डाल लिया हो। (५) [किन्तु] योगिनीपुर (दिल्ली) के राजा (पृथ्वीराज) के सम्बन्ध मे यह सुन कर उसको खेद हुआ (६) कि वह इस माला मे अभिन्न रूप से नही आ रहा था। (७) तब [उसने] हृदय मे रुष्ट हो कर दूत भेजे, (८) [यह सोचते हुए कि] यदि वह (पृथ्वीराज) उसकी सेवा करने मे असमर्थ था तो वह किस प्रकार भूमि का खा (भोग ?) रहा था। (९) तब [वे दूत कन्नौजराज के] बन्धुओं के समेत और सामन्तो के साथ (१०) [पृथ्वीराज के] दरबार मे आ उतरे। (११) उनसे पृथ्वीराज वचन नही बोला, (१२) वह सिंह गुरुजनो को देख कर सिकुड़ गया (सकोच मे पड़ गया)। (१३) [यह देखकर] उसके एक गुरु (पूज्य) गोविन्द राज ने कहा, (१४) "कलियुग मे आज कौन यज्ञ कर रहा है ? (१५) कहते हैं कि सतयुग मे राजा बलि ने [यज्ञ] किया था (१६) और उन्होने कीर्त्ति के लिए [वामन को] तीनो लोक दे दिए थे; (१७) त्रेता [युग] मे रघुनन्दन (राम) ने जो विशेषता पूर्वक किया था (१८) [उसका कारण यह था कि उनके] कोट (नगर) पर कुवेर ने भावपूर्वक [कोष की] वर्षा की थी; (१९) सुना जाता है कि द्वापर युग मे धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) [यज्ञ करके] धन्य हुए, (२०) [किन्तु] उनके सहायक वीर पार्थ (अर्जुन) तथा हरि (कृष्ण) थे। (२१) कलि मे [राजसूय] यज्ञ करने के योग्य कौन है ? (२२) [यदि वह] बिगड़ गया (विधिपूर्वक समाप्त न हो सका) तो लोग बहुत प्रकार से हँसेगे। (२३) तुम्हे दल (सेना) और द्रव्य का झूठा गर्व है, (२४) तभी तुम देवताओ के समान बोल बोल रहे हो ! (२५) तुम जानते (समझते) हो कि क्षत्रिय कोई नही [रह गया] है, (२६) [किन्तु] पृथ्वी निर्वीर कभी नहीं होती है। (२७) कालिन्दी कूल पर [कुरु] जागल मे हमारा निवास है, (२८) जयचन्द राज को हम मूल (प्रमुख) नही मानते हैं, (२९) हम तो आदेश योगिनीपुरेश्वर (दिल्ली नरेश) का जानते (मानते) हैं—(३०) उस पृथ्वी, नरेश (पृथ्वीराज) का जो जरासध के [पुराण-प्रसिद्ध] वश का है, (३१) जिसने तीन बार शाह [शहाबुद्दीन] को बन्दी किया और (३२) जिसने राजा (गूर्जराधिपति) भीमसेन [चौलुक्य] को गिरा कर [उसकी शक्ति को] नष्ट किया, (३३) जो शाकभरी (साँभर) के कोप युक्त सोमेश्वर का पुत्र है (३४) और जो रूप मे दानव है और धूर्तावतार है। (३५) [जब तक] उसके कन्धे पर सिर है, [राजसूय] यज्ञ किस प्रकार हो सकता है ? (३६) क्या पृथ्वी पर कोई चहुआन [शेष] नही रहा ?' (३७) सब उसको सिंह के रूप मे देखते है, (३८) और मन मे अन्य [किसी को] जगत् का भूप नहीं मानते है। (३९) मन्द आदर (निरादर) के कारण बसीठ उठ कर चले गए, (४०) जैसे ग्रामीण (ग्राम-प्रमुख की) सभा से बुधजन उद्वेष्टित (बंधन-मुक्त) हुए हो। (४१) [दूत] तब लौटकर कन्नौज मे गए। (४२) उनका मुख इस प्रकार मलिन हो गया था मानो सन्ध्या-काल मे कमल हो।

(४३) उससे (जयचन्द से) दूर (अग्ग) जब उन दूतों ने [वे] वचन (वाक्य) कहे, (४४) तो [जयचन्द ने] अत्यन्त रोषयुक्त होकर नेत्र लाल कर लिए। (४५) तब उसके प्रधान (अमात्य) ने यह मन्त्र कहा, (४६) "हे कन्नौजनाथ, अब आप यज्ञ करें, (४७) [क्यों कि] जब तक आप चहुआन को पकड़ने की प्रतीक्षा करते रहेंगे, (४८) तब तक उसका (यज्ञ का) समय टल जायगा। (४९) समुद्रपर्यन्त के ये राजा आपकी सेवा कर रहे है, जो काम आप वह कहें, हे देव, ये करें। (५१) पृथ्वीराज के वर्ण (आकार-प्रकार) की सुवर्ण की प्रतिमा (५२) प्रतोली द्वार पर स्थापित कर दें— जैसे वह दरवान (द्वारपाल) हो। (५३) साथ-साथ स्वयंवर भी हो और यज्ञ-कार्य भी, (५४) [इसके लिए] विद्वानों को बुला कर आज दिन निर्धारित करें।" (५५) जब मंत्रियों ने राजा (कन्नौजराज) को [इस प्रकार] समझाया, (५६) तब राजद्वार पर निशान (धौंसा) घूमा (बजा)। (५७) [इस निशान के शब्द को] सुनकर बन्दनवार बाँधे गए, (५८) और घर घर सुनार हेम (सुवर्ण) काटने [और आभूषणादि बनाने] लगे। (५९) राजा आभूषणों का दान और देव-तुल्य आचरण करने लगा, (६०) और आनन्दित होकर उसने इन्द्र के समान विचार किया (अपने को इन्द्र के समान समझा)।

(६१) धाम (गृह) धवले (सफेदी से पोते) गए, और देवालयों की सफ़ाई की गई, (६२) उनके सुंदर कलश [सूर्य तथा चन्द्र का] बिम्ब धारण करके अन्धकार का हरण करने लगे। (६३) नगरी ध्वजाओं [और बन्दनवारादि] के बन्धनों से ऐसी लगने लगी मानो मधु वसित (मधु दैत्य का निवास—मधुपुरी) हो, (६४) अथवा मानो ब्रह्मा ने दूसरे कैलास का साज किया हो।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाकठ हैं।
× चिह्नित शब्द धा में नहीं है।
× चिह्नित शब्द अ में नहीं हैं।
– चिह्नित चरण उ. स में नहीं है।

(१) १. फ. पौहु। २. धा. द. राय, ना. स. राव, ना. अ फ. राइ। ३. धा मो. राजसुअ। ४ मो. जगु (=जग्गु), अ. जग्गि, फ. जग्ग, ना. जग्य।

(२) १. अ अग्ग, धा मो. द. फ रग। २. मो मूकउ, अ फ. कीनौ (<कीनउ)। ३. मो तुरगु, धा. सुरंग (=सुरग्ग), फ. सुरगु, ना. सुजग्ग, द सुचग, उ स. अचग्ग।

(३) १ धा. अ फ ना जित्तिया, मो जीतीआ, उ स जित्तिए। २. धा. राय, अ फ राइ, स राज।

(३) मो. आर, अ फ शरु।

(४) १. धा. मल्लिया, उ स. मिल्लए, द. मेल्हिया। २ धा. कच्च। ३ उ स.जनु। ४ धा. मो. प्रोत्तिहार, फ. मुत्तियहार।

(५) १ फ. युगिन पुरुस, अ. जुग्गिनि पुरैस, ना द उ स. जुग्गिनिय (जुग्गिनी,-ना.) पुर... २ मो भयु—धा उ. स. भयौ।

(६) १ मो. आवि (=आवइ), अ ना आवै, द उ स आवहि। २ मो. मानल मोह मुझि, फ माल माझहि, द माल मझहिं, ना माल मुझह, उ. स माल मज्ञ झह।

(७) १. मो. मोकले, शेष में 'मुक्कले'। २ मो. ही, ना. तह, उ. स. तिन।

(८) १. उ. स. सेस। २ मो किमि।

(९) १. ना. बंधौ, उ स बधो। २. ना. सुमत। ३ मो तथ्थ।

(१०) १ मो. किउत्तगरि, ना. उत्तइ, धा उ. स. द. उत्तरहि। २ मो आइ, फ. अग्र। ३ मो. तिथ्थ, उ. स. अथ्थ। ४ ना. द. उ स. में यहाँ और है (स पाठ):—

सुनि दूत चलीय दिल्लीय थान। आजानु बाहु जह च्वाहुवान।
पहुच्यौ स जाइ दिल्लीय ताम। गुदरीय वत्त जैचद्द नाम।
हुजूर बोलि पट्ठाइ राज। किहि आए इत्त सो जंपि काज।
तव दूत कही दिल्ली नरेस। आइस्स जंपि जैन्चद एसु।

राजसू जग्य आरंभ कीन । दस दिसिन भूप फुरमान दीन ।
छिति छत्र बंध आए सु सब्ब । तुम चलहु बेगि नहीं बिरसु अब्ब ।
फुरमान दीन चहुवान तोहि । कर छडीय दब्बि दरवान होहि ।

(११) १. धा. बोल्यो, मो. बोलु (=बोलउ), अ. फ. बुल्यौ, ना द. बुल्यौ, उ स. बुल्ल । २ ना. बन । ३. धा अ. फ ना प्रिथिराज ताहि, उ. स प्रथिराज ताह ।

(१२) १ मो. सकुरि, धा. सकरिउ, अ फ. सकल्यो, ना द. सकरयौ, उ. स. सकरै । २. धा सिंध । ३. धा. गुरजन विचाहि, मो. अ. फ ना. गुरजननि वाहि (=चाहि)। अ. पुरजननि च्याहि, फ पुरजनन वाहि

(१३) १. मो. उचरौ (=उचरउ), धा. उच्चरइ, अ फ. उच्चरिय, द उच्चैर, ना. उच्चरयौ, उ. स. उच्चरे । २. मो गुरुअ, धा. गुरु । ना. गरुव धा. ३. । अ. फ. ना. गोविंद, मो. गौयद ।

(१४) १. धा माहि, अ. फ. मध्य, ना. मद्धि । २. फ. जाय; ना जाय । ३ अ. फ. ना. उ. स. करै, द. करहि ।

(१५) १. धा अ. फ. सति जुग्ग, मो. शत (=सत्त) जगु । २. धा. कहइ, मो काहा, ना. अ. कहिहिं, फ. उ. स, कहहि । ३ अ. फ. राज, ना उ. स. राय । ४. धा. अ ना. द. उ स कीन, फ. कीनु ।

(१६) १ मो तिनि, धा अ फ ना. द. उ. स. तिहि । २ धा त्रलोक्य ना अ फ त्रयलोक, उ. स. चिहुंलोक । ३. धा अ फ. ना द. दीन ।

(१७) १. मो त्रता । २ मो. य (=ज), धा. द उ. स. ज, अ. फ. तु, ना जु । ३. मो कीइन, अ. फ. किन्ह । ४. मो. रघुमद साइ, धा अ फ. रघुनद राइ, उ. स. रघु वस राइ ।

(१८) १. धा कोप, अ. फ. कोपि, ना द उ स. कनक । २. मो वरिषु [=वरिषउ], धा अ वरष्यो, ना. उ. स. बरष्यौ, फ बरष्यौ । ३ अ सभाइ, ना. उ. स. सुभाइ ।

(१९) १. मो. धन, ना. उ. स. धर, फ धन्य । २. मो धर्म पुत्र, ना. धर्म पुत्त, अ फ. धम्मं पूत, द. उ. स. ध्रंम पुत्र । ३. फ. द्वापरि, ना. द्वापुर । ४ मो. सुणाय, धा. सुभाइ, ना. द. अ. फ. उ. स. सुनाइ ।

(२०) १. फ. पुब्ब । २ धा अरि । ३. ना. हति, अ. अरि, फ. हर । ४. मो. सहाय, फ. सराइ ।

(२१) १. धा. माहि, मो. मझि, ना. मध्य । २ फ जग्यौ, ना. जग्य । ३. फ. करनु ।

(२२) १. धा. बिग्गरे जग्गु बहु, मो. बिगरि (=बिगरइ) तु बहु बिधि, अ बिग्गरइ बहुत बिधि, फ. बिग्गरइ बौह विधि, ना. बिग्गरहि बहुत विधि । ३. धा. ना. हसहिं, मो. हसि (=हसइ) ।

(२३) १. मो. मद, उ. स. दर्व, द. ना द्रब्ब । २. ना ग्रब्ब, उ. स. गर्व । ३ मो तुम्ह, धा. अ. फ. उ. स. द. तुम । ४. मो. वय प्रमान ।

(२४) १. मो. बोलइ, फ. बोलहि, ना. बुल्लइ । २. मो. त बोल देव, धा. त बोल देवन, फ. ति बोल देउन, ना. त बुल्ल देउन ।

(२५) १. धा. तुम जाणहु, मो. तुम्ह जानु (=जानउ), अ. तुम जानुं (=जानउ), फ. तुम जानुह, उ. स. जानौब तुम्ह, द. ना. तुम्ह (तुम-ना.) जानहु । २. धा. छत्रिय है न, अ. तही क्षत्रिय है न, फ. क्षत्रिय है नु, ना. छित छत्री न, उ. स. षत्री न ।

(२६) १. अ. फ. निब्बीर, ना. नृब्बीर, शेष में 'निरबीर' । २. धा. पुहवि, मो. पुहुमि, फ. पुहुवि, अ ना. उ. स. पुहमि । ३. फ. कब हौं ।

(२७) १. मो. हम जंगली, धा हम जंगलिह, ना. उ. स. अ. फ. जंगलह, द. जंगलहि । २. द. कालिंद्रि, ना. उ. स. कालिंद । ३. मो. कुल ।

(२८) १. ना. उ. स. जानै । २. धा. अ. फ. ना. उ. स. राज, द राय ।

(२९) १. मो. जांनइ, धा ना. उ स जानहि । २. मो ना. उ स. त देस, अ त एक, फ. तु एक । ३ धा. योगिन, अ. फ. जुग्गिनि, ना जुग्गनि, उ. स. जोगिन ।

(३०) १ मो. जुरि इदु वशि, धा जुर इंदु बसु, अ. फ. जरासिंध वस, द जुरा इंद बंस, ना. सब मुकट रा, उ. स. आनल वंस । २ धा प्रिथिवी, अ. प्रिथी, फ. प्रथी, ना. पित्था, उ. स. प्रथ्थिय ।

(३१) १. मो. तिहु वारि, धा. तिहु वारि, अ. फ. तिहुं वार (वारु-फ.), ना. त्रय वार, द. उ. स. कै वार । २. धा. ना. बंधियो, उ. स. बंधयौ । ३. मो. जेन, अ. फ. जेनि ।

(३२) १. धा भजियो, उ. स भजिय सु -। २ मा झडि, वा भडि, द ना उ स. भिरि, अ. ति, फ तिहा। ३. वा मो. भीमसेन, अ फ. भीमसेनि।

(३३) १. वा अ फ द ना उ स समरि, मो सिंभरि (=सइंभरि)। २ अ फ सुदेस, ना नरेस। ३ मो द उ. स. पूत।

(३४) १ म दामीति, धा दानवत, अ. फ दानवति, ना उ स दामित्त, द दामत। २ धा. मो. अ फ. द. उ स रूप। ३ मो. धूत, उ स भूत।

(३५) १ मो तिह कघ, धा तिहि कधु, अ. तिहि कधि, फ. ना स. द तिहि कध। २. अ. फ. किमि, ना. क्युं। ३. मो. जग्य, धा जग्ग, ना. जग्ये।

(३६) १ मो. जु प्रथमी, धा पिरथी, अ. प्रिथिमी, फ. प्रथ, उ स जो प्रथिय, द जौ प्रथी, ना ज्यु पृथिमीव। २. ना नहि।

(३७) १ मो. देखइ सभा तेह, वा. दिष्षियति सब्ब नर, अ दिष्वयहि सब्ब तह, ना. दिष्षीय सभा तिहि, द. दिष्षय सु सभ्भ तिहि, उ स देखी सु सभा तिन, फ. दिष्षीयहि सब्भि भर। २. मो. मधि।

(३८) १ धा. मो जग्गु, अ फ जग्गि, ना उ स. जग्य। २. धा. ते आन, द. मन अन्य, अ मनि आन, ना. फ मन आन, उ स मन अन्य।

(३९) १ मो उठि गुयु [=गुउय], धा ना उट्ठिग, अ फ उठि गयौ, उ स उठि चलि। २ मो वशिठि (=वसिठि)।

(४०) १. धा गामिनीय भरि, मो जिमि गमिनि सभा, ना. जिमि ग्रामीन सभा, अ. फ. गामिनी सभा, उ. स. ग्रामिनी सभा, द ग्रामिन सभा। २ मो बुधीजन, अ फ. बुधिजन। ३ मो. उठि, धा कविट्ठ, मा. वसीठ, द. उ. स बईठ।

(४१) १. धा. दूत, अ. फ सब्ब, उ. स. तबे। २ धा. मांझ।

(४२) १. धा भयो मिलिन, ना भौ मलिन, अ. ए मलिन, फ भए मलिन, द. उ स भय मलिन। २. वा अ. फ. कमल। ३. धा जिमि सुकल, अ फ. जिमि सकिलि, ना उ स जनु कमल। ४ वा सांझ।

(४३) १. धा. द. तिन दूत जाहि, मो. तिनि दूर दूत जि (=जइ), अ. फ तिहि दुरित दूत, उ. स. तिन दूत पग, ना दिखि दूत दूरि। २. धा. ऐ कहिय, अ. फ एकहि, द. तह कहिय, ना कहि गय, उ. स. अग कहिय।

(४४) १. धा कियो, अ फ कियँ, उ. स. कीन, ना. रत। २ धा. रकतात, अ फ. रकते, ना. रंगति, उ. स. रग तेत।

(४५) १. धा. बोलइ, अ. फ. बुल्यो, ना. द. उ स. बुल्यौ।

(४६) १ धा माथ। २ ना. द. उ स. जग्य। ३ ना द उ स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

बोल सुमत्र मत्री प्रधान। उद्धरन जग्य कलिजुग्ग पान।
बालुका राइ बोल्यो हकारि। साधन सुजग्य बहु जुद्ध सार।
षुरसान षान बदेति मीर। सो भाग दसम अप्पं सरीर।
ऐस जु सज्जि चौसठि हजार। अप्पं ति मेछ पहु पग बार।
नीशान बार बज्जेति अग। बद्धी अवाज दिसि दिसि अनग।
पोषद बाद बालुका राज। रष्षिय जग्य को रहै साज॥

(४७) १. मो नवि। २. फ लग्ग, अ. जग्गि। ३. मो. गिहहि, वा अ फ. गहहि, ना. गहै, द. उ स गहौ।

(४८) १. धा अ. फ तहा, ना. उ स. द. ताहि। २. धा अ. फ ना उ. स द टरि। ३. मा. जाय।

(४९) १ मो जे वा. न. उ स द ए। २ धा. आसमुद्द, मो द उ. स आसमद (आसमद—मो) फ आसुमद्द, ना. आससुद्र। ३ धा. करति।

(५०) १ धा उच्चरहि, मो अ. फ उच्चरहु। उ उच्चरेहि। २ मो करहु, ना द उ. स. होइ।

(५१) १. धा. ना सोवन्न, मो. सोवून, अ. फ. सोवनी, द. सोवर्ण। २ मो. अ फ. प्रमिमा, धा ना. उ. स प्रतिम। ३ धा. फ ना. वानि, उ. स. जान।

(५२) १ धा थार्णिह न, अ थप्पहुति, फ थप्पहति, ना रष्षहित। २. धा पौर जिम दारवानि, अ. फ पौरि करि दारवान, ना पौरि जनु दारवान, द दरबान थान, उ म. दरवार वानि।

(५३) १ मो सवरइ (< सिंवरइ=स्वयंवरइ) संग, धा सयवर सग, अ. फ स्वयवर सग (ससु-फ.), ना. सवरउ सग, उ म सवर सजोग, द. सवर सजोग। २ मो आ जग्य, धा अरु जग्गु।

(५४) १. धा. अ. फ विद्वज्जन, द उ स. बुध जनन, ना बुध जननि। २. मो. बोल (< बोलि), धा. बुलि। ३. फ.धरौइ।

(५५) मो. ना. उ. स. मत्रीन राउ, धा मत्रीनु राय, अ. फ. मर्त्रीनि राज, उ. म मत्रान राव। २. ना. पर मोधि।

(५६) १. धा घूमिजा, मो घूमिआ, अ घुम्मिया, उ स. घुम्मेस। २. ना. अ. वीर, फ. वारु।

(५७) १. मो सुनिसइ, अ फ सुनि सद्दन। २ मो. बदीअ, धौ. बरी। ३. धा बदवार, ना द. बदन तिवार, उ. स. बदरनिवार।

(५८) १ मो कटिहित, अ फ कट्टिहिंसु, द कट्टिनहि, ना. कट्टइ ने, उ. स काटन। २ ना. गृहि गृहि, अ. फ. गृह गृह, उ म ग्रह ग्रह। ३ धा अ. फ उ सुनार, स. सुतार।

(५९) १ धा. भूषम सुदाम, अ भूषनह दान, फ. भूषनहि दान।

(६०) १. धा अ. ना इद्र, मो इद, फ. यद। २ धा. सम किउ, मो ना. सम कीय, अ. फ सम किय, उ. स. सुर सम।

(६१) १. धा. ववलेहि। २. धा. अ थम्म। ३. ना. उ म देवल। ४ मो सवाय [सवीय], छा सुचाय, अ. फ. सुबीय [सुचीय], ना द. सुचीव।

(६२) १. धा. तुम्ह, मो तासु, ना तुम। २. उ. स. हरन। ३. मो कलब्यव लीयं, धा. अ. फ. कलबिंव लीय, ना. रविंव वीव, द. रवि बिंव वीय, उ. स रवि ब्यव वीय।

(६३) १. धा. गमतु, अ. मगनि फ मगनु, मो. बधन [< बधन]। २. धा. रापि, ना. द. रोर, फ सोभित, मो. जनु, । ३. धा. अ क. मनु, फ. तम। ४ धा. अ मध वछीय, फ. मब्बछीय, मो. मधु, वछाय [वछीय], ना. द उ स मधु वर्छीय, फ. बबवछीय।

(६४) धा. अ. फ. सज्जिया, ना जनु रच्यौ, उ स जनु रचिय। २. ना ब्रह्म। ३. ना द उ स. में यहाँ और है (स पाठ):

एक वार संजोगीय सजिन पत्ति। मुसकाइ मंद पर कहीय बत्ति।
आचिज्ज एक सषि उरह अत्ति। बहलीय विवधि सुहि मन कि गत्ति।

टिप्पणी—(१) पहु < प्रभु। (२) रग्ग < राग। (३) आर < आरओ < आरनस्=समीप में, पास में। (६) मझ < मध्य। (७) मोकल [दे०]=भेजना, प्रेषित करना। (१०) तथ्थ < तत्र=वहाँ, तब। (११) वयण < वचन। (१२) संकुर < सकुड < संकुट=सिकुड़ना। (१६) कित्ति < कीर्ति। (१७) साइ < स+अति=विशेषता के साथ। (२०) पथ्थ < पार्थ। (२३) दब्ब < द्रव्य। गब्ब < गर्व। (२५) षित्री < क्षत्रिय। (२६) निब्बीर < निर्वीर। पुहवि < पृथ्वी। (३०) पुहुमी < पृथ्वी। (३२) झड < शद्=गिराना। (३३)सइभरि < शाकंभरी। (३४) धुत्त < धूर्त। (३८) अन्न < अन्य। (३९) वसिट्ठ < वशिष्ठ=दूत। (४०) गामिनी < ग्रामणी=गाँव का मुखिया। उविट्ठ < उद्वेष्ठित=बंधन मे मुक्त। (४३) जइ < यदा=जब। (४४) रत्ते < रक्त=लाल। (४५)चाह < वाञ्छ्?=अपेक्षा करना। (५१) सोव्रन < स्वर्ण। वान < वर्ण। (५२) पोलि < प्रतोली=मुख्य द्वार। (५३) सैंवर < स्वयवर। (५४) विदु जन < विद्वज्जन। (५६) वार < द्वार। (५७) सद्द < शब्द। (६१) देवर < देवालय। (६२) ब्यंब < बिंब। (६३) धज < ध्वजा। मगन < मग्न। मधुवछीय < मधुवसित=मधु दैत्य की बस्ती (मधुपुरी)। (६४) बंभ < ब्रह्मन्। बीय < द्वितीय।

[४]

रासा— जव[१] अंकुर[२] करि[३] पानि[४] चरावति[५] वच्छ मृगु।× (१)
मनु मानिनि[१] मिस[२] इंदु×[३] आनंदइ[४] देषि दृगु[५]। (२)*

सहि सहचरिति[१]* चरत्त*×[२] परसपर* वत्तु, किअ । (३)*
सुभ[१] संजोगि[२] संजोग+[३] जानुह[४] मनमथ्थ किअ[५] ॥[६] (४)

अर्थ—(१) [संयोगिता] यवाङ्करो को हाथ मे [ले] कर मृग-वत्सों (शावकों) को चरा रही थी। (२) [वह ऐसी लग रही थी] मानो उस मानिनी के मिस इदु ही [मृगों को] नेत्रों से देखकर आनन्दित हो रहा हो । (३) उसकी सखियाँ और सहचरियाँ [उसके साथ] चलते हुए परस्पर बाते कर रहीं थो कि (४) शुभा संयोगिता के संयोग [विवाह] के लिए [विधाता ने] मानो मन्मथ (कामदेव) को ही [निर्मित] किया है।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द द. में नहीं है।
+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) फ. खोट जव । २ मो. अगुलीय, ना. अकुरि । ३. मो. कर । ४ मो. ना. द. फ. पान । ५. मो. चरावत, धा. चरावति, अ चराव, फ. चरावैइ ।

(२) १. मो. फ. ना. स. माननि । २. फ ना. मिसि । ३. ना. इद । ४. मो. आनदी (<आनंदि=आनदइ), धा. आनदहि, ना अनदिय, द. अनुद, अ अनंदे, फ अनदै । ५. धा. खगु, मो. द्रग ।

(३) १. मो. सिहसिह वरती (<चरती), धा. अ फ. द. उ. सहचरी चरित, ना. सहचरि चरिय । २. मो. वरतु (<चरतु), धा. ना अ. फ. द. उ. चरित्त ।

(४) १. धा. मो. मनु, द. मनुह । २ धा. मो. सजोग, द. सजोइ । ३. ना. फ. संजोगि । ४ मो. जानुह। धा. द. मनहु, अ. मनौ, फ. मुनौ, ना. मनुं । ५. मो. मनुमथ कीअ, ना. मनमत्थ कीय, द. मनमथ लिय,

६. स. में इस छंद का पाठ है :

अरिल्ल—अंकुर पान चरावत वच्छं । मनो माननि मिस दिष्षि अनुच्छं ।
सहचरि चरित परसपर बत्तय । मनों सजोइ संजोग मनमथ्थय ॥

टिप्पणी—(१) वच्छ < वत्स । (३) सही < सखी । चरत्त=चलते (गमन करते) हुए ।

[५]

पद्धड़ी—राजनि अनेअ[१] पुत्तिय ति[२] संगि[३] । (१)
षट बीअ[१] बरिस[२] नव सत्त अंगि[३] ॥ (२)
केवि[१] जुवती जुवजन संगह[२] सुरंग । (३)*
मिलि षिलहि[१] भूप भामिनि[२] अनंग ॥ (४)
संजोगि[१] संग जुवती प्रवीन । (५)
आनंद गान तिन[१] कंठ कीन ॥ (६)
भुव बंक[१] संकु अति सम[२] सषीन[३] ।× (७)*
अध चषन[१] लिषन छिति नषन[२] कीन ॥× (८)
कोमल कुरंगि[१] किंचित[२] किसोर[३] । (९)
अधरनु[१] अदिठ अच्छइ[३] तमोर[४] ॥ (१०)

सुभ सरल बाल[१] बलिअ[२] स[३] थोर[४] । (११)
अकुरहि[१] मनहु[२] मनमथ्थ जोर[३] ॥ (१२)
जुवजन[१] जुवत्ति[२] रचि कहइ*[३] बात[४] । (१३)
स्रवननु[१] सिराति*[२] नयननु अघात[३] ॥ (१४)
मुक्कइ[१]* न लीह[२] लज्जा सु रत्त । (१५)
निध्धनिय[१] धनु हु जांनु गहइ*[२] हथ्थ[३] ॥ (१६)
अधरत्त पत्त[१] पल्लव सुवास । (१७)
मजरिय तिलक पजरिअ[१] *पास ॥ (१८)
अलि अलक[१] कंठ कलयट मत्त[२] । (१९)
सजोगि[१] भोग[२] वरु भयु[३] वसत ॥[४] (२०)
मधुलेहिहि*[१] मत्त[२] रितुराजवत[३] ।+ (२१)
परसप्पर पीवत पियनि[१] कंत[२] ॥ (२२)
लुट्टहि त भमर[१] सुग्गध[२] वास । (२३)
मिलि चद कुंद फुल्लिय[१] अयास[२] ॥ (२४)
वनि बग्ग[१] मग्ग हलि[२]÷ अब मउर[३] । (२५)
सिर ढरहिं मनहुं[१] मनमथ्थ चउंर[२] ॥ (२६)
चलि सीत[१] मद सुग्गंध[२] वात ।+ (२७)
पावक्क मनहुं[१] विरहिनि निपात[२] ॥+ (२८)
कुहु कुहु करंति[१] कलयंठि[२] जोटि[३] । (२९)
दल मिलइ* मनहु[२] अन अंग[३] कोटि[४] ॥ (३०)
करि पल्लव[१] पत्त ति रत्त नील[२] । (३१)
हलि चलहि मनहु[१] मनमथ्थ पील ॥ (३२)
कुसुमेष[१] कुसुम[२] तेन[३] धनुष साजि[४] । (३३)
भृंगी[१] सुपंति[२] गुन गरुय[३] गाजि[४] ॥ (३४)
संजर*[१] सुबान सुमनाह[२] नेह[३] । (३५)
बिद्दारये[१] वीर[२] जुवजननि देह[३] ॥ (३६)
उप्फलिअ[१] कलिअ[२] चंपक सरीप[३] । (३७)
प्रज्जलिय[१] प्रगट[२] कदर्प दीप[३] ॥ (३८)
करवत्त केत–[१] केतकि सुकत्ति[२] । (३९)
विहरंति[१] रत्त[२] वितरंति[३] छत्ति ॥ (४०)
परिरंभ[१] अनिल कदली[२] क पान[३] । (४१)
सिर धुनहि सरस[१] सुनि[२] जानु[३] तान ॥ (४२)

झंकुलिय[1] झाम[2] अभिराम रम्म[3] । (४३)
नहु[1] करइ[2] पीय[3] परदेस गम्म[4] ॥ (४४)*
फुल्लिग[1] पलास तजि पत्त रत्त[2] । (४५)
रण रंग सिसिर[1] जित्तउ[2] वसत ॥ (४६)
देषहिं त[1] पंथ जिन कंत[2] दूरि । (४७)
तिन[1] थकित[2] बोल लोल[3] जल रहिय[4] पूरि ॥ (४८)
सजोगि[1] भोग[2] जुवती प्रवीन ।+ (४९)
प्रिय[1] कंठ नहिं[2] दुहु[3] भइ ति[4] लीन ॥+ (५०)

अर्थ—(१) अनेक राजाओं की पुत्रियाँ उसके संग में थीं। (२) वे बारह वर्ष की थीं, और अङ्ग (शरीर) में षोडश शृंगार किए हुए थीं। (३) सुरंग (सुन्दर) युवतियाँ तो कितनी ही थीं। (४) वे भूप-भामिनियाँ अनग (काम) [के खेल] [परस्पर] मिल कर खेल रही थीं। (५) सयोगिता के साथ प्रवीण युवतियाँ [भी] थीं। (६) वे कंठ से आनन्द पूर्वक गान कर रही थीं। (७) [उनकी] भौंहें वक्र शंकु (कील) [के समान] अत्यंत सम (वैषम्य रहित) और क्षीण (पतली) थीं। (८) अर्ध [निमीलित] नेत्रों से [देखती हुई] वे नखों से क्षिति (भूमि) पर लिख रही थीं। (९) कोमल कुरंगियों के समान [वे युवतियाँ] किंचित् किशोर थी। (१०) उनके अधरों पर अदृष्ट (न दिखाई पड़ने वाला) तांबूल विराजमान (रंजित) था। (११) वे शुभा (कल्याण मयी), सरल बालाएँ [यौवनागमन कारण] थोड़ी पीन [लगने लगी] थीं, (१२) मानो [उनके शरीर मे] मन्मथ जोर से अंकुरित हो रहा था। (१३) वे युवतियाँ [परस्पर ऐसी] बाते रच-रच कर कहती थीं (१४) कि [उनको श्रवण कर] कान शीतल होते और [उन्हे देखकर] नेत्र अघाते थे। (१५) वे लज्जा की रक्त (लाल) लेखा इस प्रकार नहीं छोड़ती थीं (१६) मानो निर्धनां ने हाथ से धन पकड़ रक्खा हो। (१७) उनके अधर-पत्र सुवासित पल्लव थे, (१८) उनके तिलक [आम की] मंजरी थे, और [उनके नेत्र] उनके पास ही खंजरीट थे, (१९) उनकी अलकें अलि (भ्रमर) थे, और उनका [कल] कंठ मत्त कलकंठ (कोकिल) था, (२०) [इस प्रकार] संयोगिता के गुरु स्थान की उन युवतियों का वर वसन्त हो रहा था।

(२१) मधुलेही (भ्रमर) रितुराजवत होकर—वसन्तागम से प्रमुदित होकर—मत्त हो रहे हैं, (२२) प्रियाएँ और कान्त परस्पर [मधु-] पान कर रहे हैं। (२३) भ्रमर सुगन्ध की सुवास लूट रहे हैं। (२४) आकाश मे फूले (उदित) चन्द्रमा के साथ कुन्द भी फूल रहा है। (२५) वनों, बागों, और मार्गों में आम के बौर हिल रहे हैं, (२६) मानो मन्मथ के ऊपर चामर ढल रहे हों। (२७) शीतल, मंद और सुगंध वात चल रही है, (२८) वह विरहियों को इस प्रकार दुःख दे रही है मानो अग्नि उनको नष्ट कर रही हो। (२९) कलकंठ (कोयल) का जोडा कुहू कुहू कर रहा है, (३०) [जो ऐसा लगता है] मानो अनंग (कामदेव) के कोट मे सेना मिल रही हो। (३१) [उसमें वृक्षों के रक्त और नील पत्रों के मिस] रक्त और नील (गहरे हरित) वर्ण के पत्र (पत्रावली) की रचना करके (३२) मानो मन्मथ का हाथी हिलता (झूमता) हुआ चल रहा है। (३३) मन्मथ ने कुसुमो का जो धनुष [-सा] सजा रक्खा है वही मानो उसका का कुसुमेषु (धनुष) है। (३४) भृंगियो की पंक्ति ही उस धनुष का गुण (प्रत्यंचा) है जो गुरु (गम्भीर) गर्जना कर रही है। (३५) सुमनो के (से बने हुए) स्नेह सज्वर के बाणों के द्वारा (३६) वह वीर (मन्मथ) युवाजनों के देह को विदीर्ण कर रहा है। (३७) चंपक और शरीफे (?) की कलिकाएँ खिल गई हैं (३८) [जो ऐसी

लगती है मानो] कंदर्प का दीपक प्रकट होकर प्रज्वलित हुआ हो। (३९) सुकेत करपत्र (आरा) और केतकी कातो हैं (४०) जो [विरहिणियों की] छाती को विदीर्ण कर रहे हैं, इस लिए रक्त विहर (निकलकर फैल) रहा है। (४१) कदली का पर्ण (पत्ता) अनिल (वायु) से परिरमन करता [हुआ ऐसा लग रहा] है (४२) मानो वह सरस तान सुन कर सिर धुन (पीट) रहा हो। (४३) दग्ध झंखाड़ भी अभिराम और रम्य हो गए हैं और (४४) प्रिय (पति) परदेश गमन नहो कर रहे हैं। (४५) पलाश पत्तों का त्याग करके रक्त वर्ण का फूल उठा है, (४६) [जो ऐसा लगता है] मानो उस रण [मे प्रवाहित रुधिर] का रंग हो जिसमें शिशिर पर वसन्त को विजय प्राप्त हुई है। (४७) जिनके कांत दूर देशों मे हैं, वे उनके आने का मार्ग देख रही हैं, (४८) उनके बोल थकित (शिथिल) हैं और उनके चचल नेत्र जल (अश्रु) से पूरित हो रहे हैं। (४९) सयोगिता की गुरु स्थानीय प्रवीण युवतियाँ (५०) अपने दुःखो को नष्ट करके [अपने] पतियों के कठ लग रही हैं।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
(÷) चिह्नित शब्द मो में नहीं है।
× चिह्नित चरण उ. स. में नहीं है।
+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं हैं।

(१) १. मो. राजनियनेअ, धा. ना राजन अनेय, अ. फ. स. राजन अनेक। २. मो. पूतीय ति, अ. फ. पुत्तिय सु, ना. द. उ. स. पुत्रीति। ३ मो. सगि, धा. अ. द. ना उ. स. संग, फ. सगु।

(२) १. धा. खर बीय, ना. षटबीय। २. धा. बरिस, मो. ना. द. उ. स. अ. फ. बरस। ३. मो. नसतस ज्यगि, धा. नवमास अग, ना. नव मसिति, उ. स. नन लसति अग, अ. नवसत्त अग, फ, बसत्त अंगु।

(३) १. धा. किवि (=केवि), मो अ. फ. कवि, ना. किक (=केक) द. उ. स. कै। २. धा. जुवति जुवनि संगह, मो. युवति युवजन संगह, ना. जुव्वति द्वादश सगह, द. उ. स. जुवति द्वादस (द्वासद—स.) संग, अ फ. जन जुव्वति सगह (सगहि–फ.)

(४) १. मो. षिलिह, फ. षिलह, स. लिषहि। २. धा. हसहि भामिनि, फ. भूप मामिन, मो. लुप (<भूप) भामिनि, ना. भूप भामिन, उ. स. भामन वनव।

(५) १. धा. सजोग, मो. संयोग, फ. सजोगु।

(६) १. अ. फ. तिनि।

(७) १. अ. फ. नंक, ना. द लक। २. ना. सुम। ३. अ. सुबीन।

(८) १. फ. चषनि। २. मो. तिषनख मछति, ना. नषन लिषि छित्त, अ. फ. लिषन (लिषिन–फ.) छित्तिनषह (नषहि–फ.)।

(९) १. धा. कुरंगि, मो. अ. फ. ना. उ. कुरग। २. फ. किंचिति। ३. पूरे चरण का स में पाठ है: कोमल किसोर किंचित सुरंग।

(१०) १. मो. अधरनु, धा. अधरन, ना. अधरणि, अ. अधरनि, फ. अधरानु। २. धा. अद्रिष्ट, ना. अच्छिठ्ठ। ३. मो. अच्छि (=अच्छइ), ना. अच्छित। ४. फ. तुमोर।

(११) १. ना. सुरभ सारल बाल, फ. सुत सरल बार। २. धा. बलिया, मो. उ. स. बल्ली, ना. बल्लीअ, द. बुल्लोय, अ. फ. बल्या। ३. द. अ सु। ४. ना. घोर।

(१२) १. मो. अंकुरिहि, अ. अकुरे, फ. अकुरेह। २. ना जानु, फ. मनौ। ३. धा. कोर।

(१३) १. ना. जुव्वनि, स. जुब्बन, उ. जुव्वनन। २. मो. जुवत्ती। ३. मा किहि (=किहइ), ना. कहै, धा अ. फ. कहहि। ४. धा. वत्त।

(१४) १. धा. सुवननतु, अ. स्रवनत्रि, फ. स्रवनत्र, मो. श्रवननु, ना. श्रवनह। २. धा. अ. फरी, स. मो. सिरचि, ना. सार। ३. धा. निकु नयन रत्त, मो. नयननु आघात, अ. फ ना नकु नैन (नयन–ना.) रत्त।

(१५) १. मो. मुकि (=मुक्कइ), धा मुक्कै, अ. फ मुके, ना. मुक्कहि। २. धा लवसु, अ. फ. लीव, स. लोह।

(१६) १. धा. निरखनी, मो. निरधनीय, द. अ. फ. निष्धनीय। २ धा. मनो धनु गहहि, मो. धनुहु जानु गिहि (=गहइ), अ. फ. मनहु धनु गहयौ, ना. मनहु धनु गहै, द. उ. स. मनहु धन गहिय। ३. धा. इत्त।

(१७) १. फ. धरत्त रत्त, अ. उरधर रत्त।

(१८) १. अ. फ. पंजरिय।

(१९) १. ना. अछि अछिक। २. धा. कलमत्ति मंतु, मो. कलयठ मत, ना. कलयठि मंत।

(२०) १. मो. द. ना. सजोग, फ. सजोगु। २ धा. जोग, अ. फ. सग। ३. धा. अ. मो, ना. भुव, उ. स. भुव, फ. मौ। ४ मो. ना. में इसके बाद 'बसंत वर्णन' लिखा हुआ है।

(२१) १. मा. ना. मधुलिहिहि (=मधुलेहिहि), धा. मधुलिहहि, उ स. मधुरेहि। २. मो. मवत, धा. मत्त। ३. धा. अत्त, उ. स. मत।

(२२) १. धा. पिम्म ति पियति, मो. पिवत पित्रहि, अ. पीवति पियनि, धा. पीथाति पिय, उ. स. प्रेम से पियन, ना. पम्मु सोइ प्रीयथि। २. मो. कन्ह।

(२३) १. धा. लुट्टाति भमर, अ. लुट्ठिहि तिभवर, फ. लुट्टहि तौ भमरु, ना. लुट्टहि ति भमर, उ. स. लुट्टहि त भार। २. धा. सुम गध, मो० श्रगत, ना. सोगध।

(२४) १. मो फूलीय, धा फुलल्यउ, उ. स. फूले, अ. ना. फुल्यो, फ. फुल्यौ। २. धा. अगास, ना. अ. फ. अकास।

(२५) १. धा. वणि वग्ग, उ. स. बन बाग, ना. बन मग्ग। २. धा. बहु, अ. फ. अलि। ३. मो. मुर (=मउर), उ. स. मोर।

(२६) १. धा. ढरइ मनुह, ना. ढुरहि जानु, उ. स. ढरत जानि, ढरहि मानौ। २. मो. चुंर (रचउं=), अ. फ. उ. स. चोर, ना. चौर।

(२७) १. ना. सीतल, मो. ना. सो (<सु)। २. मो. ना. सोगध (<सुगंध)।

(२८) १. ना. मनुं (=मनउ), उ. स. मनो। २. मो. बिरहूंनि निपात, ना. विरहनि निपात।

(२९) १. अ. फ. करंत। २. धा. कलयति, अ. कलवठ, फ कलअट्ठ, ना. कुलयंति। ३. द. उ. स. जो।

(३०) १. मो. मिलय, धा. अ. फ. ना. स. मिलहि। २ ना स. जानु, उ. द. जानि, फ. मानौहु। ३. धा. अ ना. अनंग, फ. अनगु। ४ फ. स. कोट।

(३१) १. धा. तरुपल्लिय, ना. तरु पत्त, उ. स. तरु पलव, अ. फ. तर पल्लहि। २. धा. फुल्लहि रत्त नील, ना. पल्लवहि रत्तनील, स. पीत अरु रत्त नील, अ रत्तहि रत्त नील, फ. रत्त तह रत्त तह रत्त नील।

(३२) १. फ. इल चलहि मनो, ना. इलि चलहि जानु, उ. इलि चलिहि जानि, स. हरि चलहि जानि।

(३३) १. धा. कुसुमेनि, मो कुसुमेष, फ. कुसुमेषु मे कुसमन, फ. कुसमु। ३. मो. तेन, धा. धरि, ना. उ. स. अ. फ. नव। ४. धा. धनकि सज्जि, ना. धनक साजि, उ. स. धनुक साज, फ. धनित सज्ज।

(३४) १. मो. धा. भ्रंगी, ना. भृंगीन, स. भंगी। २. धा सुषत्ति, फ. सपंति। ३. धा. अ. ना. गरुव, स. गरुल, फ. गनव। ४. धा. अ. फ. गज्जि, उ. स. गाज।

(३५) १. मो. सर, धा. अ. फ सज्जर (<संजर), ना. साजर। २. मो. सुअनंग, ना. द. उ. स. सोमनहु, अ. फ. सुवनाह। ३. मो. तेह।

(३६) १. धा. विद्रवइ, ना बिहरै, अ फ बिहरे, उ. बिहारि, स बिढारि। २ ना. उ. स. जानि, द. जानु। ३. मो. जुवतीनु नेह।

(३७) १. मो उषलील, अ. फ. उषलीय, ना. उलषीय, धा. उषिलीय। २. उ. स. चलिय। ३. धा. स. द. उ. सरूप, अ. फ. ना. समीप।

(३८) १. मो. प्रजलीय, ना. प्रगटहि। २. अ. मनहु, फ. मनौह। ३. अ. फ. दूप, उ. रूप, स. कूप।

(३९) १. मो. कंत, ना. कत्त (<कंत), उ. स. द. पत्त, फ. बत्त। २. धा. केतकिय सत्त, मो. केतकी सुकंति (<सुकत्ति), फ. किंससु सुगात, स. केलुकि सुकति (<सुकत्ति), ३. केतुकि सुकंति, ना. केतकि सुकत्ति, अ. फ. केतुकि सुकति।

(४०) १. मो. विहिरंति, धा. उ. स. द. विहरंत, फ. बहुरंत, ना. विरहंत। २. मो. रंति (<रत्ति), द. रत्ति। ३. धा. बिच्छुरत, अ. फ. विछुरंत, ना. विछुरंति। ४. धा. पत्त, मो. छंत्ति (<छत्ति), अ. फ. छाति।

(४१) १. धा. पररंभ, अ. परिअंत, फ. धरिअत। २. मो. कलि, उ. स. कदलि। ३ अ. फ. सपान, द. उ. स. क्रिपान।

(४२) १. ना. सर, अ. सरिस। २. स. धुनि। ३. मो. ना उ. म जान, धा. अ. जानि।

(४३) १. धा. झकगिय झाम, ना द झकलि झमूरि, स. अकुरि झमूर, अ. फ. हुकुलिय झलि। २. मो. अ. फ. रम्य, ना. रझि (< रम्य)।

(४४) १. मो. नह, ना. मन, द. स. नन। २. मो. करि (=करइ), धा. करिहि, अ. ना. करहिं, फ. करैं, स. करहि। ३. ना. पाय। मो अ. फ. गम्य, ना. गम्मि।

(४५) १. धा. फूलिग, मो. हूलिग, अ. फ. ना. फुल्लिग। २. फ. पत्त पंत्त (< पत्त पत्त)।

(४६) ना. ससिर। २ मो. जीवतु, धा. जित्तउ, उ. सं जीतौ, अ फ. जीत्यो।

(४७) १. मो. दिषेत, धा. देषहिति, अ फ दिष्षियहि, ना. दिख्यिहित। २. अ. जिनि, ना. उ. स. जिहि। ३. मो. कथ।

(४८) १. मो० के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। २. मो. थकित, धा. ना. द. उ. स. अ. फ. थकि। ३. ना. उ. स. बोलि बोलि। ४. अ. फ. रहे।

(४९) १. धा. मो. ना. संजोग। २. धा. सगि।

(५०) १. धा. पिय ना. पय। २. मो. लाय; धा. जट्ठि ना. नट्ठ। ३. धा. दुहना, दुइ। ४. मो. मयी, .ना उ. स. मगिअ।

टिप्पणी—(१) अनेअ < अनेक। (२) बीय < द्वितीय। सत्त<सप्त। (३) केवि < कतिपय। (४) षिल < खेल्। (१०) अदिट्ठ < अदृष्ट। अच्छ < आस्=बैठना। तमोर < ताम्बूल। (११) बलिय [दे०]=पीन, मासल, स्थूल, मोटा (पाइअ सद्द महण्णवो) (१३) वत्त < वार्ता=बात। (१४) सोर < शीतल (पाइअ सद्द महण्णवो)। (१५) मुक्क < मुच्=छोड़ना। लीह<लेखा। (१८) षंजरिअ < खंजरीट। (१९) कलयंठ < कलकंठ =कोकिल। (२१) मधुलिहि < मधुलेहिन्=भ्रमर। (२२) पिव < प्रिय। (२३) लुट्ट < लुण्ट्=लूटना। (२४) अयास < आकाश। (२५) मउर < मुकुल=बौर। मग्ग < मार्ग। (२९) कलयठि < कलकठ=कोकिल। (३२) पील < पीलु=हाथी (तुल०फारसी 'फील')। (३४) गरुय < गुरु। (३५) सजर < सज्वर। (३७) उष्षिलिय < उत्खण्डित=खिली। (३९) करवत्त < करपत्र=आरा। (४१) पान < पर्ण। (४३) झंकुलिय=झंखाड। झाम [दे०] =दग्ध। (५०) नट्ठ < नष्ट। दुहु=दुःख।

[६]

पद्धडी—रवि जोग पुष्य[१] ससि[२] तीय थान[३]। (१)
दिन[१] धरिगु[२] देउ[३] पंचमि[४] प्रमान+ ॥ (२)
पर उच्छह[१] देषन[२] भयु[३] मिलान[४]। (३)
विग्रहन देस चढि चहूआन[१] ॥× (४)

अर्थ—(१) रवि (सूर्य) जब पुष्य [नक्षत्र] के योग में हो, और शशि (चन्द्रमा) तीसरे स्थान पर हो, (२) ऐसी देव पंचमी का दिन [राजसूय के लिए] प्रमाण (प्रामाणिक रूप) कैसे निर्धारित हुआ। (३) [इधर] पर (शत्रु) का उत्साह (उत्सव) देखने के लिए [पृथ्वीराज सामन्तों का] मिलान (सम्मिलन) हुआ [जिसमें निश्चय हुआ कि] (४) विग्रह करने के लिए चहुआन (पृथ्वीराज) [शत्रु के] देश पर चढ़ाई करे।

पाठान्तर—+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

× उ. स. में यह छंद दो स्थानों पर आया है: स. ४८.९९–१००, तथा स. ४८.१२७। नीचे का पाठान्तर द्वितीय स्थान का है, प्रथम स्थान पर पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

रवि जोग मोब ससि नीय थान। दिन धरयौ देव पचमि प्रमान।
सोय जय्य रूदीपन बाल काज। बिलसन विलास मडयौ ज साज।
पर उछव दषिन दीनौ मिलान। विग्रहन देस चढ़ि चाहुआन।

सामान्य रूप से एक पाठ धा. तथा दूसरा मो. के निकट प्रतीत होता है।

(१) १. मो. मोग, फ. पुप्फ। २. मो सस्य ससि (इनमें से एक मो का अपना पाठ तथा दूसरा पाठान्तर ज्ञात होता है), फ. सिस। २. धा. थाम।

(२) १. ना दितु। २. मो. धरगु, ना. उ. स. धरयौ। ३. ना. देवि। ४. ना. पचम।५. मो प्रयान।

(३) १. फ. उच्छिह। २ धा. देषित, अ दिषन, फदक्षन, ना. दिष, उ स. दिषन। ३ धा म, मो. मयु (=मयउ), अ. फ. कौ मय, ना. मृतयो, स कीनौ। ४. धा मलान।

(४) १. मो. अतिरिक्त सभी में 'चाहुवान' है।

टिप्पणी—(१) तीय < तृतीय। थान < स्थान। (३)उच्छह < उत्साह। मिलान < मिलन।

[७]

भुजंग—चपि रिपु सीस बिट्ठउ[१] नरिंदं[२] ।[३] (१)*
प्रथम अरिराज[१] षंडे पुरंद[२] ॥[३] (२)
बालिकाराय[१] राजन[२] समानं[३] । (३)
गंबिया[१] एक घटि[२] चहूवान[३] ॥[४] (४)
गज्जने देसि[१] बिच्छोहि जोरी[२] । (५)
तबहि पिय[१] कंठ जिम पत्त[२] गोरी ॥ (६)
नीर नीच्चालि[१] उच्चालि झंपइ[२] । (७)*
झरहिं मनि मुत्ति[१] गच्छति लषइ[२] ॥ (८)*
चीर[१] सम्मीर उड्डति[२] तुट्टइ[३] । (९)*
मनहु[१] रितुराज द्रुमपत्त[२] छुट्टइ[३] ॥ (१०)*
ग्रीव[१] नग जोति रहि फूट पग्गइ[२] । (११)*
त चाहि[१] गिरि× सिषिर[२] द्रुम दाह लग्गइ[३] ॥[४] (१२)*
धूम परजालि[१] मिटि मग्ग गजनी[२] । (१३)*
वलहिं मुष[१] तेज जनु[२] चंद रयनी[३] ॥ (१४)
बिंब[१] फल जानि घन कीर धावइ[२] । (१५)
दसन मय[१] बाल वसननि छपावइ[२] ॥ (१६)
सबद सहरोस[१] साहीय सकी[२] । (१७)*
थरहरित थकि रही[१] झीन[२] लंकी ॥ (१८)
केवि[१] रटि रटि ति[२]× प्रिय प्रिय ति[३] जंपइ[४] । (१९)
ऐम[१] रिपु रवनि प्रथीराज[२] कंपइ[३] ॥ (२०)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के चरों (?) ने उससे कहा,] हे नरेन्द्र, [अब] तुम शत्रुओं के सिर दबा उनका गर्व मिटा बैठे हो; (२) पहले [तुमने] खोखंद के शत्रु राजा को खंडित किया।

(३) बलख का राजा (शासक) तो [तुम्हारे] समान ही [बल शाली] था, (४) [किन्तु] उसे, हे चहुवान (पृथ्वीराज), [तुमने] एक आघात मे नष्ट कर दिया। (५) तुमने गजनी के देश में इस प्रकार विक्षोभ जुटा (कर) दिया कि (६) गौराङ्गनाएँ अपने प्रियों (पतियो) के कठ छोड़ रही है, जैसे [वृक्ष के] पत्तो को छोड़ देते हैं। (७) नीर (आँसू) टपका (गिरा) कर वे तीव्र चाल (गति) मे घूम (चल-फिर) रही हैं। (८) उनके जाते समय मणि-मुक्ता झड़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। (९) उनके चीर समीर (हवा) से टूट (फट) कर इस प्रकार उड रहे हैं, (१०) मानो ऋतुराज (वसन्त) मे द्रुमों के पत्ते गिर रहे हों। (११) उनकी ग्रीवा के नगो की ज्योति प्रकृत रूप से इस प्रकार फूट रही है, (१२) जैसे गिरि-शिखरो पर द्रुमदाह (दावानल) लगी दिखाई पड रही हो (१३) और उसकी प्रज्वाला के धूम से गजनी के मार्ग मिट गए हों। (१४) और वे अपने मुख के तेज [की सहायता] से चल रही हैं, जैसे चन्द्र रजनी मे चलता है। (१५) [उनके ओष्ठो को] बिंबफल जान कर घने (बहुत से) शुक दौड़ पड़ते है (१६) जिनके दंशन के भय से बालाएँ उन्हें वस्त्रों से छिपा लेती हैं। (१७) वे रोषपूर्ण शब्द करती हुई साधिक—सविशेष—शकित हैं, (१८) वे क्षीण कटि वाली स्त्रियाँ [भय से] थर्राती हुई थक गई हैं। (१९) कोई-कोई तो रटती-रटती 'प्रिय' 'प्रिय' कह रही है।(२०) इस प्रकार रिपु-रमणियाँ, हे पृथ्वीराज, [तुम्हारे भय से] कॉप रही हैं।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) १. मो. विठु (=विठ्ठउ), धा. बैठो, अ. फ. बैठ्यो। ना. बैठौ। २. धा, ना. द अ. फ. नरिंद मो. नरेंदं। (<नरिंदं) ३. उ. स. में चरण का पाठ है : जिनें साजतें धूम धूमें नरिंद।

(२) १. धा. ना. उ. स. द. अ. फ. जूइ। २. धा अ. फ. षिषंद, ना. द. पुषद। ३. उ. स. में चरण का पाठ है : लगी धूम आयास सोभं जिचंदं। और अतिरिक्त है :

तुरी वारजं राय षोषंद वइं। तहाँ बालु का राय सग्राम सइ।

(३) १ धा. बालुका राज, ना. चालुका राइ, उ. स. तहाँ बालुकाय, फ. चालुकराइ, द. अ. बालुकाराइ। २. धा. दाने, द. उ. स. दानै, ना. दानव, अ. फ. दानौ। ३. धा प्रमान, फ. समानु, उ. स. सुमानै।

(४) १. धा. गज्जिया (<गंजिया), फ. गजया; उ. स. तिने भजिना, ना. भजिया। २. धा. एक घर, ना. केक घट, उ. स. भूप घटि, फ. इक्क घटि, अ. इक्क घट। ३. धा द. ना. अ. चाहुवानु, फ. चाहुवान, उ. स. चहुवाने। ४. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

षगं षग्ग षट्टे सुषक्का हलाई। तहाँ पारसाराव सुरंगु राई।
छत्तेरी छनेरी भंडेरी बरारां। तिनं चद चदेरि नैरी निहारी।
जिने तारिया कालपी कन्हराय। जिने मड्डिया जुद्ध प्रथिराज सायं।
जिने आल पिंडाइ रा चक्क चक्के। बरं रोरिया दाइ सग्राम सक्के।
जिने जग्य जारे धरे गग पारे। जिने संभरी थाट तंडे निवारे।
जिने भंजियं भीमपुर भीम भजे। जिने भजिया जाय गोधग इजे।
जिने भंजिय जाय प्रथम सुकासी। भए सूर सामत उत्त उदासी।
जिने भंजियं जाय मेवात ग्रम। जिने बर सों सेन सज्जे समान।
जिने भंजियं भीम सोमेसभारी। जिने राजधानी सबे पाय पारी।
जिने आलगी जोग षंडे षपेली। जिने माथुरी मोह मोहत लेली।
जिसोरी पुरं रोरियारा जमाय। . . . . ।
किय दीन बबारि प्रथिराज सोरी। षब षीत्र षंगार बल्लोच मोरी।
तहां ग्रीव बंबारि अग्गीव फूटी। तहा गोधनं धेन चौनान लूटी।

(५) १. मो. षाजने देसि, धा. गज्जते देस, ना. जिनं गज्जनै देस, उ. स. जिने देस पट्ठर, द. संजमो देस,

अ. फ. गज्जनं देसरि। २. धा अ फ. द. विच्छोह जोरी, ना. विच्छोहि जोरी, उ. स. जोरी बिछोरी।

(६) १. धा. तिसइ पिय, ना. जिनै पाय, द. वज्जि पिय, स. ते तजे पो। २. धा. कठ फत्तहित, ना कंढ पत्तेनि, द. कंढ़ पत्तेति, उ. स. पीय कठ सु, अ. फ. कठ पकत।

(७) १. धा. नीर उच्चाछु, उ स. तिनं तीर नइ चाल, फ. नारची चाल, अ. नोरवा चाल। २ मो. उचाछि जपि (=जंपइ), धा. उच्चालु जंखं, ना. उच्चाल झंषं, अ. फ. उच्चाल हुषं, उ. स. इचाल झखे, द. उच्चाल झंप।

(८) १. धा इरहिं जन मुत्ति, मो. झरहिं मनि भूति, उ. स. तहा झपरहि जेम, ना. झरहि मनु मुत्ति, अ. झरहि मनि मुत्ति. फ. रहसि मनु मुत्ति। २. मा. गछति लषि (=लषइ), धा. ना. द. अ. फ. गच्छति लक्खे (लष्षं—अ. फ.ना.), उ. स. गज झप लक्खे।

(९) मो. वीर (< वीर), उ. स. तिन् चीर। २. उ. स. झारत। ३. मो. तुटे (< तुटि = तुटइ), धा. तुट्ट, अ. फ. ना. ङ्ग्ट्टं।

(१०) १. धा. मनुइ, उ. स. मनो। २. धा. रितुराज द्रुम पाट, फ. रतिराज द्रुम पत्र, ना. रतिराज द्रुम पत्त, उ. स. रत्ति रज (राज-उ.) तर पत्त। ३. मो. छुटे (< छुटि = छुटइ ?) धा अ. फ. ना. छुट्ट।

(११) १. उ. स. तिन ग्रीव, द. ग्रीव नव। २. मो. फूट पगे (< पगि=पगइ) धा. फूट फुम्बइ, ना छुट्टि जग्गे, द. फुटि नगे, फ. फुट्ट पछै।

(१२) १. धा. तिचहि, फ. मनह, ना. तव, द. तचि, उ. स. तमचे। २. धा सिर सिषर, ना. सिर सिषरा, फ. गिरि सिषरि। ३. मो द्रुम दाह लगे (< लगि=लगइ), धा. दव दाव गव्वइ, उ. स. जम दाह लग्गे, अ. फ. दव दाह लग्गं, द द्रुम दाह। ४. ना. में यहाँ और है:

दरी कैशानि सेसानि बेनी। सिषर धावंत ग्रासे सुछिन्नी।

(१३) १. धा. धूम पर जार, उ. स. तिन ध्रम्म प्रजारि, अ. फ. पज्जार, ना. धूम परिजारि, द. धुंम पर जाल। २. धा. मृग्ग नयनी, मो. मग्ग गयने, स. उ. अग्ग पनी, अ फ. मग्ग गवनी (–गउनी फ.), ना. मग्ग मयनी (< गजनी)।

(१४) १. धा. चलहि तव, अ. फ. चलहि तिह, ना. चलहि तिहि, उ. स. तहां चलहि तिन। २. अ. फ. मुष। मो. वंद (< चंद) रमनी, अ. फ. चंद रवनी (रउनी–फ.), ना चंद वयनी, उ. स. चंद रेनी।

(१५) १. धा. ना. द. अ. फ. बिंव, मो. ब्यंब, उ. तहा बीव, स. तहाँ बीज। २. मो. धावि (=धावइ), धा. धावइ, ना. धावहि, अ. फ. धावै, उ. स. धाए।

(१६) १. मो. दसन भूप भय, ('भूप' कदाचित् 'भय' का पाठान्तर है, जो यहाँ आ गया है) उ. स. तहाँ दसन बाल मे (बाल मैं-उ.) २. मो. वासन छपावि (=छपावइ), धा. द. वसननि छिपावइ, ना. दसननि छिपावहिं, स. दसन छिपाए, उ. वसनं छिपाए, अ. वसनमि छिपावै, फ. वसनुमि तपाव।

(१७) १. धा. सर्व सहिरोस, ना. सवद सहरो, उ. स. तिनं सइ (<सबद उ.) सइ रोस, द सवद सइ रोस, अ. फ. सवद सीरोस। २. धा. सहियें ससकी, मो. साहाय (< साहीय) सकी, द. माइस ससकी, ना. सारस्स सकी, अ. उ. स. सहि रोस सकी, फ सहै रोस संकी।

(१८) १ धा. थरहरति थकि हरि, फ. थरहरै छकि ररि, ना थरहरहि थकि रहि, उ स. तहाँ थरहरे (–थरहरत उ.) थकि रही। २. धा. छीन, मो. हीन (< झीन)।

(१९) १. मो. केच (< केव), धा. ना.. अ. फ. के वि, उ स कव्वि। २. धा अ. फ. ना रटि रटित, मो. रति, ना. द. रट रटति। ३. धा. प्रिय प्रीय, अ. फ. ना. द. उ. स. पिय पियहि। ४. धा जंपइ, मो. जंपि (=जपइ), अ. फ. जंपै।

(२०) १. मो. प्रेम, अ. फ. पमि, ना. द. नाम। २. धा. रिंपुरमनि प्रिथिराज, ना. द. प्रिथिराज रिपुखनि। ३. मो. कपि (< कंपइ), धा. दंपद, अ. फ. ना. द. कपै।

टिप्पणी—(४) घट < घट्ट=आघात। (५) विच्छोहि < विक्षोभ। (६) पत्त < पत्र=पत्ता। (७) झंप < भ्रम् =घूमना-फिरना, चलना। (८) नोवाळ < निवाल=बिराना, टपकाना। (९) तुट्ट < त्रुट्=टूटना। (१०) उच्चाउ=ऊँची, या तीव्र चाल। (११) पग्गइ < प्रकृत=स्वाभाविक। (१३) परजाल < प्रज्वाल। (१४) वल < वल्=जाना, य मन करना। (रवनी=जवो।) (१५) ब्यंब < बिंब। (१६) दसन < दशन। (१७) साहिअ

< साधिक=सविशेष। (१९) केवि > कतिपय। जंप < जल्प्=बोलना, कहना। (२०) एम < एव=इस प्रकार। रवनि < रमणी।

[८*]

दोहरा— *गयमदा चषि[१] चचला गुर[२] जंघा[३] कटि रंचि[४]। (१)*
पिय[१] प्रथीराज रिपू किअ[२] तउ[३] बिपरित कीन[४] बिरंचि[५] ॥ (२)*

अर्थ—(१) "गज की भाँति मन्द [गति], चंचल आँखों, गुरु जंघाओं, तथा क्षीण कटि वाली [शत्रु रमणियाँ अपने पतियों से कहती हैं,] (२) 'हे प्रिय, पृथ्वीराज को जो तुमने शत्रु किया तो विधाता ने [सब कुछ] उलटा कर दिया'।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. अ. ना. उ स. चष., द. भषि। २. धा. ना. गुरु, द. गय ३. द जं। ४. उ. स. अ फ. रच।

(२) १. धा प्रिय, मा. जु, ना. उ. स. अ. फ. पिय। २ धा. उ. रिपु कियउ, उ. स. सुरिपु कियौ, न. अ. फ. जु रिपु कियौ, द. जु रितु कियौ। ३. मो. तु (=तउ), अन्य प्रतियों में यह शब्द नहीं है। ४ मो. कीउन धा. ना अ. फ. कीन, ना. द. उ. स करण (ना. उ स. करन)। ५ ना. उ. स. फ. बिरच।

टिप्पणी—(१) गय < गज। चष < चक्षु।

[९]

दोहरा— *जिनिअ* जगत[१] जय पत्त लिय[२] दिसि[३] मुरधर उपदेस। (१)*
षिति रष्षन[१] निति वर सबल[२] रिपु पंगुरह[३] नरेस[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) "[पंगराज जयचन्द की स्त्रियाँ उससे कहती हैं,] '[पृथ्वीराज ने] जग को जीता और जय-पत्र प्राप्त किया है और मुर (मरु) धरा की दिशा को उपदेश किया—दंडित किया है। (२) तुम्हारा शत्रु, हे पगराज, धरती की रक्षा करने वाला और नित्य ही विशेष बल शाली होता जा रहा है'।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है।

(१) १. धा जीत जगन, मो जीताअ (< जीतीअ) जगंत, म. राजिति ?, उ. स. जित्ति जगत, ना. अ. फ. जीति जगत। २. मो जय पथलीय, फ. जय पत्ति लिय, अ. जय पत्त लिय, फ. ययपत्ति लिय, म. जयपत लैं। ३. धा. दिस फ दिशा।

(२) १. मो षिती रषन, धा. छिति रच्छन, उ. स. छिति रष्षन, फ. छिति रक्षा, अ. छिति रष्षन, ना. छिति रक्षन। २. मं. नितिवर श्रवन, धा. छितिपर सबल, ना. म. उ. स. छितिपर सबर, अ. फ. छिति परसपर। ३. धा. रिपु पंगुलो, ना. अ. फ. म. उ. स. सुनि पंगुरे (पंगुरैं-म.)। ४. मो. नुरेस।

टिप्पणी—(२) षिति < क्षिति। निति < नित्य।

[१०]

पद्धडी— कर[१] पग्ग मग्ग अग्गइ*[२] सुवार[३] । (१)
सुर सुक्कि सुक्कि[१] सुह्र मनहु[२] प्रहार[३] ॥ (२)
सुनियइ*[१] न सद्द नीसान भार[२] । (३)
दरबार भयी[१] इत्ती जउ*[२] पुकार ॥[३] (४)
थकि बेद विप्प[१] माननी सु[२] गान । (५)
आनंद सकल सुविसइ[१] न कानि[२] ॥ (६)
कर चपि राय मुक्यउ*[१] उसासि[२] । (७)
विग्गड्यउ*[१] जग्गु[२] मत्री विसासि[३] ॥[४] (८)
सुनियइ*[१] न पुन्य[२] सभ[३] मम्झ राज[४] । (९)
युवजन युवत्ति अनु[१] करिग साज[२] ॥[३] (१०)
सजोगि[१] जोग वर तुम्ह[२] आज । (११)
व्रत[१] लिअउ*[२] वरण*[३] प्रथिराज राज[४] ॥[५] (१२)

अर्थ—"(१) [तुम्हारे आक्रमण के भय से पंगराज के] मार्ग में [उसके] हाथ पैर आगे रुक गए हैं, (२) स्वर शुष्क हो गया है, सुख समाप्त हो गया है, मानो [तुम्हारा] आक्रमण हुआ हो। (३) धौंसो के भारी शब्द नही सुनाई पड़ रहे हैं, (४) [जयचन्द के] दरबार मे जो इतनी पुकार हुई है। (५) वेद [पाठ] में विप्र और गान मे मानिनियाँ थक (शिथिल हो) गई हैं, (६) समस्त आनन्द अब कानो में प्रवेश नहीं कर रहे है। (७) राजा (जयचन्द) हाथ मल कर उच्छ्वास छोड़ रहा है कि (८) मत्री के विश्वास में मेरा यज्ञ बिगड गया। (९) सभी राज्य मे पुण्य नही सुनाई पड़ रहे हैं, (१०) और युवतिओ ने आसक्ति की है। (११) संयोगिता के योग्य वर आज तुम्हीं हो। (१२) हे राजा पृथ्वीराज, उसने तुम्हे वरणा करने का व्रत लिया है।"

पाठातर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।
(१) १. द उ. स में यहाँ और है (स. पाठ) :—
तिन समय ताम कनवज नरेस । क्रत काम पुन्य सज्जे असेस।
सवर मजोग सम जग्यकाज । बिथ्थुरिय रिद्धि गति बिबिध राज।
श्रृंगारि सहर बिबिधं बिनान । आनंद रूप रज्जे उतान।
तोरन अनूप राजैं सुभाइ। जगमगत षंभ हिम जरित ताइ।
वासन विचित्र उत्तान ताम । मंडप्प उच सज्जे सुधाम।
वास नह श्रेन विधि बंधिबान । सोमंत धज्ज बधे सुयान।
क्षोनी पवित्र सद्धी सवारि। द्रावैं सुमंहि सुर सम अपार।
गावंत थान थानह सु गेव। मंगल अनेक साजै सु भेव।
जल जात माल तोरन कुसुम्म। वहु रंग विद्धि सोभा सुरम्म।
आए सु न्रपति अनेक थान। उद्दार मत्ति पिति आसमान।
संभर संजोग लब्भे सुभूप। संपत्त लाज हय गय अनूप।
देवंत अत्ति उत्तान थान। अप्पटंत अप्प गुन आसमान।
चिंतं सुचित्त कमधज्जराइ। केहरि कंठेर वर सुत्ति काय।

संजोग सज्जि नयरी पकार। सम करइ साज हय गय सुमार।
बाजे अनंत बज्जे विवान। बहु न्रत्य करत रंजंत तान।
कौतिग सुराज राजै अनूप। क्रतयंत कंठ सादिष्ट रूप।
झलंत नेन देषत विनान। मझंम चित्त साकुल्य जान।
आतस चरित्त साजे अनेव। नाटिक्क कोटि नाचंत भेव।
देषहि विवान साजहि सु देव। वानिय प्रसाद कछु कहिय गेव।
इहि विद्धि सत्त अह विन्ति जाम। अहा आइ कुक्कि पर दार ताम,

२. धा. अग्गह, मो. आगि (=आगइ), ना. अग्गै, उ. स. आगें, अ. फ. अंगह। ३. मो. सुपार, ना. सुवार, स. सुबीर।

(२) १. ना. सर सुकिसुं, मो. सह मनहु, धा. सुह मन, ना. सुमन, द. उ. स. सुमन, अ. फ. सहमन। २. अ. फ. पहार, द. पसार, स. प्रसीर।

(३) १. मो. सुभिइ (सुभियइ), धा. सुनियह, ना. सुणीयँ, द. उ. स. अ. फ. सुनियँ (सुनिये-अ.)। २. धा. चार।

(४) १. मो. भयु (=भयउ), द. भई। २. मो. इतयु, द. इतंती, धा. उ. स. अ. फ. एतो, ना. इत्ती। ३. द. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :—

तम पुच्छि ताम जैचंद राज। अवगुन अध्रम्म किन करिय काज।
उच्चंत ताम धाहू सउत्त। चहुआन राव सोमेस पुत्त।
सव देस भंजि घोषंद थान। बालुकाराय हनि देषि प्रान।

(५) १. धा. द. वेद वेद, ना. वेद वेदोति, म. वेद विप्र, उ. स. वेन, अ. फ. वेद भेद। २ धा. विप्पनि सु, म. बयनं सु, उ. स. विप्रान, ना. बिप्रन सु, अ. फ. बिप्रनि सु।

(६) १. मो. सुवीसि (< सुविसइ)। २. धा. ना. म. उ. स. द. अ. फ. कान, केवल मो. में 'कानि'।

(७) १. धा. सुक्किय, ना. म. उ. स. द. सुक्यौ, अ. फ. सुक्कै। २. मो. उसारि, धा. ना. अ. फ. उसांस (उसास-म.), म. उ. स. निसास।

(८) १. धा. ना. उ. स. म. द. अ. फ. बिग्गर्‌यौ (बिगस्यौ-म० विगास्यौ—ना०), मो. विगढ्यु (=विग्गढ्यउ)। २. अ. जग्गि, फ. म. ना. जग्य। ३. धा. विमास, म. उ. स. द. ना. अ. फ. विसास। ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

बंधों सु चंपि अब चाहुआन। बिग्गर्‌यौ जग्य निहचै प्रमान।
जोगिनी राज चित्रंग जोइ। बंधों समेत प्रथिराज दोइ।
सन्नाह राज बंधौ सबीर। निर्वार करों चहु आन श्रीर।
आहुठ्ठ राज प्रथिराज साहि। पीलों जु तेल जिय तिल प्रवाहि
संभरि जुन्हाइ बुल्लाइ राइ। इक वत्त कहा पिय सुनहु आइ।

(९) १. मो. सुनीइ (=सुनियइ), धा. सुनई, ना. उ. स. द. म. सुनियँ। २. मो. ना. पुन्य, धा. पुकार, फ. अ. फ. न पुन्नि। ३. धा. सब, अ. सुभ। ४. धा. महाराज, द. मझि राइ, स. मध्य राज, अ. फ. मंडराइ।

(१०) १. मो. युवजन युवती अन, धा. युवतीय जनन युव, ना. जुद्ध जनु जुवत्ति अनु, म. जुव जनु जुवत्ति अनु, उ. जुवजनि जुवति, स. जुवजसि डुवन्ति अति, अ. फ. युवतीजन युवजन। २. अ. फ. साइ। ३. ना. द. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

पुच्छी स ताम संजोगि वत्त। कहि धाह कोन मो पित विरत्त।
उच्चरी ताम सहचरी एक। बंधी सुराज प्रथिराज तेक।
दिल्ली नरेस सोमेस पुत्त। चहुआन पान देषे स उत्त।
बालुका राव सम्यौ सुतेन। घोषंद भजि पुर लुटिं रेन।
सुनि स्रवन वत्त संजोगि तथ्य। चिंता सुचित्त गंधर्व कथ्य।

(११) १. म. संजोग। २. धा. ना. अ. व्रत सु, फ. वृतम।

(१२) १. उ. स. व्रित, फ. व्रत। २. धा. लियो, मो. लीउ (=लियउ) म. क्य, अ. फ. ना. लियौ। ३. मो

चरण (< वरण), म. वरज, फ. वरुन। ४. धा. उ स म प्रिथिराज साज, अ. फ प्रथिराज (प्रिथिराज-अ.) काज। ५. द. म. उ स. में यहाँ और है (स. पाठ) ।:

द्रिढ़ करिय मत्र सम चित्त अत्ति। पितु विरत बुद्धि छडौ विमत्ति।
सजोगि ताम जप्यौ सु प्रम। मानों सु मुझ्झ इह द्रढ़ नेम।
चहुवान सुबर मो सत्ति मत्ति। छडौ सु अवर लालिच्च अत्ति।
इस जंपि मत्र सा निज्ज धाम। छडे व अन्व विधि व्याह काम।

टिप्पणी—(१) मग्ग < मार्ग। (२) सुक्क < शुष्। मुक्क < मुच्। सुह < सुख। (३) सद्द < शब्द। इत्तो < इत्तिय < इयत्=इतनी। (४) जउ < यत। (६) विस < विश्=प्रवेश करना। (७) मुक्क < मुच्=छोड़ना। उसासि < उच्छ्वास। (८) विसाम < विश्राम। (१०) अनु=और। साज < सज्ज < सज्=आसक्ति करना।

[११]

दोहरा— *तिहि[१] पुत्तिय[२] सुनि गन इतउ* [३]तात वचन तजि काज। (१)*
कइ[१] वहि[२] गगहि सचरउं[३] कइ[४] पानि गहउं*[५] प्रथीराज[६] ॥ (२)*

अर्थ—(१) "उस (जयचद) की पुत्री (सयोगिता) के सम्बन्ध में [मैंने] सुना है कि वह यहाँ तक गुनने लगी है कि 'पिता के वचन और [स्वयंवर के] कार्य का त्याग कर (२) या तो मैं गगा में बह चलूँगी, और या तो पृथ्वीराज का पाणिग्रहण करूँगी'।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. अ. फ. तिह। २. अ. फ. म. ना. पुत्ती। ३. मो. गन इतु (=इतउ), धा. गणइ इत, अ. फ. गुनय इत, द. ना. स. उ. म. गुन इतौ, फ. गुनि इता।

(२) १. मो. काइ, म. अ. फ. कै। २. मो. विहि, धा वय। ३ मो. ना. गगहि सचरु (=संचरउं), धा. वहि गंगहि परौं, अ. गगहि सचरौं, म. गंगह सिंचरौं। ४. मो. काइ, म. कै। ५. मो. गुहु (=गुहउं), धा. ग्रहै, ना. ग्रहु (=ग्रहउं), द. ग्रहु, फ. हू गहुं, अ. गहुं (=गहउं), म. उ. स. ग्रहन। ६. धा. म. ना. प्रिथिराज।

टिप्पणी—(१) गण < गणय्। इतउ < इयत्=इतना।

[१२]

दोहरा— *सुनत राइ[१] अचरिज* भयउ[३]* हियइ* मन्यउ*[३] अनुराउ[४]। (१)*
नृप वर अनि उर[१] अंगमइ[२] दैवहि अवर[३] स भाउ[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) को [सयोगिता के इस संकल्प की बात] सुनते ही आश्चर्य हुआ, और उसने हृदय में सयोगिता के अनुराग को मान लिया। [और उसने कहा] (२) "नृप (जयचन्द) अपने हृदय में उसके लिए अन्य वर (भले ही) निश्चित कर चुका है, किन्तु दैव को तो दूसरा ही [वर] भाता है।"

पाठान्तर—(१) १. धा. द. फ. सुनित राइ, ना. सुनत तावत, अ. सुनति राइ, म. सुनत राय। २. धा. म. अचरिज्ज किय, अ. फ. अचरज्ज किय, ना. अचिरिज कीयौ। ३. मो. हीई मन्यु (=मन्यउ), उ. स.

म हियँ मन्नि, धा हिय मज्झर, द. हिय मानु (=मानौं), अ फ ना. हिय मान्यौ। ४ धा अनुराइ, म अनिराव, उ स अनराव।

(२) १ धा त्रिपवर अवरइ, अ फ ना नृपवरु और (अउरहि–फ, औरें–ना), म उ स. हौं वरि अवरहि (औरहि–म.)। २ धा निम्मवइ, अ फ निर्मव, फ नृमये, ना सभ०, म. देउ अब, उ. स देउ बर। ३ अ. फ. दवहि आर, धा. अवर अच्चिस्यो, उ. म दवे और, म. देवें अवर, ना. दइयँ ४ धा. थाइ, अ. म. उ. स. सुभाव, ना द फ सुभाउ।

टिप्पणी—(१) मन्य < मन्। (२) अनि < अन्य। अवुर < अपर।

[१३]

नाराच—परठि[१] पगराइ दुत्ति[२] सुतीय[३] आल[४] मुक्कने[५]। (१)
साम दान दड भेद[१] सारस[२] वियष्षने[३] ॥[४] (२)
जे ग्रीव ग्रीव तार तार नेन सेन[१] मडिही[२]। (३)
जे[१] वचन्न विध्धि निध्धि धीर[२] ही सग्यांन षंडिही[३] ॥[४] (४)
अनेक बुध्धि सुध्धि[१] सब्ब मुच्छि[२] काम जग्गवइ[३] ।[४] (५)
ते[१] प्रचारि काम च्यारि जाम[२] अगनं[३] समुम्झवइ[४] ॥[५] (६)

अर्थ—(१) [उधर] स्त्री (संयोगिता) की अड़ (हठ) को छुड़ाने के लिए पगराज (जयचन्द) ने दूतियाँ प्रस्थापित की (नियुक्त की), (२) जो साम, दान, दंड तथा भेद मे समान रूप से विचक्षणा थी, (३) जो ग्रीवा, ताली (हथोड़ी) तथा नेत्रो से संकेत मंडित किया करती थी, और (४) अपनी वचन-रचना की निधि से सज्ञानो (ज्ञानियो) के भी धैर्य को खंडित करती थी। (५) वे सब अनेक युक्तियाँ शोध-शोध कर मूर्च्छित काम को जगाती थीं और चार प्रहर काम की उत्तेजना करके वे उस अगना (सयोगिता) को समझाती थी।

पाठान्तर—(१) १. मो. परठी म. परति, ना. पति। २. धा. अ म. ना. उ. स. दुत्ति, मो. दूति, फ दुत्त। ३. धा. अ. म. पुत्ति, फ. पुत्त, ना. गुत्ति। ४. ना. सुत्ति आलस। ५. धा. म ना मुक्कनै (मुक्कन–ना.) मो. मूकने।

(२) १. धा. द. ति साम डड वीर भेदं, ना. जि साम दान भेद वीर, अ. फ. ति (ते-फ.) साम दान भेद दंड, म. ति सामि दांन भेद दड। २. मो. सरस वीर (पाठान्तर का समावेश), धा. म. उ. स. सारसी (सासी– उ.), अ. फ. सारसं। ३. धा. बिचछने, अ. फ. विचछछने, म. उ. स. बिचष्षने (विचषने–म.)। ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. का पाठ):

वचन्न चित्त चातुरी न ताहि कोइ पुज्जई।
हरंत मान मेनका मनोहरं न सुझ्झई॥

(३) १. धा. सुग्रीव ग्रीव कठ तार नयन सयन, मो. जा ग्रीव ग्रीव तार तार नेन सेन, अ. फ. सु ग्रीव ग्रीव कंठ ताल नेन सेन, ना. जि (=जे) ग्रीवता ग्रीव तार तार नन सेन, उ स. श्रवन्न नेन नेन सेन तार तार, म. श्रवंन नेन सेन सेन तार तार। २. धा. मडही, मो. मझिहीं, म उ स मडई।

(४) १. मा. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। २. धा. वचन्न विद्धि निद्धि रग, अ. फ. वचन्न सिद्धि सब्ब, ना. वचन्न विद्धि निद्धि रग, उ. स. अनेक विद्धि निद्धि सब्ब, म. अनेक विध सिध साध। ३. धा उ. स. म. ना. ईसज्ञान षण्डही, (षडई–म.) अ. फ. ईस ग्यान षंडही, द. ग्यान ग्यान षंडहीं। ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

अनेक भाँति चातुरीनि चित्त चत्त चोरई।
छिनेक में प्रमन्नव सु जेम मेन ढोरई।
कलङ्क कल मलाप जाप ताप धू- ससई।
श्रिपड उरों मिठाम बास साम। ता प्रमन्नई।

(५) १. म. छुष। २. धा. अ फ. मूच्छि, म. मुठि (< मुछि), ना मुछ्यौ। ३. मो. जगवि (=जगवइ) अ. ना. जग्गवं. फ. जगाउही। ४ म उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):—

सुपाठई चतुर बुत्त प्रथम मन्न लग्गवैं।
रईन मोन मोनहीं हसत ते हमावहीं।
विषम जोग मोष ते॰ जोर सों नसावहीं।
अगोन क्ठ पोत रूप उत्तर दिसावहीं।
कपट्ट ज्ञान बत्त मडि इट्ठ सो छँडावहीं।

(६) १. धा. ति (=ते), मो. त, फ. न, ना. द. म. उ. स. में यह शब्द नहीं है। २. धा. अ. प्रचारि च्यारि जाइ, फ. प्रचार चार जाइ, म उ. स. प्रचारि कासु (कासु—म.) चारि (च्यारि—म.) जाइ (जाय—म.)। ना. द. प्रचारि चारि (च्यारि—द) जाइ अग्ग। ३ मो. अगन, धा. अननं, उ. स. आप मन्न, अ. फ. ना. अंगना। ४. मा समूझविर=समूझवइ), धा. समुज्झवइ, अ. समझ्झवं, फ. समुझाउही, म. ना. उ. स. समुझ्झवं।

अनेक भाँति चित्त चातुरीनि सु आप मन्न सुझ्झवं।

५. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

टिप्पणी—(१) परिठ्ठव < प्रति+स्थापय्। आलि < अड्ड [देशज]। मुक्क < मुच्। (२) सारस < सरिस < सदृश। वियष्षं न < विचक्षण। (३) तार < ताल=ताली। सेन < सकेत। (४) सआन < सज्ञान। (५) मुच्छ < मूर्च्छ्।

[१४]

रासा—अलस[१] नयन अलसाय ति[२] अद्दरु[३]× अप्प[४] किय। (१)
[पुत्री वाक्यः] किम बुध्धी[१] मय[२] तात सकिल्लिअ[३] इक्क जिय[४]। (२)
[दूती वाक्य] तव बाले वर तात[१] सकिल्लिअ एक जिय[२]। (३)
चिहि[१] वर वर उतकंठ[२] त पुच्छइ अन्छरिय[३]॥ (४)

अर्थ—(१) उस (संयोगिता) ने अलस नेत्रों से अलसाते हुए आप ही [उस दूती का] आदर किया [और पूछा,] (२)"मेरे पिता ने जी में कैसी (कौन सी) एक बुद्धि संकीलित कर रक्खी है?" (३) [दूती ने उत्तर दिया,] "हे बाले तेरे श्रेष्ठ पिता ने एक [बुद्धि] यह संकीलित की है कि (४) तुम्हें किस श्रेष्ठ वर की उत्कठा है वह, हे अप्सरा, तुमसे पूछे।"

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. म. स. ना. द तव अलस। २. म. अलसायत, ना. अलसाइ चित्त। ३. धा. उ. स. आदरु (आदुरु—स.), म. ना. आदर। ४. स. प्रप्प।

(२) १. म. बुधीय, फ बुद्धिय। २. धा. अम, मो. ना द मय, अ फ अय, म. उ. स. मो। ३. धा. ना. उ. स. किलि ति, म. सकिलिय, अ. फ. सकिलित, फ. सकलव। ४. म. एक हिय, ना. इक्क हिय।

(३) १. धा. अ. फ. हे बाले तव तात, ना. तव बोले वर तात, द. तव बाले बरु तात, २. धा. ना. सकिलित राव (राइ—ना.) लिय, द. सकिलित रायलि, अ. फ. सकिलिय राइ लिय, म उ. स सयवर मडइय (—मंडईय म.)।

(४) १. धा. म. उ. स. कहि। २. धा. उतकंठ, फ. उतिकंठ म. उ. स. उतकठाइ। ३ मो. त पुच्छिहि

अच्छरीय, धा. अ. फ. द. ना. सु पुच्छइ (पुछे-अ. फ.-पुच्छहि-ना. द) अच्छरिय, म. उ. स. माल हर छडइय (छडईय-म.)।

टिप्पणी—(२) मय < मत्=मेरा। सकिलिउ < सकीलि... मन लित=कील लगा कर जोड़ा हुआ, दृढ़ता-पूर्वक गाड़ा हुआ। (४) अच्छरिय < अप्सरसि=अप्सरा।

[१५]

[पुत्री वाक्यः] रासा—मय मन मझ्झ ज* गुझ्झ[१] गुरुज्जन छंडि*स तुम कहउं*[२]। (१)
जंपत लज्जइ*[१] जीह न अक्खर[२] लहु लहउ*[३] ॥ (२)
षट दह[१] जिहि सामत[२] सोइ प्रथीराज कोइ[३]। (३)
दान षग्ग भय मानि न[१] मुक्कउ तात सोइ[२] ॥[३](४)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] "(१) मेरे मन मे जो गुह्य है, वह गुरुजनो से भी न कहकर तुमसे कह रही हूँ। (२) उसे कहते हुए मेरी जिह्वा लज्जा का अनुभव करती है, और [उसे कहने के लिए] मै एक लघु अक्षर भी नहीं पाती हूँ। (३) जिसके सोलह [या साठ ?] सामंत हैं, वही कोई पृथ्वीराज [मेरा वर] है, (४) जिसने [मेरे पिता के] षड्ग-दान (खड्ग-युद्ध) से भय मान कर मेरे पिता को छोड़ा नहीं है [और उससे युद्ध करना चाहता है]।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. मय मन मझ्झ गुझ, २ धा मुहि मनमह मुझ जानि, द. उ. स. म. मो मन मझ गुरुजन, ना. मय मनन मझ, अ. फ. मो मन मझ गुज्जन। २. मो गुरुजन छडसु तम कहु (=कहउं), धा. गुज्झ त तुम्ह कहु (=कहउ), ना. उ. स म गुज्झ सु (सु-म.) तुम कहौं, (कहौ-म., कहु=कहउ-ना.), अ. फ. गुझ्झ जु तुम कहै।

(२) १. मो. जंपत लजि (=लजइ), धा अपत लज्जे, ना जंपत लज्जु (=लज्जउं), उ. स. जंपति लाजों, अ. फ. जंपत (जंपति-फ.) लज्ज, म. जपति लाजों। २ मो न अक्षर (=अक्षर), धा. न अष्वर, अ. फ. न अछ्छर, म. सुअतर, ना. स अच्छिर, उ. स. सु उत्तर। ३. मो. धा. ना. लहुं (=लहउं,) अ. फ. लहै, उ. स. लहों, म. लहौं।

(३) मो. धा. षट्दह, अ षट (षट) दह, फ. षट्ठ (षट्ठ) दह, ना. द. म. उ. स. सत्त (सित्त-द.) सेन (सयन-ना.)। (२) धा. अ. फ सावत। ३. धा. प्रिथी प्रिथीराज कइ, अ. फ पुथो (पृथ्वी-अ.) पुथिराज होइ, ना. द. म. उ. स. सँर छह (छद-ना.) मडलिय।

(४) १. धा. मो. फ. दान सग्ग भय मान, अ. दान षग्ग भय मानि, ना. द. म. उ. स. बरन (वरण-मो.) इच्छ वर मो हिअ (हिय-म., हिअ-ना.)। २. धा. न मुक्कउ तात सइ, मो. नमयुक्यु (=नमक्यउ) तात सोइं, अ. फ. न (नि-फ.) मुकइ तात सुइ (सोइ-फ), ना. द. म उ. स. इति असंडलिय।

टिप्पणी—(१) मय < मत्=मेरा। गुझ्झ < गुह्य। (२) जप < जल्प्। जीह < जिह्वा। (४) मुक < मुच्।

[१६]

[दूती वाक्यः] गाथा—अबुधा*[१] अलीह[२] बाला क्यउं*[३] उच्चरिय मित्त[४] रस एनम्[५]। (१)
लहु आ[१] लुहार पुत्ता[२] तुं पुत्तीय राइसं धीय[३] ॥ (२)

- अर्थ—[दूती ने कहा,] "(१) हे बुद्धिहीना और अलीक (लीक त्याग कर चलने वाली) बाला, तू क्यों भिन्न रस के इन [वचनों] को बोल रही है ? (२) वह लघु लघु [पिता] का पुत्र है, जब कि तू, हे पुत्री राजेश्वर की दुहिता है।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. अबुधे, ना. द. मुगधा म. उ स मुगधे, अ. फ मुद्धे। २. मो अलि बाला, ना मुगधय रसया, द. म. उ. स मुगधा रसया, अ फ. अमुद्ध रसाइ। ३. मो क्यु (=क्यउ), धा. अ फ में यह शब्द नहीं है। ४. ना उवरजे भयन, उ. स अवरज भिन, म. अचरज भिन, अ. फ. उच्चरिय वयण भिन्न। ५ मो. एन् (<एनत्), धा. एग, ना द. यव (यव–ना.), म. उ. स यवि, अ. फ. नाय।

(२) १. धा ना. द. अ. फ. लहुआ। २. धा. लुआर पुत्ती, अ. फ. लहुवाय पुत्त, द. उ स. लुहान पुत्त, म. लहुआन पुत्त, ना. नहान पुत्ती। ३ धा. त पुत्तो राजघर आयी, ना. द. तु (तु–द) पुत्ती राज (राजा–द.) ग्रेहेवि (ग्रेहेत्रि–द.), उ. स तू पुत्ती राजग्रेहाय, म. तूं पुत्ती राजग्रेहाई, अ फ. तं पुत्ती राज घर आयं।

टिप्पणी—(२) लहु < लघु। आ=ग्रह। लुहअ < लघुक। राइस < राएस < राजेश। धीय < दुहितृ।

[१७]

[पुत्री वाक्यः] साटिका—आ रत्ती अजमेरि[१] धुम्मि धमनी[२] कति मंडि मडोवर[४]। (१)
मोरी रा मुरमड*[१] दंड दमनो[२] अगिनी उतिष्ठा[३] कर[४]। (२)
रण थभ[१] थिर[२] थंभं सीस अहिरणि[३] जलजिष्टि[४] कालिजर[५]। (३)
क्रपान[१] चहुआन जानु घनयो[२] घरनोपि[३] गोरी घर[४]॥ (४)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] "(१) उसीने अजमेर में धूम धाम मचाई और मडोवर को काटकर मंडित किया, (२) [उसीने] मरु मड के मोरी राज को दंडित करके उसका दमन किया, और उत्थित करों (लपटों) वाला अग्नि बन कर (३) उसने स्थिर स्तंभ वाले रणस्तंभपुर (रथभौर) के के सिर पर अभिरमण किया और कालिंजर को जलमग्न किया, और (५) चहुआन की वही कृपाण तो गोरी धरा पर घन की भाँति घहराई !"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित चरण फ. में नहीं है।

(१) १. अ. फ. आरत्ता (नारत्री–अ.) अजमेरि, मो. आरत्रा अजमेर। २ मो. धूमि धमनी, धा धुपिय धवनी, द. म. उ. स. धुम्मि धमनी, अ. फ. ना. धुम्मि (धूम–फ.) धवनी (धरनी–फ.)। ३. मो. कति मंझि (< मडि), धा. म. ना. करमडि, अ. कमंडि, फ. कुमंडि। ४. मा. मडोवग (< मडोवरं।)

(२) १. मो. मोरीरा मरमझ, धा. अ. फ. मोरीरा मुरमुंड, ना. मारारा मुरमुंड, द. उ. स. मोरीरा मरमुंड, म. मोरीरा मसुड। २. धा डंड दवनी, अ. फ. ना. दंड दवनो, म डड दमनो। ३. धा. अग्गी उचिस्ट, अ. फ. अग्गी उचिष्ट, म. ग्नि उचिष्टा, ना. अग्नी उतिष्टा। ४. म ना करी।

(३) १. धा. रनथभिर, अ फ. रथभ। २. फ. गिर। ३. धा सास हजिरा, अ फ सीस अहरनि, ना. सीस हरणी, म. सीस अहित, उ. स. सीस अहिनं। ४ धा. अ जल जुस्ट, फ. जलजुष्टि, ना. जरजिष्ट, म. उ. स. ज्वलदिष्ट। ५. मो कालिंझरं, म. कालज्वर, ना. काल्यजर (=कालिंजर)।

(४) १. धा. किपपान, अ. क्रिपपान, फ. क्रयपान, म. क्रिपानं, ना कर पानि। २. धा. जोनि धनयो, मो. जान धनयो, अ. जानि धनयो, द. जानु रहियं, म. जांन रहियं, ना. जान हियय। ३. धा. घरणोपि, द. घरनोपि म. घडनोपि, ना. घटनोपि। ४. म. धरा, ना. अ. फ. धरा।

टिप्पणी—(१) रन्न < रणय्=शब्दायमान करना, गुँजाना। कत्त < कृत्। (२) रा < राज। उत्तिट्ठ < उत्तिष्ठ=उठी हुई। (३) अहिरम < अभि+रन्।

[१८]

[दूती वाक्यः] साटिका—तो जा[१] पुत्तीय[२] मरहट्ट थट्ट[३] सबले निम्मचि[४] वइरागर[५] । (१)*
करणाटी[१] करवीर[२] नीर, गहनो[३] गुंडी गुर[४] गूर्जर[५] । (२)
निर्माली हथमेव[१] मालव धर[२] मेवाड मंडोवरं[३] । (३)
जत्तउ तात इति सेव देव[१] नृपग्रो[२] तत्तानि किं तू वर[३] । (४)*

अर्थ—[दूती ने कहा,] "(१) तू जिसकी पुत्री है, [हे संयोगिता,] उसने महाराष्ट्र, थट्टा, नीमच और वैरागर को शबल (भ्रष्ट) किया; (२) कर्णाट, करवीर, गुड और गुरु गुजर की कांति के लिए ग्रहण हुआ, (३) निर्माल्य जिस प्रकार हाथ में हो, उसी प्रकार उसने मालव भूमि, मेवाड़ और मंडोवर को हस्तगत किया। (५) जब कि ऐसा तुम्हारा पिता है, और ऐसे देव जैसे नृप उसकी सेवा करते हैं, तब तू उन्हें क्यों नहीं वरण करती ?"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १ ना द. म उ स. तो [मात्र], धा अ. फ जा [मात्र], मो तो जा। २. म. ना. पुत्री। ३. द. मरहट्ट वट्ट, ना. मरहठ्ठ। ४. मो. निमनि, म. उ. स. नमच, ना. द नीमीच, धा. अ. निब्बीय, फ. नद्वीय। ५. म. अ. फ. ना. वरागरे।

(२) १. द. कर्णाट, म. कर्नाटी। २. धा करनीर, म. उ. स. करचीर, अ. फ. कारनीर। ३. मो. नीर गिहिनो, ना. म. नीर गहना, धा अ फ. चीर गहना, द. नीर गहिना। ४ मो गुडो गुरं, धा. गुडी गुरे, ना. द. म. उ. स. गोरी गिरा। ५. म. उ. स. गुज्जरी, ध. अ फ ना गुज्जर, द. गुज।

(३) १. धा. निम्माले हथमाल, अ. फ निर्मालो हथमेलि, म. निमालो हथलेव, उ निर्मा हथलेव, ना. निर्माली हथमेव मेलि, स निर्मावे हथलेव। २. म. ना. धरा। ३ उ. स. मेवार मडो धरा, म. मेवार मडोवरा, फ. मेवार मडोउर।

(४) १. मो. जतु (=जतउ) तात हूं पत सेव देव, धा. जातस्तात देव, ना. जिन तातं इति सेवदेव, उ. स. म. जित्ता तातय सेव देव अ. फ. जाता तस्य सदैव सेव (सेउ–फ.)। २. अ फ. नृपग्र, म. त्रिपति। ३. मो. तत्वनकी तू वरं, धा. तात सुत किंवा वरं, अ. फ. आनं न तं किं वरं, ना. तत्वान तु कथं वरे, द. तत्तानतु किं-वरं, म. तलातपन किंवरे, उ स. तत्वान्यन किं वरे।

टिप्पणी—(१) जा < या। सबल < शबल। (३) निर्माली < निर्माल्य। हथनेव < हस्तन्+एव। (४) जत्तउ < यत्+तव। तत्तानि < तत्+तानि।

[१९]

[पुत्री वाक्यः] श्लोक—न मो[१] राजान[२] संवादे[३] न मो[४] गुरुजनागरे[५] । (१)*
वर मेकं सय[१] देह अन्यथा[२] पृथिराज ए[३] ॥ (२)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] "(१) न मैं राजाओं के संवादों (संदेशों) का और न गुरुजनों [के आदेशों] का आकलन करती हूँ। (२) एक सौ देह (जन्म) ग्रहण करना पड़े तो भी अच्छा होगा, अन्यथा [नहीं तो] पृथ्वीराज [मुझको प्राप्त हों]।"

* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

पाठान्तर—(१) १. अ. फ. म. नमे (नमे–फ.)। २ मो रामान (<रायान), ना. रयन, ना. द. म. उ. स. अ फ. राजन। ३. अ फ. मवादो। ४. मो. नमोस्व, अ. फ. म नमे (न मे–म.)। ५. मो. गुरुजनयोग गुरे, धा. गुरु रयन जागरे, म. उ स. गुरु (गुर–म.) जन आव्हे, अ गुरज नागरे, फ. गुर्ज्जनी गरे।

(२) १. मो. शय, ना सुय, अ. फ. उ स. रचय, म. प्रिय। २. मा. अन्यसा, धा. आनिस्वामि, म. उ. स. नान्यथा, अ. फ. सर्वथा। ३. मो. प्रथीराज, धा. प्रथिराज यो, म. प्रथीराज य, ना. पृथिराजयो।

टिप्पणी—(१) आगर < आगल < आ+कल्य्=आकलन करना। (२) सय < शत।

[२०]

[दूती वाक्यः] सार्टिका—इदो कि[१] अंदोलिया[२] अमीय[३] चक्रीव गगा सिरे[४]। (१)
वच्छी छीर[१] विचार चारु[२] भमरे[३] चिचीन बंका करे[४]। (२)
तत्स्थाने[१] कर पाद पल्लव वसा[२] वल्ली[३] वसंता[४] हरे। (३)
चतुरे तु[१] चतुराय[२] आनन रसे[३] सा जीव मदनावरे[४] ॥ (४)

अर्थ—[दूती ने कहा,] (१) "इदु क्यो [इ दु] है? इन्दुलेखा (ज्योत्स्ना) के अमृत के कारण। चक्री (शिव) भी [चक्री क्यो है?] गंगा के सिर पर होने के कारण। (२) वत्सिन् (बछड़े वाली गौ) [वत्सिन् क्यों है ?] क्षीर [के कारण]। भ्रमर भ्रमर क्यो है? चारु विचरण के कारण। चिची [चिंची क्यो है?] अपने बाँके (टेढ़े) करो (फलो) के कारण। (३) वशा (हस्तिनी) क्यो अपने स्थान पर है— क्यो वशा (हस्तिनी) है? अपनी [सुन्दर] कर (सूँड), तथा पल्लव सदृश [कोमल] पाद (पैरो) के कारण। वल्ली [क्यो वल्ली है?] क्यो कि वह वसत को ग्रहण करती है। (४) [उसी प्रकार] हे चतुरे, तुम्हारे मुख और जिह्वा की जो चतुरता है, वह [तुम्हारे] जीव के मदन द्वारा आवृत्त होने से है।

पाठान्तर—(१) मो. इंदो क्यं, म. उ. स. इंद्रो कि, धा. ना. द अ. फ. इंदो (यंदो–द.)। १. धा. अ. फ. इंदोलियन, मो. अदोलिया, म. अलि अन्य ईस, ना. इंदोलिआनि, उ. स. अन्य ईस (ई–उ.)। ३. म. उ. स. अनयो। ४. मो. चक्रीव गंगा म्रे, धा. अ. चक्री भुजगा सिरे, फ. वक्री भुजगा सिरे, म. उ. स. चक्री भुजंगा सुर (सुरे-म.), ना चिर्क्र भुजंगा सिरे।

(२) १. मो. वछच्छर, धा. चिच्छी छीर, उ स चच्छी चारु, म दछी चारु, द. वछी चारु, ना. चच्छी वीर, अ. पच्छी छीर। २. मो. विचार चार, धा. अ विचार चामि, फ. विचारु वामि, ना. विकार चारु, म. उ स. विचार चारु। ३. धा. म. स. अ. भंवरे, फ. भउरे। ४. धा. चिचीन चका करे, मो. चंचीन वका करे, अ. फ. बिंबा न (नु–फ.) बंका करे, ना. न बिंका करे, म. विचिति वंका करे, उ. स. चिचनि बंका करे।

(३) १. मो द. अ. फ. तस्थाने, म. उ. स. तस्थानं, ना. स्तथाने। २. मो. कर पाद पल्लव वास धा. ना. कर पाद चूव पलत्र रसा, अ. फ करपाद लूव (भूव–फ.) पल्लव रसा, म. उ. स. कर पाद पल्लव, वसा। ३. मो. वला (< वली)। ४. धा. वसंतो।

(४) १. धा. अ फ. किं, उ. म. तं, स. तव। २. धा. चतुराइ। ३. मो. आनन रसे, धा. अ. फ. जान तुरसा, ना. द. उ. स म. आनन (आंनन–म.) रसा। ४. स. महनावरे।

टिप्पणी—(१) अंदोलिया < इंदुलेखा। अमीय < अमृत। चक्री < चक्री=शिव। (२) वच्छी < वत्सिन्= बछड़े वाली गौ। छीर < क्षीर। चिंचिणी [देशज]=इमली। बका < वक्र। (३) वसा < वशा=हस्तिनी। हर < ग्रह्=ग्रहण करना। (४) रसा=जिह्वा। आवर < आ+वृ=आच्छादन करना।

[२१]

[पुत्री वाक्यः] दोहरा—सा जीवन[१] जत्तह[२] वयनु वयन[३×] गए[४] मृत[५] होइ । (१)
जो थिर[१] रहइ सु कहहु किन[२] हउ पुच्छउ*[३] तुम[४] सोइ ॥ (२)*

अर्थ—(१) "[मनुष्य का] जीवन वहीं तक है जहाँ तक वचन [की पूर्ति] हो; वचन के जाने पर मनुष्य मृत हो जाता है। (२) जो स्थिर रहता है, वह तुम क्यों नहीं बतातीं? मैं तुमसे वही पूछ रही हूँ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
(१) १. धा. सज्जीवा, म. उ. स. जा जीवन। २. ना. राव, अ. फ. रच्छ, ना. जतह, म. उ. स. वतह (बतह–फ.)। ३. धा. में यह शब्द नहीं है, ना. वयतु। ४. मो. गरए, म. गये अ. फ. ना. गये। ५. धा. म्रित, फ. मृति, द. मृतु।
(२) १. मो. जिउ थिर, धा. ना. म. म. जो थिरु (थिर–धा.स.), द. उ. जा थिरु, फ. जोबन, अ. जो थितु। २. मो. सु कहुहु किमि, धा. द. अ. फ. सु कहउ (कहहु–अ. फ.) किन, म. उ. स. सोई कहौ, ना. सो कहु (=कहउ) किनि। ३. मो. हुं (=हउ) पूच्छु (=पुच्छउं), ना. द. हु पूछु, अ. फ. हौं पुच्छौं, ना. हु पुच्छु (=पुच्छउ), उ. स. हो पूछु, म. हुं पुछौं। ४. मो. तम, धा. द. तुम्ह।
टिप्पणी—(१) जत्तह < यत्र। वयनु < वचन।

[२२]

[दूती वाक्य :] दोहरा—थिरु[१] बाले[२] वल्लभ[३] मिलन जउ[४] जोवन दिन[५] होइ। (१)*
अये[१] जोबन[२] कुब्बन तन सु[३] को मंडइ रति सोइ[४] ॥ (२)

अर्थ—[दूती ने कहा,] "(१) हे बाला, [इस संसार में] स्थिर केवल वल्लभ (प्रिय) से मिलन है, [किन्तु] यदि यौवन के दिन हों। (२) यौवन के चले जाने पर जब तन कुवन (विकृत) हो जाता है, वही (यौवन के दिनों की) रति कौन माँडता (करता) है?"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।
(१) अ. फ. थितु। २. अ. फ. बालं। ३. धा. अ. वल्लभ, फ. बक्न (< वल्लभ)। ४. मो. जु (=जउ), धा. जा, ना. जो, अ. फ. म. उ. स. जौ। ५. धा. जुव्वन तन, मो. जो अनिनद, उ. ना. द. अ. फ. जुवन दिन, स. जुद्धनु दिन।
(२) १. धा. गउ, अ. फ. गै, ना. द. गय, स. गयौ। २. धा. अ. फ. ना. जुव्वन, उ. स. द. जुवन। ३. धा. कुव्वन तनहु, ना. कोवन तुहिसु, उ. कवन तनाहि, स. कछु बनत नहि, द. कुलन तनहि, अ. फ. कुब्बन (कुव्वन–फ.) तनह। ४. मो. को मंडि (=मडइ) रति सोइ, धा० रत्ति न मडइ कोइ, उ. स. रति मड (मंडे–स.) घट लोइ, ना. को मड रति सोइ, अ. फ. को मडइ (मड–फ.) रिति सोइ।
टिप्पणी—(१) थिरु < स्थिर। वल्लभ < वल्लभ। (२) अय < अय्=जाना।

[२३]

[पुत्री वाक्य :] दोहरा—तुव सम[१] मात न तात[२] तनु गात सुरत्तरियाह[३] । (१)
जुव्वनु घन[१] अथिर[२] रहै अमु कि अंजुरियाहं ॥ (२)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] (१) "तुम्हारे समान न [तुम्हारी] माता और न [तुम्हारे] पिता के गात्र सुन्दर हैं। (२) यौवन-धन तो अस्थिर रहता है; [तुम्हीं बताओ,] क्या अंजलि मे पानी स्थिर रहता है ?"

पाठान्तर—(१) १. ना. द तो सुव, म उ स तोसौं २ अ तात तन, फ. मात तनु। ३. अ सुरतरियाइ (=सुरत्तरियाइ) फ. सुरमरि याइं, ना. द. म. उ. म सुरगरियाह।

(२) १. द जु जुब्बन, ना. जीवन जुव्वन। २. अ. फ अच्छिन। ३. ना अबु, म. उ. स. अंब।

टिप्पणी—(१) रत्त < रक्त। (२) अथ्थिर < अस्थिर।

[२४]

*[दूती वाक्यः] साटिका—जाने मंदिर दार चीर*१ चिहुरा+×वाढंति+×२ चित्तानला+×३। (१)*

जाता+× फुल्लित+×१ चंपकस्य+×२ कलया३ मनु कंदर्प दीपा प्रहा५। (२)

झकारे१ भमरे२ उडंति३ बहुला फुल्लानि फुल्लंटिया४। (३)

सोय तोय१ सजोगि२ भोग समया३ प्राप्ते४ वसंतोत्सवे५॥ (४)

अर्थ—[दूती ने कहा,] "(१) जिससे मंदिर (घर) फाड़ खाने लगता है, चीर तथा चिकुर (केश) चित्त के अनल (अग्नि) को बढ़ाते हैं, (२) जिससे फुल्लित (फूली हुई) चंपक की कली कंदर्प-दीप की प्रभा-सी हो जाती है, (३) जिससे झकार करते हुए भ्रमर बड़ी संख्या में उड़ पड़ते हैं और फूल खिल उठते हैं, (४) वही तो, हे संयोगिता, भोग का समय वसंतोत्सव प्राप्त हुआ है।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

\+ चिह्नित शब्द या शब्दांश अ. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द या शब्दांश फ. में नहीं है।

(१) १. मो. जाने मदिर दार वीर (<चीर), धा जेने मजर दार चारु, ना द. म उ. स. जाने (जांने—म.) मदिर हार चारु (चार—म. उ. स.), अ. फ. जेने मजरि दात चातु (वातु—फ.)। २. धा. बाज्वति, म. बाढत। ३. मो. चात्यानिला (<चीत्यानिला), धा. चित्तानला, म. चित्तानला, ना द. चित्तानिला, उ. स. चित्तानलं।

(२) १. मो. जादा फूलित, धा. जावा फुल्लिय, द. जाती फुलिय, ना. जदि तीय फुल्लीय, म. जात्ती फूलय। २. ना. उ. स. पंकजस्य। ३. उ कुलया। ४. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है। ५ धा दीप प्रहा, ना. द. अ. फ. दीप प्रभा, उ. स. दीप प्रभा, म. दीप प्रभा।

(३) १. ना. झंकारो। २. धा. भवरे, मो. झमरे, अ. फ. भवरा (भटरा—फ.), म. उ. स. भ्रमरे, ना. भमर। ३. उडंत। ४. धा. अ. फ फुल्लानि फुल्लंटया, मो. फूलानि फूलदिया, द. म. उ स. फुल्लानि फुल्लतया, ना. फूलाणि फूलटया।

(४) १. म. सोयं जोय, अ. फ. सायं तोइ, ना. सायं तोय। २. मो. संयोग, म. उ. स. सजोय, फ. सजोगु। ३. धा. अ. फ. ताहि सुमरे, मो. भोग शमया (समया), म. सोग समया, द. माग समया। ४. धा. अ. फ. पत्तो, ना. प्राप्तो। ५. मो वसंतोत्सवो, धा. वसंतोच्छवइ, ना. वसंतोच्छव, म उ स वसते छवि (छवी—स.)।

टिप्पणी—(१) दार =फाड़ना। चिहुर < चिकुर=केश। (२) प्रहा < प्रभा। (३) फुल्ल=खिला हुआ।

[२५]

[पुत्री वाक्यः] श्लोक—संवादेव विनोदेव१ देव देवेन रज्जते२। (१)

अन्य प्राप्तेऽथवा प्राप्ते१ प्राणेश२ दिल्लीश्वरः३॥ (२)

अर्थ—[संयोगिता ने कहा,] "(१) सवाद में और विनोद में भी इसी प्रकार, देव देव (महादेव) द्वारा मैं रक्षित होऊँ। (२) वे अन्य प्राण से या इसी प्राण से [प्राप्त] हों, मेरे प्राणेश्वर दिल्लीश्वर है।

पाठांतर—(१) १. मो. सवादेव विनोदेन, धा. सवाद च विनोदे च, ना सवादव विनादेव, द. संवादेवि वनादेव, म. सवादे विनोदेव, अ फ सवादे य (ज–फ.) विनादेव। २ धा. देवे देवन रच्छित, ना. दव देवान रस्थितः, म उ. स. देव देवान रच्छित. (रच्छित–म), अ दवदवाने रछछत, फ. दवदेव न रछछती।

(२) १ मो. अन्न प्राणेऽथवा प्राणे, धा अ. अन्य प्रानव प्रानेव, ना अनुप्रानेन पानेवा, द उ स. अनुप्राने प्रयाने (प्रवाने–द) व, म. अनुप्राते प्रयानेव, फ अन्त प्रानेव प्रानेव। २ मो. ना द अ फ. प्राणेवा, धा. प्रानेव, अ उ. स म प्रानेस, म. प्रानेस। ३. अ. फ. मो ढिल्लीस्वर, ना. ढिल्लीसुर, म. ढिला वारि।

[२६]

दोहरा— तब दूतिन उत्तर करिय[१] पंग पुत्ति परवान[२]। (१)
नृप अग्गइ[१] वद्दइ[२] न कछु आंन न मुक्कइ मान[३] ॥ (२)*

अर्थ—(१) तब दूतियों को पंगपुत्री (संयोगिता) ने प्रामाणिक उत्तर दिया। (२) वह न राजा के आगे कुछ कहती थी, न [अपनी] आन छोड़ती थी, और न [अपना] मान।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. दूती उत्तर आनिंदिय, ना. द. दुत्तिनि (दुत्तनि–ना) उत्तर करिय तिहि, उ. स. दुत्तिअ उत्तर उत्तरिय, म. दूतिन उत्तर उतरी, अ. फ. दुत्तिनि (दुत्तिन–फ) उत्तर आनि दिय। २. मो पंगपूती परवान, म. उ. स. बुद्धि बंध परमान (परमानि–म.), द अन्य बुद्धि समान।

(२) १. धा. आगइ, मो. आगं, ना अग्गं, म उ स. आग, अ अग्गर, फ अग्ग। २. मो. बदि (=बद्दइ), द बंदी, धा. अ. फ. वद्दिय, म. वद्दीय, स बदिढय, ना. वदिआ। ३. धा. मुक्कइ मान न आन, मो. आनन मूकि (=मूकइ) मान, म. उ. स उत्तर दियौ न आनि, ना. द. आनन मुक्किय (मुकै–द.) मान, अ. फ. मान न मुकै आन।

टिप्पणी—(१) परवान < प्रमाण। (२) वद्द < वद्। मुक्क < मुच=छोड़ना।

[२७]

दोहरा— तब क्रुकित राइ गंगह तट त[१] रचिपचि उच्च आवास[२]। (१)
चाहि गहउ[१] चहुआन तकु[२] जु मिट्टइ*[३] बाला आस[४] ॥ (२)*

अर्थ—(१) राजा (जयचंद) ने तब क्रुद्ध होकर गंगा-तट पर एक ऊँचा आवास रच-पच कर [उसमें में संयोगिता को रक्खा और] (२) यह देखने लगा, "चहुआन (पृथ्वीराज) को पकड़ूँ जिससे बाला (संयोगिता) की [उसके संबंध की] आशा मिट जावे।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) धा. अ. फ. तब क्रुक्किय (=क्रुक किय) गंगा तटहि (तट्ट–अ), ना द म उ स. क्रुकिन किए (कीय–ना द.) गंगा तटह। २. धा. ऊच अवास, ना म. उ. स. उच अवास, ना. द उच्च अवास।

(२) १. मो. चाहि गहु (=गहउ), धा अ. चाहि गहहु, फ.चाहि गहहि, म चाय गहौ, स. चहति गहौ, ना. वाहि गहौ। २. धा. इह, ना फ कौ, म. कौं, स. कौ, उ. कों, अ. कहु, द. कु। ३. धा. अ. फ. मिटै, मो जु मिटि (=मिटइ), ना. ज्यु (=ज्यउं) मिटै, द. म उ. ज्यौं मिटै (मिटय–म.)। ४. धा. अ. फ. ना. द. उ. स. म. बाल वर (कर–धा.) आस।

[२८]

अडिल्ल— सुनि मुनि[१] वचन राय[२] जवि[३] जपिउ[४] । (१)
थरहर[१] धर[२] ढिल्लीपुर कपिउ[३] ॥ (२)
जिउ*[१] सूर[२] तेज तुच्छत[३] जल[४] मीनह[५] । (३)
तिउ*[१] पगह भय[२] दुज्जन भय+ षीनह[३] ॥ (४)

अर्थ—(१) [सयोगिता की] बात सुन-सुन कर राजा (जयचंद) जब जल्पना करने लगा, (२) तब धरा थर्रा गई और दिल्लीपुर काँप उठा। (३) [जिस प्रकार] सूर्य के तेज से घटते हुए जल में मीन [क्षीण] होते हैं, (४) उसी प्रकार पंगराज (जयचंद) के भय से दुर्जन (उसके शत्रु) क्षीण हो गए।

पाठान्तर— * चिंहित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

+चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. म. उ. स. सुनि फुनि, ना. सुनि जो, द. सुन । २ म. राज, ना. अ. फ. राइ । ३. धा. अ. फ. द. जब, ना. जो, म. उ स इम । ४ मो. जप्यो, धा जपिउ, म. उ. स. अ. फ. जपं, ना जप्यौ ।

(२) १. धा. मनहर, ना. थरहर, अ थरहरि । २. धा धरि । ३. धा कपिउ, मो कप्प, म. उ. स. अ. फ. कंपं, ना. कप्यौ ।

(३) १. मो. द. उ. स. ज्यौं द. ज्यों, ना. म. ज्यु (=ज्यउ), धा. अ फ में यह शब्द नहीं है। २. म. उ. स. रवि । ३. ना. तुच्छि, म. उ स. तुच्छ । ४. म. स । ५ मो. मिनह ।

(४) १. मो. तिउ (< तिउ) द. त्युं, म उ त्यौं, ना. इम, धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है। २. मो. पगह, धा. द. अ. फ. पग भयह, ना. पग भय, म. उ. स. पग भय । ३. मो. दूजन भय षिनह (=षीनह), धा. अ. फ. द. दुर्जन भय (भये—अ.) षी नह (षीनहि—फ.), म. उ. स. दुज्जन भय छीनह (छीह—म.)।

टिप्पणी—(१) जंप < जल्प् । (४) षीन < क्षीण ।

——

३. कयमास-वध

[१]

दोहरा—तिहि तप[1] आषेटक भमइ[2] थिर न रहइ[3] चहुआन[4] । (१)*
वर प्रधान जुग्गिनि पुरह[1] धर रष्षइ परवान[2] ॥ (२)

अर्थ—(१) उस [विरह] ताप मे चहुआन (पृथ्वीराज) आखेट मे फिर रहा था, और [राजधानी मे] स्थिर नही रहता था, (२) जोगिनीपुर (दिल्ली) की धरा की रक्षा उसका श्रेष्ठ प्रधान (अमात्य) प्रमाण रूप से कर रहा था।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के है।

(१) फ. तिह तब। २ मो भमि (=भमइ), धा भमहि, ना भमे, म उ. स फ भ्रमै, द. फिरै अ. भय। ३. धा. रहिइ (< रहइ), मो ना. द म उ स. अ. फ रहै। ४. फ. चौहुवान।

(२) १. मो. यूगिनि पूरण, धा युग्गिनि पुरह, फ. युग्गिनु पुरहि, ना. जुग्गनि पुरह, उ योगिनिपुर, स योगीनिपुर। २. मो धर रष्यौ परवान, धा. धर रषष्इ परधान, ना. सुधर रषन परवान, द धर रक्खन फुरवान, म. धर रषै बरवान, उ. गय सामंत प्रधान, स. दस सामंत प्रधान, अ. फ धर रष्षै परवान (परमानु—फ.)।

टिप्पणी—(१) भम < भ्रम्। (२) धर < धरा। परवान < प्रमाण।

[२]

साटिका—राज जा प्रतिमा स चीन[1] धर्मा[2] रामा[3] रमे[4] सा मतीन्[5] । (१)
नित्तीरे कर[1] काम वांम[2] वसना संगेन सेज्या[3] गतिः[4] । (२)
अंधारेन जलेन[1] छिन्न[2] छितया[3] तारानि[4] धारा रत[5] । (३)
सा मंत्री[1] कयमास[2] काम अंधा[3] देवी विचित्रा गति[4] ॥ (४)

अर्थ—(१) जो राजा की प्रतिमा (प्रतिनिधि) था, वह लघु कर्मा हो गया, और उसकी मति रामा (कामिनी) मे रमण करने लगी। (२) वह जिसके हाथ मे तीर नही है, ऐसे [धनुर्धर] कामदेव की वामा (कामिनी) के वश मे होकर वह उसके साथ शय्या-गत हुआ। (३) अँधेरे मे [बरसने वाले] जल से जब क्षिति छिन्न हो रही थी, और तारागण भी [वर्षा के जल की] धारा मे रत (लीन) हो रहे थे, (४) वह मत्री कयमास कामांध हो गया, दैव की भी गति विचित्र है।

पाठान्तर—(१) म. जजा प्रतिम कन्ह, ना. राजजा प्रतिमा सुचान। २. म. धर्म धर्म, म. धरम, द. उ. स. प्रतिमा। ३. धा. रोमा, मो. रामा, म. राम। ४ धा अ. फ रमा, म. रामे। ५. मो सा मतीन, म. समता, शेष मे सामती।

(२) धा. नित्तीरे तर, ना. द. नीती रंकर, उ. स. नित्ती रंकरि स. ना तीरे कर, अ. नित्तीरे (नीतीरे—फ.) कर (करि—फ.)। २. धा. तास, म. फ. वाम। ३. मो. संगेन, शेय्या (=सेज्या),

धा. सजेन सेज्या, ना. उ म. द. सज्जान सय्या, म. सगन सिज्या । ६ धा गती, म. गता ।

(३) १. म अरधरेन जलेन, ट. अधारन जलिन, म. आधारेन जलिन । २. म ना. स. छीन, फ. क्षत्र । ३ मो. के अतिरिक्त सभी में तड़िता (जडिता–म., तडिता–फ.) । ४. धा. धाराणि, ना म. उ. स. तारान । ४ मो. दामन्य । ५. मो. दामायते, धा. ना धारा रता, अ. धारा रत्ती, फ साधारुती ।

(४) १. द. न. उ. स. मो मत्री । २. अ. फ. कैराम । ३. धा. कामलुबधा, ना. द उ नास विषया, म. नास विश्या, स. मास विषया, अ. फ. बुधि हरनो । ४ धा. अ फ दवी विचित्रा गता (गी-अ) मा. देवी बिद्दा गति, ना देवै विचित्रा गता, उ स दवी विचित्रा गती, म. देवी विहगा गता ।

टिप्पणी—(१) चीन=छोटा, लघु । (२) निर्त्तीरे कर=जिसके करों में तीर न हो । (४) विद्दा < विचित्रा ।

[३]

दोहरा—करनाटी[१] दासी[२] सुबन[३] रजनी अथ्थि अवास[३] । (१)*

काम मुच्छ[१] कयमास तनु[२] दिट्ठि विलग्गी तास[३] ॥+ (२)

अर्थ—(१) करनाट की एक सुवर्ण (सुरूपा) दासी थी जो रात्रि मे [राजकीय] आस्थान-आवास मे थी । (२) काम-मूर्छित कयमास की ओर उसका दृष्टि लग गई ।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।
+ चिह्नित चरण मो. में नहीं है ।

(१) १. धा. करणाटिय, म. करनाटीय । २. धा. म दासिय (दासीय–म.) । ३. मो. कुवन < कुवन), धा. अ. फ. म. सुवन, ना. सगुन, उ. स. सुवर । ३. धा. रयन हि अत्थि अवास, अ. फ. राजन अधि आवास, फ. राजन अथि अवास, ना द. उ म चिन चचन निय वास, म रजनी अरध अवास ।

(२) १. मो. मुच्छ, शेष में 'रत्त' । २ म तहा । ३ अ फ दिठिय तुठि अवास, द उ. स. दिट्ठि (दिष्ट–स.), उरझिझय तास, म. दिठीय पिठ षवास, ना. दृष्टि उलभीय तास ।

टिप्पणी—(१) अथ्थि अवास < आस्थान (?) आवास=सभा गृह या गोष्ठी गृह । (२) मुच्छ < मूर्च्छ । दिट्ठि < दृष्टि ।

[४]

कवित्त— चलउ मुहिलि[१] कयमास* रयणि[२] नट्ठी[३] जाम इक्कत[४] । (१)*

तंबोलय[१] सषि साषि[२] पट्ट रगिनीअ[३] निधि संकित[४] । (२)

दीपक जरइ सकूरि[१] भमिअ[२] रत्तिअ पति अतह[३] (३)*

अति स रोस[१] भरि भूज[२] लिहि दीय दासी करि[३] कंतह[४] । (४)*

पल्लाणि अस्व तंषिन षरीय[१] अवधि दीइअ[२] दुहु घरिय[३] कहूं× । (५)

पल गयण[१] प्रयण वनि[२] म चरिअ[३] नयन[४] भयनप्रथिराज जह[५] ॥(६)

अर्थ—(१) एक पहर रात्रि के नष्ट (व्यतीत) होते-होते कयमास उस महल को चला । (२) ताम्बूल-वाहिका सखी ने [दोनो के] उस निधि (स्नेह) से शंकित होकर पट्टराजी से साक्षी [दी], (३) कि दीपक संकुटित (पतला किया जाकर) जल रहा है, और वह रात्रि पति (चन्द्र) तुल्य कयमास अन्तःपुर में फिर रहा है । (४) [यह सुनते ही] अत्यन्त रोष मे भर कर

(हृष्ट होकर) भूर्ज पत्र लिख कर उसने दासी के हाथो मे अपने कात (पृथ्वीराज) के लिए दिया। (५) तत्क्षण अश्व म्लान (कम) कर उसे [रानी ने] खरी दो घडियों की अवधि [पृथ्वीराज का लाने के लिए] दी। (६) पल भर मे वह गजो से प्रकीर्ण वन मे संचरण करने लगी और नेत्रो के सकेत मात्र [के समय] मे [वह वहाँ जा पहुँची] जहाँ पृथ्वीराज थे।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के है।

× विह्नित चरण धा में नहीं है।

(१) १. मा. चुल मुहिलि, धा. अ. फ. चल्यो महल, ना चढ्यौ महल, म. गयौ महल, द उ स. गयौ मध्य (मधि—द.)। २. मा. किमास (=कयमास) रयणि, धा. कइवासु रयन, अ. फ. कैवासु रैनि, म. कैमास रैन, उ. स. कयमास रयनि। ३. धा. नट्ठियति, ना सपत्ति, द उ स सप्त, अ फ नठियति म नठीयत। ४ धा म. ना. अ. फ. जाम (याम—धा.) इक।

(२) १. धा तबार्ली, अ फ. तबोल, म तबाले, ना तब बुर्ली, द उ स. तबुलिय। २ धा. अ फ. साथ, ना सीष, म. सषि, अ फ उ. स. साष। ३ मो. पट्टरगिना, अ, धा. पाटरागिनि, अ फ पट्टरागिनि, म. पट्टरागनी, ना. द. उ स. पट्टरागिनिय। ४. धा. अनग सिख, अ. फ. उलधि सिक, ना उ. स निकट सिक, म कसिक सिक।

(३) १. धा. अ. फ दिय दीपक सपूरि (सपूनि—धा), मो. दीपक जरि (=जरइ) मकूलि, ना. द उ. स. बाय (बास—ना. द) घात दिय पूर, म. बास घ्यातु कीय पूर। २ धा. नयर, म ममीय, अ. फ. . स. ना. अमिय। ३. मो. रतिअ पति अतह, धा. ति पति अत कइ, अ. फ. भय रत्ति पत्ति तह, म. पाइक जग अतह, ना. पिय किय पति अतह, द उ स. पिय किय अति अतह।

(४) १. मो. अति सरेस, म. अत सरोष। २ धा अ फ. लिषि भोज, ना. द. उ स. पिक पानि (पान—ना.), म. रोसष्ट। ३. मो लइ दीय दासी करि, धा. दाउ (<दी) दासी कर, अ. फ. दियो दासी कर, ना. द. उ. स. सुनष (सुन—ना., नष्ष—उ.) लिषि (लर्षिषि—ना.) सषि (सकि—ना) कर, म. पत्रि पिकनष लिषि। ४ मो. कलह।

(५) १. अ. फ. पल अस्व हंकि तषिन खबरि, म दासी असि पलनि गमन किय, ना. द. उ. स. असि (पति—द.) असनवारि (असि निवारि—ना.) मग्गह घरिय। २. अ. फ ना. द उ. स अवधि दीन (दिन्न—ना.) म. विधि दिन्ही। ३. मो. दुइ घरीअ, अ फ. दुइ घरिय, म घरी दोइ, उ. स दो घरिय, ना. दुय घरीय।

(६) १. धा वयनि, अ फ गयनि। २. धा अ फ. वयन वन, स. सुराइह, द. सराइह, ना. राइह, म. वयन तहा। ३. मो. सचरीय, धा में 'स' मात्र है। ४. ना. सुष्ष, द. उ स. अयन। ५. धा. जहि, मो. जाहा, म. जहा।

टिप्पणी—(१) रयणि < रजनी। नट्ठ < नष्ट। जाम < याम। (२) पट्टरगिनीअ < पट्टराज्ञी। निधि < स्नेह्य। (३) मकूरि < सकुटित=सिकुडा या सिकोडा हुआ, कम किया हुआ। मम < भन्। रत्तिअ < रात्रि। (४) भूज < भूर्ज लिह < लिख्। कत < कान्त। (५) तषिन < तत्क्षण। (६) गय < गज। प्रयग < प्रकीर्ण। सयन < सकेत।

[५]

*गाथा—भू भ्रत[१] सचित सुनिद्दा[*२] सग[+×] सा[३+×] रयणि[×] जग्गइ[×*] अविध्धा[४×]। (१)*

दीपकु[×] जरइ[×] सुमुद्धा[१×] नूपुर[२] सद्दानि[३] भानि अच्छानि[४]॥ (२)

अर्थ—(१) भूभर्तृ (भूमि का भरण करने वाले—भूपति) सुचित्त होकर सुनिद्रा मे थे, और [उन के] साथ वह रजनी भी अवैध रूप से जाग रही थी। (२) दीपक जल रहा था, [उसी समय] उस मुग्धा [दासी] ने नूपुर के अच्छ (स्वच्छ) शब्दो से [उस निद्रा को] भग किया।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. भ्रमित, अ. फ. ना. भुजन। २. मो. सचित, सुनिदा, धा. चकित नन्दा, असुचित सुनदा, ना. चित्त सुनिद्दा, म. सुचित नदा, द. सुचित नुनिद्रा, उ. स. सुचित निद्रा। ३. अ. संगे मा, ना. संगी मा, द. सगी स, उ. स. मिगीसार, म. सगेगा। ४. मो. जगि (=जगइ) अविभ्धा, धा. जानि निय वद्धा, द. मग्गियं बिद्धा, स. जग्गियं बिद्ध, म. जगोय विभ्या, ना. जग्गियं बद्धा, अ. फ. जग्गि जिय वद्धा।

(२) १. धा. जरइ ससुद्दा, ना. द. अ. जरइ सुमद्दा, ना. म. जोर सुमदा, उ. जरत सुद्ध, स. अरत मंद। २. मो. नपर। ३. अ. मद्द, फ. मद्दाय। ४. धा. अच्छामि म. आच्छमि, द. आयानि, अ. फ. यंजन्ते।

टिप्पणी—(१) भूभ्रत < भूभर्तृ=भूपति। निद्दा < निद्रा। रयणि < रजनी। (२) मुदधा < मुग्धा। सद्द < शब्द। भान < भञ्ज।

[६]

साटिका— *भूकप[१] जयचंद राय[×] कटके[२] शकापि न ग्यायत[३]। (१)*
स[+] साहिस्स सहाबसाहि[१] +सकल[२] इच्छामि[३] युद्धाइने[४]। (२)
सिद्ध[१] चालुक चाइ मत्र[२] गहने[३] दूरे स विस्वासरे[४]। (३)
अग्यान[१] चहुआन जांन रहिय[२] दैयोऽपि रक्षा करे[३]॥ (४)

अर्थ—(१) जयचंद राज के कटक से भूकप होता था, किन्तु [पृथ्वीराज को] उससे शंका भी नहीं ज्ञात होती थी; (२) शाह शहाबुद्दीन से उसने समस्त युद्ध साहस के साथ और इच्छा पूर्वक किए थे; (३) सिद्ध (जैन) चालुक्य [भीम] को जब मंत्री (कयमास) ने चाव (उत्साह) से पकड़ा था, वह विश्वासर से दूर था [उस युद्ध में इसने भाग भी नहीं लिया था]। (४) ऐसे भी चहुआन (पृथ्वीराज) को अज्ञ [कयमास] जान न पाया, [अतः] दैव ही उसकी रक्षा करे।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द द. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) धा. भूकपइ, मो. म. द. भूप (भूप–म.) उ. स. भूपान, ना. भूकप, अ. फ. भूकप (भूकंपे–फ.)। २. मो. धा. ना. म. उ. स. द. निकट (निकटा–म.)। ३. मो. निद्दा (=नेहा) पि वयु ब्यामनो, धा. नेहा पित ग्यायते, ना. द. उ. स. नेहाइ (नेहाइ–ना. द.) जग्गाइने (जग्गायने–ना.), म. नाद्दा पांव्यजागने, फ. शकापि न गायते।

(२) १. मो. ससाहिब साहि सुकल, धा. साहिब साहि त्रपथा, अ. फ. तादृक् साहि सहाब दीन सकल, म. त साहि साहि मकल, द. ससाहिस्स बसाह सकल, ना. संसाहस्स बसाहि बद्ध सकले, उ. स. संसाहिस्स बसाह साह सकल। २. मो. अष्टापि, धा. युम्वापि, म. अछिमि। ३. मो. यूधायनं, धा. न ग्यायते, म. जुद्धाइने, ना. जुद्धाइमे।

(३) १. मो. सिधि, धा. सिध, ना. सिद्धी, द. सिंधी, उ. स. सिद्धं। २. धा. चित्त, म. मंति। ३. मो. गाहनो, धा. दहनो, ना. म. उ. स. द. गहनो। ४. मो. ना. दूरे स विस्वासरे, धा. दूरेऽपि जानाम्यहं, अ. फ. दूरे सुजाना इते, म. घरेस विस्वस रो, द. उ. स. दूरे स विस्वारने।

(४) १. मो. अग्यानां, अ. फ. आग्यान। २. धा. जान रहितं, मो. जामि रहायं अ. जानिरहियं, ना. म. जांनि रहायं। ३. धा. दैवोऽपि रक्षा करं, मो. अ. फ. दैयोपि रक्षा करो (रछूछाक र–अ., रक्षा, कर–फ.), ना. द. उ. स. देवं (दैव–उ.) तु (च–ना.) रष्या (रिक्ष्या–द., रच्छा–ना.) करे, म. देवो तूव रिष्या करो।

टिप्पणी—(४) जान रहिय < ज्ञान रहित।

[७]

रासा— छत्तिय[१] हत्थु धरंत[२] नयननु चाहियउ[३] । (१)
तब हि दासि करि* हथ्थ[१] सु बचि[२] सुनावियउ[३] । (२)
बानावरि दुहु बाह[१] रोस रिस[२] दाहियउ[३] । (३)
मनहु[१] नागपति पतिनि*[२] अप्प[३] जगावियउ[४] ॥ (४)

अर्थ—(१) [जगाने के लिए दासी के] छाती पर हाथ रखते ही [पृथ्वीराज ने] आँखों से [उसे] देखा । (२) दासी ने तभी (तत्काल) [पत्र को] हाथ में [ले] कर उसे बाँच सुनाया । (३) [पत्र को सुनते ही] उसके दोनों बाहुओं में बाणावली [शोभित होने लगी] और वह रोष-रिस से दग्ध हो गया । (३) [दासी का पृथ्वीराज को उस समय जगाना ऐसा लगा] मानो नागपति को [उसकी] पत्नी ने आप ही जगाया हो ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
(१) १ धा. छत्तिका, म. छत्रा । २ द धरनत, ना. धरति । ३. मो. नयन्नु वादिय, धा. नयन्नि चाहियउ, अ. फ. नयन्नि वाइयउ (वाइयौ—फ.), ना नयन्न विवाइयो, द. उ. स नयन्न चाइयौ (चाइयो —द), म. नयननु चाइयो ।

(२) १. मो० तवही दास कर हथ, धा उ स. दासिय दष्षिन हत्थ, ना. द अ. फ. दासिय दछिछन हथ्थ (हत्थि—ना , हथ्थन—अ. फ.), म. दामी दिष्षन हसति । २. मो. सुबच, धा. सु बचि, फ. बंच, अ. बचि, ना. ति बचि । ३. मो. सुनाययूउ, अ. सुनाइयउ, फ सुनावयौ, म. सुनाइयो, धा. दिषावियउ., स. दिखाययौ, द. ना. उ. दिखावयौ (दिषावयो—ना.) ।

(३) १. मो. वानावलि वि दहु (पाठान्तर भी सम्मिलित है) बान, धा. बानावरि बिहुबान, ना. बा नावरि बिय बान, म. बानावरी चहुवांन, द. बानाबल बीय बान, उ. स. जिनबाला बलवान, अ. फ. बानावरि दुहु (बानावर दिहु—फ.) बाह । २. धा. रसि, उ. स. रस, फ. विस । ४. मो दाहयु (=दाहयउ), धा. ना. म. दाहयो, उ. स. फ. दाहयौ, अ. दाहयउ ।

(४) १. ना. अ. फ. मनौ, उ. स. मानहु, म. परिहा मानुहु । २. मो. नागपति पतिन, धा. नागपति सुत्त, अ. फ. नागपति नारि, स. नागपतित्त, ना. उ. नागपति पति त (त—ना.), म. नागपति पति । ३. धा. अन्नु, अ. फ. सुअप्प, ना. अप्पु, म. सुआप । ४. ना द. फ उ. स. जगावयौ, मो जगाइयु (=जगाइयउ), म. जगावयो ।

टिप्पणी—(१) चाहना=देखना । (२) वंच < वाच < वाच् ।

[८]

रासा— संग सयन न सथ्थि[१] नृपत्ति न जानयउ[२] । (१)
दुहूं[१] विचि इक दासिय[२] संग समानयउ[३] ।[×] (२)
इदु फणिंदु[१] नरयंद न[२] अथ्थि[३] स भानयउ[४×] । (३)
घरह घरिय[१] दुहु[२] मझ्झि[३] ततष्षिन[४] आनयउ ॥(३)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के जाने की बात] न संग की सेना ने जानी और नृप के सथियों ने । (२) दोनों के (पट्टराज्ञी और अपने) बीच में एक दासी को संग में रखकर [पृथ्वीराज ने] उसको सम्मानित किया । (३) उसने इंद्र, फणीन्द्र और नरेन्द्रों की अथियों (गोष्ठियों) [के गर्व] को भी भग (समाप्त) कर दिया । (४) [पृथ्वीराज को] वह घर दो घड़ियों में तत्क्षण ले आई ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पा० के है।

×चिह्नित चरण म. नहीं है।

(१) १ म. अरे मग न न मथ्थि, अ फ सग सम्मन्न सत्थ, धा मग समसयन्न निमत्थ, द. मग सयननि सथ्थ, ना मपन्नन मत्थ। २ धा आनयो (तुल० चरण ४), म फ जानयौ, अ जानयउ, ना. जानयौ।

(२) १. अ दहु, फ दहौ। २. धा. विच्चइ इक दासिज, अ. फ. विच ह इक दासिसु, द. विच हय इक दासिय, ना वीचह इक दासिय। ३ ना. समानया, अ. समानयउ, फ. समानयौ।

(३) १. धा. इंदफनिंद, ना. इद्फुनिंद, द इद मुनिंद, उ स. इद नरिंद। २ मो धा अ फ नचद (<नरयद) न, ना. मुनिंदह, उ म फुनिंदर। ३ ना अच्छि। ४. धा सुभानयो, अ. सुभानयउ, फ सुमानयौ, ना. उ स ममानयौ (ममानयौ—ना)।

(४) अ. फ घरा इक, धा. घरहि घरा, ना. घरह घरा, म. घरा घरा। २. धा. द. दुइ, फ. दुहौ, ना द्वय, उ. स दुअ, म. दोइ। ३. म. मझ, ना मद्धि। ४. धा. अ. फ ना. ततच्छिन। ५ म. आनयौ, धा. ना. आनयो।

टिप्पणी—(१) मयन < सेना। (३) अथ्थि < आस्थान (?) < अथाई। भान < भञ्ज्। (४) ततष्षिन < तत्क्षण।

[९]

दोहरा—नवति नवप्पल निसि गलित[१] धनु[२] घुम्मइ*[३] चिहु पासि[४]। (१)*

पानि न[१] अषि न[२] संचरइ[३] महुल[४] कहल[५] कयमास*[६] ॥ (२)*

अर्थ—(१) [कयमास के महल मे आने के अनतर] नवनवति (निन्यानवे) पल निशा [और ?] गल (बीत) पाई थी, जब [पृथ्वीराज का], धनुष [कयमास को लक्ष्य बनाने के लिए] उसके पास चारो ओर घूमने लगा। (२) उस समय [अंधकार के कारण] आँखे और हाथ नहीं संचरण कर पा रहे थे, जब कयमास महल मे केलि मे था।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के है।

(१) मो. नवर्वति नव पल नसि गलीत, धा. नवति नव पल निसि गलित, अ. फ. नव तन नव पल निमि गलित, ना द. नववति नवपल (नवपल—ना.) निसि गलित, म. नव नववति निस प्रति मिलति, उ. स. रति पति मुच्छि अलुझि तन (तुल० अगला दोहरा)। २ धा. म. धन ३ मो. धुमि (<घुम्मइ), न. घूमे, द. घुम्म, धा अ फ म. उ स. घुम्या (घुम्यौं—म. अ. फ.)। ४. मो चहूपास, धा. ना चिहु पासि, अ. चहु पास, फ चौह पास, द. उ स चिहु पास, म चुहु पास।

(२) १. म जानन फ पान नि। २. द. स अष न। ३ मो सचरि (=संचरइ), अ फ. म उ स. सचरै, ना. सचरहि। ४. मो. के अतिरिक्त सभी में 'महल'। ५ मो. फ कलह, म. केल। ६. मो. कमास (=कयमास), धा. कइमासि, अ. फ. ना. कैमास, म. कैवास।

टिप्पणी—(२) कहल < केलि।

[१०]

दोहरा—रतिपति मुच्छि अलुष्षि तन[१] धन डुलइ बिय*[२] काज[३]। (१)*

तडित[१] किअउ[२] अगुलि अधम[३] सु भरिग[४] बान प्रथीराज[५] ॥ (२)*

अर्थ—(१) जिनके तनु रतिपति (काम) से मूर्च्छित और अलक्ष्य हो रहे थे, ऐसे दोनो के लिए [पृथ्वीराज का] धनुष डोल रहा था। (२) अधम अगुंली ने तडित [के समान कार्य] किया और पृथ्वीराज का बाण भर गया (धनुष पर जा लगा)।

पाठान्तर—(१) १ मो. रतिपति मुर्छा अनूप्पा तन, धा ना. द अ फ. रतिपति मुच्छिय लच्छि (अलछिछ—अ. ना) तनु, म रतिपति तुछय अनुउ तन, उ स. निसि अद्धी सुझ्झ नहा। न. मो वन डुन (=डुनइ) वय, धा. तरनी रवन वय, अ फ. तरनि पान वय, ना द विरम (विरमि—ना.) काम बिय, म घन तर पानव, उ स. बर कैमासय। ३ अ. फ काजि।

(२) १ इस चरण के पूर्व मो. में अतिरिक्त है, 'पुनरु नयन कोय' जो कदाचित् इस छंद के किसी अंश का पाठान्तर मात्र है। २. धा. अ. फ. ना. द उ. स करिग, म कीयौ। ३. धा धरइ, ना. द म उ स धरम, अ करइ, फ करहि। ४ धा करिग, ना धरिग, अ फ म उ. स. भरिग। ५ धा. म अ ना. प्रिथिराज।

टिप्पणी—(१) मुच्छि < मूर्च्छ । अलुच्छि < अलक्ष्य। बिय < द्वय।

[११]

कवित्त—भरिग[१] बान चहुआन जानि[२] दुरि[३] देव नाग[+] नर। (१)
मुट्ठि दिट्ठि[१] रिसि[२] डुलिग[३] चुक्कि[४] निक्करिग[५] एक[६] सर। (२)
उभय बान दिअ[१] हत्थि[२] पुट्ठि परमारि[४] पचारिय[५]। (३)
बानावरि[*] तटकति[१] छुटित धर धरनि[२] आधारिय[३]। (४)
किय कब्बु सब्बु सरसइ[१] गनित फुणिव[३] कहउ[४] कवि चद तत[५]। (५)*
*इम[१] परउ[*२] अयास अवास तइ[३] जिम निसि नसित[०] नषत्रपति[४]॥ (६)*

अर्थ—(१) चहुआन (पृथ्वीराज) का वाण भर (चढ़) गया, यह जानकर देव, नाग तथा नर छिप गए। (२) [किन्तु] क्रोध के कारण [पृथ्वीराज की] मुट्ठी तथा दृष्टि डोल गई, और एक वाण चूक कर निकल गया। (३) [तदनन्तर] परमारी (पट्टराज्ञी ?) ने उसके हाथों में दो वाण और दिए और पीठ पर (पीछे से) उसे प्रचारा (ललकार कर उत्तेजित किया)। (४) वाणावली के तड़कते ही [कयमास का] आहत धड़ आकर धरणी पर आधारित हुआ। (५) [यह] सारा काव्य सरस्वती ने विचार कर के किया, और तदनन्तर उसने कवि चन्द से इसे कहा। (६) कयमास आकाश [-चुम्बी] आवास (प्रासाद) से इस प्रकार गिरा जैसे निशा में नक्षत्रपति (चन्द्रमा) विनष्ट होकर गिरा हो।

पाठान्तर— ० चिह्नित शब्द धा में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. ना. भरिक। २. म. जान। ३. धा उ. स दुर, मो. दूर, म. दु, अ. फ. दुरि।

(२) १. ना. छुट्टि (< छुट्टि ?) मुढ्ढि (< मुट्ठि), फ. मुट्ठ दिट्ठ। २. धा. उ. स. रस, अ फ. रिस, ना. सर, फ. सिरु, म. सिरि। ३. म. ढलिग। ४ मो. चक्कि। ५ ना. नन करिग। ६. धा. ना. म. इक्क।

(३) १. धा. उभय आनि दिय, मो. भय बान दिअ, उ दुतिय बान, स. दुत्ति बान, ना बीयौ बान, म. उभय आन दीयौ, अ. फ. उभय आनि दिय। २. मो. म. उ स अ. हथ्थ। ३. म. पूठि, म. मुठि। ४. धा. पावारि, मो. परमार, उ स. पामार, द म पमारि, धा. अ. फ. पावारि, ना. पामारि। ५. उ स. अ. पचार्यो, धा. ना. म. फ. पचार्यौ।

(४) १. मो. बानीवर तटकति, धा बानीवर तरकत, ना. स. बानि वृत्त (वृत्ति—ना.) तुटिकति, द. उ. वान वृत्ति तुटिकंत, अ. फ. बानि वरत्तरकत, म बानावर तरकति। २ मो छुटित घर, धा. छुट्टि धार धर, अ. फ छुट्टि धर धर, म छुटि धर धरनि, ना. द. उ स. सुनत (सुनति—ना.) धर (सिर—ना, सुर—द.) धरनि। ३. धा. उपारय, ना. द म. उ स अधार्यौ, अ फ आधार्यो।

(५) मो. कीय कव सव शरसि (=सरसइ), धा. अ. फ. इय कब्बु सब्बु (सच्चु—फ.) सरसइ (सरम—फ., सरसै अ), म. इइ इक चित वससर, ना. ईय कव सरसैं। २. मो. गनीत (=गनित), धा. मुनित, अ. फ.

गुनिस, ना गुननि, म. गुणित, स गुनति। ३. धा. फुगित, म उ स ध पुनिन, फ पुन्यत, ना. पुनिन, म फुनि ताहा। ४. मा. कहु (= कहउ), शेष में 'कह्यौ'। ५ धा. नन, द ततु, अ ना तति, म दतु।

(६) १ स नो। २. मो पुर (< परु=परउ), धा द अ फ परयो, उ. स म ना परयौ। ३ मो. आयाग त्रुवास ति (=तइ), धा. अवास अयास ते, अ आयास अवास (आवास—फ) ते, फ अ इ आवास ते, म. कैवास आवाम त, ना कैमास अवास त, द. उ. स कैमास अवाम त। ४ मा. जाम निसि मिसित नषत्रपति, धा. जिमनिमि नउत्रपति, म जिम सुनिस नछित्रपतु, अ जिम निसि नमित नक्षत्रपति, फ. जिम निसि निसित नछत्रपति, ना. जानु निसानह छत्रपति, उ जानि निसा नछितपति, द. स जानि निसा न नछित्रपति।

टिप्पणी—(२) चुक्क=चूका हुआ, भ्रष्ट। (३) पूठि < पृष्ठ। (४) बु- < घट्ट=आहत होना, भ्रष्ट होना। (५) कब्ब < काव्य। सरसइ < सरस्वती। गन < गणय। फुणि < पुनर। (६) अयास < आकाश। अवास < आवास। नसित < नष्ट।

[१२]

गाथा—सुदरि गहि[१] सारगो दुज्जन[२] दमनोइ[३] पिषि[४] साइक्कं[५] । (१)
कि कि[१] विलास गहियं[२] कि कि[३] दुप्पाय दुप्पाय[४] ॥ (२)

अर्थ—[पृथ्वीराज ने परमारो (पट्टराजी ?) से कहा,] "हे सुन्दरी, तू इस धनुष को थाम, और दुष्ट [कयमास] का दमन करने वाले बाणो को देख। (२) उसने क्या-क्या विलास किए, [किन्तु] किन-किन दुःखो के लिए।"

पाठान्तर—(१) १ मो गिह। २. मो. दूजन, धा. अ फ म. ना उ स. दुज्जन (दुज्जग—धा म.)। ३ मो. दमनेहि, धा. दमनोइ, अ फ दवनोपि, म. दमणोपि, स समनोपि, ना उ दमनोपि। ४ धा पषि। ५ मो. शायिक (=साइक), म. सायकं।

(२) १. मो. कार्कि, शेष में 'किंकि'। २. अ. फ ना. करिय। ३ मो क्यु क्य, ना. द. किंकि न, उ. स. किंक्नो। ४ म दुषाइ दुषीय दुष।

टिप्पणी—(१) सारग < शार्ङ्ग = सींगों का बना धनुष। पिक्ख < प्र+ईक्ष्।

[१३]

*दोहरा—खनि[१] गड्डउ[*२] नृप[३] अर्ध निसि[४] सम दासी सुरया ति+[×५] । (१)*
देव धरह जल घन अनिल+[×१] कहिग चंद कवि प्राति[*]+[×२] ॥ (२)

अर्थ—(१) नृप (पृथ्वीराज) ने उस सुरूपा दासी के साथ [कयमास को] अर्ध रात्रि के समय खन कर गाड (गडवा) दिया। (२) देवताओ, धरा, जल, घन और वायु से भी चद कवि ने ही प्रातःकाल कहा।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के है।
+ द में चिह्नित चरणार्द्ध नहीं है।
× ना में चिह्नित चरणार्द्ध नहीं है।

(१) १. मो. षिनि। २ मो. गडु (=गड्डउ), शेष में 'गड्यो' (गड्यौ—म. ना)। ३ मो नृपि। ४ मो. अर्धं निशा (< निसी) धा. अरु धनह, अ फ अनु धरह, म. अर धुनिस, उ स सम धनह। ५ मो समदासी सुरिमाते, धा फ समदासी सुरजात (जाति—फ.), उ. स सादासी सुरपात (सुरयात- उ), म. अमदासी सुरपति।

(२) १ मो देवि धरह जल घन अनिल, धा देव धरनि जल थल अनिल, उ स देवधारन जलद्धि तें, म देव धरह जलहर अनिल, अ फ देवधरनि जल घन अनिल। २ धा कहिग चन्दपति प्रात, उ स. लीला कहिग सुप्रात, म कहिय चन्द प्रत बत्ति, अ फ कहिग चन्द कवि प्रात।

टिप्पणी—(१) सुरया < सुरूया < सुरूपा।

[१४]

दोहरा—अप्पु[१] राय वलि वनि गयु+[×] सुंदरि संउपि[*] सदाय[२] । (१)
सुपनतरि[१] कवि चद सउ[*२] सरसइ[३] वद्दि सु आय[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) स्वय राजा (पृथ्वीराज) उस दाय (सपत्ति या भेंट) को सुदरी (परमारी) को सौंप कर वन लौट गया। (२) स्वप्न मे कवि चद से [यह सारी घटना] सरस्वती ने आकर बताई।

पाठांतर—+चिह्नित चरणार्द्ध द में नहीं है।
×चिह्नित चरणार्द्ध ना में नहीं है।

(१) मो आवि राउ चलि वनि गयु, धा अप्पु राउ वलि वनह गउ, अ फ. अप्पु राउ चलि बनह (वनहि–फ) गौ, म० आवि राउ चलि वनह गौ, उ. स. गयौ नृपप बन अद्धनिसि। २ मो. सुदरि सुपि (=सउपि) स दाय, धा. अ फ सुदरि सुपि (सौंपि–अ फ) सुहाइ, म. ना उ. स सुदरि सौंपि (सौंपि-म ना.)। सहाय (सहाइ-ना)।

(२) १ म. सुपनतरि, ना. अ सुपनतर। २ मो. धा. म सु (=सउ), अ. फ. सौं, उ स. सो, ना. सुं (=सउ)। ३ धा सरसइ, मो सरसि (=सरसइ), ना उ. स. अ फ सरसें, म परसे। ४. मो वद्दिसु आय, शेष में 'बद्दा आइ' (बद्दिय आय– उ. स., बदीय आय–म)।

टिप्पणी—(१) वल < वल्=लौटना, वापिस आना।

[१५]

दोहरा—सु[१] जोतिष तप गति उपाय बिनु[२] नहि देष्यउ[*] सुनि अष्षि[३*] । (१)
तउ मानउ स्वामिनि सयल[१] जउ[*] सु होइ परतष्षि[२] ॥ (२)

अर्थ—[चन्द ने स्वप्न की सरस्वती से कहा,] "ज्योतिष, तपोबल, तथा उपाय के बिना मैंने कहा हुआ [सब कुछ] सुन कर भी [आँखो से] नही देखा, (२) मैं यह सब तब मान सकता हूँ यदि [तू] प्रत्यक्ष हो।"

पाठातर— *चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। २ धा जोतिग तियगति उपय विनु, ना. अ. फ. जोतिक (जोतिग–फ. ना.) तपगति उपय (ठपय–अ.) बिनु, द. जोतिक तप उपाय वन, म. सच तौ मानू सामनी, उ. स. जो तिक पगति उप्पजयं। ३ मो. नहि देष्यु (=देष्यउ) सुनि अखि (=अष्षि), धा नहि दिक्खिय…न अकिख, अ. फ. सुनिय न दिष्षि अषि (दिष्षी अष्ष–फ), ना नहि दिष्यौ सुनि अष्षि, द. नहि देषौं सुख अषि, म सकल सुम षति दषि, उ स बनन दिषि कविचद।

(२) १. मो. तु (=तउ) मानु (=मानउ) स्यामिनि सयल, धा द. अ. फ. तउ (तौ–अ फ) मानउ (मानौं–अ. फ.) स्वामिनि (स्वामिन–फ) सकल, ना तौ मानौं स्वामिनि सब, म. चद कहै बदी बयन, उ स. साम प्रगट बर कथ नह (बरधनह– उ)। २. मो. जु (=जउ) सु (=सु) होइ परतषि (=परतष्षि), धा.

जइ तुसी होइ परतक्खि, ना. जो होवैं परतिष, अ. फ. जौ सु होइ परतिष्षि (परतष्य–फ.), म जो स होइ परतषि, उ. स बर प्रमाद (प्रसाद–उ) मुख इद।

टिप्पणी—(१) अष्ष < आ + ख्या = कहना। (२) परतष्षि < प्रत्यक्ष।

[१६]

अडिल्ल— भइ परतष्षि[१] कव्वि[२] मनि आइ[३] । (१)
उगति[१] उकठ कंठ[१] समुहाई[२] ॥ (२)
बाहन हंस[१] अंस[१] सुषदाई[२] । (३)
तब तिहि[१] रूप चंद कबि धाई[२] ॥ (४)

अर्थ—(१) [सरस्वती] प्रत्यक्ष हुई और चन्द कवि के मन मे आई। (२) [परिणामस्वरूप] उक्तियो की उत्कण्ठा कवि के कण्ठ में समुहाने (आगे आने) लगी। (३) [सरस्वती का] वाहन सुखदायक हस का अस (कधा) था। (४) तब उस (सरस्वती) के रूप का चन्द ने [इस प्रकार] ध्यान किया।

पाठान्तर—(१) १ मो. पइ परषि, अ. फ. भई परतष्ष (परतिष्ष–फ), ना. म. भईय परतषि (परतष्यि–ना.)। २ मो. कविचन्द, धा. कवी, ना. द. उ. स. सुकब्बि, अ. फ. म. कवि। ३ अ फ. मन आई, ना. द. उ. स. मनाई, म. मनह आइ।

(२) १. धा. अ. फ. उकति कठ कंठह, म उकति कंठ कंठ, उ. स. उगति जुगति कहि कहि। ना. द उकति उकंढ (उकं०) कढ (कठ)। २ मो. धा. स. समुझाई (समझाइय—धा.), म. समझाइ।

(३) १. धा. हस, म. अस। २. म सुखदाइ।

(४) १. मो. तिठ तिहि, म. तब कवि। २. मा. चकवि धाई, धा. चन्द कवि धाइय, ना. द. उ. स. ध्यान कबि (धरि–ना०) पाई (ध्याई–ना. द.), म. ध्यान न ध्याइ, अ. फ. चन्द कबि गाई।

टिप्पणी—(१) परतष्षि < प्रत्यक्ष। (२) उक्कठ < उत् + कण्ठा। (४) धा < ध्यै = ध्यान करना, चिन्तन करना।

[१७]

अर्ध नाराच— मराल[१] बाल आसनं ।[१] (१)
अलित्त[१] छाय[२] सासनं[३] ।[१] (२)
सोहंति[१] जासु तुंबरं[२] ।[१] (३)
सुराग राज[१] धुंमरं[२] ।[१] (४)
कथंद केस[१] मुकरे[२] । (५)
उरग्ग[१] बास विठ्ठरे[२] ।[३] (६)
कपोल[१] रेख गातयो[२] । (७)
उवंत[१] इंदु प्रातयो[२] ।[३] (८)
बभूव[१] जूव षंचये[२] । (९)
कलंक[१] राह[२] वंचये[३] । (१०)

अवन्न[१] ताट[२] पिष्षयो[३] । (११)
अनग रथ चक्कयो[१] । (१२)
उछंमि बारि षंजयो[१] ।+ (१३)
तिरंति रूव रंजयो[१] ।+ (१४)
सुबाल[१] कीर सुद्धयो ।×°° (१५)
तकंत रत्त बिंबयो[१] ।×°° (१६)
दिपंत[१] तुच्छ दिठ्ठयो[२] । (१७)
विची[१] अनार फुट्टयो[२] । (१८)
सुग्रीव कंठ सुत्तयो[१] । (१९)
सुमेर गंग पत्तयो[१] । (२०)
भुजा स जासु तुड्डरं[*१] । (२१)
सुरत्ति[१] लग्गि[२] अंमरं[३] । (२२)
नषादि अद्द[*] रष्षिया[१] । (२३)
धरंति[१] सच्छ[*२] लष्षयां[३] ।- (२४)
कनक्क सा बिपच्चया[*१] ।÷ (२५)
सुराग सीस दिठ्ठया[१] । (२६)
विविच्च[१] रोम रिथये[२] । (२७)
मनु[१] पपील रिंगये[२] । (२८)
हरंति[१] छब्बि[२] जामिनी[३] । (२९)
कटित्त[१] हीनि[२] कामिनी[३] ।[४] (३०)
अभाष दोष बंचही ।× (३१)
सुहं त[१] देव संचही ।× (३२)
अपुठ्ठ[१] रंभ नारुहे[२] ।[३]× (३३)
अदेव[१] बंभु मानुए[२] ।[३] (३४)
सुरंग चग पिंडुरी[१] (३५)
कली सु चंप अंगुरी[१] । (३६)
सबद्द[१] बद्द नुप्पुरे[२] ।× (३७)
चलंति हंस अंकुरे[२] ।× (३८)
सुभाय[१] पाय[२] रंगु जा ।× (३९)
सु अध्ध[१] रत्त अंबुजा[२] ।[३]× (४०)

अर्थ—(१) बाल मराल (हंस) जिसका [सरस्वती] आसन था, (२) अलि (भ्रमर) शासन (नियंत्रण) पूर्वक जिस पर छाए हुए थे, (३) जिसकी वीणा का तूंबा शोभा दे रहा था, (४)

[जिससे निकलते हुए] अच्छे रागो का भ्रम शोभित हो रहा था, (५) कलिंद [के समान जिसके श्याम] केश मुक्त थे, (६) जैसे सुवास के लिए उरग (सर्प) डटे हुए हों (७) जिसके गात्र मे कपोलो की रेखा [ऐसी लगती थी] (८) मानो इंदु प्रातः काल मे उदित हुआ हो (९–१०) और जो राहु के कलंक से बचने के लिए [अपने मृगरथ के] जूए को बहुत खीच रहा हो, (११) कानो मे ताटक दिखाई पड़ रहे थे, (१२) [जो ऐसे लगते थे] मानो अनग-रथ के चक्र हो, (१३) [जिसके नेत्र ऐसे थे जैसे दो] छोटे वारि-खंजन (१४) रूप के रंजित जल मे तैर रहे हो, (१५) [जिसकी नासिका ऐसी थी मानो] सीधा (सरल स्वभाव का) बाल कीर (१६) लाल बिंबाफल [सदृश ओठो] को ताक रहा हो, (१७) [जिसके दाँत ऐसे] तुच्छ (छोटे) और दीप्त दिखाई पड़ रहे थे (१८) मानो अनार का फल बीच से फट गया हो, (१९) जिसकी ग्रीवा मे मुक्ता-माल थी (२०) [जो ऐसी लगती थी मानो] सुमेरु ने गंगा को प्राप्त किया हो। (२१) जिसकी भुजाओ मे टोडर थे, (२२) जिसके अंबर (चीर) मे रक्तिका (घुँघची) लगी हुई थी, (२३) जिसके नख आर्द्र (कोमल) और रक्षित (२४) और स्वच्छ लक्षणो को धारण करते थे, (२५) कनक का विपचित (जड़ाव-युक्त) (२६) जिसका सुंदर शीश (शीशफूल) दिखाई पड़ रहा था, (२७) जिसको विविक्त (पृथग्भूत, प्रकट) रोमावली थी, (२८) जो ऐसी लगती थी मानो पिपीलिकाएँ रग रही हो, (२९) जो यामिनी को छवि का अपहरण करती हो (३०) ऐसी क्षीण जिस कामिनी की कटि थी, (३१) [जिसके गुह्य प्रदेश का वर्णन न करके] अपभाषण दोष से बचते हैं (३२) और देवता शुभ का सचय करते हैं, (३३) [जिसकी जाँघे] अपुष्ट (कोमल) कदली-नाल [के सदृश] थी, (३४) मानो वे अदेव (अनीश्वर विश्वासी) के [स्थूल] ब्रह्म हो, (३५) जिसकी पिंडलियाँ सुदर और अच्छी थी, (३६) जिसकी उंगलियाँ चपा की कलियो के समान थी, (३७) जिसके नूपुर शब्द कर रहे थे, (३८) [मानो] मराल चल रहे हो (३९) और जिसके पैर स्वाभाविक रीति से ऐसे रंजित थे (४०) मानो उनके नीचे रक्त (लाल) कमल हो।

पाठान्तर—० चिह्नित चरण मो. में नहीं है।
(० ०) चिह्नित चरण धा. में नहीं है।
+ चिह्नित चरण द ना. में नहीं है।
× चिह्नित चरण म में नहीं है।
– चिह्नित चरण फ. में नहीं है।
* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) १. म. सुराल।

(२) १ द अलित्ति। २ फ बाइ, अ ना. छाइ, स साय। ३ अ फ. तासन।

(३) १ म सोहत, ना साहता (= सोहती), अ. फ सुहत, द. सुहति। २. मो. जासि तमर, उ. स. जास तामरं, म जास तबर।

(४) १. मो सुराग राय (=राज), ना. म. सु राग राग, द. स. सुराग राज। २. मो धूमरं, उ स घामरं।

(५) १ ना कल्यत केस, म. उ. स. कलिंद केस, म कलिंद केस्रि, अ. फ. कइद केस। २. धा. अ. फ. ना म उ स. मुकरे, म. मोकरे।

(६) १. धा म उरग (=उरग)। २ धा वास बिद्दरे, फ बास बिच्छरे, ना. वास बिठुरे, द बाल बिडरे, म. वाम विडरे, उ स. बाल बिथुरे। ३ उ. स मे यहाँ और है :—

लिलाट रेष चदन। प्रभात इंद बद्दनं।

(७) १ ना कप्पिल। २. धा गत्तयो, अ. फ. गातए (गातुए–फ)।

(८) १. धा उठनु, फ. उवति, म. उचत। २. मो. म इंद प्रातयो, अ फ. इद (इदु–फ.) प्रातए, ना इंद्र पातयौ, उ. इद्द पातयौ, स इन्द्र पाथयौ, म अंदु प्रतयो। ३. उ स में यहाँ और है (स पाठ) :—

त्राटक झक झकई। तिलक्क पान सकई।
सुरत तेज भासई। रुलत मुत्ति पासई।
उपम चद्द जपयौ। त्रनत कीर सींपयौ।
निभग मार आतुर। त्रिबुक्क चारु त्रातुर।

(९) १ धा म द. ना निभून, म त्रिभूअ, अ फ त्रिवूत्र। २ धा. ना. द. म. षनयौ (षजयो–ना.), अ फ. षजए।

(१०) १. म किलक। २. धा म. राहु। ३ धा ना द. म. वचयौ, स चपयौ, म. चपयो, अ फ. बचए (चचए-फ)।

(११) १ म श्रनन। २ धा टाट, अ फ. तट्ट, उ. स त्राट। ३. अ. फ पिष्वए।

(१२) १. अ फ चक्कए।

(१३) १ धा. उछाइ नारि षजयो, अ फ उग्गाहि नारि षजए, उ स उग्गाइ कीर षजन।

(१४) १. मो. सिरति रूप रजयो, धा तिरत रूप रजयो, अ फ. तिरत तव रजए, उ. स तरुन्न रूप रंजन।

(१५) १. द ना जु। २. द सवयो, म. सुम्भगो, अ. फ. सुद्धए।

(१६) १. अ. फ. तकित मित्र रत्तए, ना तकत रत्त बिबयो।

(१७) १ धा दिपति। २ अ फ दिट्ठए, म. द्रिष्टयो।

(१८) १ धा. अ फ. बिवो (< बिवो), मा. बिंबा, म विचि, ना. विचि, द स. बिच। २. अ फ. फट्टए (फुट्टए–फ.), म फटना।

(१९) १ मा मोतयो, अ फ सुतए।

(२०) १. अ. फ. पत्तए।

(२१) १. मो. भुजा म (< स) जासु तंमर (< तडर =तड्डुर), धा भुजाय नास तूबर, म. फ. भुजास जास (भुजासु जासु-फ.) तुबर, अ सुगाइ जासु तुवर, ना. द. सुभत तास (जासु–ना.) तुमर, उ. स. सुभत कुच्च तुमर।

(२२) १. मो सुबत्त, स सुरच्छि। २. मा लग्ग। ३. अ. फ अतर, ना. म. अबर।

(२३) १ मा निखध अध रखिण, धा. अ फ. निषाध आध र छिन (रच्छिन–अ, रक्षिन–फ), ना नषादि आदि रष्षन, म निषोय अध रषन, उ स. नषादि ईस अच्छन।

(२४) १. ना. म. धर त। २. उ सच्छि (साछ < साच्छ), शेष में 'सीस'। ३ मो. रक्षण, धा उ. स. म. अ. फ. लच्छिन, ना. लष्षन। ४ उ. स में यहाँ और है :—

सुरग हथ्थ मुद्दरी। सो पानि सोय सुद्दरी।
सुजीव भ्रम्म बालय। सुगध तिष्ष तालय।

(२५) १. म साव प्रोचया, शेष में 'सा विपव्वया' (< विपच्चया)।

(२६) १ मो सुराग शिसि दिठया, धा. सुराग सीस रडढया, अ फ. सुराग सीस रठ्ठया, ना. म. सुराग सीस दठ्ठया (डठया–म), स. सुराग मिभ दिब्बया, उ सुराग सिभ दिब्बया।

(२७) १ धा. ना. विविच्चि, अ फ. विवीच, द. विवच, म. विवित्त, फ. बिचाच। २. मो. रथयो, धा. रग्गए, ना. द उ. र गयो, म. रिंघयो, स. रगय।

(२८) मो. मनु पिपील रथयो, धा. मनो पिपिल्ल रेंगए, अ फ मनौ पिपील रिंगए (रगए–फ.) म. मानो प्रपील रिगयो, द ना प्रपालिका (पिपीलिका–ना) सु र गयो, उ.स पपील सुत्त रगय। २. अ. फ. में यहाँ और है :

सु सोभिना निरूपए। अनग जानि कूपए।

(२९) १ हरत, ना. हरत्ति। २. मो. छत्रि, धा छत्ति, म. पाप, अ. फ. छिन्न। ३. मो. जामिनी, म याजनो।

(३०) १. उ. स. कटिसु, म. कटत्त, ना. कटत्ति। २. मो हानि (< हीनि), अ फ. ना. हीन। ३. म. कामनी, ना स्वामिनी, उ म. सामिनी, द. सामनी।

(३२) मो. मोहति, अ. फ. सुभ त।

(३३) १. मो अपू० र म, धा. अपुट्ठ र ग, अ. फ अपुब्ब र ग, द ना उ स अपुट्ठ। २. ना नारणी, स उ द. नारिनी, अ. फ जानुए।

(३४) १. द. सदेवि, म. सत्व ना सुदेव। २ धा. अ. फ ब्रह्म मानुए, मो. ब्रह्म चारु रे, ना. म स उ. द. ब्रह्मचारिणी (ब्रह्म वारनी–म)। ३. उ. स में यहाँ और है :सज्जुत ओपकारिनी। ४ उ स. में यहाँ और है:—

अबुद्ध बुद्धि कारिनी।

नयन्न नास कोसई। बरट्टि कट्टि भेसई।

झलक्क तेज कबुजं। चरन्न चारु अबुज।

(३५) १ धा. चग पुडरी, म. चग उभरी, ना. द. र ग उब्भरी, उ. स. रंग ईडुरी, म चग स्वभरी।

(३६) १. मो. कलिन (=कलीन) चप पिंडुरी, धा. कलिद चंद अगुरी, अ फ कली सु चंप (सचपि–फ) अगुरी, ना स. उ द कलाति चपि (चप्–ना.) पिंडुरी (पुडरी–ना), म. कलीन चप तुडरी (पुडरी)। (पिंडुरी चरण ३५ में आ चुकी है।)

(३७) १. उ. स. सद्द, फ दव्व। २. धा. अ. फ. नूपुरा, ना. स द नूपुरे, उ. नूपुर (< नूपुरे)।

(३८) १. मो. चलत। २ धा अ. फ अकुरा।

(३९) १. धा अ फ सुभाइ, द उ स सुपाइ ना सभाय। २. धा. पाइ।

(४०) १. ना. द अथ रत्त, धा अ फ. जु अद्ध। २. धा. अभुजा। ३. उ. स में यहाँ और है :—

दरस्स देवि पाइय। सुकब्बि कित्ति गाइय।

टिप्पणी—(४) धूमर < धूम्र। (५) कयद < कलिंद। मोकरे < मुक्त। (६) विट्ठ < विष्ट–बठे। (९) वभूव < प्रभूत। जूव < यूप। (१३) उच्छ < तुच्छ। (१४) रूव < रूप। (२०) पत्त < प्राप्त। (२३) अद्द < आर्द्र=कोमल। (२५) विपच्चया < विपचित। (२७) विविच्च < विविक्त=पृथगभूत, प्रकट। (३२) सुह < शुभ। (३३) अपूठ < अपुष्ट। (४०) अध्य < अधस्।

[१८]

अडिल्ल—अबुज बिकस[1] बास[2] अलि आयौ[3]।[4] (१)
सांमि[1] वयनि[2] सुंदरि[3] समझायौ[4]। (२)
निस[1] पल पंच घटिय दोइ[2] धायौ[3]। (३)
आषेटक नषे[1] नृप आयौ[2]॥ (४)

अर्थ—[सबेरा होने पर] कमलिनी विकसित होने लगी और उसकी सुवास के लिए अलि (भ्रमर) आ गया। (२) स्वामी (अलि) ने वचना में सुंदरी (कमलिनी) को समझाया। (३) रात्रि में दो घड़ी तथा पाँच पल नृप (पृथ्वीराज) दौड़े थे, (४) अब वे आखेटक को समाप्त कर आ गए।

पाठातर—(१) अ. फ बिगसि, ना. बिकसि। २. अ. बासु, फ ना. बासि। ३ मो. आयु (=आयौ), म. ना आयौ, शेष में 'आयो'। ४. म में यह चरण नहीं है और इसके स्थान पर यथा द्वितीय है: घन गइयौ धर माहि छिपायौ।

(२) १ धा अ फ. ना. द. उ. स स्वामि, म. स्वामन। २ मो वयनि, शेष में 'वचन'। ३. ना. सुदर, म चद। ४. मो समझायु (=समझायौ) धा. सब जायो, शेष में 'समुझायौ' या 'समुझायौ (समझायौ–ना. म.)।

(३) १. मो. निश (निस), म. नस, अ. फ. निसि। २. धा. अ. घडिय दुइ, ना. घटी दुइ, उ. स. घटी दू, द. घटाद्वय, म. घटी दो, अ. घडिय दुइ, फ घरीय दो। ३ मो. धायु (=धायउ), धा. ना धायो, अ. धाए, उ. स. आयौ, द. म फ धायौ।

(४) १. धा. अ. फ. झंषै, मो. झंषे, उ. स. जंपिए, ना झकिए, द. झषि, म. झषे। २. मो. आयु

(=आयउ), धा. अ. फ ना. म द. उ. स. आयौ (आयौ–धा. अ.) ।

टिप्पणी—(२) वयन <वचन । (४) नष <नश=फेंकना, समाप्त करना ।

[१९]

अडिल्ल—मझ्झ[१] पहुर[२] पुच्छइ*[३] तिहि[४] पडिय[५] । (१)
कहि कवि[१] विजय[२] साह[३] जिह डंडिय[४] ॥ (२)
सकल सूर[१] बोलिव[२] सभ[३] मंडिय । (३)
आसिष[१] जाइ दीध[२] कबि नडिय[३] ॥ (४)

अर्थ—(१) [प्रथम या मध्य के] प्रहर के मध्य (समय) वह (पृथ्वीराज) पडित (जयानक ?) से पूछने (कहने) लगा, (२) "हे कवि, मेरी विजय [का काव्य—पृथ्वीराज विजय] कहो, जिस प्रकार मैंने शाह शहाबुद्दीन को दंडित किया है।" (३) तदनतर समस्त शूरों को बुला कर उसने सभा की, (४) जिसमे चंड (उग्र) कवि [चंद] ने आशीर्वाद दिया ।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के है ।

(१) १. मो म मधि, अ. ना. मध्य । २. मो. पहर, ना. पिम्म, फ. पहरि, द. प्रहर । ३. मो. पुच्छि (=पुच्छइ), म पुछीय, ना. पूच्छे, अ फ. पूछै । ४ धा. तहि, ना. द. म प्रभु, उ स नृप । ५. म. चडीय ।

(२) १. म. विप्र । २ धा. कहि । ३. धा. ना. साहि । ४. मो. तिह षडीय, अ. फ. ना. जिहि डडिय, म तिहै डडीय, उ स जिन मडिय ।

(३) १. ना सू । २ धा. अ बोलिव, मा. बोलइ, फ. बोलिउ, उ. स. बठे । ३. म. सभा ।

(४) १ म आसिक । २. धा. जाइ दियो, अ. फ. दीयो जाइ, ना आइ दियौ, उ. स. आनि दीय, म. दियौ आइ । ३. मो तब चडीय, धा. म ना. अ. फ कवि चंडीय, उ. स. तब चदिय ।

टिप्पणी—(१) पडिय <पडित । (२) विजय=पृथ्वीराज विजय ।

[२०]

अडिल्ल— प्रथम[१] सूर पुच्छइ*[२] चहुआनहु[३] । (१)
हइ *[१] कयमासु कहूं कोइ[२] जानहु[३] । (२)
तरणि[१] छिपंत संझि[२] सिर नायउ*[३] । (३)
प्रात[१] देव[२] मुहुल न[३] पायउ*[४] ॥ (४)

अर्थ—(१) पहले चहुवान (पृथ्वीराज) शूरो से पूछने लगा, (२) "कयमास कहीं है ? कोई जानते हो ?" (३) [उन्होने उत्तर दिया,] "सूर्य के छिपते समय सध्या काल मे [हमने उसे] सिर झुकाया था, (४) किन्तु हे देव, प्रातःकाल हमने उसे महल मे नहो पाया ।"

पाठातर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के है ।

(१) १. अ. फ पृथिमि । २ धा. पूछइ, मो. पुछि (=पुच्छइ), अ. ना द. म उ. स. पुच्छै, फ. पूछे । ३. धा. अ. फ. ना. चहुवानह, उ. स चहुआनन, म. चहुवानहु ।

(२) १ मो. हि (=हइ), शेष समस्त में 'है'। २ धा. कहहु किंहु, अ कहहु कहु, द. उ. स. कहौ कहु, फ कहा कहौ, ना. कहौ कहां, म कहा कोउ। ३. धा द जानह, उ. स जानय, म जानहु।

(३) १ धा अ फ तरुनि, म. तरतु। २. धा. छिपत सझि, द उ स. अ. फ छिपत सझ, मो छपत मझ (<मझ), द छपत सकि, ना छिपति साझ, म छिपंतह सीस। ३ मो नायु (=नायउ), धा. अ फ नायो, ना उ स नायौ, म नवायौ।

(४) १ धा प्रातु, ना प्रातह। २ धा. अ फ उ स. देव हम, म. देव है। ३. धा. अ फ उ स महल न, ना. महुल नहु, म मोहल न, द महल नहि। ४ मो पायु (=पायउ), धा अ फ पायो, म ना पायौ।

[२१]

दोहरा—उदय अगस्ति नयन+ दिठि+[१] उज्जल जल ससि कास[२]। (१)
मोहि चंद हइ[१] विजय मन[२] कहहु कहां[३] कयमास[४x] ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] "अगस्त्य का उदय हो गया, और नेत्रों से जल, चन्द्रमा तथा कास उज्जवल दिखाई पडने लगे। (२) हे चंद मुझे मन मे [कन्नौजराज पर] विजय की [लगी हुई] है, बताओ कयमास कहाँ है ?"

पाठान्तर—+ चिह्नित शब्द धा में नहीं है।
x म में इस छन्द का पाठ है :—
मुडिल—उव अगास रिती अभिदात। मोहि चद हे विजया मातं।
उजलज लेन सोसि आकास। कहि हौ मोहि कहा कैवास।

(१) १. मो उदय अगस्ति न चंद ति, अ. फ उद अगस्ति रितु नव नदिन (—निदितु फ.), ना द उदय अगस्त रितु नयन दिन (दिठ – द), उ स उदय अग्न तौ नयन दिठि। २ मो. नव ससि कास, ना. द. सिसि आकास।

(२) १. धा. हइ, मो. हि (=हइ)। २ धा म. मनु। ३ मो कहहु काहा, ना कहिहि कहौ। ४ धा कइमासु, मो. किमास (=कयमास), अ फ कैवास।

[२२]

दोहरा— नागप्पुर सुरपुर[१] सयल[२] कथित कहउ* सब[३] साज। (१)
दाहिम्मउ* दुल्लह भयउ*[१] कहउ*[२] न जाइ प्रथीराज[३] ॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] "नागपुर (नाग लोक), सुरपुर (देव लोक) [आदि] सब के सब साज यदि तू कहे तो मै कहूँ। (२) [किन्तु] दाहिमा कयमास [इन लोकों मे भी] दुर्लभ हो गया है, [अतः] हे पृथ्वीराज, मुझ से कहा नही जा रहा है [कि वह कहां है]।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १ धा अ फ नागप्पुर नरपुर, ना नागपुर नरसुर, उ स. नागपुरह नर सुर, म. नागपुर सुरपुर। २. अ फ सकल, उ स. पुरह। ३ मो कथित कहू (< कहुं=कहउ), धा. अ. कथि सु देव पुर, फ. कथिग देउ पुर, ना उ. स कथत (कथित—ना.) सुनत सब, म द ना. कथित सुनहि सब।

(२) १. मो. दाहिमु (= दाहिम्मउ) डुलभ भयु (= भयउ), शेष में 'दाहिम्मो' (दाहिमौ—ना. म) दुल्लह भयो (भयौ—म), २. मो. कहू (< कहुं=कहउ), धा अ. फ. उ स कहि, ना म. कहयौ। ३. धा. ना प्रिथिराज, म. प्रिथिराज, द. प्रतिराज।

टिप्पणी—(१) सयल < सकल। (२) डुलभ < दुर्लभ।

[२३]

दोहरा— कहा[१] भुजग कहा उदे सुर[२] निकमु कब्ब कवि[३] षंडि[४]। (१)
कइ[*] कयमास[*] बताहि मो[१] कइ[×] हर[२] सिद्धी[३] बर छंडि[४]॥ (२)

अर्थ—(१) '[पृथ्वीराज ने कहा,] "[कयमास] क्या भुजग (नाग) अथवा क्या सुर (देव) [योनि मे] उदय हुआ है—जन्मा है ? तू अपने निकम्मे काव्य को, हे कवि, नष्ट कर दे। (२) या तो तू मुझे कयमास को बता, और या तो हर-सिद्धि को वर छोड दे।"'

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द धा अ फ स में नही है।
* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हे।

(१) १. धा. उ. स का, म. काहा, द कहा, अ ना. कहि। २ धा का देव नर, अ. फ कह (कहा–फ.) देव नर, द कहा देव सौ, ना. कहि देव सु, म. का देव सुनि, उ. स. काह देव मसि। ३. मो. निकमक कवि, धा. ना द म निकम काव (कव्व–धा , कबु–म) कवि (कबु–ना), अ फ करन कछ्छु (कच्छि–ना) कवि, द. उ. स निकम कबित्त (कबि–द) जु। ४ फ षड।

(२) १ मो. कि (=कइ) किमास (=कयमास) बताहि मो , धा ना द म. उ. स कै बताउ (–बताइ म) कैवास मोहि (सुहि–म.), अ फ बत्तावति कैवास सुहि (वरि–फ)। २. मो कि (=कइ) हिर, अ हरि, फ हरु, धा स. हर, ना कै हरि, म उ कै हर। ३ फ द. सिद्धिय। ४ फ छड।

टिप्पणी—(१) कब्ब < काव्य।

[२४]

दोहरा—जउ[*१] छुडइ[*२] सेसह[३×] धरणि[×] हर[×] छुडइ[×*४] विष[×] कद[×५]। (१)
रवि[×] छंडइ[×*१] तप ताप कर[*२] तउ[*×–] वर[३] छंडइ[*४] कवि चद॥ (२)

अर्थ—[चंद ने कहा,] (१) "यदि शेष धरणी को छोड़ दे, शिव विष-कंद [का खाना] छोड़ दे, (२) सूर्य अपनी गर्मी और तापपूर्ण किरणे छोड दे, तो कविचंद [सिद्धि का] वर छोड़ सकता है।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द धा में नहीं है।
–चिह्नित शब्द अ फ उ. स. में नहीं है।

(१) १. धा. जो, मो जु (=जउ), ना. द. फ. जै (<जइ), उ स अ. प जौ। २ मो छडि (=छडइ), उ स. छडे, म. अ. फ ना. छड। ३ अ फ. ना सेसु तु, म सेसु त। ४ मो छडि (=छडइ), उ. म. अ फ. ना. म छंडै। ५ म. कदु।

(२) १. मो. छडि (=छंडइ), ना म. उ. स. अ फ. छड। २ मो धा फ तप ताप कर, अ (करु–मो), अ तप ताप कौ, म. जौ तपि किरनि। ३. मो. तु (=तउ) बर, म. तौ वर, धा अ. फ. उ स वरु (बर–उ स), ना. नौ (<तौ) वर। ४ मो. छ, धा अ. फ म ना उ. स. छड।

टिप्पणी—(१) जइ < यदि। (२) तउ <तदा।

[२५]

दोहरा—हठि[१] लग्गउ[*] चहुआन[२] न्रिप अगुलि[३] मुषह[४] फणिदु[५]। (१)
तिहुपुरि[१] तुअ मति[२] संचरइइ[*५] कवन[३] सुहे[४] कवि चंदु॥ (२)

अर्थ—चहुआन राजा (पृथ्वीराज) हठ में पड़ गया, और उसका हठ करना [मानो] फणीन्द्र के मुख में उँगली देना था। (२) [उसने चंद से कहा,] "तेरी बुद्धि तीनों लोकों में सचरण करती है, इसलिए हे कवि चंद, यह बताने से ही बनेगा [कि कयमास कहाँ गया है]।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. हठि लगु (= लग्गउ), धा. हठ लग्गो, अ फ. हठि लग्यो, ना. हठ लग्यौ, उ. स. हठ लग्गौ। २ फ चौहुवान। ३ मो. अगुली, म. अँगुरा। ४. धा. मुषहि, उ. स. मुष्ष, म. मुष। ५. मो. फणिंद, धा. फनिंद, म. उ. स फ फुणिंद (फुनिंद—म.)।

(२) १. मो. तिह पूर, धा. जिह पुरि, म. तिहै पुरि, ना. तिहि पुर, उ. स. अ. फ. तिहु पुर। २ मो. तिहम, धा. तुअमति, स. तुव अति, म. तुव मृत। ३. धा स चरइ, मा. सचरि (= सचरइ), अ. फ सचर, ना. म. सचरै। ४ मो. धा. सुकहि (= सुकहे), ना. सुकह्यँ, द. सुकह्यौ, म. कह्यो, उ. सुकहै, स. अ फ. कहै। ५. मो. वयन, धा. बिनइ (< बनइ), म. उ. स अ. फ. ना. बनै।

[२६]

दोहरा— से स सिरुप्परि[१] सूर तर[२] जइ[३] पुच्छइ[४] नृप एस[५]। (१)
दोहुं बोलि[१] मडन[२] मरनु कहइ* तउ*[३] कव्वु[४] कहेस[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) "हे राजा," [चंद ने कहा,] "शेष के सिर पर और सूर्य के नीचे (तीनों लोकों) [के विषय में] यदि तुम ऐसा पूछते हो, (२) तो दोनों बातों में—बताने पर भी और न बताने पर भी—मरण का मडन (आयोजन) होता है, इसलिए यदि तू कहे तो मैं काव्य कहूं।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. सिरुप्परि, मो. सिरप्पर। २. अ फ. सूरवर, ना सूरतरुण, उ. स. सूरतन, म. सुरसुतर। ३. मो. जु (= जउ), धा. जइ, म. जै, अ. फ. उ. स. ना. जौ। ४. मो. पुछि (= पुच्छइ) धा. पुच्छइ, अ. पुच्छहि, फ. द ना. म उ. स. पुच्छै। ५ धा नृप एसु म. कवि जासु।

(२) १. धा. दहु बोलं, अ फ. दहु (अ = दुहु) बोलह, म. हर्ड (< दहु) बोल। २ मो. जीवन, फ नंदन। ३. मो. कहि तु (= कहइ तउ), धा अ फ. कहहु त, म कहै न, द ना. कहै त, उ स. कहौ तौ। ४. मो. उ. स. कब्बि, म. कब्ब। ५ धा. कहेसु, म. कहासु।

टिप्पणी—(१) एस < ईदृग। (२) कब्बु < काव्य।

[२७]

कवित्त—एकु[१] वान पुहवी[२] नरेस कयमासह*[३] मुक्कउ[४]। (१)
उर उप्परि[१] षरहरिउ*[२] वीर[३] कष्षहतर[४] चुक्कउ[५]। (२)
बीउ[१] वान संधानि[२] हनउ*[३] सोमेसुर नंदन[४]। (३)
गाडउ* करि[१] निग्गहउ*[२] षनिव षोदउ*[३] संभरि धनि[४]। (४)
थर*[१] छंडि[२] न जाइ अभागरउ*[३] गारइ*[४] गहउ* जु गुन परउ*[५]। (५)
इम जंपइ*[१] चंद विरद्दिया[२] सु कहा निमट्टिहि[३] इह[४] प्रलउ*[५] ॥ (६)

अर्थ—(१) हे पृथ्वीनरेश, एक वाण तुमने कयमास का [लक्ष्य करके] छोडा। (२) वह वाण उस के हृदय पर खरमराता हुआ उस वीर की काँख के नीचे से होकर चूक (निकल) गया (३) तुमने, हे सोमेश्वर नन्दन, दूसरा वाण सन्धान करके [कयमास को] मार डाला (४) और, हे साँभर पति, तुमने खन-खोद कर गड्ढा करके उसको उसमें जकड़ दिया। (५) उस अभागे (कयमास) से अब स्थल छोडा नहीं जा रहा है, क्यों कि पाषाण (भूमि) ने उसे बड़े गुणों से (भली भाँति) पकड रखा है। (६) चन्द विरद्दिया इस प्रकार कहता (पूछता) है, इस प्रलय [जैसे भयानक कार्य] से क्या निपटेगा (बनेगा) ?"

पाठांतर— ×चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. अ फ. एकु, म. एक, 'शेष' में 'इकु'। २ मो पुहुमा, वों अ पुहर्मा, फ. ना. पुहवी, म. पौहमि, उ. स पहुमी। ३ मो. किमासह (=कयमासह), धा. कैमासह, अ फ म. कैमासहि, ना उ स कैमासह। ४. मो. मुकु (=मुक्यउ), धा मुक्यो, अ फ मुक्कउ, म द ना उ स मुक्यौ।

(२) १ अ. फ उरप्पर, म उ स उप्पर। २ मो षरहरो, धा षरहराउ (< षरहरांउ), अ फ. म. ना. द. उ. (षरहर्यौ—फ षरहरयौ—म ना.), स थरहरयो। ३ मो बीरी, फ बीत। ४ मो. कष्षह वर, धा कष्षतरु, ना बाहू बर, म बाहुबल, स कष्षतर। ५. मो. चुक्यु (=चुक्यउ), धा चुक्यो, अ फ चुक्कउ, म. द. ना. उ. स चुक्यौ।

(३) १. मो. एह, ना वीयो, द म. उ. स अ फ बियौ। २ ना. द उ स. अ फ. सधान, म सधति। ३. मो. हनु (=हनउ), धा ना हन्यो, अ फ द म. उ. स हन्यौ। ४ मो नदर्ना, म नदनि।

(४) १. मो. गाडु (=गाडउ) करि, धा गाढो कै, ना. गाढौ कै, अ फ गढउ (गढौ—अ.) करि, म. गड्यो करि। २. मो निग्रहु (=निग्रहउ), धा निग्गह्यौ, म. उ स. अ फ. निग्रह्यो। ३ मो षिन (< बिनु=षिनउ) षोदु (=षोदउ), धा खन्यौ गड्ढौ, अ. फ षन्यौ रह्यो, ना. षन्यौ षोद्यौ, म षुन्यौ षुधयौ, द उ. स. षनिव (षनिय—द) गडयौ। ४ धा अ. ना. उ स. सभरि धन, फ सभरु धनि।

(५) मो. द. थिर (<थर ?), धा. फ. धर, ना. धह, उ स थल, म धरु (< थरु)। २. मो. ना द. छोडि, अ फ छाडि, उ स. छोरि, म छड। ३ मो अभागरु (=अभागरउ), धा. न भग्गलो, अ. फ न जाई बप्पुरो, ना न जाइ अभग्गरौ द. उ स न जाइ अभागरौ, म जाइ मगरि गगरि। ४ मो पु (< ग्रु) गारि (=गारइ), धा. गारँ, अ. फ गार, उ स गाड्यौ, म. कहयौ न, ना द गू गँ। ५. मो. गहु यु (=जु) गुन षरु (=षरउ), धा. गह्यो गुनषले, अ फ गहै गुनन षरौ (षर—अ.), ना द षद्धौ गुल (गुद्—द.) षलौ, उ. स. गाड्यौ गुनगहि अग्गरौ, म न जाइ ही गुन षलँ।

(६) १. मो. जपि (< जंपइ), शेष में 'जपै'। २. मो. विरदीयु (=विरद्दियउ), धा. ना. विरुदीया, अ. फ. म उ. स. बरद्दिया। ३. धा तह नवटे, मो सु काहा नीमटिहि, द. अ फ कहा निबट्टे (निबट्टँ—द.), ना. उ. स. कहा (कहा—ना) निघट्टँ, म कह्यौ न मिटे। ४ धा. इह, मो. अ. फ यह, उ. स इय, म. जैहै, द. इयु। ५ मो. प्रलु (=प्रलउ), धा. प्रज्जले, उ. स ना अ फ प्रलौ, परौ, म. प्रलँ।

टिप्पणी—(१) पुहुमी < पृथ्वी। मुक्क < मुच्। (२) कष्ष < कक्ष। (३) बीय < द्वितीय। (४) गाड < गड्डु < गर्त=गढढा। निग्गह < निग्रह=निरोध, अवरोध। (५) < थर स्थल। गार < ग्रावन्=पत्थर, पाषाण। (६) निमट्ट < निवृत्त। प्रलउ < प्रलय।

[२८]

अडिल्ल—[१]भट्ट वयन[२] सुनि सुनि[३] सोइ[४] कानहु[५]। (१)
अप्पु अप्पु[१] गए ग्रेह परानहु[२] ॥ ( )
जोगिनिपुर[१] जागउ* चहुवानहु[२]। (३)
भयि[१] निसि च्यारि जाम[२] जुगु जानहु[३] ॥ (४)

अर्थ—(१) भट्ट चंद के उस वचन को सुनकर (२) [सभासद-गण] पलायित होकर अपने अपने घर गए। (३) योगिनीपुर (दिल्ली) में चहुआन (पृथ्वीराज) जग रहा था, (४) चार प्रहर रात्रि उसके लिए चार युगों के समान व्यतीत हुई।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. द उ स में इसके पहले और है (स पाठ):—

सुनि सुनि श्रवन चंद चहुआन। कलि मलि चित्त सुभट सब्बान।
के अवलोइ सुमुष्ष चंद। निरषे नयन के विभ्रत दंद।
के भय मूढ़ रूढ़ बर अप्पं। के भव चित्र विरत्त सुदप्प।
समुझि न परे सूर सामंत। गठन गुननन आव अंत।
निरषे द्रग मुष रत्त क्रूर। असही तेज अगेज सनूर।
निरषे अन्यो अन्य मरूर। भय भय चित्त सुभ सपूर।
गहके वद्दर गज्जि गुहीर। भय त्रिघात तरित तन भीर।
भय गभीर सुहीर समीर। उड्डु कर सररेन सनीर।
घट्टी मद्ध पच्च पल सेष। बिन भद्रवं भयानक भेष।
दिसि नैरत्ति किरगहि गोमाय। दिसि घूमत सिवा सुर ताय।
बढ्ढी देविचकोरन भास। गज्जे छोनि ओनि आयास।
मन्ने सह आरिष्ट अपार। उपज्यो किन कारन क्रत्यार।
मुव अवलोकि कन्ह नरनाह। उट्ठे आसन हुत अराह।
चले अप्प निज मग्ग सुग्रेह। फुनि गोयंद राज उठि तेह।
उनमन मन्न उट्ठि सामंत। कलि मलि विकल उकल साचिंत।
कहै चंद बरदाइ सकोह। हनि कैमासि दास रिस दोह।

ये पंक्तियाँ ना में भी हैं, किन्तु स्वतंत्र छंद के रूप में एक रूपक बाद आती हैं।

२ मो. वयन। शेष सभी में 'बचन'। ३. म ज्ञु सुन। ४ मा. सोइ, शेष में 'नृप (न्रप-उ स.)। ५. उ स. कान।

(२) १. मो ना आप आप, म. आपु ही आप। २. धा ना अ. गय (गये-धा.) गेह परानहु, उ. स. गए ग्रेह परान, फ. गहिम गहि परवानह, म गये ग्रह रानहु।

(३) १ धा. जोगिनपुर, उ स. ना. द. अ जुग्गिनिपुर। २ म जुगनिपुर, मो. जागु (=जागउ) चहुवानहु, धा. अ. फ जगयो चहुवानहु, ना. म. जग्यौ चहुवांनह, उ. स. जग्गत चहुवांन।

(४) १. मो. भयी, ना. म. भई। २ धा निसि च्यारि जाम, म. निवार जाम, फ निसि चारु जाम। ३. मो गूनह, ना. म. जुग मानह, उ स जुग मान, अ. फ. जम (यम-फ.) बानह।

[२९]

कवित्त— राज मज्झि[१] संभयउ[*२] पट्ट[३] दरबांन परठ्ठिय[४]। (१)
बहुर[१] सव्व[२] सामंत[३] मनउ[*] लग्गिय[४] सिर लठ्ठिय। (२)
रहयउ[*१] चंद बिरदिआ[२] बिमुष मुष पग न सरक्यउ[*३]। (३)
गिम्ह[१] तेज वर भट्ट रोस जल षिनि षिनि[२] सुक्यउ[*३]। (४)
रत्तिरी[१] कंत जग्गतरइ[*२] चल्ली[३] घरिघ्घरि[*४] बत्तरी। (५)
दाहिमउ[*१] दोस लग्गउ[*] परउ[२] मिटइ[*३] न कलि सु[*] उत्तरी[४]॥ (६)

अर्थ—(१) राज [=सभा] में होकर पट्ट दरबान [द्वार पर] परिस्थित हुआ। (२) सब सामंत लौट पड़े थे, मानो उनके सिर पर लाठी लगी थी। (३) चन्द बिरदिया मात्र वहाँ रह गया था,

उसने मुख फेर कर पैर [तक] नही सरकाया था। (४) भट्ट चंद ग्रीष्म के [उग्र] तेज मे ,सूखते हुए जल के समान पृथ्वीराज के रोष से क्षण प्रतिक्षण सूख रहा था। (५) रात्रि-कान्त (चद्रमा) के जागते रहते (आकाश मे स्थित रहते) ही घर घर यह वार्ता चली कि (६) "दाहिमा (कयमास) को [कोई] बड़ा दोष लगा है—उससे [कोई] घोर अपराध हुआ है—और वह कलि (कल्मप) [उसके सिर से] उतर कर मिट नही रहा है।"

पाठान्तर— *चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हे।

(१) १. मो राज मझ्झ, धा राज मज्झि, म राजमज्झि, अ फ राज महल, स राजन मझ। २ मो. सभया (< सभयु), धा समझो, स. सपरिय, फ सप्रन, अ सप्रल्य, म मपति, उ सभरिय, ना सभयौ (< सभयउ)। ३. धा उपर, अ, फ उट्ट। ४. मो परटीय।

(२) धा. बाहुरि (=बाहुरइ), अ बहुरि, फ. बौहुरि, ना द उ. स म नहुरे। २ धा सवि, फ राज। ३ अ फ मावत। ४ मा मनु (=मनउ) लगि, धा अ फ मनहु (मनौह–फ) लग्गिय, ना. म मत लग्गिय, द. उ. स मत भग्गिय।

(३) १. धा रह्यो, मो रह्यु (=रह्यउ), शेष मे 'रह्यौ' या 'रह्यो'। २ धा अ फ ना द म उ स. बरदाइ। ३. धा पगु न सरक्यो, मो पग न सगक्यु (< सरक्यउ), म पग न रुक्यौ, द म उ स. पग न सरक्यौ, ना. पगा न सरक्यौ।

(४) १. मो. अ फ. गिंभ, म ग्यमु, उ. स. ग्रभ्म, ना डिंभ। २ धा रोस जल षिनि षिनि, म राम जल पषनि। ३. धा. सुक्यो, मो उ. सुक्यु (=सुक्यउ), म. सुक्यौ, ना. सुक्यो, शेष मे 'सुक्यो'।

(५) १ मो. रतिरि, म. रातरी, इनके अतिरिक्त सभी में 'रत्तरी'। २. धा जागत्तरी, मो जगतरि (< जग्गत रइ), अ. फ. जागत रह, फ जागतरु, म जगतर, ना जग्गत्तरं, द उ स जागतरं। ३ ना. होइ, उ. स. भई। ३ मो. म घर घर, अ फ ना घरग्घर, धा घरे घरि (=घरि घरि), उ स. घर घर (=घरग्घर)।

(६) १. मो दाहिमु (=दाहिमउ), धा. उ स दाहिम्म, ना दाहिमौ, म अ. फ. दाहिमैं। २ मो. लगु (=लुगउ) षरयु (=षरउ), धा दासी सिरिस, अ. फ. लग्गो (लग्यौ–अ) षरउ, (षरा–फ), म. लगौ षरौ, ना. उ. स लग्यौ षरौ। ३. मो. सु मिटि (=सु मिटइ) द मिंट, शेष सब में 'मिट'। ४ धा. कलिसुत उत्तरी, मो कलिसू (=सु) उत्तरी, अ. फ. कलि सौं उत्तरी, द कलिसूं उत्तरी, म. कल सम उत्तरी, ना कलि सो उत्तरी।

टिप्पणी—(१) परिट्ठ < परि+स्थ। (४) गिम्ह < ग्रीष्म। सुक्क < शुष्। (५) रत्तिरी < रात्रि। वत्तरी < वार्त्ता।

[३०]

आर्या— *उग्गिअ*[×] *भान*[१×] *पायान*[२×] *पूर*[३×] । (१)
बज्जिय[×१] *देव* *दरि*[२] *संष* *तूरं*[३] ॥ (२)
कलत[१] *कयमास*[*२] *चडि*[३] *वरणसाला*[४] । (३)
देव *वरदाइ*[१] *वर* *मंगि* *बाला*[२] ॥ (४)

अर्थ—(१) पादो (किरणो) से पूर्ण भानु उदित हुआ, (२) देव द्वार पर शख और तूर्य बजने लगे। (३) कयमास की कलत्र (स्त्री) वर्ण शाला पर चढी। (४) [और] देव (महादेव) के वरदायी (चन्द), से वर (मृत पति) माँगने लगी।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है।
× चिह्नित शब्द फ. में नहीं हैं।

(१) धा. उग्गियं भानु, अ. उग्गिय पालान, स. उग्गिय मान, शेष में 'उग्गिय भान'। २ धा पायाल। ३. स. पूर।

(२) १. मा बाजिय, शेष में 'बज्जिय' । २. म वदामि, ना दवदारे, शेष में 'देव दर' । ३ स तूर ।

(३) १. अ फ. कलब, द. उ स. कलत्र, म कलि । २. धा. अ. फ कैत्रास, मो किमाम=कयमास) । ३. मो. च्चडि, शेष में 'चढि' । ४ स. साल ।

(४) १. मो. अ ना. द देवि वरदाइ, धा देवि वरदायि, म. फ. देव वरदाइ, स वरदाइ देवि, [अन्यत्र हर से 'वर' प्राप्त होने का उल्लेख मिलता है—यथा ३ २३, ३. २४] । २. स. बाल ।

टिप्पणी—(१) पाय < पाद=किरण । (२) तूर < तूर्य=तुरही । (३) कलत < कलत्र=स्त्री ।

[३१]

कवित्त— जा जीवन[1] कारणइ[2] धर्म[3] पालहि[4] मृत[5] जालहि । (१)
जा जीवन[1] कारणइ[2] अथ्थ स[3] चित्त[4] उबारहि । (२)
जा जीवन[1] कारणइ[2] दुरग रष्षहि सब[3] अप्पहि[4*] । (३)
जा जीवन[1] कारणइ[2] भूम नव ग्रह करि[3] कप्पहि[*4] । (४)
जउ[*1] जीवन[2] साई अप्पनउ[*3] नृपति बहुत वचनह भउ[4*] । (५)
सुक्कि[1] सरोवर हंस गउ[2] सुकिलि उडउ[*] अंधार भउ[*3] ॥ (६)

अर्थ—(१) [उसने कहा,] "जिस जीवन के कारण ही [मनुष्य] धर्म का पालन करता और [उसके द्वारा] मृत्यु को जलाता है, (२) जिस जीवन के कारण ही [मनुष्य] अर्थ—धनोपार्जन [के साधनादि]—से चित्त को उबारता है, (३) जिस जीवन के कारण ही मनुष्य सब कुछ [शत्रु को] अर्पित करके भी दुर्ग की रक्षा करता है; (४) जिस जीवन के कारण ही वह भूमि नव ग्रह [की शांति] के लिए संकल्पता (देता) है, (५) यदि वह मूल्यवान जीवन है, तो नृपति के बहुतेरे वचनों का भी भय होता है, (६) [किन्तु] सरोवर सूख गया, तो हंस (प्राण—सूर्य) भी चला गया और हंस (प्राण—सूर्य) के सिमट कर (पंख बटोर कर) उड़ जाने पर अँधेरा हो जाता है।"

पाठान्तर—(१) १. फ. जीउन । २. मो. कारिण (=कारगइ), ना कारणइ, धा. फ. म. कारनै, द कारणह, उ. स. कारनह, अ. कारणै । ३ उ. स. द ध्रम्म । ४. मो. पालिहि, ना. पार । ५ म. पालै, अ. मृतु, म. म्रितु, स. फ. चित्त । ६. मो. जालिहि, धा. जालहि, ना. रहि, शेष में 'टारहि' (टालहि-फ.) ।

(२) १. फ. जीउन । २. मो. कारिनहि, ना कारणहि, धा फ. म. कारनै, द कारणह, उ. स. कारनह, अ. कारणै, म. फ कारनै । ३ अ. फ अथ्थ सौं, ना. म अथ्थि धन, द. अथ्थि दान, उ स. अथ्थि दै । ४. ना द. म. मूल ।

(३) १. फ. जीउन । २. मो कारनिहि, द. कारणह, उ. स. कारनह, अ. कारणे, म. फ कारन, ना. में 'जा जीवन०' लिख कर छोड़ दिया गया है । ३. मो दुरग रष्खिहि सब, अ. फ दुर्ग रष्षै सबु (अव—फ), ना द. म. उ. स. दुरग (द्रग्ग—ना.) हय देसति । ४ अ. फ अप्प, म दिजहि ।

(४) १. फ. जीउन । २. मा कारनिहि, द. कारणह, उ. स. कारनह, अ. कारणै, म. फ. कारनै, ना में 'जा जीवन०' लिखकर छोड़ दिया गया है। ३. उ. स. ना द अ. फ. होम करि नवग्रह म., होम नव ग्रह । ४. मो. कंपिहि (=कप्पिहि,) ना. उ स. जप्पहि, अ. फ जप्प, म. कपिजहि ।

(५) १. मो जु (=जउ), धा जे, म जो, ना. उ. स अ. फ. जा । २. फ. जीउन । ३. धा. साईं अप्पुनो, मो. साइ अपनु (=अपनउ), ना. साईं अप्पनौ, अ. फ. सैं अप्पनौ, म. सोइ अप्पनै, स. साईं सुपन, उ. साईं सुप्पनौ। ३. मो. बहु ला वचनह सु (=भउ), धा. अ. फ. बहुत जच्चहि (जवंवै—फ.) सभो (—सभौ अ. फ.), ना. उ. स. बहुत जाचिय (जच्चिय—ना.) अभौ (भायौ=ना.), म. वौहति विव जीयै ।

(६) १. मो. सुकि (=सुक्कि), धा सुक्यो, उ. स. सुक्कोसु, ना. द. म. सुकै, अ. सुकयउ, स. फ. सुकयउ

धा. गउ, मो गु (=गउ), ना. म उ स. अ. फ. गौ । ३. मो. कलि उड्डु (=उड्डउ) अधियार भु (=भउ), धा. अ. फ कलि वुड्ड (वुडढै–धा) अधियार भो, ना कलि बुडड अधियारौ भयौ, उ. स कलि बुड्ढै अधियार भ, म कलि अधियारै भर्जाय ।

धा. में प्रथम चार चरणो का पाठ निम्नलिखित है : ऐसा लगता है कि प्रथम चरण के खडित होने के कारण पाद-पूर्ति के लिए धा के चतुर्थ चरण की कल्पना की गई है:—

जा जीवन कारन अत्थि धन मूल उबारहि ।
जा जीवन कारन होम कृार नव ग्रह टारहि ।
जा जीवन कारन दुग्ग दत भूवर सज्जहि ।
जा जीवन कारन समर तजि नर भर भज्जहि ।

टिप्पणी—(१) जाल < ज्वालय् । (२) अथ्थ < अर्थ । (३) अप्प < अर्पय् । (४) भूम < भूमि । (५) साई < साति= सातिशय पदार्थ, मूल्यवान पदार्थ । (६) सुकिलि < संकल् ।

[३२]

कवित्त— मातु[१] गब्भ[२] वास करिवि[३] जंम[×] वासर[×४] वसि[×] लहगउ[×*५] । (१)
षिन[१] लग्गइ[*२] षिन[३] रुदइ[४] मुदइ[×*५] षिन[×६] हसइ[×*]अभग्गउ[×*७] । (२)
वपु विसेस[१] वड्ढिअउ[२] अत डढ्इ[३] डर डरयउ[४] । (३)
कच तुचा दत न रार[१] धीर[२] किम[३] किम उब्बरयउ[४] । (४)
मान भंगु मुक्कइ[*] सयल[१] लषित निमिष्ष नि मिट्टहि[*×२] । (५)
पर काज[१] आज[२] मंगउ[३] नृपति कहु[४] त[५] प्राण[६] पमुक्कहि[*७] ॥ (६)

अर्थ—(१) "मनुष्य माता के गर्भ मे वास करने अनंतर दिन के वश (दिन पूरा होने पर) जन्म लाभ करता है। (२) एक क्षण वह [ससार मे] संलग्न होता है तो दूसरे क्षण वह [उससे खिन्न होकर] रोता है, एक क्षण वह मुँद जाता है (मौन हो जाता है) तो दूसरे क्षण वह अभागा हँसने लगता है। (३) [उसका] वपु (शरीर) विशेष रूप से संवर्धित होता है, किन्तु अंत में वह जलाए जाने के डर से डरता है। (४) कच, त्वचा, और दंत [आदि] को रार (झझटे) छोड़ कर धीर किसी न किसी प्रकार उनसे उबरता है। (५) इसलिए तू [पृथ्वीराज से याचना करने मे मान-हानि होगी] इस समस्त मान-भग [की भावना] को छोड़, क्योकि जो लक्षित (निर्धारित ?) है वह एक क्षण के लिए नही मिटेगा। (६) दूसरे के लिए तू आज नृपति से याचना कर; यदि तू उससे कहे तो [कयमास का शव लेकर] मैं प्राणो को मुक्त करूं।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. द. मंत। २ धा. अ फ ना. द गर्भ, म. उ. स गरभ। ३. मो सचरीय, धा वास करिय, अ. फ. बस (बसि-फ) करिवि (करवि–फ.), उ. स बस करी, ना. बसि करिय, द. बसि करी, म. संभरीय । ४. मो. जंम वासर, अ. फ जेम मुक्कइ, ना म. उ. स जम्म वासुर (वासर–ना)। ५. मो. बिसी लहगु (=लहगउ), उ स. बस लब्भय, ना. वस लग्गौ, म. विस लब्भै, अ. फ. सुरसालहं ।

(२) १. धा. अ फ षत, म. षितु । २. मो. लगि (=लगइ), धा. लग्गे, ना लग्गौ, अ. फ. नग्गइ, उ. लग्गि, म. लगइ, स. ननग्गि। ३. धा अ. फ. षन, स. षि, म षितु । ४ मो. रुदि (=रुदइ), धा रुद, अ. फ रुदइ, ना. रु ं, उ. स. द. रुदाइ, म. रुदै। ५. मो. मुदि (<मुदइ), ना. मुषैं, द. उ. स. मुदय, अ. फ.

रुदइ, म. में यह शब्द नहीं है। ६. अ फ. घन, म षितु। ७ मो हसि (=हसइ) अभगु (=अभगउ), ना. अ. फ. हस बिहालह, ना. हसे अभग्गौ, ड. स. हस अलभ्भय, म. दहि सत गभ।

(३) १. मो. वपु वसेष, धा वपु विसेस, ना. द. अ. फ. वपु विसेष, उ. स. वपु विमषषु, म. विष बिसेष। २. अ. बढियउ, फ. बढियौ, मो. वढियु (=वढ्ढियउ), धा. द उ स वड्ढयो, म वढय। ३. मो. डढि (<डढि), धा० डड्ढे, ना. दहइ, उ. स. रुढ्ढह, म. दढ, अ. दढ्ढइ, फ दिढ्ढइ। ४. धा. उ स. डरया, म. डरय, अ डरियउ, फ. डरयौ।

(४) १ मो. चकित चाद त‌‌ रार, धा किंचित चद जु.रारि, अ. फ किंचित चाद जुरार (रारि–फ), ना द. उ. स. कच तुच (तुव–ना.) कंत जु (ज–ना), रार म. कबि चद तु जुर धार। २ धा अ. फ. ना उ स. धार (धारि–फ.)। ३ धा. म फ. करि। ४ धा. उ. स. उच्चरयो, अ. फ. उच्चरयउ, म. ऊचरय, ना उब्बरयौ।

(५) १. मो मान भगु मुकि (=मुकइ) सयल, धा मनु मगि भूमि मुक्के सयल, अ. फ. मनु सम्म गम्म छकइ सकल, द. ना मन भग मग्ग मुक्कहि सयल, उ. स मन भग मग्ग मुक्कत सयल, म मान भग सोग मुक्कहि सयल। २. मा. लषित निमिष नि मिटहू, धा अ फ. लिषत नामिखु जू···हइ (<हि), अ. फ लिषत (लिषति–फ.) निमष्षु (निमुष्षु–फ.) ज नष्षिहइ (नुष्षिहइ-फ.), द ना लिषत निमेष न नषियें (निषियें–ना.), म लिषतु निविषइ चुकीयें, उ. स लिषत निमेश न चुक्कयौ।

(६) १. धा. अ. फ. ना. उ. स पर कज्जु (परि कज्ज–फ. ना उ स)। २ धा. अ. फ. उ स. अज्जु। ३ मो. मगू (<मगु=मगउ), धा. मगहि, अ. फ. मगउ, म. मग्गौ, ना मंग, उ स मगौ। ४ मो. कह (कहु ?) धा. अ फ सकइ, ना. उ. स. सकै, द म. सकहि। ५ द उ. स न। ६. अ. फ प्रमान। ७. मो. पमूकहि (=पमुकहि), धा. पमुक्कइइ (<पमुक्कहि), अ. फ. पमुक्किहइ (<पमुक्किहि), म द. पमुक्कियँ, ना मुक्कीय, उ. पमुक्कयौ, स. षमुक्कयौ, ना. मुक्किये।

टिप्पणी (१) गम्भ<गभ। जम<जन्म। लह<लभ्। (२) लग्ग<लग्। मुद<मुद्रय्। (३) डढ्ढ<दग्ध। (६) पमुक्क<प्रमुच्।

[३३]

कवित्त— *राषि[१] सरणि[२] सहगवनि[३] मरन मंगल अपुव्व[४] किय। (१)*
दरणि[१] पेषि[२] दरबान[३] रुक्कि सक्किय[४] न मग्गु दिय। (२)
जागि जुलन[१] पृथीराज नयन नयनन जब दिष्षउ[२]। (३)
अंतकु कर रध्धांमु[१] त्रइग्गुणि[*] त्रियतनु[२] लिष्षउ[३]। (४)
*बोलिअउ[*१] वयन सु दयन हिय[२] कवन कम्मु[३] कवि अच्छयउ[*४]। (५)*
*तव देव कितिय कमलिय कमल[१] धरणि तरुणि[२] तनु मुक्कयउ[*३]॥ (६)*

अर्थ—(१) चन्द ने उस सहगामिनी (पति के शव के साथ भस्म होने वाली कयमास की स्त्री) को शरण मे लिया, जिसने अपूर्व मगल [का शृगार] किया था। (२) दरबान भय के साथ देखकर उसे रोक न सका, उसने उसे मार्ग दिया। (३) जलते हुए (क्रुद्ध) पृथ्वीराज ने जाग कर अपने नेत्रो से [जब उस सहगामिनी स्त्री के] नेत्रो को देखा, (४) तो अतक (काल) के करों द्वारा राँधे हुए पकवान के समान उसने उस स्त्री के त्रिगुण तनु को जाना। (५) अत्यन्त दया-पूर्ण हृदय से वह बोला, "हे कवि, कौन-सा कार्य है?" (६) [चन्द ने कहा,] "देव, तुम्हारी कीर्ति [रूपी मतवाले हाथी] ने कमल (कयमास) को कवलित कर लिया। इस लिए धरणी पर यह तरुणी (स्त्री) शरीर त्याग रही है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) धा. म उ स ना. द. अ रष्षि, फ. रक्षि। २. धा. म. ना द. फ सरन (सरण–ना. द.)। ३ धा. गह गमन, मो. म. सहगवन, फ. सहि गउनि। ४. मो. मंगल अपूरब, म. मगलु जु अपु।

(२) १ मो. दरगा (< दरण), धा. डरन, अ. फ दारुग, द डरण, म. वरनि, उ स दरनि, म. घरने। २. मो. पेषि, ना. दिष्य, शेष में 'पिष्षि'। ३. उ. स. दरबार। ४. धा. सक्कि, मो. सुकिय, अ. फ. सक्यउ, द. सक्यो, म ना. उ स. सक्यौ।

(३) १. धा. जग्गि झुलन, अ. फ. दिष्षि ज्वलन, ना. जग्गि जुगनि, द. उ. स. जग्गि जलनि (जलणि –द.), म. जागि जुलनि। २. मो. दिक्षु (दिष्षु=दिक्खउ), धा. दिष्यो, ना. द. म. उ. स दिष्यौ।

(४) १ धा. अतुक करि वर धम्म, ना. अ. फ. द. अतक कर वर धर्म (भ्रम–द., धर्म्म–ना.), म. अतक करव धरयति, उ. स. अति करुना रस वीर। २. मो. त्रिगुग (=त्रइगुण) त्रियतनु, धा. त्रइय गुन त्रिय सवि, अ. फ. कम्प त्रियगुन सम, उ स. करी सकर रस, म. काम त्रिगुन त्रिय; द. कम्म त्रिगुन त्रि, ना. कर्म्म त्रिग्गुन त्रिय। ३. मो. लिक्षु (=लिक्खउ), धा. लष्यो, ना म. द. उ. स. लिष्यौ।

(५) मो. बोलिउ (=बोल्लिअउ), धा. बुल्लयो, अ. फ बुल्लियौ, उ. स बुल्यौ न, ना. बुल्यौ सु, म. बुल्यो जु। २. सू (=सु) दयन हिय, धा. तब दीन हुइ, ना. म. उ. स. तब दीन हुव (हुअ–स.), द. तव दैन हुव। ३. मो. कवन काम, ना द. कवन कंम, अ. फ. कवन काज, उ. स. कनक काम, म. वकविनि काज। ४. मो. अछयु (=अछयउ), ना. द. उ. स. धा. अ. फ. अच्छयो, म. इछियौ।

(६) १. धा. अ फ. तबहि देव किन्तिय कलिय, ना. द. उ. स. तुम (तव–द. ना.) देव किन्ति कुहलिय कमल, म. तबु देवि कित्त कहनह विमल। २. ना. धरणि तरणि, उ स. धरनि धरनि, अ. फ. धरनि तरुनि, म. धरानेत। ३. मो. तनु मुकयु (=मुक्कयउ), धा तिन मुच्छयो, अ उ. स. तन मुक्कयो, फ. तरु मुक्कये, ना. जन मुक्कयो, म. रति मुकीयौ।

टिप्पणी—(१) अपुव्व < अपूर्व। (२) दर=भय, डर। पेष < प्रेक्ष्। मग्गु < मार्ग। (३) झुल < ज्वलन। (४) रद्ध=राँधा हुआ, पक्व। (५) वयन < वचन। कम्म < कर्म। अच्छ < अस्। (६) कमलिय < कवलित। मुक्क < मुच्।

[३४]

गाथा— बाला मंगइ वरयो[१] काउ[२] वासं ति[३] भट्ट सरनांइं[४]। (१)*
तुव गति कछु मन संभरिवइ[१] संभरिवइ* त* संभरु राय[२] ॥ (२)*

अर्थ—(१) "कापोत (कपोत के रंग का) वस्त्र धारण करके भट्ट के शरण मे आई हुई बाला, [हे पृथ्वीराज,]" चन्द ने कहा, "तुम से [अपना] वर (पति) माँग रही है। (२) उसके मन मे कुछ तुम्हारी गति है, [अतः] वह, हे राजा, 'सांभर पति' 'साभर पति' स्मरण कर रही है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. बाला मगि (=मगइ) वरयो, धा. अ. फ. बाला मग्गति (मग स–फ.) वरयो, ना. द. बालानि (=नइ ?) मग वरयो, उ. स. बालान मग वरयौ, म बाला मंगि सवरयो। २. अ. काओ, फ. कोआ, ना. कायो, म. में नहीं है। ३. म. बासत। ४. धा. सिर जाइ, द. उ. स. सिरयाई, म. अ. फ. ना सिर आइ।

(२) १. मो. तुव गति कछु मन सभरिवि (=सभरिवइ), धा. द. उ. स. ना तुंअ ग त संभरवइ (सभरवै– उ. स.), अ. फ. ना मुव गति सभरई, म. नि तुव गति सभरवै, ना. ना तुव गति संभरिवैं। २. मो. शंभवै न संभरुराय (< संभरिवै त संभरुराय), धा. सभरव राय रायेसु (राजेस–ना.), उ स. अ. फ. ना सभरिवैं राय रायस, म. संभरिव राइ राजेस।

टिप्पणी—(१) काउ < कापोत। (२) संभरिवइ < शाकभरी पति।

[३५]

दोहरा— वछिय[१] किति बोलिय[२] वयन ढिल्ली[३] पुरह[४] नरिंद[५] । (१)
दाहिम्मउ*[१] दाहिर हरो[२] को कढ्ढइ*[३] कवि[४] चंद ॥ (२)

अर्थ—(१) ढिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) ने कीर्त्ति की वांछा की, [इस लिए] वह बोला, (२) "दाहिमा (कयमास) दाहिर (गर्त?) के द्वारा अपहृत हो चुका है, उसे कौन निकाल सकता है ?"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
(१) १. धा बढ़िय, उ. स पढ़िय, ना. वढिढ, फ वढढी, शेष में 'बढिय'। २ धा अ फ ना. द उ. स बुल्लिय, म. बुले। ३ म ढिलीय। ४ धा. फ. पुरहि। ५ म नरिंदु।
(२) १. मो दाहिमु (=दाहिमउ), शेष में 'दाहिमो' या 'दाहिम्मौ'। २ धा म उ. स दाहर जहर, अ फ दाहन गहर, ना दाहिन गहर। ३ मो को काढि (=काढइ), धा को कढ्ढइ, उ स म अ फ. कढे (<कढि=कढइ), ना. द. को कढ्ढ (कटटॅ–ना), द कहै न बनै। ४ म कवि विनै।
टिप्पणी—(१) वछ < वाञ्छ्। किति < कीर्त्ति।

[३६]

कवित्त— रावन[१] किनि गड्डिअउ*[२] क्रोध+ रघुराय+[३] बान+ दिय+ । (१)
बालि+[१] किनि*+[२] गड्डिअउ*+[३] सु त[४] सुग्रीव जीव[५] लिय । (२)
चंद किनि× गड्डिअउ×*[१] कीअ* गुरुदार[२] स किल्लउ*[३] । (३)
रवि न पंड[१] गड्डिअउ*[२] पुच्छि[३] सह देव[४] पहिल्लउ*[५] । (४)
गड्डउ*[१] न इंदु[२] गोतम[३] रषि[४] बरु[५] सराप[६] छुडिय जिनी[७] । (५)
इह[१] रोस दोस पृथिराज सुनि[२] मम गड्डइ[३] संभरिधनी[४] ॥ (६)

अर्थ—[चंद ने कहा] "(१) रावण को किसने गाड़ा था ? क्रोध मे रघुराज (राम) ने उसे वाण ही तो दिया (मारा) था। (२) बालि को किसने गाडा था ? उसका सुग्रीव ने जीवन ही तो लिया था। (३) चन्द्रमा को किसने गाड़ा था ? उसने गुरु-पत्नी से केलि की थी। (४) पाण्डु ने [भी] रवि (सूर्य) को नही गाड़ा था; हे देव, पहले [के ऐसे प्रसगो को] सभा से पूछे। (५) इन्द्र को गोतम रिषि ने नही गाड़ा था, भले ही जिन्होने उसे शाप छोडा (दिया) था। (६) हे पृथ्वीराज, सुनो, [ऐसे आचरण पर] इतना रोष करना दोष है; कयमास को, हे सॉभरपति, मत गाड़ो।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
+ चिह्नित शब्द द. में नहीं हैं।
× चिह्नित शब्द ना. में नहीं हैं।
(१) १. फ. राउन। २. धा. किन गड्डयो, मो. किनि गडिउ (=गड्डिअउ), अ. म. किनि गड्डियो, शेष में 'किन गड्डयो' (गड्डयौ–फ. उ. ना. स.।) ३. म. रघुनाथ।
(२) १. फ. बलि, म. बल, ना. बाल। २. मो. किन, धा. अ. किन, फ. ना. किंन, उ. स. सु किन, म. किनह, ना. किन। ३. मो. गड्डिउ (=गड्डिअउ), फ. गडीयौ, शेष सब में 'गड्डयो'

(गड्डयौ-फ. ना. उ. स.)। ४. ध. तदिन, स. त्रीय, अ. फ. म. सुत्रिय, ना. द. त्रीय लगि । ५. उ. स. जोय, फ. जीउ ।

(३) १. मो. चंद किनि गड्डिउ (=गड्डिअउ), फ. चंद न किन गडीयौ, शेष में, 'चंद (चंदु-म.) किन गड्डयो (किन्ने गड्डयो-स.), । २. मो. अगुरुदार, धा. कियो गुरुवार, फ. गुरुव गुरुवार, शेष में 'कियो गुरुवार'। ३. मो सकिलु (=सकिल्लउ), धा. सकिल्यो, ना. सहिल्लीय, द. सहिल्लय, उ. स. सहिल्लइ, म. सकिलोय, धा. अ. फ. सकिलो ।

(४) १. धा. रवि किन, अ. म. रमि न पंडु, ना. रवनि पडु, फ. उ. स. रवि न पंग। २. मो. गडिउ (=गड्डिअउ), शेष सब में 'गड्डयो' (फ. उ. स.ना. गड्डयौ,)। ३. अ. फ. तुच्छ, फ. म. पुच्छ, द. उ. स. पुच्छि । ४. मो. सहदेवि, शेष सभी में 'सहदेव' (सहिदेव, उ-फ.)। ५. मो. पहिलु (=पहिलउ), धा. अ फ. पहिलो, ना. पहिलोय, स. उ. स. पहिलइ, म. पहलीय, द. पहिलय ।

(५) १. मो. गडु (=गडउ), शेष में 'गडयौ' या 'गडयो'। २. धा. इंद, म. इंदु, उ. स. अ. फ. इंद्र। ३. अ. गउतम। ४, धा. म. उ. स. रिषइ, फ. रिषहि, ना. रिषीय। ५. धा. अ. फ. वहु, मो. वर, उ. स. सिव। ६. ना. सराधि। ७. धा. छंडयौ जिनिय, उ. स. छंडन जनी, म. वंध्यौ जनीय, अ. फ. छंडयौ जनो, ना. छंडे जनी ।

(६) १. धा. उ. स. इन, म. द. इहि, ना. रहि। २. धा. रोक्ष दोस चहुवान तुव। ३. धा. फ. मम (नन-फ.) गड्डसि (गडिस-फ.), अ. नन गड्डहिं, ना. मम गड्डहिं, उ. स. मति गड्डय, म. मम गडिस। ४. धा. म. संभरि धनीय, फ. संभरु धनी ।

टिप्पणी— (३) किलु < केलि । (४) सह < सभा। (५) इंद < इंद्र। रषि < ऋषि ।

[३७]

दोहरा— तउ* अप्पउं कयमास*[१] तु हि[२] मिटिहि उरह[३] अंदेसु । (१)
दिष्षावइ[१] पहु पंगुर[२] जइ[३] जयचंद नरेसु ॥ (२)

अर्थ—[पृथ्वीराज ने कहा] "(१) तुझे कयमास को तब अर्पित करूँगा और तभी [मेरे] हृदय का अंदेशा मिटेगा, (२) जब तू पंगुल-प्रभु जयचंद नरेश को मुझे दिखावेगा।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. तु अपु किमास (= तउ अप्पउ कयमास), धा. तउ अप्पउं कैवास, उ. स. तौ अप्पों कैमास, म. तौ अप्पु (=अप्पउं) कैमास, फ. तौ अतौ कैवास, अ. तौ अप्पौ कैवास, द. तौ अप्पौ कैमास। २. धा. अ. म. ना. तुहि, मो. फ. तोहि (<तुहि)। ३. धा. मिट्टइ उरहिं, अ. फ. मिट्टहि उर, ना जो मेटहि उर, म. उ. स. जो (जौ-म.) मेटै ।

(२) १. धा दिखवावई, मो. दिषावि (=दिषावइ), म. देषावैं, ना. उ. स. दिष्यावहि। २. ध. पहु पंगुरो, अ. ना. उ. स. पहु पंगुरौ, म. पहु पंगरौ, फ. पहु पंगुरउ। ३. उ. स. तो। मो. जु (=जउ), धा. जइ, द. उ. स. जै, अ. फ. जई, ना. म. जौ।

टिप्पणी—(१) अप्प < अर्पय्। अंदेस < अंदेशा (फा०)। (२) पहु < प्रभु। जउ < यदा।

[३८]

दोहरा— षिन त मनहि[१] धीरज धरहु[२] अरि दिष्षत[३] तिहि[४] काल । (१)
अति बरबर बोलइ* नहीं[१] सु किम[२] चालइ*[३] भूआल[४] ॥ (२)

अर्थ—[चंद ने कहा,] (१) "[इस] क्षण तो मन मे धैर्य रक्खो, इस समय तुम्हारा शत्रु देख रहा है—तुम्हारे कन्नौज-आक्रमण की बात जान गया है। (२) बहुत बर्बर [होकर] न बोल; बता कि तू, हे भूपाल, किस प्रकार [कन्नौज] चलेगा।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. छिनकु मनुहि, अ. छिनकु मनह, फ छिनक मनहि, द. ना. षितुकु(षिनक–ना.) न मन, म. षिनक तम्ह, उ. स. षिनक न मन। २. धा. रहे, द. उ स. वरहि, अ. करइ, फ. करौइ। ३ मो० अर दोपंति, धा. ना. अरि दिष्षत, अ. म. स. अरि दिष्षित, फ. उ. स. अरि दिष्षन। ४. धा. फ तिंहि, स. तिन, उ तंति।

(२) १ मो. अति बरबर बोल्लि (= बोलइ) नही, धा अति बलि सूं बल ना कह्यौ, अ. फ. अति बरुबरु (बरबर–फ) बुल्लहु नही, ना. द. अति बरबर बुल्लै नही, म. अति बरबर बुल्यौ नहिन, उ. स. अति बरबर बुल्ले नहीं। २. धा० किय, अ. फ. किम, म. सो किम। ३. मो. चालि (= चालइ) धा. चल्लइ, फ. चलौह, ना. चलिहै, द. चलहै, अ. म उ. स. चलहु। ४. अ. फ. ना. भूपाल, द. भोपाल, म. भुवाल।

टिप्पणी—(१) षिन < क्षण।

[३९]

मुडिल—　*चलउ[१] भट्ट[२] सेवग होइ सत्थह[३] । (१)*
जउ बोलउं*[१] त हत्थु तुह मत्थह[२] ॥ (२)*
जबह राइ जानइ[१] संमुह हुअ[२] । (३)*
तब अंगमउं[१] समर दुहुनि भुअ[२] ॥ (४)*

अर्थ—[पृथ्वीराज ने कहा,] "(१) हे भट्ट (चंद), मैं तुम्हारे साथ सेवक हो (बन) कर चलूँगा। (२) यदि [उस समय मैं कुछ] बोलूँ तो मेरा हाथ तुम्हारे मस्तक पर है—मैं तुम्हारी सौगन्ध खाता हूँ। (३) जभी राजा (जयचंद) मुझे सम्मुख हुआ जानेगा [और युद्ध करेगा], (४) तब मैं दोनो भुजाओ पर युद्ध ओढ़ूँगा।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) धा. चलौं, मो० चलु (=चलउ), फ. चलउ, द. चल्यौ, अ. चलौं, ना. चलौ, उ. स चलौं। २. धा. अ. फ. चंद। ३. धा. अ. फ. सत्थह सेवग (सेवक–अ. फ.) सुअ (तुव–अ. फ.), द. सेवक हुइ सथ्थहं।

(२) १. मो. जु (=जउ) वोल (< बोलु=बोलउ), धा. जो बुल्लौं, अ. फ. जौ बुल्लउं, द. अब जौ बोलु, उ. अह जौ बोल्लूं, ना. जौ बोलो, स. जौ बोल्लू। २ धा. तउ अथ्थि डुले धुव, अ. फ. त अथ्थि डुल्लइ धुव, द. त हथ्थ तुम मथ्थह, ना. तो हथ तुव मथ्थह, उ. स. तो हथ तुम मथ्थह।

(३) १. मो. जबह राइ जानि (=जानइ), धा जब उह राय जानि, अ. फ. जब वह जानि मोह, फ. जब जानूह मोह, ना. जब वासौं जानि हौ, स. जबह जानि। २. धा. समुहो हुअ, मो. संमह हुअ, अ. फ. संमुह हुइ, ना. सुमुह हुव।

(४) १. मो. अंगमु= (अगाउ), धा. अ. अंगवउ, फ. अंगउ, द. तब अंगवुं, उ. स. तब अंग करौं। २. मो. त समरि दुह भूअ, धा. समर सम्हा हुअ, उ. स. सम्मह दोउ भुअ, अ. समर सह निझइ, ना. समर दुर हरि भुव, फ. समर निझर भूव, द. समर दुहुनि भुव।

म में यह रसाइनौ हे और पाठ यह है :—

चल्यौं चदकवि भटहू सेवक सथ तूव। जो बुलति मुष वन तु डुलति अथ धूव।
जो वस राउ सु जानि सम सम्हौ हुवौ। परिहा तौ अग सम बल दषिह चूव भूह ल्यौ।

टिप्पणी—(१) सेवग < सेवक। (३) समुह < समुख।(४) भुअ < भुजा।

[४०]

दोहरा— दोइ[१] कंठ लग्गिय गहन[२] नयनह जल गल न्हानु[३]। (१)
अब जीवन[१] वंछिहि[२] अधिक कहि[३] कवि[×] कोन[४] सयानु[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) दोनो (चंद तथा पृथ्वीराज) कस कर गले मिले और नेत्रों के गिरते हुए जल से दोनों ने स्नान किया। (२) [पृथ्वीराज ने कहा,] "हे कवि तुम्ही कहो, अब [जयचंद के द्वारा अपमानित होने पर] कौन समझदार व्यक्ति अधिक जीवन की वाञ्छा करेगा ?"

पाठांतर—× चिह्नित शब्द मो. में नही है।

(१) १. मो. दोइ, धा अ. फ. दुवे (<दुवइ ?), ना. दोऊ, द. दोउ, म. दुहुं, उ. स. दोय। २. धा. लागी गहनु, अ. लग्गो गहन फ. लग्गो गहन, ना. लग्गिय दयन, उ. स. लग्गिय अगनि, म. लगा गहन। ३. मो. नयनह जल गिल नान्ह, धा. नयन जलग्गुलु न्हानु, अ. फ नयन गलग्गल न्हानु, ना. नयन जग्गि गल नान, उ. स. नयन जलग्गि ललान, म. नयन जलजं हान।

(२) १. स. अंब जीव। २. मो. वछिहि, धा. अ. फ बछहि, ना. म. वछीय, उ. स. बछे। ३, मो. किहि, अ. फ. कथि, द. कहि। ४. धा. कवनु फ. म. कौनु, ना. कौन। ५. फ. म. सयान।

टिप्पणी— (२) सयानु < सज्ञान।

[४१]

अडिल— अब उपाउ[×१] सुभ्भउ[*२] एक[३] संचउ[*४]। (१)
सुनि कबि मरनु[१] टरइ[*२] नवि[३] रंच्यउ[*४]। (२)
समर[१] तित्थ[२] गंगह[३] जल षंच्यउ[*४]। (३)
अवसरि[१] अब स[२] पंग धर[३] नंच्यउ[*४] ॥ (४)

अर्थ—[पृथ्वीराज ने कहा,] "(१) अब एक सच्चा उपाय सूझ गया है। (२) हे कवि, सुन; [विधाता द्वारा रचा हुआ] मरना रच मात्र भी नही टलता है। (३) रण-तीर्थ तथा गगा-जल ने खींचा है—वे हमे बुला रहे है। (४) [इस] अवसर पर हम पग (कन्नौज राज) की भूमि पर नृत्य करें—रण-कौशल प्रदर्शित कर।"

* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

पाठातर —× चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) १. म. आव उपाव, फ, जब उपाउ। २ धा सूझ्यो, अ. सुझ्झौ, फ. सुझ्झ, ना. द सुझ्यौ,

उ. स समझ्यौ, म. सझ्यौ। ३. धा. अ. फ. म. इक, उ स. इह । ४ मो. सचु (< सचु = संचउ') धा आ ७. स सचौ, ना. सच्यौ, द. फ. सच्यौ, म. सवर ।

(२) १ म. तुसनि मरनि । २. मो. टरि (= टरइ), धा ना टरे, उ. स. ना. अ. फ. मिटैं। ३. धा. अ. फ. नहिं, उ स. नइ, म. नही, म. नन। ४. मो. रच्चु (=रंच्यउ), धा. अ फ. रचौ, ना. रच्यौ, फ. द. रच्यौ, म. नर ।

(३) १, मो. समरि, म. चौसुर, शेष में 'समर'। २. म रति। ३. मो गगह, शेष में 'गगा'। ४. मो. षच्चु (=षच्यउ), धा. उ. स. षंचौ, ना. म. अ. फ. षच्यौ।

(४) १. मो. आंवसरि, अ. अवसर। २. अ. उ. ना. अवसि, फ अवसु । ३. मो. गंगधर, धा. द. पंगु ग्रिह, ना पंग ग्रिह, अ. पगु ग्रिहि, फ. उ. स. पग ग्रह, म. पग तह। ४ मो. नच्चु (= नच्यउ) धा. उ. स. नच्यौ, अ. फ. म. नंच्यौ।

टिप्पणी—(३) तित्थ < तीर्थ।

[४२]

दोहरा— *आनदउ[१] कवि चंद निग[२] निप किय[३] संच विचार[४] । (१)*
मन गरुअर[१] सिर हरुअ हइ[२] जीवन[३] हरुअ सिरभार[४] ॥ (२)*

अर्थ—(१) कवि चद जी मे आनन्दित हुआ कि राजा (पृथ्वीराज) ने यह एक सच्चा विचार किया। (२) [उसने जान लिया कि इस समय पृथीराज केलिए] मन [का सकल्प] गुरुतर है और उसकी तुलना में सिर हलका हो रहा है, जीवन हलका—महत्वहीन—हो रहा है, और [कन्धो पर] सिर भारी हो रहा है—उसको उतार फेंकने की उत्कण्ठा हो रही है।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. मो. आनदु (= आनंदउ), धा. आनंदिउ, अ. फ. आनंद्यउ, द. अनदयौ, ना. उ. स आनदयौ, म. अनधो। २. धा. कवि कव्वयतु, अ. फ. कवि सुने बयनु, म. कवि वयंन त्रिपु, ना. कवि इक बयन, उ. स. कवि के वयन। ३. म. कीयउ । ४. मो. राच विचार, म. सच विहार ।

(२) १. धा. सरन (< मरन) गरुअ, अ. उ. स. ना. द. मरन गरुअ, फ. मरन मगरु, म. मरन गिरु। २. धा. सिर हरुव हे, मो. सिर हरुअ हि (= हइ), अ. ना. द. उ. स. सिर हरुअ है (हे- द.), फ. बासर हरू, म. मिर पडुव है। ३. धा जावन (< जीवन), उ स. जियन, फ. जीउन, म. जीवनु। ४. धा. हरु सिर भार, फ. तुव सिर भार, ना. हरु सिर भार, म. गिरु सिरु भार, उ हरुअ सि भार।

टिप्पणी—(१) सच < सत्य।(२) गरुअर < गुरुतर। हरुअ < लघुक।

[४३]

रासा— *अप्पउ*[१] कवि कयमास*[२] सतीय सय ले[३] संचरिउ[४] । (१)*
मरन लग्ग[१] बिधि[२] हत्थु तथ्थु कबि[३] उच्चरिउ[४] । (२)
घरि[१] वरु[२] पंगु प्रगट्ट[३] अरु थह[४] विहंडिहइ[५] । (३)*
इत उपहास[१] बिलास न[२] प्रान पमूकिहइ[३] ॥ (४)*

अर्थ—(१) कवि ने कयमास [के शव] को उसकी स्त्री को अर्पित किया, और सती सत

लेकर [चितामि में] संचरित हुई। (२) तब कवि ने कहा, "मरण और लग्न (विवाह) विधाता के हाथ मे हाते है। (३) हम भले ही पग धरा–कन्नौजराज की भूमि–पर प्रकट होगे और अरि-थट्ट—शत्रु-सेना—को विखंडित करेंगे, (४) यहाँ रहकर उपहास सहन करते हुए और विलासो मे हम अपने प्राणो को नही छोड़गे।"

पाठातर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. आपु (= आपउ), धा. अप्पिउ, द. ना. अ गो, म. अप्पौ, अ.अध्धउ, फ. आधौ। २. मो. कवि किमास (= कयमास), धा. कब्वि कैवास, ना. म. कवि कैमास, उ. स पहु कैमास। ३. धा. ना. द. उ. स सतु (सत – ना उ. स. म.), अ. फ. सरु। ४ धा. सचरिउ, मो. सचर्‌यु (< संचर्‌यउ), उ. स. अ फ द. सचरयौ (संचरयो–अ.), ना. सचयौ, मा. वारयो।

(२) १. धा. अ. फ. म. उ स. ना. द. लगन। २. फ. विध। ३. मो. तथ्थु कवि, म. त कवि, ना. में पिछला शब्द नहीं है। ४. धा. उच्चरिउ, मो. उचर्‌यु (< उचर्‌यउ), अ. फ. उच्चरयो, म. उचारयो, ना. उचयो।

(३) मो. घर, धा. धरि, शेष में 'धर'। २. म. व, उ. स. द भर। ३. मो. पग प्रगुट, ना द. पग प्रगटि, म. पंग रूप। ४. धा० त छट्ट, म. प्रगट, उ स. रुठट्ट, अ. फ तुछछक, ना. हिडड, म. तु षडि। ५. मो. विहविडु, धा. विहडियउ, अ. व विहठिहै, फ. विहढइहि, उ. स. विहंडिहौ, ना. द विहडिहैं; म. विहडिहै।

(४) १. धा. इति उपहास, फ. इन उपहास, अ. उ. स इन उपहास, म. परिहा तो उपहास, ना. इतौपहास। २. फ विलास ति, म. ना. बिलासत। ३. मो प्रान पमूकहि (= पमूकहइ), धा. प्रान न छडियउ, ना अ. प्रान न छंडिहै, फ. प्रान न छडियहि, द. प्रान पमुकिहैं, उ. स. प्रानय षडिहौं, म. प्रान प्रमुकिहै।

टिप्पणी—(१) आप < अर्पय्। मय < सत। (२) लग्ग < लग्न। तथ्य < तत्र। (३) बिहड< वि+षडय। (४) पमुक < प्र+मुच्।

---

४. पृथ्वीराज का कन्नौज-गमन

[१]

कवित्त— कनवज्जिय[१] जयचंद[२] चलउ*[३] ढिल्लियसुर[४] पेषन[५] । (१)
चंद विरदिया साथि बहुत[१] सामंत[२] सूर घन । (२)
चहूआंन राठवर जांति पुंडीर गुहिल्ला[१] । (३)
वडगूजर पांमार कुरंभ जांगरा रोहिल्ला[१] । (४)
इत्ते[१] सहित्त[२] भुअपति[३] चलउ*[४] उडी रेन किवउ नुभउ*[५]। (५)
एकु एकु[१] लष्ष वर लष्षवइ*[२] चले[३] सथ्थ[४] रजपुत्त[५] सउ*[६]॥ (६)

अर्थ—(१) कन्नौज मे जयचद को देखने के लिए दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) चल पड़ा। (२) विरुदिआ (विरुद कहने वाला) चंद साथ मे था और बहुत से सामन्त तथा अनेक शूर थे। (३) वे चहुआन, राठौर, पुडोर, गुहिल, (४) वड गूजर, पवार, कूरंभ (कछवाहा), जॉगरा तथा रोहिल्ल [क्षत्रिय] थे। (५) भूपति (पृथ्व राज) इतनो के साथ चल पड़ा; [उस प्रयाण से] रेणु उड़ी और उससे नभ आकीर्ण (आच्छादित) हो गया। (६) [जिनमे से] एक-एक [एक-एक] लाख का बल दिखाता था (?), ऐसे सौ राजपूत साथ चले।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो कनविज्जय, धा. कनवजहे (< कनवजहि), द. कनवजहां, अ. फ. म. उ. स. कनवज्जह। २. फ. जइचंद। ३. मो. चलु (=चलउ), धा. द. चल्यो, अ. फ. म. ना. उ. स. चल्यौ। ४. मो. दिल्लियसुर, धा दिल्हेसुर (< दिल्लिसुर), अ. फ ढिल्लिय सुर, उ. स. ना. म. दिल्लीपति, द द. ढिलियपति। ५. धा. अ. दिष्यन (=दिष्षन), द. दक्षनु, द. ना. म उ. स. पिष्यन (=पिष्षन)।

(२) १. धा. चंद वरदिया साथ बहुतं, अ. फ. सथ्थ चंद बरदाइ बहुत, द. ना. म. उ. स. चंद वरद्दिय (द बिरदीयो, ना. बिहद्दह, म. वरदीया) तथ्थ सथ्थ। २. अ. फ सावत।

(३) १. धा. मो. ना. चाहुवान (चहूआन–मो.) राठोर (राठवर–मो , राठौर–ना.) जाति पुंडीर (जांति पडीर–मो.) गुहिल्लय (गहिल्ला–मो, गुहिल्लह–ना.), अ. फ. चाहुवान रोठाड (राठोरु–फ) जावौ (जाउ–फ) पुंडरी गहिल्ला, द. म. उ. स. चाहुआन कूरंभ गौर (गौड–द.) गाजी वडगुज्जर।

(४) १. धा वड गुज्जर पांवर चलै जांगरा सुहल्लय, मो. वड गूजर पांमार कुसम जांगरा रोहिस्ला, अ. फ. वड गुज्जर पावार चले कूरंभ मुहिल्ला, द. म. उ. स जादव (जदौं–द.) रा रघुबंस पार पुंडीर ति पष्षर, ना. वड गुज्जर खीची पमार कूरभ मुहिल्लह।

(५) १. मो. इत्ते, धा. कूरंभ, अ. फ. ना इत्तने, म इतनिअ। २. मो सहत। ३. धा. ना. द. म. उ. स. भूपति। ४. धा. चल्यो, मो. चलु (=चलउ), अ. फ. म. चढ्यौ, उ. स. छढ्यौ। ५. धा. उडिय रेणु किन्हो नमो, मो. उडी रेन किन (<किनु=किनइ) नुभू (=नुभउ), अ. फ उडी रेनु किंनौ (रेन कीनौ–फ.) नभौ, ना. म उ. स. उडी रेन (रेणु–ना.) छिनौ (छीनौ–म. उ. स.) नभौ (नभौंह–म.)।

(६) १. धा. म इक इक्कू, अ. फ. ना. इक इक्क, ना. लष्यवर, द. उ. स. इक लष्ष। २. धा. वीर आंगमइ, मो. वर लष्षवि (=लष्षवइ), अ. फ. वर लिष्षिये, म. उ. स बर लषीये, द. बर लषियै। ३. धा. अ. फ. लियौ, ना. लयै, म उ स चले, द. चढे। ४ धा. मो. अ. फ. साथ, द. ना. म. उ. स. सथ्थ। ५. मो. रचपुत्त, म. रजपूत। ६. धा मो, मो. सु (=सउ), अ. फ. ना. सौ, म. सौंह।

टिप्पणी—(१) पेख < पेक्ख < प्र+ईक्ष्=देखना, अवलोकन करना। (३) जांति < ज्ञाति। (५) किन्न < किण्ण < कीर्ण।

[२]

दोहरा— *राज सगुन संमुह हुअ[1] ति ध्रुर[2] तन सिंघ[3] दहार। (१)*
मृग दक्खिन[1] षिन षिन[2] खुरहि[3] सु चरइ[*] न[4] संभरिवार[5]॥ (२)

अर्थ—[चंद ने कहा,] "(१) हे राजा, शकुन सामने ही हुआ है—कि ध्रुव [की दिशा—उत्तर] की ओर [मुख कर] सिंह दहाड रहा है; (२) मृग दक्षिण [दाहिनी ओर] क्षण-क्षण [भूमि] खूंट रहा (खुर से खंडित कर रहा) है, किंतु हे साँभरवाल (पृथ्वीराज), वह चर नहीं रहा है।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. राज सगुन साम्हो हुवो, मो. राज सगुन समह (< समुह) हूअ ति, अ. फ. राज सकुन सम्मुह हुवौ (<हुवउ–फ.), ना. राजा सगुन समूह हुव, म. उ. स. राज सगुन सम्मूह हुअ। २. धा. ध्रुवनर, ना. अ फ. ध्रुवतर, द. धुवतन, म. उ. स. धुअतन। ३. मो. संघ (< स्यघ), धा. ना. द. म. उ. स. सिंघ, अ. फ सिंह।

(२) १. मो. दक्षन, धा. दक्खिण, अ. दक्षिन, फ. दिक्षिन, म. दषिन, द. ना. उ. स. दच्छिन। २. धा. खिणि खिणि, मो. म. षिनषिन, उ. स. छिन छिन, ना. षिनु, अ. दक्षिन, फ. दच्छिन। ३. धा. खुरति, मो रहै, अ षरह, फ षरहि, ना. उ स. षुरहि, म. षुरे। ४. धा. चरहि न, मो. सु चरि (=चरइ) न, अ. फ. चलहि न, ना. द चलहिं (चलहि–ना.) त, म. चल ब, उ. स. चलहि त। ५. धा. समरवारि, ना. समरवारि।

टिप्पणी—(१) ध्रुर < ध्रुव। (२) खुर <खुट्ट < तुड् (?)=खडित करना, तोडना (तुल० अवधी 'खुरिहारब')।

[३]

दोहरा— *सुनत[1] सीस[2] सारस सबद उदय[3] सबद्दल[4] भांन[5]। (१)*
परन[1] भंजि[2] प्रतिहार जिह[3] करिहि[4] त कज्ज[5] प्रमांन[6]॥ (२)

अर्थ—"(१) सिर के ऊपर सारस का शब्द सुनते हुए, बादलों के साथ सूर्य के उदय काल में, (२) अथवा यथा (जब) प्रतीहार (तीतर) परों को भाँजे (उड़े—उड़ाता हुआ दिखाई पड़े), [कोई] कार्य करे तो वह प्रमाण (ठीक) हो।"

पाठान्तर—(१) १ धा सुरति, अ. फ. रत्त। २. धा. साय। ३. अ फ. म. उभय (उभ–म.)। ४. धा. सबदला, फ. ना. सब्बदल, म. उ. स. सुबद्दल। ५. धा फ भानु।

(२) १ धा अ म उ स परनि, ना द परणि। २ धा. भज्ज, द. उ. म. भाजि, फ. भज। ३. धा. ज्यँ, ना सु, म उ स सौ, अ. फ सौं। ४.धा. द ना उ. म. करहि, अ फ करहु, म. करे। ५. धा अ. त कज्ज, मो. त काज, म ति कान, फ. जु कज्ज। ६ धा प्रवान।

टिप्पणी—(२) पर < पट। जिह < यथा।

•

[४]

दोहरा— तब[१] कल करार[२] सघो[३] समुह[४] हसि[५] नृप बुझ्झउ[६] चद। (१)
एक[१] रवि मडल भेदहि[२] एक ति करिसह ददु[३]॥ (२)

अर्थ—(१) इसके अनन्तर कल (अच्छे) और कराल [दोनों प्रकार के] शकुन सब ही सम्मुख आए, और राजा (पृथ्वीराज) ने हँस कर चंद से [उनका परिणाम] पूछा। (२) [चद ने कहा,] "एक [प्रकार का शकुन] [योद्धाओं को रण मे] वीरगति दिलाकर रवि-मडल भेदन [उपस्थित] करेगा और एक [प्रकार का शकुन] द्वन्द्व (सुख-दुःख) [उपस्थित] करेगा।"

पाठान्तर—(१) १. यह शब्द मो के अतिरिक्त किसी में नहीं है। २. धा. कर करार, मो. कल कराद, अ. फ. सुनि कराल, ना. म कल करारु, द. सकल रार, उ. स कल कलार। ३. मो. समो, धा. सज्यो, अ. फ सघउ, द. सघो, उ स सघौ। ४. मो समूह। ५. मो. हसो। ६. मो बड्डु (<बुझ्झु=बुझउ), धा. बुझ्यो, अ. फ बुझ्यउ, उ. स बुझ्यौ।

(२) १. धा. अ. फ म. ना द. उ स. इक। २. धा. अ. भिद्दिहै, फ सिद्धिहै, म. भिदहि, द. भेद है, ना उ. स भेदिहै। ३ धा अ फ. इक करहि (करही–फ) ग्रिह (ग्रह–फ.) दद, द. इक करहिं ग्रह आनद, म इक करहि आनद, ना इक करहि गृह नद, उ. स इक करिहै आनद।

टिप्पणी—(१) करार < कराल। (२) ददु < द्वन्द्व।

[५]

दोहरा— त्रयत[१] दिवस त्रय[२] जामिनी[३] त्रयत[४] यांम[५] पल उन्न[६]। (१)
जोजन[१] एकइस[२] सचरिग प्रथीराज संपन्न॥ (२)

अर्थ—(१) तीन दिवस, तीन रात्रि और तीन पहर मे पल भर ऊन कम था (२) जब इक्कीस योजन (चौरासी कोस) तक [कन्नौज की दिशा मे] पृथ्वीराज चल कर पहुँच चुका था।

पाठान्तर—(१) १. धा. त्रीय, अ. फ त्रियत। २ धा. अ फ. त्रिय। ३. म. द. जामिनीय। ४. धा. त्रयी, अ. फ. त्रियत। ५. मो. यांम, शेष में 'जाम'। ६. धा. ना. पल तिन्न, अ. फ पल वुन्न, म. पल ऊंन, द. पल वन्न, उ. स. फल उन्न।

(२) १. धा. योजन। २. धा. ना. इक इक, अ. त्त इक, फ इक, म. उ. स इक्कत।
टिप्पणी—(१) उन्न < ऊन=हीन।

[६]

दोहरा— [१]त्रयत[२] यांम वासर[३] विसर[४] घटिग हस तनु[५] रात। (१)
सु कछु इच्छि चच्छुनु हुति[१] सं सब दिष्षव प्रात[२] ॥ (२)

अर्थ—(१) तीन पहर दिन जाने के बाद सूर्य और [तदनन्तर] रात्रि का तनु (शरीर) घट (बीत) गया। (२) [फिर] चक्षुओं को जो कुछ (जिस वस्तु की) इच्छा थी, उस प्रात को सब ने देखा।

पाठान्तर—(१) १. धा. में इस छंद के स्थान पर निम्नलिखित छंद हैः—
मइत निसा दिस मुदित तिम उड न्रिप तेज विराज।
कथित साथ कथहे कथा सुक्ख सयन प्रिथिराज॥
किन्तु यह छंद धा. १८० भी है, जैसा अन्य प्रतियों में भी वह है, इसलिए धा में यहाँ वह भूल से आया हुआ लगता है। २. म उ. स. त्रयति। ३ उ स वासुर। ४. उ स. विसरि। ५. उ. स. तन।
(२) १. उ. स. चष्ष इच्छा हुती। २. उ. स सोइ दिष्षौ परभात।
टिप्पणी—(१) विसर=वि+सर (सर्=जाना)।

[७]

पद्धडी— उत्तरिय[१] चित्त[२] चिता[३] नरेस। (१)
वत्तरहि[१] सूर सुरलोक देस। (२)
एक[१] कहइ*[२] लिइहि वर[३] इंद[४] राज। (३)
जस जीवन[१] मरन प्रथीराज[२] काज। (४)
करि[१] करहि[२] सूर असनांन[३] दांन। (५)
बल[१] भरहिं[२] सूर सुनि सुनि निसांन[३]। (६)
सरवरिअ[१] साल[२] बंछहिं[३] त भांन[४]। (७)
बधु[१] बाल जिमे[२] वंछहि[३] विहांन[४]। (८)
गुरु[१] दइत[२] उदित मृग मुदित[३] इत्तु[४]। (९)
झलमलिग[१] तार तरु हल्लिग[२] पत्तु[३]। (१०)
दिष्षियतु[१] इदु[२] किरणग्रनु[३] मदु। (११)
उद्दिम्म[१] हीन जिम नृपति चंदु[३]।[४] (१२)
पुह[१] फटिग घटिग[×] सरवरि[२] सरीर। (१३)
झलकंति[१] कनक[२] दिष्ष गम नीर[३]।[४] (१४)

नृप अमिग[1] जानि[2] पहु[3] पुब्ब देस । (१५)
अरि नयर[1] नीर[2] उत्तर कहेस ।।[3](१६)

अर्थ—(१) [प्रभात होता देखकर] नरेश (पृथ्वीराज) के चित्त की चिन्ता उतर गई। (२) शूर-गण [युद्ध मे मर कर] सुरलोक देश (स्वर्ग) [प्राप्ति] की बातें कर रहे थे। (३) एक कह रहा था कि भले ही इन्द्र का भी राज्य होगा, तो वह उसे ले (जीत) लेगा, (४) उसका यश, जीवन, और मरण पृथ्वीराज के कार्य के लिए होगा। (५) शूर गण स्नान करके दान कर रहे थे, (६) और धौसे की ध्वनि सुन सुन कर शूर-गण बल भर रहे थे—उत्साहित हो रहे थे। (७) वे शर्वरी (रात्रि) के लिए शल्य रूप भानु [के उदय] की [उसी प्रकार] वाञ्छा कर रहे थे (८) जैसे बालिका (अल्पवयस्का) वधू रात्रि के अन्त की वाञ्छा करती है। (९) दैत्य-गुरु (शुक्र) उदित हो गए थे और मृगशिरा नक्षत्र अब मुदित [दिखाई पड़ रहा] था, (१०) तारक-गण झिलमल-झलमल कर उठे और तरु के पत्ते हिल उठे। (११) इदु की किरणें मन्द दीख पड़ने लगी थीं, (१२) [वह ऐसा लगने लगा था] जैसे उद्यम-हीन नृपति हो। (१३) पौ फट गया और शर्वरी—रात—का शरीर क्षीण हो गया, (१४) [आकाश का] स्वर्ण [वर्ण] जल के मार्ग (प्रवाह) मे झलकता हुआ दिखाई पड़ने लगा। (१५) नृप पृथ्वीराज [पग–] प्रभु का देश पूर्व [दिशा मे] जान कर भटक गया था, (१६) [जब कि लोगों ने] बताया कि उसके अरि (शत्रु) जयचंद का नगर निकट ही उत्तर [की ओर] था।

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. म. उ. स. में इसके पहले और है (स. का पाठ) :—

चपी सु भोमि कनवज्ज राइ। दस गुनौ सूर बर चढ़त भाइ।
उच्चर्यौ भट्ट कवि चंद सथ्थ। दीसई राज रवि सम समथ्थ।
जिम जिम सुनिकट कनवज्जआय। डरपहि न सूर तिम तिम दृढ़ाय।
ओपम चद जंपी सुराय। बल बधि पीय सगम दिढाय।

२. मो. च्यति (=चिंत्ति), अ. फ. ना. उ. स. चित्त। ३. मो. च्यता (=चिंता), शेष में 'चिंता'।

(२) १. मो. वितरिंहि, धा. वत्तरहि, अ. ना. विस्तरहिं, फ. विस्तरइ, म बेतरहि, उ. स. बेतरहि।

(३) १. धा. ना. अ. फ. उ. स. इक, मो. एक, म. इह। २. मो. कहि (=कहइ), धा. अ. फ. कहहिं, ना. कहै, म. उ. स. कहत। ३. मो लेइहि (<लेइहइ), धा. अ. लेहि वर, फ. लेह वरु, ना. म. द. उ. स. लेहि (लैहि–ना.) बल। ४. धा. इदु, द. चन्द, म. उ. स. इन्द्र।

(४) १. धा. जस जिवन, अ. फ. म. उ. स. जस जियन (जीयन–म.), ना. सज जीय। २. धा. प्रिथिराज, म. प्रिथीराज।

(५) १. धा. एक, अ. फ. ना. इक, द. म. उ. स. कर। २ मो. करिंहि, शेष में 'करहिं'। ३. मो. धा. असनान, फ. सनान, ना स्नान।

(६) १. मो. धा बल, अ. फ. ना. म उ स बर। २. मो. भरिंहि, ना. भिरहिं, स. भरत। ३. धा. सुणि सुणि निसान, ना. सुनि धुनि निसान, म. सुनि रुमिसान।

(७) १. ना. श्रव्वरिय। २. अ. फ. सल्ल। ३. मो फ. बंछि (=बछइ)। ४. मो. भान, धा. नि भान, अ. फ. ति भान, ना. न भान।

(८) १. धा. बुधु, ना. द. म. उ. स. मुध, उ. मधु। २. धा. केम, ना. फ. म. उ. स. जेम, अ. जेमि। ३. मो. वछिंहि (<बछहि), धा. मगइ, अ. मंगहि, फ. मंगै, ना. मग्गहि, म उ. स. इच्छत, द. इछहि। ४. धा. विधान।

(९) १. मो. गरु। २. धा. दपत (=दयत), म. उ स. दयत, ना. देत। ३. धा. उदित, फ. सुदित (<सुदित)। ४. अ. फ. अत्त।

(१०) धा. झिलिमिलिग, ना. झलमलोग, द. झलमिलगि। २. धा. तरत्तिलिग, मो. अ. ना. तरहलिग, फ. तहलग्ग। ३. फ. पत्ति, द पान।

(११) १. धा. दिखइ, अ. दिष्षिये, फ दिर्षीय, ना. दिष्षीयें, द दिषयहिं, उ. स. देषियत, म. देषयइ। २. अ. फ. चद, म. इद्र। ३. धा. किर्णाण, द. किरणीन, अ. फ. किरनीन, उ. स ना. किरणीनि, म. जनु किरन।

(१२) १. धा. उद्दिमे, अ. म. उ स. ना उद्दिमह, फ. उद्दिमहि। २. धा. जिमि, ना. जनु। ३. धा. निपति वंदु। ४. मो के अतिरिक्त शेष सभी में यहाँ और है (स. का पाठ):—

धरहरिग सोत सुर मद मद। उप्पज्यो जुध्ध आवध्ध दद।

[यह पंक्ति स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है क्योंकि किसी भी पाठ के अनुसार यहाँ युद्ध का प्रसग नहीं है।]

(१३) १. धा. यह, अ. म. उ. स. पहु, ना. फुह, फ. सुपहि। २ फ. सब्बरि, म. सरवर, ना. सर्वरि।

(१४) १ धा अ. म. उ. स ना. झलकंत। २. अ. कन, फ. कति, ना. द. म उ. स. कलस। ३. धा. दिष्षियग नीर, अ. दिष्षिय मर्नार, फ. दिष्षिय ननीर, ना. दिषि मगन नीर, द. म. उ. स. दिषि गमन नीर। ४. म. उ. स. में यहाँ और है (स. का पाठ):—

विरहीन रेनि छुट्टिमित मान। नष्यंत तोरि भूषन प्रमान।
असुवंत असु उस्सास आइ। बिरहीन कत चंदहु बुलाइ।
पह फट्टि घट्टि भूषनन बाल। दिसि रत्त दरसि दरसी कसाल।
त्रिप भ्रमि गग सब पुब्ब देस। आरत्र अरिन उत्तर नरेस।

[किन्तु अतिम चरण म. उ. स. में पुनः अपने स्थान पर भी यथा अन्य प्रतियों में आया है, इसलिए उनमें पुनरावृत्ति स्पष्ट है।]

(१५) १. मो. भ्रमिग। २. म. जंमि, धा. कहिग। ३. मो. पुहु, ना. फ. पुह, उ. स. इह।

(१६) १. धा. अरिय नीर, अ. फ. अरि नैर। २. म. जांनि। ३. मो. के अतिरिक्त सभी में यहाँ और है:—

वरसिंघ हिंदु कनवज्ज राउ। तहं चढ़यउ सुर्ग धरि धर्म चाउ।

[यह पंक्ति स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है, क्योंकि इसकी कोई संगति नहीं प्रतीत होती है और यह उक्ति श्रृखला का भी अतिक्रमण करती है।]

टिप्पणी—(१) वत्तरहिं: तुल० बतराहिं। (२) इद < इद्र। (५) साल < शल्य। (९) दइत < दैत्य। इत्त < अत्र। (१०) पत्त < पत्र। (१४) गम=मार्ग, रास्ता। (१५) पहु < प्रभु। (१६) नीर < नियर < निकट।

[८]

*दोहरा— रबि सम्मुह तमकउ[*] उवइ[*१] हे तुहि[२] मग्ग समुझ्झ[३]। (१)*
*भुल्लि भट्ट[१] पुब्बहि[२] वलउ[*३] कहि[४] उत्तर कनवज्ज॥ (२)*

अर्थ—[पृथ्वीराज ने चंद से कहा,] "(१) रवि [हमारे] सम्मुख तमतमाता हुआ उदित हो रहा है, और तेरा मार्ग समझा (जाना) हुआ है। (२) हे भट्ट, मैं भूल कर पूर्व की ओर मुड़ पड़ा, जब कि कन्नौज उत्तर में कहा जाता है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १ मो. समूह तमकू (=तमकउ) उवि (=वइ), धा. तुम्ह समुह उहइ, अ. तुम्ह हे संमुहि उयो, फ त्रमहि समुह उयौ, उ. स. तमुह समुह उयौ, म तमू समुह उयौ, ना. सुह सम्मुह उदयौ। २. मो. हे तुहि, धा. इह तुम्ह, अ. फ. ना. है तुहि, उ स. इह है कछु। ३. मा. मग्ग समूझ, फ मग्ग समुज्ज, म. मग समझ, ना. मग्गल सुज्झ।

(२) १. मो भूलि भट्ट, धा. भुलि भट्टि। २. मो. पूविहि, अ. फ ना. भूव्वह। ३. मो. चलु (=चलउ), धा द. चल्यो, अ फ. वल्यौ, म. उ. स. चलिय, ना. चल्यौ। ४. मो. किहि, फ. कह।

टिप्पणी—(१) उवय < उदय। (२) वल < वल्=मुड़ना।

[९]

दोहरा— कचन फुल्लिग*[१] अर्क बन[२] रतन जि[३] किरन[४] प्रकार[५]। (१)

इह कलस्स[१] जयचंद ग्रिह[२] सुनि सुनि[३] संभरिवार[४] ॥ (२)

अर्थ—[यह सुनकर चद ने कहा,] "(१) जिसका कचन सूर्य वर्ण का हो कर प्रफुल्लित हो रहा है, जिसके रत्न किरणो की भाँति हो रहे हैं, (२) ऐसा वह कलश जयचद के गृह का है, हे साँभरवाल (साँभर पति), सुनो।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है

(१) १. धा फूल्या, मो. उ फूले (=फुलि), अ. फ फुल्लिग, म. फूलिग, स. फुल्लिअ। २ अ. फ सम। ३. धा रतने, अ रतननि, फ. तरनन, ध. तरंन, उ. स. रतन। ४ धा. किरण, ना. किन्न, म. किरन। ५. धा. प्रहार, उ स प्रसार, म. प्रसारि।

(२) १. धा उये कलस, अ फ. उदय कलस, ना. द. उ. स. सुवे कलस, म. सुचे कलस। २. मो. ग्रह, द. म. उ. स. घर। ३ धा. अ. फ. ना म. उ. स. सभरि। ४. धा. सिंमरि वार।

टिप्पणी—(१) ज < यः।

[१०]

भुजंग प्रयात— कहों[१] संभरेनाथ ठाढे[२] गयंदा। (१)

सुत दिष्षिहीं[१]* रूव[२] अयरावइंदा[३]। (२)

कहों फेरवें[१] भूप+ आछे[२] तुरंगा। (३)

मनु[१] दिष्षियत वाय लग्गे[२] कुरंगा।[×] (४)

कहों माल भूग्रदंड[१] ते सरोह[२] साधइ[३]*।[४] (५)

कहों पिष्षि पायक[१] बानेत[२] बांधइ*[३]।[४] (६)

कहों बिप्र ते उट्ठि ते[१] प्रात चल्ले। (७)

मनु[१] देवता सेव ता मर्ग[२] भुल्ले। (८)

कहों यग्य याज्यंति ते राज राणा[१]। (९)

कहों देवदेवा त[१] नृित्यान साणा[२]। (१०)

कहौं तापसा[१] तप्प[२] ते[३] ध्यांन लग्गे[४] । (११)
जिने[१] देषित[२] रूप ससार भग्गे[३] । (१२)
कहौं षोडसा राय[१] अप्पंति[२] दान । (१३)
कहौं हेम सामान[१] प्रथमी[२] प्रमानं ।[३] (१४)
एतने चरित्र ते गंग[१] तीरे । (१५)
सोयं[१] देषते[२] पाप नट्ठें[३] सरीरे ॥ (१६)

अर्थ—[चंद ने कहा,] (१) "हे साँभरपति (पृथ्वीराज)," कही पर [जो] गजेन्द्र खड़े है, (२) वे तो ऐरावतेन्द्र के रूप (समान) दिखाई पड़ रहे है। (३) कही राजागण अच्छे घोड़ो को घुमा रहे हैं, (४) जो ऐसे लगते है मानो कुरंग (मृग) [भागते हुए] वायु से लग (मिल) रहे हों। (५) कही पर मल्ल भुज-दडो से सरो साध रहे है, (६) कही पर पदातिक बाने बाँधे–या बाँधते–हुए दिखाई पड़ रहे है। (७) कहीं पर विप्रगण उठकर प्रातः काल ही चल पड़े है, (८) मानो देव गण सेवा से आकृष्ट होकर [स्वर्ग का] मार्ग भूल रहे हो। (९) कही पर राजा गण द्रव्य यजन कर रहे हैं, (१०) कही पर देव देव (महादेव) [के मंदिर मे] नृत्य सजे हुए हैं। (११) कही पर तपस्वी तप के ध्यान मे लगे हुए हैं, (१२) जिनको देखते ही रूप का संसार भाग जाता है। (१३) कही पर राजा गण षोडस दान अर्पित कर रहे हैं, (१४) कही पर स्वर्ण से [वे विप्रादि का] सम्मान कर रहे हैं, और कही पर वे पृथ्वी (भूमि) का दान प्रमाणित कर रहे है। (१५) गंगा के तट पर इतने चरित्र दिखाई पड़ रहे हैं, (१६) जिन्हे स्वयं देखने पर शरीर के पाप नष्ट हो जाते है।"

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

×चिह्नित चरण म. में नहीं है।

(१) १. इस छद में आए हुए 'कहौं' के स्थान पर मो. में सर्वत्र 'कांहां', धा. अ. में 'कहू', ना में 'कहु', फ. में 'कहौं', म. में एक स्थान पर 'कहौ' अन्यथा 'कहुं' तथा द. उ. स. में एकाध स्थान पर 'कहौं' अन्यथा 'कहूं' है। २. धा. थड्ढे, अ. फ. उठे, म. थटे, ना. ठड्ढे।

(२) १ .मो. सुतं दिषिह, धा. अ. फ. मनो दिख्खिये, ना. मनु (=मनउ) दिष्षीयै, म. उ. स. मन, (मनौ-म.) पिष्षिपैं। २. मो. ना. म. उ. स. रूप। ३. मो. अयरायरंदा, धा एरावइदा, ना. औरापयंदा, म उ. स अरापइदा, फ. उठे गजदा।

(३) १. धा. अ. फ. म. फेरहीं (फेरही-म.), ना. फेरहि ति, उ.स फेरिहित। २. धा. अ. फ. ना. म उ. स अच्छे (अच्छ-म.)

(४) १. मनो दष्षिये, अ. फ. मनो पिष्षय, ना मनु (=मनउ) पर्वते, म. उ. स. मनो प्रब्बतं। २. धा. द. उ. स. वढ्ढे, अ. फ. चडे, ना. चढि (=चढइ)।

(५) १. अ. फ. भूडड। २. धा. सजि साह, अ. फ. ते सार, ना. द. ते सरौं, म. ते सरु, उ. ते सरों, स. ते रोस। ३. धा. अ. फ. संधै, मो. साधि (=साधइ), ना. साधे, म. उ स साधै। ४ म में अगले चरण केस्थान पर तथा उ. स. में यहाँ अतिरिक्त (स. का पाठ): तिकै मुष्टिकं जोर चानूर बाँधै।

(६) १. ना. दिष्षि पाइक्क, फ. पिक्खीयै। २. मो. बानि (=बाने) त, धा. बानैत, अ. फ. बानैति (त–फ.)। ३. मो. बाधि (=बांधइ), फ. बंध। ४. उ. स. में यहाँ और है: नचे इंद्र आहे सक बज्र साधैं।

(७) १. धा. ता उठि ते, अ फ. ते उठि ही, ना. म. उ. स. उट्ठत ते।

(८) १. धा. मनो। २. धा. मग्गते स्वर्ग, अ. फ. स्वर्ग ते मग्ग, ना. सेवते स्रग्ग, म. उ. स. सेव तें (ते–म) स्वर्ग।

(९) १ धा. जग्गिजै पुण्य ते राज काजं, अ. फ. जग्यते पुन्य ते राज काज, ना. द. उ. स. जग्य जापन्न (जापत–ना.) ते रान काजै (काजं–ना), म. जग जापन त राज काजे।

(१०) १. धा. अ. ना देव देवाल, मो. देवता देव, फ. विप्र प्रातै, म. देव देवात, उ. स. देवता देव। २. मो. नित्यान साजा, धा. ते 'अत्र साज, अ. ते क्रिति साज, फ. उठै जग्य साज, द. ना नृत्यान साजं, म. स. नृत्यान साजें (साजे–म.)।

(११) १. म. उ. स. तापसी। २. धा अ. फ ना. ताप। ३ म तेज। ४. म. लागे फ. लग्गौ।

(१२) १. धा. ना. तिन, अ. म. उ. स. तिन, फ. तऊ। २ धा अ. फ देखते, उ स. दिष्षियै, ना. म. देषिय। ३. म. भागे, फ्र. भग्गौ।

(१३) १. धा. राइ। २. धा फ. अप्पत, म. ना. आपत।

(१४) १. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. सम्मान (समान–म.)। २. धा. अ. फ. प्रिथ्वी, ना. म. उ. स. प्रिथ्थी। ३. म. उ. स. मे यहाँ और है (स. का पाठ):—

कहू बोल ही भट्ट छदं प्रमान। कहू औघटं बीर सगीत गान।
कहूं दिष्षि सिद्ध लग्गी तारि भारी। मनो नेर प्रातं कपाट उधारी।
कहूं बाल गावे विचित्र सुग्यान। रहै चित्त मोहन्न डुल्ले नृपान।

(१५) धा. अ. फ. ना. इते चारु चारित्त ते गग (सवेग–धा.), म. उ. स. इते चरित पेषंत ते गग।

(१६) १. धा. अ. फ. तिने, ना. म. उ. स. स्वय। २. ना. दीष्यते। ३ धा. नट्ठं।

टिप्पणी—(२) रूव < रूप। (५) भुअदड < भुजदड। सरो=एक प्रकार का व्यायाम का खेल। (६) पायक < पदातिक। (८) मग्गं < मार्ग। (१६) नट्ठ < नष्ट।

[११]

त्रिभंगी—

हरि गंगे[१] ।[२] (१)

तन[१]+×° तरल तरंगे, अघ कृत[२] भंगे[३], कृत[४] चंगे। (२)
हर सिर परसंगे, जटा[१] बिलंगे[२], अरधंगे×+°। (३)
गिरि°×+ तुग×+° वनंगे[१]+×°, विहरति[२] दंगे, जल जंगे[३]। (४)
गन गंध्रव[१] छंदे, जय जय वंदे[२], मुष चंदे[४]। (५)
मति उद्ध गति मंदे[१], दरसत[२] नंदे[३], गत[४] दंदे[५]। (६)
बपु अपु विलसंदे, जम भूत[१] जंदे[२], कह गंदे[३]। (७)
षिति मित*[१] उर मालं, मुगति विसाल,[२] सद[३] साल[४]+। (८)
सुर°× णर×°+ टट×°+ सालं°×+[१] कुसमित°×+[२]लालं×°+ अलिजालं×°+। (९)
हिम रित[१] प्रतिपालं[२] हरि चरणालं[३] बिधि बालं+। (१०)
दरसन[१] रसराजं,[२] जय जुग काजं, भय भाज+। (११)
अंमर छरि[१] करजं, चामर वरज[२], सुभ[३] साजं[४]। (१२)
अमल तन[१] मंजरि, निम्र° तन° जजरि°[२], चष° षंजरि[३]°[४]। (१३)
करुणा° रस° रंजरि°[१], जन पुन गंजरि,[२] [३] सा संकरि। (१४)
कलिमल हर[१] मंजन[२], जन[३] हित[४] सज्जन,[५] अरि गंजन॥ (१५)

अर्थ—(१) [गंगा की स्तुति करते हुए चंद ने कहा,] "हे हरि गंगा—हरि-नदी, (२) तू तरल तरंगो के तन वाली हो, तुम अघो को भग करती, और कल्याण करती हो ।. (३) तुम हर (शिव) के सिर के प्रसंग मे [आने पर] उनकी जटाओ से विलग्न (लगी) रहीं और [शिव का] अर्धाङ्ग हो गई । (४) उत्तु ग गिरि (हिमालय) के वनो मे उल्लास पूर्वक विहार करते हुए तुम्हारा जल चलता रहा । (५) गंधर्व गण ने छदों मे, ऐ चन्द्रमुख वाली, तुम्हारा जय जय गान किया और वदना की । (६) [मेरे जैसे] ओछी मति और मद गति वाले को भी तुम अपने दर्शन से आनदित और द्वंद्व से विगत करती हो । (७) जो शरीर से तुम्हारा जल बिलसते हैं, [उनके पास जब] यम के सेवक जाते हैं, वे (तुम्हारे भक्त) कहकहा लगाते (प्रसन्न होते ?) हैं । (८) तुम क्षिति मात्र की उरमाला हा, विशाल मुक्ति [रूपा] हो और सत (सतोगुण) की शैला हो । (९) तुम्हारे तट पर सरकडे, नरकुल और साल लाल (सुन्दर) कुसुमित होते हैं और [उन पर] अलि-समूह [गुंजार करता] रहता है । (१०) तुम हिम (हेमत) ऋतु द्वारा प्रतिपालित—हेमंत ऋतु के हिम से जल प्राप्त करती, हरि के चरणों की आर्द्रता और विधि की बालिका हो । (११) तुम्हारा दर्शन रसो (आनन्दो) का राजा है तथा जगत् के कार्यों मे विजय [प्रदान करने वाला] है और समस्त भय उससे भाग जाते है । (१२) तुम अमरो (देवताओ) के लिए छल कारिणी (?) हो और श्रेष्ठ चामर [तुल्य] शुभ साज वाली हो । (१३) तुम निर्मलता की मंजरी (उत्पादिका) हो, नीच तनु जन्म को जर्जरित करने वाली हो, और खंजरीट के चक्षुओ वाली हो । (१४) तुम करुणा रस का रंजन करने वाली, जनों (दासों) के पुण्यो को गॉजने—पुण्यो की ढेरी लगाने—वाली, और शंकरी (कल्याण करने वाली) हो । (१५) तुम्हारा मज्जन कलियुग के पापों को हरता, जन (दासो) के हित का साज करता और शत्रुओ को नष्ट करता है ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

× चिह्नित शब्द उ. स. द. में नहीं है ।

° चिह्नित शब्द म. में नहीं है ।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है ।

‡ चिह्नित शब्द अ. फ. में नही है ।

(१) १. धा. हर गंगे हर गगे हर गगे, अ. फ. म. हरि हरि गगे, ना. जै जै,हरि गगे । २. ना. में यह चरण अगले चरण से मिला दिया गया है, म. उ. स. में न केवल यह चरण अगले चरण से मिला दिया गया है, वरन् तदनुरूप बाद वाले चरणों में आवश्यक मात्रा वृद्धि कर दी गई है, जिससे छन्द त्रिभगी नहीं रह गया है ।

(२) १. धा. तमि । २. मो. अधिकृत, अ. अपकृत, फ. अवकृति । ३. ना. अंगे । ४. मो. कत, शेष में 'कृत' ।

(३) १. म. जटिन, २. फ. जटनि । २. फ. में यहाँ और है: दहन अनगे ।

(४) २. धा. तरंगे, ना. अ. फ. विरंगे । २. ना विहरत । ३. धा. गंगे ।

(५) १. मो. गन गद्रव, म. उ. स. गुन गध्रव । २. धा. जग जस चदे । ३. म. उ. स. में यहाँ और है: क्रित अघ कंदे । ४. अ. सुष चन्दे, फ. सुष वदे ।

(६) १. धा. म. ना. मति उच गति (गत—म.) मदे, मो. गति उच मन्दे । २. धा. वरसत, ना. दरसन, अ. फ. दरसिन । ३. म. गत ददे, अ. फ. गति दंदे । ४. म. उ. स. में यहाँ और है : पढ़ि वर छन्दे । ५. धा. वंदे ।

(७) १. मो. जमभूत, ना. जयमृत । २. म. उ. स. में यहाँ और है : सुरधुनि नंदे । ३. अ. फ. कहकदे ।

(८)म . षिति मिन (<मत), धा. अ. फ छिति मनि, ना म. षिति मुति, उ स. षिति मति। २. म उ.म. में यहाँ और है: चिर धुत काल (विरघुत काल—उ स.) । ३. धा सह, अ. फ. सज । ४. म. काल ।

(९) १. मो. सरण रहित साल, अ. फ सुर नर टट बालं। २. धा कुसुमति।

(१०) १. मो. धा अ. फ. रिम, म. रिति। २. म. उ. स. में यहाँ और है: सुरतरु हाल (सुर तट ताल—उ. स) । ३. म. बरनालं, उ. स. छरनालं ।

(११) १. अ फ दरिसन। २. म. उ. स. में यहाँ और है: सुभित साज (सुभरित साज—उ. स.)।

(१२) १. मो. धा. अमरच्छरि करजं, फ. म अमर छर करज (करिज—म.)। २. उ. स. वरिज। ३ म. उ. स. में यहाँ और है: वृह पारज (वर'बहु पाज—उ. स)। ४ धा स्रव साज, अ फ सुसमाज, द. सुगसाजं, म. सुरसाज।

(१३) धा अनलत्तिन, ना. अमूलेतन, म. अमरु तरु। २ धा. पंजरि। ३ उ. स. में यहाँ और है बर बर वजरि। है. धा पंजरि, अ. फ. यजरि।

(१४) १ अ. फ. नर्जार। २. धा. नतम पुन जरि, अ. फ. जनम पुनंकरि, ना. जनम पुन्य गिरि, म. द. जनम पुनगरि। ३ म उ स में यहाँ और है: हसि हसि मंकरि।

(१५) १ धा. मो ना. हरि। २. अ. फ. मज्जन। ३. म उ स में यहाँ और है: भवभ्रित भजन। ४ ना जिन। ५. अ. रजन, म. सभन, फ. रजनि।

टिप्पणी—(३) परसंग < प्रसग। बिलग < विलग्न। (४) जग < गम्=चलना। गध्रव < गधर्व। (६) उछ < उच्छ < तुच्छ। (७) अपु < आप=जल। (११) जुग < जगत्। (१२) बरजं < वर्य। (१३) अमलत्तन < अमलत्व। निअ < नीअ < नीच।

[१२]

वसन्त तिलक— *उभय[१] कनक[२] सिभं[३] भ्रिग[४] कंठीव[५] लीला*
पुनरपि पुहप पूजा[६] वदति रति विप्पराज[७] । (१)
उरसि[१] मुत्तिहार[२] मध्धि घंटीय सबदं[३]
सुगति सुकल[×] वल्ली[४] नंग रंग त्रिवल्ली[५] ।। (२)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] "[इसके दोनो तटो पर जो] दो कनक शभु है [वे ही इसके दोनो कुच है], मृगो की कंठध्वनि है [वही इसकी कंठध्वनि है], पुनः इसे पुष्प की पूजा [अर्पित] करके विप्रराज (श्रेष्ठ विप्र) इससे अपनी रति (भक्ति) निवेदित करते है। (२) इसके उर मे [जल-कणो का] मुक्ताहार है, और मध्य (कटि) मे [पूजको द्वारा किया जाने वाला] घटी (कटि की घटी) का शब्द है, इस प्रकार यह सुन्दर मुक्ति की वल्ली अनंग-रग (काम-क्रीड़ा) की त्रिवल्ली है।"

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द अ. फ में नही है।

(१) १ फ. उरभय। २ धा कमल, फ. कनिक। ३. धा. मो. सोभा, ना. सिध, म. सिंभी। ४ मो. इंभग, अ. भिंग। ५. मो कव, धा. कठाव, अ. म. कठाय। ६. मो. पुनरपि युक पूजा, धा. पुनर पुहप पूजा, अ. पुनर्द्दहपत्रजा, फ पुनपुहप पुज्जा, ना. पुनर पुनर पूजा। ७. मो. वदति रति विपरया, धा. ना. वदते विप्रराज, अ. फ. वदति रति विप्रराज, म. उ. स. विप्रवे कामराजं।

(२) १. धा. उरिल, मो. ना उरलि, अ. उरसि, फ. उरस्य, उ स. त्रिवलिय। २ मो. गंगहर, धा. मुतियहार, अ. फ. मुत्तिहार, ना. गगहारा, म ड. स. गगधारा। ३. मो. सिधि घट घटीय सरदा, धा. सब्द घटी ति बंब, अ. फ. मध्य घटीय (घट्टीय–फ.) शब्दे, म. उ. स. मध्य घटीव सबदा। ४. मो. सुर नर मुनि मुगति सुकल ठली भिरंदव, धा. मुकंनि मुकति भारं, ना. मुकति मुत्ति सभीरे, अ. फ. मुकति भीर, म.,उ. स. मुगति सुमति भीरे। ५. मो. नंग रग त्रीवल, धा. नग रंग त्रिवल्ली, अ. फ. अनग अंग त्रिवल्ली, ना. अनग रग त्रिवेलं, म. उ. स. नग रग (रंग–म.) त्रिवेनी।

टिप्पणी—(१) सिंभ < शमु। (२) मुत्ति < मौक्तिक।

[१३]

रासा— दिष्षइ*[१] नयर सहाय ति[२] कवियन[३] इयुं कहइ[४] । (१)
मोहइ* अथिथ पुरंदर[१] इंद जु इहि रहइ[२] ।× (२)
चष चंचल तनु सुध्ध[१] ज सिध्धनु मनु हरइ*[३] । (३)
कंचन कलस[१] झकोरि ति गंगहि[२] जल भरइ*[३] ॥[४] (४)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "यह नगर जैसा स्वभाव से (स्वाभाविक रूप मे) दिखाई पड़ रहा है, उसके विषय मे कविजन (चद) की उक्ति इस प्रकार है कि (२) इसकी अथाइयाँ पुरंदर को मुग्ध करती हैं, और [इस कारण] इन्द्र यही रहता हैं। (३) चचल चक्षु तथा शुद्ध तन वाली नारियाँ जो सिद्धो का भी मन हरती है, (४) कचन कलशो को झकोर (हिला) कर गगा का जल भरती हैं।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित चरण म. उ. स. में नहीं है।

(१) १. धा. फ. दिष्षिय, मो. दिषि (=दिषइ), अ. दिष्षित, ना द. म. उ. स. दिष्यौ। २. धा. नयर सुभाइ न, अ. फ. नर सभावित, ना. नयर सुहायौ, द. नगर सुहावौ, म. नगर सुहायौ, उ. स नगर सुहावो। ३. मो. कवयन, ना. कवियनु। ४. धा. यूं कहइ, मो. इयुं किहिहि, अ. फ. ना. यह कहै, म. उ. स. इह कहै।

(२) मो. मोहि (=मोहइ) अथि रप रंद जू, धा. है मनु अच्छि पुरंदर, अ. फ. ना. है मनुं (मुनि–फ.) अथ्थि पुरंदर। २. मो. इंद जू इहिं रिहि (=रिहइ), धा. ना. इंद जइह रहइ (रहै–ना.), अ. फ. इद जु (ज–फ.) इह रहै, द. इंद जुहां रहै।

(३) १. मो. चषि चचल तन सुध, धा. ना चष चंचल तन सुद्धि (सुद्ध-ना), अ फ म. चष चंचल (चंचलु–म) तनु (तन–फ.) सुद्ध (सुध–म.)। २. धा ति सिद्धहु मनु हरिह, मो. सु सिधां मन हरि (=हरइ), अ. फ. त सिद्धनु (सिद्धि तन–फ) मनु हहै, उ. स. जु सिद्ध ति मन रहै, म. जु सिद्धि ति मन हरे, ना. ज सिद्ध न मनु हरे, द. जु सिध मनि मनुह रहै।

(४) १. धा करस। २. धा. झकोलनि गगह, अ फ झकोरति गगा, ना. झकोरि गगा महि, म. उ. स. झकोर ति गगह। ३ धा. भरहि, मो भरि (=भरइ), अ. फ. ना. म. उ स. भर। ४ म. उ स में नो स्वीकृत द्वितीय चरण नही है। उसके स्थान पर यहाँ है, सुकवि चद बरदाय सु ओपम तहं कर।

टिप्पणी—(१) सहाय < स-हाअ < स्व-भाव। कवियन=कविजन। (२) अथ्थि < आस्थान=अथाई।

[१४]

अर्ध नाराच — भरंति[१] नीर सुंदरी। (१)
सु[१] पानि[२] पत[३], अगुरी[४] ।× (२)

कनक बंक[१] जे[२] जुरी[३] ।× (३)
ति लग्गि[१] कट्टि जेहुरी[२] ।× (४)
सुभाय[१] सोभ पिंडुरी[२] । (५)
सु[१] मैन[२] चित्त ही[३] भरी । (६)
सुकोल लमेल[१] जंघया । (७)
ति लीन[१] कच्छ रंभया । (८)
कटित्त[१] सोभ सेउरी । (९)
वनित्त जानि[१] केसरी । (१०)
अनेक[१] छब्बि छत्तियां । (११)
कहंत[१] चंद रत्तियां । (१२)
दुराय[१] कुच उच्छरे[२] । (१३)
मनहु[१] अनंग ही भरे । (१४)
रुलंति[१] हार सोहये । (१५)
विचित्त चित्त[१] मोहये । (१६)
उडत्ति[१] हत्थ अंचले[२] । (१७)
रुरंति[१] मुत्ति[२] सा जले[३] । (१८)
कपोल लोल[१] उज्जले । (१९)
लहुंति मुल्ल[१] सिंघले[२] । (२०)
अधर आरत्त[१] रत्तये । (२१)
सुकील[१] कीर[२] बंधये[३] । (२२)
सोहंत[१] दंत आलमी[२] । (२३)
कहंत बीअ[१] दालमी[२] । (२४)
गहग्ग[१] कंठ[२] नासिका । (२५)
बिनान[१] राग सासिका[२] । (२६)
सुभाय मुत्ति सोभये[१] । (२७)
दुभाय[१] गुंज लग्गये[३] । (२८)
दुराय कोय[१] लोचने । (२९)
प्रतष[१] काम[२] मोचने । (३०)
अवधि ओट भौंहये[१] । (३१)
चलंति सोह सौंहये[१] । (३२)
ललाट[१] आड[२] लग्गये[३] । (३३)
सरद चंदु[१] लज्जये[२] ॥ (३४)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा ,] "जो सुन्दरियाँ पानी भरती हैं, (२) उनकी हाथों की उंगलियाँ पत्तियों के समान [कोमल] है। (३) जो बाँके (खरे) सोने से जुड़ी (बनी) हुई हों, (४) ऐसी कटी हुई जेहुरी (?) [सदृश] वे है! (५) उनकी पिंडलियाँ स्वाभाविक रीति से शोभित हैं, (६) जो मदन के चित्त मे भरी हुई है । (७) गतिशील और चंचल उनकी जाँघे हैं, (८) वे रंभा (कदली) सदृश जाँघे उनके कछोटो मे लीन (छिपी) हैं । (९) उनकी कटि मे जो सेउरी—शैवाल जैसी—शृखला शोभित हो रही है, (१०) उससे ऐसा लगता है कि बनिताएँ मानो सिहिनियाँ हो। (११) उनके वक्ष की छवि बाँकी है, (१२) जिसका कथन करते हुए चन्द रक्त (लुब्ध) हो रहा है। (१३) वस्त्रो मे छिपाए हुए उनके कुच ऐसे उभरे हुए हैं, (१४) मानो [वस्त्रो मे] अनंग (कामदेव) ही भरे हो। (१५) हिलते हुए उनके हार शोभा दे रहे हैं, (१६) और वे ऐसे विचित्र हैं कि चित्त को मुग्ध कर लेते है। (१७) जब हाथो से उनके अंचल उड़ते हैं, १८) तो [उनके हारों के] सजल (कातियुक्त) मोती हिलते [दिखाई पड़ते] हैं। (१९) उनके कपोल लोल और ऐसे उज्ज्वल हैं (२०) कि सिंहल के मोतियो [की आभा] को भी वे मोल लेते है। (२१) उनके अधर रक्त युक्त होने के कारण लाल हैं, (२२) [और उनकी नासिका उनके पास] बँधे हुए क्रीड़ा कीर के समान है । (२३) उनकी दंतावली ऐसी शोभा दे रही है (२४) कि उसे दाडिम बीज कहा जाता है। (२५) उनके कण्ठ गहंग (आकर्षक) है और नासिका (२६) विज्ञान और राग की शासिका है। (२७) उनके [नासिका के] मोती स्वभाव से ही शोभित हैं, (२८) और [उनके साथ] अन्य भाव [का चमत्कार ले आने] के लिए बीच बीच मे गुजा लगे हुए हैं। (२९) वे अपने लोचनो के कार्यो का दुराव करके [कटाक्ष करती हुई] (३०) प्रत्यक्ष काम [—वाण] मोचन करती है। (३१) उनके वे आयुध भौंहो के ओट मे रहते है, (३२) और वे सम्मुख चलते हुए शोभित होते हैं। (३३) उनका ललाट जिस पर आड (तिलक) लगा हुआ है, (३४) शरद के चन्द्रमा को भी लज्जित करता है।"

पाठातर—× चिह्नित चरण फ. में नहीं हैं।

(१) १. म. भरंत।

(२) १. धा. अ. ति, द. जि, ना. जु. म. उ. स. सु । २. धा. पान । ३. अ. म. ना. पत्ति। ४. ना. अंजुरी, म. जेनुरी।

(३) १. धा बक्र। २. धा. ज। ३. अ. जेजरी, ना. जरी।

(४) १. मो. ललग, द. तिलग। २. धा. द. कड्डि जेहरी, अ. कट्टि जेजरी, म. कढि जेहहरी, ना. कट्टि जेहरो।

(५) १. धा. अ. फ. सहज्ज, उ. स. सुभाव, द सुभाइ। २. मो. पुडरी, धा पडुरी, अ. फ. ना. म. उ. स. पिंडुरी।

(६) १. धा. म. उ. स. जु, ना. द. जि, अ. फ. तिं। २. मो धा. अ. फ. ना मीन, उ. स. मेन। ३. धा. चित्र ही, ना. चित्र हा, म. हो चित्रे।

(७) १. धा. लोज।

(८) १. म. द. सु लीन, उ. स. सु नील, ना कि लोन।

(९) १. धा. करिन्न। २. धा. म. ना. सेसरी, अ. फ. सेषरी, द. संसरी, उ. स. संधुरी।

(१०) १. धा. मनो जुवान, अ. फ वन्यो ति (त—अ.) जानि (जान—फ), न. बनी ति ज्वान, म. उ. स बनी जुवान।

(११) १. म. उ. स. ना. द. अनंग।

(१२) १. धा. कहूँ तु, स. कहत।

(१३) १. धा. दुराइ। २. म. उ. स. उम्भंर, फ. छुछेरे।

(१४) १. धा. उ स. मना, म. मनौं, अ. फ. मनौ, ना. मनु (= मनउ)।

(१५) १. धा. हरत, द. उ. स. रुलतं, अ. म. रुरत, फ. रुरति, ना. घुलत।

(१६) १. फ. चिचि।

(१७) १. धा. उठंति, म. उ. स. अ. फ. ना. उठत। २ धा. अचल।

(१८) १. ना. द. म. उ. स. रुलंत (रुलति—म. द ना)। २. अ. मुत्ति, फ. मुत्त। ३. धा. मुज्जलं, अ फ. मुज्जले, ना. सजुले, म. उ.-स. सजले।

(१९) १. धा. उच्च, अ. फ. उछ्छ, ना. द. म. उ. स. लोल।

(२०) १. धा लहति मोल, अ. लहत मोह, फ मुहत मोह, द. हसत मोह, ना. लहंत माल, द म उ. स. लहत मोल। २. म. ना. सघले।

(२१) १. धा. ना. म. उ. अधर (अद्धर—म.) अद्ध, अ. फ. अधर रत्त, द. अधरत्त अधर, स. अरद्ध अद्ध।

(२२) १. मो. सुकलि, अ. फ. सकार, म. द. सुक्रील। २ म. क्रील, अ. फ. कीड। ३. धा. अ. फ. वढ्ये, ना. षढए।

(२३) १. अ. फ. म. उ. स. ना सुहत। २. मो. अलमी, अ. फ. दाडिमी, म. ना. आलिमी।

(२४) १. धा. म. उ. स. बीय। २. अ. फ. दाडिमी, म ना. दालिमी।

(२५) १. अ. फ. महग्ग, ना. गहग्ग, म उ. स गहंग। २. म. कठि।

(२६) १. म. उ. स. विनाग। २. ना. वासिका।

(२७) १. मो. सुभा मोति सोभये, धा. सुभाइ मुत्ति सोहये, स. जुभाय मुत्ति सोभये, ना. सुभाय मुत्ति सोभए, म. उ. सुभाय मुत्ति सोहये।

(२८) १. अ. दुराइ, फ. दुताइ। २. धा. मो. अ. उ. स. गज, फ. जंग। ३ म. उ. स. लोभये, द. लभ्भये।

(२९) १. धा. दुराइ कोइ।

(३०) १. मो. प्रत्यक्ष, धा. अ. फ. उ. स. प्रतख्ख, ना. प्रतिष्ष, म. प्रतषि। २. म. कांन।

(३१) १. धा. अवद्ध ओर मोह ही, मो अवधि उच भइये, अ. फ अवद्धि (अवद्ध—फ.) उट भौंहही, द. ना. अवद्धि उट मुहही (मुंहइ—ना.), म० आवध ओट भौंहए, उ. स. अवद्ध ओट भौंहए।

(३२) १. धा चलत। २. मो. सुह सुहये (= सउह सउंहये), धा. सोह सोहही अ. फ. औंह सौहही, म उ. स. सोंह मोहए (सोंहए—म.) उ. सोह सोंहई, ना षसुह सुंहई (= सउह सउंहई)।

(३३) १ धा अ. फ म. लिलाट। २. धा. लाट, मो अट, ना. अट्ठ, उ. स. राज। ३. उ. स. आडये, म राजये।

(३४) १. ना. इंदु। २. धा लग्गए, म उ. स. लाजए।

टिप्पणी—(६) मैन < मदन। (७) सक्क < ष्वष्क्=चलना, जाना। (८) कच्छ < कक्षा। (९) सेउर < शैवाल। (१०) वनित्त < वनिता। (११) अनेक < आणिक (दे०)=वक्र, बाँकी। (२०) मुल्ल < मूल्य। (२६) विमान < विज्ञान। (३१) अवध्धि < आयुध।

[१५]

दोहरा— ढिल्ली[१] गुहि[२] अलकइ*[३] लता सवणि सुनहु[४] चहुआन। (१)
जानु[१] भुजंग[२] सउंह* चढउ*[३] कंचन षंभ प्रमांन[४]॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] " [इन सुन्दरियों की] ढीली गूथ कर लटकाई हुई अलक-लता, हे चहुआन पृथ्वीराज) सुनो, (२) ऐसी लगती है मानो कंचन के स्तभ पर सचमुच सम्मुख ही भुजग चढा हुआ हो ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. धा. अ. ढिल्लिय । २. मो. गह, धा जुहि, म. उ. स. द. गुह, ना. गुही । ३. धा अ. फ. अलकै, मो. अलकि (=अलकइ), म उ-म. अलिकी, द. अलक । ४. मो. श्रवणि शुचढ़, धा. द. स्रवन सुनं, अ. फ. स्रवन सुनहि, म. ना. श्रवन सुनहु ।

(२) १. मो जानु, धा. मनु, शेष में 'जनु' । २. धा भुवग, म भुज । ३ मो सहु (=सहउ < सउह < सउह) चढु (=चढ़उ), धा साम्हो चढे, अ फ. ना संमुह चढे, म. उ. स. सम्मुष चढे । ४. अ. फ. प्रवान ।

[१६]

दोहरा— रहहि चद मम कव्वु*१ करि करहि त कव्वु*२ विचारि३ । (१)
जितिय नयरि सुंदरि कही१ सु तिय दिष्षिय पनिहारि२ ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] "हे चद, रहने दे, काव्य मत कर, और यदि काव्य करे तो विचार कर करे, (२) [क्योकि] तूने जिन स्त्रियों को नगरी की सुन्दरियाँ कहा है, वे स्त्रियाँ तूने पनिहारिनें ही देखी हैं ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. रहिहि चंद मम कव्वि, धा. अ. फ. रहहि चंद मम कव्वु *(कव्व–अ..फ.), ना. उ. रहहि चंद मम गब्ब (गब्बु–ना., गर्व–उ.), म. स. रहि रहि चंद म गब्ब (गरब–म.) । २. मो. करिहि त कव्वि, धा. करहि त कव्व, अ. फ कहहि न कव्वु, ना. करहि तु कव्वि विचारि,,म. उ. स. करहि (करिहि–म.) त कवित । ३. मो. धा. विचार ।

(२) १. मो. जीतीय नगरि सुदर सयल, धा. जि तुम नयरि सुदरि कही, अ. फ. जितैं नयर सुंदरि कही, द. ना. जे तुम्ह (तुम–ना.) नयरि सुदरि (सुंदर–ना.) कही, म. उ. स. जे तुम नयरि सुंदरि कही । २. धा सवि दीठी पनिहार, मो. सुतिय दिष्षिय पनिहार, अ. फ. सब दिष्षिय पनिहारि (पनिहारु–फ), द. सहि दिष्षिय पनिहारि, ना. ते सब दिषी पनिहारि, उ. स. सह दिष्षिय, म तेस दिषय पनिहारि ।

टिप्पणी—(१) कव्व < काव्य । (२) नयरि < नगरी

[१७]

दोहरा— जांहनवी तटि पिष्षियइ*१ रूव२ रासि वै३ दासि । (१)
नगर ति१ नागर२ नर घरणि रहहि३ अवासि अवासि+४ ॥ (२)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "जाह्नवी के तट पर जो रूप-राशि देख रहे हो, [अवश्य ही] वे दासियाँ हैं । (२) नगर के नागर नरो की गृहणियाँ आवासो मे ही रहती हैं ।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

+ चिह्नित शब्द अ में नहीं है।

(१) १. मो. जाहनवी तटि पिषिइ (< पिषियि=पिषियइ), धा. जाइ नदी तट पिक्खियहि, ना. अ. जाह्नवि टटि पिषियं, फ. जाहर्नवि टट पिषीयं, ना द जाहनवी (जाह्नवी–ना) तटि पिषिये (पिष्षियहि–ना.), म. ड. स जाहनवी तट दिषि दरस। २. मो. ना. म. उ. स रूप। ३. धा. वै, मो अरु, अ. फ. ते।

(२) १. ना. ज, म. उ. स. सु। २. ना म उ. स नागरि। ३ मो रहिहि। ४. अ. ना. अवास अवास, फ अनूपम वास।

टिप्पणी—(१) रूव <रूप।

[१८]

दोहरा—दंसन[१] दिणिअर दुल्लही[२] निय[३] मंडन भरतार। (१)
सुह कारणि[१] विहि निम्मयी[२] सु[३] दुह[४] कत्तरि करतार[५]॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] "वे दिनकर के लिए भी दुर्लभ दर्शन वाली है—दिनकर भी उन्हे नही देख पाता है, और अपने भर्त्तार (पति) का मंडन करने वाली (पतिव्रता) हैं। (२) वे विधाता के द्वारा सुख के लिए निर्मित है, और वे कर्त्तार (विधाता) की [रची हुई] दुःख की कतरनी हैं।"

पाठान्तर—(१) १. मो. दरसन, अ. दरिसन, फ. दरसन, ना. तिन दरसन, म. उ. स. ते दरसन। २. मो. दणिअर दुल्लही, धा. दिनयर दुल्लही, अ. दिनयरु दुल्लही, फ. दिनीयरु दुल्लही, म. दिनीयर दुलहि, ना. उ. दिनयर दुलहि, स. दिनयर दुलह। ३. अ. फ. निज।

(२) १. धा. सद्ध कारन, अ. फ. सुष कारन, ना. म. उ. स. सुह कारन। २. मो. विधि निर्मयी, अ. फ. विधि न्रिमई, ना. विधि निर्म्मई, म. विह निरमई, उ. स. विह न्रिमई। ३. अ. फ. ना. म. में यह शब्द नहीं है। ४. मो. दह, अ. दुष, फ. दुक्ख। ५. मो. कतरि कतार, धा. कत्तिन करताफ. तरि करतारु, ना. कत्तनि करतार।

टिप्पणी—(१) दसन < दर्शन। दिणिअर < दिनकर। दुल्लही < दुर्लभा। निय < णिअ < निज। (२) विहि < विधि। निम्म < निर्+मा। दुह < दुःख। कत्तरि < कर्त्तरी।

[१९]

दोहरा— कुवलय रवि लज्जा हरणि[१] रहि[×] भजि[२] भंग[३] सरणिण[४]। (१)
*सरस सुध्धि[१] वरणन करउ[*२] सु[३] दुल्लहि[४] तरणि[*] तरुणिण[५]॥ (२)*

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "जो कुवलय—नीली कुमुदिनी—के सदृश सूर्य से लज्जा करती हैं, [किन्तु जिनके पद्मिनी होने के कारण] भ्रमर जिन की शरण में भाग रहते हैं, (२) सरस सुधि (कल्पना) के साथ [अब] उन सूर्य के लिए भी दुर्लभा तरुणियो का मैं वर्णन कर रहा हूँ।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के है।

× चिह्नित शब्द द. में नहीं है।

(१) १. धा. लज्जा रहन, अ. लिज्जइ रहन, फ. लज्ज रहन, ना. लज्जइ हरणि,

उ. लज्जा विहमि, म. स लज्जा रहसि। २. मो. रिद्दि मंगि, ना द. उ स. रहि मगि। ३. अ. फ. ना. उ. स. भृग, म. भ्रग। ४. अ. फ. म. सरंग, उ. स सरन्न।

(२) १. धा. सरस सुध, अ फ. म. उ. स. सरस बुधि, द सरस ब्रभ्धी, ना. सरस बुधि। २. मो. चरणन (<वरणन) करु (=करउ), धा. अ. वरनन कियो, फ. वरुनन कियो, ना. बर्नन कियौ, म. द. व्रनन कियो, उ. स. वृंनन कियौ। ३ धा. अ. फ ना. म. उ. स. में यह शब्द नहीं है। ४ ना. माभ्र। ५. धा. तरुन तरन्नि, मो. तरण्य (< तरणि) तरणं (=तरण्ण), म. तरुन तरग, अ. फ. तरुणि तरु'नि, (तरु न–अ.), ना. तरुणि तरणि, उ. स तरुन तरु'न।

टिप्पणी—(१) हर < ग्रह। भग < भिंग < भृङ्ग। सरण < शरण। (२) सुद्धि < शुद्धि=चेतना। दुल्लाह < दुर्लभा।

[२०]

भुजंग प्रयात— पुनर जन्मेजय*[१] ते[२] जानि जग्गे[३]। (१)
रइ संकि ते सेस ते[१] पूठि[२] लग्गे। +(२)
मांग+[१] मोहन्नि लय मुत्ति[२] वानी। (३)
मनउ*[१] धार[२] आहार कउ*[३] दूध[४] तानी। (४)
तिलक नग[१] निरषि[२] जग जोति[३] जग्गी[४]। (५)
मनउ*[१] रोहिणी रूव उर[२] इंद लग्गी[३]। (६)
रूव[१] भुव देषि अवरेषि[२] जग्यउ*[३]। (७)
मनहु[१] काम करि चाप[२] उडि अप्प[३] लग्गउ*[४]। (८)
पंगुरे अयन ते नयन[१] दीसं। (९)
विच्चि[१] जोति सारंग निर्वात रीसं[२]। (१०)
तेज त्राटंक ते[१] स्रवन डोलं[२]। (११)
मनउ*[१] अर्क राका[२] उदइ*[३] अस्त लोलं[४]।[५] (१२)
जलज जिम भाइ तह हीर लोलं[१]। (१३)
दिव्थ दरसी तिहां[१] ढिल्लि[२] बोलं। (१४)
अधर आरत्तता रत्त साई[१]। (१५)
जनउ+[१]* चंद बिंबीय[२] अरुने बनाई।[३] (१६)
कपोलं कलंगी[१] फलिदीव[२] सोहं। (१७)
अलक अरोहं[१] प्रवाहे ति[२] मोहं। (१८)
सिता[१] स्वाति बिंदे य ते[२] हार भारं। (१९)
उभय ईस[१] सीसं मनउ*[२] गंग धारं। (२०)
करं कोकनद्दं[१] ति[२] कंचू (=कञ्चू) समुभ्भं[३]। (२१)
मनहु[१] तिथ्थ राज[२] त्रिवल्ली अलुभ्भं[३]। (२२)

उप्पमा पानि अंगत्र[१] लभ्भं[२] । (२३)
लज्जि दुरि[१] केलि कुल[२] मम्फ[३] गभ्भं[४] । (२४)
नितंब उतंगं जुरे[१] बे गयदं । (२५)
मम्फ[१] रिपु छीन[२] राषउ[३] मयंदं ।[४](२६)*
सक्कि[१] सोवन्न मोहन्न थंभं । (२७)
सीत संनेह[१] रितु दोष भंग[२] । (२८)
नारंग[१] रंग[२] पींडी सु छोटी[३] । (२९)
मनउ[१]+ कनक कुंडीनु[२] कुंकंम लोटी[३] ।[४](३०)*
रोहि[१] आरोहि[२] मंजीर सद्दं[३] । (३१)
मंदु मृदु तेन[१] परकीर[२] वद्द[३] । (३२)
एडिया[१] डंबरं[२] श्रोण[३] वाणी[४] । (३३)
फिरे कच्च चीनीन मइ रत्त[१] पानी । (३४)*
नषं निर्मल[१] दर्पणं[२] भाव दीसं । (३५)
समीपं सुकीय कियं मान रीसं[१] । (३६)
अंबर[१] रत्त नीलं त[२] पीतं । (३७)
मनउ[१] पावस[२] धनुष[३] सुरपत्ति कीतं । (३८)*
सुकीया यसो जीयनं स्वामि जानं[१] । (३९)
पंग रवि साय[१] अरविंद[२] मानं ॥ (४०)

अर्थ—(१) [चन्द ने कहा,] "[उनकी वेणियो को देखते हुए ऐसा लगता है, कि] मानो जो जन्मेजय थे, वे पुनः [नाग—] यज्ञ कर रहे हैं, (२) जिससे शकित होकर जो [नाग] शेष थे, वे आकर [उन सुन्दरियों की] पीठ पर लग गए है। (३) उनकी मोहिनी माँगे मुक्ताओ का वर्ण (रग) लिए हुए ऐसी लगती हे (४) मानो उन सर्पो के आहार के लिए दूध की धारा तानी—प्रवाहित की हुई—हो। (५) [उनके मस्तक पर के] तिलक के नग को देख कर जगत् की [समस्त] ज्योति [जैसे] जाग पड़ी है, (६) [वे नग ऐसे लगते है] मानो रूपवती रोहिणी इन्दु के उर मे लगी हो। (७) भौहो को देख और उन [की सुन्दरता] का लेखा करके रूप इस प्रकार जाग गया है (८) मानो काम के हाथो मे चाप अपने आप उड़ कर लग गया हो । (९) उनके नेत्र गति में ऐसे पगुल (अचचल) दिखाई पड़ते हैं (१०) जैसे बीच (ओट?) मे निर्वात दीप-शिखा हो। (११) उनके श्रवणो मे तेज (दीप्ति) युक्त ताटक ऐसे हिलते हैं, (१२) मानो उदित सूर्य और अस्तमित राका (पूर्ण चन्द्र) [एक साथ] हिल रहे हों। (१३) [उनके शरीर की काति से उनमे लगे हुए] चचल हीरे का भाव (सौन्दर्य) जलज (मुक्ता) जैसा हो जाता है। (१४) वे दिव्य दिखाई पड़ती है, और धीमे स्वरो मे बोलती हैं । (१५) [उनके सुन्दर मुख-मडल मे] उनके आलक्तक के समान साति (अत्यत) रक्त अधर ऐसे लगते हैं, (१६) मानो चन्द्रमा मे अरुण कुन्दुरू के फल बनाए गए हो। (१७) उनको कपोलों पर कलगियाँ कालिंदी के समान शोभा देती हैं, (१८) और उनके अरुद्ध (मुक्त) अलक प्रवहमान होते हुए मुग्ध करते हैं । (१९) श्वेत

स्वाति-विंदु (मोतियो) के उनके भार हारी है, (२०) जो [उनके कुचो पर] ऐसे लगते हैं मानो दो ईशो (शिवो) के सिर पर गंगा की धारा हो । (२१) उनके कोकनद (कमल) सदृश करो द्वारा कच इस प्रकार सुलझाए जा रहे है (२२) मानो तीर्थराज मे त्रिवेणी आरूढ हुई हो । (२३) उनके अगो का पानी (काति) ऐसी उपमा प्राप्त करता है कि (२४) कदली-गर्भ अपने कुल के मध्य मे जा छिपा है। (२५) उनके नितंब ऐसे उत्तंग है मानो दो गजेन्द्र आ जुटे हो (२६) और [उनके मध्य मे उनकी कटि ऐसी लगती है] मानो उनके बीच मे उनका शत्रु सिह, जो [उनसे सघर्ष करते करते] क्षीण हो गया हो, रख दिया गया हो । (२७) उनके जंघे शक्र (इन्द्र) को मुग्ध करने वाले स्वर्ण-स्तभ [*जैसे] है, (२८) जो शीत के संनिभ (सदृश) ऋतु दोषो को नष्ट करते है। (२९) उनकी नारगी के रंग की छोटी पिडलियाँ हैं, (३०) जो ऐसी लगती है मानो स्वर्ण की कुडियाँ—लुटियाँ (जल-पात्र विशेष)-कुंकुम मे लिपटी हुई हो। (३१) उनके मंजीर (नूपुर) आरोह अवरोह युक्त ऐसा शब्द करते है (३२) मानो मन्द, मृदु तथा तीव्र स्वरो मे प्रकीर (तोते) बोल रहे हो। (३३) उनकी एड़ियाँ शोणित के वर्ण की (लाल) है, (३४) और ऐसी लगती है, मानो कॉच की चीनी शीशियो मे लाल रंग का पानी फिर रहा हो। (३५) उनके निर्मल नख दर्पण के भाव के (सदृश) दिखाई पड़ते है, (३६) [और उनमें पड़ता हुआ उनके पति का प्रतिबिंब ऐसा लगता है] मानो स्वकीया ने समीप ही रोषपूर्ण मान किया हो [और पति उसके चरणो मे पड़ा हो]। (३७) उनके वस्त्र लाल, नीले, और पीले हैं, (३८) और वे ऐसे लगते हैं मानो पावस मे सुरपति (इन्द्र) ने धनुष [धारण] किया हो। (३९) ये स्वकीयाएँ स्वामी को इस प्रकार जीवन जैसा जानती है, (४०) मानो साति (सुन्दर) अरविंद रवि को ग्रहण कर रहा हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित चरण या शब्द धा. में नहीं हैं।

(१) १. धा. पुनरजन्मजे, मो. अ. फ. ना. पुनरजनमेज, द. पुनरजंनमे, म. उ. स. पुनरजनमज्जे। २. ना. द. उ. स. ते रहे। ३. धा. जानि जग्ग, फ. जाइ जग्गो।

(२) १. अ. फ. रहे शेष (स-फ.) सेषते, द. रहे सोष से तिके, ना. सकि रहे सेसते, म. उ. स. छुये सेस (सेष-म) सेसा तिके (तिक-म., निके-उ)। २. अ. पुट्ठि, म. उ. स. पिठ्ठ।

(३) १. मो. माग, अ. फ मान, द मंग, उ. मग मग्ग, स. मनु मग्ग, म मग। २. धा माहन्नि ले मुत्ति, मो. अ. फ. मोहन्न लय मुत्ति, उ. मोहन्न मोतीन, म. मोहन मोह मातीन, स. मोहन्न मोतीन, ना. मोहन्न मुत्तान।

(४) १. मो. मनु (=मनउ), धा. मनो, उ. स. मनों, अ फ. म. मनो, ना. मनु (=मनउ)। २. द. सार, ना, दुद्ध। ३. धा. कह, अ. फ. कौ, उ. स. कै, म. के, ना. कु। ४. धा. अ. फ. उ. स. दुद्ध, ना. धार।

(५) १ म. उ. स तिलक्क नग। २. मो. निरिषि। ३. मो जग ज्योति, धा ना जगि जोति। ४. मो. जागी, म. लगी।

(६) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, (=मनउ) धा. अ. फ म. मनौ, उ. स. मनो। २. मो. अह। ३. मो. इद लागी, ना. इदु लग्गा, म. इद मगी।

(७) १. मो. रूप, अ. फ. ना. रूव, म. उ. स. रुअ। २. धा. भुष देखि अवरेष, अ. फ. भुव देषि अवरेषि, ना. भुव देषि अवरोंष, म उ. स. अब्बरेष भुअ देखि (देष-म.)। २. धा ढग्ग्यो, मो जग्यु (=जग्यउ), अ फ दग्यो, म. ना. जग्यौ।

(८) १. धा. उ. स. मनो, ना. मनु (=मनउं), म. अ फ. मनों। २. धा. काम करि चंपि, मो. अ. ना. काम कर चाप, उ. स. काम चापं, फ. काम करि वाप (<चाप)। ३. मो. उडि आप, धा. अ. फ. उडि अप्पु, ना उ उडि, म. उडत, स. कर उडि। ४. मो. लग्यु (=लग्यउ), धा. अ. फ. उ. स. लग्यो, ना. लग्यौ, म. नग्यौ।

(९) १ धा पंगुरे जेन ते नैन, मो. पगरे जेन ते नयन, द. पगुरे नयन ते अयन, अ. फ. ना पगुरे नेन ते (तै—ना) अन, म प्रगरे नयन विचि (चिवि—म.) अपन, स प्रगट्ट नयन विचि अयन।

(१०) १. मो विचि (=विचइ,) ना. विचे, द मनौ, म मनौं, अ. फ बचे। २. मो. नृप सरीरं, धा अ. फ. ना. निर्वात दीस, द. निर्वास रीस।

(११) मो. ते त्राटक ते, धा. अ. फ. तेज ताटकता, म तिन तेज नाटक तै, ना. तेज त्राटक ते। २ ना. जेलं, म. डोल।

(१२) धा उ. स. मनौं, अ. फ. म. मनौ, ना. मनु (=मन)। २ मो. रा। ३. मो. उदि (=उदइ), धा अ फ. म. ना उदै। ४. म तोलं। ५ ना द म. उ स. में यहाँ और है (स पाठ) :—

कही चन्द कव्वी उपमा प्रमानं। मनु चन्द रथ भंग द्रय भानु जान।

(१३) १. धा द. जलद जभीर भइ मध्य जोल, अ. फ जलज जभीहीर भय मध्य जोलं, ना. जलज जभीर से मध्य जोल, म. उ. स. उरज्ज जंभीर भई मझ जोल।

(१४) १. अ. फ. दिव्य दरसी तहां, उ. स. उव दिव्य दासी अरु, ना. दिव्य दरसीय अरु, म. उव दिष दरसी अरु। २ धा ना. म. उ स. ढील, फ. दिव्य।

(१५) १. मो. साही, उ. स साइ, म. सांई।

(१६) १. मो. जनु (=जनउ), अ. फ. उ. स. मनो, म मनौं, ना. मनु (=मनउ)। २ धा. बिय बीय, मो बीबी, ना. द. म. उ. स. बिय बिंब, अ. बंबीय, फ. बदनीय। ३. ना द. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ) :

कहो ओपमा दत मोर्तीन कर्ती। मनो बाज वाला (माला—ना. म. उ. स) जुग सोभयती।

(१७) १. उ. स. कलागो। २. अ. कलिंदीय, फ. कलदीय, द. कलि दीख।

(१८) १. मो. आरोह। २. म. उ. स. प्रवाहत।

(१९) १. ना. सता। २. धा. छुट्टै जिते, अ. फ. बुद जिता, ना. बिंदु यते, उ. बुदं जिसे, म. स. बुद जिते।

(२०) १. मो. इं। २. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउ), धा. उ. स. मनो, म. अ. फ. मनौं।

(२१) १. अ. फ. कर कोल कंडू। २. धा. अ. फ. न, म. जि, ना. सु। ३. ना. समुज्ज।

(२२) १ धा. उ. स मनो, अ. फ. म. मनौं, ना. मनु (=मनउ)। २ धा. अ. फ. म. उ. स. तिथ्थरराया। ना. तिथ्थराजाधि। ३. अ. फ. उरइझं, ना. अरुज्ज।

(२३) १. मो. उप्पमा पान अगन, धा. उप्पमा पानि अंगून, अ. फ. उप्पमा पानि अगूनि, म. उ. स. तिंन ओपमा पांनि आनन, ना. ओप्पमा पानि आनद। २. ना. नब्भ।

(२४) १. धा. अ. फ. लज्जि दुर, ना. लज्जि कुल, उ. स. लाजि कुल, म. लजत कुल। २. म. केलि दुरि। ३. धा. म. उ. स. मझ्झ, मो. अ. फ. मधि, द. ना. मध्य। ४. ना. गर्भं।

(२५) १. अ. फ. जरे।

(२६) १. धा. मध्य, मो. मध, म. तिनं मझि, उ. स. तिनं मझ्झ, ना. मनुं (=मनउ) मध्य, अ. फ. मढि। २. धा. फ. ना षीन, म. द. छीन, अ. क्षीन। ३. मो. राषु (=राषउ), धा. रक्ख्यो, अ. फ. म. उ. स. रष्यौ, ना. रिष्या। ४. म. उ. स. ना. द. में यहाँ और है (स. पाठ) :

कटी काम मापी सुकामौ कराल। मनों काम की जोति बढ्ढी सराल।

(२७) १. अ फ. साष, उ. स. जघ व्रन, म. जंघं व्रंन, ना. सकु।

(२८) १. धा. सीत उसनेह, अ. फ. ना. सीत उष्नेह, म. उ. स. मनो सीत उष्नेव। २. धा. फ. म. उ. स. ना. रितु दोष रभ, अ. रति दोष रभ।

(२९) १. अ. फ. नारिंग, द. नारिंगी, उ. स. नरंगीनि, म. नारंगीनि, ना. नरंगसु। २. धा. अ.

फ. रंगीय, ना. रगसु, म. उ. स. रंगीसु। ३. मो. सुछुटी (=छोटी), धा ना. छछोरी, अ. फ. छछुटी, द. म. उ. स. छछोटी।

(३०) १ धा. अ. फ उ. स मनो, म मनौं, ना. मनु (=मनउ)। २. मो कुडली, द. ना. म. उ स. कुंदीरु, अ. फ. लुठ्ठीय। ३. धा. कुकुम लोरी, मो कुकुम लपेटी, अ. फ. कुकुम लुट्टी, ना. म. उ. स. कुकुंअ लोटी। ४. ना. द. म. उ स. में यहाँ और है (स. पाठ):

किधौं के सर रंग हेमें झकोरं। किधौं बढ्ढिय बाय मनमथ्थ जोर।

(३१) १. उ. स. सदरोहि, म. सदरोह। २. म. अरोह, ना. द. आरोह। ३. म. उ. स. वादे, धा. सद्दे, ना. सद्दैं।

(३२) १. म. मद मृदु तेज। २ धा. मो. प्राकार, अ. फ. प्रकार, उ. स. परकार, फ. प्रकार, म. परकर। ३. धा. वद्द, द. सद्दै, ना. वद्दे, म. उ. स वादे।

(३३) १. मो. उड्डिआ, धा. फ. एडि इसआ, म उ. स. पग एडियं। २. मो इवर। ३. ना. बनी श्रोणि। ४. म. बांनी।

(३४) १. मो. फिरे कच चीर मिरत (=मइरत्त), धा. फिरैं कच्च रच्चीन सुदरत्त, अ. फ. मनौ कच्च (कव्व–फ.) रचीनि में रत्त, ना. मनु (=मनउ) कव्व जीतीनि मै रत्त, द. उ स. मनो कच्च चीनीन में (मै–द.) रत्त, म. मनौं कव चातीत मे रत्त।

(३५) १. धा. निम्मल, म. उ. स. न्रिम्मलं। २. धा. दप्पन, म. उ. स. द्रप्पन।

(३६) १. मो. समीपा सुकीया मनु (=मन) समान रीसं। धा. समीपं समीव किय माननीरस, अ. फ. समीपस् सुकीय किय मानरास, ना. म उ. स. समीपं सुपीय (सुकीय–ना.) किय मान (मानु–ना.) रीसं।

(३७) १. म. उ. स. रग (रंगं–म.) अम्मरं, द. अंमरं। २. धा. म. सु।

(३८) १. धा. उ. स. मनो, ना. मनु (=मनउ), म. अ. फ. मनौं। २. धा. पावसे, अ. फ. पावसैं। ३. ना. द. म. उ. स. धनुक।

(३९) १. मो. सुकीचा यसोज्जीयनं स्वामि जानं धा. सुकीयं समीपं नवे सामि जान, अ. फ. सुगीयं सुकीयं जियं स्वामि जान, ना. द. म. उ. स. सुकीवं सुजीव जिय स्वामि (सामि–म.) जानं।

(४०) १. धा. पग रवि दरिस, अ. फ. षंग रव हरस, ना. द. पग (पंगु–ना.) रवि दरस, म. रवी पंग दरस, उ. स. रवी पंग दरसं। २. म. उ. स. अरब्बिद (अरविंद–म.)।

टिप्पणी—(२) पूठि < पृष्ठ। (३) मुत्ति < मौक्तिक। वानी < वर्ण। (७) भुव < भू < भ्रू। (१०) रीसं < सदृश। (१५) साई < साति=अतियुक्त। (१७) कलिंदो < कालिंदी। (१८) अरोह < आरूढ। (२२) अलुझ्झ < आरूढ। (२४) गम्मं < गर्भ। (२५) गयंदं < गजेन्द्र। (२६) मयंद < मृगेन्द्र। (२७) सक्कि < शक्र। (२८) संनेह < संनिभ। (३१) सद्द < शब्द। (३३) वाणी < वर्णी। (३८) कीतं < कृत। (४०) पंग (दे०)=ग्रहण करना। साय < साइ < साति=अतिशय युक्त द्रव्य।

[२१]

*दोहरा— हय गइ[१] दलु सुंदरि[२] सहरु[३] जउ[*४] बरनउ[*५] बहु बार[६]। (१)*
*एह[१] चरित्त कह[२] लगि कहउं[*३] सु चलहु[४] संदेह[५] दुआर[६]॥ (२)*

अर्थ—[चद ने कहा है,] (१) "हय, गज, दल (सेना), सुंदरियों और सुभटों का यदि बहुत समय तक वर्णन करूँ (२) तो यह चरित्र कहाँ तक कहूँगा? अतः स्देह देवी के द्वार पर चलो।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द शशोधित पाठ के हैं।

(१) १ मा गइ, शेष में 'गय'। २ धा द सुदर। ३. धा अ. फ सुहर। ४. मा जु (=उ), धा. जे, ना. उ. स. द जौ, अ फ. जै। ५ मो वरतु (=वरनइ), ना. व्रत्र, द बरणु (=वरणउ), धा. वरनह। ६. धा. वारि।

(२) १. धा. फ. यह, अ यय, द. यहु, ना. इय, उ स. इह। २ धा. ना. अ फ. कव। ३. धा गिन, मो. स कहू (<कहु=कहउं), अ. फ. कहै, ना. कहौ, उ गनों। ४. मो. चलइ, धा. चलउ, अ. फ ना चलि। ५. उ स. पहुपग। ६. फ दुवारि।

टिप्पणी—(१) गइ < गज। महर < सुभट।

[२२]

भुजंग प्रयात—

*दिष्षियं[1] जाइ[2] सदेह सोह[*3]। (१)*
अर्क[1] सा[2] कोटि संपन्न[3] देह[4]। (२)
मडपं[1] जास सोवन्न[2] गेह[3]। (३)
मुत्तिआ छत्ति[1] दीसइ[*] न[2] छेह[3]। (४)
श्रोणि सम भेष[1] बहु महिष रत्ती[2]। (५)
प्राति[1] पूजति[2] नर नेम अत्ती[3]।[4] (६)
पंड[1] भारथ्थ उहि[2] बार सज्जी[3]। (७)
दषि[1] चहुआन किलकाल[2] गज्जी[3]।[4] (८)
*वयन[1] आयास सह[2] भउ[*3] विराजं[4]। (९)*
होय जय पच्छ[1] प्रथीराज[2] राजं। (१०)
दच्छनं[1] अंग करि नमसकारं। (११)
*मध्य[1] ता नयर[2] किज्जइ[*3] विचारं॥ (१२)*

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने] जाकर सदेह देवी के सौध (मन्दिर) को देखा। (२) उसका देह कोटि सूर्य जैसा संपन्न था। (३) जिसका मडप सोने के गृह का था (४) और जिसके छत्र मे लगे मोतियो का अन्त नही दिखाई पड़ता था, (५) उसका शोणित के समान [रक्त] वेष था और वह महिष पर बहुत अनुरक्त थी। (६) प्रात के समय मे मनुष्य अति नियम के साथ उसकी पूजा करते थे। (७) पाडवो को महाभारत मे उसने उस बार सजाया था। (८) चहुवान (पृथ्वीराज) को देख कर वह [फिर] किलकारती हुई गर्जना कर उठी। (९) उसका यह वचन समस्त आकाश मे विराजित हुआ, (१०) "राजा पृथ्वीराज के पक्ष मे विजय हो!" (११) [यह सुनकर] दक्षिण अंगो से उसे नमस्कार कर (१२) उस नगर मे उस (पृथ्वीराज) ने विचरण (?) किया।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. देषीए, म. तहां दिषिय, उ. स जहां दिष्षिये, ना. दिष्षीय। २. मो. ना. द म. उ. स. जासु। ३. मो. संपन्न देह सुह (=सोह), म. उ. स. संदेह सेह, ना. सदेश सोह।

(२) १. म. उ. स. उव अर्क (अरक-म.)। २. ना. सी। ३. धा. सपुन्न। ४. धा. दोह।

(३) १. मो. मडपा, धा. मडपै, अ. फ. ना. मडप, म. उ. स. बने मंडपं। २. मो सोभन, ना म. उ. स. जासु सोवन्न। ३. म. ग्रेह, अ. फ सोहं।

(४) १ धा. मुक्तिय छित्त, मो. मोत्तीआ छत्ति, अ. फ मुत्तिय नक्षित, म. उ. स. तिन मुत्तिय (मुठिथ–म.) छत्र, ना मुत्तियां छत्र। २. धा. ना अ. फ. म. दीस, मो. दिशि (=दिसइ) न, फ सोवन्न। ३. द. सोह।

(५) १ मो. श्रेणि शम मेष, धा. श्रोन सत एक, ना द. श्रोन सित (सत–ना.) महिष, अ. फ महिष सत एक, उ. स. रुधि सित्त माईष, म. रुधि सत्त महिष। २. मो. बहू मिहिष रर्त्ता, धा महि महिष रत्ती, अ फ. बहु श्रोन रत्ती, ना बहु मष्ष रता, उ. स. बहु मष्ष रत्ती (रार्ता–उ.), म बहु महिष रंती।

(६) १ धा अ. फ. प्रात, मो. राति, म. उ. स. तिन प्रात। २. धा. पूजत। ३ धा. नय अत्ता, अ. फ नेम मत्ती, म. नेम अती, ना. नेम अत्ती। ४. म. उ. स में यहाँ और है (स. पाठ) :—

भुज डड दु देस देस प्रकार। भ्रमैं देवता इद्र लभ्में न पार।
बजै दु दभी देव देबाल निझं। बर उठ्ठि झंगीत गानं पवित्त।
बजै सद्द झझ सम जोग भिद्द। निरत्त न पाय तिनं कब्बि चदं।

(७) १. म. उ. स. सुष पड। २ मो. विय वार, धा. विहु वार, फ. उइ वार, अ. उहि बार, ना. बीय बेर, उ. स. विय वंन, म विय बेर। ३. धा. ना. उ. स. म. सार्जा, अ. फ. रज्जी, ना. जाजी।

(८) १. धा. दिष्ष, म. उ. स. मुष देखि। २. धा. कलिकार, फ. किलकारि, ना. म. अ. किलकार। ३. धा. गार्जी ना जागी।४ म. ना. उ. स. में यहाँ और (स. पाठ) :—

प्रभा भान तेज बिराजै अकारी। मनो अग्नि ज्वाला जल म उजारी।
नमो तुअ तातं नमो मात भाई। तुअ सक्ति रूप जगत्तं बताई।
तुअ थावर जंगम थान थान। तुअ सत्त पाताल सरतं सतानं।
तुअ मारुतं पानिम अग्गि मट्टी। तुअं पंच भूतं स्वयं देह थट्टी।
सुअं स्वस्ति चदं अनद अनदी। भई मोह माया जपैं जाप बंदी।

(९) १. धा. तनु, द. म. उ. स. तवे बयन (वैन–म.), ना. तव बयन। २. धा. आकास सा, अ. फ. आकास सह, ना. द. म. उ. स. आकास महि। ३. मो. मु (=मउ), धा. भो, अ. फ. ना. भौ, द. भा, उ. स. भयो, म. भयौ। ४. धा. विराजै, उ. स. ताजं, म. तराज।

(१०) १. धा. अ. फ. होइ जय पत्त, उ. स. तुम होइ जय पत्त, म. तुमं होय जैयत, ना. हूयं जयतु तुव आज। २. धा. प्रिथिराज।

(११) १. धा. दछिछनें, फ. वछिन, ना. दष्षणं, म. उ. स. तब दछ्छिनं। २. मो. नामसकरं, फ. निमसकारं।

(१२) १. उ. मधुर मध्य, म. धुरं मध्य, स. धुव मध्य। २. अ. म. नैर, फ. नैन, ना. नगर। ३. धा. म. कीजै, मो. किजि (=किजइ), अ. ना. कीनौ, फ. मनमध्य।

टिप्पणी—(१) सोह < सौध=प्रासाद, मंदिर। (४) छत्त < छत्र। छेह < छेअ < छेद (?)=अन्त, नाश। (५) श्रोणि < शोणित। रत्त < रक्त। (९) सह < सभा (?)=सब।

[२३]

भुजग प्रयात— *लंगरी जूथ[१] तिनके[२] प्रसगा। (१)*
दिष्षिये[१] कोटि कोटिन+[२] नंगा[३]। (२)
जिते[१] रूप के जूप×[२] जुप्पे जुआरी[३]। (३)*
उच्चरे[१] सोंह[२] आनं न[३] पारी। (४)

जिते[१] साध[२] संभारि[३] षेलंत लष्षे*[४] । (५)
तिते[१] देषिए[२] भूप दानवं विपष्षे*[३] । (६)
जिते[१] छइल[२] संघट्ट[३] वेसानि[४] रत्ते । (७)
तिते दव्व षीअत्त*[१] हीनेति*[२] गत्ते । (८)
जिते[१] दासि के आसि[२] लग्गे[३] सरूपा । (९)
मनउ*[१] मीन चाहंति[२] बग मध्य कूपा[३] । (१०)
नायिका[१] देषि[२] नर नयन डुल्ले[३] । (११)
रहे[१] सुरलोकि[२] सह देव भुल्ले[३] । (१२)
उच्चरइ*[१] वयन निसि केउ[२] जग्गे[३] । (१३)
मनउ*[१] कोकिला भाष संगीत लग्गे[२] । (१४)
ऊडइ[१] अब्बीर सेझ्या[२] समारइ*[३] । (१५)
मनउ*[१] होय वासंत[२] भूपाल दुआरइ*[३] । (१६)
कुसुंभ सा[१] चीर सा[२] कीर सोभा । (१७)
मध्य[१] ता काम कदली[२] सु[३] गोभा[४] । (१८)
राग[१] छत्तीस[२] कंठे[३] करंती[४] । (१९)
बीन[१] बाजं ति[२] हथ्थे[३] धरंती[४] । (२०)
दिष्षि[१] अभिमान[२] मृगी ठटुक्की । (२१)
मनउ*[१] मेनका[२] नृत्त तइ*[३] तार[४] चुक्की । (२२)
बरणते* भाय लग्गइ[१] ति भारे[२] । (२३)
पट्टने[४] मेह[३] दीसे[३] संवारे[४] ॥ (२४)

अर्थ—(१) [चद ने कहा] "यहाँ हम लँगरी—वस्त्रधारी साधुओ के—यूथ देखते हैं, तो उनके प्रसंग में—साथ ही—(२) कोटि-कोटि नग्न [साधुओ] को भी देखते है। (३) [जहाँ] रुपये के जुए में चुप्पे (चुप चाप खेलने वाले) जुआड़ी हैं, (४) [वहाँ दूसरे ऐसे भी हैं जो] सौगंध-पूर्वक कह रहे हैं कि अन्य की पारी नही है [उनकी है]। (५) जहाँ एक ओर साधु (सज्जन) सँभाल कर खेलते दिखाई पड़ते है, (६) वहाँ विपक्ष में—दूसरी ओर—दानव-भूप (दानवों के सरदार) भी दिखाई पड़ते है। (७) जहाँ छैलो के समूह वेश्याओ मे अनुरक्त हैं, (८) वहाँ द्रव्य के क्षय होते ही उनकी गति हीन हो जाती है। (९) जहाँ सुरूपा दासियों की आशा मे लोग [टकटकी लगाए हुए] हैं, (१०) [वहाँ वे ऐसे लगते है] मानो बगुले कूप मे मछलियो को ताक रहे हो। (११) नायिकाओ को देख क रलोगो के नेत्र चंचल हो उठते है, (१२) और सुरलोक मे समस्त देवता भी [उनको देखकर] भूल पड़ते हैं—सुधि-बुधि भूल जाते हैं। (१३) [उनसे मिलने पर] लोग कहते है कि [उनके विरह में] वे कई रातो से जागते रहे हैं, (१४) [और उनसे ऐसा मधुर सभाषण करते हैं मानो कोकिल सगीत भाषण करने लगा हो। (१५) [नायिकाओ की] शय्या सँवारने मे इतनी अबीर उड़ती है, (१६) मानो भूपाल के द्वार पर वसन्त—फाग—हो रहा हो। (१७) [उन नायिकाओ के] कुसुंभी चीर कीर की शोभा के हैं, (१८) और [उन चीरों में लिपटा हुआ] उनका शरीर-काम-कदली-

गर्भ [के समान लगता] है। (१९) वे छत्तीस राग कंठ में [धारण ?] करती हैं, (२०) और वीणा वाद्य को हाथों में धारण करती हैं। (२१) उन्हे [गाते-बजाते ?] देख कर अभिमानिनी (?) मृगियाँ भी ठिठक जाती हैं, (२२) [वे ऐसी लगती हैं] मानो मेनका नृत्य करते हुए ताल चूक गई हो। (२३) उनका भाव (सौन्दर्य) बखानते हुए भारी कठिनता ज्ञात होती है, (२४) इस पट्टन (महानगर) के घर इस प्रकार सँवारे दीख पडते हैं।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. जे लगरी जूथ, मो. लगरी रूप, अ फ. जिते लंगरी जूथ, ना. द. म. उ. जिते लंगरी जूप, स. जिते लंगरी रूप। २. मो. म. उ स. ना. दिन के, धा. तिनि कै, अ. फ. जिनके।

(२) १. धा. दे दिष्षिजहि, अ. ति दिष्षियहि, फ. देति दिषीये, म. ना. उ. स. तिते (तितौ—ना.) दिष्षिये। २. धा. म. ना कोपीन, अ. कोटेति, फ. कोटेन। ३. ना. गंगा।

(३) १. धा. ना. जे, फ. तियै, ना. जितैं। २. धा. जूप के, अ फ जूप कुं चोप, ना. जूप कैं चोप, म. जूप को दान, उ स. जूप कौं चोव। ३. मो. चूपे (=चुप्पे) जुआरी, धा. सु चोपवारी, द. ना. चांपै (चपि—ना.) जुवारी, म. चोपै जुआरी।

(४) १. धा. तिके उच्चरे, फ. ति, द. म. ना. तितै उच्चरे, उ. स. तितै उच्चरैं। २. उ. स. सो, धा. ना. सोह, म. सौह। ३. धा. अन्तोन, मो. आनन्द, ना. आनंत।

(५) १. धा. जकै, अ. फ. जिकै, ना. जिके। २. धा. सारि, अ. साथि, फ. साधि, म. साधु। ३. मो. संभार, म. द. सम्हारि, ना. संध्याहि। ४. धा. घोलंत लष्षे, मो. षेलंते लषि (=लषे), अ. फ. षेलंत लष्यौ, म. ना. षेलंत लष्षे।

(६) १. धा. अ. फ. तिके, ना. तितै। २. धा. दिख्खिये, ना. दिष्षीयै। ३. धा. भूप दानिब्व पष्षे, द. भूप दामंति पिंष्षे, ना. भूप दीपंत पष्षे, म. भूष दामंत पषे, अ. फ. भूप दानव्व पिष्यौ।

(७) १. धा. अ. फ. जिके, ना. जितै। २. म. अ. फ छेल। ३. मो. सथर, धा. सुघट्ट, अ. फ. ना. संघट्ट, द. उ. स. सघाट, म. साघाट। ४. मो. विसानि (=वइसानि), धा. अ. फ. वेस्यासु, ना. वेश्यानि, म. विस्यान।

(८) १. धा. अ. फ. तिके दव्व (द्रव्य—अ. फ.) के हीन, मो. तिले (< तिते) दव (दब्ब) षीअन (< षीअत), ना. तिते द्रब्य हीन, म. तितै द्रव्य के हीन। २. मो. हीनि ति (=हीने ति), म. हीनंत, ना. हीनंनि।

(९) १. धा. जिके, मो. यते, ना. जिते। २. धा. पासि के रासि, मो. दासि त्रासिक, द. उ. स. दासि कै त्रास, म. दास के त्रास, ना. दासि के आसि, अ. फ. दासि कै आस। ३. मो. लागे, ना. लग्गे (< लग्गे), अ. फ. लग्गौ।

(१०) १. मो. मनु (=मनउ), धा अ. फ. उ. स. मनो, म. मनौं, ना. मनुं (=मनउ)। २. अ. चाहुंत, फ. वाहुत्त। ३. धा. दूपा।

(११) १. मो नायका, म. उ स. किते नाइका (नायका—म.)। २ धा द. म. उ. स. दिष्षि, अ. दष्षि। ३. मो. झूले, धा. म. अ. ना. झुल्लै, फ. झूके।

(१२) १. मो. रहि (=रहे), धा. एह। २. ना. म. सुरइ लोक। ३. धा. मन इंदु मुल्लै, मो. सहदेव भूले, म. द. सुर दिषि भुल्ले, ना. सुर देषि भुल्लैं, अ. मनु इंद्र भुल्ल, फ मानो इंद्र भूले।

(१३) १. मो. उचरि (=उचरइ), धा. उच्चरे, अ. उच्चरहि, फ. उच्चरैहि, ना. उच्चरैं, म. बच उचरत,

उ. स. बच उच्चरं । २. धा. मो. केउ, ना. म. स. कीउ (< किउ=कइउ), फ. वउ । ३. फ. जग्गो ।

(१४) १. मो. मनु (=मनउ), धा. उ. स मनो, ना. मनु (=मनउ), अ. फ. म. मनौं । २. फ. लग्गो ।

(१५) १. धा. उड्डु (=उड्डु), म. उ. स. उडे उच, अ. फ. तहा उड्डि । २ धा. सिजा, अ. फ. ना. सज्या । ३. धा. सवारे, मो. समारि (=समारइ), अ. फ. संवारे, ना. समारे, म. समारें ।

(१६) १. धा. अ. फ. उ. स. मनो, ना. मनु (=मनउ), म. मनौ । २. मो. वसत । ३. मो. दूआरि (=दूआरइ), धा. बारे, म. उ. स. द्वारैं, अ. फ. ना. द्वारे ।

(१७) १. धा. कुसुम सा, मो. कुसम सा, अ. फ. कुसुभ सा, द. कुसुभ से, ना. कुसुम से, म. उ. स. कुसम्म सम । २. अ. फ. ता, ना. द. म. उ. स. सं ।

(१८) १. द. म. उ. स. मनौं मर्ध्यं, ना. मनु (=मनउ) मध्य । २. धा. दलि । ३. उ. द. फ सु । ४. मो. सुब्भ रग, ना. सुगर्भा, म. सुग्रभा ।

(१९) १. अ. फ. सुवै राग, म. उ. स. रस राग । २. मो. छेतीस, शेष में 'छत्रीस' या 'छत्तीस' । ३. धा. कंठैं । ४. धा. करंति, ना. करत्ती ।

(२०) १. द. ना. म. उ. स. बरं बीत, अ. फ. बने बीन । २. धा. बाजित्र, अ. फ. ना. वाजत, म. उ. स. वाजित्र । ३. धा. हाथे । ४. धा. मो. धरति (<धरंती) ।

(२१) १. धा. दिक्खि, मो. तिने देषि, म. तिनं दिषि, ना. तिने दिष्षि, अ. फ. सु दिष्षि । २. अ. फ. यभिमान, म. उ. स. असमान ।

(२२) १. धा. उ. स. मनो, मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउ), अ. फ. म. मनौं । २. मो. मेनिका, म. बैंनका । ३. धा नृत्तते, मो. नृततति (=नृततइ), अ. फ. वृत्तिते, ना. नृत्यत, म. उ. स. नृत्यते ४. मो. सार, अ. फ. म. उ. स. ताल ।

(२३) १. मो. चरणंति भाग्य लागि (=लागइ), धा. वर्णते भाइ लग्गे, अ. फ. वर्न तेइ भाइ लग्गइ (लग्गै—फ.), ना. बरणौत भारी लग्ग, म. बरनत भाव सु लग्गे, उ. स. वरन्नंत भाव लघे । २. धा. तिसारे, उ. स. जग्ग सारे, म. जु सारे, ना. विभारे ।

(२४) १. मो. सु पट्टने, धा. पट्टने, अ. फ. ति पट्टनै (पट्टनय—अ.), म. उ. स. इसे पट्टने । २. ना. गेह । ३. धा. अ. फ. उ. स. दिष्षे, म. देषे, ना. दिष्षैं । ४. मो. सिवारे ।

टिप्पणी—(२) नंगा < नग्न । (४) आनं < अन्य । (६) विपष < विपक्ष । (७) छइल < छइल्ल (दे०) । (८) दव्व < द्रव्य । षी < क्षि । (१५) सेझ्या < शय्या । (१८) गोभा < गर्भ (?) । (२०) बाज < वाद्य ।

[२४]

दोहरा— अगम[१] ति हट[२] पट्टन नयर[३] रतन मोति[४] मनि धार[५] । (१)
हाटक पट धनु धातु[१] सहि[२] तुछ तुछ[३] दिष्षियइ[४] संवार[५]* ॥ (२)*

अर्थ—"(१) इस पट्टन नगर की हाटो मे जो [जनाकीर्ण होने के कारण] अगम्य हैं, रत्न, मुक्ता और मणियों को धारण करने वाले है (२) और स्वर्ण, रेशमी वस्त्र, धन (मूल्यवान पदार्थ) और धातु—इन सब को तुच्छ जन भी सँवारे (सँवार कर धारण किए) हुए दिखाई पडते हैं ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. अ. सुमग्ग, फ. सुगम, म. उ. अमग, द. अगन । २. मो. द ति हट, शेष में केवल 'हट्ट' है । ३. ना. नगर । ४. धा. मो. को छोड़कर सभी में 'मुत्ति' है । ५ धा. मनियार, मो. मन धार, म. मनिहारि, ना. मनिधारि, शेष में 'मनि (या मणि) हार' है ।

(२) १. मो. हटक पटक घन घन, ना हाटक पट धनु धरितु । २. धा. सहु, द म. ना. उ. स. सह, अ. फ. रस । ३. मो. तच्छ तुच्छ, म. तुछ्छु । ४. मो. दिषीइ (=दिषियइ), धा. म. ना. उ. स. दिष्षि, फ. दिक्ख, अ. हिरिक । ५. अ. फ. म. सवारि, शेष में 'सवार' है ।

टिप्पणी—(१) नयर < नगर ।

[२५]

मोतीदाम—

अगम गति हट्ट ति[१] पट्टन मंझ[२] । (१)
मनउ* दिग हेरेवर[१] (इंदीवर?) फूलीय[२] संझ । (२)
जु नष्षइ[*१] मोर[२] तंबोर[३] सुढार[४] । (३)
उलिच्चत कीच त[१] होइ[*२] उगार[३] । (४)
सु मालइ पुहुप दुवे[१] दल चंपु । (५)
ति सीत[१] समीर[२] मनउ[*३] हिम कंपु । (६)
बेलू रु[१] सेवंतीय[२] गूठिहि जाय[३] । (७)
जु दे* दव दासीय[१] लेहि ढहाय[२] । (८)
बुध्धि[१] बजाज जु बिच्चहि[२] सार । (९)
छुवंत न[१] वासर[२] सुम्मझइ[*३] तार[४] । (१०)
दिष्षिहि[१] नारि स कुंज[२] पटोर । (११)
मनउ[*१] दुज दष्षिन[२] लग्गइ[*३] थोर[४] । (१२)
मुत्ति[१] जराव[२] मढे बहु भाय[३] । (१३)
जु कड्ढहि कोर[१] कहे सु न गाय[२] । (१४)
ले[१] तनसुष[२] रहे अपणाइ[३] । (१५)
जिन सेझि[१] सुगंध रही[२] लपटाइ । (१६)
लहिल्लहि* तांन कतांन ति पांम । (१७)
बनी त्रिय दिष्षिय पूरण काम[१] । (१८)
जराउ जरंति[१] कनक कसंति[२] । (१९)
मनउ[*१] भय वासर[२] जामिनि अंत[३] । (२०)
कसिकसि हेम ति[१] कड्ढइ[२] तार । (२१)
उग्रंत दिनेस किरंन प्रसार[१] । (२२)
करिकरि[१] कंकन अंकुइ* जोव[*२] । (२३)
मनउ[*१] दुज हीन सरदइ[२] सोभ[३] । (२४)
जरे जिवं* पान[१] प्रकार ति[२] लाल । (२५)
मनउ[*१] ससि मझ्झहि+ तार बिसाल ।×(२६)

तुलंत सु तुब्ब*[१] तराजुन्ह[२] जोष[३] ।×(२७)
मनउ*[१] घन मभ्भि[२] तडित्तह ओप*[२] । (२८)
जरे जिवं* नग्ग[१] सुरंग सुघाट[२] । (२९)
सुंदरि[१] सोभ[२] कुहावति पाट[३] । (३०)
दु अंगुलि नारि[१] निरष्षहि[२] हीर । (३१)
मनउ*[१] फल बिबहि[२] चपत[३] कीर । (३२)
नषष्षष चाह ति[१] सुत्तिअ अंस[२] । (३३)
मनउ*[१] भष छंडि[२] रहउ*[३] गहि हंस[४] । (३४)
दिसिद्दिसि[१] पूरि[२] हयग्गय भार । (३५)
पुछ्छत[१] चद[२] गयउ*[३] दरबारि[४] ॥ (३६)

अर्थ—(१) "इस पट्टन (कन्नौज) की हाटे, जो [भीड़ के कारण] अगम्य-गति हैं, (२) ऐसी लग रही है मानो दिशाओ मे सन्ध्या समय इदीवर खिल गए हो। (३) मोर (श्वपच, चाडाल) जब ताबूल की ढार (पीक ?) फेकता है, (४) तो उगाल को उलीचने से कीचड़ हो जाता है। (५) मालती पुष्प, दूर्वादल तथा चंपा [के सस्पर्श से] (६) जो शीतल समीर बहता है उससे मानो हेमंत की कँपकपी होती है। (७) वेला, सेवंती और जाही [मालिकाओ मे] गूथे जा रहे हैं, (८) जिन्हे लोग [गूँथने वाली] दासियो को द्रव्य देकर [अपने गले] मे डलवा रहे हैं। (९) चतुर बजाज जो साड़ियाँ बेच रहे है, (१०) [वे ऐसी झीनी है कि] दिन मे भी छूने पर उनके तार-ताने बाने—सूझते नहीं है। (११) नारियाँ [उन बजाजो से लेकर] कंचुकी और पटोर (लहगे के वस्त्र) देख रही है। (१२) [किन्तु उन्हे देखती हुई वे इसी प्रकार नहीं अघा रही है] मानो द्विज को दक्षिणा [कितनी भी मिल रही हो] थोड़ी लगती हो। (१३) उनके जड़ाऊ आभरणों में मोती बडी सुन्दरता से मढ़े (जड़े) हुए हैं, (१४) और [रत्नादि मे] जो कोर किए गए हैं उन्हें कवि गा कर नहीं कह रहा है। (१५) वे तनसुख (एक प्रकार का वस्त्र) लेकर उन्हें अपना रही है, (१६) जिनमे शय्या की (के लिए उपयुक्त) सुगंधि लिपटी हुई है। (१७) तान, कतान और पाम (विशेष प्रकार की बनावट के वस्त्र) ले लेकर (१८) स्त्रियाँ पूर्णकाम बनी दिखाई पड रही है। (१९) वे जो जडाव के जड़े हुई कनकाभरण कसे (धारण किए) हुए है, (२०) [वे ऐसे दीप्तियुक्त है कि] मानो यामिनी का अन्त कर दिन [का आगमन] हुआ हो। (२१) [स्वर्णकार उनके लिए] खीच खींचकर [सोने के तार] निकाल रहे है, (२२) जो ऐसे लगते हैं मानो दिनेश (सूर्य) के उदय होते समय किरणो का प्रसार हो रहा हो। (२३) उनके हाथो मे जो कंकण है, उनके अंक (आकार) [इस प्रकार] दीख रहे हैं, (२४) मानो बिना शरद के भी चन्द्रमा शोभा दे रहा हो। (२५) [उन ककणो में] जो लाल पत्तियों के प्रकार (आकृति) के जड़े हुए हैं, (२६) [वे ऐसे लगते हैं] मानो चद्रमा के मध्य मे विशाल तारा हा। (२७) तौले जाने वाले सामान (आभरणादि) तराजुओ मे जोख कर जब तौले जाते हैं (२८) तब ऐसा लगता है कि मानो घन मे तडित् का ओप हुआ हो। (२९) जिस प्रकार [उनके आभरणों में] सुंदर और उभड़े हुए नग जड़े हुए हैं, (३०) [उसी प्रकार] सुन्दर पाट (रेशम के लच्छों) मे वे सुदरियाँ उन्हे गुहा भी रही हैं। (३१) नारियाँ दो उँगलियो [के बीच] मे हीरों को [लेकर जब उन्हे] देखती हैं, (३२) तो [उन उँगलियों की लालिमा से लाल लगता हुआ हीरा उनके

बीच ऐसा लगता है] मानो शुक बिंब फल (कुंदरू के पके फल) को [अपनी चोंचों में] दबाए हो। (३३) वे सुदरियाँ नखों से [थाम कर] जब मोतियों के अंशु (पानी) को देखती हैं, (३४) तब ऐसा लगता है मानो हस अपना भक्ष्य छोडकर मोती पकड़े हुए हो। (३५) [नगर में] दिशा-दिशा मे भारी हय-गज पूरित हो रहे हैं।" (३६) [इस प्रकार नगर का वर्णन कर] पूछता-पूछता चंद [जयचंद के] दरबार [की दिशा] मे गया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

× चिह्नित चरण म में नहीं हैं।

(१) १. धा. म. उ. स. अमग्ग ति हट्टति, अ. फ ना. अमग्ग ति हट्टन। २. ना. संझ।

(२) १. धा. मानो द्रिग हे, मो. मुनु (=मुनउ) दिग हेदेवर, म. मनौ द्रुग देवल, ना. मनु (=मनउं) द्रुग देवल, अ. फ. मनौ दृग देषत (देषित-फ.), स. मनो द्रुग देवल। २. धा. अ. ना. फुछिय, फ. फूली।

(३) १. मो. नष्षि (=नष्षइ), धा. म. जु नषहि, ना. जु नुंषहि, अ. फ. सु नष्षहि। २. धा. अ. फ. ना उ. स. मोरि। ३. धा. म. तंमोर। ४. ना. उ. स. सुठार।

(४)१. मो. उलचन क्यचित, धा. उलिचि ज काचतु, धा. उलिचि ज कीच सु, अ. फ. उलीचनि की वसु (वसि-फ.), द. उलीचत कीच सु, ना. उलीचत पीक सु, म. उ स. उलिचत कीच कि (उलीचत कीय जु-म.)। २. मो. हुइ (=होइ), म. उ. स. द. पीक, ना. चीक। ३. धा. अगार, म. औकार।

(५) १. धा. अ. सुमालय पुहप (पहुप-धा.) द्रवे, फ. सुमालइ पुल इवे, मो. मल पुहुपु दुवे, ना. द. मलया पहप (पहुपह-ना.) सुवे, ना. मलया पदु पट्ट सुवे, म. मल पद पद सुवे, उ. स. मिले पइ पइ सुवे।

(६) १. धा. अ. फ. म. उ. स. सु सीत (सुसित-म.), ना. द. सोता। २. मो सिमीर, ना. सुमीर। ३. मो. मनु, ना. मनुं, फ. मानौं, म. मनौं, धा अ. उ. स. मनो।

(७) १. मो. बेलूक, धा. बेलि, अ. सुबेलि, फ. सुबेल, म. उ. स. जुबेलि, ना. द. वेलर। २. मो. फ. सेवंती, ना. सेवति, म. सेमतीय। ३. धा. गुछिय जाइ, अ. फ. गुथ्थहि जाइ, म. गुंथहि जाय, ना. गूंथहि जाइ, उ. स. गुथहि जाइ।

(८) १. मो. जु देहि द गूहि दासीय, धा. दये द्रबु दासी, अ. फ. दिवे इव दासिय, द. दपे द्रव दासिसु, म. दीपें (दियें) द्रव दाससि, उ. स. दिये द्रव दासि स, ना. दअे द्रबु दासि ति। २. मो. लं तहाय, धा. अ. फ. लहि ढहाइ, ना. लहि ढहाय। ३. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):—

सुबुद्धि बजावत (बनावत-म.) बीन अलाप। अनेक कथा कथ अथ कलाप।

(९) १. धा. सुबुद्धि, म. उ. स. बिबेक, अ. फ. सुबुद्धि, ना. बुध। २. मो. बिचिह, धा. बंचहि, द. अ. फ. बिच्चहि, म. वेवहि (< वेचहि), ना. पंचहि।

(१०) १. धा. छुवंति न, ना. छ्वत नि, द. छुवे तन, फ. छवंत न। २. म. फ. वासुर। ३. धा. सुज्झहि, मो. सुझि (=सुझइ), उ. स. सूझइ, म. सूझहि, ना. सुव्यति। ४. ना. हार।

(११) १. धा. जु दिष्षिहि, मो. दिषिहि, म. उ. स. ति देषहि, अ. फ. सु दिष्षिहि। २. फ. नारिय संझ, ना. नारिं न कुंज।

(१२) १. धा. मनो, मो मनु (=मनउ), ना. मनु, म मनौ, शेष में 'मनो'। २. मो. दुहिज दक्षिन, धा. दुज देखिन, म. उ. स. दुज दष्षन, अ दुज इछिछन, फ. दुज इछछन, द. दुज दष्यन, ना. दुज दिष्षिन। ३. मो. लागि (=लागइ), धा. अ फ. ना. लग्गहि, म. लेहि, उ. स. लागहि। ४. धा. चोर, फ. घोर।

(१३) १. धा. जु मुत्ति, म. अ. फ. सुमुत्ति, उ स. सुमोति। २ मो. जराव, व धा. जराउ, म. जराय, ना. उ. स. जराइ। ३. धा मढ़े बहु भाइ, अ. फ. जरै सु सुभाइ, ना. चढ़े बहु भाइ, म. मढ़े बहु भाइ।

(१४) १. धा. सु फट्टहि कीर, मो. ना. क्रढ्हि कोर (कोरि-ना.), अ. फ. सुकट्टहि कोर, म. उ. स.

जु कट्टहि कोरि। २ धा कहै सुन गाइ, म. कहै सुनि गार, फ. कहै सुत भाइ, उ. स. कहै सुनि गाइ, अ. ना. कहे (कहै–अ.) सुन गाइ।

(१५) १. मो. वे, धा. अ. फ. जु लै (ले–धा.), ना. जि ले, म. उ. स. सु ले। २. धा. तनु सुष्ष, द. न सुष्ष। ३. मो. रहि (=रहै) अपणाइ, धा. अपुब्ब सुसाज, म. उ. स. ना. रहै (रहे–ना.) अपनाइ (अपराय–म.), अ. फ. अपुब्ब सुभाइ।

(१६) १. धा. सुसेजु, अ. फ. सुसेज, ना. द. सेज, म. उ. स. जु सेज। २. धा. रहै, म. ना रहे।

(१७) १. मो. लइ लइ तान कतान ति पाम, धा. लहलक तानु कतान सिपाम, अ. फ. लहै लह (लहै लहै–फ.) तान कतान सुपाम, द. लहलह तान कतान सु वाम, ना लहलह तान कुतान ति पाम, उ. स. लहलह तान कतान ति वाम, म. लहलह तान कतान कताम।

(१८) १. धा. विने त्रिय दिख्खिय पूरन काम, म. उ. स. बनी त्रिय दीसहि काम भिराम।

(१९) १. धा. अ. फ. म. ना. जरंत, उ. स. जरंज। २ धा. अ. फ. ना. म. उ. स. कसत।

(२०) १ मो. मनु (=मनउ) धा. मनो ना. मनु (=मनउ), म. मनौ। २. म. भयौ वासुर। ३. अ. जामिनि जंत, फ जामिनि जति, म. उ. स. ना. जामनि अत, द. ज्यामनि अत।

(२१) १. धा. अ. फ. हि, ना. जि, म. उ. स. सु। २. मो. कढिइ, धा. अ. कढ्हि, द. कढति, म. काढत, ना. कट्टहि।

(२२) १. धा. द. उवंति दिनेसहि कर्न प्रकार (पुकार–द.), मो. उअत दिसेस किरन प्रसार, अ. फ. उवति (उवत–फ.) दिनेस किरन्नि (किरन–फ.) प्रकार, ना. उवत दिनेस किरन प्रसार, म. उगंतहि हस किरन्न पसार, उ. स उगंत कि हसह क्रन्न प्रकार।

(२३) १. द. अ. फ. करि कर, उ. स. करे कर, ना. करक्कर, म. करकर। २. धा. अंकन लोभ, मो. अकि (=अकइ) जोभ, अ. फ. अकहि लोभ, ना. द अंकहि जेव, उ. स. अकहि जेव, म. अकइ जोव।

(२४) १. धा. मनो, मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, (=मनउ), म. अ. फ. मनौं। २. मो. सिरदइ, म. सरदइ, शेष में 'सरदहि'। ३. द. उ स. सोव, म. सोव, ना. हेव।

(२५) १. मो. जरे जिव पान धा. जरे जुव नग्ग, अ. फ. जरे इमि (इम–फ.) नग्ग, ना. चरे विचि पान, द. म. उ. स. जरे निब (जव–म.) प्रान। २. म. फ. प्रकारित।

(२६) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु (=मनउ), शेष में 'मनो' या 'मनौ' है।

(२७) १. मो. जु तुज, धा. ज तुंज, अ. फ. जु तत्त (तत्त–फ.), ना. द. उ. स. जुषल। २. धा. तराजन। ३. मो. जोष, शेष सभी में 'जोप' है।

(२८) १. मो. मनु (=मनउ), ना मनु, अ. फ. मनौ, (=मनउ), म मनौं, शेष में 'मनो' है। २. म. मध्य, ना. मद्धि। ३ मो उप (=ओप), म आल।

(२९) १. मो. जरे जिव नग (=नग्ग), धा. जरे जुय नग्ग, अ. जरे निवि नग्ग, म. उ. स. जरे जि नंग (=नग्ग), ना. जरे जुवि नग, फ. जरे विंय नग। २. धा. सुघाट, अ. फ. सुघट्ट, ना. म. सुघाट, उ. स. सुघाटि।

(३०) १. मो सुदरि, म. विसुंदरि, ना. ते सुंदरि, शेष सभी में 'ति सुंदरि'। २. धा. सोह। ३. धा. पुवावहि घाट, मो. कुहावति हाट, द. पुवावहि पाट, म पुवावत पाट, ना दुलावटि पाट अ. फ. पुहावहि पट्ट (भट्ट–फ.)।

(३१) १. मो. दो (<दु) अंगुलि नारि, धा. द. दु अंगुलि नार, अ. फ. ना. दु अंगुलि (अंगुल–फ. ना.) नारि, म. उ. स. दु अगुलि (अगलि–म.) जोरि (नोरि–अ. फ.)। २. म. तिरष्षहि, म. तिरष्षइ।

(३२) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु, (=मनउ), म. मनौ शेष में 'मनो'। २. मो. व्यंवहि, शेष में 'बिंबहि'। ३. धा. चंपहि, ना. चंपतु, स. चंपति, उ. जंपहि, म. यंपहि।

(३३) १. धा नष नष चाहिति, अ. फ. नष नष वाहहिं, म. नष नष चाहत, द नषं नष चाहहिं। २. मो मोतिअ अस, धा. मुत्तिन अंसु, अ. ना. मुत्तिय असु (अस—ना.), फ. म. उ स. मुत्तिय अंत।

(३४) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु (=मनउ), म. मनौं, अ. फ मनौ, शेष में 'मनो'। २. फ. भषि छड, द. भष छाडि। ३. धा. गह्यो, मो. रहु (=रहउ), ना. म रह्यौ। ४. धा. रहि हसु, मो. गिहि हसु, अ. ना. गहि हंसु।

(३५) १. धा. दह दिसि, द. दसे दिसि, ना. दश दिसि, फ. दिशि दिस, म. उ. स. दसौं (दसौं—म.) दिसि। २. धा. देखि, ना. द. म उ स. अ. पूरि फ. पूरु।

(३६) १. धा. जु दिष्षत, म अ. फ. ना सुपुछछत (पुच्छति—फ) । २. मो देव, शेष में चद। ३. मो. गयु (=गयउ), धा ना. गयो, म. गयौ। ४ मो दरबारि, शेष में दरबार'।

टिप्पणी—(५) मालइ < मालती। दुवेदल < दूर्वादल। चंप < चपक। (७) गूठ < ग्रथ्। जाय < जाती। (८) दव < द्रव्य। (११) कुं ज < कचुकी। (१६) सेझ<शय्या। तान=वे वस्त्र जो ताना-पाई करके बनाए जाते हैं (?)। कतान=क्षौम। पांम=एक प्रकार की छींट। (२३) जोव=बाट देखना। (२४) पान<पर्ण। (२७) तुज्ज (< तुल्य ?)—तौले जाने वाला पदार्थ। (२९) धाट < धाड=बाहर निकला हुआ, उमड़ा हुआ। कुहाव=गुथाना (तु० अवधी 'गुहाउब') (३३) अंस < अश्रु। (३४) भष < भक्ष्य।

---

५. पृथ्वीराज का कन्नौज में प्राकट्य

[१]

सुडिल्ल— पुच्छत[१] चंद गयउ[*२] दरबारह[३] । (१)
हेजम जहाँ[१] रघुबंस[२] कुमारह[३] । (२)
जिहि हर[१] सिध्धि सदा[२] वरु पायउ[*३] । (३)
सुकवि चंद[१] दिल्ली पइ[२] आयउ[*३] ॥ (४)

अर्थ—(१) दरबार को पूछते-पूछते चंद [वहाँ] गया, (२) जहाँ पर हेजम (कोतवाल) रघुवंश कुमार था। (३) [चन्द ने उससे कहा,] "जिसने हर (शिव) से सिद्धि का सदैव के लिए वर प्राप्त किया है, (४) वह कवि चद दिल्ली से आया है।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. पुच्छन, मो. पुच्छं, अ. पुछ्छत, फ. ना. पूछत, उ. पुछित । २. धा. गयो, मो. गयु (= गयउ), शेष में 'गयौ' या 'गयो'। ३. मो दरबारि (<दरबारइ <दरबारह), फ. दरबारा।

(२) १. मो. जाहां, धा. जह, अ. फ. जहि। २. फ रुघवंस। ३. म कमारह।

(३) १. फ. हरु, अ. उ. स. हरि । २. म. ना. पासि । ३. धा. पायो, मो. पायु (= पायउ), शेष में 'पायो' या 'पायौ'।

(४) १. धा. सो कविराज। २. मो. दिलीपइ, धा. अ. ढिल्ली हुति, द. दिल्लीय हुत, फ. ढिल्ली हुतैं, उ. स दिल्लिय तैं, ना. दिल्ली तैं, म. दिलीसु। ३. धा. अ. आयो, मो. आयु (= आयउ), द. म. उ. स फ. आयौ।

टिप्पणी—(४) पइ < पाहि < पक्खे < पक्षे=से (अपादान)।

[२]

दोहरा— सुनत[१] बोल[×२] हेजमइ उठत[३] दिषित चंद हित ताहि[४] । (१)
नृप अग्गइ[१] गुदरन[२] गयउ[*३] जहाँ पंगु नृप आहि[४] ॥ [५] (२)

अर्थ—(१) यह वचन सुनकर हेजम (कोतवाल) उठा और चंद के देखते देखते उसके [कार्य के] लिए (२) नृप जयचद के आगे निवेदन करने [वहाँ] गया, जहाँ पर पंगराज (जयचन्द) था।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

× चिह्नित शब्द उ. में नहीं है।

(१) १. धा. सुनितं, अ. फ. सुनिन। २. धा. अ. फ. म. उ. स. हेत, ना. वचन। ३. धा. अ. फ. हेजम उठित, म. हेजम उठिग, उ. स. हेजम उठिन, ना. हेजम उठ्यौ। ४. धा. म. उ. स. दिषत चद बरदाइ (बरदाय-म.), ना. देषि चद बरदाय, द. अ. फ, दिषित चद बरदाइ।

(२) १. मो. आगि (=आगइ), धा. अग्गे, अ. अग्गइ, फ. अगै, द. अगें, म. उ. स. आगैं, ना. आगै। २. धा. अ. म. ना. उ. स. गुदरन, फ. गुद्दर। ३. मो. गयु (=गयउ), शेष में 'गयौ' या 'गयो'। ४. मो. जाहां पंगु नृप आहि, धा. जिह पंगुर नृप आहि, द. म. उ. स. जहां पंग नृप (ऋप—स.) आहि (आय—म.), अ. फ. जहं पंगुरौ सु (स—फ.) राइ, ना. जहाँ पंगुरौ राय। ५ ना. में इसे निम्नलिखित दोहे का 'पाठान्तर' कहा गया है :—

सुनत हेत हेजम उठ्यौ कहयौ चंद कवि आउ।
बलि समान बलि करन सुत इहि भौमी पान राउ॥

यह दोहा मो. में ही और पाया जाता है, किन्तु उसमें इसे पाठान्तर नहीं कहा गया है।

टिप्पणी—(२) गूदर < गुजर (फा.)।

[३]

वस्तु— तब सु हेजम युगम कर जोरि[1] । (१)
सीस नामइ*[1] दस बार[2] । (२)
सेत छत्र[1] सु× निहि×[2] दिट्ठउ×[3] । (३)
स कल बंध सथ्थह[1] नयन ।× (४)
चकित चित्त दिसि दिसि[1] गरिट्ठ उ*[2] ।× (५)
तब स[1] किअउ* परनाम[2] तिहि सुनि व राय विब्भार[3] । (६)
जिहि प्रसन्न सरसइ[1] कहहि*[2] सु इत्त[3] चंद दरबारि[4] ॥ (७)

अर्थ—(१) तब उस हेजम (कोतवाल) ने दोनों हाथ जोड़ कर (२) दस बार सिर झुकाया। (३) [किन्तु] श्वेत छत्र [वाले जयचन्द] ने [हेजम को प्रणाम करते हुए] नहीं देखा। (४) इसलिए उसने कल (मधुर ध्वनि) से सभा के लोगों के नेत्र अपनी ओर बाँधे (आकृष्ट किए), (५) [जिससे] दिशा-दिशा में (सभी ओर) गरिष्ठ लोग (गुरुजन, सभ्यजन) चकित-चित्त हुए। (६) तब उसने उसे (जयचन्द को) प्रणाम किया, और कहा, "हे विभार (भारी) राजा सुनिए। (७) जिस पर [लोग] सरस्वती को प्रसन्न कहते हैं, वह चन्द कवि यहाँ दरबार में [उपस्थित हुआ] है।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं और उनके स्थान पर...बने हैं।

× चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

(१) १. मो. तब सुहेजम युगम कर जोर, धा. तब सुहेजम तब सुहेजम जति करि जोड़ि, अ. फ. तब सु हेजम सुजस जंपि कहिं, द. म. उ. स. तब सुहेजम तब सुहेजम जुगम कर जोरि।

(२) १. मो. नामि (=नामइ), धा. अ. फ. नाइ, द. ना. नायौ, म. उ. स. नयौ। २. ना. दरबार, उ. दरबार तिहि, स. दस बार तिहि।

(३) १. धा. फ. ना. उ. स. सेत (सेन—धा.) छत्रपति, अ. सेतुछपति, म. दिषि सेत छत्र पति। २. अ. फ. ना. नहि, स. मद, म. नद। ३. म. सुदिठौ, फ. सठ्ठिउ, ना. सुदीठौ।

(४) १. धा. संधन, द. सथ, ना. सघ (< सथ), म. उ. स. सथ्थइ।

(५) १. ना. म. उ. स. चकित चित्त बुल, द. चकित चित्त बुलै सु। २. मो. गरठु (=गरिठउ), शेष में 'गरिठो' या 'गरिठौं'।

(६) १. धा अ. म. ना उ. स. सु। २. मो. कीउ परनाम, (=किअउ परनाम), म. कियौ परनमा, अ फ. ना. कियौ परिणाम, उ. कियौ परिनाम। ३. धा. बरु करि तिहि प्रतिहार, अ. फ. यह कहि ति (हि–फ.) प्रतिहारु, ना. म. बरु (बर–म.) करि राय प्रहार, उ. स. बरु करि राय प्रतिहार, द यह करि राइ प्रतिहार।

(७) १. मो. सरस, अ. ना. सरसै, म. उ. स. सरसति। २. मो. कहिहि, अ. कहहि, शेष में 'कहै'। ३. मो. इत्त, शेष में 'कवि'। ४. द. दरबारि, शेष में 'दरबार'।

टिप्पणी—(१) युगम < युग्म। (२) सथ्थ < साथ=प्राणि - समूह, सभा। (५) गरिट्ठ < गरिष्ठ। (७) सरसइ < सरस्वती।

[४]

मुडिल्ल— *आयस*[१] *भयु*[२] *गुनिअन तन*[३] *चाहउ*[४] । (१)
तिन परणाम[१] *किअउ*[*२] *सिर*[३] *नायउ*[४] । (२)
किधउं[*१] *डिभ*[२] *कवि कवि*[३] *परमांनी*[४] । (३)
सरसइ[*] *बरु*[१] *उच्चारहु*[२] *जांनी*[३] ॥ (४)

अर्थ—(१) [जयचंद का] आदेश हुआ और गुणीजन की ओर उसने देखा। (२) उन्होंने [जयचंद को] प्रणाम किया और सिर झुकाया। (३) [जयचंद ने कहा,] "देखो, [चंद] डिभ (बाल) कवि है, या प्रमाणी कवि है। (४) सरस्वती का बल उच्चार (काव्योच्चार) से ज्ञात होता है।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. आइस। २. धा. जो, (< भो), मो. भयु (=भयउ ?), अ. फ. भय, म. उ. स. भौ, ना. द. भयौ। ३. मो. त। ४. मो. चाहु (=चाहउ), धा. द. उ. स. चाह्यो, ना. म. चाह्यौ, अ. चाह्यउ, फ. चाहिउ।

(२) १. मो. धा. तीन प्रनाम (प्रणाम–मो.), म. तिन परमांन, अ. फ. ना. तिन परिणाम (परिनाम–फ.)। २. धा. करिउ, मो. कीअ, अ. फ. म. ना. उ. स. कियौ। ३. द. सिरि। ४. मो. नायु (=नायउ), धा. नायो, अ. नायउ, फ. ना. नायौ, म. नाह्यौ।

(३) मो. किधु (=किधउं), धा. म. अ. फ. किधौं, उ. स. कैधौं, म. ना. कैधुं। २. मो. डभ, शेष में 'डिंभ'। ३. धा. कवि कव्व, फ. कवि कब्बि, अ. कवि कछ्छु, ना. म. उ. स. कब्बी। ४. धा. अ. फ. प्रमानिय, म. परिवांनी, ना. उ. स. परवानी।

(४) १. मो. सरसि (=सरसइ) वरु, धा. सरसइ कव, अ. फ. सरसै वरु, ना. सरस वयन, उ. स. सरसे वर, म. सरवे वर। २. धा. उच्चारहि, ना. उच्चहु। ३. धा अ. फ. जानिय, द. ना. म. उ. स. वानी।

टिप्पणी—(१) आयस < आदेश। गुनिअन < गुणिन्+जन। (४) सरसइ < सरस्वती।

[५]

मुडिल्ल— *ति*[१] *कवि आवि*[२] *कवि पह संपत्ते*[३] । (१)
गुन[१] *ब्याकरन कहि*[२] *रस वत्ते*[३] । (२)

थकि प्रवाह बचन मुख मत्ती[१] । (३)
सुर नर श्रवन मंडि रहि वत्ती[१] ॥ (४)

अर्थ—(१) वे कवि आकर कवि चंद के पास पहुँचे । (२) उन्होंने गुण, व्याकरण और रस की वार्त्ताएँ कहीं (कीं)। (३) उनके मुख के वचनो से मत्त होकर [गंगा का] प्रवाह शिथिल हो रहा (४) और देवताओ तथा मनुष्यों ने उस वार्त्ता मे अपने श्रवण लगा रक्खे ।

पाठान्तर—(१) १. ना. ते । २. मो. आवि, शेष में 'आइ' (आय–म.) । ३. धा कवि यहि (< पहि) संपत्ते, उ. कवि सहि संपत्ते, अ. कवि पहि संपत्ते, फ. कवि हेजम पत्ते, ना. कवि पहि सपत्ते, म. कवि पै सपत्ते ।

(२) १. म उ. स. गुर । २. मो. अ. कहि, धा. करहि, म. कह्यौ, द. ना. कहै, फ. कही । ३. धा. रस रत्तउ, ना. अ. फ. रस रत्ते, म. मन मत्ते ।

(३) १. धा अ. फ. ना. गगा मुख मर्त्ता (मुख मत्ते–अ. फ. ना.), मो. वचन मुख मत्ती, म. उ. स गगा सरसत्ती ।

(४) १. धा. रहि चत्ती, म. द रहै वत्ती, अ. फ. रहि वत्ते, ना. रहे वत्ते ।

टिप्पणी—(१) संपत्त < सम्प्राप्त । (२) वत्ता < वार्ता । (४) वत्ती < वार्त्ता ।

[६]

मुडिल्ल— *मुख परसपर देखत भयउ[*१] रत्ते ।‡ (१)*
*गुन[१] उच्चार करउ[*२] सरसत्ते[३] ।‡ (२)*
गुन उच्चार चारु[१] तिनि[२] किन्नउ[३] । (३)
जानुं[१] भुष्षइ[२] साकर[३] पय[४] लिन्नउ[५] ॥ (४)

अर्थ—(१) [जयचन्द के कवियो और चन्द के] मुख परस्पर दर्शन से रक्त [वर्ण के] हो गए—उन पर लालिमा आ गई । (२) उन्होने सरस्वती का गुणगान किया । (३) उन्होंने [इस प्रकार रुचिपूर्वक] चारु गुणगान किया कि (४) मानो भूखे ने शक्कर और दूध ग्रहण किया हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

‡ चिह्नितचरण धा. अ. फ. में नहीं हैं ।

(१) १. मो. मुष परसवर देषत भयु (=भयउ), ना. मुख परस्पर दिष भए, द. उ. स. मुख परसत परसपर, म. मुषसंपर परसंपर ।

(२)१. ना. द. उ. स. मनु (=मनउ), म. मनौं । २. मो. करु (=करउ), द. म. उ. स. कर्यौ, ना. कह्यौ । ३. म. नर सत्ते, ना. सरते ।

(३) १. मो. चार, धा चारि, म. सार । २. धा. तव, ना. द. म. तिन, उ. स. तन । ३. धा. किन्हो, मो. किनु (=किनउ), अ. किन्नउ, ना. म. उ. स. कीनौ, द. किन्नो, फ. कीनउ ।

(४) १. धा. जउ, मो. जानुं, ना. द. अ. म. उ. स. जनु, फ. जनौ । २. धा. ना. भूषैं, मो. भूषे (< भूषि=भूषइ), अ. भुष्षइ, फ. भूष, म. भूषय, द. भुषे । ३. धा. म. उ. स. सक्कर । ४. मो. पकयि ।

५. मो. लीनु (=लीनउ), धा दिन्हो, अ. दिन्नउ, फ. दीनउ, ना. म. दीनौ, उ. स. दीनो, द दिनो।

टिप्पणी—(१) रत्त < रक्त। (३) सरसत्ते < सरस्वती। (४) साकर < शर्करा।

[७]

साटिका— अंभोरुह[१] मायंद (माननं?) जोय[२] लरिसो[३] (लुरिसो?) डाडिम्म[४] लो बीयलो[५]। (१)

लोयणो[१] चलु चालु[२] चालु[×३] यारा[४] (अधरा?) बिबाउ[५] कीयग्गहे[६]। (२)

केसीरी[१] के साय[२] वैनिय रसो[३] चकी मिगी[४] नागवी[५]। (३)

इंदो[१] मध्य[२] सु विद्यमान[३] विहतो[४] एरस्स[५] भाषा छवो[६]॥ (४)

अर्थ—[जयचन्द के गुणियों ने कहा,] "जिसके अभोरुह (कमल) सदृश आनन (१) पर ज्योति लोटती रहती है, [जिसके दाँत] दाड़िम के बीज के सदृश है, (२) जिसके चंचल लोचन चारु हैं और तथा बिबकत्व ग्रहण किए हुए अधर भी चारु हैं, (३) जो अधिक केशो वाला हैं, और जिसके प्रस्तुत किए हुए उत्तम वैणिक (वीणा से उत्पन्न) रस से मृगियाँ और नागिनें चकित हो जाती है, (४) [उसी सरस्वती ने] इदु के मध्य विद्यमान [अमृत तुल्य] छः भाषाओं को विहृत (अलग) करके [इस पृथीतल पर] एरित किया है (प्राप्त कराया है)।"

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द फ. ना. में नहीं है।

(१) १. म. उ. स अंबोरुह। २. धा. ना. जोइ, म. उ. स. छोइ। ३. ना. लरिसों, उ. स. लरिसी। ४. धा. अ. फ. ना. दाडिम्म, म. दारिंम, उ. स. दादिम्म। ५. मो. में 'बीयलो' का 'बी' मात्र है।

(२) १. धा. लोयंदे, अ. फ. लोयंनु, ना. द. म. उ. स. लोयन्ने। २. म. फ. ना. चल। ३. धा. आरु, म. चारु। ४. धा. कलङ, अ. फ. आरा, द. उ. स. यवरं, ना. यवरा, म. यार। ५. मो. ब्यबाउ (=बिंबाउ), धा. म. बिंबाय, ना. बिंबापि, द. अ. फ. उ. स. बिंबाइ (बिंबायि—अ. फ.)। ६. धा. म. कीयो गह्यो, उ. स. ना. कीयौ गह्यौ, अ. फ. कीयो गह्यो, द. कीयो गह्यो।

(३) १. अ. फ. कश्मीरी, द. किसरी, फ. कासीरी। २. धा. केसाहि, ना. केशाइ, फ. कोसाइ। ३. मो. वेणी सीसो, धा. वेयन रसो, द. वीनी रिसो, अ. फ. ना. वीना रसो। ४. मो. वक्की मिकी, धा. विक्कि सकी, अ. फ. ना. चकी मृगी (मृगा—ना), द. चिकी मिगी, उ. स. चीकी मिकी, म. चिं°°। ५. फ. नागदी।

(४) १. द. यदो। २. अ. फ म. ना. मद्धि। ३. अ. फ. विद्दिमान, ना. विधिमान, उ. स. इदमान। ४. मो. विहन, धा. विहना, म. अ. फ. विहनो, ना. विहिनो, उ. स. विह्यितो। ५. धा. ए षष्ठ, मो. एकठ। ६. मो. भाषा सठे, धा. भासा छंदो, फ. भाषाच्छधो, द. उ. स. भासा छठौ, म. भाषा छठो।

टिप्पणी—(१) डाडिम्म < दाडिम। लुर < लुठ्। (२) ब्यंब < बिंब। (३) केसी < केशी। साय < साति=उत्तम। वेनिय < वणिक=वीणा से उत्पन्न। मिगी < मृगी। (४) एर्=प्राप्त करना, प्राप्त कराना।

[८]

*मुडिल्ल— कवि देषत[१] कवि कउ[*२] मन[३] रत्तो[४]। (१)*

न्याय[१] नयर[२] कनवज्जि[३] पहुत्तो[४]। (२)

*कवि अग्गहि[१] अंगीक्रित[२] हीनउ[*३]।‡ (३)*

*हेम बिना बिम[०१] भयउ[*०] नग[०] दीनउ[*०२]॥ (४)*

अर्थ—(१) [जयचन्द के] कवियों को देखकर कवि (चन्द) का मन रक्त (प्रसन्न या अनुरक्त) हुआ, (२) [उसने मन में कहा,] "मैं कन्नौज पहुँचा यह उचित ही हुआ। (३) कवियों के आगे [कवि] अंगीकृत होने के अभाव में [मेरी वही दशा होती] (४) जैसी स्वर्ण के अभाव में दीन हुए नग की होती है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं हैं।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।

(१) १. ना. दिष्षत, म. उ. स. पिष्षत। २. मो. कु (=कउ), धा. उ. स. को, म. ना. अ. फ. कौ। ३. ना. मनु। ४. मो. रत्त (=रत्तो), फ. म. ना. उ. स रत्तौ।

(२) १. धा. न्याइ। २. मो. नयन (< नयर), धा. नयरि, म. नगर। ३. मो. कनजि, स. कवज, शेष में 'कनवज्ज'। ४. मो. पहुतो, धा. सपुत्तउ, अ फ. सपत्तउ, फ. म. ना. उ स. सपत्तौ (संपतौ–म.)।

(३) १. धा. अगह, म. ना. उ. स. एकह। २. मो. अगीकृतं, म. अगीकृति। ३. मो. हीनु (=हीनउ), धा. हीना, म. उ. स. कीनो, ना. कीनो।

(४) १. धा. हेम विभा, म. उ. स. हेम सिंघासन, ना हेम सिंह वानी। २. मो. भयु (=भयउ) नग दीनु (=दीनउ), म. उ. स. आसन दीनौ, ना. गुन दीनौ।

टिप्पणी—(१) रत्त < रक्त। (२) नयर < नगर।

[६]

मुडिल्ल—
अहो चंद वरदाइ[1] कहावहु[2] ।(१)
कनवज्जह[1] दिष्षन नृप[°2] आवहु[3] ।[4] (२)
जउ* सरसइ[*1] वरु जानहु[2] रंचउ[*3] । (३)
तउ* [1] अदिठ्ठ[°2] बरनउ[*3] नृप संचउ[*4] ।।[5] (४)

अर्थ—(१) [जयचन्द के कवियों ने कहा,] "हे चन्द, तुम बरदायी कहाते हो, (२) और कन्नौज के राजा (जयचन्द) को देखने आ रहे हो। (३) [अतः] यदि सरस्वती (वाणी) के बल से कुछ भी जानते हो, (४) तो बिना देखे नृप (जयचन्द) का सच्चा वर्णन करो।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. वरदायि, म. ना. बरदाय। २. धा. कहूं हूं, फ. कहाउह।

(२) १. धा. फ. कनवज्जहि। २. मो. दिषिन नृप, अ. न्रिप दष्षिन, फ. न्रिप दक्षिन, म. उ. स. न्रिप देषन। ३. धा. आयहूँ। ४. धा. में यहाँ और है : जे सरसइ जवनहु न्रिप संचउ। (तु० चरण ३+४)

गजपति गरुव गेह किमि गंजहु।
किनि गुनि पगु राइ मन रंजहु॥

(३) १. मो. जु सरसि (=जउ सरसइ), धा. जे सरसइ, अ. फ. जौ सरस, ना. जो सरस, उ. स. जौ सरसति, म. सरसतिहा। २. धा. जानहु वर, अ. जानहु वर, ना. वरु है कछु, द. म. उ. स. जानौ वर (वरि–म.)। ३. मो. रंचु (=रंचउ), ना. रचौ, अ. फ. म. उ. स. चाव (चाउ–अ. फ.)।

(४) १. मो. तु (=तउँ) धा. तो, अ. फ. म. उ. स. तौ। २. धा. अद्रिस्ट, अ. फ. ना. म. उ. स.

अदिष्ट । ३. मो. वरनु (=बरनउ), धा बरनहि, अ. फ. वर्णहु, ना. वरणौ, म. उ. स. बरनौ । ४. मो. संचु (=सचउ), ना. सचौ, अ फ. म उ. स. भाव (भाउ–फ.) । ५. म. में प्रस्तुत छन्द का उत्तरार्द्ध तीन छन्द पूर्व भी आया है, और वहाँ पाठ है : जों सरसं बर है तुम रचौ । तौ अदिष्ट बरनौ त्रिप सचौ ।

टिप्पणी—(४) अदिट्ठ < अदृष्ट । सच < सत्य ।

[१०]

साटिक—साइ सीस[१] चमरेन स्वेत - सतुसा[२] किंकिन अंदोलिता[३] । (१)
बालइ*[१] अर्क समान जान तेजं[२] क्रीटीय अंमोलिता[३] ।+(२)
सत्रू षत्त समस्त • मत्त दहियं[१] सिंधू प्रयाती[२] खलं । (३)
कठे हार रुलंति आनि×[१] अतक सम[२] पृथिराज[३] हालाहल ॥ (४)

(१) [चंद ने कहा,] "उस (जयचंद) के सिर पर अतियुक्त (उत्कृष्ट) श्वेत चामरों से शत-शत किंकिणियाँ आंदोलित हो रही हैं । (२) उसका तेज मानो बाल सूर्य के समान है और उसका क्रीट अमूल्य है । (३) समस्त मत्त क्षत्रिय शत्रु दग्ध हो चुके हैं, और खल गण भाग कर समुद्र [पार की दिशाओं] में चले गए हैं । (४) उसके कंठ में हार हिल रहे हैं, वह अन्य अंतक (यम) के समान है, और पृथ्वीराज के लिए हालाहल [तुल्य] है—अथवा उसके लिए पृथ्वीराज हालाहल [तुल्य] है ।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है ।

× चिह्नित शब्द धा. म. उ. स. में नहीं है ।

(१) १ मो. साई सीस, धा. किं सास, ना. द. किं सीसं, अ. फ सीससा, म. उ. स. जा जीस । २. धा. चुवरेण सेतु सतुसा, मो चमरन स्वेत ससा, अ. फ चंवरेन सेठ (सेव–फ.) छत्रु (छतु–फ.) जा, म. उ. स चमरायते सित छत, ना. द. चमराय सेत छत्रं (छत्रकि–ना) । ३. धा. अ फ. किंकि त (न–अ फ.) अंदोलिता, म. उ. स षंषिन्न (षंषील–म.) इंदोलिता ।

(२) १. मो. बालि (=बालइ), धा ना. द. अ. फ. म. उ. स. बाला । २ धा. जाम तेज, ना. जान तिजितं, म. उ. स. तेज तपन । ३. मो. क्रीइय अंदोलिता, धा. अमीलि मोलिता, उ. स. क्रीटी तपं मौलिता, ना. झींटी (< क्रीटी) दिप मोलिका, म. क्रीटी तपं मौलिका ।

(३) १ धा. शस्त्रे शास्त्र समस्त खत्त ढहियं, अ. फ. सस्त्रै (स–फ.) सस्त्र समस्त मत्त दहियं, ना. म शस्त्रे शत्र (सस्त्रौ सत्रु–म.) समस्त चित्त (चित्रि–म.) दहियं, उ. स. सस्त्रे सस्त्र समस्त चिति दहियं । २. धा. प्रजाती, अ. फ. प्रजाता, ना. म. द. उ. स. प्रयाते ।

(४) १. द. रुलंति आन, म. रुलंत ['आन' शब्द नहीं है] २. धा. आतिनि समे, अ. फ अतक समो, द अतक समा । ३. धा म. द. ना. प्रिथीराज, उ. स. प्रथीराज ।

टिप्पणी—(१) साइ < साति=अति युक्त, उत्कृष्ट । (३) षत्त < क्षत्रिय (४) आनि < अन्य ।

[११]

दोहरा— सत सहस्र बज्जन[१] बहुल[२] बहुल[३] बंस बिधि नंद[४] । (१)
सत सहस्र[१] सषध्धुनि*[२] मुहिल[३] जांम[४] जयचंद ॥ (२)

अर्थ—"(१) [जयचंद के महल मे] शत सहस्र बहुतेरे वाद्य हैं, बहुत सी वंशियाॅ [और] आनद की विधियाॅ है। (२) प्रत्येक प्रहर उसके महल मे शत सहस्र शखों की ध्वनि होती है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशाधित पाठ का है।

(१) मो. सत सहस वज्जन, धा. छत्र सरद जव जन, अ. फ. छत्र सरद वज्जन, ना. द. म उ. स. छत्र सहस (सहस छत्र—ना.) वज्जन। २. मो. म. वहल। ३ धा. महल। ४. मो. मद।

(२) १. ना. द. म. उ. स. एक सहस। २ मो. सँष धुनी, धा. सष ध्वनिअ, अ. फ. सषह धुनिय, म. उ. स. सषह धुनी। ३. मो. मुहिल, शेष सब में 'महल'। ४. उ. स. जानि।

टिप्पणी—(१) वज्जन < वाद्य।

[१२]

दोहरा— *मंगल गुरु बुध सुक्र सनि[१] सकल सूर उदे[२] दिठ्ठ। (१)*
आतपत्त[१] ध्रुव तिम तपइ[२] सुभ[३] जयचंद वयिट्ठ[४] ॥ (२)*

अर्थ—"(१) समस्त शूर मगल, बृहस्पति, बुध, शुक्र, तथा शनि [आदि] के रूप मे उदित दिखाई पड़ रहे हैं, (२) और उसका छत्र ध्रुव के समान तप रहा है, [इस प्रकार की सभा मे अपने 'चंद्र' नाम को सार्थक करता हुआ] शुभ जयचंद्र बैठा हुआ है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है।

(१) १. अ. फ. सुनि, स. सवि। २. धा. ना. द. उ. स. उइ, अ. फ. उद, म. उडि।

(२) १. धा. आठपत्त। २. धा. तमतिमइ, मो. तिमतपि (=तपइ), द. तिम तपै, अ. फ. तम तमै, ना. म. उ. स. जिम तपै। ३. धा. मो. ना. सुभ, म. उ स. सुभि। ४. मो. वियट्ठ, धा. वइट्ठ, अ. फ. वयिट्ठ, म. उ. स. बयट्ठ।

टिप्पणी—वयिट्ठ < उपविष्ठ।

[१३]

भुजंग— *आसने[१] सूर वड्ढे[२] समाहं[३]। (१)*
जित्ति[१] जे षिति राय के सु राहं[२]। (२)
धम्म[१] दिगपाल[२] धर धरनि षंडं। (३)
धरहि[१] सिर सोभ[२] दुति कनक दंडं।° (४)
जिन्ने[१] साजिते[२] सिधु[३] गाहे सुपंगं। (५)*
तिमिर तजि[१] तेज[२] भिय ज्यउ[३] कुरंगं[४]।[५] (६)*
जिनि[१] हेम परवत्त ते°[२] सब्ब घाहे[४]। (७)
एक[१] दिन अट्ठ[२] सुरतान साहे[३]। (८)
जंपिअं[१] सच्च[२] सो चंद चंडं[३]। (९)
थप्पियं[१] जाय तिरहूति पिडं[२]। (१०)

दक्खिनी[१] देस अप्पउ[*] विचारे[२] ।[×] (११)
उत्तर्‌यउ[१] सेत बंधइ पहारे[२] ।[×] (१२)
करण[१] डाहल्ल दु[*२] बार वांध्यउ[*३] । (१३)
सिध्धु[१] सोलंकि[२] कइ[*३] बार षेध्यउ[*४] । (१४)
तिन्न[१] दिन युध्ध करि[२] रुंड मुंडा+[३] । (१५)
तोरि[*१] तितिलिंग[२] गोवल्ल कुंडा[३] । (१६)
छंडिग्रउ[*१] बंधि[२] इक गुंड[३] जीरा । (१७)
लिये[१] बइरागरे[*२] सव्व[३] हीरा । (१८)
गज्जिनि[*१] सूर[२] साहाब साही । (१९)
सेवते[१] बंधि[२] निसिरुत्ति पाही (षांही?)[३] । (२०)
भुल्लि[१] बिभ्भीषन[२] पाहि[*३] रोरे[*४] । (२१)
रोस[१] कइ[*] सोस[३] दरिआइ लोरे[*४] । (२२)
बंधि[१] षुरासान किय[२] मीर बंदा । (२३)
सुतउ[*] राठ वयराठ[१] विजपाल[२] नंदा । (२४)
बंस[१] छत्तीस आवइ[*२] हकारे । (२५)
एक[१] चहूआन प्रिथिराज[२] टारे ॥ (२६)

अर्थ—"(१) [जयचंदकी सभा में] आसनों पर [ऐसे] शूर गण है जो बढ़े हुए (समृद्ध) और सुव्यवस्थापित हैं, (२) जिन्होंने क्षिति के राजाओं को जीत कर [उन्हे जयचंद में] राधित (अनुरक्त) कर दिया है। (३) वह (जयचंद) धरणी के खंड (भरत खंड) को धारण कर दिक्‌पालों का धर्म वहन कर रहा है (४) और सिर पर वह [छत्र के] कनक-दंड की शोभा और द्युति को धारण कर रहा है, । (५) जिस पंग (कन्नौज राज) ने [सेना] साज कर सिंधु [नदी] का अवगाहन किया (६) [जिसके आगे] तिमिर अपना तेज छोड़ कर कुरंग (मृग) [के समान] भयभीत हुआ, (७) जिसने हेमकूट (मेरु के समीपस्थ एक पर्वत) [मे स्थित राज्यो] को सपूर्ण रूप से ढहाया और (८) एक दिन मे आठ सुल्तानों का साधा (वश मे किया)। (९) चड (उग्र) चंद सत्य कहता है कि उस (जयचंद) ने (१०) तिरहुत जाकर पिंड (सेना) स्थापित की। (११) 'दक्षिण देश को अर्पित करूॅ' ऐसा विचार कर (१२) वह सेतुबंध के पर्वत पर जा उतारा। (१३) उसने डाहल देश के कर्ण को दो बार बंदी किया, (१४) और [गूर्जर के] सोलकी सिद्ध (जैन) राजा को कई बार खदेड़ा। (१५) उसने तीन दिनों तक रुड मुंड युद्ध करके (१६) तिलंग (त्रिलिङ्ग) और गोवल कुंड (गोल कुंडा) को तोड़ा (वश मे किया), (१७) एक मात्र गुड के शासक जीरा को बॉध कर (बदी कर) के छोड़ दिया, (१८) और वैरागर देश से सब हीरे ले लिए। (१९) गज़नी के शूर शाह शहाबुद्दीन की (२०) जो सेवा में था, उस निसुरत खॉ (?) को बदी किया। (२१) जो भूल कर [लंका जा कर] विभीषण पर रोर (आक्रमण) कर बैठा, (२२) अपने रोष के शोषण द्वारा समुद्र को चंचल कर डाला (२३) और जिसने खुरासन के अमीर बंदा को बंदी किया, (२४) वह तो राठ प्रदेश का पति राष्ट्र [कूट] विजयपाल का पुत्र [जयचंद] है। (२५) उसके बुलाने पर छत्तीस कुलों के क्षत्रिय आते हैं, (२६) एक मात्र चहूआन पृथ्वीराज को छोड़कर।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित चरण या शब्द मो. में नहीं है।

× चिह्नित चरण उ. में नहीं हैं।

+ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. अ. फ. आसन, द. ना. आसनै, म. उ. स. जहाँ आसनं (आसने–उ. स.)। २. अ. ठ्ठे, म. चढ्ढे, । ३. मो. सनाई, मो. के अतिरिक्त सभी में 'सनाह।

(२) १. धा. अ. जीति, मो. जितीये, फ. जित, द. जिनै जित्ति, म. उ. स. जिनैं जीति, ना. जित्ती। २. मो. क्षितिराय के सुराई, धा० छितिराइ किय ना सुराइं, अ. फ. छिति (छित–फ.) राइ किनै सुराइं (सुनाई–अ.), म. उ. स. छितिराय किय एक राइ, ना. ये राइ छिति के सराइं।

(३) १. अ. फ. धर्म, ना. ध्रम्म, म. उ. स. धरा ध्रंम (ध्रुम–म.)। २. ना. भ्रिगपाल।

(४) १. अ. फ. ढरहि, म. उ. स. धरैं छत्र। २. ना. सोम।

(५) १. मो. यते, शेष में 'जिनै'। २. धा. सज्जिगे, अ. फ. सज्जते, ना. साजतै, द. म. उ. स. साजते। ३. द. सिधि। ४. मो. गाहि (= गाहे) सुपग. धा. अ. फ. गाहो (<गाहि=गाहे) सुपंग (सुपगुं–फ.), द. म. उ. स. गाहै=(गाहें–उ. स.) सुपंगं (सुपंगा–म.), ना. गाही (< गाहि=गाहे) सुपंगा।

(६) १. मो. तिमिर तज, ना. तिमर तप, म. उ. स. उन तिमिरि (तिमर–म.) तजि, द. तिम तिम। २. धा. तेजु, अ. फ न मेज। ३. मो. भीय ज्यु (= भिय जाउ), धा० भंज्यो, ना. म. उ. स. भाजै + द. भगे। ४. ना. कुरंगा। ५. ना. में यहाँ और है : जिनैं साज तै इंदु कंपै सुचंदं। तिमरजा तीर तरण रंग नंदं।

(७) १. मो. जेने (= जिनि), ना. जिनें शेष में 'जिनै'। २. फ. नैं, म. से। ३ धा. सवे। ४. धा. म. ना. ढाहे (ढाहैं–ना. अ. फ.)।

(८) १. अ. फ. इक, म. उ. स. जिनैं एक, ना. जिनैं इक,। २. धा. मो. आठ, ना. अ. फ. अठ्ठ। ३ ना. साईं।

(९) १. धा. ना. अ. फ. जंपियो, म. उ. स. जसं जंपियं। २. धा. संच, फ. सच, ना. सच्च। ३. मो. चंद चंदं, धा. चंड चंडं, शेष में 'चंद चंडं'।

(१०) १. म. उ. स. जिनें (जिनै–म.) थप्पियं। २. मो. त्रिहूति पिंडि, अ. तिरहुत्ति पंडं (< प्यंडं), फ. तिरहत्त प्यंडं, म. उ. स. तिरहूत पिंडं।

(११) १. धा. दच्छिनी, मो. दक्षिनी (= दक्खिनी), अ. ना. दछ्छिनं, फ. दक्षिनं, म. उ. स. जिनैं दषिनी। २. मो. आपु (= आपउ) बिचारे, धा. अप्पो विचारं, अ. फ. अप्पे विचारं, उ. स. अप्पै विचारें, म. द. ना. अप्पौ (अप्पौ–म. ना.) विचारे (विचारैं–ना.)।

(१२) १. मो. उतरयु (= उत्तरयउ), धा. द. उत्तरयो, ना. उत्तरयौ, फ. उत्तरे, म. उ. स. जिनै उत्तरयौ। २. धा. सेतबंधे पहारं, द. उ. स. सेतुबंधं पहारै (पहारे–ना. द.), अ. सेतु बंधे पहारं, फ. सेत बंधे यस्तारे, म. सेत पाज बंध पहारे।

(१३) १. मो. करण डाहल (= डाहल), म. उ. स. जिनैं करन डाहाल, धा. अ. फ. कर्ण (कर्न–धा.) डाहाल। २. मो. दू (= दु) धा. ना. दुहुं, म. उ. स. दुअ। ३. मो. बार बांध्यु (= बांध्यउ), धा. बान बंध्यो, अ. फ. बान बेध्यउ, ना. म. उ. स. बान बेध्यौ।

(१४) १. मो. धा. अ. ना. सिंधु (= सिंध्धु), फ. सिंध, द. सिधि, म. उ. स. जिनैं सिद्ध। २. मो. के अतिरिक्त सभी में 'चालुक' है। ३. मो. कि (= कइ), धा. म. ना. के, उ. स. कय। ४. मो. पेध्यु (= पेध्यउ), धा. द. पेध्यो, ना. म. उ. पेध्यौ, अ. पेध्यउ, फ बेध्यौ।

(१५) १. मो. धा. तीन, म. उ. स. तिन (= तिन्न)। २. धा. अ. फ. दिन जुद्ध भरि, द. ना. दिन जुद्ध भिरि, म. उ. स. दिन्न जुद्धं भिरैं (भिरे–म.)। ३. अ. फ. रुंड मुंडं, उ. स. भूमि रुंडं, म. भूमि रुंडं, ना. भूमि मंडं।

(१६) १ मो. उरि (<तुरि=तोरि), म. उ. स. वर तोरि, फ. भोरि। २. धा. ठिह्लग, मो. तिल्यग (=तिल्गि), अ. फ. तिल्लिग, म ना. उ. म. तिह्लग। ३. मो. गोवल गूडा, धा. द. गोवह्ल कुड, म. अ. फ ना. गौवाल (गोवाल–म.) कुड, उ. स गोआल कड।

(१७) १. मा. छडिउ (=छडिअउ), धा. अ. फ. छाडियो, ना. छडियौ, म. उ. स. जिनै छडियो। २. फ. बध्य (=बधि)। ३. मो. इक गूड, ना. इकु गोडु।

(१८) १. ना. ग्रहै, म. उ. स. ग्रहे लिद्ध (लीध–म)। २. मो. विरागरे (=वइरागरे), धा. वरागिरि (=वरागिरइ), ना. वंरागर, शेष में 'वरागरे'। ३. म. अब्ब।

(१९) १. मो. गजेने (< गजिनि), धा. गाजनं, ना. द. गज्जनं, म. उ. स. जिनं गज्जने (गज्जनं–म.)। २. अ. फ. सुत।

(२०) १. ना. मुक्कल्यौ, म. उ. स. तिने (तिन -म.) मोकल्यो (मोकल्यौ–म.)। २. धा. बध, अ. बंधि, फ. बधु, ना. गजन्ति, म. उ. स. सेव। ३. धा. निसुरत्त पाई, अ. फ. निसुरत्ति (निसुरत्त–फ.) पाही, द. म. निसुरत्ति भाई, उ. स. निसुरत्ति भाही।

(२१) १. धा. मो. अ. फ. भूलि, द. भुल्लि, म. उ. स. बर भुल्लि (भूलि–म.)। २. मो. विभीषनो, धा. भल्लि छने, ना. भभीषन। ३ धा. अ. फ. जाइ, द. म. उ. स. जोब। ४. मो. रोरि (=रोरे), ना. रोरैं, शेष में 'रोरे'।

(२२) १. ना. तो रोस, म. उ. स तहां रोस। २. धा ना. उ. स. कै, म. अ. फ. के। ३. धा. सास। ४. मो. दरि आइ लोरि (=लोरे), धा. उ. स. अ. फ. दरिया हिलोरे, म. दरिया लिलोरे, ना. दरिया हिलौरैं।

(२३) १. म. उ. स. जिनै बंधि। २. ना. कीये।

(२४) १. धा. राव राठोर, मो. सुतु (< सुनउ) राठवय राठ, म. उ. स. इसौ रठ्ठवर राय, अ. फ. सुतौ राठौर, ना. सुतं राठौड, द. सुत रठोर। २. म. अ. बिजैपाल, बिज्जैपाल।

(२५) १. म. उ. स. जहां बंस। २. धा. म. द. ना. आवै, मो. आवि (=आवइ) अ. फ. आवे।

(२६) १. म. उ. स. परं एक। २. उ. स. सुमान।

टिप्पणी—(१) समाइ < समाहित=भली भाँति व्यवस्थापित। (२) राइ < राधित=प्रसन्न, अनुरक्त। (६) भिय < भीत। (८) साह < साध्=वश में करना। (११) आप < अर्पय्। (२१) रोर < रोल [देशज]=कलह। (२२) लोर < लोल। (२४) राठवय < राष्ट्रपति [अब भी 'राठ' नाम की एक तहसील है]

[१४]

दोहरा— सुने ति नृप[1] रिपु[×] कउ[*] सवद[2] तम तम[3] नयन[4] सुरत्त[5] । (१)
*दल[1] दलिद्द[2] मंगन घरह[3] सु[4] को मेटइ[*5] विधिपत्त[6] ॥ (२)*

अर्थ—(१) उन्होंने (जयचंद के कवियों ने) [जब अपने] नृप (जयचंद) के रिपु (पृथ्वीराज) का शब्द (नाम) सुना, तो उनके नेत्र तमतमा कर लाल हो गए। (२) [उन्होंने चंद की इस प्रकृति को देखते हुए अपने मन मे कहा,] "यदि मंगन के घर में दारिद्रय का दल हो, तो विधाता के उस पत्र (लेख) को कोन मिटा सकता है!"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।
(१) १ धा. अ. फ. सुनि नृपति (फ. में 'पति' नहीं है), ना. द. म. उ. स. सुनत नृपति।

२. मो. [रिपु] कु (=कउ) सवद, ना. रिपु कौ सबद, धा. रिपु कै सबद, अ. रितु कौ सब्द, फ. रिष कौ सबद, म. उ. स. रिपु कौ वयन। ३. मो. द. ना. म. उ. स. तनमन, धा. तामस। ४. अ. फ. ना. नैन। म. भयंन। ५. द. स रत्त।

(२) १. धा. दरि, अ. फ. दर, द. म. उ स. दिय, ना. दी। २. धा. दरिद्द, मो. दिलद्द. म. उ. स. दरिद्र, ना. दालिद्र। ३. धा. अ. फ. मुषह (मुषहि–फ)। ४. धा. अ. फ. उ. स. में यह शब्द नहीं है। ५. धा. मेट्ट, मो. [मेटि] (=[मे] टइ) मिटे (<मेटि=मेटइ), द. ना. म. उ. स. मेटैं। ६. फ. पत्ति।

टिप्पणी—(२) दलिद्द < दारिद्र्य। पत्त < पत्र।

[१५]

दोहरा— *आदरु किय[१] नृप तास कउ[*२] कहउ[*३] चंद कवि[४] आय[५]। (१)*
*ढिल्लिय पति जिहि विधि रहइ[*१] सु वत्त कहहि[२] समझाय[३] ॥ (२)*

अर्थ— (१) [जयचंद के समक्ष पहुँचने पर] नृप (जयचंद) ने उसका आदर किया, और कहा, "चंद कवि, आ; (२) दिल्ली पति (पृथीराज) जिस प्रकार रहता है, वह वार्ता मुझे समझा कर कह।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. किउ, ना. करि। २. मो. कु (=कउ), धा, अ. फ. कों, ना. म. उ. स. कौं। ३. मो. कहु (=कहउ), धा. कहयौ, अ. कहयउ, ना. द. फ. म. उ. स. कह्यौ। ४. मो. कवि। ५. धा. अ. फ. ना. उ. स. आउ।

(२) १. मो. ना. धा. अ. फ. ढिलीय (धा. दिल्ली, अ. फ. दिल्लिय) पति जिहि बिधि रहइ (रहि=रहइ मो., रहै–अ. फ.), द. म. उ. स. मिले मोहि (न मोहि–स. न, मुहि–म.) दिल्लिय धनी। २. धा. सु वत्त कहे, अ. फ. सु तौ कहहु, ना. सुतौ मोहि, म. उ. स. सुवत्त कहिग, द. सुवत्त कहहिं। ३. धा. अ. फ. समुझाउ, मो. समुझाइ, द. ना. उ. समझाउ।

टिप्पणी—(२) वात < वार्ता।

[१६]

दोहरा— *कितुक[१] कंति[२] संभर[३] धनी कितुक[४] देस दल विंदु[५]। (१)*
कितु इक रन[१] हत्थग्गरु[२] सु हसि नृप बुज्झउ[*] चंद[३] ॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचंद ने पूछा,] "साँभरपति मे कितनी काति है और कितना उसका देश और दल-वृन्द है? (२) कितना वह रण मे हाथ [चलाने] मे आगे है?" यह हँस कर नृप (जयचंद) ने चंद से पूछा।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. मो. किलुक, धा. द. कितकु, अ. जितकु, फ. जिनकूं, म. उ. स. कितक। २. मो. कति, शेष सभी में 'सूर'। ३. ना. सैभर। ४. मो. किलु एक, धा. द. अ. फ. कितकु, म. उ. स.

कितक। ५. मो. दल ब्यंदु (=विंदु), धा. दल बंध, अ. फ. कुलचद, ना. दल चंद, उ. स. दल (बल–उ.) बंधि (वध–उ.), म. दस बंध।

(२) १. धा. कितोकु रन हथ अग्गलउ, मो. कितुइक रन हथ गरु, अ. फ. कितकु (कितिकु–फ.) रन हथ्थअग्गलौ, ना. कितुक रण हथ अग्गरौ, द. म. उ. स. कितक हथ्थ रन (रण–द.) अग्गरौ। २. मो. सु हसि नृप बूंझं (=बुज्झउ) चंद, धा. पुच्छइ राउ सु चंद, अ. फ. पूछउ राइ सुचंद, ना. द. म. उ. स. हसि नृप बूझ्यौ (बूझीय–म.) चंद।

टिप्पणी—(१) कंति < कान्ति। विंद < वृन्द।

[१७]

दोहरा— सूर जिसउ[*1] गयनहि[2] उवइ*[*3] दल दव[4] मारन[5] भासि[6]। (१)*
जब लगि अरि कर उच्चवइ[*1] तब लगि देइ[2] पचास॥ (२)*

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "जिस प्रकार गगन में सूर्य द्रव (जल) दल के मारने के लिए उदित होता है, [उसी प्रकार पृथ्वीराज भी है]; (२) जितनी देर में शत्रु हाथ उठाता है, उतनी देर में वह पचास [हाथ] दे देता है।"

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. सूर जिसु (=जिसउ), धा. सूर जिसो, अ. म. उ. स. सूर जिसौ, ना. सूरि जसै, फ. सूरज सौ। २. धा. म. उ. स. गयनइ, अ. फ. ना. गैंनइ। ३. मो. उवि (=उवइ), धा. उ. स. द. उवै, ना. म. उगें, अ. फ उवे (< ऊवि = उवइ)। ४. धा. दल बल, मो. दल दव, फ. दल बदल, ना. अरिदल, शेष सभी में 'दल बल'। ५. धा. मरनां, ना. अरिन, अ. में 'न' मात्र है, फ. यन। ६. धा. भासि, शेष में 'भास'।

(२) १. मो. धा. अरि कर उचवि (=उच्चवइ), धा. अरि नृप बज्जवैं, ना. म. उ. स. अरि कर (करि–म.) उठुवैं, अ. नृप अरि ऊठवे, फ. अरि नृप ऊठवे। २. म. देय, ना. देहि।

टिप्पणी—(१) गयन < गगन। उव < उदय्। दव < द्रव।

[१८]

दोहरा— मुकुट बंध[1] सवि[2] भूप हइं[*3] लष्षन*[*4] सर्व[5] संयुत्त[6]। (१)*
बरनहि किनि उनहारि रहि[1] कहि चहुआन स उत्त[2]॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचंद ने कहा,] "[मेरी सभा के] सब भूप मुकुट-बंध हैं और वे सब लक्षणों से युक्त हैं। (२) तू वर्णन कर कि किसकी उनहार (अनुकृति—आकृति) [उसकी] रही; तू चहुआन (पृथ्वीराज) का उक्ति पूर्वक कथन कर।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. ना. संध। २. मो. ना. सवि, शेष सभी में 'सब'। ३. मो. हि (=हइ), म. उ. स. हैं, धा. अ. फ. ना. है। ४. धा. फ. म. उ. स. लच्छिन, मो. लक्षंन (=लष्षन), ना. लक्ष्यन

(= लष्यन), द. लछ्यन, अ. लछन । ५. धा. मो. सर्वं, शेष में 'सब' । ६. धा. सुजुत्त, अ. फ संजुत्त ।

(२) १. धा. वरन वइउइनिहारि इह, अ. बरनि जेनि उनहारि वह, फ. बरन जेनु उनिहारु उह, द. ना. उ. स. कौन वरन उनहार (वरण अनुहार—ना.) किहिं, म. कौन वरन उन हीन कहिं । २. धा. ज्यूं चहुवान संउत्त, म . कटि चहुआन सपूत, अ. फ कटि चहुवान सजुत्त, म. उ. स कहु (कहि—म. उ.) चहुआन सुउत्त, द. ना. जस चहुवान सउत्त ।

टिप्पणी—(२) उनहारि < अनुकार । उत्त < उक्ति ।

[१९]

कवित— बत्तिस लक्खन* सहित[१] बरस छत्तीस मास छह । (१)

इम[१] दुज्जन[२] संगहइ*[३] राह[४] जिम[५] चंद सूर गह[६] । (२)

वय[१] छुट्टइ*[२] महिदान[३] दुवन[४] छुट्टइ* जि[५] डड दिहि । (३)

एक गहि गहि[१] गिरिकंन[२] एकु अनसरइ*[३] चरन गहि[४] । (४)

चहुवान चतुर चावद्दिसहि[१] बलि हिंदुआन[२] सवि[३] हत्थि जिहि । (५)

इम जंपइ चंद विरद्दिआ*[१] सु प्रथीराज[२] उनिहारि[३] एहि[४] ॥ (६)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "पृथ्वीराज बत्तीस [शुभ] लक्षणों से युक्त है, और छत्तीस वर्ष तथा छः मास का है। (२) वह दुर्जनो को इस प्रकार बंदी करता है जैसे राहु चद्रमा तथा सूर्य को पकड़ता है। (३) वे मही-दान से छूटते हैं, तो दुर्जन दंड दे कर छूटते हैं। (४) एक (कुछ) गिरि-कंदरो को पकड़कर—उनमे आश्रय लेकर [छूटते हैं] और एक (कुछ) उसके चरण पकड़ कर उसका अनुसरण करते हैं । (५) चतुर चहुआन (पृथ्वीराज) ऐसा है कि जिसके हाथ मे चारों दिशाओ के बली हिंदू [शासक] हैं।" (६) चंद विरदिआ इस प्रकार कहता है, "पृथ्वीराज की अनुहारि (अनुकृति-आकृति) इस प्रकार की है।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. वत्तिस लक्षन (= लक्खन) सहित, धा. लच्छत सहित बत्तीस, अ. फ. बतीसं लष्यिन (लष्यन—फ.) सहित, द. ना. बत्तीसह लछिन (लक्ष्यन—ना.) सहित, म. उ. स. बत्तीसह (बत्तीस—म.) लच्छिनह ।

(२) १. धा. इन, म. इह, स. इस । २. अ. फ. दुर्ज्जन, ना. दुरजन । ३. मो. संगहि (=सगहइ), धा. संग्रहे, अ. फ. संग्रहै, ना. सग्रहहि, म. उ. स. सग्रहत । ४. धा राहु । ५. अ. जिमि, स. जिस । ६. मो. गहि, धा. अ. फ. गह, ना. म. उ. स. ग्रह ।

(३) १. धा. उव, मो. वय, अ. फ. वै, द इव, ना उव, उ. स एक, म. इक । २. मो. छुटि (= छुटइ) धा. छुट्टे, द. म. उ. स. छुट्टहि, अ. फ ना छुट्टे । ३. मो मिहि (< महि) दानि, शेष सब में 'महि दान' । ४. धा. दुजन, म इक । ५. मो. छूटि (= छूटइ) जि, धा. म. छुट्टेति, ना. छुट्टति, फ. छुट्टतिह, उ. स. छुट्टहिति, म. छुटहित । ६. धा. दडवहि, अ. फ. दंड कहि, उ. चद भर, ना. स. दंड भर, म. दंड भरि ।

(४) १. धा. इक गहहि, अ. फ. इक गहिहि, ना. इक गहैहि, द. इक ग हि है, उ. स. एक गहहि, म. इक ग्रहहि । २. मो. में 'कंन' शेष सभी में 'कंद' । ३. मो. एकु अनसरि (= अनसरइ), धा. म. अ.

फ. ना. इक्क अनुसरहिं (अनुसरहि—अ. फ. ना.), उ. स. एक अनुसरहि। ४. मो. वरन (=चरन) गहि, म. चरन पर, उ. स. चरन परि।

(५) १. मो चावद्दसहि, धा. चहु दिसहि, अ. चहु दिग्गहु, फ. चौहु दिसहु, म चावौदिसहि, ना. चावदिशिहि। २. धा अ. बलि हिंदुवान (हिंदवान—अ.), फ. बलि इंदवान, शेष सभी में 'हिंदुवान' (हिंदवान—म.) मात्र है। ३. मो. सिव (< सवि)। ४. मो. हथि शेष, में 'हथ'।

(६) १. मो. विरदीउ (=विरदिअउ), धा. अ. फ. म. उ. स. वरद्दिया, ना. विरुद्दीया, द. वरदियो। २. धा. प्रिथीराज। ३. धा. अनुहार, ना. अणुहरि, अ. उनहार, फ. उनहारु, ना. द. उ. स. उनहारि, म. उनिहार। ४. धा. अ. फ. इहि।

टिप्पणी—(३) दुवन < दुर्जन। (४) कन < कद। (६) अनुहारि < अनुकार।

[२०]

दोहरा— दिष्षि[१] थवायत[२] थिरु[३] नयन[४] करि[५] कनवज्ज[६] नरिंद। (१)
नयन नयन अंकुरि[१] परिय[२] मनु+ इकु°[३] थह° दोइ°[४] मयंद[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) [यह सुनकर] कन्नौज-नरेन्द्र ने जब [चन्द के] थवाइत (तांबूल-पात्र-वाहक—पृथ्वीराज) को स्थिर नयनों से देखा, (२) तो नेत्रों नेत्रों में अंकुर (बल) पड़ गए, [और ऐसा लगा] जैसे एक ही आश्रय-स्थान में दो मृगेन्द्र [मिल गए] हों।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
° चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।
+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) १. द. दिष्षि, म. उ. स. देषि। २. धा. यवाइत, फ. थवाइत्ति, म. यवाइत, ना. तवाइत। ३. द. थिरि। ४. म. तपन। ५. मो. कर, अ. फ. कहि। ६. फ. कनउज्ज।

(२) १. म. नयने अरि, धा. अ फ. नयन बकुरि। २. धा. परइ, ना. परी, अ. फ. परे। ३. मो. इकु, धा. अ. फ. मनुं, म. मनौं इक। ४. मो. दोउ, अ. फ. उभे, ना. म. दोय। ५. धा. मइद।

टिप्पणी—(१) थवायत < थइआइत्त < स्थगिकावत् = तांबूल-पात्र-वाहक। (२) थह [देशज]= निलय, आश्रय, स्थान। मयद < मृगेन्द्र।

[२१]

दोहरा— जे त्रिय[१] पुरुष[२] रस परस×[३] बिनु उठिग राय सुरसान[४]। (१)
धवलगृह ने अनसरइं*[१] भट्टहि अप्पन[२] पान ॥ (२)

अर्थ—(१) "जो स्त्रियाँ पुरुषों के रस और स्पर्श विहीन—कौमार्यपूर्ण—हैं", राजा का [ऐसा] उत्तेजित स्वर उठा, (२) "वे भट्ट (चंद) को पान अर्पित करने के लिए धवलगृह से अनुसरण करें (चल पड़ें)।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द म. में नहीं है।
(१) १. धा. वे त्रियन, द. अ. फ. त्रियन, ना. जे त्रीयन। २. धा. पुरष, उ. पुरिस, स. पुरिष, ना.

परसु । ३. म. परसि । ४. धा. उठिग राय सुरिसान, मो. उठि गयु (=गयउ) राय सु सान, द. ना. म. उ. स. उठिग राइ सु निसान, अ. फ. कढ्ढिग राइ सुरसान ।

(२) १. मो. धवल ग्रहि जे अनशारि (=अनसारइ), धा. धवल ग्रिह त्रिप अनुसरिग, अ. फ. धवलग्गृह ते अनुसरिग, ना. द. धवल ग्रिह सपत्र करि, म उ. स. धवल ग्रिह सपत्र कहि । २. धा. रिपु मगन सू, मो. रिपु मगन कह, ना. द. भट्टहि अप्पौ, अ. फ. भट्टहि अप्पुन ।

टिप्पणी—(१) सुर < स्वर । सान < शाणित=उत्तेजित ।

[२२]

दोहरा—तिन[१×] कह[×] हत्थह[×] अत्थि[२×] किय[३×] जे[×] राय[४×] ग्रह[×] अत्थि[५*] । (१)
ते[१] सुंदरि सब एक समयि[२] चली[३] सुगंधन[४] कत्थि[५*] ॥ (२)

अर्थ—(१) उनके हाथों–पाणि ग्रहण–के लिए [अपने को] अर्थी किया था ऐसे राजाओं ने जो उन्हे गृहिणी बनाने के अर्थी थे। (२) ये सुंदरियाँ सबकी सब एक समिति—मंडली—के रूप में प्रशंसनीय सुगंधियों मे [सनी हुई] चल पड़ी ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

× धा. में चिह्नित शब्दावली नहीं है ।

(१) १. मो. किन । २. ना. म. उ. द. अत्थि सुहथ्थ । ३. मो. क्यय (=किय)। ४. ना. म. उ. स. द. राजन । ५. मो. ग्रह अच्छ, धा. अत्थ, ना. उ. स. ग्रह (गृह–ना) अच्छि, म. ग्रेह अच्छि ।

(२) १. धा. म. उ. स. छह । २. धा. एकइ समइ, मो. सब एक समिय (< समिथि) ना. द. उ. स. सब एक सम म. सब एक मन । ३. मो. सू (= सु) चली । ४. धा. सुगंधनि, मो. ना. म. सुगंधन । ५. मो. कच्छ, धा. कत्थ, म. उ. स. द. ना. कच्छि ।

टिप्पणी—(१) अत्थि < अर्थिन् । (२) समयि < समिइ < समिति । कत्थि < कथ्य=प्रशंसनीय ।

[२३]

दोहरा— षोडस[१] बरष स मुग्धि ग्रह[२] ले सब दासि[३] सुजान[४] ।° (१)
मनहुं°[१] सभा° सुरलोक थइ[*२] चली अच्छरी[३] समान ॥ (२)

अर्थ—(१) [इन] षोडश वर्षीया [सुंदरियों] ने समस्त सुजान (चतुर) दासियों को लेकर [धवल–] गृह इस प्रकार छोड़ा(२) मानो सुरलोक से [देवाङ्गनाओं की] सभा (मंडली) अप्सराओं के साथ चल पड़ी हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।

° चिह्नित चरण तथा शब्द धा. में नहीं हैं ।

(१) १. यहाँ ना. द. में 'जे' भी है, जो और किसी में नहीं है । २. अ. फ वरष सु मुक्कि गृह, द. बरष समुचह, ना. बर्षह जमल, म. उ. स. षोडस वरष स मुच्च ग्रह । ३. ना. ग्रह सब दासि, म. ले साव दिस । ४. उ. स. सुजानि ।

(२) १. म. मनौं, ना. मनुं । २. मो. थि (=थइ), धा. वइ, द. कै, अ. फ. ते, ना. कुं, स. की, म. के, उ. कै । ३. द. म. उ. अछरीय, स. अच्छरिय, ना. अछरअ ।

टिप्पणी—(१) मुच < मुच् । (२) अच्छरी < अप्सरस । समान=साथ (?) ।

[२४]

अर्ध नाराच—

विहंग[१] भ्रंग× जु पुरं[२] । (१)
चलंति[१] सोभ[२] नूपुरं[३] । (२)
अनेक भंति[१] सादुरं[२] । (३)
अषाढ़ °मोर[१] दादुरं । (४)
सुधा समान सुष्षहीं[१] । (५)
उठंति दंत* दुम्महीं[१]* ।[२] (६)
दीपंति[१] दोर[२] कंकने[३] । (७)
कटि प्रमान[१] रंकने[२] ।°[३] (८)
धनुष्ष[१] भउंह*[२] अंकुरे ।°(९)
नयन्न बान[१] बंकुरे । (१०)
स्रवन्न मुत्ति[१] तारये[२] । (११)
अलक्क बंक[१] आरझे[२]* । (१२)
सबद्द सोभ ये षुले[१] । (१३)
रहंति[१] लज्ज[२] कोकिले । (१४)
अनेक वर्ण[१] जउ* कहउं*[२] ।°+ (१५)
तउ*[१] जाम[२] अंत न लहउ*[३] ।+°(१६)

अर्थ—(१) जिस प्रकार विहग (पक्षी) तथा भृंग [मधुर रव करते] पूरित (व्याप्त) हो रहे हों, (२) इस प्रकार उनके चलते समय उनके नूपूर शोभित हो रहे थे। (३) [नूपुरों के शब्द इस प्रकार लगते थे मानों] अनेक प्रकार से बोलते हुए (४) आषाढ़ में मोर और दादुर (मेढक) हों। (५) उनके सुधा के समान [कांति वाले] मुखों को (६) उनके उठते (खुलते हुए) दाँत धवलित कर रहे थे। (७) उनके डुलते हुए—हिलते हुए—कंकण प्रदीप्त हो रहे थे। (८) उनकी कटि प्रमाण-रंक थी—इतनी क्षीण थी कि उसके अस्तित्व में भी संदेह हो सकता था। (९) उनकी भौंहें अंकुरित (चढ़े हुए) धनुष के समान थीं। (१०) उनके नेत्र वाण वक्र थे। (१०) उनके श्रवणों के मोती तारकों के समान थे, (१२) जो उनकी बाँकी अलकों में उलझे हुए थे। (१३) उनके शब्द यदि खुलते—मुख से निकलते—थे, तो इस प्रकार शोभते—सुहाते—थे (१४) कि कोकिल लजा कर रह जाते थे। (१५) यदि उनके अनेक वर्णों (रूप रंगादि) का कथन करूँ, (१६) तो एक पहर तक उस वर्णन का अन्त नहीं पा सकूँगा।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित शब्द उ. में नहीं है।
० चिह्नित चरण धा. में नहीं हैं।
+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं हैं।

(१) १. ना. विहंगि। २. धा. अ. फ. भृग (भंग–धा.) जा पुरा, द. म. उ. स भंग जो पुरं, ना. भंगि जो पुरा।

(२) १. अ. फ. चलंत। २. अ. फ. सोन, म. होस। ३. धा. अ. फ. ना. नूपुरा, म. नोपुरं।

(३) १. अ. फ. ना. भांति, म. भजि। २. ना. सीदुरं।

(४) १. द. मोर, शेष में 'सोर'।

(५) १. मो. सुष्षही, धा. मुकही, अ. ना. मुष्षही, फ. सुखही, म. उ. स. सथ्थही।

(६) मो उठति ति दुदु मही, धा. उठति तिदु संमुही, द. उठत दंति दुंमुही, अ. फ. उठत इंदु संमुही, ना. उवंत इंद सम्मुही, म. उ. स. सुगंध हथ्थ (गध–म.) हथ्थही। २. मो. के अतिरिक्त सभी प्रतियों में यहाँ या कुछ चरणों के बाद और है (स. पाठ) :—

नितंब तुंग स्याम के। मनो सपत्र काम के।
लवन्न भृंग गुंजही। सुगध गंध पुंजही (हत्थही–धा.)।

(तुल० चरण ६ का म. उ. स. का पाठ)। म. उ. स. में इन पक्तियों के पूर्व और भी है :—

चरन्न रत्त सोभई। उपम्म कब्बि लोभई।
बरन्न रत्त श्रीरजे। कसीस कासमीर जे।
चरन्न पडि रत्तए। उपम्म कब्बि पत्तए।
सुबक चंद अंकन। सुराइ तेज संकनं।
सुबक चंद अंकन। सुराइ तेज संकनं।
सु संक जीवन टरै। सुनें सरूप में करै।
नषादि आदि उप्पन। सुकाम केलि द्रप्पनं।
चरन्न हंस सहही। उपम्म कब्बि बहही।
सुनंत होड़ छडयौ। चरन्न सेव मंडयौ।
सु पिंडि वाल सोभई। सुरंग रंग लोभई।
सुरग कुंकुमं भरी। षराद काम उत्तरी।
सुरंग जंघ ताल से। निकाम षंभ आल से।

(७) १. धा. वपंति, स. दिपति। २. ना. डोर। ३. ना. कंकनं।

(८) १. अ. फ. पमान। २. गा. रंकनं। ३. म. उ. स. में यहाँ और है :—

टिकै न दिट्ठ लंकयौ। बिलोकि अष्षि अंकयौ।
उतंग तुग तामयौ। कि ग्रम्म लोभ कामयौ।
सु रोम राज दिटठयौ। रुलंत बेनि पिट्ठयौ।
सु चंपि चद गाढयौ। विपास काम चाढयौ।
जु अन्न हीय सोभई। सु सिद्ध मेन लोभई।
ग्रहन्न रग चालई। सु लज्जि लक हालई।
उठत कुच्च कचुअं। कि तबु काम रच्चय।
वजे प्रमान सज्जनं। सुमेर श्रष्ष भंजनं।
जु पोत पुंज सोभयो। सुचित्त काम लोभयो।
सुजिति राइ धानयौ। सु चद बंठि मानयौ।
जराइ चौकि कंठयौ। उपम्म कब्बितं ठयौ।

ग्रह जुइंद आइयं। चरन्न चंद साहिथ।
वनित्त सब्ब जंपयौ। सुराइ थान अप्पयौ।
चिबुक्क चारु सोभयौ। उधम्म कब्बि मोहयौ।
सुवास अंग पत्तयौ। सुकज मुक्कि जत्तयौ।
सुरत्त अद्ध रत्तऔ। लहै न ओप अतयौ।
ओसाफ कब्बि सौहयौ। प्रवाल रत्त मोहयौ।
सुधा समान मुष्षही। दसन्न दुत्ति रुष्षही।
सुसद्द बद्द पचमं। कलिन्न कठ तंकम।
सुनी सुकब्बि राजई। उपम्म कब्बि साजई।
ससद्द सारगं हरी। प्रगट्ट काम मंजरी।

(९) १. स. अ. फ. धनुक्क, उ. धनक्क, द. वनक। २. मो. ना. भुइ (= भंउह) शेष में भौंह।

(१०) १. मो. नयन बान, शेष में 'मनो (मनु ना , मनौं–म.) नयन्न' है।

(११) १. मो. माति। २. उ. स. तालजे, तारिजे, म. मलजे।

(१२) धा. डंक। २. मो. लुम्भारए, धा. अ फ. भारए, द. उ. स आलुझे, म अलुझे, ना. आलुजे।

(१३) १. धा. द. जो घुले, अ. फ. पगुले, ना. ते घुले, म उ. स. जौ घुले।

(१४) १. धा. रहित्त। २. मो. लाज, ना अ. फ. लज्जि।

(१५) १. उ. स. वृन्न, ना. म. व्रन। २. मो. जु कहु (=जउ कहउ), धा. म. उ. स. जो कहै (कहे–धा.), द. जो कहैं, ना. जौ कहुं।

(१६) १. मो. तु (=तउ), धा. ते, द. ना. म. उ. स. तौ। २. धा. द. ना. म. उ. स. जम्म। ३. धा. मो लहे, मो. न लहुं (=लहउं) द. न लहै, म. उ स. ना लहै, ना. ना लहु।

टिप्पणी—(३) साद < शब्द। (६) धुम [देशज]=धवलित करना, श्वेत बनाना। (११) तारय<तारक।

[२५]

अडिल्ल— चहूआन[१] दासिअ रसि कंषिअ[२]। (१)
पुरि[१] रठ्ठवर रहिय[२] दिसि[३] नषिय[४]। (२)
विगल केस[१] पुरिषन कहि अषिय[२]। (३)
प्रथीराज[१] देषत[२] सिर[३] ढंकिय॥ (४)

अर्थ—(१) चहूआन (पृथ्वीराज) को एक दासी ने रस (सुख) क आकांक्षा की। (२) वह [इसलिए] दिशाओं में लुप्त होकर राठौर (जयचन्द) के पुर (कन्नौज) मे रहने लगी थी। (३) वह विगलित केश (विखराए बालों) युक्त रहा करती थी, और पुरुषों को कह कर [उनके मर्म] बता दिया करती थी। (४) उसने पृथ्वीराज को देखते ही सिर ढक लिया।

पाठान्तर—(१) १. धा. अ. फ ना. चाहुवान, म. उ. स. चहुवानह। २. मो रसि कपीअ, धा. रिसि कपिय, द. अ. फ. ना. रिसि (रिस–अ. फ. ना.) कंषीय (कंपिय–अ. ना.), म. स. सिर कषिय, उ. ना. रिस कषिय।

(२) १. द. में पुरि, शेष सब में 'पुर'। २. मो. रठवर रहिय, धा. राठौर रहइ, द. ना. म. उ. स. राठोर रही, अ. फ. राठौर रहै। ३. म. दिस। ४. ना. छिप्पिय।

(३) १. धा. विजर वासु, द. विगर केस, ना. विथुर केस, स. विगरत केस, म. बिगरव केत, उ. बिगरत केस, अ. बिगलि केस। २. मो. पुरिषन कहि अधीय, अ. फ. पुरुषत कोइ अप्पिय, द. म. उ. स. पुरुष नहिं (नह–म.) अकिय (अषीय–म.), ना. पुरुषन कहि अष्षीय।

(४) १. धा प्रिथीराज। २ ना. दिष्षित। ३. फ. सिरु, द. सिरि।

टिप्पणी—(१) कष < काङ्क्ष्। (२) नष < नश् (?)=लुप्त होना, भागना। (३) अष < अक्खा < आ+ख्या=कहना, बोलना।

[२६]

*दोहरा— भय चकि[१] भूप अनूप सह[२] पुरुष सु[*३] कहि प्रथिराज। (१)*
*सु मनु[१] भट्ट सथ्थिहि[२] अछइ[*३] जाहि करत[४] त्रिय लाज॥ (२)*

अर्थ—(१) भूप जयचन्द [तथा उस] की सभा अनुपम प्रकार से भय चकित (भौचक्के) रह गए, [और कहने लगे,] "वह पुरुष पृथ्वीराज कहाँ है? (२) वह मानो (ऐसा लगता है कि) भट्ट चंद के साथ है, जिसे वह स्त्री लज्जा कर रही है।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. भय चुकि, उ. स. अ. फ. भे चकि (बकि–फ.), ना. भयइ चकित, म. नव भेवक। २. ना. सहि। ३ धा. म. उ. स. जु, मो. सूर (< सु) अ. जि, ना. द. फ. ज।

(२) १. म. उ. स. सुमति। २. धा. सत्थह, म. सुथह, ना. सत्थैं। ३. मो. अछि (=अछइ), धा. अ. ना. म. उ. स. अछे, फ. अछे। ४. धा. जिह करंति, उ. स. जिहि करंत, अ. तिहि करंत, म. जिहि करिंत, ना. जिहि करत, द. फ. तिह करंत।

टिप्पणी—(१) सह < सभा। कहि < क्व, कुत्र। (२) अछ < अस्।

[२७]

*दोहरा— इक कहइ[*१] विट्ठिय[२] सुभट इह न[३] सथ्थि[४] प्रथिराज[५]। (१)*
*इह[१] नृपत्ति° दुहु° एक° हइं[°*२] ताहि करत त्रिय[३] लाज॥ (२)*

अर्थ—(१) एक कहने लगा, "यह जो सुभट [चन्द के साथ] बैठा हुआ है, यह [उसके] साथ में पृथ्वीराज नहीं है। (२) यह (चन्द) और नृपति (पृथ्वीराज) दोनों एक—अभिन्न—हैं, [इसीसे] यह स्त्री उस (चंद) से लज्जा करती है।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० धा. में चिह्नित शब्द नहीं हैं।

(१) १ मो. इक कहि (–कहइ), धा. एक कहिय, अ. फ. इक कहहि, ना. इक कहहि, म. उ. स. एक कहै। २. अ. फ. विट्ठहि, ना. विट्ठौ, म. उ. स. बैठे। ३. म. उ. स. इनह, ना. इन। ४. अ. फ. म. उ. स. सथ्थ (मथ्थ–म.), ना. सत्थहि। ५. धा. म. ना. प्रिथीराज।

(२) १. धा. इन्नि, अ. इहि, ना. इहै, म. उ. स. ए। २. मो. हिं (=हइं), अ. फ. उहि (उह–फ.)

दुहु मन इक्क है, म. उ. स, नृपजीवन एक है, ना. दुहु में एक नृप। ३. धा. जिह करति त्रिय, अ. फ. तिहि करति (करत–अ.) यह (तइ–फ.), म. उ. स. तिनह करत (तिन हरकता–म) त्रिय, ना. तिहि करत त्रीय।

टिप्पणी–(१) बिट्ठ < उपविष्ठ (?)।

[२८]

दोहरा— अपिग[१] पान सनमान[२] करि नहि[३] रष्षउ*[४] कवि गोय[५]। (१)
जु कछु इछ्छ करि मंगहिइ[१] प्रात[२] समप्पउं*[३] सोय[४]॥ (२)

अर्थ—(१) [चन्द को] पान अर्पित कर और उसका सम्मान करके [जयचन्द ने कहा,] "हे कवि, मैं तुझ से [कुछ भी] छिपाकर नहीं रख रहा हूँ (स्पष्ट कह रहा हूँ), (२) जो कुछ भी इच्छा कर तू माँगेगा, मैं तुझे उसे [कल] प्रातः समर्पित करूँगा।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) धा अ अप्पिग, द. अपि, ना. म. उ. स. अप्पि। २. धा. अ फ. पानु समानु (समान–फ.) ३. द. नहि रहि, म. नह। ४. मो. रषु (=रष्षउ), धा. रक्खूं, म. ना. उ. स. रष्यौ। ५. अ. फ. ना. तोहि।

(२) १. धा. मंगिहइ, अ. फ. ना. मंगिहै (मंग्यहै–फ.), द. म. उ. स. मंगिहौ। २. धा. कल्लि अ. फ. कल्हि। ३. मो. शमपु (=समप्पउ), धा. समप्पू, ना. समप्पुं (=समप्पउं), उ. स. समप्पों, अ. फ. म. समपौ। ४. धा. अ. फ. तोहि।

टिप्पणी–(१) अप < अर्पय्। (२) समप्प < समर्पय्।

[२९]

दोहरा— हक्कारिउ[१] रष्षत[२] नृपति कुंकुम कलस[३] सुवास। (१)
पच्छिम दिसि+[१] जयचंदपुरि[२] तिहि[३] रष्षउ* जाय[४] अवास[५]॥ (२)

अर्थ—(१) नृपति जयचन्द ने भृत्य को बुलाया, और उसने कुंकुम [वर्ण] के कलश वाले सुवासित (२) आवास (प्रासाद) में, जो जयचन्द पुर (कन्नौज) में पश्चिम दिशा में था, उसे (चन्द को) जाकर रक्खा—स्थान दिया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।

(१) धा. हक्कारिउ, मो. हकारो, अ. हक्कार्यौउ, फ. द. म. उ. स. हकार्यौ (हकार्यो–द.), ना. हकार्यौ। २. धा. रषत, फ. राउन, शेष सब में 'रावन' या 'रावन' ३. म. उ. स के के मुकि, फ. कुंकुम कला।

(२) १. मो. पच्छम दिसि, अ. पश्चिम, फ. पश्चिम बास, स. पच्छि दिसि। २. ना. में पुरि, शेष सब में 'पुर'। ३. म. तिह। ४. धा. रष्षहु तिय, मो. रषु (= रष्षउ) जाय, अ. फ. ना. लै (ले–ना.) रष्षि,

म. उ. स. रष्षौति, द. रष्षौ जाइ। ५. धा. वास, म. आवास।

टिप्पणी—(१) रष्षत < रक्षित=भृत्य। (२) अवास < आवास।

[३०]

दोहरा—आयस[१] रावन[२] सथ्थि चलि असिय सहस[४] तिहिं[५] सथ्थि[६]। (१)
जि भर भूमिह ठिल्लन कहइ*[१] त मेरु भरहिं मनु वथ्थ[२] ॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचन्द के] आदेश से रावण उसके साथ चला, और अस्सी सहस्र [भट] उसके साथ चले। (२) [वे भट ऐसे थे] जो भूमि को ठेल देने के लिए कहते थे, और जो [ऐसे लगते थे] मानो व्यस्त (अलग-अलग—एक-एक) मेरु को धारण कर सकते थे।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. अ. फ. ना. आइस। २. धा. राइन, फ. राउन। ३. धा. अ. फ. म. उ. स. सथ्थ। ४. म. ना. द. उ. स. अयुतं (अजुत—ना.) एक। ५. धा. भर, अ. फ. म. उ. स. भट। ६. मो. में सथि, शेष सब में 'सथ्थ'।

(२) १. मो. जि भर भूमिह ढि गि कहि (=कहइ), धा. भिर भुम्मिहिठिल्लन कहइ, अ. फ. जि भर भुम्मि ठिल्लन कहै, ना. जे भर भुमि ठिल्लन कहैं, द. म. उ. स. अग्ग (अंग—म., अग्गै-द.) राह सु (सौ—म.) संचरै। २. मो. त मेरु भरहि मनुमथि, धा. मेरतरिअ मुनिवस्थ, अ. फ. मेर (फेरु—फ.) भरहि उठि वथ्थ, ना. म. उ. स. मेर (मेरु—ना.) उचावहि (उचावै—ना.) वथ्थ (हथ्थ—म.)।

टिप्पणी—(१) भर < भट। (२) भर < भृ=धारण करना। वथ्थ < व्यस्त=अलग अलग।

[३१]

दोहरा— सकल सूर सामंत घन[१] मधि कविता किय[२] चंद। (१)
प्रथिराज सिघासन ठयउ*[१] जनु पर पुर उग्गयउ*[२] इंद[३] ॥ (२)

अर्थ—(१) समस्त शूर, और घने सामन्त थे और सबके मध्य में चन्द ने कविता की। (२) पृथ्वीराज सिंहासन पर [इस प्रकार] स्थित था मानो शत्रु (वृत्र) के पुर में इन्द्र उदित हुआ हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) १. म. ना. द. उ. स. तहां (तहं—ना.) सु (स. द. में यह शब्द नहीं है) सूर सामंत मिलि। २. ना. मध्य कवित्त किय, म. स. मधि नायक कवि, द. मधि कविता किव।

(२) मो. पृथीराज सिघासन (< स्यघासन) ठयु (=ठयउ), धा. प्रिथिराज सिघासनहि, अ. फ. पृथिराज सिंघासनह (सिंघासनहि—फ.), ना म. उ. स. प्रथीराज (प्रिथीराज—म. ना.) सिंघासनह। २. धा पुररप ऊयो, मो. जनु पर पुर उग्यु (=उग्यउ), अ. फ. जनु उयपरु (पर—अ.) पर, ना. मनु पर पुर उग्यौ, द. उ. स. जनु परिपूरन (परपूरन—द.), म. मनहु प्रिथीपर। ३. धा. फ. इदु।

टिप्पणी—(२) ठय < स्था। उग < उत्+गम्। इंद < इंद्र।

[३२]

दोहरा— भइत[1] निसा[2] दिसि मुदित विभु[3] उड नृप[4] तेज विराज । (१)
कथिक[1] सथ्थ[2] कथ्थहि कथा[3] सुष सयन[4] प्रथिराज ॥ (२)

अर्थ—(१) निशा हो गई, दिशाओं में उसका वैभव मुद्रित हो गया और उडुगणों के राजा—चंद्रमा—का तेज विराजने लगा। (२) कथकसभा में कथा कहने लगा, और पृथ्वीराज सुखपूर्वक शयन [करने लगा]।

पाठांतर—(१) १. धा. भयत, फ. भइतु, ना. भईति। २. अ. फ. तुसा (तुसा—फ.)। ३. धा. दिसि मुदित वतु, अ. फ. दिन मुदि वतु, द. म. उ. स. दिन मुदित वितु (विन—म.), ना. दिशि मुदित बिनु। ४. उ. स. उडपति।

(२) १. फ. कत्यकि, द. कथकि, ना. उ. स. कथक, म. कथा। २. अ. फ. कथ्थ, म. उ. स. साथ ३. धा. कथहि त कथा, अ फ. कथ्थति ति सथ (सब—फ.), द: कथ्थहि कथ, म. कथत कथा। ४. फ. सुष सय मृग, म. सुष्ष सुपन।

टिप्पणी—(१) मुदित < मुद्रित। (२) सथ्थ < सार्थ=प्राणि—समूह, सभा।

[३३]

दोहरा— मृदु[1] मृदंद धुनि संचरिय[2] अलि[3] अलाप[4] सुध[5] विंदु*[6] । (१)
तार[1] त्रिगांम उपंग[2] सुर अवसर[3]+ पंग[4] नरिंदु[5] ॥ (२)

अर्थ—(१) [इसी समय] मृदु मृदंग-ध्वनि संचरित हुई, अलि (सखियों-गायिकाओं) के आलाप, जो सुधा-विन्दु [के समान] थे, [संचरित हुए], (२) और ताल के तीनों ग्राम तथा उपंग [वाद्य] के स्वर [भी] पंगराज (जयचंद) के अवसर (नृत्य-संगीत-समारोह) में [संचरित हुए]।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

× चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।

(१) मो. मनु, म. त्रिद। २. अ. धुनि सचरिग, फ. धुनि संचरग, ना. ध्वनि सचरिग। ३. धा. अलिय, म. अल। ४. म. अलीप। ५. ना. सुधि। ६. मो. चंदु. धा विंद, ना. छिंद, फ. छंदु, अ. छद. म, विंद, उ. स. व्यंद (=विंद)।

(२) १. ना. द. म. उ. स. ताल। २. धा. त्रिगामउ पसर, अ. त्रिगम्य उपग, फ. नगम्यौ पंग, म. त्रिगान उपंग, स. त्रिग्गम उपंग। ३. धा.अउसर, फ. म. उ. स. औसर। ४. फ. ना. पंगु। ५. फ. परिंदु।

टिप्पणी—(२) तार < ताल।

[३४]

दोहरा— जलन[1] दीप दिअ[2] अगर रस स[3] फिरि घनसार तंमोर । (१)
जमनि कपट[1] उच महिल मुख[2] जनु[3] सरद अम्भ ससि[5] कोर ॥ (२)

अर्थ—(१) दीपों में जलने के लिए अगुरु-रस दिया—डाला—गया, और घनसार (कर्पूर) तथा ताम्बूल [सभा में] फिरे (घुमाए—वितरित किए—गए) । (२) यवनिकाओं (आच्छादक पटों) के कपड़ों में [से झाँकते हुए] महिलाओं के उत्तम मुख [ऐसे प्रतीत होते थे] मानो शरद के अभ्र (बादलों) में [से निकलती हुई] शशि की कोरें हों।

यह छन्द अ. फ. प्रतियों में छूटा हुआ है अतः पाठान्तर उसी शाखा की ६० संख्यक भागचन्द के लिए लिखी गई भा. प्रति से दिया जा रहा है।

पाठान्तर—(१) १. म. उ. स. ज्वलन। २. ना. मै. दीय। ३. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी प्रति में नहीं है।

(२) १. धा. जमिनि कपट, ना. जिमनि कपट, म. जमनि-निकटप। २. मो. उच्च महुल मुख, धा. अनमहिल मुष, ना. द. म. उ. स. उच (उव–म.) महल मुष (मुष–म. ना), भा. उच महल किय। ३. मो. जातुं, धा. ना. में यह शब्द नहीं है। ४. द. म उ. स. अम, भा. ना. अभ्र। ५. द. सिसि।

टिप्पणी—(२) १. जमनि < यवनी। कपट < कर्पट=कपड़ा। उच < उच्च=उत्तम। अम्भ < अभ्र।

[३५]

दोहरा—तत्त[१] धरम्मह मंतु[२] यह[३] रत्तह काम सु वित्तु[४]। (१)
ता काम[१] विरुध्ध न विधि[२] किअउ*[३] नित्त[४] नितंबिनि[५] नृत्तु[६]॥ (२)

अर्थ—(१) [जयचंद ने कहा,] "धर्म का तत्त्वपूर्ण मंत्र यही है कि चरित्र काम में रत हो, (२) [अतः] उस काम के अविरोध के लिए [मैंने] नित्य नितबिनी नर्तकियों के नृत्य का विधान किया है।"

यह छंद भी अ. फ. प्रतियों में छूटा हुआ है, अतः इस छन्द का भी पाठान्तर उसी शाखा की उपर्युक्त भा. प्रति से दिया जा रहा है।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. तत्तु, म. उ. स. तात, द. तत्र। २. मो. धरम्मह रुतु, धा. धरम्मह मत्त, भा. धरामहि तत्तु, ना. धरम्मह मत्त। ३. धा. जाह, ना. म. उ. स. इह। ४. मो. ना. वित्त, धा. वित्तु शेष में 'चित'।

(२) १. ना. द. म. ता काम, शेष सभी में 'काम' मात्र। २. म. उ. स. नि विद्व, द. निविध, ना. निवध। ३. मो. कीउ (=किअउ), धा. कियो, द. भ. उ. स. कीय, भा. ना. कियौ। ४ मो. नृत, द. म. उ. स. त्रित्य (त्रित–म., त्रत्य–उ. स)। ५ म. तितंबन, ना. नितंबनि। ६. धा नित्त, मो. नृत, भा. ना. द. म. उ. स. नित्त।

टिप्पणी—(१) तत्त < तत्व। मतु < मंत्र। वित्त < वृत्त=चरित्र, आचरण। (२) नित्त < नित्य। नृत्त < नृत्य।

[३६]

साटक+— [१]दीपकांगी[२] नेत्र चंगी[३] कुरंगी। (१)
कोकाच्छी°[१] कोकिला°[२] रागवे[३] भागवानी[४]। (२)

अंगोले[१] लोल[२] डोलं एक बोलं अमोलं[३]।[४](३)
पुप्फांजलि[१] पंग सिर[२] गाइ जयति बिम्र[३] कामदेव॥[४](४)

अर्थ—(१) [उन नितंबिनी नर्तकियों में कोई] दीपक के [लौ जैसी] अंगवाली, और [कोई] कुरंगिनी के [से] अच्छे नेत्रों वाली थी; (२) [कोई] चक्रवाक के [से] नेत्रों वाली, और [कोई] भाग्य वाली कोकिला [सी] रागवती थी। (३) उनकी अंगूठियाँ [उनकी घूमती-फिरती उंगलियों के साथ] चपलतापूर्वक डोल (फिर) रही थीं और [उनके मुखों मे] एक ही अमूल्य बोल था : (४) पंग (जयचंद) के सिर पर पुष्पाञ्जलि डाल कर [वे कह रही थीं,] "हे द्वितीय कामदेव, तुम्हारी जय हो !"

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नही है। इसके स्थान पर धा. में 'वार्त्ता' है।

(१) १. धा. ना. द. पात्र नाम, मो. पात्रनमा। २. धा. अ. फ. दर्पकांगी, द. ना. दीपकगी। ३. धा. नेतचगी, अ. फ. नेत्रवगी।

(२) धा. ना. कोकाक्षी, अ. फ. कोकाछ्छि, द. कोकाषी। २. धा. कोकिला, अ. द. ना. कोकिलानी, फ. ककिलानी। ३. धा. रागामे, अ. द. ना. रागमे, फ. रंगमे। ४. ना. भोगवानी।

(३) १. धा. अगाल। २. द. लाल। ३. धा. एक बोल अमोल। ४. मो. में यहाँ और है:

पुप्फाजली कर मडीत सोही घर द्रूढत विअकित्तीय दाय।

(४) १. मो. पुष्पाजलि, द. पुहपांजली, अ. पहुपजुलि, फ. पुप्फजल, ना. पुहपांज। २. द. सुभग रागही, ना. सुभग वीना। ३. धा. जयति पिय, अ. फ. जयति तुव, ना. जैत वीय, द. जयति बिय। ४. म. उ. स. में सपूर्ण छ्द इस प्रकार है :—

दापांगी चन्द्रनेत्रा नलिन अलि मिली नैन रंगी कुरगी।
कोकाषी दीर्घनासा सुरसरि (सुसर—उ. स.) कलिरवा नारिंगी (नारिद—म.) सारदगी।
इन्द्रानो लोल डोला चपल मति धरा एक बोली अमोली।
पूहपा (दूहपा—म.) बाना बिसाला सुभग (सुभ—म.) गिरवरा जैत रंभा सु बोली॥

टिप्पणी—(१) चग [देशज]=सुदर, मनोहर, रम्य। (२) अच्छि < अक्षि=आँख। रागवे < रागवइ <रागवती। (३) अगोले < अगुलीयक=अगूठी। (४) पुप्फांजलि < पुष्पाञ्जलि। बिअ < द्वितीय।

प्रस्तावना में दिए हुए कारणो से इस छंद के अनतर द. के पाठ का मिलान नही किया जा सका है।

[३७]

दोहरा— पुप्फंजलि[१] सिर मंडि प्रभु[२] फिरि लग्गी गुर[३] पाय[४]। (१)
तरुनि[१] तार सुर[२] धरिय चित[३] अब[४] धरणि[५] निरष्षिय चाय[६]॥ (२)

अर्थ—(१) अपने प्रभु—जयचंद—के सिर को पुष्पाञ्जलि से मण्डित कर वे फिर गुरु के पैरों लगीं। (२) उन तरुणियों ने ताल-स्वर चित्त में धारण किए, और अब वे [नृत्य प्रारंभ करने के लिए] चाव (उत्साह) से धरणी की ओर निरखने—देखने—लगी।

पाठान्तर—(१) १. मो. पुष्पाजलि, फ. पुप्फजल, अ. पहुपंजुलि, म. उ. स. पहुपंजलि, ना. पुहपांजलि। २ मो. अ. फ. सिर (सिरु—फ.) मडि (मड—फ.) प्रभु, म. ना. उ. स. दिसि बाम कर

(करि–म. ना.) । ३. मो. धा गुरु लग्गी फिरि (फिर–मो.), म. फिरि लगा गुर । ४. धा. वाइ, ना. उ. स. अ फ. पाइ ।

(२) १. मो. तरुणी, फ. तरुन । २. मो. तार सुर, अ रात सुर । ३. फ. धर पवित, म. धरि पवित । ४. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी प्रति में नहीं है। ५. धा. धरिनि, फ. रधनु, म. धरनि, उ. धारनि । ६. मो. निरष्षो, उ. निष्षिय । ७. धा. उ. स. अ. फ. चाइ ।

टिप्पणी—(२) तार < ताल । सुर < स्वर ।

[३८]

नाराच—
[१]ततत्तथेइ ततत्तथेइ° ततत्तथेइ°[२] सु मंडियं । (१)
थथुगथेइ थथुंगथेइ[१] विराम काम डंडियं[२] ॥ (२)
सरीगमप्पधन्निधा[१] धुनं धुनं[२] ति रष्षियं[३] । (३)
भवंति नोति[१] अंग[२] तान[३] अंगु अंगु लष्षियं[४] ॥ (४)
कला कला[१] सु भेद भेद+ भेदनं[२] मनं मन[३] । (५)
रणंकि झंकि[१] नूपुरं[२] बुलंति जे[३] झनंझनं[४] ॥ (६)
घमंडि थार[१] घंटिका[२] भवंति[३] भेष लेषयो[४] । (७)
भ्रुटित्त षुत्त[१] केम पास पीत साह[२] रेषयो ॥ (८)
नति गतिस्सु[१] तारया[२] कटिस्सु भेद[३] कट्टरी[४] । (९)
कुसंम सार[१] आवधं[२] कुसंम सार उड्ड[३] नट्टरी[४] ॥ (१०)
उरप्परंभ[१] भेष रेष[२] सेषरं[३] करक्कसं[४] । (११)
तिरप्पि[१] तिष्ष[२] सिष्षयो सुदेस[३] दक्खिनं[४] दिसं ॥ (१२)
सुरं ति[१] संग गीतने[२] धरंति सासने धुने । (१३)
जमाय[१] जोग कट्टरी[२] त्रिबिध्ध[३] नंच संचने[४] ॥[५] (१४)
उलट्टि[१] पलट्टि नट्टने[२] फिरक्कि[३] चक्कि चाहने[४] । (१५)
निरत्तने[१] निरष्षि[२] जानु[३] बंभ पुत्ति वाहने[४] ॥ (१६)
विसेष देस ध्रुप्पदं पदं वदंन रागयो[१] । (१७)
चक्कमेष[१] चक्रवृत्ति+[२] वालि ता विसाजयो[३] ॥ (१८)
उरध्ध मुध्ध[१] मंडली अरोह रोह[२] चालिन[३] । (१९)
ग्रहति मुत्ति दुत्तिमा[१] मनुं[२] मराल मालिनं[३] ॥ (२०)
प्रवीण वाणि[१] अध्धरी[२] मुनिंद्र मुद्र[३] कुंडली[४] । (२१)
प्रतिष्ष भेष उध्धरउ*[१] सु भोमि लो अषंडली[२] ॥ (२२)
तलत्तलस्सुतालिता[१] मृदंग धुक्कने धुने[२] । (२३)
अपा अपा[१] भणंति मे अपंति[२] जानि[३] योजने[४] ॥ (२४)
अलष्ष लष्ष× लष्षने°[१] नयन° वयन्न[२] भूषने[३] । (२५)
नरे नरे+ नरिंद मां स[१] मेस काम सुष्षने[२] ॥ (२६)

अर्थ—(१) [उन नर्तकियों ने] 'ततत्तथेइ', 'ततत्तथेइ' मॉडा (विधिपूर्वक किया), (२) [तदनन्तर] 'थथुगथेइ', 'थथुगथेइ' करके काम [के अन्तर्गत] विराम को दंडित किया। (३) उन्होंने 'स रि ग म प ध नी' आदि ध्वनियों को रक्खा—प्रस्तुत किया। (४) तानों के जो अंग होते हैं, वे [उनके] भ्रमित होते समय ज्योति बन कर [उनके] अङ्ग-अङ्ग में दिखाई पड़ने लगे। (५) कला-कला (नृत्य-संगीतादि) के भेद-प्रभेद दर्शकों के मन को भेदने लगे। (६) उनके नूपुर रणंकार और झंकार करके 'झनझन' बोलने लगे। (७) [उनकी कटि मे लगी हुई] थार (काँसे) की, घंटियाँ [उनके नाचने से] घुमड़ने—शब्द करने—लगीं, और उनकी वेष-लेखा भी भ्रमित होने—चक्रावर्तित होनेलगी। (८) उनके लहराते और खुले हुए [सुनहले?] केश पाश श्लाघ्य पीत रेखा [निर्मित करते] थे। (९) यति, गति, और ताल के भेद वे कटि से काटने (कुशलतापूर्वक इंगित करने) लगीं। (१०) कुसुम-शर (कामदेव) के आयुध के सदृश कुसुंभी साड़ी पहने हुए वे ओड् (उड़ीसा के) नृत्य करने लगीं। (११) [तदनंतर] उर (हृदय) से मेष-लेखा को लगाकर और कल शेखर (चंद्रिका—शिरोभूषण) को कसकर (१२) तिरप की तीक्ष्ण (गति युक्त) शिक्षा (कला) प्रदर्शित करती हुई उन्होंने सुन्दर दक्षिण [का नृत्य] दिखाया। (१३) स्वरों के साथ गीत [प्रस्तुत] करने में वे ध्वनियों का शासन धारण करती (मानती) थीं, (१४) और योग की काटें (कौशलपूर्ण क्रियाएँ) प्रदर्शित कर वे त्रिविध नृत्यो का सपादन कर रही थीं। (१५) वे उलटे-पलटे नृत्य करती हुई फिरकी की भाँति घूम कर चकित दृष्टि से देखती थीं। (१६) नर्त्तन मे निरत वे ऐसी दीखती थीं मानो ब्रह्मपुत्री (सरस्वती) का वाहन (मयूर) हों। (१७) विशेष देशों के तथा ध्रुवपद रागो को कहती हुई (१८) वे बालाएँ चक्रवाक का वेष और चक्रवाक की वृत्ति विशेष रूप से साज (?) रही थी। (१९) वह मुग्धा मंडली ऊर्ध्व आरोह मे चलकर जब [अव-] रोह में चलती थी, (२०) तो वह ऐसी लगती थी मानो मराल-माला द्युतिपूर्ण मुक्ता-माला ग्रहण कर (चुग) रही हो। (२१) वे प्रवीणा की वाणी का आधार लेती हुई जब मुनीन्द्रों की मुद्रा और कुडली का प्रदर्शन करती थीं, (२२) तो ऐसा लगता था मानो भूमि पर इन्द्र का [स्वर्गीय] वेष प्रत्यक्ष उद्भूत हुआ (उतरा) हो। (२३) मृदग जब 'तलत्तलत' की तालयुक्त सुन्दर ध्वनि कर रहा था, (२४) [उसके साथ] 'अपा अपा' कहती हुई वे ऐसी हो रही थीं मानों वे आत्म-योग में लग रही हों। (२५) अलक्ष्य और लक्ष्य लक्षणों तथा नयन, वचन और आभूषणों से (२६) वे नर-नर में और नरेन्द्र (जयचन्द) में काम-सुख का [उन्-] मेष कर रही थीं।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

° चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

‡ चिह्नित शब्द मो. म. उ. तथा स. में नहीं है।

+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

× चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १ म उ. स. में यहाँ और है: (स. पाठ) :—

उभ अलाप मद्धिता सुरं सुग्राम पचमं।
षडंग तप्प मूरछं मतुं तमान संचमं।
निसग थारतं अलप्य जाप ते प्रसंसई।
दरस्समाव नूपुरं इतन्न तान नेतई।
सुरं सपत्र तंत्र कंठ बोधि राग साभरं।
हहा हुहू निरष्षितार रंभ चित्तताहरं।

२. धा. ततंग'........मो. ततत थेई ततत थेई, ततत्थे, अ. ततत्थे ततत्थे ततत्थे, फ. तत्थे

तत्तथे तत्तथे, ना. ततत्थेई थेई थेई, म. ततगथेई तत्तथेई तत्तथेई, उ. स. ततगथेइ तत्तथेई तत्तथे।

(२) मो. थथुंगथेय थथुगथेय, धा. तथुं गथु थे, ना. थथुंगथे, अ. तथु गथु गथु गथे, फ तथु थुथुं गथु गथे, म थथु गथुं गथु गथे, उ. थथु गथुं गथे, स. थथु गथुं गथु गथे। २. ना. म. उ. स. विराम काम मडय (मंडियं–म. ना.), अ. फ. विराग काम डडिय।

(३) १. म. सरगमय धुंनिधी, धा. ना. सरगगमप्पि धन्निधी (धन्निधा–धा)। २. मो धतु धनु, धा. धनिध्वनी, अ. फ. धनुद्धनि, ना. धनधुन। ३. ना. अ. निरष्षीय।

(४) १. मो. फ. योति (=जोति)। २. मो. अगि, शेष सब में 'अग'। ३. धा. फ तातु, म उ. स. मातु। ४. मो. लपिय।

(५) १. धा. अ. फ. ना. कलक्कला, म. उ. स. कलकल। २. म. उ. स. सुसथ्थन सुभेदन (सुभादनं–म.)। ३. धा. मत्तं।

(६) १. मो. डकि। २. धा. नोपुरं। ३. धा. अ फ. बुलति ते, मो. बोलति जे, ना. म. उ. स. बुलत झं (झे–ना. म)। ४. अ. रनं झन, फ. रुभ ज्न।

(७) १. धा. धार, अ. फ. धार, ना. धारु। २. मो. धा. अ. फ. छुटिका। ३. म. ममत, उ. स. ममंति। ४. मो. म. ना उ. स रेषयो।

(८) १ धा. तुट्टित्त खुत्त, अ फ. तड्डित्त जुत्त (युत्त–फ), ना. म. उ स. जुटति (जुटंत–म.) धुंट (षट–उ, पुट्टि–म.)। २. धा. अ फ. ना. उ. स. स्याह।

(९) १. धा. जातिग्गतिस्सु, उ. स. लजति गत्ति, ना. जगत्ति गत्ति, म लजति गग। २. अ. तारयो, फ. तारयौ, ना. नारया। ३. धा. अ. फ. करिस्सुभेद (करिस्सभेद–फ), ना. कटिसु भेट, म. उ. स. कटि प्रमान। ४ म. उ. स. कटरी, अ. फ. सुंदरी।

(१०) १ धा कुसम्ह सार, ना. कुसंमतार। २. मो. ध। ३. मो कुसंम सोर उड, धा. कुसम्ह उड्डु, अ. फ. कुसम्ह (कुसुभ-अ.) उड, ना. कुसम्भ षोल। ४. ना. म. उ. स. नंटरी, अ. फ. नंदरी।

(११) १. मो. उरपिरभ, धा. अरप्परंभ, अ. उरप्परंभ, फ. उरप्परंभ, उ. स. उरपरंभ, म. उरमयात। २. म. याम तेष। ३ धा सेषफ करकस, मो. सेषकंक रकस, ना. सेषरं करे कस, म. सेषरं कसं कस, उ स. सेषर कर कस, अ. फ. सेष किंकिनी कस।

(१२) १. धा. अ. फ तिरप्प (तिरुप्प–फ.), मो. तरप्पि, ना. निरुप्प, म निरष्पि। २. म. तीय। ३. मो. देद। ४. मो. दक्षिनं (= दक्खिनं), धा. अ. फ. दक्खिन, म उ. स. दच्छिन, ना. दष्यनं।

(१३) १. मो म. ना. सुरत्ति (< सुरंति), धा. दिसादि। अ. फ. सुरादि, २. अ. गोवने, ना. गातने, म. गातनो। ३. धा. सासन धमं, मो. सासने धने, अ. फ. सासने धनी, ना. सासने धने।

(१४) १ अ. फ. लजाइ। २. मो. कठरि, अ. फ. कट्टनी। ३ अ. विविद्धि। ४ धा. नच संचन, ना. नत्र सचने, अ. नच सचनी, फ. नेव सेवनी, म. नंच संपने। ५. म. उ. स. में यहाँ और है—केवल कोष्ठकों के अन्तर्गत अंश म. में नहीं है—(स. पाठ) :—

तिरप्पि लेत पातुरं सुचातुरं दिषावहीं।
कै अट्ठ ग्रेह बीय चद और कै अमावहीं।
छत्तीस राग बधि [तार बाल ता बजावहीं।
सुक्रम्म तारधी मृदंग चित्त बंध] सचरं।
विरम्म काम धूव बधि चन्द्र धूव उच्चरं।
समीप रथ्थ भेद्यौ जुचित्त चित्त चोरई।
अनेक भांति चातुरी जु मन्न मेर डोरई।
सिंगार ते कलेवर परस्सि उम्भ रावके।
सिंगार सोभ पातुरं कि चातुरं सिंगार के।

(१५) १. ना. तुळ्ट्ट। २. धा पुट्टि नट्टन, अ. फ. पट्टि नट्टिनो, ना. पट्ट नच्चने, म. पटि नाचयो।

३. मो. करकि, म. फिरंकि, स. फिरहि। ४. धा. चाइन, अ. चाइनी, फ. वाइनी, म. उ. स. चाइनौ, ना. वाइने।

(१६) १. धा. अ. फ. निरत्ततैं, म. निरत्तितैं, म. उ. स निरत्तिनें (निरत्तिनें–म.)। २. म. उ. स. नराषि। ३. मो. जान, अ. ना. म. उ. स. जानि। ४ मो. ना. ब्रह्मपुत्र वाइने, धा. बंभ जुत्त वाइन, अ. बंभ पुत्त वाइनी, फ. बंभ मुत्ति बाइनी, म. उ. स. बभ पुत्ति बाइनौ।

(१७) १. धा. ध्रुप्पदं वदं वदंन राजयो, अ. धुप्पदं वदन्न चंद्र राजयो, फ. ध्रुप्पदं वदत्त चंद राजयो, ना. द्रूपद वद' वदन्न राजयो, म. द्रूपदे वदंन दंन राजयो।

(१८) १. मो. चक्रमेष, अ. फ. शुक्रमेष, शेष में 'सु चक्रमेष'। २. मो. धा चक्रवर्त्ति, म. चक्रव्रति, ना. चक्रव्रत्ति। ३. धा. वालिगा विसाजयो, मो. वालिना विसादयो, म अ. फ. बालता विसाजयो, ना वालना विसाजयो।

(१९) १. मो सुष। २. अ. फ. अरोहि रोहि। ३. ना. चालनं।

(२०) १. धा. ग्रिहंन सुत्ति वत्तिमा, ना. ग्रहंति सुत्ति दुत्तिमो, म. ग्रहति सुत्ति दुत्तिमाल, अ. फ. ग्रहंति (गृहति) सुत्ति उत्तिमा। २. मो. ना. मनु (=मनउ) फ. ग्गनौ, शेष में 'मनो' या 'मनौं'। ३. ना. फ. वालनं।

(२१) १. मो. प्रवाण वाण, अ. फ. प्रवीण वाण, ना. म. उ. स. प्रवीण बान। २. धा. अंधरी, अ. फ. अद्धर, ना. म. उद्धरी, स. उद्धर। ३. धा. मनिद्र मदु, अ. फ. सु बिंद्रमति (विदुमंति–फ.)। ४. फ. कुडला।

(२२) १. मो. प्रतिष्षमेष उधरु (=उधरउ), धा. ना. प्रतच्छ (प्रत्यष्य–ना.) मेषयो धस्यो (धस्यौ–ना.), फ. प्रतक्ष मेषयौ धरयौ, अ. प्रतछ्छि मेषयो धरयो, म. उ. स. प्रतष्षि (प्रतष–म.) मेष उद्धरयौ। २. मो. शु भोमिलो यषंडली, धा. अ. फ. सु भूमि लो अषंडली (अषडला–फ.), ना. उ. स. सु सुम्मि (भूमि–ना.) लोइ षडली, म. सुभूमि लोपि षंडली।

(२३) १. धा. तलत्तलस् सुतालिना, अ. तलत्तलस्सुतालता, फ. भलनलतल सुतालिन', उ. तलं तलं सुना, स. तल तल सुतालता, म. तल सल सुतालता। २. मो. धूकने धुने, धा. धकने धने, अ. धुकनो धुने, फ. धुकनो धने, उ. स. धुकने धने, म. धुकने धमैं।

(२४) १. मो. अपु अंपु, शेष में 'अपा अपा'। २. धा. जुपति, म. जपंत, अ. फ ना. जपति। ३. मो. यानि, धा. अ फ. ना. जान। ४. म. ज्यों जमैं, उ. स. ज्यों जने, अ. फ. योजने।

(२५) १. म. उ. स. अलाष लाष लाषने। २. धा. अ. फ. ना. बेन, म. उ. स. बेंन (बन–म.)। ३. धा. भूषने।

(२६) १. धा. नरे जुरे नरिंद मास, मो. नरे नरेंद (< नरिंद) मास, फ. नरे नरे नरिंद सास, ना. नरे नरे नरिंद मां सुमेम, म. उ. स. नरे नरिंद मास मेस। २. धा. मो. मेव काम सुष्षने (सुष्षन–धा.), अ. फ. सेव काम सुष्षने।

टिप्पणी—(८) झुट्टित [दे.] = प्रवाहित। षुत्त < क्षिप्त (?) = निमग्न, डूबा हुआ। साह < श्लाघ्य। (१०) उड्डु < ओड्। (११) परंभ < प्ररंभ। (१४) यन=प्रदर्शित करना। (२२) अखडलल < आखंडल=इंद्र। (२४) अप < आत्म। (२५) अलष्ष < अलक्ष्य। लष्ष < लक्ष्य।

[३९]

दोहरा— जाम एक छनदा घटित[१] ससिहू सत्ति[२] निवारि[३]। (१)
कहुं[१] कामिनि[२] सुख रति समर[३] नृपतिहु[४] नींद बिसारि[५] ॥ (२)

अर्थ— (१) एक प्रहर रात्रि [जब] समाप्त हो गई, और शशि ने भी अपनी शक्ति का निवारण किया, (२) कहीं पर कामिनी के सुख-रति-समर में नृपति (जयचंद) ने भी नींद भुला दी।

पाठांतर— (१) १. मो. याम (= जाम) एक दक्ख घटित, धा. जाम एक छनि रास घटि, अ. फ. जाम एक छिनदाछ (छिनदथ–फ.) घट, ना. जाम एक घिनदा छनिद, स. जाम एक घिन दछिन घट, म. जाम एक छिनदा निघट, उ. जाम एक छिन छिन घट। २. धा. अ. सत्तिहु सत्ति, फ. सातिहु सत्त, ना. सतमी सत्त, म. उ. स. सत्तमि सत्त। ३. धा. नवारि, म. उ. स. निवार।

(२) १. धा. अ. फ. किहु (किहु–धा.) ना. कहौ (< कहु), स. कहु। २. ना. कामनि। ३. म. सिपर। ४. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. त्रिप निय। ५. मो. मा. ना. उ. स. नाद निवारि (निवार–म.), अ. फ. नीय विसरि।

टिप्पणी—(१) छनदा < क्षणदा। सत्ति < शक्ति।

[४०]

साटिका— सुरूख सुरूख मृदंग[१] तार[२] जघनो[३] राग[४] कला कोकनं[५]। (१)
कठी[१] कंठ सुभासनं+ समइतं+[२] कामं+[३] कला+ पोषनं+। (२)
उर+ भी+ रंभ+ किता[१] गुणं हरिहरो[२] सुरभीय पवनापिता[३]। (३)
एवं[१] सुष सकाम[२] कुंभ गहिता[३] जयराज[४] रात्रि[५] गता॥ (४)

अर्थ—(१) [रति-] सुख में [संगीत-] सुख का, [कामिनी के] जघनों (नितंबों) में मृदंग के ताल का, कोक-कला में राग-कला का, (२) [कामिनी के] कंठ में [गायिकाओं के] कंठ का, यहाँ [कामिनी के] सुभाषण में [गायिकाओं के] सुभाषण का, [इस प्रकार जयचंद ने] काम-कला में [संगीत–] कला का पोषण किया। (३) [उसने] पुनः [कामिनी के] उर से [परि–] रंभण करते हुए [रात्रि के अंतिम पहर मे मानो] हरि और हर के गुणों से [रंभण] किया, और निःश्वास-सुरभि को [देवार्पित सुरभि के समान] पवनार्पित किया। (४) इस प्रकार सुख-पूर्वक काम-कुंभों (कुचों) का ग्रहण किए हुए राजा जयचंद की रात्रि व्यतीत हुई।

पाठान्तर— + चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

(१) १. धा. अ. फ. ना उ. स. म्रिदंग, मो. मदंग, म. डादंग (< म्रदंग)। २. म अ. फ. ताल, उ. स. तल। ३. मो. जघनो, धा. जयने, अ. जपनो, फ. जपुतो, ना जधना, म. उ. स. जधनं। ४. मो. राज्यं। ५. धा. ना. कोकिल, म कहत।

(२) १. म कंती, अ. फ. कंठ। २ धा. सुवासिन मनयितं, मो. सुभामनं ममइतं, म उ. स. सुभासने समजितं, ना. सुभासने ममजितं। ३. मो. कांतं।

(३) १. धा. उभ्रोरभ पिता। २. मो. म. उ. स. हरहरो, धा. हरिहरौ। ३. धा. सुभ्रीय चवना पता, मो सुरभीय पवनापतो, अ. फ. सुभ्रीय पवनापिता, ना. म. उ. स. सुरभीय (सुरभी अ–म) पवनं पता।

(४) १. धा. अ. फ. एमइ। २. धा. सुक्ख सुखाइ, ना. सुष्ष सुकाम, म. उ. स. सुष्षह काम, अ. फ. सुष्ष सुहाय। ३. मो. कुंगहिता, धा. तार सहिता, ना कुच कुंभ गहिता, अ. फ कुंभ महिता।

४. धा. जै राय, ना. जैराइ, अ. फ. राजाय, म. जयराज। ५. मो. म. उ. स. रात्रं, धा. अ. फ. रात्र्यं।

टिप्पणी—(१) मदंग < मृदङ्ग। तार < ताल।

[४१]

साटिका— कांती भार पुरा[१] पुनर्मद गजं[२] शाखा न गंडस्थलं[३]। (१)
उच्छ[१] तुच्छ तुरा× स× शशि× कमनं[२]× करि[३]× कुंभ× निद्धादलं[४]×। (२)
मधुरे× साइ× सकाइता× अलि× कुलं[१] गुंजार गुंजा तहा[२]। (३)
तरुणे[१] प्राण लटापटा पग पग[२] जयराज संप्रापता[३]॥ (४)

अर्थ—(१) कांति-भार से पूरित और मद गज [के समान मकरन्द चुवाती हुई] यह [पुष्प-तरु की] शाखा है न कि [मद-बिन्दु गिराती हुई मद गज की] गंडस्थली है, (२) यह ओछा—नीचे जाने वाला—तुच्छ शशि है, जो त्वरा के साथ क्रमण (गमन) कर रहा है और जो हाथी के निर्धाटित (निकाले हुए) कुंभ जैसा है; (३) उसी प्रकार यह अत्यंत शंकित मधुकर-कुल है जो कि [गजों के मदगंध से आकृष्ट अलि-कुल की भाँति] मधुर गुंजार कर रहा है; (४) [ऐसी उन्मत्ता-कारिणी प्रातःकाल की वेला में] तरुण प्राणों वाला, किन्तु [रात्रि में जगे रहने के कारण] लट-पट पग रखता हुआ, राजा जयचंद संप्राप्त हुआ— आ पहुँचा।

पाठान्तर—+चिह्नित शब्द फ. में नहीं हैं।

(१) १. धा. मो. कांता भार पुरा, अ. कांती भार पुरा, ना. कानो भारपुराण। २. मो पुन मदि गज, धा. अ. फ. पुनर्मदगजे (पुनरमद गज—धा.), म. उ. स. नयौ (नयो—म.) विंगलिता। ३ अ फ. गडस्थली, ना. गद्लच्छनं, मो. म. उ. स. गद्लस्थल (गलहस्थलं—म.)।

(२) १. धा. उच्छं, शेष सभी में 'तुच्छ,। २. धा पुष्प कानलं, मो. शसि कमल, अ फ. पुष्प कमलं, ना. लग्गि कमलं, म. उ. स. लग्गि कमनं। ३. मो. में 'करि', शेष सभी में 'कलि'। ४. मो. निद्दादलं, उ. स. निंदादल, ना. निद्रादलं, म. निदादल।

(३) १. मो. मधुरे शक शका सकं अलिकुल, धा. मधुरे साय सकाय कुभ रसिता, म. उ. स. मधुरे (मुधुरे-म.) माधुरयासि (स—म.) आलि अलिनं, अ. मधुरे सास सकाइता अलिकुल, फ.—लं, ना. मधुरे माधुरयासि दलनी अलिभरा। २. धा. गुजार गुजारया, अ. फ. गुजार गुंजारवं, म. अलि भौंर गुजारया, उ. स. अलिभार गुजारया, ना. गुंजार गुंजातया।

(४) १. अ. फ तन्ये, म तरुन। २. धा. लटा पटप्पगयरा, अ. फ. लटा पट पग पगः, ना. लट। लट पग, म उ. स. लुटीय पग जजिया। ३. मो. जयराज रात्र गतं, धा. जइराय संप्राप्तितं, अ. फ. जैराइ संप्रापता, ना. जैराइ संप्रापिता, म. उ. स. रात्रंगता सांप्रतं (सप्रति—म.)

टिप्पणी—(२) उच्छ < तुच्छ=ओछा। तुरा < त्वरा। कमन < क्रमण। निद्धादलं < निद्धाडियं < निर्धाटित=निष्कासित। (३) साइ < सानि=अत्यंत। तहा < तथा।

[४२]

दोहरा— प्राति[१] राउ[२] संप्रापतिग[३] जहां[४] दर देव[५] अनूप। (१)
सयल[१] करइ*[२] दरबार जिहि[३] सत्त[४] सहस अस[५] भूप॥ (२)

अर्थ—(१) प्रातः राजा (जयचंद) वहाँ पर संप्राप्त हुआ— पहुँचा—जहाँ पर [उसका] अनुपम

देव [तुल्य] दल था । (२) वह ऐसा भूपति था कि समस्त सात सहस्र [सामंत ?] जिसका दरबार करते थे।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

(१) धा. फ. म में 'प्राति' शेष में 'प्रान'। २. म. उ. स. राव । ३. धा. सपरपतिग, ना सप्रापतिन । ४. मो. जाहा, धा. जह, अ. फ. म. उ. स. जाइ (जह—ना.)। ५ फ. देउ । ६. मो. अनोप (=अनूप), शेष में 'अनूप' ।

(२) १. धा. सयल, शेष सब में 'सयन'। २ मो. करि (=करइ), धा. अ. म. उ. स करहि, (करहिं-धा.) फ. करं, ना. करे । ३. धा. जखि, अ. फ. जह, उ स तह, म. तहा, ना. तह। ४. धा मो. अ. फ. सात, ना. म. उ स. सत्त । ५. मो. जस, धा. फ. जिहि, अ. जह ।

टिप्पणी—(१) दर < दल। (२) सयल < सकल।

[४३]

दोहरा— मिसि[1] बज्जहि[2] गंगह रवनि[3] दान° कवि° पति° सेइ[4] । (१)
चढित[1] सुषासन समुह* हुअ[2] सब[3] सामंत[4] समेव *[5] ॥ (२)

अर्थ—(१) वाद्यों के मिष (व्याज से) रमणीय गंगा की सेवा करके दान और कवियों का पति (जयचन्द) (२) सुखासन पर चढ़ कर सब सामंतो के समेत समुहाया (सम्मुख निकल पड़ा)।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के है।

° धा. में चिह्नित शब्द छूटे हुए हैं ।

(१) १ धा. ना. निसु, म. अ. फ. मिस । २. धा. वाजव, फ वज्जिह । ३ धा. अ. फ. गंगा (गग्ग–अ. फ.) नदिव, मो. गगह रचनि, उ. स. गंगाबरन, म. गगा रवन । ४ । धा.''' मोह, अ. फ. कनि पति भ्रत (भ्रति–अ.) मूह (समूह–फ.), मो. दान कवि पति सोइ, म. ना. उ. स. दान कवि (कविस -म., कवी–ना. स.) पति सेव ।

(२) १. उ. स. अ. फ. चढत, म. चढ । २. मो. सषासन समह (= समुह ?) हूअ, धा. सुषासन समुहो, अ. फ. म. उ. सुषासन संमुहौ, ना. सुषासन समुहे । ३. धा. जहि, अ फ ना. उ. स. जहं, म. जहां । ४. अ. फ. सावंत । ५. धा समोह, मो समेत, म. ना. उ. स. नृपेव, अ. फ. समूह ।

टिप्पणी—(१) रवनि < रमणीय । (२) समेव < समेअ < समेत ।

[४४]

दोहरा— दस हत्थिअ[1] मुत्तिअ सघन[2] सत तुरंग जिति भाय[3] । (१)
दव्वु[1] सरस[2] बहु[3] संगि[4] लिय भट्ट समष्षग्[5] जाय[6] ॥ (२)

अर्थ—दस हाथी, सघन (बहुत से) मोती, सौ घोड़े, जो जितने भी भाव (रूप-रंग) के हो सकते थे, (२) तथा बहुत-सा सरस (सुंदर) द्रव्य संग मे लेकर भट्ट (चंद) की समक्षा में [जयचद] चल पड़ा ।

पाठांतर—(१) १. म. उ. स. तीस करिय (करी–म उ.)। २. धा. सयनु, मो. सधन, फ. सवनु। ३. धा. सात तुरग पट भाइ, ना. शत तुरंग जिति भाइ, फ. सत्त तुरग बौहु भाउ, अ. सत तुरंग बहु भाइ, उ. स. द्वै से (स–उ.) तुरग बनाय, म. द्वै से चपल तुरग।

(२) १. मो. द्रव्य, धा. द्रव्व, अ. फ दब्ब, (दब्बु–अ.) ना. दिव्य। २. धा दरिस, अ. फ. दरस (दरसु–अ.), उ स. वदर, म. दरक, ना. सर्व। ३. फ. बौहु, ना तिहि। ४. मो. सग, म. सगि, शेष में 'संग'। ५. मो. भट्टसमप्पण, ना. भट्टन समप्पन, उ. स. भट्ट समषन, म. भट्ट सपन चलि। ६ धा. अ. फ. जाइ, मो. ताय, न. राइ, म. अग।

टिप्पणी—(२) समष्ष < समक्ष।

[४५]

कवित्त— गयउ[१] राय मिल्लान[२] चंद बिरदिआ*[३] समष्षन[४]। (१)
देषि[१] सिघासन ठयउ*[५] इह त बिठइ[३] इंद[४] जन[५]। (२)
बहुत किअउ आलाप[१] आवु[२] कनवज्ज मुकट[३] मनि[४]। (३)
इह ढिल्लिअसुर[१] दत्त बियउ*[२] नन कहूं[३] तुम्भ गिनि[४]। (४)
थिरु रहहि[१] थवाइत बज्र कर[२] छंडि सकारह षिनुक रहि[३]। (५)
जिहि+°[१] असी°[२] लष्ष° पल्लाणिइहि[३]° तिहि*[४] पांन देहि दिढ हथ्थ[५] गहि॥ (६)

अर्थ—(१) राजा (जयचंद) [चंद के] मिलान (डेरे) को चंद बरदिया को समक्षता में गया, (२) [तो] वह सिंहासन को देख कर रुक गया, [और उसने मन मे कहा,] "यह तो मानो इंद्र बैठा है।" (३) [चंद ने जयचंद से] बहुत आलाप (वार्तालाप) किया और कहा, "हे कन्नौज-मुकुटमणि, आओ। (४) यह दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) का दिया हुआ है, तुम किसी और का [दिया हुआ] कहीं न गिनो (समझो)।" (५) [तदनतर पृथ्वीराज से चंद ने कहा,] "हे ताम्बूल-वाहक, तू स्थिर रह (ठहर), और [अपने] वज्र कर को छोड़ कर एक क्षण [जयचंद के] सत्कार में रह। (६) जिसके अस्सी लाख [घोड़े] पलाने (कवचादि से सुसज्जित किए) जाते हैं, उसे तू दृढ़ हाथों से ग्रहण कर पान दे।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।
° चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।
+ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं है।

(१) १ मो. गयु, (=गयउ), धा. गयो, म. ना. उ. स. गयौ। २. धा. अ. फ. रान मिल्लान, ना. राइ मिल्लान, म. राव मेलांन, उ. स. रावन मेल्हान। ३ धा. बरदिइह, अ. वरदियह, फ. बरदियहि, ना. वरदीए। रचना में अन्यत्र विरदिया ही है, यथाः ३.२९, ४.१, ५.१९, १२.४०, ८.११, ८.१४। ४. धा. ना. समप्पन (समप्पनु–ना.), म. समपन।

(२) १ मो म. उ. स. देषि, धा. अ. फ. दिक्खि, ना दिष्य। २. मो. ठयु (=ठयउ), धा. ठयो, ना. म. ठयौ, स. सज्यो। ३ धा. अ फ. इह जु (ज–फ.) वयठयउ (बैठौ–फ; धा. में अतिम शब्द नहीं है), म. ना. उ. स. पास पारस्स (पारस–म.)। ४. धा. [इ] दु, ना. इदु, म. उ स. अ. फ. इद्र। ५. म. उ. स. अ. फ. जनु (जन–म.)।

(३) १. मो. बहुत कीउ (= किअउ) आलाप, अ. फ. बहुत कियउ (कियौ–फ.) आलापु, म. ना.

उ. स. कवि आदर बहु कियौ। २. फ. आउ, म. देषि, ना. कहै। ३. ना. मुगट। ४. फ. मण।

(४) १. धा. ए तु दिल्लीसर। २. मो. बीयु (= बियउ), धा. दियो, शेष में 'बियौ'। ३ धा. तहि गिन्यो, अ. फ. नहि गनौ, उ स. नहि गन, म. नहि गिनै, ना नहि कहु। ४. धा. म. फ. गनि, अ. मनि, ना. गति।

(५) १. धा. अ. फ. रहै, मो रहिहि, म रहे, ना. रहि (= रहइ)। २. धा. विज्जु कर, अ. फ. ना. थिरुन यन। ३. धा. छंडिस करिहि, मो. छडि सीकारह षिनु परिही, अ. फ. ना. छडि (छड–फ.) सिकारहि (सकारहि–फ.) षिनकु रहि (रहि–ना., जिहि–अ., जिहुं–फ.), म. छंडि यकारह छिनक रहि।

(६) १. अ. फ. में यह शब्द नही है। २. ना. असीउ। ३. अ॰फ. म. ना. उ. स. पलानियहि। ४. मो. तिन, ना. तिहिं, शेष में यह शब्द नहीं है। ५. फ. हिथ्थ।

टिप्पणी—(१) समष्ष < समक्ष। (२) ठय < स्थग् = रोकना, वद करना। (४) बिय < द्वितीय। (५) थवाइत < थइआइत्त < स्थगिकावत्=ताम्बूल-पात्र-वाहक। सकार < सक्कार < सत्कार।

[४६]

दोहरा— *सुनि तंबोल पट्ठिय सुकर[१] बर उठि दिट्ठिय बंक[२]। (१)*
मनु रोहनि सु यमुन[×] मिलिग[१] मनु[२] बिबि[३] उदित मयंक ॥ (२)

अर्थ—(१) [थवाइत (पृथ्वीराज) ने] 'तांबूल' [शब्द] सुनते ही अपना हाथ प्रस्थित (प्रकर्षपूर्वक स्थित) किया, और उठकर [जयचंद को] वक्र दृष्टि मे देखा। (२) [यह ऐसा हुआ] मानो रोहिणी और यमुना मिल गई हों, अथवा [एक साथ] दो मृगाङ्क (चद्रमा) उदित हो गए हों।

पाठांतर— × चिह्नित शब्द के द्वितीय तथा तृतीय अक्षर फ. में नहीं हैं।

(१) मो. सुनत बोल पकार, धा. सुनि समूल सा पट्ठि करि, अ. फ सुनि तमूल सा पिट्ठि किय, ना. सुनत बोल छडिय तुरग, म. उ. स. सुनि तमोर पट्ठिय सुकर। २. धा. अ. फ वर उट्ठिय डिठि (दिठि–अ., दिठ–फ.) बक, ना. बर कर बर दिढ बंक, उ. स. बर मुष उत करि बको, म. मुष उन करि दिठ बक।

(२) मो. मन मोहनि सु (= सउ) मन मिलिग, धा. मनो मोहनि सु मन मलिग, अ. मनु रोहिणी यमुन मिलग, फ. मनो रोहणिय मिलगि, म. मनौं रोहिन सुमहि, स. मनु रोहिनि सो मिलिगं, उ. मनु रहिनि सो मिन मिलिग, ना. मनु रोहिणि सुमन मिलिग। २. फ. नन, ना. ज्यु, उ. स. ज्यौं। ३. धा. नव, अ. फ. दुइ, म. ना. बीय।

टिप्पणी—(१) पट्ठिअ < प्रस्थित। दिट्ठिअ < दृष्टि। बंक < वक्र। (२) बिबि < द्वय। मयंक < मृगाङ्क।

[४७]

दोहरा— *भुअ बंकी[१] करि पंग[२] नृप अप्पिअ[३] हथ्थि[४] तंमोर[५]। (१)*
मनहु वज्जपति[१] वज्ज धरि[२] सह अप्पिअ तिहि जोर[३] ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने] भौंहे बाँकी कर पंगराज (जयचद) के हाथों में ताबूल अर्पित किया। (२) [उसका यह अर्पण करना ऐसा लगा] मानो वज्रपति (इंद्र) ने [हाथों मे] वज्र धारण करके उसे जोर के साथ अर्पित किया हो।

पाठांतर—(१) १. धा. अ. फ. मुव बंकिय, मो उ. स. मुअ वकी, ना. मुह (= भौह) बंकीय, म. भौंह वकी। २. म. ना उ. स. कीय पग (पगु-ना), अ. फ. कार बक। ३. मो अथीय, धा. अफिग। ४ धा. म. हत्थ, अ फ. हथ्थ, ना. अच्छि। ५ धा. तंबोल, म. ना. तबोर।

(२) १ धा वज्ज पति, शेष में, 'वज्र पति'। २. मो. वज्र धरि, अ. फ. वज्र गहि, धा. वज्ज गहि, ना उ. स. वज्र धर म. वज्रधरि। ३. धा सह पि यो सजोर, अ. फ सहि अप्पियो (अफिफ्यो-अ.) सजोर, ना. सडु अप्पौ तिहि जोर, म. उ. स. सब अप्पौ (अप्पौ-उ स.) तिहि जोर।

टिप्पणी (१) बंक < वक्र। तमोर < तांबूल। (२) जार< जार (?)।

[४८]

कवित्त— पहिचानउ*१ जयचंद इह त२ ढिल्लियसुर पिष्षै४। (१)
नहिन१ चंद उनहारि२ दुसह दारुण तन दिष्षै३॥ (२)
करि सठउ१ करि वार२ कहइ*३ कनवज्ज मुकुट५ मनि। (३)
हय गयंद पष्षरउ१ भाजि२ प्रथिराज३ जाइ+ जिनि×४। (४)
इत्तनह*×१ कहत×२ भुम्रपति× चढउ×३* सुनत× सूर× किन्नउ×* न भउ४। (५)
पारस्व मंडि प्रथिराज कउ*१ कहइ* भले२ रजपूत सउ३॥ (६)

अर्थ—(१) जयचद ने [पृथ्वीराज को] पहचान लिया [और उसने कहा,] "यह तो दिल्लीश्वर दिखाई पड़ा रहा है यह तो। (२) चंद की [बताई हुई] उनहार का नहीं है और दुःसह दारुण तन का दीख रहा है।" (३) "संगठन करके [इस पर] वार आघात करो," कन्नौज मुकुट-मणि [जयच्चंद] ने कहा। (४) "घोड़ो और गजेंद्रों को पाखरों—उनपर कवचादि डालो; पृथ्वीराज भाग न जावे!" (५) इतना कहते ही भूपति (जयचंद) ने चढाई कर दी, किन्तु [पृथ्वीराज के] शूरों ने भय नहीं माना। (६) वे पृथ्वीराज का पार्श्व माँड कर—उसके पार्श्व में स्थितव हो कर—कहने लगे, "हम सौ रजपूत पर्याप्त है।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द म. में नहीं हैं।
+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. मो. पहिचानु (= पहिचानउ), शेष में 'पहिचान्य' या 'पहिचा यौ'। २. धा. इह ति अ. फ. यह त। ३. मो. ना. ढिल्लीसुर, धा दिल्लीसर म. उ. स. दिल्लेसुर। ४. धा. ना. फ. लक्ख्यौ, मो. पेषै (= पिष्षै), अ. लिष्षउ. म. उ. स. लिष्यौ।

(२) १. अ. फ. म. उ. स. नहीय। २. धा. चद उनिहारि, फ. चंद उनिहारु, ना. चद अनुहारि, उ. स. चंड उनिहारि, म. चडौनहारि। ३. धा. फ. अति पिक्ख्यौ, मो. तब दिष्षै, ना. म. उ. स. तन दिप्यौ, अ. अति पिष्डउ,।

(३) १. मो. करि सुठ (= सुठउ), धा. करि संथिअ अ. करि सठहु, म. उ. करि सठ्यौ, ना. कर संठौ, स. करि सट्यौ। २. फ. करवा, ना. करवार। ३. मो. कहि (= कहइ), धा. ना. म. कहै, फ. कही। ४. ना. कनवद्य। ५. म. मुकट।

(४) १. मो. हय गयद पष्षरु (= पष्षरउ), शेष समस्त में 'हय गय दल पष्षरहु (पष्षरउ-धा., पष्षरहौ<-फ.),। २. ना. भज्जि। ३. धा. प्रथिराज। ४. धा. जाइ जनि, म. उ. स. जाइ (जा—म) जिन, फ. जाइ जिनु।

(५) १. मो. इतनि (= इत्तनइ) धा. इत्तनउ, अ. फ. इत्तनो, म. ना. उ. स. इत्तनौ। २ ना. म. उ. स. सोच । ३. मो. चढु (= चढउ), धा. उठ्यो, म. उ. स. उठ्यौ, अ. फ. ना. चढ्यौ (चर्यौ–फ.)। ४. मो. किनु (=किनउ) न भु (=भउ), धा. अ सुनि नरिंद किन्हों न भउ (कित्रौ न भौ–अ. कीनो न भौ–फ.), ना उठी रेणु अतक अछिन।

(६) १ मो. पारस्व मंडि प्रथीराज कु (= कउ), धा. सावत सूर हसि राज सू, अ. फ. सावत सूर हसि परसर (परसपरि–फ.), म. उ. स सावत (सामंत–म.) सूर हसि (हम—म.) राज सों (सौ–म.), ना. भर भरणि आउ पुज्जीय घरीय। २. मो. कहि (= कहइ) भले, धा. कहहि भला, अ. फ. कहहि भले, स. कहहि भलौ, म. कहै भुलौ, ना. प्रगट अगनि ।। ३. मो. रजपूत सु (= सउ), अ. रजपूत सौ, फ. म. उ. स. रजपूत भौ, ना. अविलह वहनि।

टिप्पणी—(१) पिष्ष < प्रेक्ष्। (२) उनहारि < अनुकार। (३) संठ < सगठन। (४) गयद < गजेन्द्र। पष्षर < पक्षधर (?) अश्वसनाह।(५) भुअपति < भूपति। (६) पारस्व < पार्श्व।

—

६ . संयोगिता-परिणय

[१]

दोहरा— सुनउ[*१] सवे सामंत हो[२] कहइ त्रिपति[३] प्रथीराज[४] । (१)
जउ अछ्छउ[*१] षिन षेतमइ[*१] तउ[*२] दक्खिन नयर[३] विराज ॥[×] (२)

अर्थ—(१) राजा पृथ्वीराज ने कहा, "अहो, सभी सामंत सुनो। (२) यदि तुम क्षण भर [रण–] क्षेत्र में रहो, तो नगर की प्रदक्षिणा विराजे (हो जाए)।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित चरण म. में नहीं है।

(१) १. मो. सुनु (= सुनउ), धा. अ. फ. सुनहु, ना. म. उ. स. सकल। २. धा. सव्व सामंत इह, अ. सद्ध सावंत हो, फ. सव्व साउंत हौ, ना. म. उ. स सूर सामत सम। ३. मो. किहि (= किहइ) त्रिपति, धा. कहै त्रिपति, ना. म. उ. स. बर बुल्यौ। ४. धा. ना. प्रिथिराज।

(२) १. धा. अ. फ. जउ अच्छहु खिन ग्वित्त (षित्ति–फ.) महि, (मइ–अ. फ.) मो. जु (=जउ) अछु (= अछउ) षिन षेत मि (= मइ), उ. स. जौ रुक्कौ षिन षेत में, ना. जौ अछो छिनु क्षित्त में। २. ना. तौ (< तउ); शेष में यह शब्द नहीं है। ३. मो. दक्षन (= दक्खन), धा. दक्खिन नयर, ना. दष्यन नगर, म. उ. स. देषौं नगर।

टिप्पणी—(१) हं < अहो। (२) अछ् < अस्। दक्खिन < दक्षिणा=प्रदक्षिणा।

[२]

दोहरा— बोलउ[*१] कन्ह[२] अयान[३] त्रिप मति मंडन समरत्थ[४] । (१)
जउ[१] मुकइ[*२] सथ सथ्थिअनु[३] तउ[*४] कित लिचे[*५] सथ्थ ॥ (२)

अर्थ—(१) कन्ह बोला, "हे अज्ञानी राजा, तू मति मॉडने (बाते बनाने) में समर्थ है; (२) यदि तू [अपने] साथियों का साथ छोड़ता है, तो तूने उन्हें साथ ही क्यों लिया ?"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. बोलु (= बोलउ), धा. अ. फ. बुल्लिय, ना. बुले, उ. स बोल्यो, म. बल्यौ। २. मो. कन, फ. कहि, शेष में 'कन्ह'। ३. धा. अ ना. आयान, फ. अज्ञानु। ४. म. उ. रे मत मंडन समत्थ (समथ्थ–उ.), स रे मत मड समथ्थ, अ. फ. मति मंडन असमथ्थ।

(२) १. मो. जु (=जउ), धा. जउ, म. अ. फ. ना. जौ, उ. स. जो। २. धा. मुकहि, मो. मुकि

(=मुकइ), अ. फ. म. उ. स. ना. मुक । ३. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. सत सथ्यियन (सत्थअनु-धा.), मो. सथ सथीमनु । ४. मो. तु (=तउ), धा. तो, अ. ना. म. उ. स. तौ, फ. भौ । ५. मो. किन लेनि) धा.=लिकतन लने ,)हसि, अ. लिन्हे कत, फ. लिहौ कत, ना. कति लिन्हे, उ. स. कित लायौ, म. किम लायौ ।

टिप्पणी—(२) मुक < मुच् ।

[३ .]

दोहरा— *नउ[1] मुकउं[2] सथ[3] सथ्यिअनु[4] तउ*[5] संभरि कुल लज्ज[6] । (१)*
दक्खिन करि[1] कनवज्ज कउ[2] फुनि[3] संमुह[4] मरणज्ज[5] ॥ (२)*

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने उत्तर दिया,] "यदि मैं [अपने] साथियो का साथ छोड़ दूँगा तो शाकभरी [का चहुआन] कुल लज्जित होगा । (२) [मुझे तो] कन्नौज की प्रदक्षिणा करके फिर [रण-क्षेत्र मे-] सम्मुख मरना है ।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. जु (=जउ), धा. जउ, शेष सब में 'जौ' । २ मो. मूकु (= मूकउं), फ. मुकौ, म. मुंकौं, उ. स. मुकौं, ना. मुकै । ३. मो. ना. 'सथ', शेष सभी में 'सत' । ४. ना. सत्थीयन । ५. मो. तुं (=तउ), धा. तो, शेष में 'तौ' । ६. मो. धा. 'लाज', शेष सभी में 'लज्ज' ।

(२) १. मो. दक्षिन (= दक्खिन) करि, म. उ. स. दिष्षन करि, ना. दष्यन करि, अ. फ. दष्षिन कर । २. मो. कुं (= कउं), धा. अ. कहुं, ना. फ. कौ, म. कौं, उ. स. कौं । ३. धा. अ. फ. ना. पुनि, उ. स. फिर, म. फिरि । ४. मो. संमह, म. संमुष । ५. धा. मो. मरणाज (मरनाज-धा.), ना. मरणिज्ज, शेष सभी में 'मरनज्ज' ।

टिप्पणी—(१) मुक < मुच् = छोड़ना । (२) दक्खिन > दक्षिणा = प्रदक्षिणा ।

[४]

दोहरा— *भय[1] टामंक[2] दिस्सइ*न दिसि[3] बहु पष्षर भहराउ[5] । (१)*
मनुं[1] अकाल टिड्डिअ[2] सघन सु पव्वइ[3] छुट्टि[4] प्रवाह[5] ॥ (२)*

अर्थ—(१) [इधर] ऐसी टामंक (धुंधलाहट) हुई कि दिशाएँ नहीं दिखती थीं, [क्योंकि] पाखरों (सनाह से सुसज्जित अश्व-सेना) का बहुत भहराव (गिराव—आक्रमण के लिए एकत्रीकरण) हो गया था । (२) [ऐसा लगता था] मानो अकाल प्रस्तुत करने वाली सघन टिड्डियों का प्रवाह पर्वत से छूट पड़ा हो ।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. अ भइ, फ. भे, म. उ. स. भौ, ना. भयौ । २. अ. समक, फ. समकि । ३. मो. दिसि (= दिसइ) न दिसि, धा. दिसि विदिस हुइ, अ. दिसि विदिसि मिलि, फ. दिस विदस मिलि, ना. दिशि विदिसि दिसि, म. उ. स. दिसि (दिस-म.) विदिस कहु । ४. धा. लोह, ना. डुलि । ५. धा. तिहराउ अ. फ. भहराव (भहराच-फ.), म. बहुराह, उ. स. बहुराव, ना. भहराहु ।

(२) १. मो धा. अ. उ. स. ना. मनु (मनुं–ना. अ.), म भनो । २. मो. अकाळ टडीअ, धा. अकाल तिडिय, फ. अकास लिटिडिअ, ना म अकास टिडी । ३. मो. सु पवि (= पवइ), धा. चल्या तु, अ. फ. पावस (पाउस–फ), ना. उ. सुपब्बय, म. स. पब्बय । ४ धा. मो. छूटि, अ फ ना उ स. छुट्टि (छुट्टि–स.), म. च्छुटि । ५. फ. प्रहारु ।

टिप्पणी—(१) पाखर < पक्षधर (?) = अश्व = सनाह । (२) पव्वइ < पर्वत ।

[५]

भुजंग —

प्रवाहे स्वेत[१] ताजी[२] न॰ लब्भे अहारे[३] । (१)
मनउ[*१] रव्वि के रथ्थ[२] आने पहारे[३] ॥ (२)
सामि[१] संग्रामि[२] भिलइ[*३] दुधारा[४] । (३)
[१]उप्पमा[२] केम[३] दीजइ[४] छिकारा[५] ॥ (४)
साहियं[१] वग्ग[२] कड्ढइ[*] जि लारा[३] । (५)
मनउ[*१] आवभइ[*२] हथ्थ वज्जंति[३] तारा[४] ॥ (६)
छुट्टियं[१] तेज तुठे जि कारा । (७)
ते[१] सज्जियं[२] सूर सव्वे[३] तुषारा ॥ (८)
पष्षरे[१] प्रान से[२] मत्त वारा[३]।[४](९)
[१]कंध नामइ[*२] नही लोह धारा[३]॥[४]+(१०)
घाट अवघाट[१] बेक[ता]?[२] निनारा[३] । (११)
[१]कंठ भूमंति[२] गजगाह[३] भारा ॥ (१२)
लोह[१] लाहउर[*२] बाजइ[*३] तुरक्की । (१३)
तिने[१] धावते दीसइ नहि धूरि[२] षुरकी[३] ॥ (१४)
पच्छिमी सिंधु[१] जानइ[*२] न थक्की । (१५)
ने साथि[१] सीधी[२] वले जक्कि[३] जक्की ॥ (१६)
पवन[१] पंषीन अषी[२] मनक्की[३] । (१७)
जे आस[१] कढ्ढे नहीं चंपि नक्खी[*२] ॥×(१८)
राग[१] बागे[२] नही सुधि[३] उरक्की[४] । (१९)
मनउ[*१] उप्पमा[२] उच्च आवइ[*३] धुरक्की[४] ॥ (२०)
आरबी देसावरी[१] लोह लच्छी । (२१)
गनइ[*१] को कंठ कंठीन[२] कच्छी ॥ (२२)
धरा षित्ति[१] षुद्दंति[२] तुट्टंति[०३] बाजी । (२३)
दिष्षिअइ[*] एक[१] अंकेक (=अक्केक) ताजी ॥ (२४)
पंडवे[१] पंगुरे राय[२] सज्जे[३] । (२५)
दुवन[१] दल[२] तुच्छ[३] देषंत लज्जे[४] ॥ (२६)

एह[1] अप्पुब्ब[2] कवि चंद पेक्खउ*[3] । (२७)
तरणि सम तेज दुजराज[1] देक्खउ*[2]॥[3](२८)

अर्थ—(१) [संनाह से सुसज्जित अश्व-सेना के उस] प्रवाह में ऐसे श्वेत ताजी थे जो अखाड़े में [पिछड़ कर] लज्जित न हुए थे, (२) [वे ऐसे लगते थे] मानो वे रवि के रथ से अपहृत करके लाए गए हों। (३) वे स्वामी के युद्ध में दुधारे झेलने वाले थे; (४) उनकी उपमा छिकारे (हिरन) से किस प्रकार दी जाए ? (५) [उनके मुखों में] बाग साधी गई है, जिससे उनके मुखों से लाला (लार) कढ (निकल) रही है, (६) [दोनों ओर से उनके मुखों में उस बाग का लगना ऐसा लगता है] मानो आउझ (ढोल की जाति के एक वाद्य) पर [दोनों] हाथों से ताल बजाए जा रहे हों। (७) [उनके शरीर से] ऐसा तेज छूट (विकीर्ण) हो रहा है जैसे कार (काल ?) उठा हो। (८) ऐसे सभी तुषारों को शूर साज रहे हैं। (९) वे मतवाले [घोड़े] प्राण से (प्राण-रक्षा की दृष्टि से ?) पाखरे (संनाह से सुसज्जित किए) हुए हैं। (१०) उनका कंधा लौह (तलवार) की धार के सामने नमित नहीं होता है। (११) घाट, औघाट (बुरे घाट) उन्हें निराले रूप से व्यक्त हो जाते हैं—अर्थात् घाट-औघाट को वे स्वयं समझ कर चलते हैं। (१२) उनके कंठ में भारी गजगाह झूमते (झूलते) रहते हैं। (१३) लाहौर के लोहित वर्ण के जो घोड़े हैं, जो तुर्की बाजते (कहे जाते हैं), (१४) उनके दौड़ते समय खुरों की धूल नहीं दिखाई पड़ती है। (१५) जो सिंधु के पश्चिम के घोड़े हैं, वे थकना नहीं जानते हैं। (१६) उन्हीं के साथ जो सिंधी घोड़े हैं, वे जके (बौराए) से मुड़ते-फिरते चलते हैं। (१७) पवन, पक्षी, आँख और मन की [गति] भी, (१८) यदि वे अश्व निकलते हैं, उन्हें चाँपकर—दबाकर—पिछाड़ नहीं सकती है। (१९) जब वे रागे (टाँगों के कवच पहनाए) जाकर बागे (बाग से सुसज्जित किए) जाते हैं तो उन्हें अपने हृदय (प्राणों) की सुधि नहीं रहती है, (२०) और वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो उच्च (श्रेष्ठ) उपमा हो जो [कवि के मानस में] आगे बढ़ती चली आ रही हो। (२१) अगर देशों के अश्वों में अरबी, जो लोहित वर्ण के हैं, लाखों हैं, (२२) और सुन्दर कंठ वाले कच्छी घोड़े इतने हैं कि कौन-सा कंठ उन्हें गिन सकता है; (२३) वे घोड़े [रण-] धरा की क्षिति पर टूट कर (वेग से बढ़कर) खुरों से खूँद रहे हैं और (२४) एक से एक बढ़कर ताज़ी दिखाई पड़ रहे हैं। (२५) फिर पंडुवे (पांडु के घोड़े) पंगुराज (जयचंद) ने सजाए हैं, जो शत्रु पक्ष के दल को छोटा देखकर लज्जित हो रहे हैं। (२७) कवि चंद ने यह अपूर्व बात देखी कि (२८) तरणि का तेज [आकाश के धूल-धूसरित होने के कारण] द्विजराज (चंद्रमा) के समान दीख पड़ा।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

× चिह्नित चरण मो. में नहीं है।

+ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

(१) १. मो. प्रवाहे स्वेत, धा. प्रवासेत, अ. ना. प्रवासे, फ. प्रवासंत, म. उ. स. प्रवाहंत। २. धा. तज्जी। ३. मो.—ए अहारे, धा. लज्जो अहारे, ना. जाजी अहारं, अ. फ. लाजी अहारं, म. उ. स. लज्जीयहारे।

(२) १. मो. मनु (= मनउ), ना. मनुं (= मनउ), धा. उ. स. मनो, अ. फ. मनो, म. मनौं। २. धा. रत्थे जे, अ. फ. रथ्थं, ना. रत्थँ सु, म. उ. स. रथ्थं सु। ३. धा. म. उ. स. प्रहारे, अ. फ. प्रहारं।

(३) १. धा. तिके स्यामि, उ. स. जिके स्वामि, म. जिके सांमि। २. अ. फ. न. संग्राम। ३. धा.

झेले, मो. झिलि (= झिलइ), अ. फ. ना. झिल्ले, म. झले, उ. स. झल्ले। ५. मो. दो धारा, धा. अ. फ. दुधारे, स. दुधारं।

(४) १. धा. अ. फ. तिन, मो. ते, म. उ. स. तिन, ना. में यह शब्द नहीं है। २. ना. ओपमा। ३. धा. क्यू व, अ. कोव, फ. कों वि, म. क्योंब, ना. कु (= कों) व, उ. स क्योंव। ४. अ. फ. दिज्जै, म. दीजै। ५. धा. विकारे, म. ठिकारा. उ. स. अ. फ. छिकारं (छिकारे–उ स.)।

(५) १. धा. तिन साहिय, म. उ. स. तिन साहिय, फ. साहि। २. अ फ. ना. वाग। ३. मो. कटि (< कढइ) निलारा, धा अ. गड्ढे जिलारा, फ. तिगढे जिलारा, उ. स. गड्ढे न लारा, म. गड्ढे नलराम, ना. गड्ढे नलारा।

(६) १. मो. मुनु (= मुनउ), ना. मनु (= मनउ), धा. म. उ. स. मनो, म. मनौं, अ. फ. मनौ। २. मो आवहि (< आवझि = आवझइ). धा. आवधे, उ. स. आवध, म. आवध, ना. अवझं, अ. आवझे, फ. आवजे। ३. उ. स. वज्जत न बाजत, म. छज्जत। ४ धा. सारा।

(७) १. धा. छुट्टियं तेजि, फ. मनौ छुट्टिज, म. उ. स. हय छुट्टियं। २ धा. वेठे, अ. फ. वट्ठे, म. ठढे, उ. स. ठट्टे, ना चट्टे।

(८) १. तिते, फ जिते, ना. म. स. सयं। २. मो. साजिय, धा. सज्जए, अ. फ. सज्जिए, म. उ. स. सज्जियं। ३. ना. म. उ. म. सब्ब, अ. सद्दं।

(९) १. म. सरे पाषरे, उ. स. सरे पष्षरे, अ. फ. तहां पष्षरे। २. धा. उ. स. प्रानजे, म. प्रानजै, अ. फ. प्रानतै, ना. पानते। ३. धा. त्राहु चारा, अ. फ. म. मारु वारा, ना. उ. स. मारवारा।

(१०) १. धा. जके, ना. ते, म. उ. स. तिके। २. मो. नामि (= नामइ), धा. ना. नामे, म. उ. स. नामैं। ३. धा. लोह झारा, म. कोल झारा, ना उ. स. लोह झारा। ४. धा. अ. फ. में यहां और है :

[बहै बाय वेगं] नहीं भूमिभारा। तिवे इट्टियं जानि आकास तारा।

कोष्टकों के अन्दर की शब्दावली धा. में नहीं है।

(११) १. मो. बाट अवघाट, धा. घट्ट ऊघट्ट, अ. घट्ट औघट्ट, फ. मनौ घट्ट औघट्ट, ना. घाट औघाट, म. तहां औघट घाट, उ. स. तहां धाट औघट्ट। २. मो. बेक, धा. 'फदै' शेष में 'फदे' या 'फदे'। ३. अ. फ. निन्यारा, ना. निरारा।

(१२) १. ना तने, म. उ. स. तिने यह शब्द धा. अ. फ. में नहीं है। २. धा. झुछति, ना. झूलंत, अ. फ. म. झूमंत (झूमत–म.)। ३. म. जगाह।

(१३) १. अ. फ. किते लोह, म. दिसारोह, उ. दिसाहार, स. दिसाराह। २. मो. लाहुर (= लाहउर), धा. लाहोर, शेष में 'लाहोर' या 'लाहार'। ३. मो. बाजि (= बाजइ), धा. वज्जइ अ. फ. ना. उ. स. बज्जे, म. वज्जे।

(१४) १. धा. ना. तिन। २. धा. धावते दीसन धुरी, अ. फ. धावते दीसे न (नु–फ.) धूर्यो, ना. म. उ. स. धावते (धाव–ना.) धूर (धूरि–म. ना., धू–उ.) दीसै। ३. धा. फुरकी, अ. फ. ना. म. उ. स. घुरकी।

(१५) १. धा. पच्छमी सिंध, अ. फ. सजै पश्चिमी (पच्छिमा–फ.) सिंध, ना. पच्छिमी भुम्म, म. उ. स. दिस पच्छिम (पच्छमी–म.) भूमि। २. मो. जानि (= जानइ), धा. जाने, अ. फ. ना. म. उ. स. जान।

(१६) १. धा. निन साथि, मो. ते साथ, अ. फ. म. उ. स. तिन साथ, ना. जिन सत्थ। २. मो. सीधी, ना. फ. संधी, शेष सभी में 'सिंधी'। ३. धा. अ. फ. वले जक्कि, मो. चले जक्क, ना. चलै जक्कि, उ. स. चलै नाव, म. चले ज।

(१७) १. धा. पमः, म. उ. स. पवन न, फ. मनो पवन, ना. पवन्न। २. फ. पंषी। ३. धा. मनक्खी, अ. मनीषी, फ. मनुषी।

(१८) १. अ. फ. जिके (जिकै–फ.) सास, ना ते सास, म. उ. स. तिके सास। २. धा. नहीं चपि भक्खी (< नक्खी), अ. फ. न चप ननष्षी, ना. न चप (चपैं) तनक्को, म. स. न चपं ननक्का, उ. न चपैं ननंकी।

(१९) १. म. उ. स. तिन राग। २. धा बरणैं, ना. म. उ. स. चंपैं। ३. धा. नहीं सुध, अ. न सुक्की, फ. न सूकी, ना. म. उ. स न सुद्धो (न सुद्धी–ना.)। ४. म. उरधी, उ. स. उरक्की।

(२०) १. मा. मनु (=मनउ), ना. मनु (=मनउ), धा. म. उ. स. मनो, अ. फ. में यह शब्द नहीं है। २. धा. उप्परे, अ. उप्पजै, फ. उप्पजे, ना. म. उ. स. ओपमा। ३. मो. उच आवि (=आवइ), धा. ओस आव, अ. फ. उच आदे, म. उ. स. उच आए, ना. उच्च आप। ४. ना. म. उ. स. धरक्की।

(२१) १. मो. आरबी देसावरी, शेष सब में 'अरब्बी (आरबी–ना.) बिदेसी लर'।

(२२) १. मो. गनि (=गनइ), धा. अ. फ. गण, म. गन, ना. उ. स. गने। २. धा. अ. फ. को कंठ कठील, ना. म. उ. स. कान (कोंन–म., कोक–ना.) कठील कंठोल।

(२३) १. धा. अ. फ. धरा खित्त, म. उ. स. धर (धर–म.) षेत्त, ना. धरा षेत। २. धा. षुदंतं, ना. फ. कुदंतं, अ. म. उ. स. षुदंत। ३. म. अ. सदंत, फ. सदंति, ना. रुदंत, उ. स. रु दंत।

(२४) १. मो. दिषिइ (=दिषिज्जइ) एक, धा. दिष्षियइ इक्कु, ना. दिष्षीयैं इक्क, अ. फ. किते दिष्षियहि एक, म. हरैंवी ह एक, उ. स. हरवां हर एक। २. धा. इक्कत, अ. फ. एकत, म. ताजीन, स. तत्तार, ना. ताजीत।

(२५) १. मो. पडवे, धा. पडुए, ना. पडरे, अ. इते पंडुवे, फ. इते पंडुरे, म. तिके पंगुरे, उ. तिके पंडुरा, स. तिके पंडुए। २. मो. म. राय, शेष सब में 'राइ'। ३. मो. साजी, धा. सज्जे, अ. सज्जी, फ. ताजी, ना. राजै, म. उ. स. साजे।

(२६) १. धा. दुअण, ना. ध्रुवन, अ. तबहि दुवन, फ. तुबहि दुबल, म. उ. स. मनों (मनौं–म.) दुअन। २. धा. बल। ३. धा. वच्छ। ४. मो. देषत लाजी, धा. दिष्षत लज्जैं, अ. फ. देषंत लज्जे (लज्जैं–फ.), म. उ. स. देषंत लाजे, ना. देषंत लाजै।

(२७) १. धा. इहे, ना. इह, अ. फ. तहां, म. उ. स. इसो एह (इह–म.)। २. ना. आपु पुव्व, उ. स. आपुव्व। ३. मो. पेखु (=पेक्खउ), धा. अ. फ. ना. म. उ. स. पिष्यौ (पिक्खूयौ–धा.)।

(२८) १. धा. अ. फ. तरनि दुजराज सम (समे–अ. फ.) तेज (चद–फ.), म. उ. स. तिनं रव्वि दुजराज सम (सग–म.) तेज। २. मो. देषु (=देक्खउ) ना. म. दिष्यौ, शेष में 'दिष्यो' (दिक्खूयो–धा.)। ३. ना. म. उ. स. में यहां और है (स. पाठ):—

> डरं डंबरी रेन अप्पै न पारं। अषीनं पषीनं सषीन निहारं।
> तहां कोन सामंत राजंन ठढ्ढे। मनों मेर उत्तंग हस्ती न चढ्ढे।
> मुखं जोव जोवं भरं भूप भारे। तिनं काम कनवज्ज मज्झै पधारे।

टिप्पणी—(१) अहारा < अक्खाडग < अक्ष+वाटक=अखाड़ा (२) पहारे < प्रहृत=अपहृत। (३) झिल्ल [दे.]=ऊपर से गिरती हुई वस्तु को थामना। (४) छिकारा=हरिण। (५) साह < साध्=सिद्ध करना, बनाना। (६) आउझ < आयुध (?)=ढोल के ढंग का एक वाद्य-विशेष। तार < ताल। (७) वुट्ठिय < व्युत्थित। कार < काल (?)। (११) वेकत < व्यक्त। निनार < णिण्णार < निर्नगर=नगर से निर्गत, निराला। (१२) गजगाह < गजग्राह = घोड़ों के कठ में बाँधी जाने वाली झालर जो उनके अगले पैरों के सामने लटकती है। (१६) सीधी = सिंधी। वल < वल्=मुड़ना, लौट पड़ना। (१८) आस < अश्व। नंघ < लंघ। (१९) राग=टाँगों का कवच। (२०) धुर=अग्रभाग। (२१) लच्छी < लक्ष। (२६) दुवन < दुर्जन =शत्रु। (२७) अपुव्व < अपूर्व। पेक्ख < प्र+ईक्ष् =देखना।

[६]

दोहरा— करिग[1] देव दक्खिन[2]* नयर[3] गंग तरगह कुल्ल[4]। (१)
जल छुंडइ*[1] अच्छइ* करह[2] मीन चरित्तनु भुल्ल[3] ॥ (२)

अर्थ—(१) देव (पृथ्वीराज) ने नगर प्रदक्षिणा की, [तदनंतर] वह गंगा की तरंगो के कूल (तट) पर (२) अपने अच्छे (या अचित) करो से जल छाडने (उछालने) लगा और मछलियों के चरित्रो (खेलों) मे [अपने को] भूल गया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) १. ना करग। २. मो. दक्षन (=दक्खन), धा. दिखखन, ना. दच्छिन, म. दषिन, उ. स. दच्छिन। ३. मो. नगर, उ. नयन। ४. मो. गंग तरगह कुल, धा. गंग तरग अकुल्ल, अ. गग तुरग अकिल्ल, फ. गगा तुरगु अकल्ह, म. उ. स गग तरगह कूल, ना. गग तरग कूल।

(२) १. मो. छडिइ (< छडइ), धा. छडहि, उ. छट, म. स. छुट्ट, ना. च्छडिक। २. मा. अछि (=अछ्छइ) करह, धा. अच्छहि करइ, फ. अछे करहि, ना. म. स. तन इच्छ करि। ३. मो. चरित्रहि (=चरित्तहि) मूल, धा. चरित्तनु भुल, अ. चरित्तइ भुल्ल, फ. चरित्तइ भूल, ना. म. उ. स. चरित्रनि (चरित्रन-ना.) भूल।

टिप्पणी—(१) दक्खन < प्रदक्षिणा। नयर < नगर। (२) अच्छइ < अचित।

[७]

रासा— भूलउ*[1] नृप तिहि रंग[2] तहि[3] जुध्ध विरुध्ध सहु[4]। (१)
मुग*ति[1] मीननु[2] मुत्ति लहंति जु लष्ष दहु[3] ॥ (२)
होइ*[1] तुच्छ तु तंमोर*[2] सरंत तु कंठ लहु[3]। (३)
पंक[1] प्रवेस हसंत तु[2] झरंत[3] ज गंग[4] महु[5] ॥ (४)

अर्थ—(१) नृप (पृथ्वीराज) उस रंग (क्रीडा) मे [अपने को] और उसी प्रकार [जयचंद से] सभी विरोध और युद्ध को भूल गया। (२) मछलियो के लिए जब वह [जल मे] मोती छोडता था, तब वे दस लाख [की सख्या में आकर] उनको ले लेती थीं। (३) वह मोती तुच्छ (हलके) ताबूल [के रस के समान लाल] हो जाता था जब वह उनके लघु कंठ में जाता था [और उसमें उनके लाल कंठ की झलक पडती] थी। (४) यदि वह मोती गंगा में झड (गिर) जाता था, तो वे हँसते हुए पंक में प्रविष्ट हो [कर उसे ढूँढने लग] ती थीं।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. भूलु (=भूलउ), धा. भुल्लयो, म. उ. स. भूलौ, फ. ना. भूल्यौ। २. धा. पुहवि नरिंद, फ. नृपति नरिंद, म. ना उ. स. नृप इह रगहि। ३. धा. त, फ. स, म. उ. स. में यह शब्द नहीं है। ४. धा. बिनुद्ध सह, मो. विरुध शहु (=सहु), म उ स. विरुद्ध सह।

(२) १. मा. मृग ति (=मूग ति), धा. मुक्के, म. नषह, उ. स. नषहि, ना. नषै। २. म. मीनति, ना. उ. स. मीननि। ३. मो. लहति जू लष दह, धा. लहंतु जु लच्छि दह, म. उ. स. लहै जुअ लष्ष दह, ना. लहति जे लष्ष दह।

(३) १. मो. होल, धा. ना. फ. इय, म. होय। २. मो. तुछतु तमोर, धा. तुछ तमोर, उ. स. तुछ तुच्छ सु सुदि, म. तुज तु सु भूति, फ ना तुछ तुत तमोर। ३. धा. सरत जु कठ लइ, स. मरत न कंठ लइ, म. सरसत कठ लहि, उ सरत न कठ लइ, ना. सरतति कठ मइ, फ. सरंत सुकत लइ।

(४) १. मो. वक, शेष सभी में 'पक'। २. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। ३. ना. झुरंत। ४, धा. ना. जु गग, फ. ज गग, म. उ. स. न कठ। ५. म. महि।

टिप्पणी—(१) सहु=सभी। (२) मूग < मुच्=छोड़ना। दह < दश। (३) तंमोर=ताम्बूल। (४) वंक < पङ्क।

[८]

दोहरा— *भुल्लउ**१ *रंग नृपत्ति इहि*२ *पग चढो*३ *हय*४ *पुट्ठि। (१)*
*सुनि*१ *सुंदरि*२ *वर वज्जने*३ *चढी अवासह उट्ठि*४ *॥ (२)*

अर्थ—(१) नृपति (पृथ्वीराज) [जब] इस रंग (खिलवाड़) में भूला हुआ था, [उधर] पग (जयचंद) घोड़े की पीठ पर चढा, (२) और वह सुन्दरी (सयोगिता) वाद्यों को सुन कर उठ कर आवास (महल) [की छत] पर चढ गई।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है।

(१) १. मो. भुलु (=भूलउ), धा. भुल्यो, अ. भुल्लो, ना. स. फ भूल्यौ, म. उ. भूलौ। २. धा. अ. फ. रग सु मीन (मीत–फ.) नृप, ना. म. उ. स. नृप इन (इह–ना. म.) रंग महि (मैं–ना.)। ३. धा. अ. फ. ना. म. उ. स. चढ्यो (चढ्यौ–म. ना.)। ४. मो. इय।

(२) १. मो. सो, शेष सभी में 'सुनि'। २. म. ना. उ. स. सुन्दर, फ सुन्दरु। ३. ना. अ. वज्जनै। ४. धा. चढ़ी अवासन उट्ठि फ. चढी अवासहि उट्ठि, ना. चढ़ी अवासनि उट्ठि, म. उ. स. अई अपुव्व कोइ (कौ–म.) दिट्ठ (दुट्ठ–उ., दुट्ठि–म.)।

टिप्पणी—(१) पुट्ठ < पृष्ठ। (२) वज्जने < वाद्यानि =बाजे।

[९]

दोहरा— *दिष्षि त*१ *सुन्दरि दल वलनि*२ *चमकि चडंति*३ *अवास*४ *। (१)*
*नर कि देव*१ *किधु*२ *काम हर*३ *गंग हसंति निवास*४ *॥ (२)*

अर्थ—(१) सुन्दरी (संयोगिता) दल (सेना) का चलना देख कर आवास (महल) [की छत पर] चढ़ जाती है, (२) [और गंगा तट पर पृथ्वीराज को देखकर सखियों से पूछने लगती है कि] "यह नर है, या देवता है, या काम या हर (शिव) है जो गंगा में हँसता हुआ (प्रसन्न) निवास कर रहा है?"

पाठान्तर—(१) १. धा. दिष्षति, ना. दिष्यत, म. उ. स. देषत। २. धा. बलनि, फ. वलितु, अ. चलनि, ना. मिलन, म. मिलत, उ. मिलिन, स. मिलनि। ३. मो. चडंति, धा. ना. फ. चढंति, अ. चढंत, म. उ. बढ़ी मन, स. चढौ मन। ४ म. आसु, उ. स. आस।

(२) १. धा. फ. देउ। २. धा. किंधु, मो. ना. अ. किधु, फ. किधूं, म. किधौं, उ. स. किधौं। ३. फ. काम हरि, ना. काम हरु, म. उ. स. नागहर। ४—धा. गग हसत अयास, म. उ. स. गंग हसत निवास (सत निवासु—म.), अ. फ. किधु (किधौ-फ.) कधु गग विगास।

टिप्पणी—वल < वल्=चलना, जाना। चड=चढ़ना।

[१०]

दोहरा— एक[१] कहइ[२] दानव[३] देव हइ[४] एक[१] कहइ[५] इंद[६] मुनिद[७] ।[×] (१)
एक[१] कहइ[२] एसे[३] कोटि नर एक कहइ[४] प्रथिराज नरिंद[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) [उत्तर में] एक कहती है, "यह दानव या देवता है," और एक कहती है "यह इद्र या मुनीन्द्र (बड़ा मुनि) है।" (२) एक कहती है "ऐसे कोटि नर होते हैं," और एक कहती है "यह नरेन्द्र पृथ्वीराज है।"

पाठान्तर—× चिह्नित चरण म. में नहीं है।

(१) १. मो. एक शेष सभी में 'इक'। २. धा. फ. ना. उ. स कहै, अ. कहहि। ३. धा. दुर, अ. फ. दुरि, ना. उ. स. दनु। ४. मो. हि (=हइ), धा. फ. ना. है, अ. हइ, उ. स. हइ। ५. धा. फ. ना. उ. स. कहै, अ. कहि (=कहइ)। ६. धा. इदु, फ. यदु। ७ धा. फ. फनिंद, अ. ना उ. स. फुनिंद।

(२) १. मो. एक शेष, सभी में 'इक'। २. धा. कहें, अ. कहहि, फ. म. ना. उ. स. कहै। ३. मो. एसे, धा. म. ना. असि, उ. स. अ. फ. अस। ४. धा. इहु, अ. फ. ना. म. उ. स. इक। ५. मो. प्रथिराज नेरेंद (< निरिंद), शेष मे 'प्रिथिराज नरिंद'।

टिप्पणी—(१) इद < इंद्र। मुनिंद < मुनीन्द्र। (२) नरिंद < नरेन्द्र। एस < ईदृक्=ऐसा।

[११]

दोहरा— सुनि रव[१] सुंदरि[२] उब्भ तन[३] स्वेद कंप सुर भंग। (१)
मनु कमलिनि[१] कल संभरी[२] अम्रित[३] किरन तन[४] रंग ॥[५] (२)

अर्थ—(१) ['पृथ्वीराज'] का शब्द (नाम) सुन कर सुदरी (संयोगिता) के शरीर में प्रस्वेद, कंप और स्वरभग ऊर्ध्व (अंकुरित) हो गए। (२) [ऐसा प्रतीत हुआ] मानो सुंदर कमलिनी ने [सूर्य की] अमृत किरणों की क्रीडा का स्मरण किया हो।

पाठान्तर—(१) १. धा. वर। २. धा. सुंदर। ३. धा. उभय हुव, अ. फ. उप्भ हुव, मो. उभलन।

(२) १. मो. अ. फ. कमलनि, धा. कमलिनि। २. धा समहरि, अ. फ. संहरिय। ३. धा. अम्रिम्रित, मो. अमिरत। ४. मो. किरतन, धा. करनेतन अ किरनि, तन, फ किरन त। ५. धा. में 'तथा अन्तर पाठान्तर' लिखकर यहाँ निम्निलिखित दोहा भी है:

सुनि रव प्रिय प्रिथिराज कउ उमद रोम तिन अंग।
सेद कप सुरभग भयउ सपत भाइ तिहि अग॥

अ. फ. में भी यह दोहा है, केवल 'तथा अन्तर पाठान्तर' नहीं लिखा हुआ है। म. उ. स. का पाठ है:

सुनि वर (रवि—म.) सुन्दरि रमे तन उभय रोम तन अंग।
स्वेद कंप सुरभंग भौ नैन पिषत पृथु रंग॥

प्रथम चरण के 'उभेतन' और 'उभय रोम तन' में जो पुनिरुक्ति है, इससे इनमें भी पाठ (मिश्रण प्रकट है)। ना. का पाठ है :

सुनि रव सुदरि उभ हुव उभे रोम तन अग।
स्वेद'कंप स्वर भग भौ नयन दिष्षि पृथु रंग॥
मानहुँ कमलिनि कल संभरिय तिमर किरनि ततु रग॥

प्रकट है कि ना. में मो. तथा म. उ. स. के पाठों का मिश्रण हुआ है।

टिप्पणी—(१) उम्भ = ऊर्ध्व। (२) समर = सस्मर् स्मरण करना।

[१२]

सुडिल—

गुरुजन गुरु न निदरिय[१] सुंदरि। (१)
राजपुत्ति[१] पुछ्छइ न दुदरि[२]। (२)
अमु पुछ्छइ[*] लउ[*१] दुत्ति पठावइ[*२]। (३)
गुन[१] अछ्छइ[*२] पछ्छइ[*] करि आवइ[*३]। (४)

अर्थ—(१) [यह देखकर संयोगिता की एक सहचरी उससे कहती है,] "हे सुंदरी, गुरुजनों और गुरुओं की निंदा न होने दीजिए [—इस प्रकार हर एक से चर्चा करने पर उनकी निंदा होगी], (२) हे राजपुत्री, द्वंद्व के साथ—इस प्रकार कि उसका शोर हो जावे—न पूछिए। (३) उसे पूछने के लिए दूती भेजिए। (४) [यदि वह पृथ्वीराज रहने] तो अपने अच्छे गुणों से [वह दूती] उसे [आप के] पक्ष में करके आवे।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो न निदरीय, धा. बदिअ नहि, अ. फ. ददइ नहि, ना. णिंदीराये न, उ. स. निंदरियं, म. निदर पग।

(२) १. ना. राजन पुत्त। २. धा. पुच्छे कहुँ सुंदरि, अ. फ. पुछ्छइ कहु दुदरि, ना. म. उ स. पुच्छियै (पुच्छि—ना., पुच्छियत—म.) न दुरि दुरि (दिदुरि—ना.)।

(३) १. मो. अमु पुछि (=पुछ्छइ) लु (=लउ), धा. अम्महि पुच्छन, अ. फ. अम्हइ पुछ्छन ना. हम ही पुच्छि पुच्छन, म. उ. स. अमहि पुच्छि (पुच्छ—म.) तौ। २. धा. दूत पठा वहि, मो. दुति पठावि (=पठावइ), ना. दुति पठावहि, अ. फ. दुछि पठावहि, म दुति पजावहि।

(४) म. उ. स. कुन। २. मो. अछि (=अछइ), म अच्छे, ना. अच्छै। ३ धा पच्छे करु आवहि, मो. पछि (=पछ्छइ) करी (करि) आवि (=आवइ), अ. फ. पछछे करवावहि, म. उ. स. पुच्छवि करि आवहि, ना. पुच्छि करि आवहि।

टिप्पणी—(१) निंद < निन्द्=निंदा करना। (२) दुद < द्वन्द्व। (३) अमु=उसको। (४) पछ्छ < पक्ष।

[१३]

रासा—

पंगुरा सा[१] पुत्तिय[२] सुत्तिय थार[३] भरि। (१)
यो त्रिय[१] जउ[*२] प्रथीराज न[३] पुछ्छइ[४] तोहि फिरि[५]। (२)
जउ[*१] इन लष्षन[२] सब सहित[३] बिचार न सोइ करि[०४]। (३)
हइ[*१] व्रत[२] मोहि[३] नि जीव सु[४] लेउं सजीव वरि[५]॥ (४)

अर्थ—(१) पंगुराज (जयचन्द) की उस पुत्री (संयोगिता) ने मोतियों का थाल भरा, [और दूती से कहा,] (२) "हे स्त्री, यह यदि पृथ्वीराज हुआ, तो तुझसे फिर (घूम) कर [मोतियों के संबंध में] न पूछेगा। (३) यदि वह इन सब लक्षणों के साथ हो, तो तू उसका (मोतियों के फेंके जाने का) विचार न करे, (४) [क्योंकि] मेरा व्रत है कि इस नर जीव (शरीर) से ही उसको जीवन रहते वरण करूँ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) धा. पगुराइ सा, मो. पगूराय स, अ. फ. पगराइ सा, उ. तब पसर राइसु, म. स. तब पगुर राय सु, ना. पंगुराय। २. धा. पुत्तिसु। ३. धा. थाज, म. अ. फ. ना. थाल।

(२) १. धा. जुत्तो, अ. फ. जुवती, ना. जौईय, सा. जौ हिय, म. उ. जौ तिय। २. मो. जु (=जउ), धा. जो, म. उ. स. इह, अ. फ. जौ, ना. में यह शब्द नहीं है। ३. धा. प्रिथिराजन, म. प्रिथीराजह, उ स. प्रथिराजह। ४. मो. पुछि (=पुछ्छइ) अ. पुछ्छइ, फ. पूछै, धा. पूछहि, ना. पुच्छै, म. उ. स. अच्छहि। ५. मो. तोहि करि, धा. वीति फिरि, शेष में 'तोहि फिरि' (फिरु—फ.)।

(३) १. मो. जु (=जउ), धा. जरु, अ. फ. ना. म उ. स जौ। २. धा. इनि छिनि, अ. फ. ना. म. उ. स. इन लछिछन। ३. यह शब्द मो. के अतिरिक्त किसी में नहीं है। ४. मो. बिचारि न सोइ [-करि मो. में नहीं है], धा. अ. फ. नि (न—अ. फ.) तव्व विचारु (विचारि—फ.) करि (करु—फ.), म. उ. ना. तौ (त—ना.) तव्व बिचारि करि, स. तव्व बिचारि करि।

(४) १. मो. हि (=इह), शेष सब में 'है'। २. मो. म. वृत, धा व्रतु। ३. म. सोहि। ४. मो. नृजीवसु, धा. त्रितावत, अ. फ. नृजीवत, ना. भीउत, म. उ. स. नृप जीव तौ। ५. ना. लेउ सजीव वर, म. फ. लउ सजीव (सजीउ—फ.) वरि।

टिप्पणी—(१) थार < स्थाल=थाल। (२) तथा (३) जउ < यदि।

[१४]

रासा— सुदरि आइसं[१] धाइ[२] विचार[३] न बोलइय[४]। (१)
जउ[*१] जल गंगह लोल[२] प्रतीत[३] प्रसंगु लिय[४]। (२)*
कमल ति[१] कोमल पांनि[२] कलिककुल[३] अंगुलिय[४]। (३)
मनहु[१] अघ्घ दुज दान[२] सु अप्पति[३] अंजुलिय[४]॥ (४)*

अर्थ—(१) वह सुंदरी [सहचरी] आदेशानुसार दौड़ आई; उसने [पृथ्वीराज से] अपना (मंतव्य) नहीं कहा। (२) जहाँ पर गंगा का लोल जल था, वहाँ उसने प्रतीति [उत्पन्न करने] का वह प्रसंग—पृथ्वीराज को चुपचाप मोती देते रहने का उपाय—ग्रहण किया। (३) उसका हाथ कमल सा कोमल था, और उसकी उंगलियाँ कलिका-कुल—कलियों—के समान थीं। (४) *[उसका मोती अर्पित करना ऐसा लगता था] मानो वह (कमल) द्विज (चंद्रमा) को अंजुलि द्वारा अर्घ्य दान अर्पित कर रहा हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. म. आयस, ना. आइप। २. मो. धाहि, धा. अ. फ. उ. स. धाइ, म. धाय, ना. साइ। ३. धा. अ. बिचारि, फ. विचारु। ४. धा. त नांव]लिय, अ. फ. त (ति—फ.) नाउं लिय,

ना. णि बुल्लीय, म. न वुलिइय, उ. न वल्लइय, स. न बुल्लइय ।

(२) १. धा. जो, मो. जु (=जउ), ना. ज्यु, म. उ. स. ज्यौं, अ. फ. जइ । २. मो. गगह लोल, शेष सभी में 'गग हिलोर' । ३. ना. नृपति, उ. स. प्रथीति, म. प्रथिति, ना. पृथति, अ. फ. प्रतीर । ४. उ. स. तिय ।

(३) १. अ. फ. कमलिन । २. धा. अ. फ. हस्त (हस्ते—फ.), मो. पान । ३. धा. केलि कुलि, म. अ. फ. उ. स. ना. केलिकुल । ४. धा. म. उ. स. अंजुलिय ।

(४) १. धा. मनो, ना. म. मनहुं, अ. फ. मनौ । २. धा. अ. फ. दान दुज अध (< अध्य), म. उ. स. अध (< अध्य) दुज दान । ३. धा. अ. फ. समप्पति । ४. मो. अंजुरिय, धा. अ. फ. म. ना. उ. स. अजुलिय ।

[१५]

नाराच— [1]अपंति[2] अजुलीय दान जान सोम लग्गये[3] । (१)
मनउ*[1] अनंग रंग वस्य[2] रंभ[3] इंद[4] पुज्जये[5] । (२)
जु[1] पांनि बाहु बार थकि[2] थार मुत्ति[3] वित्तये । (३)
पुने पि[2] हथ्थ कंठ[2] तोरि पोति[3] पुंज अप्पये[4] । (४)
निरष्षि नयन टेरि वयन[1] ता त्रिपत्ति[2] चाहियं । (५)
तरप्पि दासि पासि पंक (पक)[1] संकियं न वाहियं[2]।[3] (६)
अनेक (अनिक ?) संग ंग रूप[1] जूप जानि° सुंदरी । (७)
उछंग‡ गंग‡ मभ्भिफ‡ धुकि[1]‡ सर्गपत्ति‡[2] अछूछरी‡ । (८)
हउ*[1-]‡ अछूछरी‡ नरिंदु[2]‡ नाहि[3]‡ दासि‡ गेह[4]‡ राय[5]‡ पंगुरे‡ । (९)
तास‡ पुत्ति[1] जंम छाडि[2] ढिल्लिनाथ[3] आदरे[4] । (१०)
सा जंम[1] सूर चाहुवान मान[2] इंम[3] जानये । (११)
करेन[1] केहरी न पीन[2] इंदु मीन[3] थानये[4] । (१२)
प्रतष्षि[1] हीर[2] जुघ घीर[3] यो सु वीर[4] संचही[5] (१३)
वरंतु[1] प्रान मानिनी[2] चलंति[3] देत[4] गंठही । (१४)
सुनंत सूर अस्व फेरि तेजि[1] ताम हंकियं[2] । (१५)
मनउ*[1] दलिद्द[2] रिध्धि पाय जाय कंठ[3] लग्गियं[4] । (१६)
कनक कोटि अंग[1] धात रास[2] वास+‡ माल चीं[3] । (१७)
रहंत भउंर*[1] भौंर भौंर[2] साह छत्र[3] कांम ची[4] । (१८)
सुधा सरोज मोज मंग[1] अलक (अलक) रंक[2] हल्लये[3] । (१९)
मनउ*[1] मयन फंद* पासि[2] काम केलि घल्लये[3] । (२०)
करिस्य[1] कांम कंकन[2] सु पानिबंध बंधये[3] । (२१)
जु भावरी[1] सषी सलज्ज[2] रुंफ* तुरंयं वज्जये[3]।[4] (२२)

आचारु[1] चारु[2]× देव सब्ब[3] दोइ[4] पष्ष जंपही[5] । (२३)
गंठि[1] दिड्ड[2] इक्कचित्त लोक लोक चंपही[3]।[4] (२४)
अनेक (अनिक्क?) सुष्ष मुष्ष सीस[1] जुध्ध साध लग्गियं[2] । (२५)
सु[1] कंत कंत अंत ता[2] तमोरि मोरि[2] अप्पियं ॥ (२६)

अर्थ—(१) मानो वह (कमल) [चंद्रमा को] अंजुलियो के द्वारा [अर्घ्य-] दान अर्पित कर रहा हो, [इस प्रकार की] शोभा लग रही थी। (२) [अथवा] मानो अनंग-रग (काम-क्रीडा) के वश में होकर रंभा इन्द्र की पूजा कर रही हो। (३) यद्यपि उस बाला के पाणि और बाहु थक गए, और थाल के मोती भी समाप्त हो गए, (४) फिर भी हाथ से कठ-माला तोड़ कर वह उसकी पोत-पुज (काच की गुरियों) को अर्पित करने लगी। (५) नयनों से [उस पोत-पुज को] देखकर बचन द्वारा बुला कर नृपति (पृथ्वीराज) ने उसे देखा। (६) किन्तु वह पक्की (दृढ़) दासी [पृथ्वीराज के] पास मे [होते हुए भी] तड़पकर (व्याकुल होकर) और शंकित होकर बोली नहीं। (७) [तब पृथ्वीराज ने उससे कहा,] "हे सुंदरी बॉके रग-रूप के संग (संयुक्त) तुम [अलंकृत यश-] यूप [जैसी] हो, (८) [अथवा लगती हो कि स्वर्गपति के] उछंग (क्रोड-या बाहुपाश) से [छूटकर] गगा में धुक (ढुक-गिर) पड़ी हुई स्वर्गपति (इन्द्र) की अप्सरा हो।" (९) [उसने उत्तर दिया,] "हे नरेन्द्र, मैं अप्सरा नहीं हूँ, मै तो पगराज के गृह की दासी हूँ, (१०) उसकी पुत्री जन्म (जीवन) [का मोह] छोडकर दिल्लीपति (पृथ्वीराज) का [मन मे] आदर करती है। (११) उसका जन्म (जीवन), हे शूर चहुवान, इस प्रकार जानिए, मानो वह (१२) करेणु (हथिनी), अपीन (दुर्बल) केसरी, इंदु और मीनों का स्थान बन गया है—हथिनी के समान उसकी गति क्षीण केसरी के समान उसकी कटि, इंदु के समान उसका मुख और मीनों के समान उसके नेत्र हो रहे हैं। (१३) जो प्रत्यक्ष हीरक [के समान कांतियुक्त] है, युद्ध में धीर है, और जो वीर है उस [पृथ्वीराज के अनुराग] का वह संचय करती है, (१४) उसको वह मानिनी प्राण वरण करती है, इसलिए उसने [मेरे] चलते समय गाँठ दे दी है [जिससे मैं उसका यह सदेश देना भूल न जाऊं]। (१५) यह सुनते ही उस शूर (पृथ्वीराज) ने घोड़े को फेर (घुमा) कर उस ताजी (घोड़े) को हाँका (१६) और इस प्रकार वह सयोगिता के पास पहुँच कर उससे गले मिला मानो किसी दरिद्र ने ऋद्धि प्राप्त की हो। (१७) [संयोगिता इस प्रकार की हो रही थी मानो] कोटि कनक धातु का उसका अंग हो, अथवा सुवासित मालाओंकी राशि ही हो। (१८) भ्रमर झुंड के झुंड [उस पद्मिनी संयोगिता के आस-पास] काम के श्लाघ्य छत्र की ही भाँति [उड़ रहे] थे। (१९) सुधा और सरोज के मौज से मंडित उसकी माँग अलकावली के झूले में हिल रही थी, (२०) [जो ऐसी लगती थी] मानो मदन [अपने] फंदों का पाश काम-केलि के लिए डाल रहा हो। (२१) उसके करों में जो काम-कंकण [बँधे], थे वे पाणि-बंध (पाणि-ग्रहण) के बंधन हुए। (२२) भॉवरों पर उसकी सलज सखियों ने जो रव (शब्द) किया, वही [मानो] तूर्य बजे। (२३) समस्त [संस्कारोचित] चारु आचार का देव-गण दोनो पक्षों से उच्चारण कर रहे थे। (२४) उनकी दृढ गॉठ उनकी एकचित्तता थी और लौकिक आचार उनका लोक-मर्यादा का अतिक्रमण था। (२५) [किन्तु इन] बॉके मुख्य मुखों के सिर पर युद्ध की साध [पृथ्वीराज के मन में] लगी हुई थी, (२६) इसलिए उस कान्त स्वकान्त को [सयोगिता ने] मोड़ (बीड़े बना) कर [बिदाई के] ताबूल अर्पित किए।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

÷ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।
‡ चिह्नित अक्षर और शब्द में नहीं है।
+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।
× चिह्नित शब्द उ. में नहीं है।

(१) १. फ. ना. म. उ. स. में इसके पूर्व है (स. पाठ) :—
नराज माल छदए। कइत्त (कइंत—म.) कब्बि चदए।
२. मो. धा. अ. अपति। ३ म. लजए।

(२) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउं), धा. उ स. मनों, म. मनौं, अ. फ. मनौ। २. धा. अ. फ. रग अग, म. रत्ति सेय, उ. रत्त सेयौं, स. रत्त सेय, ना. रत्ति सेउ। ३. मो. मग। ४. धा. अ. इदु, ना. इद्र। ५. मो. पुजये।

(३) १. मो. जू, म. उ. स. सु, ना. ज। २. धा. पानि बारि बाहु थक्कि, अ. पानि हार चाहुवान, फ. पानि हारि चाहुवानु, म. पानि वाह वीर थकि, ना. जपा फुनि बाहु बार थाकि, स. पानि बार थक्कि, उ. पानि बार वाह थक्कि। ३. मो. थारि, म उ. स. थाल। ४. मो. मोति, धा. अ. फ. म. उ. मुत्ति, स. मुत्ति।

(४) १. धा. पुनप्पि, अ. फ. मुनौपि, म. पुनिपि, उ. स. पुनेपि, ना. पुनेहि। २. म. कठि। ३. मो. पाति। ४. धा. आपए।

(५) १. धा. निरक्खि वेन देखि नैन, ना. निरषि नेन फोरि वयन, म. उ. स. ह टेरि नेन (नैन—म.) फेरि रेन (वेन—म., वन—उ.)। २. स. ता निपत्ति, ना. नृपति।

(६) १. ना. उ. स. कपि, म. केपि। २. मो. संकियं न चाहिय, धा. संकि जानि साहियं, अ. फ. सक एन साहियं, म. से कियं न वाहिय, ना. सकियं न चाहीय। २. म. उ. स. में यहाँ और है (म. पाठ):
नराज गात श्रम दिषयौ। कै स्वर्ग इद गग में तरग निति पिषयौ।

(७) १. धा. सगि रगि रूप, ना. म. उ. स. सग रूप रग, अ. रंग अग रूप, फ. एक रंग रूप।

(८) १. धा. अ. फ. जान गंग मध्य (मज्झि—धा.), ना. म. उ. स. गग मध्धि धुक्कि (धुंकि—ना.)। २. धा. सुग पत्ति, अ. सुगि पत्ति, ना. गर्ग पत्ति, म. स्वरग पत्ति, उ. स. स्वर्ग पत्त।

(९) १. धा. अ. फ. ति, ना. हु (=हउं), म. उ. स. हौं (हों—स.) मो. नरेंदु, धा. म. नरिंद, ना. णरयंद। ३. धा. नाह। ४. ना. म. ग्रेह। ५ मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है।

(१०) १. अ. सुजीपु पुल्लेति, म. उ. स. जुतास पुत्ति, ना. तासु पुत्ति। २. धा. छोडि, ना. म. छंडि ४.। ना. दिल्लीनाथ। ४. धा. अ. फ. आचरे, म. उ. स. अद्दरे (अदरे—म.)।

(११) १. धा. अ. फ. सवत (सावत—अ.), मो. सायम्य (=जंम्म), ना. स जम्म, म. उ. स. संपन्न। २. म. उ. स. मन्न। ३. मो इंन्, शेष सभी में 'एन'।

(१२) १. धा. करन्नु, अ. फ. करन्न, ना. करेण, म. उ. स. करीन। २. मो. कहरीन, म. उ. स. केहरी न दीप, ना. केहरी पनीन। ३. धा. मन्न, म. नाथ, उ. स. एन। ४. म. नानए।

(१३) १. धा. म. उ. स. प्रतक्ख। २. म. छीर। ३. धा. थार। ४. धा. जे सवार, ना. जौवीर, म. जों सवीर, स. जौ सुवीर। ५. मो. संचाह, अ. फ. संवही, म सठही।

(१४) १. धा. चरन्न, धा. अ. फ. म. वरंत। २. धा. म. माननी। ३. फा. चलंतु, स. चलौ सु, ना. चल्यौ सु। ४. धा. देंतु, मो. देह, म. उ. स. देन (दैन—म.)।

(१५) १. अ. फ. म. उ. स. तेज। २. धा. इंकया, अ. फ हकियौ, म. उ. स. इंकयं।

(१६) १. मो. मनु (=मनउ), धा. मनो, अ. फ. मनौ, उ. स. मनों, म. मनौं। २. धा म. दरिद्द, उ. स. दरिद्र। ३. धा. रिद्धि पाइ जाइ कठ, म. दत्त पाथ जाय कत। ४ धा. लग्गयो, अ. फ. लग्गियौ, म. उ स. लग्गयं।

(१७) १. धा. आस, अ फ. अष्ट। २. धा. रासि। ३. धा. अ. फ. मालसी, ना. कामची।

(१८) १. मो. रहत भुर (=भउर), ना. रह। भोर, धा रुनति मोर, अ. फ. रुनति भौर। २. मो. जोर जोर, धा. सोनि सोनि, अ. फ झौनि झौनि, ना. झौर झौर, म. झौर स्याह, उ. स झौर स्याम। ३. मो. रात्र, धा. अ. फ. ना. स्याह छत्र, म. उ. स. छत्र तत्र। ४ धा. अ फ. कामसी।

(१९) १. म. मौजय, ना. मौज अंग। २. धा. अ. फ. लिक्क रंग, म. अलकि अलि, ना. चल अलिक्क। ३. अ. फ. इल्लिए, म. इलयं, ना. उ. स. इल्लियं।

(२०) १. मो. मनु, ना. मनुं (=मनउ), धा. मनो, म. मनौं, उ. स. मनों, अ. फ. मनौ। २. धा. मयंक फट्ट पासि, अ. फ. मयक फंद पासि, ना. म. उ स. मयत्र रत्तिरत्र। ३ धा. काम काल वल्लए, मो. काम केलि इल्लये, ना. उ. स. काम पास घल्लियं (घलय-म.), म. काम पास घलय, अ. फ. काम काल बज्जए।

(२१) १. धा. करिस्स, अ. फ. ना. म. उ. स. करस्सि। २. धा. कोस ककण, म. काम ककन्न, फ. केम कंकन। ३. धा. अ. फ. जु पानि (तियान—अ. फ.) पत्त बंधए, मो. सु पानि कध बधये, उ. स. ति पानि फद साजए, (माजए—स.), ना. जुपानि फंद बंधए, म. जु पानि फद साजए।

(२२) १. अ. भांवरी, फ. भाउती, ना. सु भावरी, म. नाचरी। २. अ फ. धा. उ. स. सुलज्ज, म. सुलाज। ३. धा. जुज्झ रुज्झ बज्जए, मो. रुझ तुरयज्जये, अ. फ जूझ रज्ज बज्जए, ना झूझ सुविराजए, म. उ स. झुझ (झुंड—उ. स.) सो (सौं—म.) विराजए। ४. फ म उ स में यहाँ और है (स. पाठ): अनेक संग ढोररंब रत्त मत्त सस्सियं। उसंग ही सरोज लोभ होत कत तस्सियं।

(२३) १. धा. ना. अचारु, मो आचरु, म. ना. अ. फ अचार। २ धा. दारु, म. अव, यह शब्द उ. में नहीं है। ३. धा. अ. फ. देव सह, ना. देश सब्ब। ४. धा अ. फ. दूब, ना. म. दोउ। ५. ना म उ. स. जपिय।

(२४) धा. अ फ म. ना. सु। २. मो. दिठ, धा दिढ्ढ, ना. म. दिढ (दिठ्ठ—ना.), अ. फ. डिठ्ठ। ३. मो. झषहि (=झंषही), ना. म. उ. स. चंपिय, धा. अ. फ चपही। ४ ना म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

> सु इद्रनी जु इद्र जानि गंध्रवी विवाहयं।
> सुसक्कि मंद हासयं समुष्ष दिष्षि नाहयं।
> सु अंगुली उचंकि एक देव तानि सुंदरी।
> मिलंत होय कथ्थ मोहि स्वर्ग वास मंदरी।

उ. में पूर्ववर्ती चरण के 'एक' से लेकर इन अतिरिक्त चरणों में से तृतीय के 'एक' के पूर्व की सारी शब्दावली दुहराई हुई है।

(२५) १. अ. फ. सारु (सार—अ.), ना. म. उ. स. सास। २. धा. जघ सधि लग्गयं, म. उ. स. जुद्ध साध लग्गियं (लपिय—म.), अ. फ. जुद्ध संधि लग्गिय, ना. जुद्ध लग्गियं।

(२६) १. धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है। २. धा. कंत कत्ति अंत अंति, अ. कतिं कतिं अंततं, फ. कंत कंत अंति चंतित, ना कत कत्ति अच्छता, म. उ. स. कत कत्ति (कति—म.) अथ्थिता। ३. धा. म. मोर। ४. धा. अप्पयं, अ. फ. अप्फियं।

टिप्पणी—(१) अप < अप्प < अपूं। (२) इंद < इंद्र। (३) बार < बाला। (४) पोति < पोत्ती [दे०] काँच, शीशा। (५) चाह < वाच्छ् (?) (६) वाहि < ग्रा+ह=बोलना, कहना। (७) अनेक < आणिक्क =बाँका। (८) उछंग < उत्सङ्ग=क्रोड़, बाहुपाश। (१०) जम < जन्म। (१२) करेन < करेणु=हथिनी। (१४) गंठ < ग्रंथि। (१५) तेजि < ताजी। (१७) रास < राशि ?)। (१७,१८) ची तु, एव। (१८) झौंर=झुंड। साह < श्लाघ्यं। (१९) रंक < रङ्क=झूला। (२०) मयत्र < मदन। पासि < पाश। घल्ल डालना। (२२) रुंझ < रुंज < रु=आवाज करना। तुरंय < तूर्य। (२३) जंप < जल्प्=बोलना, कहना (२४) दीढ < दृढ़ (२५) अनेक < आणिक्क=बाँका (२६) तमोरि < ताम्बूल।

[१६]

दोहरा— वरि[१] चल्लउ[*२] ढिल्लियनृपति[३] सुत[४] जयचंद कुमारि[५] । (१)*
गठि छोड़ि[१] दक्खिन[२] फिरिग[३] प्रान करिग मनुहारि[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) दिल्ली-नृप (पृथ्वीराज) तब उस कुमारी जयचंद-सुता (संयोगिता) को वरण कर चला। (२) गाँठ खोल कर वह प्रदक्षिणा में वापस हुआ, तो उसके प्राण [संयोगिता को साथ ले चलने के लिए] मनुहार (अनुरोध) करने लगे।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १ फ ल, ना. वर। २. मो. चलु (=चलउ), धा. अ. फ. चल्यो, म. उ. स. चल्यौ। ३. फ. वर इदुपति। ४. मा. सुन, १. ना. म. सुत। ५. धा. कवारि, म. कुआरि, अ. फ. कुवारि। (२) १. धा. ना. छोरि, म. उ. स. छोर। २. धा. दिच्छन, मो. दक्षिन (=दक्खिन), अ. फ. दष्षिन, ना. म. उ. स. दच्छिन। ३. मो ना फिरग, अ. किरिग, फ. करिगु, ४. मो. मनहारि।

टिप्पणी—(२) गंठि < ग्रन्थि। दक्खिन < प्रदक्षिणा।

[१७]

गाथा— पायातु[१] पंग पुत्तीय[२] जयति जयति[३] योगिनि[४] पुरेसं[५] । (१)*
सर्व[१] विधि निषेधस्य[२] यः तंबोलस्य[३] समादायं[४] ॥[५] (२)

अर्थ—(१) [संयोगिता कहने लगी,] "पंगपुत्री (संयोगिता) की रक्षा करो, हे योगिनी पुरेश—दिल्लीपति—तुम्हारी जय हो, जय हो। (२) सभी प्रकार से [तुम्हारे जाने के] निषेध का जो ताम्बूल है, उसे ग्रहण करो।"

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द धा ना. में नहीं है।

(१) १. धा. अ. फ पयंपि। २. धा पंग पुत्रीय, ना. पंगु पुत्ती। ३. धा. ना. जयति, मो. जय जयति। धा. जोगिन, ना. जुग्गनि। ४. धा. पुरह।

(२) १. धा. सरव ना. श्रब्बे। २ धा. निसेधाइ, अ. फ. निषेधये, ना. निषेधाय। ३. मो. यः तंबोलस्य, धा. तंबूलस्य, अ. फ. ना. तांबूलस्य। ४. मो. ना. समादर्य, अ. समदाय, फ. समदाइ। ५. म. उ. स. में पाठ है :

श्लोक—पयाने टंग पुत्री च जैतिक जोगिनी पुर।
विधि सर्व (सरबा–म.) निषेधाय तांबूलं ददतं नृपं ॥

[१८]

दोहरा— रेन[१] प्पर[२] सिरि[३] उप्परिहिं[४] हय गय[५] गयु[६] उछार[७] । (१)*
मनु[१] ढिल्ली ठगु ठगि गयु[२] रहि गयु सब[३] मुच्छार[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) सिर पर [सैन्य-संचालन से उठी हुई] रेणु (धूल) पड़ रही थी, [इसलिए]

घोड़े हाथियों का उछलना चला गया था—समाप्त हो गया था। (२) ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो दिल्ली का ठग [ठगमूरी खिला कर] ठग गया था, इस लिए सब मूर्छित रह गए थे—हो रहे थे।

पाठान्तर— *चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. रेनु, अ. रेणु, फ. रेण, ना. रेण, उ. स. रैन। २. धा. परइ, अ. फ. परे, ना. परि, म. उ. स. परै। ३. अ. फ. म. उ. स. सिर। ४. धा. उप्परहि, अ. फ. उप्परइ, म. उ. स. उप्परै। ५. धा. गन। ६. मो. गजु (< गयु), धा. ना. गज, अ. फ. गुज, स. गतर, म. हर। ७. धा. अच्छार, उ. उछारि म. उछाह।

(२) मो. मनु, धा. अ. म. उ. स. मनहु, फ. मनहौ, ना. मानहु। २. धा. ढग ढग मूल ले, अ. फ. ठग्ग ठग मूरि (सूरि–फ.) दे, म. उ. स. ना. ठग्ग (ठग–ना.) ठग भूरि ले, (लै–म.)। ३. धा. अ. फ. रहे ति सब, ना. रहि गए सब, म. उ. स. रहिग सबै (रुबे–म.)। ४. म. मूछार, ना. मुरछार।

टिप्पणी—(१) रेन < रेणु। (२) मुच्छार < मूर्च्छा (?)।

[१९]

दोहरा— मनहू[१] बंध[२] ति अज्ज भर[३] हेति न जान ति थट्ट[४]। (१)
वचन सामि[१] भंगु नन करहु[२] सह[३] जोअइ*[४] नृप वट्ट[५]॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के] भट मानो आज (इस समय) भी बँधे हुए थे, वह [भट-] समूह कारण नहीं जानता था [कि पृथ्वीराज को क्यों विलंब हो रहा था]। (२) [वे परस्पर कह रहे थे,] "स्वामी के वचन को भंग किसी दशा में न करो, हम सभी राजा (पृथ्वीराज) की बाट देखें।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधितपाठ का है।

(१) १. मो. मनुहू, धा. ना. अ. मनहु, फ. मनहौ, म. मनौं। २. अ. फ. बध, ना. बन्ध। ३. धा. अज हुति भरे, अ. अज हुंति भर, फ. अज हौ तिभर, उ. स. अनभूति धर, म. अनहित वरि, ना. अजहे तिभर। ४. मो. हेतिन जान निघट, धा. हैतिनि जानत थट्ट, अ. फ. है तिन जानत बट्ट, ना. म. उ. स. हैतिन जानत थट्ट (ठाट–ना.)।

(२) १. धा. वचन साइ, मो. वचन स्वामि, ना. वचनर स्वामि, फ. वचन स्वामु। २. धा. ना. भंगु न करहि, अ. फ. भंग न करै, म. उ. स. भंग न करहि। ३. धा. सहु, ना. सुव अ. सब, फ. सच। ४. धा. जोवइ, मो. जोइ (=जोअइ), ना. अ. जोवहि, फ. जोउरि, म. उ. स. देषहि। ५. ना. बाट।

टिप्पणी—(१) भर < भट। (२) वट्ट < वर्त्मन्=मार्ग।

[२०]

दोहरा— धीर ततु धरि ढाल सिर[१] बाहु दंत उभ रोभ[२]। (१)
नृपति[१] नयन त्रिय अंकुरु[२] मनहु मदग्गज[४] सोभ[५]॥ (२)

अर्थ—(१) [उधर पृथ्वीराज का यह हाल था कि] धीर तनु पर जो ढाल वह धारण किए था, वही सिर था, उसके बाहु उसके उठे और हुए दाँत थे, (२) नृपति (पृथ्वीराज) के

रुके (निकले) नेत्रों में स्त्री का अंकुर था—स्त्री गड़ी हुई थी—ही, [इस प्रकार राजा ऐसा हो रहा था] मानो मदोन्मत्त गज शोभित हो रहा हो।

पाठान्तर—(१) १. धा. धीरत्तनु ढर ढार सिर, फ. धीरत्तनु सिर ढाल धरि, म. उ स. धीरत धरि ढिल्लिस, बर ना. धीरत्तन धरि ढिल्ली सुरह। २. धा बाहु देतिय उभ रोभ, मो. म. उ. स. बहुदंती उभ रोभ (रोस—म.), अ फ. बाहु दत उभ रोभ, ना दती उभा रोभ।

(२) १. धा. त्रिप्पु। २. मो. नयन त्रिय अकुर, धा नयन् त्रिअ अकुरिग, अ. फ. यत्र त्रिय अंकुरिग, ना. म. उ. स. नयन सन अकुरे। ४. फ. मनौह मदग्गज, म. मानहु मदगज, स. मनहु मत्त गज। ५. म. सोस।

टिप्पणी—(१) उभ > उब्भ < ऊर्ध्व = उठा हुआ। रोभ < रुद्ध।

[२१]

दोहरा— *हरषवंत[१] नृप च्चित्त[२] हुअ[३] मेन[४] मझिहि[५] अनुराहु[६]। (१)*
मिलित[१] हत्थ कंकन[२] लषिउ[३] कन्ह कहइ इह काहु[४]॥ (२)*

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) का चित्त हर्षित था क्योंकि वह मदन (काम) में अनुराद्ध (संप्राप्त) था। (२) जब उसके हाथ में मिला (बँधा) हुआ कंकण देखा तो कन्ह ने कहा, "यह क्या है?"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. म. हरषचंद। २. म. ना. में 'चित्त' शेष सभी में 'ध्रित्त' या ध्रित्य। ३. धा. हुआ। ४. मो. फ. में 'मेन' शेष, सभी में 'मन'। ५. धा. मझहि, उ. स. अ. फ. ना. मझह म. मझह। ६. मो. अनुराहु, धा. जुधिराहु, म. उ. स. अ. फ. ना. जुधचाव (चाउ–फ. ना.)।

(२) मो. ना मिलित, फ. मिलति, शेष सभी में 'मिलत'। २. मो. म. हथ कंकत (< ककन), धा. हस्य ककम। ३. मो. लिष्यु (=लिष्यउ) म. लिष्यौ, धा. लखिउ, अ. फ. लष्यौ, ना. उ. स. लष्यौ। ४. मो. कन्ह कहि (=कहइ) इह काहु, धा. कहहि कन्ह यहु काहु, अ. फ. कहइ (कहै—फ.) कक नह (इह–फ.) काव (चाउ–फ.), ना. म. उ. स. कह्यौ (कर्‍यौ–म.) कन्ह इह (यह–ना.) काव।

टिप्पणी—(१) १. मेन < मयण < मदन। अनुराह < अनुराद्ध।

[२२]

दोहरा— *गगन रेण[१] रवि घुंद लिअ[२] धर सिर[३] छंडि फुणिंदु[४]। (१)*
इहु[१] अपुव्व[२] धीरत्त तुहि[३] कंकन हत्थ नरिंदु॥ (२)

अर्थ—(१) [कन्ह ने कहा,] "गगन मे [पहुँची हुई] रेणु ने रवि पर आक्रमण कर दिया है, और फणीन्द्र (शेष) धरा को सिर से छोड़ चुके हैं। (२) ऐसी दशा में यह तुम्हारी ही अपूर्व धीरता है कि, हे राजा, तुम्हारे हाथ मे कंकण [बँध रहा] है।"

पाठान्तर—(१) १. धा. रेनु, अ. फ. ना. रेणु, म. उ. स. रेन। २. धा. मुंद लिय, अ. फ. म. उ.

स. मुदि लिय, ना छूद लिय। ३. म. उ. स. धर भर, ना. थर भर। ४. मो. फुणंद, धा. अ. फ. फनदि म. ना. उ. स. फुनिंद।

(२) १. धा. इहु, मो. इहि, अ. फ. यह, म. उ. स. इह, ना ईय। २ मा. अवूब, म. पुब। ३. मो. धीरय तुही, धा. अ. फ. म. धीरत्त तुहि, ना. धीरज्ज तुहि।

टिप्पणी—(१) रेण < रेणु। छुद < छुद=आक्रमण करना। फुणिंद < फणीन्द्र। (२) अवुव्व < अपूर्व।

[२३]

मुडिल—
वरिअ[१] बाल सुत पंगुर[२] राइ[३]। (१)
उहि व्रत राष्षि[१] मिलउ* तुम्ह आइ[२]। (२)
तजि[१] मुध्धहि[२] अब जुध्ध सहाइ[३]।× (३)
अवास आनि दइ* लियउं* बताइ[१]।× (४)
तिहि तजि चित्त कियउ*[१] तुम्ह पास[२]।+ (५)
छंडिय कन्ह रुदंति अवास[१]।+ (६)
जु सउ भृत मझ्झि[१] एक भृत होइ[२]। (७)
सो नृप युवति न[१] मूंकइ[२] कोइ[३]। (८)
हम सउ रजपूत[१] सा सुंदरि एग[२]। (९)
मुकि जाइ ग्रहि[१] बंधइ तेग[२]।[३] (१०)
जउ अरि ठट्ट[१] कोडि[२] दल साज[३]।+ (११)
तउ* ढिल्लिअ तषत[२] देहुं[३] प्रथिराज[४]।+ (१२)
इह नृपति न बुझ्झियै तोय[१]। (१३)
परणि मूंकि सुंदरि अरि* छेइ[१]॥ (१४)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] मैंने पंगराज (जयचंद) की सुता बाला [संयोगिता] का वरण किया, (२) और उसका [प्रणय-] व्रत रख कर तुम से आ मिला। (३) उस मुग्धा को छोड़ कर मुझे [अब] युद्ध ही सुहा रहा है (४) [इसलिए] आवास (भवन) में आ कर मैंने तुम्हें बता दे लिया— सूचना दे दी। (५) उसको छोड़ कर चित्त मैंने तुम सब के पास किया है (६) और उसे, हे कन्ह, मैंने [उसके] आवास (भवन) में रोता छोड़ दिया है।" (७) [कन्ह ने कहा,] "यदि हम सौ भृत्यों में से एक भी भृत्य होता (८) तो वह भी हे राजा, [तुम्हारे द्वारा परिणीता] युवती को न छोड़ता। (९) [तब जबकि] हम सौ राजपूत हैं, और एक ही सुन्दरी है, (१०) तो क्या उसे छोड़ कर और घर जाकर हम तेग (तलवार) बाँधेंगे? (११) यदि शत्रु-समूह करोड़ का दल भी साजे, (१२) मैं दिल्ली का सिंहासन पृथ्वीराज को दूँगा। (१३) हे राजा तुमसे ऐसा नहीं समझा था—ऐसी आशा नहीं थी। (१४) तुम परिणीता सुन्दरी को छोड़ कर शत्रु को छिन्न (नष्ट) करना चाहते हो!"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित चरण ना. में नहीं हैं।

‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

§ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।

+ चिह्नित चरण म. उ. स. में दो बार आए हैं।

(१) अ. फ. चरिय। २. ना. पगुह, म. उ. स. पगह। ३. मो. राई।

(२) १. मो. उहि वृत रष्षि, धा. उहि चितु रषिख, फ. उछ वृत रष्षि, म. उ. स. वह व्रत भग। २. मो. मिलु (=मिलउ) तुम्ह आई, धा. अ. फ. ना. मिल्यो तुम (तुम्ह–ना.) आइ, म. मोह व्रत जाइ, उ स. मोहि वृत जाइ।

(३) १. म. उ. स तिहिं, (तिहिं–म.)। २. धा. मुंधइ, मो. मुधही, अ. फ. मुंधहि, उ. मुधहि। ३. मो. धा. सहाइ, म. सहाय, अ. फ. सुहाइ, स. सुहाई।

(४) १. मो. अवास आनि दि (=दइ ?) लीयु (=लियउ) वताइ, धा. सु अब दई आवास बताइ, अ. फ. छंडिय कन्ह अवासह (अवासहि–फ.) आइ, म. उ. स. [सो–उ. म.] अथ्थि अवासह देउं (देउ–म.) वताई (वताय–म.)।

(५) १. मो. कीयु (=कियउ), धा. किया, म. उ. स. कियौ ना. कियो। २. उ. स. तुम पासं, तुम पासि।

(६) १. मो. रुदतं ती अवास, धा. रुवत अवास, म. उ. स. रुदत अवास, म. रुदंत अवासि, ना. रुदंत अवास।

(७) १. मो. जु सो भृत माहि, धा ज सउ भ्रित मज्झि, अ. फ. ना. सौ भृत (नति–फ.) मझि, म. उ. स. सौ (सो–म.) सुभट्ट महि। २. धा इक भ्रितु होइ, अ. फ. इक भृत (भ्रित–फ.) होइ, म. उ. स. एक भट होइ (होम–म)।

(८) १. धा. त्रिप यू हीहिन, अ. फ. तऊ (तौ–फ.) न सुंदरि, ना तौऊ न सुंदरि, म. तौ त्रिप नहि न, उ. स. तौ नृप धनहि न। २. धा. म. उ. स. अ. फ. मुक्कै। ३. धा. कोई, म. कोय।

(९) १. धा. हम सउ भ्रित, अ. सो रजपुत्ति, फ. सौ रजपूत, म हम सौं रज, ना. सौर पुत्त, उ. स. हम सौ रजपूत। २. मो. सा सुद एग, धा. सुदरी एग, अ. फ. ना. सुंदरिय (सुंदरी–फ. ना.) एक, म. उ. स. रु सुंदरि एक।

(१०) १. मो. मुनि जांइ ग्रहि, धा. ना. मुक्कि जाइ ग्रिह, अ. फ. मुक्कि जाइ ['ग्रिह' नहीं है], म. उ. स. मुक्कि जांहि ग्रह। २. १. मो. वधि (=वधइ) तेग, अ. फ. म. उ. स. बधहि तेक, ना. बंधै तेक। ३. ना. में यहाँ और है: गज्जित कह कही यह सद्द। राजन बात कीन्ह यह हद्द।

(११) १. मो. जु (=जउ) अरि ठर (< ठट ?), धा. जउ अरि थट्ट, अ. फ. ना. जौ अरि थट्ट (घट्ट–फ. ना.), म. उ स. जौ अरि थाट। २. धा अ. फ. म. उ. स. कोरि, ना. कौअरि। ३ मो. साजा, अ. फ. साजहि, म. साज।

(१२) १. यह शब्द धा. अ फ. में नहीं है, म. उ. स. तौ। २. अ. फ तपत। ३. धा. देहु, अ. फ देउं, म. देहि, ना चं (=चउं), उ. स देहिं। ४ मो. प्रथीराजा, धा प्रिथिराज, अ. फ पृथिराजहि, म. प्रिथीराज।

(१३) १. मो. इह नृपति न बूझैं (< बुझइ) तोय, धा. अ फ. ना इहु (यह-अ फ. ना) त्रिपति बुज्झियै (बुझियै–अ फ) न तोहि, उ स इतनौ नृपति पुच्छये तोहि, म इतनौ नृपति बुझियैं तोहि।

(१४) १. मो. परणि मूकि सुंदरि यरि (=अरि) छेह, धा सुंदरि तजि जीवन का मोहि, अ. फ. सुंदरि तजे जीवन क्यों मोहि, ना सुंदरि तजै जीयन क्यु मोहि, म उ स परनि (एरन—म.) मुक्कि सुंदरि इह होइ (होति—म.)।

टिप्पणी— (३) मुंध < मुग्धा। (७) भृत < भृत्य। (८) मूक < मुच्। (९) एग < एक। (१४) छेअ < छेदय्।

[२४]

दोहरा— चलि चलि सूर ति[1] सथ्थि[2] हुअ रण निसंक[3] मनि[4] भउन[*5] । (१)
सह अचार मुख मंगलहि[1] मनहु फिरि करइ[*2] गउन[*3] ॥ (२)

अर्थ—(१) शूरगण चल चलकर पृथ्वीराज के साथ हो लिए, वे रण के लिए निःशङ्क थे, और उनके मन में वह भवन था [जिसमे सयोगिता थी] । (२) [ऐसा लगता था] मानो आचारों के साथ मुख्य मागलिक कार्य ही लौट कर गमन कर रहा हो—मानों उन्ही को वहाँ साथ ले जाने के लिए वह यहाँ आया रहा हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. चलचलि सूर ति, धा. चले सूर सहु, अ. फ. चलि चलि सूर सु, म. चलि चलि सूरि त, उ. चलि चलि सूति, ना. चलि मिल सुरस । २. अ. फ. म. उ. स सथ्थ । ३. उ. नरसिंक । ४. मो. में 'मनि' है, शेष मे 'मन' । ५. मो. भुन (=भउन), धा. अ. फ. भौन, ना. भौम, उ. स. भोंन, म. भौंन ।

(२) १. धा. भ्रिग लहि, अ. फ. मगही, म. उ. स. मगलह, ना. मंडलहि । २. मो. फिरि करि (=करइ), धा करे फिरि, अ. फ. कियौ फिरि (फिरु–फ.), ना. म. उ. स करहि (करहिं–म) फिरि । ३. मो. गुन (=गउन), धा. अ. ना. गौन, फ. गौनु, उ. स. गोंन, म गौंन ।

टिप्पणी—(१) सह=साथ ।

[२५]

गाथा मुडिल्ल— पानि परसि[1] अरु दीठ विलग्गिय[2] । (१)
सा[1] सुंदरि[2] कामागनि[3] जग्गिय[4] ॥ (२)
षिनु तनु तलप[1] अलप मन किन्नउ[2] । (३)
जउ[*1*2] वरु[2] बारि[3] गए[4] तनु[5] मीनउ[6] ॥ (४)

अर्थ—(१) [संयोगिता ने पृथ्वीराज के] पाणि का स्पर्श किया था, और [उससे उसकी] दृष्टि लग गई थी, (२) [इसलिए] उस सुन्दरी की कामाग्नि जाग उठी थी । (३) एक क्षण [के लिए] वह शरीर से तल्प (पर्यङ्क) पर चली गई और उसने मन को छोटा कर लिया, (४) [उस के शरीर की दशा कैसी हो रही थी] जैसी श्रेष्ठ जल के शेष न रहने पर मछली के शरीर की होती है ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) मो. प्ररस्य (=परसि), धा. अ. फ. उ. स. परस, म. परसि । २. धा. द्रिस्टि, अ. दिट्ठि, फ दिष्ट, ना द्रष्टि, म उ. स. दिठ्ठ । २. मो. म. विलगीय (=विलग्गिय), अ. फ. विलग्गिय, धा. अलग्गिय ।

(२) १. म सुअ । २. फ सुदरु । ३. मो. कामार्गात, अ. फ. कामगिनि, उ. कामाजिन, स. कामागिन । ४. मो. जगीय ।

(३) १. धा षन तलप्प, मो षिनु तनु तलप, अ फ. षन तलाप, ना. उ. स. षिन तलपह, म. विनत षन । २. मो. अलय मन किनु (किनउ), धा. अलप्प मनु कीने, अ. फ लाम मनु कीनउ (कीनौं–फ.), म. तपह मन कीनौ, ना. उ. स. अलपह मन कीनों ।

(४) १. मो. युं (< जु=), धा. जै, अ. फ. ज्यों, ना. ज्यु (=ज्यउं), उ. स. ज्यों, म. जौ। २. धा. वहि। ३. फ. वारु। ४. धा उ. स गये, म. अ. गय, ना. गयं, फ. गयो। ५. अ. फ. उ. स. तन, म. तिन। ६. धा. माने, मो. मानु (=मानउ), म. ना. फ. मीनौ (मीनौं–ना.), अ. मानउ।

टिप्पणी—(३) तलप < तल्प=पर्यङ्क।

[२६]

अडिल्ल—　फिरि फिरि[१] बाल[२] गवष्षिन[३] अष्षी[४] । (१)
ता सिष देहि[१] वयन[२] वर सष्षी[३] ॥ (२)
विन[१] उत्तर तु मौन[२] मुष[३] • रष्षी[४] ।+(३)
जिम चातुकि पावस रति नष्षी[१] ॥+(४)

अर्थ—(१) बाला (संयोगिता) की आँख पुनः-पुनः [जाते हुए पृथ्वीराज को देखने के लिए] गवाक्षों में [जा लगतीं], (२) ता उसको उसकी सखियाँ श्रेष्ठ वचनों में सीख देतीं। (३) [किन्तु संयोगिता] उन्हें उत्तर दिए बिना मुख को मौन रखती, (४) जिस प्रकार चातकी पावस ऋतु को बिताती है।

पाठान्तर—+ चिह्नित चरण फ. में नहीं हैं।

(१) १. मो. फिर फिर। २. फ. बालि। ३. धा. गवक्खइ, मो. गवाषिन, अ. गवष्षिनि, फ. गउष्षिन, उ. स. गवष्षनि, म. गरवषिन, ना. गवष्षन। ४. मो. अंषी (=अष्षी), धा. अष्षी, शेष में 'अष्षिय'।

(२) १. फ. सुषदेह, अ. सषि देहि, म. ना. सिष दैन, ना. उ. स. सिख देन। २. ना. म. वैन, फ. बयर। ३. मो. संषी (=सष्षी), ना. म. सिष्षीय।

(३) १. धा. बिनु। २. धा. अ. मोहन, ना. उ. स. सु मौन, म. सौ मौंन। ३. मो. मष, ना. म. उ. स. मन। ५. ना. म. रषीय।

(४) १. धा. जिम चातग पावम ऋतु नखी, मो. जीम (=जिम) चालुकि (< चातुकि) पावस रति नंषीय (=नष्षीय), अ. ना. जिमि चात्रिक (चात्रिग जिम–ना.) पावस रितु नष्षिय, म. उ. स. मन वच क्रम प्रीतम रस कष्षिय (चषीय–म.)।

टिप्पणी—(१) अष्षी < अक्षि=आँख। (२) सिष < शिक्षा। (४) रति < ऋतु। नष्ष < नश= काटना, बिताना।

[२७]

मुडिल्ल—　अंगना अंग सउ[*१] चंदनु लावइ[*२] ।+(१)
अरु अंगन लाजन[१] समुझावइ[*२] ॥+(२)
दे[१] अंचल चंचल द्रिग मुद्दइ[*२] । (३)
कुल सभाउ[१] तुरी जिम कुद्दइ[*२] ॥ (४)

अर्थ—(१) वह अंगना (संयोगिता) अपने अंगों से चन्दन लगाती, (२) और अपने अंगों को लज्जावश समझाती [कि उन्हें अपनी आतुरता प्रकट न करनी चाहिए], (३) वह अञ्चल

देकर अपने चंचल नेत्रों को मूँदती, (४) [किन्तु वे उसी प्रकार न मानते] जिस प्रकार अपने कुल-स्वभाव के कारण [बाँधने पर भी] घोड़ा कूदा-उछला करता है।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) + चिह्नित चरण फ. में नहीं है।

१. मो. अगना अग सु (=सउ), धा. अगना अंगह, अ. अगन अंजन, ना अगनि अंग सु, म. उ. स अगन अगसु। २. मो. चदन लावि (=लावइ), धा ना. म. उ. स. चंदनु (चदन-ना. म. उ. स.) लावहि, अ. चंदन चाचहि।

(२) १. धा. असु लाजनु राजनु, अ. अरु लाजन राजन, म. ना. उ स, अरु राजन लाजन। २. मो. समुझावि (= समुझावइ), धा. अ. फ. म. उ. स. ना समुझावहि (समझानहि-म)।

(३) अ. फ. म. ना. उ. स. दे। २. मो. मुदि (=मुदइ), ना. म. अ. मुदहि, फ. सुदहि, शेष में 'मूंदहि' (सुंदहि-अ. फ.)।

(४) १. धा. अ. फ. ना. कुल सुहाइ (सुभाइ-अ. ना., सभाइ-फ.) तुरिया जिम (जिय-धा., जिमि-अ. फ.) षुदहि, मो. कुल सभाउ तुरी जिम कुदि (=कुद्दइ), म. उ स बिर (चिर-म) हायन दाइन रवि उद्दहि।

टिप्पणी—(३) मुद्दइ < मुद्रय्=बंद करना, मूँदना।

[२८]

मुडिल्ल—

बहुत जतन संजोगी समवै१। (१)*
सोम अमृत कमल तुम्ह नु छवै२॥ (२)
इह कहि बाल गवक्खिन पत्तिय१। (३)*
पति देषत१ मन महि२ नहि रत्तिय३॥ (४)

अर्थ—(१) संयोगिता ने [विकलता-निवारण के लिए] बहुतेरे यत्न किए [किन्तु वे व्यर्थ गए यह देखकर उसने कहा,] (२) "हे सोम (चन्द्रमा), अमृत, और कमल, तुम्हें कोई भले ही न छुवे [क्यों कि तुम्हारे स्पर्श से शीतलता की अपेक्षा करना व्यर्थ है।]" (३) यह कह कर वह बाला गवाक्षों को सप्राप्त हुई (पहुँची)। (४) किन्तु जब उसने पति (पृथ्वीराज) को [युद्ध मे न लगकर अपने पास आते] देखा, वह मन मे [उस पर] रक्त (प्रसन्नता) नहीं हुई।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. सयोगि (=सजोगी) समवे, म. सजोगि गमाए, शेष सब में 'सजोगि (सजोग-धा.), समाए'।

(२) १. मो. सोम अमृत कमल तुम्ह न छवै, धा. ना अ. फ. सोम कमल अभ्रित दरसाए, ना. म. उ. स. सोम (जनु सोम-म. उ.) कमल दिनयर (दिणयर-ना., दनियर-म.) दरसाए।

(३) १. मो. इह कहि बाल गवाक्षिन (=गवाक्खिन) पत्तीय, धा. अ. फ. ना. म. उ. स. उझकि झकि (झझिकि-म.) दिष्यउ (दिख्यो-धा. उ. स., दिष्यौ-ना. म) पन पत्तिय (पुन पत्तिय-धा प्रनपत्तिय म. उ. स., प्रणपत्तिय-ना.)।

(४) १. धा. देष्यो, अ. देषन, फ. देषति, ना. म. उ. स. दिष्षत। २. मो. मिहि (< महि)। ३. धा. अ. फ. ना, अनुरत्तिय, म. उ. स. अविरत्तिय।

टिप्पणी—(१) समव् (सम्+अव्) = लगाना, प्रयुक्त करना। (२) नु (णु) = व्यंग्य, अपमान अथवा अमान सूचक अव्यय। छव < छिय < स्पृश्=छूना। (३) गवष्ष < गवाक्ष। पत्त < प्राप्त। (४) रत्त < रक्त।

[२९]

श्लोक— गुरु जनो जि मनो[१] नास्ति तात आत्तात वर्जिता। (१)
तस्य कार्य[१] विनस्यंति यावत्[२] चंद्र दिवाकर[३] ॥ (२)

अर्थ—(१) [संयोगिता ने अपने मन में कहा,] "यदि किसीके मन में गुरुजन [के प्रति आदर] नहीं होता है, और वह तात (पिता) तथा आप्त (ज्ञानी पुरुषों) से वर्जित (रहित) रहता है, (२) तो उसके कार्य जब तक चंद्र तथा दिवाकर होते हैं—अर्थात् सदैव—नष्ट होते है।"

पाठान्तर—(१) धा गुरुजनो नाम, अ. फ. मुरुजनो नमो, ना. गुरुजन जमो, म. गुरंजनं नमो, उ. गुर जनं मयो, स. गुरज्जनं मनो। २. धा. अ फ तात मात विवर्जितः, म. उ. स. तात आज्ञा (अज्ञा–म. उ.) विवर्जित। ना. तात तातअ विवर्जितः।

(२) १. धा. म, ना. म. उ. स अ. फ. कार्यं (कार्य–ना. म. उ. स) म. कारज्यं। २. धा. जाम। ३. मो. म. उ चंद्र दिवाकर, धा. चंद्र दिवाकरः, अ. फ. चंद्रो दिवाकर, ना. स. चंद्र दिवाकरौ।

टिप्पणी (१) आत्त < आप्त = ज्ञानी पुरुष।

[३०]

*दोहरा—इह[१] कहि सिर धुनि सषिन सउ[*२] दिष्षि[३] सजोगि[४] सुरज्ज[५]। (१)*
जिहिं[१] प्रिय तन अंगलि फिरइ[२] तिहि[३] प्रियजन[४] कहा[*] कज्ज[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) को देख कर संयोगिता ने सखियों से यह कहा और सिर पीट लिया, (२) "[सखियो,] जिस प्रिय की ओर [लोगों की] उंगलियाँ फिरें—उठें, उस प्रियजन से [ही] क्या कार्य (प्रयोजन)?"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. अ. ना. यह। २. मो. सुषिन सु (=सउं), ना सषिन सुं (=सउं), धा. उ. स. सखिनि सौं, अ. सषिनि स्यौं, म. फ सखिन सौं, ना सषिन सु। ३. धा. अ. फ. देषि। ४. मो. सयोग सु, फ. सजोग सु, ना. म उ. स. संजोगिय। ५. म. में 'रज्ज', शेष सभी में 'राज'।

(२) १. फ जिहु, म. जिहिं। २. मो प्रयजन अगलि फिरइ, धा. पियजन अंगुलि फिरिय, अ. प्रियतन अगुलि फिरै, फ. प्रियतनु अंगुलि फिरहि, ना. प्रीयन अंगुलि फिरै, म. उ. स. प्रियजन अगुलि करै। ३. धा. ना. म. उ. स तिहि, अ. फ. सो। ४. मो. पयजन। ५. मो. काहा कज्ज, धा कइ काज, अ. म. उ स. किहि काज, फ. कहि काज, ना. कह काज।

टिप्पणी—(२) कहा कथन् < क्य ।।

[३१]

दोहा— सुनत[१] सामंतन[२] सत्त कहि[३] पंग पुत्ति[४] धर मंथ[५] । (१)
इहि सत्थहि सामत सुभट[१] ज वइ[*२] ठिल्लहि[३] गय[४] दंत ॥ (२)

अर्थ—(१) यह सुनते ही सामन्तों ने सत्य [ही] कहा, "हे पंगपुत्री (संयोगिता), यह [पृथ्वीराज] जो धरा का मस्तक है, और इसके साथ जो सामन्त सुभट हैं, वे हाथियों के दाँतों को भी ठेल देते हैं, [इसलिए यह न समझना कि पृथ्वीराज युद्ध से भयभीत होकर तुम्हारे पास आया है ।]"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. सुनि, ना. म. स. द । २. धा. सावतनि, ना. सामतहि, म. सामंत जु, स. सावंत जु । ३. धा. सत कहि, मो. सत किहि । ४. धा. पुत्रि । ५. धा ना स. घटि मंत, म. घट मत ।

(२) १. मो. इहि सत्थहि थत सुभट, धा. तुम्ह सत्थहि सामन्त सुभट, ना. इह सत्थ सत भट सुभट, म. स. एक लष्ष भर लष्षियैं (लषयौ–म.) । २. मो. ज वि (=वइ), धा. ले, ना. म. जे, स. जै । ३. धा ढिल्लहि, म. गढै, ना. स. कढ्ढै । ४. धा. म. ना. स गज ।

टिप्पणी—(१) धर < धरा । मंथ < मस्तक । (२) गय < गज ।

[३२]

गाथा— मदन[१] सराल ति विवहा[२] निमिष दइत[३] प्रांन प्रानेन[४] । (१)
नयन[१] प्रवाह ति[२] विवहा दिवा कथय कथा[३] ॥ (२)

अर्थ—(१) मदन के शर रूपी काल से विनष्टा [संयोगिता] के प्राण एक क्षण के लिए दयित (प्रिय, पति) के प्राणों से [अभिन्न रहे] । (२) [किन्तु] उस विनष्टा के नेत्र-प्रवाह उस दिवस की कथा कहते ही रहे ।

पाठान्तर—(१) १. स. मदनं । २. मो. सिरालति विवहा, स. सरालति विविहा, म. मराल निवहा, फ. सरालति विषहा । ३. मो निमिष दइति, धा. विविहारे देत, अ. फ. विवहा (विवह–फ.) देत, म. ना. उ. स. जिह्वा रट्योति । ४. ना. मान प्रायेन, उ. स. प्राज प्रानेस ।

(२) १. ना. पत । २. धा. प्रवाहि, अ. प्रवाहित, फ. प्रवाहिन । ३. धा. अहवा कामा कथ दोह, अ. फ. अहवा कांती कथा, ना. अहवामा कांती कथा, म. उ. स. अहवमां कत (कंत–उ. स.) कथ्थायं ।

टिप्पणी—आल < काल । विवहण < विव्यवधन=विनाश । दइत < दयित=प्रिय ।

[३३]

कवित्त— हे[१] प्रथिराज वामंग[२] सग जो[३] कन्ह[४] नन्ह[५] दल ।° (१)
हउं[*१] चहुआन समथ्थ[२] हरउं[*३] रिपुराय तथ्थ बल[४] ।° (२)
मोहि बिरुद[१] नरनाह दंद को[२] करइ[*३] भुवनि[४] वर ।°(३)
मोहि कप[१] सुरलोक कंप तपिय तह[२] नाग[३] नर । (४)

मम कंपि कपि[१] सुदरि[२] सपहु[३] चडिग[४] कोडि कायर[५] रषत[६]। (५)
इहि[१] भुवनि[२] ढिल्लि[३] कनवज्ज करउं[४] इहि[५] अप्पउ[*६] ढिल्लिय[७] तषत ॥ (६)*

अर्थ—(१) [यह देख कर कन्ह ने पुनः कहा,] "हे पृथ्वीराज की वामाङ्ग, यदि कन्ह के साथ नन्हा-सा भी दल हो, (२) तो मैं समर्थ चहुवान रिपुराज से वहाँ (रण-क्षेत्र में) [उसका] बल हर लूँ। (३) मेरा विरुद 'नरनाह' है, कौन मुझसे [अपनी] भुजाओं के बल से द्वन्द्व करेगा ? (४) मुझसे सुरगण काँपते हैं, और उसी प्रकार नाग और नरगण काँपते और त्रस्त होते हैं। (५) हे सुन्दरी, तुम मत काँपो, मत काँपो, कोटि कायर रक्षित (भृत्य) [अपने] प्रभु (जयचन्द) के साथ चढ चुके—चढाई कर चुके हैं। (६) [फिर भी] मैं [अपनी] इन भुजाओं से कन्नौज को दिल्ली कर सकता हूँ और इस (तुम्हारे पति) को दिल्ली का तख्त अर्पित कर सकता हूँ।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के पाठ हैं।

० चिह्नित चरण धा. में नहीं है।

(१) १. अ. फ. में यह शब्द नहीं है। २. मो. प्रथिराज वर्मांग, ना. पृथीयराज वामग। ३ अ फ. म. उ. स. ना. जो। ४. मो कन, शेष में 'कन्ह'। ५. अ उ. स. नन्ह, फ. मन, म. न, ना तौ नन्ह।

(२) १. मो. हू (<हुं=हउ), अ. फ. हौं, म. ना हु (=हउ), स. हौ। २. मो. सममथ, अ. फ समछ्छ। ३. मा. हरु (=हरउ), अ. फ हरौं, ना. हरु (=हरउ—ना.), स. हरू, म. हनौ, उ. हरौं। ४. मो. रिपुराय तिथ्थ बल, अ. फ. रिपुराइ तथ्थबल, ना. उ. स. रिपुराइ भुजन (भुजनि–ना.) बल, म. रिपुराय भुजबल। (तुलना-चरण ३)

(३) १. ना. विरद। २. मो. अ. चंद को, ना. दुंद को, म. उ. स. दद को, अ. चंद कौ, फ. चद कौं। ३. मो. करि (=करइ), अ. फ. ना. म. उ. स. करै। ४. म. भुजन, उ. स. भुअन।

(४) १. धा. अ फ. म. उ. स. मो कपहि, ना. मुहि कंपै। २. मो. कप तपिय तह, धा. अ. फ. सत्त पायाल (पाताल–धा.), ना. पन्न पन्नग अरु, म. उ. स. पति पनगरु (पगनरू–म.)। ३. ना. नाम, म. भ्रम, उ. स. भूमि।

(५) १. धा. अ. फ. जंपि, ना. सकि, म. स. चपि, उ में यह शब्द नहीं है। २. फ सुंदरु, म. सुदर। ३. मो. सपुहु, धा. अ. सपहु, ना. म. उ. स. सुपहु। ४. मो. चडिग, धा. चिडिग, अ. चढिग, म. चढिगे, फ. तुढिग, ना. स. चढ़िग। ५. धा. कोरि काइर, अ. फ. कोर काइर (काइरु–फ.), ना. कोरि कायर, म. उ. स. कोटि कायर। ६. फ. रक्खति।

(६) १. अ. फ. इह, ना म. उ. स. इन। २. धा. अ. फ. भुवहि, ना. म. स. भुजन, उ. भुज्ज। ३. मो. अ. फ. ठिल्लि, ना. उ. स. ठेलि। ४. धा. कनवज करउ, मो. कनवज करु (=करउ), ना. कनवज करुं (=करउं) अ. फ. कनवज्जनी, म. उ. स. कनवज्ज कौं। ५. धा. इह, अ. फ ना तुहि, म. तौ, स तौं, उ तो। ६ मो ना. अप्पुं (=अप्पउ), धा. अप्पउं, अ. फ. अप्पौं, स. अप्पौं, म. थपहु। ७. ना. स. ढिल्ली, अ. फ ढिल्लिय, म. दल्ली।

टिप्पणी—(२) समथ्थ < समर्थ। तथ्थ < तत्र=वहाँ। (३) दंद < द्वन्द्व। भुव < भुज। बर < बल। (४) तह < तथा। (५) पहु < प्रभु। कोडि < कोटि। रषत < रक्षित=भृत्य। (६) भुव < भुज।

[३४]

रासा— सुंदरि सोचि[१] समच्छिम[२] गहगहत[३] कउ भरि। (१)
तबहि[१] प्रान[२] प्रथिराज[३] त पंचिअ[४] बाहु करि[५] ॥ (२)

दिय हय पुट्ठिय[1] भार[2] सु[3] सव्व सु लष्षिनउ[*4] *(३)*
करति[1] तुरंग सुरंग[2] पुछ्छि ति वछ्छ नउ[3] ॥ (४)

अर्थ—(१) समक्ष (प्रत्यक्ष के विषय–युद्ध) को सोच कर सुन्दरी हर्ष से पूरित हो गई और [उसने] कंठ भर लिया, (२) तब उसके प्राण पृथ्वीराज ने उसे [उसकी] बाँह के द्वारा खींच लिया, (३) और उस सर्व सुलक्षणा का भार घोड़े की पीठ को दिया, (४) और वह तुरंग घोड़ा भी पूँछ तथा छाती के सुरग (सुन्दर खेल) करने लगा।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित्त पाठ के हैं।
‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. फ. सोच। २. धा. समज्झि, अ. समुज्झि सु, फ समज्झ सु, उ. स. समुज्झित ना. समुझिन, म. विचारि। ३. धा. गद्दगद्द, म. समझीय।

(२) १. मो. तबहु, धा. तबहि, फ. तबाह, शेष में 'तबहि'। २. धा प्रान, अ. फ. राज, म. पांन, ना. उ. स. पानि। ३. धा. प्रिथिराइ। ४. धा. सु षिंचिय, अ सुषंच्चिय, म. सु षचीय, फ. सुवींय। ५. अ. फ. बाहु भरि, म. ना. वाह करि।

(३) १. मो पुत्तिय, अ. म. उ. स. पुठ्ठहिं, फ. पुठ्ठिह, ना पुच्छहि। २. धा. भातु, म. उ. भीर, स. भोर। ३. धा. अ. जु, फ. ज, ना. में यह शब्द नही है। ४ मो मर्व सुलिष्षनउ, धा. अ. फ. सव्व सुलच्छिनिय, म. उ. स. सव्व सुलच्छनिय, ना. सवु सुलष्षिनौं।

(४) १. धा. करउ, अ. ना. म. उ. स. करत। २. म. सुर। ३. मो. पुछि्छत वछ्छनउ, धा. स पुच्छति वच्छ निय, अ. फ. ति (सु–फ.) पुछ्छनि अछ्छनिय, उ. स. सु पुच्छनि वच्छ निय, म. पुठिनि ववनीय, ना. सु पुछनि वच्छनौं।

टिप्पणी—(१) समच्छ < समक्ष। गद्दगद्द [दे०]=हर्ष से भर जाना। (३) पुट्ठि < पृष्ठ। सुलष्षि < सुलक्षणी। (४) पुछ्छि < पुच्छ। वछ्छ < वक्ष।

७. पृथ्वीराज-जयचन्द-युद्ध (पूर्वार्द्ध)

[१]

दोहरा—परणि[१] राउ[२] ढिल्लिय मुषह[३] रुष किन्निअ[४] मन[५] आस । (१)*
कहइ[१] चंद नृप पंग सउ*[२] जिहि[३] जुध्ध जुरहि[४] जम हास[५] ॥ (२)*

अर्थ—(१) राजा (पृथ्वीराज) ने संयोगिता का परिणय करके दिल्ली की ओर रुख (मुँह) करने की मन मे आशा की। (२) चद ने इस समय पगराज (जयचद) से [इस प्रकार] कहा, जिससे यम (काल) के हास [सदृश] युद्ध जुटे (हों)।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) १. फ परुन। २. ना. राज, म. राय, स. राइ। ३ धा. अ. फ. समुह, मो. ना. मुषह, म. समुष, उ. स. सुमुष। ४. मो रुष कनीअ, धा. रुष कीर्नी, अ. फ. रुष किन्निय, ना. मुषि कि भाय, म. उ. स. रुष किन्नौ। ५. धा. मनु।

(२) १. मो. किहि (=किहइ), धा. ना. कहहि, ना. कहिहि, अ. फ. कहै, म. उ. स. कहौ। २. मो. पंगसू (=सउ), धा. पंग रख, अ. फ. म. उ. स. पंग दल, ना सग भौ। ३. ना. जिहि जुद्ध, धा. जुज्झ, मो. युध, अ. फ. म. उ. स. जुद्ध। ४. मो. जुरिहि, धा. अ. फ. ना. जुरहि, म. उ. स. जुरै। ५. मो. यम दास, धा. जिम दास, ना. जम हास।

टिप्पणी—(१) रुष < फा० रुख़=मुँह।

[२]

गाथा— स ज रिपु[१] ढिल्लियनाथ[२] सो ध्वंसनं जग्गियं आये[३] । (१)
परणेवं[१] तव[२] पुत्ती युध्धं[३] मंगति[४] भूषनं[५] सोइ[६] ॥ (२)

अर्थ—(१) "जो तुम्हारा रिपु दिल्लीश्वर है, वह तुम्हारे यज्ञ को ध्वस्त करने आया था। (२) तुम्हारी पुत्री को परिणीत करके अब वही तुमसे [तुम्हारी कन्या के लिए] आभूषण [के रूप में] युद्ध माँग रहा है।"

पाठान्तर—(१) १. धा. अ. फ. सय रिपु, मो. सो ज रिपु, ना. सायाह, उ. स. सायाहि, म. सायादि। २. धा दिल्लिय नाथो, अ. फ. ढिल्लियनाथे, म. उ. स. दिल्लिनाथो, ना. दिल्ली थान। ३. धा. स एव आला अग्य धुसन, अ. फ. स एव ए आये या पध्वसनाय, उ. स. साय तु जग्य विध्वसनो, म. साप तु जिग बिध्वंसनो, ना. साय तु जग पविद्धसन।

(२) १. मो. परणेव, फ. परनौवा, शेष में 'परणेवा' या 'परनेवा'। २. मो. तव, शेष में 'पंग' या 'पगु'। ३. धा. ए जुद्ध, अ. फ. जुद्धाइ (युद्धाइ–फ.)। ४. अ. फ. ना. मागति, म. मागत, स. मांगत। ५. फ. भूषनु। ६. [यह] शब्द मो. के अतिरिक्त किसी में नहीं है।

[३]

दोहरा—सुनि स्रवनन[१] चहुआंन कउ[*२] भयउ[*३] निसानहि[४] घाउ[५] । (१)
जानु भद्दव[१] रवि अस्तमन[२] चंपइ[*३] वद्दल[४] वाउ[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) श्रवणों से चहुआन (पृथ्वीराज) को सुनने पर निशानो पर [इस प्रकार] आघात हुआ [और जयचंद की सेना चारो ओर से दौड पडी] (२) मानो भादो मे अस्त होते हुए सूर्य को वायु [और उससे प्रेरित] बादल दबा (घेर) ले।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मा. सुनी श्रवन, म. सुन श्रवनन, शेष में 'सुनि स्रवननि' (या 'श्रवननि')'। २. मो. चहुआंन कुं (=कउ), धा. अ. फ. प्रिथिराज कहुं (कहु–धा), ना म. उ स चहुवान (कौं–म , को–उ स.)। ३. मो. भयु (=भयउ), धा. उ. स. भयो, म. अ फ ना भयौ। ४. धा. अ ना. निसानइ, म उ. स निसानन। ५. अ. म. उ.स घाव, ना. थाउ।

(२) १. धा ज्यूं भद्दव, अ फ ज्यौं भद्दवं, म जनौ भदव, ना जनुभद्दु (= भद्दउं), उ. स. जनु भद्दव २. वा. असमनइ, अ. अस्तगइ, फ. आगस्तगडु, म. उ. स अस्तमनि। ३. मो. चपि (= चपइ) धा., म. उ. स. चपिय, ना. चपहि, अ. चंपय, फ. चप। ४. फ. बइठ दल। ५. म. अ. बाव, स. बांव।

टिप्पणी—(१) भदव < भाद्रपद। अस्तमन < अस्तमायन = अस्त होता हुआ।

[४]

भमरावलि— सलिता जन[१] सत्त समुद्द[२] लियं । (१)
दुहु राय[१] महाभर[२] यं[३] मिलियं ॥ (२)
करकादि निसा[१] मकरादि दिनं । (३)
वर[१] वध्धति[२] सेन दुआल मनं ॥ (४)
दुहु राय[१] रषत्त[२] ति रत्त[३] उठे[*४] । (५)
बिहुरे जन[१] पावस अम्भ[२] वुठे[*३] ॥ (६)
निसि अध्ध विढे ति[१] निसांन घुरे । (७)
दरिआइन[१] जान[२] पहार[३] गु रे[४] ॥ (८)
सहनाइ नफेरिय काहलियं[१] । (९)
रस वीरह वीर चली मिलिय[१] ॥ (१०)
घननंक ति घट[१] ति घंट[२] घुरं[३] । (११)
कल कउतिग[*१] देव पयाल पुरं ॥ (१२)
लगि अंबर[१] बंबर[२] डंबरियं[३] । (१३)
बिसरी दिसि अठ्ठ ति धुंधरियं[१] ॥ (१४)
समसेर दुसेर[१] समाहि लसइ[*२] ।[×] (१५)
दमकइ[*१] दल° मम्भिम°[२] तराइन° सइ[३*°] ॥[×] (१६)

चमके चवरंग[१] सनाह घनं ।+× (१७)
प्रति बिंबित[१] मित्त मउष्ष[२] बनं ।।+× (१८)
दरसी दल कांदल झल्लरियं° ।[१] (१९)
समरे घर कायर बल्लरियं ।। (२०)
जिनके मुष मुच्छ ति मच्छरियं[१] । (२१)
निरषे तिनके[१] तन अच्छरियं[२] ।।+×§ (२२)
न्रिप जोय फवज्जह[१] बंटि लियं ।।[२] (२३)

अर्थ—(१) सरिताएँ मानो सप्त सिन्धु में लिप्त हो रही (मिल रही) हों, (२) इस प्रकार लगा जब दोनों राजाओ के महाभट मिले। (३) कर्क के आदि से रात्रि तथा मकर के आदि से दिन [जिस प्रकार बढ़ता है], (४) [उसी प्रकार] सेनाओं के द्विपादों (सेनिकों) के मन [उत्साह से] खूब बढ़ रहे थे। (५) दोनो राजाओं के रक्षित (भृत्य) युद्ध के लिए राते हो उठे, (६) मानो पावस के बहुरने (लौटने) पर बादल व्युत्थित हुए हों—उमड़ पड़े हों। (७) आधी रात्रि के विढत्त (अर्जित—प्राप्त) होने पर निशान (धौंसे) घुमड़ पड़े, (८) [और ऐसा लगा] मानो समुद्रों मे पहाड़ गिर पड़े हो। (९) शहनाई, नफीरी और काहल [की सम्मिलित ध्वनि में] (१०) वीरों का वीर रस मिल चला। (११) घटों ही घटों का घन-घन घुमड़ने लगा, (१२) और कलह का कौतुक देवपुर (आकाश) और पातालपुर में [व्याप्त हो रहा]। (१३) बबर (धूल) का डंबर आकाश में जा लगा, (१४) और अष्ट दिशाएँ धुँधलेपन के कारण विस्मृत हो गईं। (१५) शमशीर (तलवार) और दुसेल (दोमुहे सेल)[१] की समाह (सज्जा) शोभित हो रही थी; (१६) वह (सेना) के मध्य इस प्रकार दमक रही थी जैसे [आकाश में] तारागण हों। (१७) चतुरंगिणी सेना का सघन सन्नाह चमक रहा था, (१८) [और] मित्र (सूर्य) का मयूख-वन (किरण-जाल) उसमे प्रतिबिम्बित हो रहा था। (१९) कंदल (युद्ध) के [लिए तैयार] उन दलों की झालरें दरसी—दिखाई पड़ीं—तो (२०) कायरों ने [भागने के लिए] घर और वन का स्मरण किया। (२१) [किन्तु दूसरी ओर] जिनके मुखों पर मूछे थीं—जो वीर थे—और जो मत्सर-पूर्ण थे, (२२) उनके शरीरों के लिए अप्सराएँ आँखें लगाए हुए थीं। (२३) नृप (पृथ्वीराज) ने [यह] देखकर फौज को बाँट लिया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
§ चिह्नित चरण धा. में नहीं हैं।
+ चिह्नित चरण अ. में नहीं है।
× चिह्नित चरण फ में नहीं है।
० चिह्नित शब्द अथवा चरण ना में नहीं है।

(१) १. मो. धा. ना. जन, अ. शा स. जनु, फ. जाने। २. मो. मुद।

(२) १. धा. दुइ राइ, अ फ. दुहु राइ[१] (दुहौ राइ–फ) ना. दोऊ राय, शा. स. दोउ राज। २. फ. भउ। ३. अ. फ. यौ।

(३) १. मो. नशा।

(४) १. अ. फ. जनु (जनौ–फ.)। २. धा. वर्धति, फ बद्धत, ना. बर्धंत, शा. स. व्रिद्धत। ३. धा. दुवाल भवं, अ. दुपाल मन, फ. दुपालि मनं, ना. दुवाल मन, शा. स. दुवालमिनं।

(५) १. धा. अ. दुहु राइ, (दुहौ राइ–फ.), शा. स. दोउ राज, ना. दोऊं राउ। २. धा. ना.

रषत्ति ति, अ. नरप्पति, शा. स. रषत्त स्तु । ३. अ. फ. रत्ति । ४. मो. उठि (=उठे), धा. अ फ. शा. स. उठे।

(६) १. मो. बिहुरे जन, धा. बिहरे जनु, मो. अ. फ. बिहुरे जन, शा. स. बहुरे मन (मनु–शा.)। २. धा. अ. फ. अभ, ना. अभ्र । ३. मो. धा. अ फ. उठे, शा. स. बुठे, ना. छुठे।

(७) १. धा. विधत्त, अ फ. विधेत, ना बधेति, शा. स. विभत्ति । २. शा. स. धुरं ।

(८) १ धा. ना. शा. स. दरियादिव, अ. फ. दरिया दव । २. धा. ना. अ. फ शा. स. जानि । ३. मो. पाहार, शेष सभी में 'पहार' । ४. धा. नुरे ।

(९) १. धा. सहबाइ फेरि कलाहालियं, मो. सहनीइ नफेरी कला हलियं, अ. फ. सहनाइ नफेरिय (नफीरिय–फ.) काहलिय, ना शा स सहनाइ (सनाइ–ना.) नफेरि कुलाहलियं ।

(१०) १. अ. फ. चले मिलिय, ना. शा. स. मिले बलियं।

(११) १. धा. अ. ठहनकित, फ.-ठहनकिनि, शा. स. अ. ठहन कित, ना. धनंनकिन । २. धा. अ. फ. ना. शा. स. घट निवट, मो. घटति घूट । ३. ना. धुरें ।

(१२) १ धा. कल कोतिग, मो. कल कुतिग (=कउतिग), अ. फ. कल (कलि–फ.) कौतुक, ना. शा. स. कल कौतिग ।

(१३) १. शा. डबर, ना. अम्मर । २ ना. ढढर । ३ ना. शा. स. उमरियं ।

(१४) १. मं. अठ्ठ ति घुघरीय, अ. अध ति, धुधरिय, फ. अधि तु धुधरिय ।

(१५) १. अ. फ. रु सेल, शा. स दुसेन । २. मो. समाहि लसि (=लसइ), धा. समाइ निसे, अ. फ. सवाहनि सौ, शा. स समाइ नसे, ना. समाहि नसे ।

(१६) १. मो. दमकि (=दमकइ), धा. ना. दमके, अ. फ. शा. स. दमकै । २. मो. मध्य, धा. अ. फ. मझ्झि, शा. स. मधि । ३. मो. सि (सइ), अ. फ. सौं ।

(१७) १. धा. चमके चत्तरग, शा. स. चमकै चवरग ।

(१८) १. धा. प्रतिविंवित, शा. स. प्रति बिंब ति । २. धा. मित्ति सऊख, शा. स. मित मयूष, ना. मित्त मयूष ।

(१९) १. धा. दरसे दल बद्दल ढलरिया, अ. फ. दरसी दल कीबर ढलरिया, शा. स. दरसी दल की दल ढलरियं ।

(२०) १. मो. समरी (< समरि < समरे) घर, ना. अ. सुमिरे घर, फ. सुमरे घर, शा. स. सुमिरैं घर । २. अ. फ. बल्लरिया ।

(२१) १. धा. मुछति मुछरिया, अ. मुछ रु मछ्छरियं, ना. मूंछनि मछरीयं, शा. स. मुछ नमछ्छरिय, फ. मुछ नरु मछ्छरियौ ।

(२२) १. अ फ. तन केतन । २. फ. अछ्रियौ ।

(२३) १. धा. फवज्जनि, अ. फवज्ज ति, फ. फवजि तु । २. धा. बट्टि (< वंटि), मो. बटि, अ. बदि, फ. बंद । ३. यहाँ सभी प्रतियों में निम्नलिखित चरण और हैं (धा. पाठ):—

मुह माहिरिक चवक राउ दिय ।
मुज दच्छिन अव्वुअ राउ रच्यो ।
सिरि छत्र समेत जु आनि सच्यो ।
भय की दिसि वाम पंडीर भरूयौ ।
कट कध कबध गिरंग लर्‌यो ।
कूरमे अरंभ जु अंभ अनी ।
सु धरी कवि चद सुनी सु मनी ।
दल पुट्ठि न मोरिय राउ सुन्यो ।
कवियत्तनि संच सुन्यो सु मन्यो ।

निरवाह चंदेल ति जद्दमने।
इय मुक्कि लरे जम सू जुरने।
तिनि मज्झि त संभरि वायु जिसो।
भुज अर्जुन अर्जुन राउ जिसो।
अमराउउलि छद प्रवान थियं।
त्रिप जोइ फवज्जइ वट लियं।

अन्तिम चरण दो बार आया है, और उसकी यह पुनरावृत्ति हाशिये के लेख के सम्मिलित किए जाने के कारण हुई ज्ञात होती है, इसलिए पुनरावृत्ति के बीच की पंक्तियाँ प्रक्षिप्त मानी गई हैं।

टिप्पणी—(१) सलिता < सरिता। समुद्द < समुद्र। (२) भर < भट। (४) वध्ध < वर्धय्। द्विप=दो पैर वाले, मनुष्य। (५) रषत्त < रक्षित=भृत्य। रत्त < रक्त। (६) अभ < अभ्र। वुठे < व्युत्थित। (७) विढे < विढत्त [दे०]=अर्जित, प्राप्त। (१२) कउतिग < कौतुक। पयाल < पाताल। (१६) तराइन < तारागण। (१७) चवरंग < चतुरंग। (१८) मित्त < मित्र=सूर्य। मउष्ष < मयूख। (१९) कँदल < कन्दल=युद्ध। (२०) वल्लर=वन, अरण्य। (२१) मुच्छ < स्मश्रु। मच्छर < मात्सर्य। (२२) अछछरी < अप्सरा।

[५]

कवित्त— य[१] दिन रोस रट्ठिवर[२] चपि चहुवांन गहन[३] कह[४]। (१)
सउ[*१] उप्परि[२] सउ[*३] सहस बीह[४] अगनित लष्ष दह[५]। (२)
तुटि[१] गिर जस[२] थल[३] भरिग[४] भजिग[५] जल गंग प्रवाहह[*६]। (३)
सह अछ्छरि[१] अछ्छहि[२] विमान[३] सुरलोक नाग तह[४]।[×](४)
कहि[१] चंद दंद दुहु[२] दलि[३] भयउ[*४] घन जिम सिरि[५] सारह झरिग[६]। (५)
भर सेस हरी[०१] हर ब्रह्म तन[२] तिहि समाधि तिहि दिन[४] टरिग[५]।।[‡](६)

अर्थ—(१) जिस दिन राठौर (जयचंद) को रोष हुआ और उसने [चारों ओर से] दबा (घेर) कर चहुवान (पृथ्वीराज) को पकड़ने के लिए कहा, (२) [उस दिन पृथ्वीराज के] सौ [राजपूतों] के ऊपर [जयचंद के] सौ हजार [टूट पड़े]; और [उसकी] अगणित वीथियों (पंक्तियों) मे [तो] दस लाख [सैनिक] थे। (३) गिरियों के टूट-टूट कर गिरने से जैसे भूमि भरी, [उसी प्रकार] गगा के प्रवाह का जल भी [समुद्र की ओर] भागा (वेग से प्रधावित हुआ)। (४) सभी अप्सराएँ [मृत वीरों का स्वागत करने के लिए] विमानो पर सुरलोक तथा नागलोक में [आ डटी]। (५) चंद कहता है कि दोनों दलों में द्वन्द्व (युद्ध) हुआ, और बादलों के समान योद्धाओं के सिर पर तलवारे झड़ीं। (६) [सेनाओं के] उस भार से शेष, हरि, हर, तथा ब्रह्मा की समाधि उस दिन टल (छूट) गई।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के है।
० चिह्नित शब्द मो में नहीं है।
× चिह्नित चरण म. में नहीं है।
‡ यह छन्द ना. में दो स्थानों पर है: ३३. १०७ तथा ३५. ५। दिए हुए पाठान्तर प्रथम स्थान पर के है।

(१) १. धा. जि, ना. अ. फ. ज, म. उ. स. त । २. धा. राठोर, मो. रढिवर, अ फ. ना. राठौर, म. उ. स. रट्ठौर । ३. अ फ. गहम । ४. अ. फ. ना. कहु, म. उ. स. कहि ।

(२) १. मो. सु (=सउ), धा. से, अ. फ. ना. म. उ. स सौ । २. म. उ. स. उप्पर, फ उप्परु । ३. मो. सु (=सउ), धा. से, ना. म. अ. फ. मौ, ना. उ. सैं, स. स । ४. मो. दीह, धा. वीस, अ. फ. वीय, ना. विवह । ५. म. उ स. दहि, ना. दहु ।

(३) १. धा. तुटि, अ. ना. ट्रुट्टि, फ. पुट्टि, उ. स. छुटि, म. छुठि । २. मो. गिर जस, शेष में 'डूंगर' या 'डुगर' (डूगा–ना.) । ४. ना. सुरिग । ५. धा. अ. फ भरिग, ना. भजिग, म. उ. स. फुट्टि (फुदि–स) । ६. मो. जलग्ग प्रवाह [< प्रवाहइ], धा. थल जलनि प्रवाहिग, अ. फ. म. उ. स. जल थलति (बलनि–अ. फ.) प्रवाहिग (प्रवाहिगु–फ.), ना. जलगग प्रवाहहि ।

(४) १. धा. अच्छर, ना. अत्थरि । २ मो. 'अछ्छिहि' ना. अत्थरि, शेष में 'अछ्छहि' । ३. अ. विवान, फ. विना, ना. विवानु । ४. मो. सुरलोक नर नाग तह, ना. सुरलोक नाग तिहि, शेष सभी में सुरलोक (सुरलोग–धा) बनाइग (बिनाइग–धा.) ।

(५) १. सभी प्रतियों में 'कहि' । २. यह शब्द मो. में नहीं है, धा. दुह, फ. दुहौ । ३. अ. फ. ना. दलि शेष, में 'दल' । ४. मो. भयु (=भयउ), धा. अ. ना. भयो, फ म. उ. स भयौ । ५. धा. सर, मो. ना. सिर । ६. धा. धरिग, अ. फ. झरिय, ना. झरिगु ।

(६) १. धा. भर सेसु हर्‍ौं, अ. हर सेसहार, फ. हरि सेसहार, ना. धर सेसहार, म. उ. स. हरि सेस ईस । २. म. उ. स. ब्रह्मानि तनि (तति–म.) । ३. धा. अ. फ. तिहु, म. उ. स. तिहु, ना. त्रिहुं । ४. अ. फ. म. उ. स. तद्दिन, ना. ता दिन । ५. अ. फ. टरिय, म. ढरिग ।

टिप्पणी—(२) वीह < वीथि=श्रेणी, पंक्ति । (३) तुट < तुट=टूटना । गिर < गिरि । (४) सह= सभी । तह < तथा । (५) दद < द्वन्द्व । सार=लौह (तलवार आदि लौह के शस्त्रास्त्र) (६) भर < भार ।

[६]

भुजंग— सज्जतं[१] धूम धूमे[२] सुनंतं[३] । (१)
कंपिय[१] तीनपुर केलि पत्त[२] ॥ (२)
डमरु डहडह किरां[१] गवरि कंतं । (३)
जानियं[१] जोग जोगादि अंतं ॥ (४)
किम किमे[१] सेस सिर[२] भार रहियं[६] । (५)
किमे[१] उच्चासु रवि रथ्थ नहियं ॥° (६)
कमल सुत कमल[१] नहि अंबु[२] लहियं । (७)
संकियं ब्रह्म[१] ब्रह्मांड गहियं[२] ॥+ (८)
राम[१] रावन्न कवि किन[२] कहिता[३] । (९)
सकति[१] सुर महिष बलि दान[२] लहिता[३] ॥° (१०)
कंस[१] सिसुपाल पुरजवन[२] प्रभुता । (११)
आमिया[१] जेन[२] भय लष्षि*[३] सुरता[४] ॥ (१२)
चढ्ढिअं[१] सूर आजान[२] बाहुं । (१३)
तुटिग वन सघन[१] वढ्ढी नलाहुं[२] ॥ (१४)

गंग[1] जल जिमन[2] घर हलिय[3] ओजे*[4] । (१५)
पंगरे[1] राय राठउर*[2] फोजे[3] ॥ (१६)
उप्पर्इ*[1] फोज[2] प्रथिराज[3] राजं । (१७)
मनउ*[1] वानरा लग्गि लकाहि[2] गाजं[3] ॥ (१८)
जग्गियं[1] देव देवा[2] उनिंद[3] । (१९)
दिष्षिय दीन इंद[1] फनिंदं* ॥ (२०)
चंपियं[1] भार पायाल दुंद[2] । (२१)
उड्डिय[1] रेन[2] आयास . मुद्दं ॥ (२२)
लहइ[1] कोन[2] अगनित्त राउत्त रत्ता[3] । (२३)
छत्र[1] षिति[2] भार दीसइ*[3] न पत्ता ॥ (२४)
आरंभ चक्री[1] रहे कोन[2] संता[3] । (२५)
वाराह[1] रूपी न कवे[2] धरंता ॥ (२६)
सेन सन्नाह नव[1] रूप रगा । (२७)
मनउ*[1] झिल्लि वइ* ति[2] त्रिनेत्र गंगा[3] ॥[×4](२८)
[1]टोप टंकारि[2] दीसे[3] उतंगा ।+(२९)
मनउ*[1] बद्दले पंत्ति[2] बंधी बिहंगा ॥+(३०)
जिरह जंगीन[1] गहि अंगि[2] लाई[3] । (३१)
मनउ*[1] कंठ कंथीन गोरष्ष पाई[2] ॥ (३२)
हथ्थरे हथ्थ[1] लग्गे सुहाई[2] । (३३)
घाय[1] लग्गइ* न°[2] थकइ*[3] थकाई ॥ (३४)
राग जरजी[1] बनाइत्त[2] अछ्छे[3] । (३५)
देषिअइ*[1] जानु× जोगिंद×[2] कछ्छे× ॥ (३६)
सस्त्र[1] छत्तीस× करि× कोट्ट× सज्जइ×[2] । (३७)
इत्तने× सूर× वाजित्र बज्जइ[1] ॥ (३८)
नीसान सादंति*[1] बाजे*[2] सुषंगा । (३९)
दिसा देस दक्खिन*[1] लष्षी[2] उपंगा ॥ (४०)
तबल तंदूर[1] जंगी[2] मृदंगा । (४१)
मनउ*[1] नृत्य[2] नारद्द कछ्छे[3] प्रसंगा ॥ (४२)
बजहि वंस विसतार[1] बहु रंग रंगा । (४३)
जिने मोहि करि[1] सथ्थि[2] लग्गे[3] कुरंगा‡ ॥ (४४)
वीर[1] गुंडीर सा सोम मृंगा[2]‡ । (४५)
नचइ ईस सीसं[1] धरो जासु[2] गंगा ‡॥×(४६)

सिधु[१] सहनाइ[२] श्रवने[३] उतंगा ।×(४७)
सुने[१] अच्छूछरिम अच्छ मज्जइ*[२] सुअंगा[३] ॥×(४८)
नफेरी नवरग[१] सारग भेरी । (४९)
मनउ*[१] नृत्य नइ[२] इंद्र आरभ केरी ॥ (५०)
सिधु सावभ्मभ्नं गेन मेरी[१] । (५१)
भभ्मे आवभ्मभ - हथ्थ[२] करेरी ॥ (५२)
उच्छूछरहि घाउ[१] घनघट घेरी[२] । (५३)
चिचिता अधिक[१] वध्धे[२] कुवेरी ॥ (५४)
उप्पमा षंड नव, नैन भग्गी (जग्गी)[१] । (५५)
मनउ*[१] राम रावन्न हथ्थेव लग्गी[२] ॥ (५६)

अर्थ—(१) [सुभट जब] धूम-धाम से सजते हुए सुनाई पड़े (२) तो तीनों पुर (आकाश, पाताल, मर्त्यलोक) कदली पत्र [के समान कंपित] हो गए। (३) [क्या] गौरीकान्त (शिव) ने डमरू को 'डह डह' किया (४) [क्योंकि] उन्होंने जाना कि योग-योगादि का अन्त हो गया ! (५) क्या शेष का सिर भार-रहित तो नहीं हो गया ? (६) [अथवा] क्या उच्चाश्व (उच्चैःश्रवा) रवि-रथ मे नहीं रहा ! (७) [अथवा] कमल-सुत (ब्रह्मा) ने अम्बु (जल—क्षीर सागर) मे कमल को नहीं पाया (८) और [इसलिए] शकित होकर ब्रह्माण्ड को पकड़ लिया। (९) इसे राम और रावण [का युद्ध] कवि क्यों न कहे ? (१०) [अथवा यह क्यों न कहे कि] शक्ति महिषासुर का बलिदान लाभ कर रही थी ? (११) कंस, शिशुपाल और प्रद्युम्न की जो प्रभुता थी (१२) वह लक्ष्मी जैसे उनसे भयभीत होकर [जयचंद में] रत हुई [यहाँ] भ्रमित हो रही थी। (१३) आजानु बाहु शूर [इस प्रकार] चढ चले, (१४) [मानो] सघन वन में अनल-आभा टूट (उत्पन्न हो) कर बढ़ रहीहो। (१५) [जिस प्रकार] धरा पर गगा-यमुना की ओजें (ओजपूर्ण लहरे) हलरा रही हों (१६) उसी प्रकार पंगराज (जयचंद) की फौजे थी। (१७) उनके ऊपर राजा पृथ्वीराज की फौज [ऐसी] थी (१८) मानो बंदर लंका गढ़ पर लग (चढ) कर गर्ज रहे हो। (१९) देव-देव (शिव) उन्निद्र होकर जग गए, (२०) और इन्द्र तथा फणीन्द्र (शेष) दीन दिखाई पड़ने लगे। (२१) [एक ओर जहाँ सेनाओ के] भार ने पाताल में द्वन्द्व उत्पन्न कर दिया था, (२२) [वहाँ दूसरी ओर] उनके सचरण से उडी हुई रेणु ने आकाश को मूँद दिया था—आच्छादित कर लिया था। (२३) उस युद्ध मे सम्मिलित अगणित राते (सुसज्जित) रावतों को कौन जान सकता था ? (२४) क्षिति पर उनके छत्रो के भार से पत्ता नही दिखाई पड़ता था। (२५) चक्रवर्त्तियों के आरंभ [हलचल] से [भला] कौन शात रह सकता था ? (२६) बाराह रूप [भगवान] भी पृथ्वी को कधे पर नहीं धारण कर रहे थे। (२७) सेना की नवीन रूप-रग की सन्नाह [ऐसी लग रही] थी (२८) मानो त्रिनेत्र (शिव) उस प्रकार (शरीर पर) गंगा को झेल रहे हों। (२९) वहाँ तुङ्ग (ऊँचे) टोपों (लोहे की टोपियों) की टंकार (पंक्ति ?) इस प्रकार दीखती थी, (३०) मानो बादलों मे विहगों ने पंक्ति बाँधी हो। (३१) जगीन (मजबूत) जिरह अंगों से कस कर लगाए गए थे, (३२) [वे इस प्रकार लगते थे,] मानो गोरखपथियों ने कंठ में कंथा डाल लिया हो। (३३) उनके हाथों में हथ्थे (दस्ताने) सुदर लगते थे। (३४) उन्हे घाव लगता था किन्तु वे थकावट से थकते नही थे। (३५) उनके राग (टाँगों के कवच) और ज़रजीन ऐसी बनावट के [लगते] थे (३६) मानो योगीन्द्रों को [कछौटा] काछे देख रहे हों। (३७) क्रोध

करके छत्तीस प्रकार के शस्त्र वे सैनिक सजे हुए थे। (३८) फिर, इतने ही शूर वाद्यों को बजा रहे थे। (३९) निशान (धौंसे) अच्छा शब्द कर रहे थे, (४०) दक्षिण दिशा के देश से लब्ध (प्राप्त किए हुए) उपंग थे, (४१) तबल, तदूर, तथा जगी मृदंग थे, (४२) [ऐसा लगता था] मानो ये नारद के नृत्य के प्रसंग में निकले हों। (४३) वंशी विस्तृत रूप से नाना रंगों में—नाना प्रकार से—बज रही थी, (४४) जिन पर मोहित कर कुरंग (मृग) साथ लग गए थे। (४५) वीर गुंडीर (गुंड देश के सैनिक) सिंगा बाजों के साथ इस प्रकार शोभित थे (४६) मानो ऐसे शिव नृत्य कर रहे हों जिनके सिर ने गंगा को धारण किया हो। (४७) शहनाइयों में [गाया जाता हुआ] सिंधू [राग] श्रवणों में [इस प्रकार] ऊँचा (उत्कृष्ट) [प्रतीत होता] था (४८) [मानो] शून्य (आकाश) में अच्छ (निर्मल) अप्सराएँ अपने सुंदर अंगों को मज्जित कर रही हों—स्नान करा रही हों। (४९) नफीरी, सारंग, भेरी का नया ही रंग था (५०) [जो ऐसा प्रतीत होता था] मानो निशु (बिल्कुल) इन्द्र के केलि आरंभ (अखाड़े) का नृत्य हो। (५१) [नर] सिंघे और साउझ इस प्रकार बज रहे थे जैसे गगन में भेरी बज रही हो। (५२) झाँझ और आवझ भी कढ़े हाथों से बजाए जा रहे थे। (५३) घनघंट पर हुए आघात का स्वर घेर (घुमड़) कर उच्छलित हो रहा था। (५४) इस कुवेला में [रण-वाद्यों से] चेतनता अधिक बढ़ रही थी। (५५) [प्रस्तुत] युद्ध के लिए नेत्रों में नौ खंडों की उपमाएँ जागीं किन्तु (५६) मानो [दोनों पक्ष] राम और रावण के हैं, यही उपमा हाथ लगी।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
° चिह्नित चरण मो. में नहीं हैं।
× चिह्नित शब्द या चरण म. में नहीं है।
+ चिह्नित चरण फ. में नहीं है।
‡ चिह्नित चरण ना. में नहीं है।

(१) १. मो. साजते, ना. साजवं, म. उ. स. भरं साजते (साजतै–म.)। २. धा. घून घूमे, उ. स. घो धुम्मे (घूमे–म.), फ. घूम सते। ३. फ. सततं।

(२) १. धा. कपयइ, फ कषाय, म. उ. स. तहाँ कपिय। २. धा. अ. फ. ना. तीन पुर जेनि (जेम–ना.) पतं (पत्त–धा.), मो. तीन पुर केलि पत (=पत्ता), म. उ. स. केलि तियपुर कपंतं।

(३) १. धा. डवरु वर डहकिय, अ. डवरु डहडह किय, फ. बडर डहडहि कुय, उ. स. तहाँ डवरु (डमरू–म.) कर डहकिय, ना. डमरु डुडु डुडु कीय।

(४) धा. मानयं, म. उ. स. तिन जानिय।

(५) १. म. तव किमं किमारू, ना. किमकिम, उ. स. तवं कम कमिरु। २. धा. अ. फ. सह। ३. ना र होय, म. उ. स. सहियं।

(६) १. म. उ. स. तहा किमसु, ना. किमस। २. अ. फ. उच्चेसुवा नयन बहिय, ना. उच्चीस रवि रत्थ रहीयं, म. उच्चास रवि सथ रहिय।

(७) १. धा कमलसुत कमठ, अ. फ. कमठ सुत कमठ, म. उ. स. वहाँ कमठ सुत कमल, ना. कमठ सुत कमल। २. म. नह अंबु, ना. उ. स. नहिं अबु, धा. अ. फ. नहि अंमु।

(८) १. धा. अ. जुकि ब्रह्मान, उ. स. तवे सकि ब्रह्मान, म. तव सकि ब्रहमड, ना. सकि ब्रह्मडमान। २. म. हियस हियं।

(९) १. उ. स. उनं राम, म. उवराव। २. धा. कवि कन्ह, मो. कपि कन, ना. कवि कच, म. उ. स. कवि किन्न। ३. मो. कहिता, शेष में 'कहता'।

(१०) १. म. उ. स. उन (उन–म.) सकति, । २. अ. फ. सुरलोक बरदान, ना. म. उ. स. सुर र–म.) महिष बलधन्न (बलदुन्न–ना.)। ३. धा. अ. फ. ना. लहतu।

(११) १. म. मनौं किस्न, उ. स. मनो कंस। २. मो. पुरयवन (=पुरजवन), धा. जुरि मम, ना. जरा जमनु, शेष में 'जुरजमन'।

(१२) १. धा. सांकिय, ना. अम्मीयं, म. तनं भ्रम्मिय, अ. भम्मिय, फ. भूमीय, म. उ. स. तिनं भ्रम्मिय। २. धा. अ. फ. एन, ना. म. उ. स. एम। ३. मो. लष्ष, धा. अ. म. उ. स. ना. लच्छि, फ. तनि। ४. म. सुरता।

(१३) १. म. उ. स. भर चढ्ढिय। २. म. अजान, ना. अज्जन, अ. आजानु।

(१४) १. धा. दुट्ठि बन सिंघ, फ. ड्ढ्ठि नव सघन, ना. अ. ढुट्टि वन सघन, म. उ. स. तिन तुट्टि वन सिंघ। २. थट्टीन लाइ, धा तट हीन लाइ, अ. फ. बट्ठो न लाइं, उ. स. दीसत लाइ, म. दिसतं ताइ।

(१५) १. म. उ. तिन गग, ना. गगा। २. धा. जमन, अ. ना. जमुन, फ. जमनु, म. उ. स. मौन। ३. धा. धरहिल्लय, फ. धर लहै, ना. सर इलीय, अ. धर इल, ४. मो. उजे (=ओजे), धा. जूझे, ना. औजं, उ. स. ओजे, म. औजे, अ. फ. मौजै।

(१६) १. धा. पंगुरा, ना. पंगुरे, म. उ. स. भरं पंगुरे (पंगुरै—म.। २. मो. राठुर (=राठउर), धा. फ. राठोर, अ. राठौड़, म. राठौर, ना. रट्ठौर। ३. म. उ. स. मौजै (मौजै—म. स.), अ. फौड़ं, फ. फौजे, ना. फौज।

(१७) १. मो. उपरि (=उपरइ) धा. उप्परे, अ. उप्परइ, फ. उप्परै, ना. उप्परहि, म. उ. स. तबै उप्परें (उपरि—उ., उप्परे—म.)। २. अ. फ. रोस। ३. धा. ना. प्रिथिराज।

(१८) १. मो. मनु (=मनउ), धा. मनो, ना. मनुं (=मनउ), म. मनो। २. धा. अ. फ. लक लागेहि, ना. लंक लकाहि, उ. स. लेन ते लक, म. लिनतक। ३. धा. माज, अ. फ. काज।

(१९) १. मो. जागिय, म. उ. स. तव (तवे—म.) जग्गियं, ना. गज्जियं। २. ना. म. देवदेवं, फ. देवी देव। ३. मो. उनद, फ. उन्यद, ना. उनिंद निंदं।

(२०) १. धा. दुक्खियं दीन इंद, अ. तहाँ दिष्षियं दीन इंद, फ. तहाँ दष्षियं दीन दीय, म. उ. स. तिनं च पेय पाय, मारं (तुलना० चरण २१)। २. मो. फनद (<फनिंद), शेष में 'फनिंद' या 'फुनिंद'।

(२१) १. अ. फ. जहां चंपियं, म. उ. स. तवैं चापियं (चपियं—म.)। २. धा. पायाउ दंदं, अ. फ. म. उ. स. पायाल दुंद, ना. पायाल दुद।

(२२) १. अ. फ. तहां उट्ठिय, म. उ. स. घनं उड्डियं। २. ना. रेणु।

(२३) १. म. ना. उ. स. गिन, अ. फ. लहै। २. ना. कौन। ३. धा. रखत्त अगणित्त रत्ता, ना. अगनिंत्त रावत्त रत्ता।

(२४) १. म. उ. स. तिन छत्र। २. धा. छति, अ. फ. ना. उ. स. छिति। ३. मो. दीशि (=दीशइ), धा. दीसइ, अ. दीसे, फ. म. उ. स. दीसे, ना. सुझै।

(२५) १. धा. आरभ चत्रा, म. उ. स. जु आरभ चक्को (चक्की—म.)। २. मो. रहे केन, ना. रहै कौन। ३. ना. सरुा।

(२६) १. म. उ. स. जु बाराह, अ. फ. जु बाराह, ना. जौ वाराह। २. फ. धेकं।

(२७) १. धा. सिरे सन्नाख नव, म. उ. स. अ. फ. जु सेन सनाह नवं, ना. सन्नाह निव।

(२८) १. मो. मनु (=मनउ), धा. ना. में यह शब्द नहीं है, अ. फ. म. मनौ, उ. स. तिनं। २. धा. सछिवं सीस, मो. झिलिवे (<झिलिवइ) ति, अ. झिलवै सीस, अ. फ. किलवें सीस, स. झिलवै तेग, ना. उ. झिलवै तेम। ३. ना. त्रिन्नेत तंगा। ४. म. में इस चरण के स्थान पर भी चरण ३० दिया हुआ है।

(२९) १. अ. तहा, म. उ. स. तिन, मो. ना. में यह शब्द नहीं है। २. धा. टकाल, अ. फ. म. ना. उ. स. टंकार। ३. धा. अ. फ. ना. दीसै।

(३०) १. मो. मनु (=मनउ) ना. मनु (=मनउ), धा. अ. मनो, म. मनौं, उ. स. मनों। २. धा. वज्जले खति, मो. वादले पति, अ. वद्दलंपति, ना. वद्दल पंति।

(३१) १. मो. म. उ. स. जिरह जगीन, धा. जिरह जग्गीन, अ. फ. जिरह जनीर, ना. जरह जंजीर। २. मो. गहि भग, धा. अ फ गहि अंग, ना उ. स. बनि अग मच्छिनि अग। ३. ना. आई।

(३२) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउं), अ. फ. म. मनौं, शेष सभी में 'मनो'। २. धा. कच्छ रक्खीन गोरक्ख पाई, अ. फ. ना. देह गोरष्ष (रोरष-फ.) लगार रषाई (यकाई-फ.), म. उ. स. कठ्ठ (कंठ-म. उ.) कती (कथी-म.) सु गोरख बनाई।

(३३) १. म. उ. स. तिनं हत्थ रं (रे-म.) हत्थ, फ. अ. ना. हत्थ रैं हत्थ। २. लग्गी सुहामी, अ. फ. लग्गिय सुहाईं, ना. म. उ. स. लग्गे सुहाई।

(३४) १. धा. दांव, ना. धाइ, अ. फ. म. उ. स. तिनं धाइ(ध्याइ-फ.)। २. धा. मो. लगि (=लगइ), धा. ना. अ. फ. गजै न, म. जेन। ३. मो. थकि (=थकइ), म. थकै न, ना. थक्कै।

(३५) १. मो. राग जन जीं, धा. राय जल जीन, ना. अ. फ. राग जरजीन, म. उ. स. तिनं राग जर जीव। २. मो. नाइत, धा. वित्रवन, अ. फ. ना. म. उ. स. वनि बान। ३. म. आजै, ना. अ. फ. अच्छैं।

(३६) १. मो. देषीइ (=देखिअइ), धा. ना. दिक्खयैं, म. उ. स. भरं दिष्षियैं, अ. फ. दिष्षियहि। २. धा. मानु नर भेष, ना. जानि जोगेंद्रे, अ. फ. मनौं नट भेष।

(३७) १. उ. स. मन मल्ल। २. मो. ना. कोइ साजे, अ. फ. कोइ सज्जइ (सजाई-फ.), म. उ. स. लोह साजे।

(३८) १. मो. एतने सूर बाजित्र बाजे, धा. इत्तने सोर बाजित्र बज्जे, अ. फ. ति इत्तनैं सौर (सोरु-फ) बाजित्र बज्जइ (बजाई-फ.), उ. स. इसे सूर सामंत सौ राज राजे, म.-सो राज राजै, ना. इतनीयें भाँति बाजित्र बाजे।

(३९) मो. नीसान साद (< सादं ति ?), धा. अ. फ. निसानं निसाहार, ना. म. उ. स. निसानं बिंसानं ति (सु-ना., त-म.)। २. धा. ना. वज्जे, मो. वाजि (=वाजे), म. बाजे।

(४०) १. मो. दिसा देस दक्षन (=दक्खन), धा. अ. फ. दिसा देस दच्छिन्न, म. दिसा दिषनं देस, ना. दिसा दच्छिनं देस। २. अ. लछ्छी, फ. लक्षी, उ. स. लीनी, म. लीने।

(४१) १. धा. अ. फ तबल्लं ति (त-अ. फ.) दूरं ति, ना. तिबल तंदूर, म. उ. स. तबलं ति दूरं (तदूरं-म.) जु। २. धा. जग्गी (< जगी), म. गोरं, फ. जगा।

(४२) १. मो. मनु (=मनउ), धा. सुले, अ. फ. सुनैं, ना. मनुं (=मनउ), म. मनौं, स. मनो। २. धा. निक्ति, अ. फ. नित्त। ३. मो. कटे, धा. काढे, अ. फ. कंठे, ना. म. उ. स. कढ्ढे।

(४३) १. मो. बजिहि बंस बिसतार, धा. बध बंस बिसातल (< बिसताल), अ. फ. बधैं बंस बिस्तार, ना. म. उ. स. बजै (बजे-म.) बंस बिसतार।

(४४) १. धा. जिसे मोहिय, अ. फ. जिनैं मोहिए, म. उ. स. तिन मोहियं। २. अ. फ म. उ. स. सथ्थ। ३. फ. नगो।

(४५) १. धा. म. उ. स. वरं बीर, अ. फ. तहां वीर। २. धा. तेसे सुगगा, अ. फ. तैसैं सुरंगा, म. उ. स. संसे ससंगा।

(४६) १. धा. नचैं इस सीसैं, उ. स. तिन नच्चई ईस। २. धा. धरो जास, अ. फ. धरै जान, उ. स. ते सीस।

(४७) १. उ. स. सिरं सिंधु। २. ना. सहनादि, फ. समधिताइ। ३. धा. स्रवपे (< स्रवणे)।

(४८) १. धा. अ. फ. सुनैं, ना. सुनैं। २. मो. मजि (=मजइ) धा. मज्झे, म. उ. स. अ. फ. ना. मंजै। ३. ना. म. उ. स. में यहाँ और है : रसे सूर सामत सुनि जग रगा।

(४९) १. मो. नफेरी नव रग, धा. नफेरी नवा रंग, अ. फ. नफेरी नवै रंग, म. उ. स. नफेरी नवं रंग, ना. नफीर नव रग।

(५०) १. मो. ना. मनु (=मनउ), धा. उ. स. मनो, म. मनौं, अ. फ. मनौ। २. मो. नृत्य नइ, धा. म. त्रित्तनी, अ. फ. ना. नृत्यनी, उ. स. भ्रत्यनी।

(५१) १. मो. सिंधु सामग्रन गेन मेरी, धा. सिंध सावज्ज उगो न नेरी, अ. फ. सिंग सावक्क उग्गे न नेरीं, ना. सिंध सावद्ध नग्गा ननेरी, म. उ. स. सुने (सुनि-उ.) सिंगि (सग-म.) सावद (सावद्ध) नंगी न नेरो (त नेरी-म.)।

(५२) १. धा. सज्झि आवज्झ हत्थ, अ. फ. बजे झिंझि (झिझ-फ.) आवझ्झ (आवज्ज-फ.) हत्थे, म. उ. स. मना (मनो-म.), झिंझ आवद्ध हत्थैं (हथे-म.), ना. मनु झिंझि आवद्ध हत्थ।

(५३) १. धा. उच्छरे धाइ, म. उ. स. करी उच्छरी धाव, ना. उच्छरं धाउ, अ. फ. उछछरे (उछसरे) धाइ। २. धा. घिर घट टेरे, अ. फ. घर (घरु-फ.) घट टेरी, ना. म. उ. स धन घट टेरी।

(५४) १. धा. चित ते नाहि, अ. चितत नही, फ. चितत नाहि, म. चित चित्त तिन हीन, उ. स. चित चिति तन हीन, ना. जित्त तन हीन। २. धा. बड्ढी, अ. फ. न ट्ठै, ना. बठ्ठ, म. थाटी, उ स. बाढी।

(५५) १. धा. उपमा खड नव नयन सग्गी मो. उप्पमद षंड नयने न झग्गी, अ. फ. उप्प षंड नव नयन भग्गी (लग्गी-अ.), ना. ओपम षडनने न लग्गी, म. उ. स. अन्य आपमा षंड ननेनि भग्गी, ना. उप्पम षड ननन लग्गी।

(५६) १. मो. ना. मनु (=मनउ), म. मनौ, अ. फ. मनौ, धा. म उ स. मनो। २. मो. हत्थेव लग्गी, म. हथ विलगी, शेष में 'हत्थे (हत्थ-ना) विलग्गी'।

टिप्पणी—(२) केलि < कदली। पत्त < पत्र। (५) रहिय < रहित। (६) उच्छाह < उत्साह। (७) अबु < अम्भस्। (११) पुरयवन < प्रद्युम्न। (१५) जिमज < यमुना। (१८) गाज < गर्ज्। (१९) उनिंद < उन्निद्र। (२१) पायाल < पाताल। दुदं < द्वन्द्व। (२२) मुदद < मुद्रय्। (२५) चक्की < चक्रिन्। सत < शांत। (३९) साद < शब्द। (४०) लध्धी < लब्ध। (४७) उतग < उत्तुङ्ग। (४८) अच्छछरिअ < अप्सरस्। (५०) नइ=निश्चय-सूचक अव्यय। केरी < केलि। (५१) गेन < गगन। (५४) वध्ध < वर्ध्।

[७]

दोहरा— सुनि वज्जन[१] राजन[२] चढिग[३] बहु पष्षर समहाउ[४]। (१)
मनुह[१] लंक विग्रह करन चलउ*[२] रघुपतिराउ[३] ॥[४] (२)

अर्थ—(१) [जयचंद के] बाद्यों को सुनकर बहुत सी पाखरों और [युद्ध की] सामग्री [के साथ] राजा (पृथ्वीराज) ने [इस प्रकार] चढाई कर दी (२) मानो लंका पर विग्रह करने के लिए राजा राम चले हों।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) धा. सुणिम बयण, अ. फ. सुनि बयअ, ना. सुनीय वज्ज, उ. स. सुनि वज्जन, म. सुनि वाजन। २. ना. रज्जन। ३. धा. चढिय, फ. चढिगु, अ. ना. उ. स. चढिग। ४. मो. बहु पष्षर समहाउ, धा. बहु पक्खर भरराहु, अ. फ. ना. म. उ. स. सहस सष धुनि चाव (चाय-म., चाउ-ना. चाइ-उ. स.)।

(२) १. अ. मनहु, फ. मनौं, म. मनौं, उ. स. मनों। २. मो. च (=चलउ), अ. फ. ना. म. उ. स. चढयौ। ३. अ. राव, म. राय, उ. स. राइ। ४. धा. में इस चरण का पाठ है

मनु अकाल तेडिय संघन पवय छूट परवाहु।

[प्रथम चरण का 'भरराहु', तथा यह चरण धा. में धा. २०७ की स्मृति से आगए लगते हैं।]

टिप्पणी—(१) वज्ज < वाद्य। चढ्=चढ़ना।

[८]

दोहरा— रामद्दल°[1] बंनर° सयल°[2] उहि रष्षस बहु बंधु[3] । (१)
ग्रसी[1] लष्ष[2] सउ* सम मिरिग[4] सु[5] धनि[6] प्रथिराज नरिंद[7] ॥ (२)

अर्थ—(१) राम के दल में समस्त बंदर थे, और उस(रावण) के [दल में] उसके बहुसंख्यक राक्षस-बंधु थे। (२) [किन्तु यहाँ तो] अस्सी लाख [सेना पृथ्वीराज के] केवल सौ [राजपूतों] के साथ भिड़ी, [इसलिए] नरेन्द्र पृथ्वीराज धन्य है।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. अ. फ. न. म. उ. स. र म दलह। २ ना. म. उ. स बद (बद्दर—उ.) विषम। ३. धा. औहि (< उहे) रक्खग बहु बध, अ. फ. उहि रछ् छम दक वद (चद–फ.) ना. म. उ. स. रष्षस (राषस–म.) रावन बृद (बधि–ना.)।

(२) १ धा. अ. फ. अमिय। २. धा लाष। ३ मो. सु (= सउ) सम, धा. पर सूं, ना. दल सु (= सउ), अ. फ म. उ स सौ (सौं–स.) सौ, ना. सौ सु (= सउ)। ४ धा भिरग, फ. भिरगु, ना म. उ स. जुरिग। ५. मा. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। ६. धा मो. धन, अ. म. उ. स. धनि। ७. मो. प्रथिराज नरेंद (< नरिंद ?), शेष में 'प्रिथिराज नरिंद'।

टिप्पणी—(१) सयल < सकल। रष्षस < राक्षस।

[९]

दोहरा— दल संमुह दंतिय[1] सघन[2] गणि को कहइ*[3] अगणित्त[4] । (१)
मनु पव्वय°[1] विधि° चरणि°[2] किय° सहि[3] दिष्षिय[4] मयमत्त[5] ॥ (२)

अर्थ—(१) सेना के मुख भाग में घने हाथी थे; उन्हें गिनती करके कौन कह सकता है, अगणित थे। (२) [वे ऐसे प्रतीत होते थे] मानो पर्वतों को विधाता ने चरण [प्रदान] कर दिए हैं; वे सभी मदमत्त दिखाई पड़ते थे।

*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

पाठांतर—(१) १. धा. संमुह दंती, ना. म. समूह दंतिय (दंती—ना.)। २. मो. सधन। ३. मो. गणि किहि (= किहइ), धा० गणि को कहि (= कहइ), अ. फ. ना. गनि कु (= को) कहै, म. स. गनत न बनि, उ. गनत बनि। ४. फ. अगतित्त म. अगिनत।

(२) १. अ. मनु परवत, फ. मम तु परबत्ति, म. उ स. मनों (मनौ–म.) पव्वय। २. ना. बरनन। ३. धा. सहु, अ. फ. ना. म. उ. स. सह। ४. धा. दिक्खइ म. दषियत। ५. अ. फ. मयमत।

टिप्पणी—(१) समुह < संमुख। (२) पव्वय < पर्वत। सह=समस्त। मयमत्त < मदमत्त।

[१०]

दिष्षिअइ*[1] इक गय मत्त मत्ता[2] । (१)
छत्र सह रत्त[3] अग्गइ* धरंता[3] ॥ (२)

जे (१) न अंदून[१] छूटे+[*] जुरंता[२] । (३)
वाय[१] बहु वेग झटकंत दंता ॥ (४)
जिने[१] सिंघली सिघ[२] सुंढे[३] प्रहारे । (५)
ते[१] सार संमुह[२] धाइ पहारे[३] ॥ (६)
उझये वान[१] सज्जे हकारे[२] । (७)
अंकुसे[१] कोस तें नहि[२] चिकारे[३] ॥ (८)
मिठ मंगूल[१] चहु[२] कोद[३] बंके । (९)[*]
भूप[१] बाहूठ[२] बाजून[३] हंके ॥ (१०)
तेह[१] तर जोर[२] पट्टे न[३] झिल्ले[*४] । (११)
चंपिअइ[*१] पानि[२] तउ[*३] मेर[४] ढिल्ले[०*५] ॥ (१२)
रेस रेसमिश्र ग्गारी ति[१] भल्ली ।‡ (१३)
सेस संदेह संदूखि[१] मिल्ली ॥°‡ (१४)
जु[१]‡ रेष‡ वइरष्ष[*‡२] रत‡ पीत‡ चल्ली[४] । (१५)
मनो वनराइ ढाले ति हल्ली[१०] । (१६)
घंट घोरं न[१] सोरं[२] समानं । (१७)
हल्लये मन[१] लग्गे विमानं[२] ॥ (१८)
सिधु सा बंधु[१] बंधे‡ धुरंगा[३] । (१९)
संग संगी त[१] हरि येभ[२]. संगा ॥ (२०)
सीस संयूत[१] गज झंप[२] झंपइ[*३] । (२१)
देषि[१] सुरलोक सहि[*] देस[२] कंपइ[*] ॥ (२२)
दंत[१] मणि मुत्ति जर जटित लष्षे+[१] ।° (२३)
बीज[१] चमकंति[२] घन[३] मेघ पष्षे +[४] ॥° (२४)
इत्त नी (निश्र) आस सम्माधि रहियं[१] । (२५)
कहइ[*१] प्रथिराज प्रथिराज गहियं ॥ (२६)

अर्थ—(१) एक (कुछ) गज मत्त-उन्मत्त दिखाई पड़ रहे थे, (२) जो सभी [अपने] आगे रक्त [वर्ण का] छत्र धारण किए हुए थे, (३) जो अंदुओं (शृंखलाओ) से छूटकर उनसे जुटते (बँधते) नहीं थे, (४) जो वायु में बहुत वेग से अपने दाँतों का झटक रहे थे। (५) जो सिंघली [हाथी] थे, वे सिंहों पर अपनी सूँड़ों से प्रहार करते (करने वाले) थे; (६) वे [युद्ध में] सार (लौह—शस्त्रास्त्र) के सम्मुख दौड़कर प्रहार करते थे, (७) हँकार (पुकार) लगाने पर उद्यत हो कर वे बाना सजते थे, और (८) अंकुश—कोष [के गड़ाने] पर भी चीत्कार नहीं करते थे। (९) उनके मिठ (महावत) चारों ओर बाँके मंगोल थे, (१०) भूप गण उनको बाहुँटे और बाजू से हाँकते थे। (११) उन्हीं के समान कुछ वेगवान भी थे जो पाद-प्रहार नहीं झेलते थे, (१२) यदि उन्हें हाथ चाँपा (लगाया) जाता तो वे मेरु को हिला देते। (१३) [उनके हाँकने के निमित्त]

रेशमी रेशों (लच्छियों) वाली नाडीकें तथा मछियाँ (बछियाँ) थीं, (१४) जो उनके देह से श्लिष्ट तथा उन पर रक्खे गए सन्दूक से मिली थीं। (१५) [उन पर] जो लाल-पीले वैरषों की रेखा (पंक्ति) चलती थी, (१६) [वह ऐसी लगती थी] मानो वनराजि की डालें हिल रही हों। (१७) उनके घोर घंटों का शोर [पृथ्वी तल पर] समा नहीं रहा था, (१८) [इस लिए] मानों उनके लग कर विमान हिलने लगे थे। (१९) सिन्धु देश के धुरंग (अगों पर धूल डालने वाले—हाथी) बन्धन से बंधे हुए थे। (२०) इन [हाथियों] के संग जो संगी—साथ रहने वाले—थे, वे भी इन इभों (हाथियों) के संग [रहते हुए] डरते थे। (२१) इनके सिरों से संयुक्त (जुड़ा हुआ) गजझंप उनको झाँप रहा था, (२२) इनको देखकर सुरलोक तथा समस्त देश काँपता था। (२३) इनके मणि-मुक्ता तथा (जर—चाँदी-सोना) से जड़े हुए दाँत [इस प्रकार] दिखाई पड़ते थे, (२४) [मानो] घने मेघों के पक्ष में विद्युत चमक रही हो। (२५) यहाँ निज (स्वकीय) आशा और समाधि (सुख) में रहते हुए (२६) [जयचंद] कह रहा था, 'पृथ्वीराज को पकड़ो' 'पृथ्वीराज को पकड़ो'।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

° चिह्नित चरण मो. में नहीं हैं।

+ चिह्नित शब्द अ. में नही है।

‡ चिह्नित चरण या शब्द फ. में नहीं हैं।

(१) १. मो. दिषिइ, धा. ना. दिख्खियहि, अ. फ. दिष्षियं, उ. स. देषियहि, म. दषिदंहि। २. मो. इक गय मत्त मता, धा. मंत मय मत्तमत्ता, म. मत मयमत मता, शेष में 'अंत मयमंत (नयमंत--अ. फ.) मंता (मत्ता--अ. फ.)'।

(२) १. धा. ना. उ. स. छत्र छह रंग, छत्र सहरंग, अ. फ. छत्र ह रंग (अंगु--फ.)। २. धा. अंगे दुरंता, मो. आगि (= आगइ) धरंता, अ. फ. आगं दुरंता, ना. आगं दुरंता, म. उ. स. चौरें (उ. चुरैं, स. चौरं) दुरंता।

(३) १. मो. ज (< जे ?) न अंदून, धा. एभि अ—इसके अनंतर बाद के 'छूटे' शब्द तक धा. में नहीं हैं, अ. फ. एम अंदूनि (अंदूल—फ.), उ. स. छके जेह अंदून, ना. म. जेह अंदून। २. मो. छूटि (= छूटे) जूरता, अ. छुट्टे जुरंता, फ. ते छुट्टे जुरंता, ना. उ. स. छुट्टे जुरंता, म. छुट्टं दुरंता।

(४) १. धा. जो वई, अ. फ. वाइ।

(५) १. धा. जे, अ. फ. जि, म. उ. स. जिते, ना. जितौ। २. अ. फ. सीस सिंदूष, म. सिंघला सिंघ। ३. धा. मुंडे, अ. फ. मुंडं (संडं—फ.) म. ना. उ. स. सुडी।

(६) १. धा. अ. फ. में यह शब्द नहीं है, मो. ना. ते, म. उ. स. तिते। २. मो. संमुह, शेष में 'संमूह'। ३. धा. धावं पहारे, मो. धाइ प्रहारे, अ. फ. धावइ करारे, ना. धाए हकारं, म. उ. स धावं (धावे—म.) हकारे।

(७) १. म. उज्जरं बानं। २. मो. साजे हकारे, अ. फ. सज्जं हकारे, ना. आवं हकारं, म. स. आवं वकारे।

(८) १. धा. अ. फ अंकुसह, ना. म. उ. स. अंकुसं। २. फ. तिहं नहि, नहिं, ना. ते नषि, म. उ. स. तेनं। ३. ना. धिकारे।

(९) १. धा. मन्न मंगोल मो. मिले मंगूल, अ. फ. मेठ (मंठ—फ.) मंगोल (मंगोस—फ.), उ. स. मीठ मंगोल, ना. मेछ मंगोल, म. मीन मंगोल। २. फ. चहौ। ३. म. दोद, अ. फ. कोट।

(१०) १. म. मनौं भूप, स. इसे भूप। २. मो. बाहूठ, धा. बाजूनि, फ. बाजुन, अ. बाजनि, शेष में 'बाजूनि'। ३. धा. म उ. स बाजून, अ. बाषूनि, फ. नाषंनि, ना. बाजूनि।

(११) १. अ. फ. तेर, ना तेज। २. म. नर जोर, अ. फ. हजेर। ३. अ. फ. पट्टेनि, उ. स. पट्टेव।

४. धा. ढिल्ले, मो. झिलि (=झिले), अ. झिल्ले, फ. म. झल्ले, उ. स. झिल्ले; ना. झिलै ।

(१२) १. मो. चपीइं (=चपिअइं), धा. कपिये, अ. फ. चपिए, ना. म. उ. स. चंपियं । २. धा. प्रानि, अ. फ. पानि, मो. म. ना. उ. स. पान । ३. मो. तु (= तउ), शेष में 'ते' । ४. धा. अ. मेरु, फ. मरुव । ५. मो. ढिल्लि (= ढिल्ले), धा० ढिल्ले, अ. फ. ठिल्ले, स. ढिल्ले, उ. ठिल्ले, म. तिले ।

(१३) १. धा. अ. रेस रेसम्म नीरीति, म. उ. स. रेसमी रेस नारीति, ना. रेस रसमीति नारीति ।

(१४) १. धा. ना. सेस सदेह सिंदूक (संदूखि–धा.), अ. मीस सिंदूर सिंदूष, म. उ. स. सिरी सीस सिंदूर सोभा (सोभं–म.) सु ।

(१५) १. मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसीमें नहीं है । २. मो विरष (= वइरष) । ३. मो. रत नील पीत, धा. म. उ. स. पतिपात, अ फ. पतिपत्ति, न. पतिवपत । ४. धा. ना. वल्ली ।

(१६) १. धा. मनो पवनराइ ढालेति ढल्ली, अ. फ. मनौ बनराज बालेति (ढालेति–फ.) हल्ली, स. ना. उ. स. मनहु बनराइ द्रुम डाल हल्ली ।

(१७) १. उ. स. घटें घेन घोरंन, म. घट घोरन सोर, ना. घन घट घोरन घोरं । २. मो. शारं, म. मत्तौ, फ. सज्जे ।

(१८) १. मो. हलये मन, धा अ. फ. ना. हल्ल ए. मत्त (मत–ना.), म. उ. स. हलं हालए (हालय–म.) मत । २. ना. अ फ. विवान ।

(१९) १. धा. सीधु संबध, अ. फ. पो सिंधु संबधे, ना. विरुद वरदाइ, म. उ. स. बिरद बरदाइ (बरदाय–म.) । २ धा. बधइ (< बधे ?) धुरगा, ना. म., उ. म आगे (आगे–म. अग्गे–ना.) वृदगा (त्रिदगा–ना.) ।

(२०) १. धा. सुर्गा सुग्री, अ. सुर्ग सुग्रीव, फ. सुर्ग सुगीत, ना. सुगा सगीत, म. उ. स. मनौं स्वर्ग संगीत । २. धा डरि ईंद्र, अ. फ. डरि चंद्र (डरि इंद्र–अ.), उ. स. करि रंभ, म. डरि रभ ।

(२१) १. धा. अ. फ. उ. स. सीस सिंदूर ना. सीस सजुत्त, म. ससी सिंदुराजं । २. धा. गय झिप्पि, उ. स. गज जप, म. रज झप । ३. मो. झपि (= झपइ), धा. अ. फ. ना. झंपै, म. उ. स. झपे

(२२) १. धा. ना दिक्खि, म. मनौं देखि । २. मो. सिहि देस, फ. सबं देव, ना. सहि देव, शेष में 'सहदेव' । ३. मो. कंपि (= कपइ), धा. अ. फ. ना. कपे, म. उ. स. कपे ।

(२३) धा. दत्त अ. फ. म. उ. स. दति । २. ना. म. उ. स. जरये (जरीयं–म., जरीयै–ना.) सुलष्षी ।

(२४) १ अ. फ. म. उ. स. मनो (मनौं–म.) बीज, ना. मनुं बीज । २. ना. झलकंति, म. झबकंत, उ. स. झमकत । ३. फ. घति । ४. ना. म. उ. स. पषी ।

(२५) १. धा. अ. फ. इत्तनहि सास (सीस–फ.) घरि (धरि–अ. फ.) वारि रहियो (रहियौ–फ.), म. उ. स. इत्तनिय (इत्तनी–म.) आस धरि मध्य (मिधि–म.) रहियं, ना. इत्तनी आसं धरि मधव रहीयं ।

(२६) १. मो. कहि (= कहइ) प्रथीराज प्रथीराज गहियं, धा. जु कहि जु कहि प्रिथिराज गहियो, अ. फ. न. कहहि पृथिराज पृथिराज गहियो (गहियौ–फ., गहिय–ना.), म. उ. स. कहहि प्रथिराज गहियं सु गहियं ।

टिप्पणी—(१) गय < गज । (२) रत्त < रक्त=लाल । (५) सुंढ < शुण्ड=सूँड़ । (६) पहार < प्रहार । (७) उज्जय < उद्यत । वान < वर्ण । (८) चिकार < चीत्कार । (९) मिंठ [दे०]=महावत । मंगूल=मंगोल । वंक < वक्र । (१०) तेह < तादृश् । (११) तर < वेग, बल । पट्ट < पट्टया [दे०]=पाद-प्रहार । (१२) मेर < मेरु । (१३) रेस रेसमिअ < रेशमा रेशे (लच्छियाँ) । णारी < नालीक=एक प्रकार का भाला । (१४) सेस < श्लिष्ट=मिला हुआ । (१५) रत < रक्त=लाल (१६) वनराइ < वनराजि । ढाल < डाल । (१८) मन=मनु, मानो । (२०) येभ < इभ=हाथी । (२२) सहि=सभी । (२३) जर < ज़र (फा०) । (२४) बीज < विद्युत् । पष्प < पक्ष । (२५) निअ < निज=अपना ।

[११]

दोहरा— गहि गहि१ कहि[२] सेना ति सह३ चलि हय गय मिलि तव्व[४] । (१)
जिम[१] पावस पुव्वइ[२] अनिल हलिगत वद्दल सव्व३ ॥ (२)

अर्थ—(१) [जब] उसने समस्त सेना को 'पकड़ो', 'पकड़ो' कहा, हय, गजादि तब सब मिल कर [इस प्रकार] चल पड़े (२) जैसे पावस में पूर्व की हवा से सब बादल हिलग—एक दूसरे से मिल—जाते हैं।

पाठान्तर—(१) १. मो. गिहि गिहि, शेष में 'गहि गहि'। २. मा. किहि, अ. कवि। ३. धा. सेना न सब, मो. सोना ति सह, अ. फ. सेना त सब ना. म. उ. स. सेना सकल। ३. मो. चलि हय गय मिलि सव, धा. अ. फ. चलि (हलि–फ.) हय गय मिलि (मिल–फ.) इक (एक–धा, इक्ख–फ.), ना. म. उ. स. हय गय वन उठि (उठि–म.) गव्व।

(२) १. धा. जाणूं, अ. फ. म. उ. स. जनु, फ. जुत्त। २. मो. पवि (पव्वइ), धा. चुव्वइ, म. अ. पुव्वइ, फ. पुव्वहि, उ. स. पुव्वहु। ३. मो. हय गय वद्दल सव्व, धा. अ. फ. हलि वद्दल (चंदलु–फ.), बहु भिष्ष (भेक–धा., भष्षि–फ.), ना. म. उ. स. हलि गति (हलि गत–ना., हिलि गति–म.) वद्दल सव्व।

टिप्पणी—(१) सह=समस्त। (२) हलिगना=हिलगना, पास आना।

[१२]

अर्ध नाराच— हयग्गयं नरम्भर[१] । (१)
उनव्वि नय[१] जलधूधर[२] ॥ (२)
दिसा निसान१ वज्जये[२] । (३)
समुद्द सद्द*१ सज्जये२ ॥ (४)
रजोद मद्द उष्षली१ । (५)
व्योम[१] पंक संकुली२ ॥ (६)
तटाक१ बाल[२] रंगिनी । (७)
चकी चक१ वियोगिनी ॥ (८)
पयाल पाल+[१] पल्लये२ । (९)
दिगंत१ मंन[२] हल्लये× ॥ (१०)
अनंद ते१ निसाचरे ।× (११)
कु[१] कंपि२ तुंड आचरे३ ॥× (१२)
भगंत१ गग कुल्लये१ । (१३)
समुद्द१ सून२ फुल्लये३ ॥ (१४)
अवत्ति१ छत्त२ छत्तये ।× (१५)
सरोज मोज[१] हल्लये ॥× (१६)

अषंड रेन मंडने१ । (१७)
डरप्पि इंदु छंडने१ ॥ (१८)
कमठ पिठ१ निठुरे२ । (१९)
प्रसलच१ भार२ मिथ्थरे३ ॥ (२०)
साप° हस°१ मग्गये । (२१)
समाधि१ आध२ जग्गये ॥ (२२)
अपूरवं ति बंधये१ । (२३)
जटालु कालु लुब्भये१ ॥ (२४)
नरिंदं पंगु१ पायसं । (२५)
स छत्रि मगि१ आयसं२ ॥ (२६)
गहन जोगिनी१ पुरे२ । (२७)
आप आप१ विथ्थुरे ॥ (२८)

अर्थ—(१) हय, गज, नर और भट (२) उन्नत होकर नत हुए जलधरों के समान [लगते] थे। (३) दिशाओं में निशान (धौंसे) बजने लगे, (४) [जिससे] समुद्र का शब्द भी लज्जित हो रहा था। (५) [सेना के सचरण से] रजोद—रज देने वाली भूमि—का मद उत्खंडित हो गया, और (६) व्योम पंक-संकुल हो गया। (७) [रात्रि का आगमन समझ कर] तडाग [—तट] की रंगिनी—क्रीड़ा करने वाली—वाला (८) चकवी चकवे से वियोगिनी हो गई। (९) पाताल [सेनाओं के भार से दबकर] पिलपिला उठा (१०) और दिशाओं के मत्त [गज] हिल गए। (११) निशाचर [रात्रि का आगमन समझ कर] आनंदित हुए, (१२) पृथ्वी काँप गई और तुडवाले जीव—सचरण करने लगे। (१३) [आकाश—] गंगा के कूल पर भाग कर आए हुए (१४) समुद्र—सुवन (चद्रमा) फूलने (प्रसन्न होने) लगे। (१५) उन्होने [अपनी किरणों का] छाता तान दिया, (१६) जिससे सरोज का सुख हिल गया। (१७) [किन्तु] अखंड रेणु से मंडित होने के कारण (१८) इंदु भी डरकर [आकाश गंगा को] छोडकर भाग निकला। (१९) निष्ठुर कमठ-पीठ (२०) प्रसरण-भार [पड़े पड़ने के कारण] मिथ्थुर (विस्थूल) हो गई। (२१) सर्प (शेष) हंस (प्राणों) की याचना करने लगे, (२२) और [महादेव] समाधि-आधि से जग गए। (२३) अपूर्व रूप से उन्होंने [जटा को] बाँधा, (२४) और उन जटालु—शिव—ने काल को भी लुब्ध कर लिया। (२५) पंगराज (जयचंद) का आदेश था, [अतः] (२६) क्षत्रियो ने उससे आदेश माँगा, और (२७) योगिनो पुरेश—पृथ्वीराज को पकड़ने के लिए (२८) वे आप ही आप फैल गए।

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।
§ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।
× चिह्नित चरण म. में नहीं है।

(१) १. ना. सुनिब्भरं।

(२) १. धा. उनेविये, अ. फ. उनें विनें, ना. अनै विनै, म. सुननय, उ. उमव्विय, स. उनम्मिय। २. धा जलद्दर।

(३) १. म. उ. स. विस दिसान। २. अ. फ. पज्जए।

(४) १. मो. साद, शेष सभी में 'सद्द'। २. फ. लज्ज।

(५) १. मो. रजोद मद उप्पली, धा. रजाद मिद अंगुली, म. रजोद सद्द अंगुली, फ. सरताद सद्दए अंगुली, उ. रजोद मद्द उष्पली, ना. रजोद मद्द उच्छली, म. स. रजोद मोद उष्पली।

(६) १. मो. पेम, धा. वियोम, अ. फ. व्योम, ना. सु व्योम, उ. स. सव्याम, म. सयोम। २. ना. संकली।

(७) १. ना. तदाकि। २. धा. बालु, अ. फ. बान, म. वार। ३. अ. फ. रंगनी, म. सोगिनी, उ. स. रींगनी।

(८) १. फ. जु चक्क सो वियोगिनी, अ. फ. जु विक्क सो वियोगिनी, म. उ. स. सुचक्कयो बियोगिनी, ना. चवक्कि सठि जोगिनी।

(९) १. धा. पइल, अ. फ. पल्ह, ना. म. उ. स. पाल। २. म. पलर।

(१०) १. उ. स. द्रगत, फ. दिगति, ना. द्रिगत। २. फ. मति।

(११) १. धा. अ. फ. अनदने, उ. स. अनदिते।

(१२) १. मो. में 'क' शेष सभी में 'कु'। २. धा. कुप, ना. कुपि। ३. ना. कुड वासके।

(१३) १. मो. मंगन। २. अ. फ. म. कूलए।

(१४) १. उ. स. समुद्द। २. ना. सुन। ३. अ. फ. म. ना. फूलए।

(१५) १. धा. चरंति, अ. फ. प्रवर्त, ना. प्रवर्ति उ. स. प्रवृत्ति। २. ना. छत्र, फ. छव, उ. स. छत्रि।

(१६) १. धा. भोज सत्तए, अ. फ. मोज सत्तए, ना. मौज सुब्भए, उ. स. मौज लज्जए।

(१७) १. धा. मंडणे, ना. मंडले, म. मडयो, उ. स. मडयौ।

(१८) १. धा. छंडणे, ना. इंदु छंडले, म. स. इंद्र छडयो, उ. इंद्र छडयौ, ना. डंड छडिले।

(१९) १. मो. पीठ, अ. फ. पिट्ठि। २. फ. रनं, म. निवुरं, स. निंट्टुरं, ना. निठ्ठुरं,।

(२०) १. धा. प्रसार, अ. फ. प्रसल्लि, म. उ. स. प्रसाल, ना. प्रसल्ल। २. म. उ. स. माळ। ३. धा. भित्थरं, अ. भित्थुरं, ना. बित्थुरं, फ. म. उ. स. विथ्थुरं।

(२१) १. धा. में 'हस' के 'स' के पूर्व चरण का अंश त्रुटित है, मो. ना. सपानि हंस, अ. फ. साप हंस, म. उ. स. छिपान हंस।

(२२) १. म. समधि। २. धा. अ. ना. आद्दि, म. आस।

(२३) १. धा. अ. फ. अपूरवं ति बधयो, ना. अपूर बंच बद्धए, म. उ. स. अपूर पूर बद्धए।

(२४) १. धा. भाग्गयो, अ. भग्गयो, फ. भग्गए उ. स. लुद्धए, म. लधए।

(२५) १. मो. नरेंद (< नरिंद ?) पंगु, धा. म. उ. स. नरिंद पग, अ. फ. नरिंद पाइ।

(२६) १. मो. छत्री मंगि, धा. गसा भुयति, अ. फ. गसा भ्रमति, ना. सभूत्त भगि, म. उ. स. सु छत्रि (षत्र—म.) मंगि, स. भृत्त मगि। २. धा. आइस, अ. फ. आयिस।

(२७) १. फ. जोगनी। २. ना. पुरेस।

(२८) १. धा. जु अप्प अप्प विप्फुरे, मो. आप आप बिथ्थुरे, अ. फ. सु अप्प विफ्फुरे अरे, ना. आप आप विफ्फुरेस, उ. स. सु अप्प अप्प विप्फुरे, म. सु अप जेम विफुरे।

टिप्पणी—(१) भर < भट। (२) उनव < उण्णम < उद्+नम्। नय < नत। (४) साद < शब्द। (५) उष्पली < उक्खलिय < उत्खण्डित=उन्मूलित, उत्पाटित। (९) पयाल < पाताल। (१२) साचर < संचर। (१३) कुल्ल < कूल। (१४) सून < सूनु=पुत्र। (१५) प्रवत्त < प्रवर्तय्। (१७) रेन < रेणु। (१९) निठ्ठुर < निष्ठुर। भित्थुर < विस्थूल। (२०) प्रसल्ल < प्रसरण। (२१) साप < सप=शेष। (२५) पायस < प्रादेश। (२६) आयस < आदेश। (२८) विथ्थर < वि+स्तृ।

[१३]

दोहरा— सह समांन सह[१] छत्रपति सह[२] सम जुध्ध[३] संजुत्त[४] । (१)

*गहन[१] मीन बंदन कहइ[*२] जिहि लग्गइ[*३] लहु वत्त[४]+ ॥ (२)*

अर्थ--(१) [जयचंद-पक्ष के सामंतो में] सभी समान थे, सभी छत्रपति थे, और सभी युद्ध में समानरूप से सस्तुत (प्रशंसित) थे, (२) किन्तु पृथ्वीराज को पकड़ने के लिए मीर बदन ने कहा (बीड़ा लिया), जिसे यह लघु बात लग रही थी।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

+ चिह्नित चरण का 'गहन' के बाद का अंश अ फ. में नहीं है।

(१) १. धा मो. अ फ. स. मह समान सह, म. उ. तुम सह समान, ना. नम वि समान सह । २. मो. धा. सव, अ. फ. ना म. उ स. सह । ३ मो गुध, फ क्रुद्ध, म जुद्ध । ४. धा. सजुत्त, अ फ. सरिजुत्त (सरियुत्त-फ), म उ. स. मजुद्ध, ना. सजत्त ।

(२) १. अ. फ गहहु । २. मो. म र वदन कीउ (= किअउ), धा मीर बदन हर्ता, ना. म. उ. स. मीर बदन कहै । ३ मो लगि (= लगइ), धा. लग्गे, ना. म. उ. स. लग्ग । ४. धा. लघुमत्त, म. लहुवान, उ. लहु बद्द, स. लहु बद्ध, ना. बहुवत्त ।

टिप्पणी—(१) सह = समस्त । सथुत < सस्तुत । (२) लहु < लघु । वत्त < वत्ता < वार्त्ता=बात ।

[१४]

छप्पय—
परठिया[१] पंगु राय[२] सु+ रीसं[३] । (१)
भषइ* दोइ[१] दुम्मीन[२] हीने न[२] दीसं ॥ (२)
नीच कंधे°[१] प्रही°[२] रोम सीसं[३] । (३)
उप्परइ*[१] फोज प्रथीराज रीसं[३] ॥ (४)

अर्थ—(१) पंगराज (जयचद) ने [उसे] रोष पूर्वक नियुक्त किया। (२) वह दो दुम्मियाँ—मोटी दुमवाली भेड़े खाता था और [इसलिए] हीन (क्षीण) नहीं दिखाता था। (३) उसके कंधे नीचे थे और सिर के बाल झड़े हुए थे। (४) उसने पृथ्वीराज की सेना के ऊपर रोष किया।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

° चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।

+ चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।

(१) धा. पठ्ठिए, अ. फ पठ्ठिय, ना पट्ठीयं, म. पच्छिय, उ. स. सवे पठ्ठिय। २. धा. अ. फ. राइ पंगा, म. उ स. पंग राय, ना. पंगुराय । ३. मो. रीसं, धा. अ. फ. म. उ. स. सुरीस ।

(२) १. सवे द्रोइ, मो. भषि (= भषइ) दोइ, म. भषै दोय । २ धा. दुम्मान, अ फ दुवीन, उ. स. द्रुम्मीन । २. मो. ही नयन, अ. फ. ना. हीनैन ।

(३) १. अ. फ. निचंष्ट, म. नीच कंधे. ना. उ स. किय नीच कध । २. मो. प्रही, शेष में तुछ्छ (तछ्छ-फ.) । ३. म. रोम सु सीसं ।

(४) १. मो. उपरि (= उपरइ), धा. उप्परे, अ. फ. उप्परैं, ना. म. उ. स. परी उघरैं, फ. पंगा । २. धा राय प्रिथिराज । ३. धा. दीस, म. उ. स. ईसं ।

टिप्पणी—(१) परठिअ < पडिट्ठविय < परिस्थापित अथवा प्रतिष्ठापित । (३) प्रहा = झड़ना [यथा बालों का झड़ना]

[१५]

रसावला—
जे[१] कोल[२] पलश्र[३] भषी[४] । (१)
मेछ सव्वं[१] भषी । (२)
रोम राहं रषी[१] । (३)
वीर बाहु[१] पषी[२] । (४)
संमरेन[१] लषी । + (५)
वनेचरं त[१] मुषी । × (६)
बान बाहू षषी[१] । ‡ × (७)
संध+ सा बध्धषी[१] । (८)
टक अट्ठार षी[१] । (९)
दिव्य[१] वाह लषी[२] । (१०)
दुम्मि साह[१] मुषी । (११)
बोलते[१] न लषी । (१२)
पारसी[१] पालषी[२] ।[३] (१३)
पंग पारठ षी[१] । (१४)
स्वामिता[१] चित्तषी । (१५)
ढिल्लि ढिल्लइ*[१] भषी ।[२] (१६)
सट्ठि हज्जार षी[१] ।+ (१७)
पवंग सा[१] पारषी ॥ (१८)

अर्थ—(१) जो कौल होते है, वे पल (मास) भक्षी होते है, (२) [किन्तु] म्लेच्छ सर्वभक्षी होते हैं। (३) वे रोमप्रिय और नखी (बड़े नखों वाले) होते हैं, (४) वे वीर और बाहु पक्षी—बाहु का आश्रय लेने वाले होते हैं। (५) वे स्मृति से लक्ष्य करने वाले होते हैं। (६) वे वनेचरों बदरों (?) के मुख वाले होते हैं। (७) उनका व्याण का [सा] हीन होता है। (८) वे शरीर के सधों (जोड़ के स्थानों) को बाँध रखते हैं। (९) अठारह (?) टंक [का धनुष] खींचते (?) हैं। (१०) वे दिव्य वाहु—लक्षी (?) होते हैं। (११) वे मुख पर दुम (दाढी) का साधन करते हैं। (१२) वे बोलते नहीं दिखाई पडते—कम बोलते हैं। (१३) वे फारस और बलख (?) के होते हैं। (१४) जे पंग (जयचंद) द्वारा परिस्थापित हैं। (१५) उनके चित्तों मे स्वामि भक्ति हैं। (१६) वे दिल्ली को ढीला (शिथिल) करने को झख रहे हैं। (१७) वे साठ हजार हैं। (१८) प्लवगो (घोड़ो) के वे पारखी थे।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित चरण म. में नहीं है।
+ चिह्नित चरण ना में नहीं है।
‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।
* (१) १. धा. अ. फ. उ. स. में यह शब्द नहीं है। २. ना. लोक। ३. मो. ना. म. पलअ, शेष में पलं। [illegible]

(२) १. मा. मेछ सर्व, धा. मेछ सरब, अ. फ. मेछ सव्व, ना मेछ स्रव, म. सस्रवनवं, उ. मेस स्रव, स. मेस स्रवं।

(३) १. मो. म. रषी, क्षेप में 'नषी'।' २. म उ. स. में यहाँ और है : वेयजे किद्धुषी (विद्धषी–म.)

(४) १. धा. चाहू, मो. वेहू, ना. वाह, अ. फ. म. उ. स. बाहु। २. धा चखी।

(५) १. धा. सभे नारं, म. उ. स झुमरे ना।

(६) १. धा में ये दो शब्द नहीं हैं, ना. वन्न रत्त।

(७) १. मो. हू, धा ना. बाह

(८) १. धा. संघ सावरखी, मो सिंध सावधर्षी, अ. फ. सध सा वधषी, ना. सर्वदा विद्धषी, म. उ. स. बिद्धि (बिद्ध–म.) सा वद्धषी।

(९) १. म. स. अद्धरषी। २. मो. के अतिरिक्त सभी में यह और है (स पाठ) :—

खंच (खचि-म.) बिग्भारषी। कोट नाराचषी (नार जषी–म.)

और मो. म. तथा ना. के अतिरिक्त सभी में है:

प्राण जोह लषी। कूल वाह (कोल वाहे–म.) चषी।

(१०) १. अ. फ. हिद्दि, ना. बिज्जु, म. स. बाज। २. धा. वाहू नखी, ना. बाहै लषी, म. स. चाहै लषी।

(११) १. धा. द्रुम्म सिसा, अ. फ. धर्म साह, ना. दुमी साहै, स. द्रुम्म साहं, म दुमि साहै, उ. दुम साहै।

(१२) १. अ. फ. बालते, म. बोतने।

(१३) १. म. पारस। २. म. उ. स. पारषी। ३. ना. म. उ. स. में यहाँ और है :

बान बाह पषी।

(तुलना० चरण ४)

(१४) १. धा पारठुकी, म. पारंढषी, ना. पारढषी।

(१५) १. धा. स्वामि ना. म. सामिता।

(१६) १. मो. ढिल ढिली (<ढिलि=ढिलइ) धा. ना. ढिल्ल ढाहं, म. ढिल्लि डाहं, म. स. ढिल्लि ढाहं। २. ना. म. उ. स. में यहाँ और है: बीचरत्तं मुषी (वीखरतं मुषी–म.)। ना. में यहाँ और भी है: रज्ज रज्ज रषी।

(१७) १. धा. अ. फ. साहि हजारषी, मो. सठि हैम रषी, म सठि हजारं मुषी।

(१८) १. धा. पगवे, म. पवंगे, म. पवंगं, फ. पवगम।

टिप्पणी—(१) पलक < पल [क]=मांस। (३) राह < राध। (४) पष < पक्ष। (५) संभर < स्मरण। वाह < व्याध। उक्ख [दे०]=हीन। (१३) पाक्ष < बलख (?)। (१४) पारठु < परिस्थापित।

[१६]

भुजंग— हय दल पय दल१ अग्गइ* सुंडारे२। (१)
नृपतिन छत्रिन१ लध्धे न२ पारे। (२)
सूर१ सामंत मभ्भे२ हजारे। (३)
मनउ*१ विटिय२ कोट मभ्भे३ मनारे४॥ (४)

अर्थ—(१) अश्व-दल और पद-दल के आगे [जयचंद की सेना में] सुंडारे (हाथी) थे, (२) नृपतियों और क्षत्रियों का तो पार नहीं मिलता था। (३) शूर और सामत [उस सेना के] मध्य में हजारों थे, (४) [जो ऐसे लगते थे] मानो कोट (परकोटे) के मध्य में वेष्टित मीनार हों।

पाठान्तर—चिह्नित शब्दसंशोधित पाठ के हैं।

० चिह्नित चरण धा. में नहीं है।

(१) फ. हय दल पइ दल, ना. हय दलं पय दल, म. उ. स. हय सेन पय सेन। २. धा. अ. फ. अग्ग सुडारे, मो. अगि (=अगइ) सुडारे। ना. अग्ग सुढारे, म अग्ग सुडारे, उ. स. अग्ग सुडार। ३. फ. में यह शब्द नहीं है।

(२) १ धा. नृपतिन छत्तनु, अ नृपतिन छत्रन, फ. नृपतिन छत्रति, म. विष तीन, ना. उ स. त्रिपत्ती नछत्रीन (नुछत्रीनु–ना.)। २. धा लब्भन, अ फ. लब्भंन, ना. लव्भत, म. उ. स. लभ्भ न।

(३) १. म. उ स. तिन सूर। २. मो. मध्ये, अ. फ. मझ्झे, ना. म. उ. स. मध्य।

(४) १. मो. ना. मनु (=मनउ), म. मनौ, शेष सभा में 'मनो'। २. म. विटीय, ना. वीटीय। ३. धा. के, ना. मझ्म, म. उ. स. मझे। ४. धा. उ. स. मुनारे, अ. फ. मर्नारे, म. सुनारे।

टिप्पणी—(२) लभ्ध् < लभ्। (४) विटिय वेष्ठित।

[१७]

भुजंग— मोरिय[१] राज प्रथीराज[२] वग्ग[३]। (१)
उट्ठियं[१] रोस आयास लग्गं[२]। (२)
पथ्थ[१] भारथ्थि[२] भरि[३] होम[४] जग्ग[५]। (३)
षुल्लियं[१] षग्ग षंडु वन[२] लग्गं॥ (४)
उट्ठिय[१] सूर सामंत तज्जे[२]।‡ (५)
षोल्लियं सिंघ* साहथ्थ लज्जे[१]। (६)
वाजने[१] वीर रा पंग[२] वज्जे[३]। (७)
मनउ*[१] आगमे[२] मेह[३] आषाढ गज्जे[४]॥ (८)
मिले योध वथ्थे[१] न हथ्थे हकारे[२]। (९)
उठे[१] गयन लग्गे समं सार[२] झारे। (१०)
कटे[१] कंध[२] काबंध[३] सधे[४] ननारे[५]। (११)
परे जंग रंगं मनउ*[१] मत्तवारे॥ (१२)
झरे[१] संभरे राय[२] सं[३] सार[४] सारे[५]। (१३)
जुरे[१] मल्ल हल्लइ*[२] नही जे[३] अषारे। (१४)
जवे हारि हल्लइ*[१] नही को[२] पचारे। (१५)
तबे[१] कोपियं[२] कन्ह[३] मयमत्त[४] भारे[५]॥ (१६)
जबे[१] अप्पियं मारु हथ्थे[२] दुधारे।° (१७)
फूटे[१] कुंभ कुम्मं नीसान भारे।° (१८)
गये[१] सुंड दंतीनु[२] दंता उभारे[३]। (१९)
मनउ*[१] कंदला कंद भिल्ली[२] उषारे॥ (२०)
परे पंडुरे[१] वेस ते[२] मीरु सीसं[३]। (२१)
मनउ*[१] जोगिनी जोग[२] लागति रीसं[३]। (२२)

वहइ*[१] वान कम्मान[२] दीसै[३] न भानं । (२३)
भमइ*[१] चिध्धनी गिध्ध[२] पावै न जान[३] ॥ (२४)
रुलि षेत रत्त[१] चरंतं[२] करारं[३] । (२५)
बोलि[१] कंठ कंठी[२] न लग्गी[३] उभारं । (२६)
सरं[१] श्रोणि[२] रंगं पलं पारि[३] पंकं[४] । (२७)
वज्जइ*[१] मंस षंचि गंधि वासि[२] करकं[३] ॥ (२८)
दुमं ढाल लोलंति हालंति देसं[१] । (२९)
गये हंसे नंसीय गेहे सुवेसं[१] । (३०)
परे पांनि जघ[१] घरंगं निनारे[२] । (३१)
मनउ*[१] मछ्छ कछ्छ[२] तरे तीर भारे[३] ॥ (३२)
सिरं मा सरोज[१] कचे[२] सा सिवाली[३] । (३३)
गहे[१] अंत पध्धी[२] सु सोहै[३] मराली[४] । (३४)
तटं[१] रभ रत्त[२] भरंतं[३] विचीरं[४] । (३५)
कतं स्याम स्वेतं[१] कतं[२] नीर[३] पीरं[४] ॥ (३६)
मुरे[१] अंग अंगे[२] सुरंगे[३] सुभट्टं । (३७)
जिते[१] स्वामि[२] कज्जे[३] समपं सुघट्टं[४] । (३८)
काल[१] जम जाल हथ्थी[२] समानं[३] । (३९)
इत्तने[१] जुध्ध अस्तमित भानं[२] ॥ (४०)

अर्थ—(१) राजा पृथ्वीराज ने बाग (लगाम) मोड़ी, (२) तो [उसका] रोष उठा और वह आकाश से जा लगा, (३) [जिस प्रकार] पार्थ महाभारत में अहं भाव (!) से भर कर जाग पड़े थे, (४) और उनका खड्ग खाडव वन [को दग्ध करने] मे लग गया था। (५) शूर-सामंत तर्जित होकर उठ पड़े, (६) और सिह के समान लज्जित होकर उन्होंने हाथ खोले। (७) पंगराज के बाजे बज उठे, (८) मानो आषाढ मे मेघ आकर गज उठे हों। (९) योद्धा व्यस्त (अलग-अलग) मिले, और उन्होंने हाथो का हॅकारा (वापस या पीछे बुलाया) नहीं, (१०) [उनके उठे हुए हाथ] गगन से जा लगे, और समान रूप से उन्होने सार (शस्त्रास्त्र) झाड़े—चलाए। (११) कधे, कबंध, सध—शरीर के जोड—कट कट कर अलग जा पड़े (१२) और वे जग (रण) के रग स्थल में ऐसे जा पड़े जैसे मत वाले [पड़े] हो। (१३) साभर राज (पृथ्वीराज) के द्वारा सारे सार (शस्त्रास्त्र) झले गए। (१४) [किन्तु जयचद पक्ष के योद्धा उसी प्रकार नही हिले] जैसे अखाड़े में जुटे हुए मल्ल नहीं हिलते हैं। (१५) जब इस प्रकार हार कर भी वे हिल नही रहे थे, और किसीने प्रचारा (ललकारा), (१६) तब अति मदमत्त हो कर कन्ह कुपित हुआ। (१७) जब उसने हाथो से दुधारे की मार दी, (१८) तो [गजो के] कुंभ फूट कर झूमने (झूलने) लगे, और भारी निशान (धासो) बजा। (१९) दंतियो (हाथियो) के शुण्ड [कट] गए और उनके दॉत [इस प्रकार] उखाड़ लिए गए (२०) मानो भिल्लनी ने कदल [लता] के कद उखाड़े हो। (२१) मीरो के सिर पाडुर वेष में [इस प्रकार] पड़े हुए थे (२२) मानो किसी योगिनी का योग [—पात्र] दिखाई पड़

रहे हों। (२३) कमान (धनुष) वाण प्रवाहित कर रहे थे। [जिसके कारण] भानु नहीं दिखाई पड़ रहा था। (२४) [योद्धाओं के गिरने के कारण] गिद्धिनी और गिद्ध [इधर-उधर] चक्कर काट रहे थे, और [वहाँ शवों के पास] जाने नहीं पा रहे थे। (२५) उस रक्त [वर्ण के] क्षेत्र में रोर करते हुए कराल पक्षी (काग) विचरण कर रहे थे, (२६) [जिसके कारण] कंठी (कोकिल) बोल करके कठ नहीं उभाड़ (खोल) रहे थे। (२७) शोणित का वह रंग-स्थल एक सर [बन गया] था, जिसमें पल (मांस) का पंक पड़ा हुआ था, (२८) [जिसमें और भी] मांस जा रहा था, दुर्गंधि खिंच रही था, और करंक (हड्डियाँ) निवास कर रही थीं। (२९) वे ढाल जो लोल थीं, और हिलती हुई थीं [अपने को] द्रुम, बतला रही थीं। (३०) जो हंस (प्राण) नष्ट होकर निकले रहे थे, वे ही वे हस थे जो अपने सुंदर घरों को जा रहे थे। (३१) पाणि, जङ्घ, धड़ [शरीर से] अलग पड़े हुए थे, (३२) [वे ऐसे लगते थे] मानो [उस सरोवर के] मच्छ-कच्छ हों जो उसके तीर (तट पर) तैर रहे हों। (३३) [कटे हुए] सिर सरोज थे, और कच शैवाल थे; (३४) अंतड़ी लिए हुए जो गिद्धिनी थी, वही उस सरोवर पर शोभित मराली थी। (३५) उस [सरोवर] का रंभ (शब्द पूर्ण ?) रक्त तट चीरों से भरा हुआ था; (३६) कितने ही [उन में से] श्याम और श्वेत तथा कितने ही नील और पीत थे। (३७) वे सुभट गण सुन्दर अंगागों [को प्राप्त कर उन] का विलास कर रहे थे, (३८) जितनों ने (जिन्होंने) अपने शरीर को स्वामि कार्य में समर्पित किया था। (३९) [वहाँ पर] हाथी काल के यम जाल के समान थे। (४०) इतने युद्ध के अनंतर भानु अस्तमित हो रहा।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

‡ चिह्नित चरण फ. में नहीं हैं।

० चिह्नित चरण धा. में नहीं है।

(१) १. म. उ. स. तबै मोरिय। २. मो. राय प्रथिराज, शेष में 'राज प्रिथिराज'। ३. मो. ना. बागं, शेष सभी में 'वग्ग'।

(२) १. धा. अट्ठिय, फ. उट्टिया, म. उ. स. वरं उट्ठियं। २. मो. लग्गं, शेष में 'लग्गं'।

(३) १. धा. ना. पथ, म. उ. स. मनो (मनौं—म.) पथ्थ। २. अ. भारथ्थ, ना. म. पारथ, शेष में 'पारथ्थि'। ३. अ. भरि, शेष में 'हरि'। ४. धा. हेम। ५. धा. जिग्गै।

(४) १. मो. षुल्लियं, धा. ना. खोलियं, म. मनौ लषियं, उ. स. मनो षोलियं, शेष में 'षोलिय'। २. धा. खाड्योन, अ. फ. षडुअन, म. उ. स. खड्डून, ना. मंड्यौन।

(५) १. मो. उड्डियं, धा. अ. ना. उट्ठियं, म. उठियं रन, उ. स. वरं उट्ठियं। २. धा. ना. ताजे, मो. तागे, म. तजे, अ. उ. स. तज्जै।

(६) १. मो. षोलियं संघ सहय लागे, धा. रोहिया सिंघ साहत्थ आजे, अ. फ. छोहिय सिंघ साहथ्थ लज्जे, म. उ. स. तत्र षोलियं षग्ग साहथ्थ रज्जै, ना. षोलिय पग्ग साहत्थ राजे (तुलना० चरण ४)।

(७) १. म. उ. स. सुर बाजने। २. अ. दोररा पंगु, फ. धार राषैगु, ना. पगरा वीर वीर। ३. उ. स. बज्जै, अ. फ. म. बज्जे।

(८) १. मो. मनु (=मनउ), धा. मनो, अ. फ. मनौ, ना. मनुं (=मनउ)। २. म. आग मैं। ३. मो. मेह, शेष में 'मेघ'। ४. अ. फ. म. गज्जे।

(९) १. उ. स. मिले लोह हथ्थ, ना. म. मिले जो धहथ्थ। २. धा. न लग्गे हकारे, अ. फ. न लग्गे करारे, मो. न हच्छे हकोरे, म. उ. स. सुवथ्थं हकारे, ना. ति बथ्थं हकारे।

(१०) १. धा. उडे, म. अ. फ. ना. उडै, उ. स. उड़े। २. स. सकंसार।

(११) १. मो. कट, धा. कट्टे, अ. फ. ना. उ. स. कटै, म. कटे। २. यह शब्द मो. में नहीं है।

३. धा. कंत्रंध, ना. कव्वध। ४ मो. सधे, म. संधि, शेष में 'सध'। ५. अ. म. उ. स. निनारे, ना. निरारे।

(१२) १. मो. मनु, ना. मनुं (=मनउ), अ. फ. म. मनौं।

(१३) १. धा. डरे, मो. जुरे, म. उ. स. झरं, फ. झरं। २. धा. अ. फ. राइ, म. उ. स. राव। ३. अ. फ. सा, ना. सुं (=मउ), म. उ. स. सो। ४. फ. मार। ५. ना. म. उ. स. झारे।

(१४) १. जुरे। २. मो. हलि (=हलइ) धा. अ. फ. हल्ल। ३. धा. ते, मो. जे, म. ज्यौं, शेष में 'ज्यों'।

(१५) १. धा. जीवे हारि हल्ले, मो. जुरे हल हलि (=हलइ), ना. म. उ. स. जवै हार (हारि—ना.) मन्ने (मन—म.), अ. फ. जवै झारि हल्ले। २. धा. चो, म. का।

(१६) १. अ. फ. तये, ना. तबैं। २. अ. फ. कोपियो। ३. धा. कोम। ४. मो. नीसान (तुल० चरण १४) म. मैं सत। ५. धा. मारे।

(१७) १. अ. फ. जहा। २. अ. फ. मध्ये, म. ना. हथं।

(१८) १. अ. फ. कटे, म. उ. स. फूटे, ना. फटैं।

(१९) १. धा. गये, अ. फ. अे, उ. स. गहे, ना. म. गहै। २. ना. दंडंहि। ३. धा. दता उपारे, ना. दता उभारे, म. दती उभारे, अ. फ. दतौ उपारे।

(२०) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनु (=मनउ), म. मनौ, शेष में 'मनो'। २. अ. कदरा, म. कद्दरा। ३. मो. विल्ली, ना. भाली (< भीली), म. उ. स. भील।

(२१) मो. परं पंडरे, उ. स. परे पंगुरें, म. अ. परे पत्तर। २. ना. भेस ते, उ. स. पंडुरे, म. पंगुरं। ३. फ. मीसं।

(२२) १. मो. मनु (=मनउ), ना. मनुं (=मनउ) अ. फ. म. मनौ, शेष में 'मनो'। २. धा. जोगिनी जोट, मो. योगिनी योग, अ. जोगिनी पत्र, फ. जोगिनी जत्र। ना. जोगीयां जोग, म. स. जोग जोगीय, उ. जोगि जोगीय। ३. अ. फ. लागंत दीसं, ना. म. उ. स. लागत रीसं।

(२३) १. मो. वहि (=वहइ), धा. ना. म. अ. फ. वहै। २. मो. में यह शब्द नहीं है। ३. ना. सुज्झे।

(२४) १. मो. भमि (=भमइ), अ. फ. भवै, म. उ. स. भ्रमैं। २. धा. ग्रिद्धणी ग्रिद्ध, अ. फ. गिद्धिनी गिद्ध (गिद्धि—फ.), म. उ. स. गिद्धनी (ग्रिद्धनी—म.) गिद्ध। ३. म. उ. स. में यहाँ और है (स. पाठ):

> लगे रोह रत्ते अरत्ते करारं। मनो गज्जियं मेघ फट्टे पहारं।
> दई कन्ह चहु आन अरि पील सीसं। कही चंद कव्वी उपम्मा जगीसं।
> तितं षंग सधी महापील मत्तं। मनों षंचियं द्रोन बरबाय पुत्तं।
> किधौं षंचियं राम हथिना पुरेसं। किधौं षंचियं मथन गिरि सुर सुरेसं।
> किधौं षंचियं कन्ह गिरि गोपि काजं। धरी सीस ऐसी सुभइं विराजं।

(२५) १. धा. रुने षेत रत्तं, मो. रुलि षेत रत्तं, अ. फ. रुलैं षेत अंतं, ना. म. उ. स. रूरैं (रुरे—म.) षेत रत्तां। २. ना. सरत्तं, म. उ. स. सुरत्तं। ३. मो. किरार, शेष में 'करारं'।

(२६) १. मो. बोलि धा. घुले, अ. फ. घुलें, उ. स. घुरैं, म. घुरे, ना. घुरै। २. धा. संठी। ३. धा. लंगी, ना. लग्गें, म. लागे।

(२७) १. धा. अ. फ. ना. सरं, म. उ. स. सुरं। २. धा. स्रोन, अ. फ. स्रौन, ना. म. श्रोन, स. श्रोन। ३. धा. पार। ४. ना. वक।

(२८) १. मो. वजि (=वजइ), म. वजे, ना. वजै। २. धा. मंस नंस सुवेसे, मो. मंस षचि गंधि वासि, अ. फ. बंस नसं सवेसे (वेसे—फ.), ना. म. उ. स. बस (वेस—म.) नेसं सुवंसं (सुवेसं—म. उ. स.)। ३. ना. करक्कं।

(२९) १. मो. दुमि ढाल लालंति हालंति देसं, धा. दुमं ढाल लोलंति हालं सुदेसं, अ. फ. दुमं

(पुमं–फ.) हल्लि ढालंति हाल सुदेसं ना. म. उ. स. द्रुमं (समं–ना.) ढाळ ढा ˙ सुलाल सुवेसं (सुदेशं–ना.)।

(३०) १. धा. अ. फ. हंस नासं लगे हंस वेसं, ना. म. उ. स. हंस नसी (हसी–ना.) मिलै (मिले–ना.,मिलं–उ.) हंस वेसं ।

(३१) १. ना. जपद्ध । २. अ. निन्यारे, फ. नन्यारे ।

(३२) १. मो. मनु, ना. मनु (=मनउ), म. मनौं, शेष में 'मनो' । २. धा. मत्थ कत्थ । ३. धा. अ. फ. ना. तरंतीर भारे, उ. स. तिरंतं उभारे, म. तिरफं उभारे ।

(३३) १. मो. सरासजं । २. मो. कचे, शेष में 'कच' । ३. अ. सिवीलं, फ. विसालं, ना. सवेली ।

(३४) १. धा. ग्रहै, म. गहै । २. धा. म. उ. स. ना. गिद्धी, अ. फ. गिद्ध । ३. मो. सु शोहि (=सोहइ), धा. स सोभें, ना. स साहै, अ. फ. सु सुंभे । ४. मो. ना. मराली, धा. मुराली, अ. फ. मरालं, उ. स. मुनाली, म. त्रिनाली ।

(३५) १. धा. वढं, म. तटे, अ. फ. टर । २. मो. थरतं, धा. रंतं, अ. फ. रोतं, म. उ. स. थंभं । ३. धा. भरतं । ४. धा. पिचारे, अ. फ. विचारे, ना. ववीर, म. उ. स. वचीरं ।

(३६) १. ना. सेतं । २. अ. फ क्रतं, म. उ. स. कितं । ३. म. नाल (< नील), धा. नील । ४. धा. फ. पारे ।

(३७) १. धा. धरे, म. अ. फ. वरे, ना. परे, उ. स. वरैं । २. अ. फ. अनं । ३. मो. मुरंगे, धा. अ फ. ना.म. उ. स. सुरंगं ।

(३८) १. मो. जित, धा. जिते, ना. जिते, शेष में 'जितो' । २. ना. स्याम, म. सामि । ३. मो. काजे । ४. मो. शर्मं पं, धा. अ. फ. ना. समप्प (समप्पे–अ. फ.) सुघट, म. समपे जु घटं ।

(३९) १. धा. अ. फ. तहां काल, म. उ. स. तिते । २. मो. हाथी, धा. म. अ. फ. हथ्थी, ना. हस्ती । ३. धा. मसाणं ।

(४०) १. धा. अ. फ. भयो इत्तने, हुअं इत्तनें, म. दुअं इतने, ना. इत्तनौ । २. धा. अस्तमित भाणं, अ. अस्तंसु जान फ. अस्तं सु भानं ।

टिप्पणी—(१) वग्ग < वल्गा=लगाम । (२) आयास < आकाश । (३) पथ्थ < पार्थ । होम < अहं (?) (४) षग्ग < खड्ग । (५) ताजे < तर्जित । (८) मेह < मेघ । गाज < गर्ज । (९) वथ्थ < व्यस्त=अलग । (१०) गयन < गगन । (१४) अषारा < अक्खाडग < अक्ष वाटक । (२२) रीस < दृश । (२८) वज्ज < व्रज् । (२९) दुम < द्रुम । देस < देशय्=कहना, बतलाना । (३३) सिवाली < शैवाल । (३४) अंत < अंत्र= आँत । (३६) कत < कति < कियत्=कितना । (३७) मुर=विलास करना ।

[१८]

गाथा— निसि[1] गत वंछीय[2] भानं चकी[3] चकाय सूर सा चित्त[4] । (१)
विधु[1] संयोग वियोगे[2] कुमुदिनि[3] कली[4] कातरा णरा[5] ॥ (२)

अर्थ—(१) जिस प्रकार चको और चक्रवाक निशा के गत होने पर भानु [के आगमन] की वाञ्छा करते हैं, उसी प्रकार शूरों का चित्त था, और (२) जिस प्रकार वियोग में कुमुदिनी कलिका विधु-संयोग [की वाञ्छा करती है], उसी प्रकार कायर नर [उसकी वाञ्छा] कर रहे थे ।

पाठान्तर—(१) १. म. निस । २. मो. वथीय, धा. छठ्ठिअ, अ. फ. वंछहि, म. वंविय (< वंछिय), उ. स. वंछिअ । ३. धा. चकाइ, ना. चकीय । ४. धा. सा रयणी, फ. सा रयनी, अ. सूर सार धणी ।

(२) १. मो. विधि, धा. ना. अ. फ. म. उ. स. विधु (विध–म.) । २. धा. संजोगे, अ. फ. बियोगौ,

ना. बिजोगी, ना. म. उ. स. वियोगी । ३. मो. कुमदनि, फ. कुमुदिना, म. कुमुद, ना. कुमुदिन । ४. मो. कलि, धा. कलिके, अ. फ. तु, ना. कलिकाइ । ५. धा. कते राने, अ. फ. कातरा णरा, म. उ. स. कातरा नाच, ना. कातराना ।

[१९]

दोहरा— उभय सहस हय गय परित[१] निसि[२] निग्रह[३] गत[४] भांन । (१)
सात सहस[१] असि मीर हणि[२] थल[३] विटउ[*४] चहुआंन ॥ (२)

अर्थ—(१) दो हजार अश्वो और गजो के गिरने पर भानु निशा के निग्रह-गत हो गया । (२) इसी प्रकार से सात हजार मीरों [को सेना] को मार कर चहुआन (कन्ह) ने रण-स्थल का वेष्टित कर दिया (पाट दिया) ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. ना. म. उ स. परिग । २. म. निस । ३ धा. अ. आगत, फ आगति । ४. मो. त ।

(२) १. धा सत सहस्स, म. सहस सत, ना. उ. स. सत्त सहस । २. म. उ. स. अस मीर हनि, ना. अस मर हनी । ३. मो. थलि, उ. थल बिल, शेष में 'थल' । ४. मो. विंढ (=विंटउ), धा. विट्यो, ना. म. अ. फ. विंटयो ।

टिप्पणी—(२) विंट < वेष्ट्य्=वेष्टन करना ।

[२०]

कवित— परउ[*१] गंजि[२] गहिलुत्त[३] नाम[४] गोविंद[५] राज[६] वर । (१)
दाहिम्मउ[*१] नरसिंघ परउ[*२] ना गवर[३] जास घर । (२)
परउ[*१] चद पुंडीर[२]‡ चंद‡ पेक्खो[३] मारंतउ[*४] । (३)
सोलंकी सारंग[१] परउ[*२] असि बर[३] झारंतउ[*४] । (४)
कूरंभ राय[१] पालन्ह देउ[२] बंधव[३] तीन निघट्टिया[४] । (५)
कनवज्ज[१] राडि[२] पहिलइ[३] दिवसि[४] सउ मइ[*५] सत्त[६] निवट्टिया[७] ॥ (६)

अर्थ—(१) [रण क्षेत्र मे] वह गुहलौत गजित होकर (मारा जाकर) गिरा जिसका श्रेष्ठ नाम गोविंदराज था । (२) दाहिमा नरसिंघ पड़ा जिसकी धरा नागौर थी । (३) चद्र पुंडीर गिरा, जिसको चद ने मार-काट करते देखा था । (४) सोलकी सारंग पड़ा, जो श्रेष्ठ असि (तलवार) झाड़ (चला) रहा था । (५) कूरंभ राजा पाल्हन देव के तीन बाधव घट गए (मरे) । (६) इस प्रकार कन्नौज-युद्ध मे प्रथम दिवस सौ [राजपूतो] मे सात समाप्त हो गए ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।
‡ चिह्नित शब्द अ. फ. में नहीं हैं ।

(१) १. मो परु (=परउ), धा. पर्‌यो, ना म. पर्‌यौ, शेष में 'पर्‌यो' । २. धा. गज, मो. म. गंज, अ गंध, फ. गधि, ना. स. गजि । ३. मो. गहिलुत, धा. गुहिलोतु, फ. गुहिलौत, ना. गहिलोत,

अ. म. उ. स. गहिलौत । ४. धा. राम । ५. धा. ना. गोइद, म. उ. स. गोयद । ६. धा. जासु ।

(२) १. मा. दाहिमु (=दाहिमउ), शेष में 'दाहिम्मौ' (दाहिम्मो–धा.) । २. मो. परू (=परउ), धा. पलौ, शेष में 'पर्‌यौ' । ३. धा. मो. नागवर, शेष में 'नागौर' ।

(३) १. मो. परु (=परउ), शेष में 'पर्‌यौ' । २. धा. पडर । ३. मो. पेक्षो (=पेक्खो), धा. दिख्यो, अ. फ. म. ना. उ. स. पिष्यौ । ४. मो. मारतु (=मारतउ), धा. मारता, शेष में 'मारतौ' ।

(४) १. धा. अ. फ. सोनकी सारंगु, ना. सालका सिरदार । २. मो. परु (=परउ), शेष में 'पर्‌यौ' (धा. परगे) । ३. मो. असमर, शेष में 'असिवर' । ४. मो. झारंतु (=झारतउ), धा. झारता, शेष में 'झारतौ' ।

(५) १. धा. कुरम्भ राइ, मो कोरम (< कुरंभ) राय, ना. फ. कूरम्भ राउ, शेष में 'कूरंभ राव' । २. मो. पालन देउ, अ. फ. पज्जून सौ, ना. पाल्हननद, म. पाजुन दे, शेष में 'पाल्हन दे' । ३. धा. बध्यो । ४. धा. तित्र तिहिट्टिया, अ. तिकट्टिया, फ. कट्टिया, म. उ. स. सु कट्टिया, ना. निवट्टिया ।

(६) १. मो. कनज, शेष में 'कनवज्ज' । २. धा. मो राडि, शेष में 'रारि' । ३. म. पहिलि (=पहिलइ), धा. पहिलइ, ना. अ. म. फ. पहिल । ४ धा. मो. ना. दिवसि, शेष में 'दिवस' । ५. मो. सुमि (=सउमइ), धा. सउमइ, अ. फ. म. ना. उ स. सो मैं (सौम–म.) । ६. मो. अ. फ. सात, धा. सत्त । ७. धा. निघट्टिया ।

[२१]

कवित्त— अध्ध रयणि[१] चंदनी[२] अध्ध[३] अग्गइ[*४] अंधिआरी[५] । (१)
भोग भरणि अष्टमी सुक्रवारइ[*१] सुदि रारी[२] ।+(२)
च्यारि[१] जांम जंगलीराय[२] निसि[३] निद्द न पुट्टउ[*४] । (३)
थल विंटउ[*१] कमधज्ज रहउ[*२] कंदल आहुट्टउ[*] । (४)
दस कोस कोस[१] कनवज्ज तइ[*२] कोस कोस अंतरि[३] अनी[४] । (५)
वाराह रोह जिमि पारधी[१] इम रोकउ[*२] संभरि[३] धनी[४] ॥ (६)

अर्थ—(१) आधी रात [तक] चाँदनी थी, आगे की आधी [रात] अँधेरी थी । (२) भरणी (नक्षत्र) का योग था, अष्टमी की तिथि, शुक्रवार और शुक्ल पक्ष थे, जब रार (लड़ाई) हुई । (३) चार पहर रात्रि तक जागल-नरेश (पृथ्वीराज) ने नींद नहीं छूटी । (४) कमधज्ज (जयचंद) ने रण स्थल वेष्ठित कर दिया (पाट दिया) और युद्ध में अविचलित (?) रहा । (५) कन्नौज से दस कोस की दूरी तक उसने कोस-कोस के अन्तर पर सेना लगा दी और (६) वाराह को जिस प्रकार शिकारी रुद्ध करता है, इसी प्रकार उसने साभरधनी (पृथ्वीराज) को रुद्ध किया ।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
+ चिह्नित चरण ना. में नहीं हैं ।

(१) १. म. रयन, अ. रेनी, फ. ना. रैन । २. अ. चदिनी, फ. म. चंदनीय । ३. मो. अरध, शेष में 'अद्ध' या 'अध्ध' । ४. धा. फ. म. उ स. अग्गैं, ना. अग्ग, मो. आगि (=आगइ), अ. अग्गे । ५. म. अंधारीय ।

(२) १. मो. सुक्रवारि (=सुक्रवारइ), धा. वार मंगल, अ. फ. सुक्रवारे (सुक्रवरे–फ.), उ. स. सुक्रवारह, म. सुक्रवा । २. म. रारीय ।

(३) १. धा. चार, ना. पारि, फ. चारि । २. धा. जगली राउ, अ. फ. जगली रह्यौ, ना. म. उ. स. जंगलो (जगलीय–म.) राव। ३. अ. तह, फ. तिह । ४. मो. निद न पुट्ठ (=पुटउ), धा. नीद न, घुट्यो, अ. फ. नीद (निंद) न छुध्या, ना. निंद न पौट्यौ, म. निद न घुट्यो, उ. स. निंद न घुट्यौ ।

(४) १. धा. विट्यौ, मो. विंट्ठ (=विंटउ), ना. विटे, अ. फ. विंटे, म. उ. स. विंटयो । २. मो. रहु (=रहउ), धा. रह्वो, अ. फ. ना. म. उ. स. रह्यौ । ३. मो. ना. कमधज्ज, शेष में 'चहुवान' । ४. मो. आहुट्ठ (=आहुटउ), धा. म. उ. स. आहुट्यो, ना. आट्यौ, अ. फ. आहूथा ।

(५) १. अ. फ. कोस अंत, ना. कोस कोस कोस । २. मो. ति (=तइ), धा. ते, ना. तैं, म. तै, शेष में 'ति' । ३. फ. अंतरि, शेष में 'अंतर' । ४. म. अनीय ।

(६) १. अ. जिमि पारधी, फ. जिस पारथी । २. मो. रोकु (=रोकउ), धा. अ. फ. म. ना. उ. स. रुक्यौ । ३. ना. सेभरि । ४. म. धनीय ।

• टिप्पणी—(१) रयणि < रजनी । (२) निद्द < निद्रा । (४) विंट < वेष्टय । आहुट्टउ <अधिस्थित (?) । (६) रोह < रुध् ।

[२२]

रासा— मित्त१ महोदधि मज्झ२ दिसंत३ ग्रसंत४ तम५ । (१)
पथिक१ वधू पथि२ दिट्ठ३ अहुट्टिय*४ चंग५ जिमि । (२)
जुव जन जुवती गंजि°१ सुमत्ति अनंग भय२ । (३)
जिम१ सारस रस+ लुध्घ२ त° मुध्ध मधुप्प लय३ । (४)

अर्थ—(१) मित्र (सूर्य) महोदधि के मध्य [जा चुके] थे, दिशाओं को तम ने ग्रस लिया था, (२) पथिक-वधू की दृष्टि [प्रियतम के] पथ में उसी प्रकार अधिस्थित (?) थी जैसी [खिची हुई] चंग (पतग) होती है, (३) युवाओं और युवतियों की सुमति अनंग-नय से [उसी प्रकार] नष्ट हो चुकी थी (४) जिस प्रकार रस-लुब्ध सारस की अथवा [मधु—] मुग्ध मधुप की हो जाती है ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

° चिह्नित शब्द मो. में नहीं है ।

+ चिह्नित शब्द ना. में नहीं है ।

(१) १. धा. मत्त । २. धा. मज्झि, अ. फ. मंझ, ना. मभ्भ । ३. धा. दीसत । ४. धा. ना. अ. गसंत, फ गसंति । ५. म. फ. तिम, ना. इम ।

(२) फ. पियग, ना. पथिग । २. धा. मो. पथ, फ. पथि । ३. धा. द्रिस्टि, अ. द्रिष्टि, ना. दिष्टि, फ. दिष्ट, म. द्रष्टि । ४. म. अहोटीय (< अहुटीय) । ५. धा. जग ।

(३) १. मो. जुव जन युवती (=जुवती) गजि, धा. जिम सुव युवतिन गत, ना. जुव्वन जुवतिनि गत्ति, अ. फ. जुव्वन जुवती रत्ति (रत्त–फ.), म. उ. स. जुव जन जुवतिन गजि (गजि–म.) । २. धा. मत्त अड गुले, मो. सुमत अनग भय, अ. फ. सुदृष्टि (दिष्ट–फ.) अपप्पनउ, ना. सुमत्ति अनग लौं, म. उ. स. सुमंति (सुमंत–म.) अनग लिय ।

(४) १. अ. फ जिमि । २. फ. रस लध्ध । ३. धा. त मुंध मधुप्प ले, मो. मुध मधुप्प यल, अ. फ.

जु मद्द मधूप लउं, ना. समुद्ध मधुप्प लौं, म. समुद्द समुधतिय, उ. सुमधु मद्द तिय, स. समुद्दह मध्धु तिय।

टिप्पणी—(१) मित्त < मित्र=सूर्य (२) अहुट्टिय < अधिस्थित (?)। (४) लुध्ध < लुब्ध। मुध्ध < मुग्ध।

[२३]

रासा— षेचरह कउ* उयउ* इंदु[१] इंदीवर उद्दयउ*[२]। (१)
नव विरही[१] नव नेह नव जल नय रुद्दउउ*[२]। (२)
भूषन[१] सोभ[२] समीपनि[३] मंडित‡[४] मंडि तन[५]। (३)
मिलि मृदु मंगल[१] कीन मनोरथ सव्व मन॥ (४)

अर्थ—(१) आकाशचरों (तारिकाओं) के [हर्ष के] लिए इंदु का उदय हुआ, और इंदीवर (नील कमल) उदित हुआ (खिल गया)। (२) नव विरही (पृथ्वीराज और संयोगिता) नव स्नेह के नव जल (अश्रु) का रुदन कर रहे थे। (३) उन्होंने [इसलिए] आभूषणों को समीप ही शोभित होने दिया, उनसे शरीर का मंडन नहीं किया। (४) केवल [दोनों ने] मिलकर मृदु मंगल किया, और मन में सभी प्रकार के मनोरथ किए।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं हैं।

(१) १. मो. षेचरह कु (=कउ) उयु (=उयउ) इंदु, धा. अ. फ. षरह चारु चे इंदु, ना. षहह चारु रवि इंदु, उ. षह चारुचि इंद, म. स. षह चारु रुचि (जचि–म.) इंद (यंद–म.)। २. मो. इंदीवर उदयु (=उदयउ), धा. ज मंदियवर उदय, अ. फ. जु इंदीवर मुदय, म. उ स. इंदीवर (इद्रीवर–म.) उद्दयौ, ना. इंदुवर उदय।

(२) १. धा. विरहिनि, म. विरहा, उ. स. विहार। २. मो. नव जनय मत्र रुदयु (=रुदयउ), धा. अ. फ. नवज्जलु (नव जल–अ. फ.) नव रुदय, म. उ. स. नवज्जल रुद्दयौ, ना. नव जल न रुदय।

(३) १. अ. फ. भीषम। २. मो. सोभ, शेष सभी में 'सुभ्भ'। ३. धा. अ. म. समीपन, फ. समीपनु, ना. महिपन्न। ४. धा. मंडनु, अ. फ. मंडिय। ५. धा. मंडि तनु, म. अ. फ. मंडि तन, उ स. मड तन।

(४) १. धा. मुद मंगल, म. मृदु मंग।

टिप्पणी—(२) रुद्दय < रुद्=रोना।

[२४]

श्लोक— यतो[१] नीरे[२] ततो[३] नलिनी[४] यतो नलिनी ततो नीरं[५]। (१)
त्यजति ग्रहं न यत्र ग्रहनी[१] यतो ग्रहनी ततो ग्रहं[२]॥ (२)

अर्थ—(१) जहाँ नीर होता है, वहाँ नलिनी होती है और जहाँ नलिनी होती है, वहाँ नीर होता है; (२) वह गृह त्याग दिया जाता है जहाँ गृहिणी नहीं होती है, [अतः] जहाँ गृहिणी होती है, वहाँ गृह होता है।

पाठान्तर—(१) १. अ. फ. जेतो, म. जित, उ. स. जितं। २. धा. नलिनी। ३. म. तित। ४. धा. नीर। ५. धा. अ. फ. यतो (जेतो–अ. फ.) नीर ततो नलिनी (देखिए चरण का पूर्वार्द्ध), म. जितं

नलिनी तितं जलं।

(२) १. धा. यत्र गेह गेहिनी तत्र, मो. त्यजति ग्रह न यत्र ग्रहनी, अ. फ. ति जत (जति–फ.) ग्रेह ग्रेहनी जत्र, म. उ. स. जतो गृह (जितो ग्रह–म., जतो ग्रह–उ.) ततो (तितो–म.) ग्रहिणी, (ग्रहनी–म.), ना. जत्त गेह ततो ग्रहनी। २. धा. यत्र गेहिनी तत्र गृह, अ. फ. जत्र ग्रहनी तत्र ग्रह, म. उ. स. जत्र गृहिणी (ग्रहनी–म.) ततो गृह (ग्रह–म.), ना. जत्र गेहनी ततो गृह।

[२५]

कवित— दिनिअर सुय दिन जुध्ध[१] जूह[२] चंपइ[३] सामंतन[४]। (१)
भर[१] उप्परि[२] भर[३] परहिं[४] परइ* धरहिं[५] धावंतन[६]। (२)
दल दंतिय[१] विछुरहिं[२] हय जुहय हय[३] कननंकइ*[४]। (३)
अछ्छिर[१] वर[२] हर[३] हार धीर धारा[४] झननंकइ*[५]। (४)
जय जय जु[१] घंट[२] जोगिनि[३] करहिं[४] करि कनवज[५] ढिल्ली वयर[६]। (५)
सामंत[१] पंच षेतह[२] परिग[३] भिरइ*[४] भति[५] भए[६] विप्पहर[७]॥ (६)

अर्थ—(१) दिनकर-सुत (शनि) के दिन युद्ध में [पृथ्वीराज के] सामंतो ने [शत्रु के] यूथों को दबाया। (२) भट के ऊपर भट गिरने लगे, और दौड़ते हुए [सैनिक] धरा पर गिरने लगे। (३) सेना के हाथी बिछुड़ने—निकल भागने—लगे और हय (घोड़े) हिनहिनाने-किनकिनाने लगे। (४) हर-हार में अक्षर (मोक्ष) का वरण कर धीर वीर तलवारो को झनझनाने लगे। (५) कन्नौज और दिल्ली के वेर [के उपलक्ष्य] मे योगिनियाँ 'जय जय' करती हुई घंटों की ध्वनि कर रही थीं। (६) [पृथ्वीराज के] पाँच सामत खेत रहे, और युद्ध में दो प्रहर हो गए।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. दिनियरु सवि दिव जुह, मो. दिनीअर सुयदिन युध (=जुध), ना. अ. फ. दिन उग्गत (ऊगति–फ., ऊगत–ना.) भय (यौ–फ.) जूह (जुद्ध–फ., युद्ध–ना.), म. उ. स. दिनयर सुअ दिन जुद्ध। २. मो. यूह (=जूह)। ३ मो. चंपि (=चंपइ), धा. चंपइ, अ. फ. चपै, म. उ. स. चपिय, ना. चंपिग। ४. धा. सावतहि, अ. फ. सावंतनि, मो. म. उ. स. सामंतन, ना. सामंतनि।

(२) १. धा. पर। २. अ. फ. ना. उ. स. उप्पर। ३. धा. सर। ४. मो. परिहिं, धा. परइ, म. नरहिं, उ. स. भर। ५. मो. परि (=परइ) धरहिं, धा. ना. परहि उप्परि, अ. फ. धरह (धरहि–फ.) उप्पर, म. उप्परि, उ. स. परिहि उप्पह, ना. परहि उप्पर। ६. धा. धावतहिं, अ. धावतनि, फ. धाव तिनु, म. धावंतत।

(३) १. धा. दती, अ. फ. दंतीय, म दतन, ना दंतिनि, उ. स. दतिन। २. फ. दिबुरहिं। ३ म. ह। ४. धा. किननकति, मो. कनकि (=कनकइ), अ. फ करनकहि, म. किननकह, ना. म. उ. स. किन नंकहि (नकहि–ना.)।

(४) १. धा. अ. ना. उ. स. अच्छरि, मो. अछ्छिर, फ. म. अछ्छर। २. धा. पर, अ. दरि, फ. दर, ना. वरि। ३ ना. हरि। ४. धा. धार धारनि, मो. धर धीरा, अ. फ. धार धरनिय, ना. धार धारणि उ. स. धार धारन, म. धार धार। ५. धा. झननकति, मो. झननकि (=झननकइ), अ. फ. ना. झननकहि, म. झननंकह, उ. स. झननंकहि।

(५) १. फ. जय सु, ना. जया सु, दूसरा 'जय' फ. ना. में नहीं है, म. उ. स. जय जया, अ. फ. जय

जय सु। २. अ. फ. म. उ. स. सद्द। ३. मो. जोगिनि, धा. जुग्गिनि, शेष में 'जुग्गिन' या 'जुग्गिनि'। ४. धा. करइ, अ. कहहि। ५. धा. ना. म. उ. स. कलि कनवज, अ. फ. कनवज्जिय। ६. म. दिलीय वर।

(६) १. अ. फ. सावत। २. धा. षित्तहि, मो. षेतइ, ना. म. उ. स. षित्तह, अ. मित्तइ, फ. मित्तहि। ३. धा. षषिग, फ. परि। ४. मो. भिरि (=भिरइ), धा. ना. म. उ. स. भिरत, अ. मरित, फ. रित। ५. ना. म. उ. स. पंच। ६. धा. मइ, म. मय। ७. धा. विक्खहर, अ. फ. विष्षहर, उ. दुप्पहर।

टिप्पणी—(१) दिनिअर < दिनकर। सुय < सुत। जूह < यूथ। (२) भर < भट। (४) अछिछर < अक्षर। (६) वि < द्वि।

[२६]

गाथा— *विपहर[1] पहट्ट[2] परिग्रं[3] हय गय नर भार सार[4] पंडेन[*5]। (१)*
रहरोस पंग[1] भरिग्रं उध्धरियं[2] वीर बिंवेन[3] ॥ (२)

अर्थ—(१) [जब] दोपहर प्रहृष्ट हुआ, भारी हय, गज, नर, तथा सार (शस्त्रास्त्र) के खड-खंड होने से (२) पंग (जयचंद) रभस् (उत्साह) युक्त रोष से भर गया, और वह वीर बंब (?) के साथ निकल पड़ा।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. फ. विषहर, अ. विपहरह, म. विपहर, उ. स. विपहुर। २. धा. पहट्ट, मो. पाटइ, ना. पट्टह, म. महुरति, उ. स. पहुरति, अ. एहट्ट, फ. पट्ट। ३. धा. परयं, फ. परिघं। ४. फ. सीर। ५. मो. षंनेन (< षंडेन ?), धा. अ. फ. ना. हत्थेन (हथ्थने—अ. फ.), म. उ. सथ्थेन, स. नथ्थेन।

(२) १. मो. रोस रंग, म. उ. स. रंग रोस, ना. रग जेस। २. धा. ओधरियं, म. उ. स. उठ्ठियं, ना. उच्छीयं, अ. फ. उधरीय। ३. मो. वीर ब्यंबेन (=बिंवेन), अ. फ. चीर (चीरु—फ.) बिबेन, म. वीर बंबेन।

टिप्पणी—(१) वि < द्वि। पहट्ट < पहठ्ठ < प्रहृष्ट। (२) रह < रभस्। बिंब < बंब=बमक, शोर (?)।

[२७]

कवित्त— *परउ[*1] माल चंदेलु जेन[2] धवली धर गुरजर[3]। (१)*
*परउ[*1] भान भट्टी[2] भुग्राल[3] थट्टा[4] धर[5] अग्गर। (२)*
*परउ[*1] सूर सामलउ[*2] जेन[3] बानो[4] मुषि[5] मुच्छह[6]। (३)*
हसउ[*] तिनिहि[1] पंमार[2] जेन विरदावलि[3] अच्छिह[4]। (४)
*निर्वान[1] वीर धार तनउ[*2] रुक्कत हक्क नरेंद दल[3]। (५)*
पर ग्रंत पच[1] भये विप्पहर[2] अगनित भंजि अभंग दल[3] ॥ (६)

अर्थ—(१) [युद्ध में] माल चदेल गिरा जिसने गुजर धरा को धवलित किया, (२) भूपाल भान भट्टी गिरा जो थट्टा की धरा का अग्र (प्रमुख) था; (३) सामला शूर गिरा, जिसका बाना मुख-मुच्छ था; (४) [वह परमार भी गिरा] जो उस पर हँसता था और जिसकी विरदावली 'अच्छ' थी, (५) धार का निर्वाण वीर भी [गिरा] जिसकी हाँक पर नरेन्द्र (जयचद) का दल

रुक जाता था, (६) ये पाँच [जयचंद के] अभंग (न हटने वाले) दल के अगणित योद्धाओं का भंजन करके दोपहर होते-होते तक पड़ (गिर) रहे।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. पडु (=पडउ), धा. परयो, शेष सभी में 'पर्‌यो' या 'पर्‌यौ'। २. धा. जिन्ह, मो. जेन, अ. फ. जेनि (जैनि–फ.)। ३. मो. गुरजर, शेष सभी में 'गुज्जर'।

(२) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्‌यो, शेष सभी में 'पर्‌यो' या 'पर्‌यौ'। २. म. मान भाटी, फ. भान भट्टीय, स. मान भट्टी। ३. ना. भूवाल। ४. धा. घटा, अ. फ. घट्टा। ५. धा. धर।

(३) १. मो. परु (=परउ) धा. पर्‌यो, शेष सभी मे 'पर्‌यो' या 'पर्‌यौ'। २. मो सामंत लु (=सामत लउ), धा. सावरो, अ. सावरा, फ. साउरो, ना म. उ. स. सामलौ। ३. अ. फ. जेनि (जैनि–फ.), ४. धा. बानो, मो. बानेत, अ. फ. बानौ, ना. उ. स. बानैं, म. बानइ। ५. ना. मुषि, शेष में मुष'। ६. धा. मुच्छहि, ना. म. उ. स. मच्छइ।

(४) १. मो. हसु (=हसउ) तिनिहि, धा. हसे जेतु, अ. फ. ना. हसैं तिनहि, उ. स. हँसैं तेन, म. हसैं तेम। २. धा. फ. पावारु, अ. पावार, म. उ. स. पांवार। ३. अ. फ. बिरद बाना दल (दलि–अ.), ना. विरुदावलि। ४. मौ अछिछइ, धा. अच्छहि, म. अच्छरि, शेष में 'अच्छइ'।

(५) १. ना. त्रीबान (< त्रीवान)। २. मो. धार तनु (=तनउ), धा. धरवर धनुह, अ. फ. धावर (धाउर–फ.) धनी, ना. धावन धनी, उ. स. धावर धनू, म. धावर धरइ। ३. धा. नवतर एक नरिंद दल, मो. रुकत इक नरेंद दल, अ. फ. गन्यो त (ति–फ.) इक्क नरिंद दल, ना. इने अनेक नरिंद दल, म. उ. स. हनुय (धनुय–म., हनिय–उ.) नरिंद अनेक बल।

(६) १. धा. अ. फ. ए परत पंच, ना. इन भिरित पंच, उ. स. म. इन परत पंच। २. धा. भउ जुग पहर, अ. फ. भय (भज–फ.) जुग पहर, ना. म. उ. स. भय (भए–ना.) विप्पहर। ३. धा. अगनित भजिअ पंग बल, मो. अगनित भंजि अभग दल, अ. फ. अगनित भंजि (भज–फ.) अभग षल, ना. म. उ. स. अगनित (अगनत–म., अगन–उ.) भजि असष दल।

टिप्पणी—(१) धर < धरा। (२) अग्गर < अग्र। (३) मुच्छ < स्मश्रु=मूँछ। (६) वि < द्वि।

[२८]

कवित्त—चडउ*१ सूर मध्यांन२ पंगु परतंग गहन किय। (१)
षुर त१ षेह२ षह मिलित२ स्रवन सुनिजे४ सुलीय लिय५। (२)
तब नरिंद१ जंगलीय कोह कढ्ढिय२ सुवंक३ असि। (३)
धर१ धुम्मिलि२ धुंधुलीय३ मनहु वद्दल४ दुतीय५ ससि। (४)
अरि१ अरुण रत्त२ कउतिग*३ कलह४ भयउ*५ न भवह६ भितंस७ भर। (५)
सामंतन घट१ तेरह परिग नृपति सुपट्ठिय२ पंच सर३॥ (६)

अर्थ—(१) सूर्य मध्याह्न में चढा तो पंग (जयचंद) ने [पृथ्वीराज को] पकड़ने की प्रतिज्ञा की। (२) खुरों से [उड़ी हुई] धूल आकाश से मिल रही थी, और श्रवणों से यही सुन पडता था—'लिया, लिया'। (३) तब जंगली नरेंद्र (जंगली राय) ने क्रोध-पूर्वक बाँकी तलवार निकाल ली। (४) धूमिल और धुँधली धरा पर [वह इस प्रकार लगती थी] मानो बादलों में द्वितीया का शशि हो। (५) [इस समय] शत्रु [पक्ष] के अरुण रक्त का कलह-कौतुक हुआ, किंतु वह भट भ्रम-भय से भीत (?) नहीं हुआ। (६) [पृथ्वीराज के] तेरह सामंत

गिर कर पड रहे [सात पहले मारे जा चुके थे—धा० २५६, पाँच फिर मारे गए थे—धा० २८९, एक यह जगली राय मारा गया], और नृपति (पृथ्वीराज) को भी पाँच बाणों ने विभूषित किया।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. चढ्ढ (=चडउ), धा. उ. स. चढयो, म. फ. चळ्ययौ, अ. चळ्यउ, ना. चळ्यौ। २. धा. उ. स. मध्यान्ह।

(२) १. धा. षभिर, अ. फ. षभरि, ना. उ. पुरुणि, म. पूरनि, स. सुरनि। २. म. षह। ३. धा. अ. फ. म. उ. स. मिलिय। ४. धा. म. उ. स. इह सुनिय, अ. फ. इक सुनिय, ना. सुनियै सु। ५. धा. ली जु लिय, म. अ. फ. लिय सु लिय।

(३) मो. नरेंद (< नरिंद), शेष में 'नरिंद'। २. धा. काढोय, अ कळ्या, फ. कढ्या, ना. म. उ. स. कढ्ढी। ३. धा चंक (< बक), उ. स बंकि।

(४) १. धा धीर, अ. फ. अरि। २. अ. धमिल, फ. धमिल्लि, म. धुम्मल, उ स. घूमिलि, ना. धूंधिमिलि। ३. धा. धुंधरिम, अ. फ. धुंधरिग, ना. घूमलीय, म. उ. स. धुम्मरिय। ४. धा. दल मंझ, अ. धन मध्य, फ. धन मझि, ना. दल मध्य, म. दल मझ, उ. स. दल मज्झि। ५. अ. फ. द्विविय, म. हुतिय।

(५) १. अ. अरु, फ. अने। २. फ. असु रन रन। ३. धा. कोतुक, मो. कुतिग (=कउतिग) अ. फ. कौतुक, ना. म. कोतिग, उ. स. कौतिक। ४. म. कल, ना. उ. स. कलस। ५. मो. भयु (=भयउ), धा. अ. भयो, फ. ना. म. उ. स. भयो। ६. ना. भयह, अ. फ. भवह, म. उ. स. भयसु। ७. मो. भिरंस, फ. भिरंति, शेष में 'भिरंत'।

(६) १. धा. म उ. स. सामंतनि घट (निघटि–म.), मो. म. सामंत नघट, ना. सामंत त्रिघट्टि, अ. फ. सावंत सु (त्रि–अ.) घट। २. धा. मो. सुपठीय (सुपट्ठिय–धा.), अ. न लग्गिग, फ. लगति, उ. स. सपिट्टिय, म. सपठिय ना. सरठ्ठीय। ३. मो. ससर, शेष में 'सर'।

टिप्पणी—(१) चड=चढ़ना। परतंग < प्रतिज्ञा। (३) कोह < क्रोध। (५) कउतिग < कौतुक। (६) घट < घट्ट=गिरना। पट्ठिय [दे०]=विभूषित, अलकृत।

[२९]

दोहरा— संझ सपट्ठिय[१] नृपति रण[२] दिय[३] पारस परि[४] कोट। (१)
रहउ[*१] सूर सामंत चकि[२] चाहि[*३] नृपत्ति न[४] चोट॥ (२)*

अर्थ—(१) संध्या को [इस प्रकार] अलंकृत नृपति (पृथ्वीराज) ने [शत्रु के] परकोटे के पार्श्व मे रण दिया (किया); (२) किंतु उसके शूर सामंत [यह देख कर] चकित रहे कि नृपति (पृथ्वीराज) को चोट नहीं लगी थी।

पाठान्तर—*चिह्नित संशोधित पाठ के है।

(१) १. मो. सपठिय, धा. सपत्तिय, अ. फ. म. संपतिय, ना. सपत्ते, में 'सपत्तिय'। २. म. त्रिपनि रत, ना. त्रिपति नर। ३ धा. दिय, अ. फ. अरि, ना. परि, म. उ. स. विय। ४. ना. करि म. पर।

(२) १. मो. रहु (=रहउ), अ. फ. रहे, ना. म. उ. स. रहै। २. ना. झुकि। ३ धा. दिखिय, मो. वाहि (< चाहि), अ. फ दिष्षहि, ना. देह, म. उ. स. देषि। ४. धा. ना. म. उ. स. नृपति तन।

टिप्पणी—(१) सझ < संध्या। पट्ठिअ [दे०]=अलकृत। पारस < पार्श्व। (२) चकि < चकित (?)।

[३०]

कवित्त— निसि[१] नवमी सिरि[२] चदु हक वज्जी[३] चावदिद्सि[४] । (१)
भर[१] अभंग सामत[२] वीर[३] वरषंत[४] मत्त[५] असि ॥ (२)
अजुत जुत्त[१] आवध्ध[२] इष्ट आरभ सत्त[३] वर[४] । (३)
एक[१] जीव दस घटित[२] दसति[३] टिल्लइ[४] जुसहस[५] भर[६] । (४)
दिट्ठउ[१] न देव[२] दानव भिरत यूह रत्ति सूरत्त षल[३] । (५)
सामंत सूर[१] सोरह[२] परिग गण्यउ* न[३] पंग अभंग[४] दल ॥ (६)

अर्थ—(१) नवमी की निशा मे चन्द्रमा सिर पर था जब चारो दिशाओ मे हॉक बीज; (२) अभंग (न हटने वाले) भट ओर सामंत वीर मत्त [होकर] असि-वर्षा कर रहे थे। (३) वे अयुत आयुधो से युक्त होकर श्रेष्ठ सत्य का इष्टारभ कर रहे थे। (४) एक-एक जीव दस-दस को मारता था, और दस [जीव] सहस मरो को ठेञ (पिछडा) देता था। (५) इस प्रकार भिडते हुए देवता और दानव भी नही देखे गए थे, वे युद्ध (?) की रति मे अनुरक्त होकर स्खलित हो रहे थे। (६) [पृथ्वीराज के] सोलह शूर सामत गिर गए जिन्होने पंग (जयचद) के अभग (न हटने वाले) दल को गिना नही—कुछ नही समझा।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है।

(१) १. फ. म. निस । २. अ. गत, फ. गति, ना. म. उ. स. सिर। ३. धा. वाजी, ना. वज्जीय। ४. मो. चांवदसि।

(२) १. म. अ. भिरि, फ. सभरि, ना. भड। २. धा. अ फ. सावंत, ना. सूरिमा। ३. म. बर, स. बारि। ४. धा. बरषंति। ५ धा. ना. मत्त, मो. अ. फ. ना. मत्त, म. उ. स. मंत्र।

(३) १. मो. अयुत युत (=अजुत जुत्त), धा. ना. अजुत जुद्ध, अ. फ. सुजुद्ध जुद्ध, म. उ. स. अयुत जुद्ध। २. ना. आवंत, म. आयुध, फ. आउध। ३. म. अ. फ. ना. सत्ति। ४. म. वत।

(४) १. धा. अ. फ. ना. इक्क। २. ना. घटति म. घटि। ३. धा. अ. फ. त। ४. मो. ठिल्लि (=ठिलइ), धा. ठिल्लहि, अ. ठिल्लइ, फ. ठिल्ले, ना. लेहि म. छैले (< ठंले)। ५. धा. सहस, अ. फ सहस्स, उ. स. सु सहस, म. सुसह, ना. जुत्त सथ्थ। ६. म. सत।

(५) १. धा. दिट्ठउ, मो. दिषो (< दिघु?), अ दिष्यो, ना. फ. दिष्यौ, म. उ. स दिठे (दिठे—म.)। २. फ. देउ। ३. धा सुहर रत्त रत तिय सुपल, मो. युहरती सूरत षल, अ. फ सुहर रित्त तिय (वीय—फ.) पियति छल, ना. म उ. स जूह रत्त रत्तिय (रत्ते—ना.) सुषल।

(६) १ ना. सावंत सुभट, अ. फ. सावत सूर। २. धा. सोलह। ३. धा. अ. फ. गन्यो न, ना. गनौं न मो. गण्यु (=गण्यउ) न, म. मारे। ४. मो. ना. अरंग (< अभग)।

टिप्पणी—(३) आवध्ध < आयुध। सत्त < सत्य। (५) यूह < युद्ध (?)। खल < स्खलित।

[३१]

भुजंग प्रयात—भए*[१] राइ[२] दुइ इक[३] अके[४] प्रमानं[५] । (१)
परे सूर सोलह[१] तिने[२] नांम[३] आनं ॥ (२)
परउ*[१] मंडली राय[२] मालंन हंसउ*[३] । (३)
जिने[१] हक्कि आ[२] पंग रा[३] सेन गंसउ*[४] ॥× (४)

परउ*१ जावलउ*२ जालु३ सामंत भारे३ ।× (५)
जिने*१ पारिआ२ पंग षंधार सारे३ ॥ (६)
परउ*१ बागरी२ बाघ३ वाहइ* दु हथ्थो४ । (७)
भिरे१ पंग२ भागइ*३ दुहइ* लग्ग४ वथ्थो५ ॥ (८)
परउ*१ वीर जद्दउ*२ बलीराय३ बांना४ । (९)
जिने*१ नंषिया गयरा२ गज३ दंत दांना४ ॥ (१०)
परउ*१ साहतो साह२ सारंग गाजी३ । (११)
दुहइ*१ सत्त भाषउ२ भलउ*३ हथ्थ माझी४ ॥ (१२)
परउ*१ पाधरीय२ रायु३ परिहार राना । (१३)
षुले१ सेर२ पाजे वजे३ पंगु बांना ॥ (१४)
१उपटए२ पंग३ आविधि४ नीरं । (१५)
तिहां१ सांषुला सीह२ भुज पार३ भीरं ॥ (१६)
परउ*१ सिघली राइ२ सातल्ल३ मोरी । (१७)
लगइ*१ लीह अंगे२ जगी३ जानि४ होरी ॥ (१८)
भिरइ*१ भोज भाजइ*२ नहीं सार भग्गे३ । (१९)
भिरइ*१ मल्ल मानै२ नही लोह लागे३ ॥ (२०)
परउ*१ राय२ भोआल३ उक४ चंद सष्षी५ । (२१)
ए कु कुसम नांषे इ२ एकइ ३ कित्ति भाषी४ ॥५ (२२)

अर्थ—(१) दोनों राजा एक ही अंक के (बराब) रप्रमाणित हुए। (२) जो सोलह शूर [पृथ्वीराज-पक्ष के] गिरे उनके नाम [समक्ष] ला रहा हूँ। (३) मालन-हस मंडली राय गिरा, (४) जिसकी हाँक पंग (जयचद) की सेना को गाँस (शूल) [जैसी] होती थी। (५) जावला तथा जाल्ह नामक भारी सामत गिरे, (६) जिन्होंने पंग (जयचंद) के सारे षंधारी सैनिकों को गिरा दिया था। (७) बागरी बाघ [राय] गिरा, जो दोनो हाथों से [तलवार] चलाता था, (८) उससे भिड़ने पर पंग (जयचद) भाग निकला जब उसको व्यस्त रूप से बाघराव बागरी की दोनो [तलवारों] से घाव लगे। (९) बली राय बाने वाला वीर जादव गिरा, (१०) जिसने गगन में गज दंत दान करते हुए फेंके। (११) शाह शहाबुद्दीन को वश में करने वाला सारंग [राय] तथा गाजी (?) गिरे, (१२) दोनों ने सत्य भाषण किया तथा हाथ में भला (यश ?) लिया। (१३) पाधरी राय, और परिहार राणा गिरे, (१४) जिन्होंने खुले सेलों को साजा और जिन [के आक्रमण] से पंग के बानैत भाग गए। (१५) जहाँ पर पग के (जयचंद) के आयुधों का पानी प्रकट हुआ, (१६) वहाँ साषुला और सिंह [राय] ने अपनी भुजाओं से उस पर पीड़ा डाली थी, (१७) सिंहली राय तथा सातल्ल मोरी भी गिरे, (१८) जिनके अगों मे [जो रुधिर की] लेखा लगी हुई थी, वह ऐसी लगती की मानो होली [की लालिमा] लगी हो। (१९) भोज [गिरा जो] ऐसा भिड़ा था कि सार (लौह–तलवार) के भग्न होने पर भी नहीं भागता था, (२०) मल्ल [गिरा जो] ऐसा भिड़ा था कि शस्त्रास्त्रों के लगने पर भी मानता नहीं था। (२१) भोआल (भूपाल) राय गिरा, जिसकी साक्षी चद ने की, (२२) एक चंद ने उस पर कुसुम फेंके और एक ने उसकी कीर्त्ति कही।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

× चिह्नित चरण ना. में नहीं है।

‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. मो. भइ (=भए), धा. मयी (< भइ=भए), अ. फ. भई, (< भइ=भए), शेष में 'भए'। २. धा. शरीर, फ. रार, ना. म. उ. स. राय। ३. धा. टुकंक, अ. फ. दुहु कंक, ना. म. उ. स. दुअ (दुव—ना.) कक। ४. धा. मो. अंके, अ. फ. अंक, म. इके, ना. उ. स. इक्कै। ५. ना. म उ. स. समान।

(२) १. अ. फ. सोरह। २. धा. तिके, म. उ. स. तिनं, अ. फ. ना. तिने। ३. म नांन।

(३) १. मो. परु (=परउ), धा. परे, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. धा. मडली राउ, अ. मडली राइ, फ. मडणे राइ। ३. मो. आलन हंसु (=हसउ), धा. माल्हन हसो, अ. फ. ना. म. उ. स. माल्हन (मल्हन—म.) हसो (हसौं—ना., माल्हण्ण हसा—फ.)।

(४) १. धा. जिने, अ. ना. म. उ. स. जिन, फ. जिन, फ. जिना। २. धा. हकिया, मो. हाकिआ, म. उ. स. पारिया, अ. फ. हक्किया। ३. म. पगर। ४. मो. सेन गंसु (=गंसउ), धा. सरवन गसो, अ. फ. सेन गंसो।

(५) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. मो. जावलु (=जावलउ), धा. जावला, शेष में 'जावलो' या 'जावलौ'। ३. धा. अ. फ. म. उ. स. जाल्हू, म. जल्ह। ४. धा. अ. फ. सावंत (साउत—फ.) भारो (भारौ—अ. फ.)।

(६) १. मो. जेने (< जिन), धा. जिने, शेष में 'जिने' या 'जिनै'। २. धा. पारिये, अ. फ. पारियौ (पारियो—अ.), म. पारिया, ना. पारीआ। ३. धा. अ. फ. संधार सारो (सारौ—अ. फ.), म. संधार सारे।

(७) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. धा. बारी, ना. बागुरी, म. बगरी। ३. धा. मो. बाघ, ना. बाघु, अ. फ. बाग, म. राव। ४ धा. दुहत्थं, अ. फ. दुहथ्था, ना. म. उ. स. दुहथ्थं।

(८) १. मो. भिरु (=भिरउ), धा. अ. फ. भिरे, ना. भिरयौ, म. उ. स. भिरै। २. मो. म. पग्ग, धा. अ. फ. पंगु (पग—अ. फ.)। ३. मो. भागि (=भागइ), धा. अ. फ. भग्गे, ना. भग्गे, उ. स. भग्गौ, म. भग्गै (?)। ४. मो. दुहि (=दुहइ), लग्ग, धा. अ. फ. भरे हत्थ, ना. म. उ. स. मिल्यौ (मिल्यो—ना.) हथ्थ। ५. धा. वथ्थ, अ. फ. वथ्था, ना. म. उ. स. वथ्थं।

(९) १. मो. परु (=परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. ना. जादुव, धा. जंदा, अ. फ. जद्दो, ना. जद्दु (=जद्दउ) म. जादौं, उ. स. जादों। ३. धा. फ. ना. राउ, अ. म. उ. स. राव। ४. ना. म. उ. स. बानं।

(१०) १. मो. जेने (< जिने), धा. जिने, शेष में 'जिने' या 'जिनै'।। २. धा. फ. नाषिया नैन, अ. नषिया नैनि, ना. नाषीया गैन। ५. धा. गय, अ. फ. गै। ४. धा. अ. फ. नाना, ना. तानं, म. उ. स. पानं।

(११) १. मो. परु (—परउ), धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. धा. साहजो सूर, ना. सत्ति सावंत, फ. सत्त साउंत, म. साहतौ सार, उ. स. साहितौ सार। ३. फ. नाजी।

(१२) १. मो. दुहि (=दुहइ), धा. दुहं, अ. फ. दुहू, ना. म. उ. स. दुहुं। २. धा. अ. फ. सथ्थ भष्यो, ना. म. उ. स. सथ्थ भष्यो (भष्यौ—म. ना.)। ३. मो. भलु (=भलउ), धा. भले, शेष में 'भलो' या 'भलौ'। ४. म. उ. स. माजी।

(१३) १. मो. पर (< परु ?)। धा. पर्यो शेष में 'पर्यो' या पर्यौ'। २. ना. म. उ. स. पद्धरी। ३. धा. अ. फ. ना. राउ, म उ. स. राव।

(१४) १. अ. पुलै। २. धा. सेरु, मो. सेर, ना. सैल, शेष में 'सेल'। ३ धा. सारंग ले, अ. फ. सालै पुले, ना. सज्जै पुलै, म. उ स. साजै पुलै (पुलै—उ. स.)।

(१५) १. धा. जवे, अ. फ. म. उ. स. जवै, म. जबै। २. धा. उप्पटे, अ. फ. ना. उप्पटै, म. उप्पटयौ,

उ. स. उप्पटो। ३. धा पंग (< पंग)। ४. धा. अ. फ. ना. म. -. स. आवद्ध।

(१६) १. धा अ फ. तहां, ना उ म तत्र। २. फ. साहि। ३. मो पाल, धा अ. फ. पारि, ना. म. उ स. भानि (भांन—म.)।

(१७) १. मो. परु (=परउ), धा पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २ धा. सींघ सिंघास, अ फ. सिंघली सिंघ, ना. म. उ. स. सिंधु आ मिंधु। ६. धा. सादूर फ. सादिल्ल, म. उ. स. सादल्ल, ना. सादूल।

(१८) १. मो. लगि (=लगइ), धा. जर्गा, अ. फ. ना. लर्गा, म. उ. स. लगे। २. धा. अ. फ. लोह अग्गो, ना. म. उ. स. लोह अग। ६. धा. छगी, म. उ. स. लगी। ४ धा. ना. जानु।

(१९) १. मो. भरा (< भरि=भरइ), धा. अ. फ. भिर्यो, म. भिरे, ना. उ. स. भिरे। २. मो. भाजि (=भाजइ), धा. अगो, अ. फ. भग्गै, म. भग्ग' उ. स भग्गे, ना भग्गौ। ३. मो. सारि भागि (=भाग), धा सार जग्गे, म. अ. फ. सार भग्गे, उ स. सार भग्ग, ना. सार भग्गौ।

(२०) १. मो. भरि (=भरइ), धा. ढर्यो, अ. फ. जुर्यो, ना. धर्यौ, म. उ स. पर्यौ। २. धा. पंग मानो, अ. फ. मल्ल हल्लं, म. उ. स. मल्ह (माळ—म.), मानो (मनौं—म.) ना मल्ल मन्नु (=मन्नउ)। ३ मो. लोह लागे, धा. जूर लग्गे, म. उ. स. अ. फ. जूह लग्गे, ना. जूह लग्गौ।

(२१) १. मो. परु (=परउ) धा. पर्यो, शेष में 'पर्यो' या 'पर्यौ'। २. धा. अ. फ. ना. राउ, म. उ. स. राव। ३. मो. भोआल, धा. ना. उ. स. फ. म हा, ना. म. भौंहा, अ. लोहा। ४. मो. उक, धा. उनो, अ. तुलं, फ. उभी, ना. म उ. स. उभे। ५. धा. अ. फ. सष्षी, शेष में 'साषी'।

(२२) १. धा. म. इके, अ. फ. ना उ. स. इकै। २ मो. कुसम नाषीइ (< नांषिइ=नाषेइ), धा. कुसुम नखो, अ. फ. कुसुम नंषी, म. उ. स. कुसम नषै (नषे—म.), ना. कुस्स नषें। ३. मो. एकि (=एकइ), शेष में 'इके' या 'इकै'। ४. मो. कित्त माषी, धा. अ. फ. किर्ति भष्षी, शेष में 'क्रित्ति माषी'। ५. यहाँ धा. मो. को छोड़कर सभी में और है :

जिसी मारथं बोहिनि दस अट्ठ होमी। चैंत सुदि रारि निसि एक नौमी।

टिप्पणी—(८) खग्ग < खड्ग। वथ्थ < व्यस्त=अलग-अलग। (११) साह् < साध्=वश में करना। (१४) सेर < सेल। वज < व्रज=जाना। (१५) आविधि < आयुध। (१९) भग्ग < भाग्न=टूटा। (२१) भोआल < भूपाल। उक < उक्क < उक्त=कथित। साखी < साक्षी। (२२) नांष < नख < नश्=गिराना। किति < कीर्त्ति।

८. पृथ्वीराज-जयचन्द-युद्ध (उत्तरार्द्ध)

[१]

कवित— मिले[१] सव्व सामंत बोलु[२] मग्गहि[३] त नरेसर[४] । (१)
अप्प[१] मग्ग लग्गिअइ[२] मग्ग रष्षिइ[३] ति इक्क भर[४] । (२)
एक एक[१] झूझंति[२] दंति दंती[३] ढंढोरइ[*४] । (३)
जिके[१] पंग राय[२] भिच्च[*३] मारि[४] मारि कइ[*५] मोरइ[*६] । (४)
हए बोल[१] रहइ[*] कालि[३] अंतरि [४]देहि[५] स्वामि पारथिअइ[*] । । (५)
अरि असीइ[२] लष को[२] अंगमइ[*३] परणि[४] राय[५] सारथिअइ[*६] ॥ (६)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के] सब सामंत मिले और तदनंतर वे नरेश्वर पृथ्वीराज से यह वचन माँगने लगे, (२) "आप [दिल्ली के] मार्ग लगे और [उसके] मार्ग की रक्षा एक [एक] भट करे। (३) एक-एक [भट] जूझते-जूझते दंतियों के दाँत खींच निकाले (४) और जो भी पंगराज (जयचंद) के भृत्य हों, उनको मार-मार कर मोड़ दे—युद्ध स्थल से भगा दे। (५) हमारा यह वचन रह जाए कि कलह के अतर-से कलह से दूर रखते हुए—हम स्वामी को पार स्थिति देंगे, (६) अन्यथा अस्सी लाख शत्रु [सेना] को कौन अगवेगा—झेवेगा, हे राजा आप सार स्थिति का परिणय कीजिए—वास्तविक स्थिति को स्वीकार कीजिए।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. मेलि, म. उ. स. मिलिए। २. धा. बो३, ना. म. बोलि। ३. मो. मांगिहि, धा. अ फ मंगहि (=मग्गहि), म मांगहि, ना मग्गहि। ४ धा फ ति नरेसुर, अ. उ स ति नरेसर, म त नरेसवर।

(२) १ मो आप, धा अप्पु, म अ. फ ना अप्प। २ मो लगीइ (=लगिअइ), धा. लग्गियइ, अ फ. ना म उ स लग्गियै। ३ ध अ रक्खहि, फ रेष, म उ स रष्षे, ना. रष्षीयै। ४ धा अ फ सु महा भर, म. स. इक इक (इक्क–स.) उ. इक्कक भर, ना. त इक्क भर।

(३) १. अ. फ. म. ना. उ. स. इक्क इक्क। २. धा. अ. ना. म. स. झूझंत। ३. धा. दंत दती, अ. फ. दंति दंतिय, ना. दंति दतिनि, उ. स. दंति दतन, म. दंत दतनि। ४. मो. ढंढोरि (=ढंढोरइ), धा. ढंढोरे, अ. फ. म. ना. उ. स. ढढोरहि।

(४) १. धा. जिते, मो. झे (< जि) के, अ. फ. जितै; म. उ. स. जिके, ना. जिगे। २. मो. राय शेष में 'रा'। ३. मो. भीष्ट (< भीच), ना. भिच (= भिच्च), फ. मीच, धा. अ. उ. स. भीछ, म. भिग। ४. म. ते मारि, ना. मारु। ५. मो. मारि कि (=कइ), धा. मारिम्मुड्ड, अ. मारि कर, फ. मारि करि, ना. मारु करि, उ. स. सारिन सुष, म. सारन सुष। ६. मो. मोरि (=मोरइ), धा. मोरे, अ. फ. म. उ. स. मोरहि।

(५) १. अ. फ. ना. बोलि । २. मो. रिहि (< रहइ), शेष में 'रहै' । ३. स. कल । ४. मो. अंतरि, धा म. उ. स. अंतरे, अ. फ. स. अतरै । ५. अ. फ. देह । ६. मो. पारथीइ (=पारथिअइ), धा. ना. म. उ. स. पारस्थियै, अ. फ. पारथ्थियो ।

(६) १. मो. असीइ, शेष में 'असी' । २. अ. कुण, फ. कुण, फ. कुन, स. की । ३. मो. अगमि (= अंगमइ), शेष में 'अगम' । ४. धा. परिणि, फ. परिन, ना म. उ. स. विना । ५. धा. राइ । ६. मो. सारथीइ (=सारथिअइ), धा ना. म. उ. स. सारथ्थिये, अ. फ. सारथ्थियो ।

टिप्पणी— (१) नरेसर < नरेश्वर । मग्ग < मार्गय्=माँगना । (२) मग्ग < मार्ग । (४) मीच > मिच्च < भृत्य । (५), (६) थिअइ < स्थिति (?) ।

[२]

कवित्त— मति घट्टी[१] सामंत[२] मरण हउ*[३] मोहि[४] दिखावहु[५] । (१)
जम[१] चीठी[२] विणु[३] कदन*[४] होइ जउ* तुमउ* बतावहु[५] । (२)
तुम गंजउ*[१] भर भीम तास+ गव्वह[२] मयमत्ता[३] । (३)
मइ*[१] गोरी साहब्वदीन[२] सरवर[३] साहता[४] । (४)
मुहि सरणहि[१] हींदू तुरक तिह[३] सरणागत[४] तुम[५] करहु[६] । (५)
बूझिअइ*[१] न° सूर सामंत हो[२] इतउ*[३] बोझ[४] अप्पन घरहु[५] । (६)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा], "हे सामंतो, तुम्हारी मति घट गई है जो [रण] भूमि में मरने का हउवा तुम मुझे दिखा रहे हो । (२) यदि यम की चिट्ठी के बिना कदन (नाश) होता हो, तो तुम्हीं बताओ । (३) तुमने भट भीम [चौलुक्य] का नाश किया और उसी गर्व में तुम मदमत्त हो गए हो (४) मैंने भी गोरी शहाबदीन को सरवर (सारोले ?) मे साधा (वश में किया) है । (५) मेरी शरण में हिन्दू तुर्क [दोनों] हैं और उसी मुझको तुम शरणागत कर रहे हो ! (६) तुम शूर सामंत होकर भी समझ नहीं रहे हो, अपना इतना बड़ा बोझ (अहसान) तुम [अपने पास] रक्खो ।"

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं ।
+चिह्नित शब्द फ. में नहीं है ।
° चिह्नित शब्द धा. में नहीं है ।

(१) धा. अ. ना. घट्टिय, फ. घट्टय । २. अ. सावत, फ. साउत । ३. मो. मरण हु (=हउ), धा. मरथ भय, शेष में मरन 'भय' । ४. मो. भूमि, शेष में 'मोहि' । ५. धा. दिषायो, अ. दिष्षायउ, फ. दिष्षायौ, ना. सुनावहु ।

(२) १. मो. धा. म. जिम, शेष में 'जम' । २. धा. अ. चिट्ठिय, फ. चिट्ठय, म. चिटी, ना. स. चिठ्ठी । ३. मो. विर, धा. विणु, ना. वितु, शेष में 'बिन' । ४. धा. म. उ. स. कहन, ना. मरन, अ. फ. होइ । ५. धा. होइ के मोहि करायो, अ. फ. कहन (कहिन-फ.) क्यों तुमहि सुहायउ (सुहायौ-फ.) म. उ. स. होइ (होइ-म) सो मोहि बतावहु, ना. होइ तौ मोहि दिखावहु ।

(३) १. मो. तुम गजु (=गजउ), धा. तुन गज्जुरं, अ. तुम गज्या, ना. तुम्ह गंज्यौ, शेष में 'तुम गज्यौ' । २. धा. गेरव, म. ग्रवह । ३. धा. उ. स. मैं मंतो, म. मै मत्तौ, ना. मय मंतौ, अ. फ. मय मत्तउ ।

(४) १. मो. मि (=मइ) शेष में 'मैं' या 'मैं' । २. धा. बगोरि साहिब्ब साहि, अ. फ. म, ना. उ.

स, गोरी साहाब साहि। ३. धा. सारवर, अ. फ. सारौल। ४. धा. साहत, अ. फ सुभत्तउ, ना. म. उ. स. साहतौ (साहतो–म.)।

(५) १. धा मो. सरण सरण, अ. फ. मो. चरन सरन, ना. मोहि शरण, म. उ. स मेरैं (मेरें–म.) ज (जु–उ. म) सुरनर (सरनि–म.)। २. मो. हीदू तरक, फ. हिंदू तुरुक, अ हिंदुव तुरक, ना. हांदू तुरक। ३. मो. तिहि, शेष में 'तिहि'। ४. अ. सरनग्गति, फ. सानगति। ५. ना. तुम्ह। ६. मो. करह, धा. करो, शेष में 'करहु'।

(६) १. मो बूझीइ (=बूझिअइ), फ. ना. म. बूझीये, अ. बुझिय। २. धा. हुइ, फ. हु, ना. तुम, म. हौं। ३. मो. इतु (=इतउ), अ. फ. म. इतौ, ना. में शब्द छूटा है। ४. मो. बूझ, ना –झ, शेष में 'बोझ' (बौझ–म)। ५. धा. धरो, मो. धरइ, म. रहु, शेष में 'धरहु'।

टिप्पणी—(१) हउ < भय। (२) जम < यम। (२) गव्व < गर्व। मयमत्त < मदमत्तो। (४) साह < साध्=वश में करना। (६) बूझ < बुद्धि [यथा 'सूझ-बूझ' में]।

[३]

कवित— वन रष्षइ जउ*[१] सधु विंझ[२] वन रष्षइ[३]* सिंघहि[४] । (१)*
धर[१] रष्षइ ति भुअंग[२] धरणि[३] रष्षइ त भुअंगहि[४] । (२)*
कुल रष्षइ[१] कुल वधू वधू रष्षइति[२] अप्प[३] कुल । (३)
जल रष्षइ जउ[१] हेम हेम रष्षइ* त[२] सव्वु जलु । (४)*
अवतारह जब लगि जीवनउ[१] मरन जीवन जम आवतह[२] । (५)*
रावत्त° कइ° स°रय° रष्षनउ*°[१] राउत रष्षइ* राय कहं[२] ॥ (६)*

अर्थ—(१) [सामतों ने कहा,] "यदि सिंह वन की रक्षा करता है, तो विंध्य वन भी सिंह को रक्षा करता है; (२) धरा को भुजंग (शेष) रक्षा करता है, तो धरणी भी भुजग (शेष) की रक्षा करती है; (३) कुल कुल-वधू की रक्षा करता है, तो वधू भी अपने कुल की रक्षा करती है, (४) जल हिम को [आले के रूप में] रखता है, तो हिम भी समस्त जल की रक्षा करता है। (५) जब तक [के लिए] अवतार (जन्म) है, तब तक जीवन भी है, उसी प्रकार मरण तब होता है जब जीवन में यम का आगमन होता है। (६) रावत की कभी राजा रक्षा करता है, तो रावत भी राजा की रक्षा करता है।"

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
° चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।

(१) मो. वन रषि (=रषइ) जु (=जउ), धा. थान रहे ते, अ. फ. ना. वन रष्षै जौ, म. वन रष्यौ जे, उ. न. वन राषै ज्यौं। २. धा. वीह, अ. वींझ, फ. वींग, ना. मँझ। ३. मो. रषि (=रषइ) धा. रक्खै, अ. फ ना. रष्षहि, म. उ स. राषहि। ४. मो. सीघहि, धा. ना. सिंघह, म. सिघह।

(२) १. फ. धइ। २. मो. रषि (=रषइ) ति भुअग, धा. रक्खै जु भुवंग, अ फ. रष्षइत भुजग, ना. रष्षे जु भुजग, म. उ सं रोष यौ भुअग (भुयग–म.)। ३. फ. धरने। ४. मो. रषि (=रषइ) त भुयगहि, धा. रक्खै जु भुअगह, अ. रष्षइत भुजंगहि, फ. रष्षहि तौ भुयगहि, ना. रष्ष तो भुजगह, म. उ. स. रषैति भुअंगह (भुयगह–म.)।

(३) १. मो. रष्षति, धा. रक्खै, अ. फ. रष्षइ, म. ना. उ. स. रष्षै। २. मो. रषित, धा. रक्खै जु, अ. रष्षइति, फ. रष्षइत म. रष्षंति, ना. रष्षं तु। ३. अ. अप्पु।

(४) १. मो. रषि जु (=रषइ जउ), धा. रक्खे जो, अ. फ. रष्षइ जौ, ना रष्षे जो म. उ. स. रष्षै ज्यौं (ज्यु–म.)। २ मो (रषि=रषइ) त, धा. रक्खे तु, अ फ. रष्षइति (त–फ.), ना रष्षँ तौ, म. उ. स. रष्षंति।

(५) १. मो. अववारह जब लगि जीवनु (=जीवनउ), धा. अ. फ. आव रहै तव लग (लगिग–अ.) जियन (फ. में 'जियन' शब्द नहीं ३), ना. म. उ. स. अवतार जबहि लगि जीवनौ। २. धा. जिवन जम्मु साबुत रहै, मो. मरन जीवन जम आव वह (?), अ. जियन जम आव तह, फ. जीवन यम आउ तह, ना. जायन जम सह आवतह, म. उ. स. जियन जम्म सब आवतह।

(६) १. मो. रावत कै (< कइ) सरय षनु (=षनउ), अ. फ. रावत रष्ष राइ जौ, ना. रावत्त जेम रारष्षनैं, म. उ. स. रावत्त तेह रा (राव–म.) रष्षनौं। २. मो, राउत रष्षइ राय कहं, २. धा रखत रक्खहिं राव तिह, अ. रखत रावत रष्ष राह कहं, फ रषत रष्षँ राइ कह, म. राजन रष्षहि राव तह, ना. राइ ज रष्षे राव तह।

टिप्पणी—(५) तह<तथा=उसी प्रकार। (६) रावत < राजपुत्र। क्रइ<क्रदा=कभी। रय < राजा।

[४]

कवित्त— तै* राषउ*[१] हिंदुआन[२] गंजि[३] गोरी गाहंतउ*[४]। (१)
तै राषउ*[१] जालोर[२] चंपि चालुक चाहंतउ*[३]। (२)
तै राषउ*[१] पंगुरउ*[२] भीम भट्टी दइ* मथ्थउ*[३]। (३)
तै राषउ*[१] रणथंभ[२] राय जादव[३] सइ हथ्थउ*[४]। (४)
इह[१] मरण किति राय[२] षंग की जियन किति रा[३] जंगली। (५)
पहु परणि[१] जाय[२] दिल्लिय लगइ*[३] होइ[४] घरिघ्घरि[५] मंगली॥ (६)

अर्थ—(१) [सामंतों ने कहा,] "[हे पृथ्वीराज] तू ने गाहन करते हुए—पैठते हुए—गोरी [शहाबुद्दीन] को नष्ट करके हिंदुओं को रक्षा की; (२) तूने चाहते हुए—[विजय की] आकांक्षा करते हुए—चालुक्य [भीम] का दमन कर जालोर को रक्षा की; (३) तूने भीम भट्टी की मत्था (हार ?) देकर पंगुर (?) की रक्षा की, (४) तूने यादवराज के हाथ से रणस्तंभ (रणथंभौर) की रक्षा की। (५) [यह युद्ध] पंगराज की मरण-कीर्ति और जांगल राज (पृथ्वीराज) की जीवन-कीर्ति का है। (६) प्रभु [संयोगिता का] परिणय करके दिल्ली जा लगे और घर-घर मंगल हो, [हम सब की यही कामना है]।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. ति राषु (= तैं राषउ), धा. तै रक्खे, अ. फ. ते रष्षयो, म. तैं रष्यौ, ना. उ. स. ते (ते–ना) रष्यौ। २. धा. हिंदुवाण, म फ. ना. हिंदवान। ३. मो. गज, शेष में 'गंजि'। ४. मो. गाहतु (=गाहतउ), धा. गाहतो, शेष में 'गा तौ'।

(२) १. मो. तै राषु (=राषउ), धा. तैं रक्खे, म. अ. फ. तैं रष्यौ, ना. उ. स. ते (तै–ना.) रष्यौ। २. ना. नालेरि। ३. मो. चाहंतु (=चाहंतउ) धा. साहतो, फ. षाहतौ, अ. म. ना. चाहंतौ।

(३) १. मो. तै राषु (=राषउ), धा. तैं रक्ख्यो, म. अ. फ. ना. तैं रष्यौ, उ. स. तें रष्यौ। २. मो. पगुरु (=पगुरउ), धा. पंगुलिय, अ. पगुळो, फ. पमळौ, ना. म. उ. स. पंगुरौ। ३. मो. भटी दि मधु (=दइ मथउ), धा. महिथ दे मत्थ, अ. ना. म. उ. स. भट्टो दै मथ्थं (मथ्थे–म.), फ. भट्टी नैं मंथौ।

(४) मो. तै रापु (=रावउ), धा. तै रख्यौ. अ. फ. म. ना. तै रथ्यौ उ. स ते रथ्यौ। २. धा. म. रिनथमु। ३. मो. जादव, धा. जाइदौ, ना. जादु (जादउ), म. जद्दव, उ स जदौ। ४. मो. सि हिथु (=सइ हिथउ), धा. म, सै हत्थै, अ. फ सौं हत्थै, ना. उ. स. सै हथ्थ।

(५) १. धा. उ. स. इहि, म. ना. इह, अ. फ. यह। २. धा. कीरती, अ. फ. हित्ति राइ, म. ना. उ. स. कित्तिरा। ३. धा मा. ना. उ. स रा, अ. फ. राइ, म. रय।

(६) १. धा. अ. म. उ. स. पहु परनि, मो. पुहु सरणि, फ. यौ परुन। २. धा. म जाइ, मो. जाय, अ. फ. ना. जाइ, स. जाई। ३. मो. लगि (=लगइ), धा लगै, म. लगे, शेष में 'लगै'। ४. धा जु होइ, म. तौ होय। ५. धा. धरे धरु, ना. धराधर।

[५]

कवित— सूर मरण मंगली स्याल[१] मंगल घरि[२] आए[*३] । (१)
वाय मग्ग[१] मंगली[२] धरणि[३] मंगल जल पाए[*४] । (२)
क्रपन[१] लोभ मंगली दांनि[२] मंगल कछु दिन्नइ[×३] । (३)
सत[×१] मंगल[×] साहसिह[×२] मंगल[×] मंगन[×३] कछु[×४] लिन्नइ[५] । (४)
मंगल वार हइ[*] मरन की[१] ते[२] पति सथ्थइ[*३] तन षंडिअइ । (५)
षेत चढि[१] युध्ध कम धज्ज सउं[२] मरन सनम्मुष[३] मंडिअइ[४] ॥ (६)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "शूर मरने मे मंगली होता है—मंगल प्राप्त करता है, और स्याल (कायर) का मंगल [युद्ध से भाग कर] घर आने मे होता है; (२) वायु मार्ग प्राप्त करने में मगली होता है—मगल प्राप्त करता है, और धरणी का मंगल [मेघ से] जल पाने पर होता है; (३) कृपण लोभ में मंगली होता है—मगल प्राप्त करता है, और दानी का मगल कुछ देने पर होता है; (४) साहसी का मंगल सत (सत्त्र-प्रयोग) मे होता है, और मगन का मंगल कुछ लेने (पाने) पर होता है। (५) मंगल का द्वार मरण से होकर है, इसलिए पति (स्वामी) के साथ तन (शरीर) को कटाइए; (६) रण क्षेत्र मे पहुँच कर कमधुज्ज (जयचंद) से युद्ध कीजिए ओर सन्मुख मरण माँडिए।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित शब्द म. में नहीं हैं।

(१) १. धा. म. सार, अ. फ. स्यार। २. मो. मगल घर, धा. मगली ग्रिह, ना. मगल धरि, फ. मरनथर। ३. मो. आइ (=आए), धा. आये, अ. धा. आवै, ना. स. आयें, म. उ. आयौ।

(२) १. धा. वार मंगल, अ. फ. वाइ मगली, म. वाय मगल, ना. उ. स. वाइ मेघ। २. मो. मंगल म. मगलीय, शेष में मंगली। ४. मो. पाइ (=पाए), धा. पाये, अ. फ. पायै, ना. उ. स. पायें, म. पायौ।

(३) १. धा. क्रिपण, फ. क्रपिन, ना. कृपण, स. क्रपन। २ धा दीन, मो. अ. फ म. स. दान, उ. दानि। ३. मो. दिनि (=दिनइ), धा. दीनइ, ना. दिन्ने, उ. स. दिन्नै, फ. दीनै।

(४) १, मो. शत, धा. रुत, फ. मत। २, धा. माहिसइ, अ. फ. साहस, ना. उ. स. साहसीय। ३. मो. मंगलन मगन, धा. अ. फ. मंग मगल, ना. मगिन मगल, स. मँगन मगल, उ. मगन मगल। ५. फ. कुछ। ६. धा. लीनइ, मो. लिनि (=लिनइ), अ. फ. म. लिने, ना. उ. स. लिन्नें।

(५) मो. मगल वार हि (= हर) मरन दी, धा. मगली जु वार होइ मरण की, अ फ. वार है मगली मरन कीय, न ना. उ. स. मगलो वार हो (है–म. ना.) मरन की (कीय–ना.)। २. धा. अ. फ. में

नहीं हैं, म. उ. स. जौ। ३. मो. सथि (=सथइ), धा. अ. फ. ना. सत्थै, उ. स. सथइ, म. सथतन। ४. मो. षडीय (=षडियइ), धा. षडियइ, अ. फ. म. उ. स. षड्डियै, ना छड्डियं।

(६) १. मो. ना. षेत चढि (=चढइ), धा. अ. षित चढ्ढि, फ. षिति चढ्ढि, ना. षेतचढि, म. उ. स. चढि षेत। २. मो. युध, कमधज स. (=मउ), धा. राइ राठोर सट, अ. फ. ना. राइ कमधुज्ज सौ, ना. कमधुज्ज राइ सुं (=मउ), म. उ. म. राइ (राय-म.) पहुपंग सों (सौं-म.)। ३. मो. सवमुष, शेष में 'सन्मुष'। ४. मो. मडीय (=मडिअइ), धा मडिअइ, अ. फ. म. ना. उ स. मड्डियै।

टिप्पणी—(१) स्याल < सृगा। (२) मग्ग < मार्ग। (५) वार < द्वार।

[६]

कवित— मरण[1] दीजइ पृथिराज[2] हसहि[3] छत्र[4] करि[5] पइठउ[*6]। (१)
मीच लग्ग निअ[1] पायि[*2] कहइ[*3] आइ घरि[5] बइठउ[*6]। (२)
पंच घट्टि सो[1] कोस कहइ[2] ढिल्लिअ[3] अस[4] कथ्थउ[5]। (३)
इक्कु इक्कु[1] सूरवा[2] पेषि दल वाहत[3] नथ्थउ[4]। (४)
घर धरणि परणि राउ[1] पंगुकी[2] पहुचइ[*3] यह[4] वड्डत्तणउ[*5]। (५)
जब लगि[1] गंग जल[2] चंद रवि तव लगि चलइ[*3] कवित्तणउ[*4]॥ (६)

अर्थ—(१) [चंद ने कहा,] "हे पृथ्वीराज, यदि क्षत्रिय को मरण दीजिए, तो वह उसमें प्रवेश करके हँसता है। (२) मृत्यु को अपने पास पाकर वह कहता है, 'आकर घर में बैठो।' (३) सौ में पाँच कोस कम दिल्ली है, ऐसा कथन लोग कहते हैं। (४) एक एक शूर [रण में] न्यस्त (स्थापित) हो कर [शस्त्र] चलाते हुए [शत्रु] दल को देखे। (५) पंगराज (जयचंद) की [कन्या] को घर-घरनी (पत्नी) के रूप में वरण करके दिल्ली पहुँचा जाए, यही बड़प्पन है। (६) जब तक गंगा मे जल और चन्द्र-रवि रहेंगे, तब तक [इस विषय का] कवित्व चलता रहेगा।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. अ. सरण, फ. सरन। २. मो. दीजि (=दीजइ) प्रथिराज, धा. दिजइ प्रिथिराज, अ. फ. दीयौ प्रथिराज, म. दिजे प्रथिराज, ना. उ स. दिये प्रिथिराज। ३ धा. दसहि, अ. फ. सहै, ना. हसैं, म. इसैं, उ. स. हसें। ४. धा. उ स. उत्रिय, ना. अ. फ. छत्री, म. छित्रीय। ५. ना फ. म. कर। ६. मो. पइठु (=पइठउ), धा. पयठो, अ. पट्ठे, फ. पैंठ, ना. अैंठ, म. पिटहि, उ. स. पट्ठिहि।

(२) १. म. उ स. लगीनीय, धा लग्गयेय, ना. लग नया। २ धा. अ. फ पाइ मो. पायइ, (<पायि) उ. स. म. ना. पाय। ३. मो कहि (=कहइ), धा. कहे, अ. फ. कहयो, ना. म. उ स. कहै (कहैं—स.)। ४. मो. मरण मो. के अतिरिक्त यह शब्द किसी में नहीं है। ५. मो आइ घरि, धा. घरि आव, म. ना. अ फ. आयो (आयौ–म. फ. ना.) घर। ६. मो. वइठु (=वइठउ), अ. फ. बैठे, म. विटहि, ना. बैठे, उ. स. बैठहि।

(३) १. धा. पंच घाट सौ, मो. पाँच घाट सो, अ. फ. पांच घाटि सौ, म. स. पच पच सौ, ना. पंच घट्टि सौ, उ पंच सौ। २. धा. कहइ, मो. कहि (=कहइ), अ. फ. म. ना. उ. स. कहै। ३. ना. दिल्ली। ४. अ. फ. सा। ५ धा. कथ्यइ, म. अ. फ. कथ्थे, उ. स. कथ्थैं।

(४) १. धा. इक्क इक्क, मो इकु इकु (=इक्कु इक्कु), अ. फ. म उ स एक एक। २ मो धा सूरवा, ना. सूरिवा, म. सूरिवां, उ. सूरवा, ना. स. सूरिया। ३. धा. उ स. पिक्ख वाहते, अ फ. पिष्षि चाहतौ (चाहैं ते—फ.), ना. म पिष्पि चाहते। ४. मो. नथउ, धा वत्थइ, अ. फ. म. वथ्थै, ना. वत्थै, उ. स. बथ्थें।

(५) १. धा. उ. स. परनि रा, अ. फ परनि राई, म परिनि रय, ना परणि राय। २. धा. के। ३. मो. पहुचि (=पहुचइ) धा. पहुचे, शेष में 'पहुचै'। ४. धा. म. उ. स. इहै, अ. फ. कहां, ना. यहै। ५. मो वडुतणु (=वडुत्तणउ), धा. वडित्तनौ, अ. फ वडत्तनौ, म. ना वडप्पनौ ना. उ. स. बड्प्पनौ।

(६) १. ना. लगे। २. मो. जल, धा. धर, शेष सभी में 'धर'। ३. मो. चलि (=चलइ), धा. चलै, शेष में 'चलै'। ४. मो. कवित्तणु (=कवित्तणउ), धा. अ फ. कवित्तनो, ना. म. उ. स कविप्पनौ।

टिप्पणी—(१) पइट्ठ < प्रविश। (२) मोच < मृत्यु। निअ < निज। (४) नथ्थ < न्यस्त=स्थापित। (५) वड्डुत्तण [दे०]= बप्पडन। (६) कवित्तण < कवित्व।

[७]

गाथा—मिट्यउ[*1] न[2] जाइ कहणो[3] वय[4] कवि चद सार[5] सा मंत[6]। (१)*
प्राची हय गय‡ वहणो रहणो[1] गत चिता नरेंद्र तह[2] ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने कहा,] "जो कथन मेटा नहीं जा सकता है, कवि चंद वह सार मंत्र कहता है। (२) [दिल्ली की ओर प्रस्थान के लिए यह समय उपयुक्त है जब कि] प्राची (पूर्व दिशा—कन्नौज) के हय, गज, वाहन, रथादि तथा नरेन्द्र (जयचंद) गतचिता [हो रहे] हैं।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के है।
‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

पाठान्तर—(१) १. मो. मिट्यु (=मिटयउ), धा. अ. फ. मिट्यो, ना. म. मिटयौग। २. अ. उ.। ३. धा. अ. जाइ कहणो, मो जाइन दहनो, उ स. जाइ कहिनो, म. जाय कहनौ, ना. जाइ कहनौं। ४ धा. अ. गटणो, फ. गहना, ना. कहनो, म. उ. स कहनौं। ५. धा. ना. म. उ. स. सूर। ६. धा. सावंत।

(२) १. धा. आली हयगय वहणो, अ. फ. प्राची हय गय वहणो (फ. में 'गया नहीं है), म. उ स प्राची क्रम्म (क्रम—म.) विधानं। २. धा. रहणो चित्त निदावत, अ. फ. गत चित्त निदावत (नंदाउत—फ.) म. उ. स ना. मान भावई गत, ना. गत चित सूर सामत।

टिप्पणी—(१) वय < वद्। मत < मंत्र। (२) रह < रथ। तह < तथा।

[८]

*गाथा— सत भट[1] किरण[2] समूरउ[*3] सुरंगो* करेन° जान°[4] आयेस°। (१)*
जोगिनिपुर पति[1] सूरो[2] पारस मिसि[3] पंगु रायेस ॥ (२)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज के] सौ भटों ने, जो सुरंग (रगीन) किरणो के समान थे, कहा और कर से मानो आदेश (नमस्कार) किया, (२) "योगिनीपुर पति (पृथ्वीराज [स्वतः] शूर है, पंग (जयचंद) [अपनी] पारस (पारसीक सेना) के मिष (बलपर) राजेश है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
　　° चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. सत्रु भट, अ. सप्त भट, फ सम भट, ना. शत भट, म. उ. स. सितद। २. अ. किरण, फ म. किरन, ना. करण, उ. स. किरनि। ३. मो. सुमुरु (=सुमुरउ), धा. समूहे, अ. फ. समूहो ना. समूरो, म. उ. स. समूरौ। ४. धा सूरो···मो. सुरगो अरेन जान, अ. सुग्गो ओरणि आणि, फ. मृगौ आरेनु आणि, ना. उरि आरेणि सुग्ग, म. उ. सरे, परनय (सेन–म.) पग।

(२) १. मो. योगिनि (=जोगिनि<पुरपति, धा., अ. फ जुग्गिनि (जौगिणि–धा.), ना. पुरपति, जुग्गनिपुर पति, म. उ. स. झुग्गि नि पति भर। २. धा. सूरे, म सुतौ। ३. धा. पारस मिसि, मो. ना. पारसौ मिस, म. उ. स. पारस मिलि अ. फ. पारसपति।

टिप्पणी—(१) समूरव < समुल्लव < समुत्+लप्=बोलना, कहना। अरेन < करेण। आएस < आदेश। (२) राएस < राजेश।

[९]

त्रोटक—
परि[१] पंग कटक्क ति[२] घेरि[३] घनं। (१)
दस पंच ति[१] कोस निसान धुनं[२]। (२)
गजराज[१] विराजित[२] मध्य घन[३]। (३)
जनु[१] वद्दलि[२] अम्भ[३] सुरंग वन। (४)
परि पष्षर सार तुरं[१]ग घन[२]। (५)
जनु[१] हल्लति[×] हेल[×२] समुद्र[×३] अनं[×४]। (६)
वर वइरष[*१] बंबरि[२] छत्र तनी[३]।[×] (७)
विचि[१] माहीय साहीय[२] सिंघ[३] रनी[४]।[×] (८)
घर षेह मऊष त पीतपनी[१]।[×] (९)
दिषि[×१] लज्जति[२] रेण[३] सरद्द[४] तनी। (१०)
भननंकहि[१] भेरि[२] अनेक[३] सयं[४]। (११)
सहणाइय[१] सीधुअ[२] राग[३] लियं[४]। (१२)
निसि[१] सर्व नृपति[२] अनीतु फिरइ[*४]।° (१३)
जानु[१] भांवरि[२] भानु सुमेर[४] करइ[*५]। (१४)
दल सव्व[१] संभारि[२] अरत्ति[३] करी। (१५)
जिन[१] जाय[२] निकस्सि नरिंद[३] धरी। (१६)
गत जांम ति[१] जांम सुपीत परी[२]।‡ (१७)
जयजय देव अयास[१] करी।[२]‡ (१८)
नृप जग्गति सव्व तुरग[१] चढे। (१९)
विनु भान प्रयान नु[२] लोह कढे। (२०)
चहुआन कमान ति[१] कोपि[२] लियं। (२१)
मिलि भउहनि* पंचि कसीस[२] दियं। (२२)

सर छूट ति पष्षन सद्द भयउ*[१] । (२३)
मद गंध गयंदन[१] सूकि[२] गयउ*[२] । (२४)
भर इक्क ति विध्धति[१] सत्त[२] करी । (२५)
दल देषति नेक* ठुठक परी[१] ॥[२] (२६)

अर्थ—(१) पंग (जयचंद) की कटक [कन्नौज के चारो ओर] सघन घेरा डाले हुए पडी है। (२) पन्द्रह कोस तक निसानों (धौंसों) की ध्वनि [व्याप्त हो रही] है। (३) उस वन के मध्य [जयचंद की सेना के] गजराज [इस प्रकार] विराज रहे हैं (४) मानो आकाश में सुरंग (सुंदर हो बादलों का वन (=समूह) हो। (५) सार (लौह) की सघन पाषरे जो तुरंगों पर पडी हैं [इस प्रकार लगती है] (६) मानो हेला से अन्य समुद्र ही हिल रहा हो। (७) वैरखों (ध्वजाओं) और छत्रों की बबर (तड़क-भड़क) बहुत है (८) और उनके बीच मे मानों सिंह की रणस्थली साधित (निष्पादित) है। (९) धरा की धूल [उड़कर] सूर्य की किरणों मे [ऐसा] पीलापन ला रही है। (१०) कि उसे देखकर शरद की रजनी भी लज्जित हो जाए। (११) अनेक शत भेरियाँ भननक रही हैं (१२) और शहनाइयाँ सिंधू राग मे लिप्त हो रही है। (१३) शर्व (काली) निशा में नृपति (जयचंद) की सेनाएँ [इस प्रकार] फिर रही हैं (१४) मानो भानु सुमेरु की भाँवरें भर रहा हो। (१५) समस्त दल को सँभाल (तैयार) कर जयचंद ने एक अरति (बेचैनी) उत्पन्न कर दी है, (१६) जिससे कि उसका शत्रु नरेन्द्र (पृथ्वीराज) निकल कर भाग न जाए। (१७) इस प्रकार तीन प्रहर गत होने पर रात्रि पीत पड़ गई (१८) और देवताओं ने आकाश में [पृथ्वीराज का] 'जय-जय' किया। (१९) नृप (जयचंद) शर्व (काले) तुरग पर चढा भाग रहा है (२०) और बिना भानु (दिन) के ही सेना के प्रयाण के हेतु शस्त्रास्त्र निकल पड़े हैं। (२१) चहुआन (पृथ्वीराज) ने कुपित होकर कमान (धनुष) लिया (उठाया) (२२) और [उसे] भौंहों से मिलाकर खींचा और [उसे] कशिश दी (तनाव दिया)। (२३) शरो के छूटने से [उनमे लगे हुए] पखों का शब्द हुआ, (२४) [जिससे] गजेन्द्रो का सुगंधित मद सूख गया। (२५) उसके एक शर ने सात हाथियों को बेध डाला, (२६) यह देखकर जयचंद के दल में नैक (बहुत) ठिठक पड़ गई।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
§चिह्नित शब्द ना. में त्रुटित हैं।
×चिह्नित शब्द और चरण म. में नहीं हैं।
०चिह्नित चरण धा. में नहीं है।
‡चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं है।
(१) १. म. उ. स. में इसके पूर्व और है :
त्रिप मंगिय राज तुषार चढे। कवि चद जयज्जय राज पढे।
२. फ. कटिक्कत्ति, उ. स. कटिक्कति, उ. स. कटक्कत। ३. ना. घेर।
(२) १. अ सि, फ. धि। २. ना. म. उ. स. सुन।
(३) १. ना. गज—['राज नहीं है'] २. धा. बिराजहिं, म. अ. फ. विराजत, ना. विराजति। ३. अ. फ. बन।
(४) १. मो. जन, म. जनौं, शेष में 'जनु'। २. धा. वद्दर, मो. वद्दलि, शेष में 'वद्दल'। ३. मो. धा. अ. फ. अभ्र (=अभ्भ), ना. म. उ. स. अम्भ। ४. म. इन, अ. फ. उनं (<वन ?)।

(५) १. धा. पवग। २. धा. म. उ. स. घनी, ना. घणी, अ. फ. रेनं।

(६) १. म. जनौ। २. धा. फ. हेम। ३. ना. समुद्द। ४. धा. उ. स. अनी, म. ना. फ तनी, अ. तन।

(७) १. मो. विरष (= वइरष), धा अ. फ. ना वेरष। २ धा. ना. अ. फ. बवर, मो बषरि। ३. धा. तणी।

(८) १. धा. अ फ विच, ना विच्चि, मो, विरच ?)। २ मो. महीय सहीय, ना. उ. स माहिय स्याहिय (उ. में 'स्याहिय' नहीं है), अ. फ. माहि सुअस्वह (अस्वहि—फ.)। ३. मो. सिध, अ फ. हीस, ना. संध। ४. ना. रणो, अ. फ घर्नो।

(९) १ धा. अ. फ. हरि पंथि (पत्त-अ.फ.) हिमाउन (हिमावन—अ.) पीत पर्ना, ना. उ. स. हरि पष्ष हुमा (हम—स., उमा—उ.) उपवोत (अपीत—स., पति पीत—उ) वनी (पनी—ना उ)।

(१०) १. धा अ. फ देखि, स जनु। २. धा यलिय, अ फ. लज्जित, ना. में यह शब्द नहीं है, म उ. स. लज्जत। ३. अ. रनि, फ रेनि, उ. स रैनि। ४ फ. सरित; ना समुद्द।

(११) १. मो भननतहि, धा. भणणकिय, ना. अ म. उ. स. भननंकहि, फ. घननर्षइ २. मो. भेरे। ३. धा अनेग, अ फ अनेक। ४. मो. सिप।

(१२) १. मो सरणार, धा सरण इनि, अ. सहनाइन, फ. सेहनाइन, म. उ. स. सहनाइय, ना. सहनाइनि। २. मो सीधू, धा. म. उ. स. सिंधुअ, अ. फ. ना सिधुव। ३ मा. आग, धा. पूरे। ४. अ. फ. म उ. स. लय।

(१३) १. म. निस, फ. निश। २. ना. अ. सब्ब, फ सधि, म. उ. स. सब्ब। ३. मो. तिहां नृपति, ना. हि नृप। ४. मो फेरि (< फिरइ ?) म. फिरै शेष में 'फिरे'।

(१४) १. धा. ना. म. उ. स. अ. जनु, फ. जानौ। २ धा. मावर, फ. भाउर, ना. भामरि। ३. धा. भाण। ४ धा. समेर, फ तुरे। ५ मो. केरि (<किरइ ?), धा करय, फ. करी, स. कर, शेष में 'कर'।

(१५) १. म उ स. सब्ब, फ सतू। २ मो. सभरि, धा. समोरि, ना. सम्हारि। ३. धा. यरक्त, अ. यरत्ति, फ. यरेर, म उ. स. अरत्ति।

(१६) १. म. जिनि, मो. इन (< जिन), अ. फ. जिलि, ना निज। २, धा. ना. जाइ। ३. मो. नरेंद, ध. म उ स. ना. नरिंद, ना अ. फ. विपत्ति।

(१७) १. ना. त्रि। २. म. करी।

(१८) १. धा. सय सद्द अयासतु देव, ना. म. उ. म. जयसद्द अयासह (अकासह—म.) देव। २. म. उ. स. में यहाँ और है :

कर चपि नरिंद सजोगि ग्रही। उपमा चारचारु (वरवारु—म.) सुभट्ट कही।
मनों मोर दुझारसि अग्गितपी। कलिका गजराज कमाद झपी।
य चपि रकेबनि बाल चढ़ी। रबि वेलि किधौं गरु काम बढी।
तरतोन चमंकत पच्छ दिठी। जु मनो तन भान मयूष उठी।
सुष दपति चंद विराज वर। उद अस्त ससी रवि रथ्थ परं।

(१९) १. मो. नृप जागति सर्व तुरग, धा अ. फ. ना नृप जग्गति (जग्गत—अ., गज्जत—फ, जागति—ना) सब्ब तुरग, म. उ स. भर नृप सज्जे (सजे—न) सु तुरग (तरग- स)।

(२०) १. धा. विणु भाणु पय णहि, अ क. विन भान पयानह, म. उ. स. मनौ मान पयान ति (त—म.), ना विन मान पयान ति।

(२१) १. धा. वि। २. मो. कंपि, धा फ. ना. कोप।

(२२) १. मो. मुहनि (= मउहनि), धा. अ. फ. ना. मौहनि, म. साहन, उ स. मोहनि। २. ना. पंच किसीस।

(२३) १. धा. सर छुट्टति पंखिण सद्द भयं, मो. सर छूट ति पंषव सद्द भयु (= भयउ), अ. फ. सव

दथ्थर (सबद८थुर-फ.) इोन अनन सय, ना. म उ स. मर छुट्टति (छुट्टत--उ. स.) पष ति (पषनि--ना.) सद्द सय (सय--उ. स)।

(२४) १. धा. अ. फ. गयदनि । २. धा. सुक्क, उ. स. मुक्कि, म. अ. फ. ना. सुक्क । ३. मो. गयु (= गयउ), शेष में 'गय' ।

(२५) १. धा. सर एक स वञ्चित, अ. फ. सर विद्धत (विद्धन—फ.) इक्क, म. सर एक सुविधति, उ. स. सर एक सु विद्धन । २. अ फ. सात ।

(२६) १. मो दल दिषिति निक (< नेक) ठठु करी, धा. दल लिखियत नयकत ठक्क परी, अ. फ. ना. दल दिष्षत (दि षति- फ.*) नेक (नेकु—ना.) ठठुक्क (टट्टक—फ.) परी, म. उ. स. द ल दिष्षत नेंन (नैन—म.) ठठुक्क परी । २ उ स. में यहाँ और है :

तरवारि (तरवारनि—उ) हजारक च्यारि परी । प्रथिरान लरत न सक करी ।

इसी प्रकार यहाँ धा अ. फ. में और है :

जह गानर सूरन भीर परी । ठिल्लइ चहुवान तु अप्प वरी ।

किन्तु यह दोनो अतिरिक्त चरण उस उक्ति-शृखला को भग करते हैं जो इस छद के उपर्युक्त अन्तिम चरण तथा आने वाले छद के प्रथम चरण में है । मो म. ना. इस प्रक्षेप से मुक्त हैं ।

टिप्पणी—(२) धुन < ध्वनि । (४) वद्दलि < वार्दलिक (?) = छोटे बादल । अम्भ < अभ्र= आकाश (६) जन < अन्य । (८) साहीय < साधित=निष्पादित । (९) मऊप < मयूख । (१०) रेण < रजनी । सय < शत । (१२) लिय < लिप्त । (१३) सर्व < शर्व (१५) अरत्ति < अरति । (१६) अयास < आकाश । (१९) सर्व < शर्व । (२४) पष्प < पक्ष । सद्द < शब्द शब्द । (२४) गयद < गजेंद्र । (२६) नेक [न + एक] = बहुत ।

[१०]

भुजंग— ठठके सब सेन नइ*[1] मीर मिल्ले[2] । (१)
विजे सब सेन तिक्के नकरे[1] । (२)
चिर[1] चहुम्रान राठौर जाले[3] । (३)
देषिम्रइ*[1] पंगुरे[2] नयनरे लाले[4] ।[5] (४)
कोपियं[1] वीर विजपाल[2] पुत्तं । (५)
ग्रावियं जंग हा भार दुत[1] । (६)
संघरे सेन सन्नीह दीह[1] । (७)
नौमि तिथि घल्लि[1] पृथीराज सीह[2] । (८)
राजसं तामसं वग[1] प्रगट्टं । (९)
मूकिगं सव्व[1] सातुक्क[2] वट्ट[3] । (१०)
सार संपत्त[1] ग्रातप्प रच्छ[2] । (११)
मनउ*[1] ग्रावर्क इद्र रुद्र निकस्सं[2] । (१२)
निड्डरहि[1] ढाल गय[2] मत्त[3] मत्तं । (१३)
उठियं सूर तामत[1] रत्तं । (१४)
भूमि भर धरण पीठ रे सुपंथ । (१५)

अथ्थि[१] बिय हथ्थिय[३] प्रथीराज सथ्थं[४] । (१६)
बढे[१] वीर सामंत सा वीर[२] रूपं । (१७)
जिसे सयल सद्दूर* संदेश[२] जूपं । (१८)
वडे विग्रा वाणे सु भाणे उदता[१] ।×(१९)
जिसे अर्क फल फूटने ही अ ंता[२] ।× (२०)
कंपि ते कायर लोह रत्तां[१] । (२१)
जिसे[१] अनिल[२] आरंभ पारंभ[३] पत्तां[४] । (२२)
इसउ*[१] युध्ध अनुध्ध[२] मध्यान हूअं[३] । (२३)
रहे हारि हथ्थं ति जूअरि[१] जूअं[२] ।°(२४)
नामियं अस्सि[१] डिल्ली दिसानं ।§(२५)
पुट्ठिरे[१] पंगु वज्जे निसानं ।§(२६)
चंपइ*[१] चाहि[२] चहुवान[३] हरसिंघ[४] नायउ*[५]।(२७)
जिसे[१] सेयल ते[२] सिंघ[३] गजजूथ पायउ*[४]॥[५](२८)

अर्थ—(१) सब सैनिक ठिठक गए और अमीर म्लान हो गए। (२) सब सैनिक भाग खड़े हुए और उन्होंने लड़ने से इनकार कर दिया। (३) चहुआन (पृथ्वीराज) ने राठौर (जयचन्द) को चिरकाल तक जलाया—संतप्त किया—था, (४) [इसलिए इस समय] पंग (जयचन्द) के नेत्र लाल दिखाई पड़ रहे थे। (५) वीर विजयपाल का पुत्र (जयचन्द) कुपित हुआ (६) और अपने जन्म (जीवन) को भारहीन करने के लिए द्रुत आया। (७) किन्तु [पृथ्वीराज ने उसके] दीर्घ सैन्य-संग्रह का संहार किया (८) और नवमी तिथि को उस [सैन्य-संग्रह] को पृथ्वीराज सिंह ने [रणस्थल में] डाल दिया। (९) रजस् और तमस् के काव्य वहाँ प्रकट हुए, (१०) सबने सात्विक मार्ग का त्याग कर दिया। (११) उस युद्ध मे सप्राप्त सार (शस्त्रास्त्र) आतपत्र (छाते) हो रहे थे, (१२) और [वे आयुध ऐसे लगते थे] मानो इन्द्र और रुद्र ने आयुध निकाले हों। (१३) मत्त गज-मद के निर्झर (?) ढाल रहे थे। (१४) शूर और सामंत लाल हो उठे। (१५) [रण] भूमि में धृष्ठ भट स्वपथ को धारण करने लगे। (१६) पृथ्वीराज के साथी दोनों हाथों में [अस्त्र धारण करने वाले] हो रहे थे। (१७) [उसके] वीर सामंत ऐसे वीर रूप में बढ रहे थे (१८) जैसे वे सब सन्देश (सदेह देवो) के यूप (स्तंभ) के सिरे हों (१९) भानु के उदित होने पर विग्रह (?) के बाने वाले [इस प्रकार] गिरने लगे (२०) जैसे अर्क का फल फूटते ही अनत [भुवों के रूप में] हो [कर उड़] जाता है। (२१) कायर लोग रक्त लौह (शास्त्रास्त्र) देख कर [इस प्रकार] काँपने लगे (२२) जिस प्रकार अनिल के आरम्भ (वेग से चलने) से पत्तो में हलचल हो जाती है। (२३) मध्याह्न तक इस प्रकार का अनुद्धत (अपरित्यक्त) युद्ध हुआ (२४) [मानो] जुआड़ी जूए मे हाथ (दाँव) हार गए हों। (२५) [इसी समय पृथ्वीराज ने] अपना अश्व दिल्ली की दिशा मे मोड़ा (२६) और उसकी पीठ पर पग (जयचंद) के धौंसे बज उठे। (२७) [जयचंद की सेना पर] आक्रमण करने के लिए चाव (उमंग) पूर्वक चहुवान हर सिंह झुक पड़ा (२८), जैसे शैल शिखर से सिंह गजयूथ पाकर टूट पड़ा हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं
§ चिह्नित चरण मो. ना. म. उ. स. में नहीं है।

× चिह्नित चरण अ फ. में नहीं हैं।

० चिह्नित चरण धा में नहीं हैं।

(१) १. मो. ठक्के सब सेनि नि (=नइ), धा. ठठक्की सेनि समि, अ. फ. छठुक्य। सेन सब, म. उ. स ठठुक्के सुसेन मन, ना. ढढुक्के सेन मन। २. मो मिलो, शेष सभी में 'मिल्ले'।

(२) १. मो. विजे सब सेन तिके नकरे, धा. विड्डरिय सेन सव्वे नकल्ले, अ. फ ना विडरियं (विड्डुरी–ना.) सेन सव्वे (सव्व–फ. ना.) निकल्ले, म. उ स. डर विड्डुरी सेन सब्बे (सब–म.) निकल्ले।

(३) १. मो. चिर, धा वरि, अ फ. चाइ, म. उ. स. वर वर, ना. बेर। २ म. रठौर। ३. मो. जाले, धा. जूरे, अ. फ. रछ, ना म. स. झले, (झले–स.), उ हले।

(४) १ मो. देषोइ (=देषिअइ), धा दिक्खियो, अ. फ दिक्खियहि, म उ स तबें लक्खिय (तषीय–म), ना. दिष्य। २ धा. पगरे, अ ना. म. उ स पगुरा, फ. पिंगुरा। ३. अ फ म. उ. स. नेन, ना नन। ४. धा. भरे, अ. फ. म उ. स लह (लहे–म. उ. स)। ५. ना म उ. स. में यहाँ और है (स पाठ):—

तिन+ उप्पजी रोस उर अभ्भ अग्गी। उत+ निक्करे निपति कै नेन मग्गी।
तिन+ लुब्धिय नन दंस दि न। तब+ चंपय राजने चाहुआन।
तिन+ उप्पजी रुष बुनि सिंगिार। तिन+ वज्जिय नइ नीसान भार।
लय+ लिय क्रत्र राजं सजाई। तिन+ अप्पिय कन कौवड जोई।
तिने+ सुमरियं चित्त गथ्रब्त्र सद्द। उत+ जोइयं मुष मामत इद्द।
वचन्नं सुंसद्द कवी चद्द बोल्यौ। तबे+ भगियं कन्ह मों मो अबोल।
तबे+ लग्गियं मान रायंति रायं। उतं+ देषिय आज कौ जूह चायं।

+ ना. में चिह्नित शब्द नहीं हैं।

(५) १ धा. कुप्पियो, अ. कप्पियउ, फ. कपिया, ना. कोपिय, म. उ. स तब कोपिय। २. धा. बीर विजैपाल, ना. वा [र] विजैपाल। ३. म. सुत।

(६) १ धा. अवद्ध राइ जम भार दत्त, अ. फ. आवद्ध करहि जमजाल जुत्त, म स तिन आवधां (आवध–म) झारि जमजालि दुत्त, उ तिन आवधारि जमजालि दुत्त, ना. आवध कार जमजार दुत्तं।

(७) १. धा सप्परे सेन सइ सदाइ, अ. फ. सहर्यौ सेन सनि सो सदोइ, म. उ. स. सब सघरी (सहरे–, सघरे–म) सेन (सेन–म उ) सनीइ (सीनइ–स.) दीइ, ना. सघरे सेन सन्नाइ दीइ।

(८) १ मो. नौमि तिथि थाल, धा अ. नौमि तिथि थलइ, फ. नौमि तिथि थलि, उ. स इसौ नौमि तिथि थान, म. इनौ नौमि तिथ. ना नौमि तिथि थाल। २. धा. प्रिथिराज साइ।

(९) १ मो राजसं तामसे वग, धा. राजस तामस वेग, अ फ. राजस तामसं वेद (वे–अ.), म. उ. स तिन राजस तामस बे, ना. राजस तान सव्वे।

(१०) १. धा. मुक्किय एक, अ फ. मुक्किय इक, ना. मुक्कीयं सव्व, म. उ स. भर मुक्किय सव्व। २. धा. सानुक, म. सापुक। ३ स बहुं।

(११) १. फ. सार सपत्ति, म. उ. स. मर सार सपत्ति (मपत्त–म उ)। २. धा. ना पत्ते तिरत्थ; म अ फ पत्तेति रच्छ, उ. स. पेतित्ति रच्छ।

(१२) १. मो. मनइ, धा. उ. स मनो, ना. मनु (=मनउ), म अ फ. मनौं। २. धा आबद्ध रुद्र इद्राति कत्थ, अ. फ. आवव (आवद्ध–फ) रुद्ध इद्रानि कछछ, ना. आवध रुद्रानि कत्थ, म. उ. स आवध इद्र रुद्रानि (रुद्रनि–उ, रुद्रान–म.) कच्छ।

(१३) १ धा मो निढरहि, अ फ. ना निढ्ढरइ (निढ्ढर–फ), म. निटरहि, उ. स. वर निड्ढरौ। २ फ में यह शब्द नहीं है। ३ अ फ मंत, ना. म उ. पत्त, म पत्ति।

(१४) १. धा. पुट्ठि सावत सामित्त, अ फ. पुट्ठि सामंत सीमंत, ना. उड्डिय सूर सामत, म. उ.

स सवै ठ्यं सूर सामंत।

(१५) १. धा. फ. भूमि (भौमि-फ.) मारत्थि (मारथ—अ. फ.) ढर (ढरैं-अ. फ.) सोइ पत्थ, म. उ. स. उत्त भूमि वर (भर—म.) धरनि (धरति—म) ढहि ढरि सुपथ्थ, ना. भूमि धर धरणि ढहि ढरि सु पत्थं।

(१६) १. म. उ. स. तन अथ्थि। २. फ वह, म. वस। ३. अ. ना. हत्थि, शेष में 'हथ्थ'। ४. धा. अ. फ. हथ्थ।

(१७) १. धा. वढे, अ. फ. विढइ। २. मो. स. वीर, फ. सा वीत।

(१८) १. मो. जिसे सयल सिंदूर (=सिंदूर), धा. जिसे सयल सादूल सद्देश, अ. फ. जिसौ सेल सादुल्ल भद्देस, ना. म. उ. स. जिस सल (तेल—उ., सेल—ना.) सदूर (सिंदूर—ना.) सदेस (सदेह—ना.)

(१९) १. धा. उडे विगाबाने स भाने उडतं, ना म. उ. स उडै विग्र बाने (वाने-ना) सु भाने (सुभाने—ना. म.) उदंता।

(२०) १. धा. जिरे अकुलाये निकट्टे अनत, उ. स. जिसे अर्क फल फूटि होते अनना, म. जिसे सेल सदूक (तुल० चरण १८) फल फुटि ही ते अनना, ना. जिम अर्क फूट हिते अनता।

(२१) १. मो. कपि ते कायर लोह रत्त, धा. फ. कपे काइरइ लोह रत्ते सरत, अ. कपै काइरय लोह रत्तौ सरत्त, ना. कप'य कायरं लोह रत्त, म. उ. म. तते कपिंय काइर (कायर—म.) लोह रत्त (इत्त—स)।

(२२) १. धा. जिसो, अ. जिसौं, फ. यिसो, म. उ. स. मनो (मनौं—म.), ना. मनुं (=मन)। २. धा अनल। ३. फ. पारम, ना. उ. स. प्रारम। ४. धा. तं।

(२३) १. मो इसु (=इसउ), ना. इसा। २. धा. अ. फ. अनुरुद्ध, म. उ. स. आवद्ध, ना. आतुद्ध। ३. ना. हुव्वं।

(२४) १. अ. जिसो वाप, फ. जिसौ ऊप, म. उ. स. जु जूआरि (जूवारि—म.), ना. जिसं जुव्व। २. ना. जुव्व।

(२५) १. अ. फ अस्व। २. धा. निसानं।

(२६) १. अ. फ. पुट्ठए।

(२७) १. मो चपि (=चपइ), धा. म. चंपे, अ. ना. उ. स. चपे, फ. चपौं। २ धा. अ. फ. उ. स. चाइ, ना. राइ, म. चाय। ३. मो. चहवान। ४. धा. हरि सिंघ। मो. नायु (=नायउ), शेष में 'नायो' या 'नायौ'।

(२८) १. अ. जिसौ, ना. म. जिसै। २. धा. सयल ते, अ. फ. सेल तें, ना सैल मैं, म. उ. स. सेन मैं (मैं—उ. स.)। ३. मो. सव (< स्यव)। ४. मो पायु (=पायउ), धा. पायो, शेष में 'पायो' या 'पायौ'। ५. मो. ना. म उ. स. में यहाँ और है: करे कूह (कह—मो) गज जूह सनमुष धायु (धायौ—ना. म. उ. स.)। पगुराय दल समिटिं चहु कोद छायु (छायो—ना. म. उ. स.)। किन्तु स्वीकृत-अगले छंद की प्रथम पंक्ति के साथ इस छंद की स्वीकृत अंतिम पंक्तियों की उक्ति-शृङ्खला प्रकट है।

टिप्पणी—(२) विज्=भागना। (३) जाल < ज्वालय्=जलाना (६) जम < जन्म। द्रुत्त < द्रुत। (७) सन्नीह < सन्निधि=समूह। दीह < दीर्घ। (८) घाल < घल्ल=फेकना। (९) वग < वग्ग < वाक्य। (१०) मूक < मुच्=छोड़ना। सातुक < सात्विक। वट्ट < वर्त्मन्। (११) संपत्त < सप्राप्त (१२) आवझ < आयुध। (१३) निझर < निर्झर (?)। (१४) रत्त < रक्त। (१५) धीठ < धृष्ट। (१६) अथ्थि < अस्थिन्। विय < द्वय। (१८) सयल < सकल। सद्दूर < शार्दूल। (१९) वड < पत्=गिरना। विग्रा < विग्रह (?)। (२२) पारंभ < प्रारंभ। पत्त < पत्र। (२३) अतुद्ध < अनुद्धृत=अपरित्यक्त। (२५) अस्सि < अश्व। (२८) सेयल < शैल।

[११]

कवित्त— करि जुहार हरसिंधु[१] नायउ*[२] चहुआन पहिल्लउ*[३] । (१)
वरी अनी सा बरिय[२] लष्षु[३] सउ*[४] भिडउ*[५] इकिल्लउ*[६] । (२)
अगम कयाहउ*[१] फिरिय* धरणि षुर षुर‡ सउं*[३] षुदइ*[४] । (३)
एक[१] लष्ष सउं*[२] भिरइ*[३] एक[४] लष्पइ*[५] रण[६] रुंधइ*[७] । (४)
तिल तिल हुइ त्रुट्टउं* नहि मुरउ*[१] जय जय जउ*[२] आयास[३] भयु[४] । (५)
इम जंपइ[१] चंद विरद्दिआ*[२] च्यारि[३] कोस चहुआन गयु[४] ॥ (६)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज ने जब दिल्ली की दिशा मे बाग मोडी,] उसको जुहार करके पहला योद्धा चहुआन हरसिंह झुक पड़ा। (२) उसने [शत्रु को] जिस अनीक (सेना) का वरण किया, उसका वरण कर ही लिया, [उससे मुडा नहीं] और [शत्रु के] लाख सैनिको से वह अकेला भिड़ गया। (३) उसका अगम [नाम का] कयाह [जाति का] घोड़ा भी, जब वह [रणभूमि में] फिरने लगा, धरणी को अपने क्षुर (छुरे) के सदृश खुर से खूँदने लगा। (४) [हरसिंह] एक लाख से भिडा और एक लाख का उसने रण में रोक रक्खा। (५) वह तिल-तिल होकर टूटा (कट गया) किन्तु [युद्ध से] मुडा नहीं, जब [उसको इस वीरता पर] आकाश मे 'जय जय' हुआ। (६) चन्द बिरदिया कहता है, इस प्रकार [हरसिंह के जूझने से] चहुआन पृथ्वीराज [दिल्ली को दिशा में] चार कोस [आगे निकल] गया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. धा. ना. म हरिसिंघ, अ. वरसिंघ, फ. उरसंधि, स. नरसिंघ। २. मो. नायु (=नायउ), धा अ. नयो, म. फ. ना. नयौ। ३. मो. पहिलु (=पहिलउ), धा. पहिल्लो, शेष में 'पहिल्लो' या 'पहिल्लौ'

(२) १. धा. वरिय। २. धा. अ. उ स. सावरी, फ. साउरी, ना. सामरा। ३. धा. अ. म. उ. स लष्ष, फ. लषि। ४. मो. सु (=सउ), धा. सू, अ. सन, फ. सन्न, ना. सुं (=सउ) उ. स. सों, म सौं। ५. मो. भडु (< भिडउ), धा लर्यो, अ. फ. ना म. उ. स. भिर्यौ। ६. मो. इकिलु (=इकलउ), धा. अकल्लो, अ. फ. अकिल्लो, ना. म. उ. स. इकल्लो।

(३) १. मो. कहायु (=कहायउ), धा कयाहो, अ. फ कयाहै, ना. कयाहु (=कयाहउ), उ. स. कायहुअ, म. कायकरि। २. मो फिरिध (< फिरिय), फिर्यौ, ना. फिरैं, शेष में 'फिर्यो' या 'फिर्यौ। ३. मो. ना. षुर षुर सुं (=सउं), धा तिल तिल षुर (तुल० चरण ५), अ. षुर षुर सौ, फ. षुरस्यौ, म. उ. स. षुरसौं षुर (पुर–म.)। ४. धा. खुदे, मो, घोदि (< षुदइ ?), अ. फ. खुदइ, ना. षुदैं, म. उ. स. षुंदहि।

(४) १. धा. अ. फ इक्क। २. मो. सु (=सउ), धा. सो, ना. सु (=सउ), अ. फ. म. उ. स. सौं। ३. मो. भिरि (=भिरइ), धा. भिरे, अ. फ. लरइ (लरै–फ.), ना. उ. स. भिरै, म. भिर्यौ। ४. धा. अ. फ. ना. इक। ५. मो. लषि (=लषइ), अ. म. उ. स. लषइ, फ. ना. लषहि। ६. उ. रिन, ना. नर। ७. मो. रुंधि (=रुंधइ), धा. रुंधे, ना. रुंधैं, म. उ. स. रुंधहि।

(५) १. मो. तिल तिल दुइ त्रुटु (=त्रुटउ) नहि मरु (=मरउ), धा. तिलतिल तुट्यो नहीं मुरयो, अ. तिल तिल होइ तभो जही, फ. तिहौं लोयन भौर ही, म. उ. स. असि घाइ (घाय–म.) झाइ (झाय–म

वज्जै (व जे–म.) विषम, ना. तिल तिल कै हुव्यौ नहि मुर्‌यौ । २. मो जय जय जु (= जय), धा. अ. फ. मुरि हय हय, ना. जय जय जय, म. उ. स. जै जै जै । ३. धा. अ. फ. म. उ. स. आयास, मो. ना. आकास (आकाश–ना.) । ४. धा. अ. फ. भउ, ना. भय, म. उ. स. भौ ।

(६) १. मो० जपि (= जपइ), धा. जपे, शेष सभी में 'जप' । २. मो. म. विरद्दिया, ना. विरुदीय, शेष में 'विरदिया' । रचना में अन्यत्र 'विरद्दिआ' ही है, यथा ८. १४, २.२९, ३.१, ५.१९, ५.४५, १२. ४०, १२.४९ । ३. अ. फ. चारि (चार–फ.) । ४. धा. अ. फ. गउ, ना. गय, म. उ. स. गौ ।

टिप्पणी—(५) आयास <आकाश । (६) जप<जल्प् ।

[१२]

दोहरा— परत धरणि हरसिघ[१] कहं[२] हरषि पंगु[३] दल सव्व[४] । (१)
मनहु जुद्ध[१] जोगिनि[३] पुरह तनु[४] मुक्यउ*[५] सब[६] गव्व[७] ॥ (२)

अर्थ—(१) हरसिंह के धरणी पर पड़ते—गिरते—ही सारा पंग (जयचन्द) दल हर्षित हो उठा, (२) [उसे ऐसा प्रतीत हुआ] मानो युद्ध में योगिनीपुर (दिल्ली) के गर्व ने ही [हरसिंह के रूप में] शरीर छोड़ा हो ।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. हरिसंघ, मो. हरसिघ (< हरस्यघ), अ. स. नरसिंघ, फ हरुसिंघ, म. उ. हरसिंघ, ना. हरिसिंह । २. मो. ना. कह, धा. अ. फ. कहु, म कै, उ. स कहु । ३. धा. हरिख पंगु, ना. उ. रुकिग पगु, म. रुकिय पंग, स रुकिय गयंद । ४. धा. सव्व, उ. सव्व, म. स. श्रव्व ।

(२) १. धा. मनुह, ना. मनुहुं, फ. मनौह । २. मो. यूध, म. जुध, ना. जुद्ध । ३. धा. म. स. जोगिन, ना. जुग्गनि । ४. धा अ. फ. तन, ना. म. उ. स. तिन । ५. मो मुक्यु (=मुक्यउ), अ. फ. मुक्यो, ना म. मुक्यौ, स. मुक्कयौ । ६. म. श्रव । ७. ना. चव्व, म. ग्रव, स. अब्ब ।

टिप्पणी—(२) मुक्क < मुच् । गव्व < गर्व ।

[१३]

दोहरा— फुनि[१] प्रथिराज अच्छि[२] देह[३] बलु[४] रठ्ठिवर[५] नरेस । (१)
सिर सरोज चहुआंन कउ*[१] भमर[२] सस्त्र[२] सम मेस ॥ (२)

अर्थ—(१) तदनतर पृथ्वीराज को आंखों से देखकर राठौर नरेश (जयचंद) घूम पड़ा । (२) चहुवान (पृथ्वीराज) का सिर सरोज [के सदृश हो रहा] था, और [उसके ऊपर मँडराने वाले] शस्त्र भ्रमर के सदृश वेश के [हो रहे] थे ।

पाठांतर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है ।

(१) १. धा. अ. फ. पुनि । २. मो. प्रथीराज अछि देह, धा प्रिथिराजहि अत्यि, अ. ना. प्रिथिराजह अच्छिछ, फ. प्रिथिराजहि अच्छिछ, म. उ. प्रथिराज सु अच्छ, स. प्रथिराज सुपच्छ । ३. मो. देह, धा. दल, शेष सभी में 'दल' । ४. अ. दल, फ. वलि, म. उ. स. वर । ५. धा. राठोरं, अ. फ. ना. राठौर, म. उ. स. रठ्ठौर

(२) १. धा. के, अ. फ. कौ, ना. म. उ. कै । २. धा. भवर सारं, अ. फ. सार भंवर, म. उ. स. भवर सस्त्र, ना. भ्रमरि शस्त्र ।

टिप्पणी—(१) अच्छि < अक्षि=आँख । देह < देक्ख < दृश् । बल < वल्=घूम पड़ना ।

[१४]

कवित्त— दिष्षि सुनहुं प्रथिराज[१] कनक नायो[२] बड गुज्जर[३] । (१)
हम तुम[१] दुस्सह मिल नु§ स्वामि§[२] हूजइ*§[३] तु अप्पु*[४] घर§ । (२)
हउं*§[१] रविमंडल§ मेदि§ जीव§ लगि सत्त न छडहुं[२] । (३)
षंड षंड हुइ[१] तुंड[२] मुंड[३] हर[४] हार सु मंडहु[५] । (४)
इह बंसि भज्जि[१] जानइ*[२] न कोइ[३] हउ*[४] पति पंक अलुज्झयउ[५]* । (५)
इम जंपइ*[१] चंद विरद्दिआ[२] षट त[३] कोस चहुवान गयु[४] ॥ (६)

अर्थ—(१) कनक बड़ गूजर झुका, और उसने कहा, "हे पृथ्वीराज [सारी परस्थिति] देख कर सुनो; (२) हमारा और तुम्हारा [पुनः] मिलना दुस्सह (कठिन) है, [इसलिए] हे स्वामी तुम स्वय तो अपने घर हो (पहुँच जाओ), (३) और मैं रवि-मडल का भेदन करूँ—वीर गति प्राप्त करूँ; जीवन (प्राणों) के लिए सत्य नहीं छोड़ूँगा; (४) मेरा तुड (मुख—सिर) खड-खंड हो जाएगा, तो मैं [अपने] मुड से हर-हार को तो मंडित करूँगा । (५) इस (मेरे) वंश मे भागना कोई नहीं जानता है, मैं तो स्वामी के [लाज–] पंक में आरुद्ध हुआ हूँ ।" (६) चंद विरदिया कहता है, इस प्रकार [कह कर कनक बडगूजर के जूझते-जूझते] चहुवान (पृथ्वीराज छः) कोस निकल गया ।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।
§ चिह्नित अक्षर अ र शब्द अ. फ मे नहीं हैं ।

(१) १. धा देषि सुनहु प्रिथिराज, फ. दिष सुनहु प्रथिराज, ना. म. उ. स. भौ आयस (आइस–ना.) प्रथिराज । २. म. नायौ । ३. धा. वर गुअर, मो. वड गूजर, शेष सभी में 'बड गुज्जर' ।

(२) १. ना तुम्ह । २. फ. सि । २. ना. म सामि । ३. मो. हूजि (=हूजइ), धा. हुइ जाइ, स. हुज्जै, म न. उ. हुज्जै । ४ मो. तु अपु (<अप्पु), धा अपन, ना इव अप्प, म. उ स. सु अप्प ।

(३) १. मो हू, धा. मो, ना. हु (= हउं), म. हौ, उ. स हौं । २ धा छडउ, मो. छड्डु, ना. छडु (=छडउ), म. षंडौं, उ. स षडो ।

(४) १. धा षड षढ हु अ, फ. षड षड होइ, म उ स. षड षड करि, ना. षडि षड करि २. मो. अ. तुंड, धा. रुंड, शेष सभी में 'रुंड' । ३. मो. मड । ४. फ हरि । ५. मो. हार सु मड्डु, धा. हार ज मडउ, अ फ. हारहि मंडौं, उ. स. हार सु मंडौ, म. हार सु मडौ, ना. हारे सु मडु (= मंडौ)

(५) १. धा. इह वस भाजि, अ. इह वस भज्जि, म. उ. स. इह वस भग्गि, ना. इहि वस भग्गि २. मो. जानि (=जानइ), धा. जानइ, अ जाने, फ. गवरे, ना. म. उ. स. जाने । ३. फ. स. कोइ, ना. न कुइ, म उ. स. न को । ४. मो हू (= हउ), ना. हु (= हउ), धा. हो, अ. गुरि, फ. गुरु, म. हौ, उ. स. हौं । ५. धा. पक अलुज्झयउ, मो पक अलुक्षयु, अ. पक अरुद्धयउ, फ. पक असझयउ, ना. उ. स. पंक अलुझ्झयौ, म. एक अलुझ्झयौ ।

(६) १ मो. जपि (= जपइ), धा. जपइ, शेष में 'जपै' । २. मो. विरदीउ (= विरदिअउ), ना. विरद्दीया, शेष में 'वरद्दिया' । ३. धा षट सु, म. उ. स. षट्ट, ना. षड ति । ४. धा. अ. फ. गउ, म. ग्यौ, उ. स. गौ, ना. गयौ ।

टिप्पणी—(५) अलुझ्झ < आरुद्ध (?) ।

[१५]

दोहरा— वड हत्थह[१] वड गुज्जरह[२] झुम्झि[३] गयउ[४] वैकुंठि[५] । (१)
भीर सघन स्वामिहि[१] परत चषि[२] कबंध[३] अरि दीठि ॥ (२)

अर्थ—(१) बडे हाथों वाला बड गूजर (कनक) जूझ कर वैकुंठ गया; (२) स्वामी पर सघन (घनी) भीड (आपदा) पडने पर उसे आखों से [केवल] शत्रु [पक्ष] का कबंध दिखाई पड़ता था (उसको शत्रु का सहार करने के अतिरिक्त कुछ नही सूझता था)।

पाठान्तर—(१) १. धा हथ्थहि, फ. हथ्थ, ना. हत्थी । २. मो. गूजरह, धा. गुज्जरउ, अ. फ. गुज्जरत, ना. म उ. स गुज्जरह । ३ धा. अ. जुज्झि, मो. म झुझि (= झुज्झि), फ. रुज्झि, ना. झझि । ४ मो. ना. फ. म. उ. स. गया (< गयउ), धा. अ. गयउ । ५. मो. वकुठि, धा. वकुठ, शेष सभी में 'वकुठ'।

(२) १. मो. सुघन स्वामिहि, फ. सघन स्वामिह, ना. सघन सामिह, उ. स. सघन सामित, म. सघन सामित । २. मो. चप्य (< चष्य=चषि), अ. फ. चषि, ना. मा. उ. स. चख । ३. धा. अ. फ. कम धुज्ज (कम धज्ज-धा.), ना. कमध, म. निडर, उ. स. निढ्ढुर । ४. धा. अरिभ्रद, अ. फ. स (सु—अ.) दिठ्ठ, ना. म. उ. अरि दिठ्ठ ।

[१६]

कवित— धर फुट्टइ[१] षुरधार[२] लार[३] तुट्टइ*[४] सिर[५] उप्परि । (१)
तब[१] नायउ*[२] रठ्ठिवर[३] नृपति[४]‡ पृथिराज सामि छर[५] । (२)
षग्गह सीसु हनंत[१] षग्ग षुप्परिय[२] षरष्षर[३] । (३)
सोनित[१] बिंदु[२] परंत[३] पंक[४] निध्धिय हि त गय घर[५] ॥ (४)
विरचिग्रउ*[१] लोह[२] वर सिंघ सुअ[३] षंडषंड‡ तन[४] षड्डियउ*[५]। (५)
नीडर[१] निसंक झुम्झत रण[२] अट्ठ कोस चहुआंन गयु[३] ॥ (६)

अर्थ—(१) [जब] धरा घाडों के खुरों की धार से फूट रही थी, और उनकी लाला [सैनिकों के] सिरों पर टूट रही रही थी, (२) तब राठौर [निडर राय] स्वामी नृपति पृथ्वीराज के छल (छद्म) मे झुक पडा। (३) खड्ग से सिरों को मारते (काटते) हुए उसने खोपडियों पर खड्ग खड़खडाई। (४) [उसके संहार से] जो शोणित बिंदु गिरे, उनके पंक में गज धरा में धिंघ (फँस) गए। (५) वरसिंह के पुत्र निडर ने इस प्रकार लौह (तलवार) की रचना की, [तदनंतर] उसका तनु खंड-खड होकर खडित हुआ। (६) [इस प्रकार] निश्शङ्क होकर निडर के जूझते-जूझते चहुआन (पृथ्वोराज) आठ कोस चला गया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
‡ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. मो. फुटि (=फुटइ), धा. तुट्टइ, ना. फट्टे, फ. म. फुट्टे । २. मो. धा, धार, अ. ताल, फ. ताउ, ना. म. उ. स. तार । ३. धा. लाल, अ. लाइर, फ. मूह, ना. धार, म. उ. स. सार । ४,

धा. फुट्टे, मो. तुटि (=तुट्टइ), अ. तुट्टइ, ना. तुट्टि (= तुट्टइ), फ. फूटे, म. उ. स. तुट्टे। ५. ना. में यह शब्द नही है। ६. म. ऊर्पारि, धा. उप्पर, ना. लप्परि शेष में 'उप्पर'।

(२) १. फ. भव, म उ. स. तहाँ। २. मो. नायु (= नायउ), धा. अ. म. उ. स. नायो, ना. निड्डुर, फ. नग। ३. मो. म. रट्ठवर, ना. रट्ठौर, धा. राठोर, अ. राठ्योर, फ. गतपरौ। ४. म. त्रिप। ५. धा. मो. अ. फ. स्वामि छर, म. सामि बरि, ना सामि छर।

(३) १. मो. सीसह अनत, शेष सभी में 'सीस हनत' (सीसु हनत–धा)। २. मो खुपरिय, धा. खुप्परिव।। ३. धा. अ. फ. षरष्षर (परष्षर-फ), मो ना. म. उ. स. घनष्घन (घनघन–ना.)

(४) १ धा. स्रोनित, अ फ. उ. म. श्रोनित, ना. म श्रोनति। २. धा अ. ना. म उ स. बुद, फ. बुदहि। ३ फ. परतु। ४. म. उ. स पग। ५. मो विधियहित गय धर, धा. बिद्धिय गयद धर, अ. बिद्धिया गयध्धर, फ. विंटिद्धा ज षधर, ना. बिद्धी हयगय नन, उ. स बिद्धीय घरध्धन, म किद्धिय घन घन।

(५) १. धा. अ. विरचि, फ. विहौपेषि, मो. विरचिउ (= विरचिअउ), ना उ. स. बिरचयौ, म. तहां विरचि। २ फ. साहि, म. षोलो ३. ना. जय सिंघ सुय। ४. ना षड षड ननु, फ. षडतु। ५. मो. षडीग्यु (षडिग्यउ), धा अ. फ. षडयउ, ना. षडयो म. उ. स. षंडयौ।

(६) १. मो. अ. नीडर, धा. निडर, ना. म उ. निड्डुर, स. निड्डुर। २, मो. झझत रण, धा. जुझंत रन, अ. जुज्झत रनह, फ जुझ्झत रिण, म. झझत रिनि, उ स. झुझ्झत रन, ना. अनसकि रण। ३. धा. अ. चहुवान गउ, फ. चहुवान गौ, ना. म. उ. स. नृप हिंडयौ।

टिप्पणी—(१) लार < लाला। (२) उर < छल। (३) षग्ग < खड्ग। (४) धर < धरा। (५) सुअ < सुत।

[१७]

दोहरा— सम रट्ठउरनि रट्ठवर[१] निडर[२] झुज्झि गय[३] जांम। (१)
दिनिअर[१] दल प्रथिराज कउ[२] चंपि पंग सम[३] तांम॥ (२)*

अर्थ—(१) जब कि राठौरों (अपने सजातीयों) के साथ अडर (निडर) राठौर भी जूझ गया, तब याम (प्रहर) गत हो चुका था, (२) और पृथ्वीराज के दिनकर दल को पंग (जयचंद) ने तमस् (अंधकार) के समान दबाया।

पाठान्तर—चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १ मो. सम रठुरनि (= रठउरनि) रठवर, धा. समर रठोरनि राठवर, अ. फ. ना. सम राठोरनि (राठोरन–फ.) राठवर (राठवरि–फ, रठ्ठवर–ना.), म. सम रठ्ठौरन रिठवर, उ. सम रठ्ठौरन रठ्ठवर, स. सम रट्ठौर रठ्ठवर। २. मो. अटर, धा. निहरु, अ फ. निडर, ना. उ. निड्डुर, म. नियड्डुर, स. निद्दुरि। ३. मो. झ झि (< झुज्झि) गय, धा. अ. फ जुज्झ गिरि, ना द झुझि गय, उ. स. झुझ्झिग, म. झुझि गर (= झुझ्झि गर)।

(२) १. धा. अ. म. उ. स. दिनयर, ना. दिणयर, फ दिनयरु। २. मो. कु (= कउ), धा. कूं, म. अ. फ. ना. कौ, उ. स. कौं। ३. धा चपिउ पग सम, अ. फ. चप्यौ पगुस, म. उ. स. ना. राहु पंगु हुइ, म. उ. स. राह पग मय।

टिप्पणी(१)—गय < गत। (२) दिनअर < दिनकर। तांम < तमस।

[१८]

दोहरा— चंपत पिछ्छोरिय गति[१] चषह अपन[२] तन दिष्ष[३] । (१)
तन तुरग तिलु ति तिलु कर[१] भयउ*[२] कन्ह[३] मन भिष्ष[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) दबाव के कारण पीछे की ओर ही [अपनी] गति होने पर [कन्ह ने] अपनी आँखों से अपने को देखा, (२) और अपने शरीर और तुरग (घोड़े) का [कटाकर] तिल तिल करने के लिए कन्ह के मन भिक्षा आकांक्षा (?) हुई।

पाठांतर—* चिह्नित संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा. चप ति पिछोरिय गति चखह, मो. चपत पच्छिर गति, अ फ चापतह (चापतिह-फ) पिछ्छोर (पिछ्छोरि-फ.) दिसि (दिछु-फ.), ना. चपित अच्छरि डिंम लगि, म. उ. स. चपत अच्छरि रिढ (रिंठ-उ.) लगि। २. धा अ. फ. इय पट्टन, ना म. उ. स. चषि (चष-ना. म.) अपन (आपन–ना)। ३ मा तन देषि, धा तनु दख, अ. फ. तन दिष्ष, ना. तन दिष्षि, म. तर देष, उ स. तन देषि।

(२) १. धा. तुरग तिल निज करन, अ. फ. म. उ. स तुरग तिल तिल करन, ना. तरंग तिल तिल करण। २. मो. भयु (=भयउ), धा भया, शेष में 'भयो' या 'भयौ'। ३. मा. कन, शेष सभी में 'कन्ह'। ४. धा. मनु मेष, मा. मन भषि, अ. ना. मन भिष्ष, फ. तितति सिष्ष, म. उ. स. मन मेष।

टिप्पणी—(१) चष < चक्षु। (२) भेषि < भेक्ष (?) भिक्षा।

[१९]

कवित्त— सुनहि[१] बात[२] पषरेत[३] लेहि[४] उट्ठउ* दल रुक्कउ[५]* । (१)
चिहिरु होइ चंपइ* त[१] स्वामि चुटि महि न चुक्कउ[२]* । (२)
पहु पट्टन[१] पल्लानि हटकि हउ*[२] हनउं*[३] गयंदह[४] । (३)
समर[१] वीर[२] संघारउ[३] भीर[४] नहि परइ*[५] नरिंदह । (४)
रुक्कियउ*[१] छगन[२] जयचद दलु सिर तुट्टइ*[३] असिवर कढउ*[४] । (५)
तब[१] लगि तिहि[२] दल रुक्कियउ[३] जब लगि कन्ह[४] हय[५] वर चढउ*[६] ॥× (६)

अर्थ—(१) [छगन से] कन्ह ने कहा, "हे पख रैत (पष्षर डालने वाले) [छगन], मेरी बात सुन; तू [शत्रु के] उठे (उमड़े) हुए दल को रोक। (२) चारों ओर से [शत्रु का] दबाव पड रहा है, स्वामी पर चोट पडते हुए [इस समय] मही पर मत चूक। (३) प्रभु पृथ्वीराज के [अश्व] पट्टन को पलान कर मैं गजेन्द्रों को भी दूर कर उन्हें मारूँगा। (४) समर में वीरों का संहार करूँगा, जिससे नरेन्द्र (पृथ्वीराज) पर भीड़ (संकट) न आए। (५) [यह सुनकर] छगन ने जयचंद की सेना को रोका; उसकी असि के निकलते ही सिर कटने लगे। (६) उसने तब तक शत्रु के दल को रोका जब तक कन्ह उस श्रेष्ठ अश्व (पट्टन) पर चढ़ा।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित चरण म. में नहीं है।

(१) १. फ. सुनिव, म. उ. स सुनहु, ना. सुनीय। २ म. अ. वत्त, फ हत्त। ३. मो. वषरेत, धा. विखरेत, अ. ना. वषरंत, फ. म उ. स. पषरत। ४. अ फ. लेह, ना. लोह, म. लेहु, उ. स. लेहु। ५. मो. वठ (< उठु=उट्ठउ) दल रुक, धा. वइठो दल रक्खिउ, अ. फ बाढो दल (ढल–फ.) रुक्कौ (रष्यौ–फ.), ना. उड्यो दल रुक्यौ, उ. स. ओढ़ौ दल रक्यौ, म. औढौ दल रुक्यौ।

(२) १. मो. चिहिरु दाइ चंपित (=चपइत), धा. चिहुरे होइ चपत, अ. ना. चिहुर होइ चापत, उ.स. चिहूँ ओर चपंत, म. चहु ओरन चपत। २ धा अ फ स्वामि अदबुद (अदभुत–अ. फ) इहु (इहि–फ., यह–अ.) पिक्खिउ (पिष्यौ–अ. फ.) मा स्वामि चुटि महि न चुकु (=चुकउ), ना. म उ. स. अत ओटह किम चुक्को (चुक्यौ–म.)।

(३) १. मो. पुहुपटन, ना. पुहपट्टनि। २ मो. हटकि हू (=हउ), धा. कटक उह, अ. हटकि हो, फ. हलह, ना. हटकि हु (=हउ), म. उ. स. हटकि करि। ३. मो. हनु (=हनउ), ना. हनु (हनउं), धा. हने, फ. त्यौह, म. हनौ, शेष में 'हनौ'। ४. फ नगुदह।

(४) १. म. अ. फ. ना. स बर। २ धा धीर। ३. मो. सधरु (=सधरउ), म. धरयौ, ना. संधरौं, उ. स. सम्रहे। ४. धा. भीर वह, म. उ. जिम भोर नह, स भीरनह। ५. धा. परी, मो परि (=परइ), अ. फ. ना. परे।

(५) १. मो. रुकिउ (=रुकियउ), धा रुक्यो सु, अ. फ. ना म. उ स रुकयौ। २. फ छन। ३. मो. तुटि (=तुट्टइ), धा. तुट्यो, अ फ. ट्रुट्टे, शेष में 'तुट'। ४. मो कढु (=कढउ), धा. कढ्यो, म. बढ्यौ, शेष में 'कढ्यौ' या 'कढ्या'।

(६) १. धा. अ. फ. जब। २ धा. सहु, अ. फ. सुतिह, ना. सुतहि, उ. स. सुतास। ३. मो. रुकिउ (=रुकियउ), धा. रुक्यिो, अ. फ ना. उ. स. रुक्यौ। ४. धा फ तब सुकन्ह, अ. तब सुकान्ह ना. जब लगि सुकन्ह। ५. उ. स. हे, फ. य। ६ मो. चढु (=चढउ), ना चढ्यो, शेष में 'चढ्यौ, या 'चढ्यो'।

टिप्पणी—(३) पहु < प्रभु। (५) तुट्ट < त्रुट्।

[२०]

दोहरा—चढत कन्ह[१] सामंत हय जय जय कहि सहु[२] देव। (१)
मनहु[१] कमल करि वर किरण[२] कुहर[३] पंगु दल सेव॥ (२)

अर्थ—(१) सामंत कन्ह के उस अश्व [पट्टन] पर चढते समय सब देवता 'जय जय' कहने लगे। (२) [ऐसा प्रतीत हुआ] मानो कमल कलिका पर [सूर्य की] श्रेष्ठ किरण [आसीन होकर] पंगु (जयचंद) दल रूपी कुहरे (कुहासे) का सेवन कर रही हो।

पाठान्तर—(१) १. अ फ. कन्ह। २. मो. कहि (=कहइ) सु, धा. कहै सहु, अ. फ. कहि सब, ना. [illegible] स. करहि सु।

(२) १. धा. मनो, फ. मनौह। २. ना. उ. करिवर भ्रमर, स. कलिमल भ्रमर। ३. ना. कहर।

टिप्पणी—(२) करि < कलिका।

[२१]

*कवित—तब सु कन्ह[१] चहुआंन[२] तुरिय[३] पट्ट सु पलानउ[*४]। (१)*
*हिंसि कनकि कर उठउ[१] मरन अपणउ[*२] पहिचानउ[*३]। (२)*

उहि करि[१] असिवर लिअउ*[२] गहिवि[३] गजकुंभ उपट्टइ[४] । (३)
उहु मारिहि लातहुं धाय[१] देषि[२] अरि दंतह[३] कट्टइ[४] । (४)
उह[१] नरु निसंकु[२] हइ*[३] वर सघरु[४] दिष्षहुं बित्तक बित्तयउ*[५] । (५)
उहुं[१] मुंडमाल हर संठयो[२] उहि रवि रथ ले[३] जुत्तयउ*[४] ॥[५](६)

अर्थ—(१) तब कन्ह चहुआन ने पट्टन घोड़े को पलाना। (२) वह श्रेष्ठ घोड़ा हींस और गिनगिना उठा, और उसने अपना मरण पहिचान लिया। (३) उस (कन्ह) ने श्रेष्ठ असि को पकड़ा, और उसको ग्रहण करके गज कुंभों को उत्पाटित करने लगा। (४) और वह (पट्टन) दौड़ते हुए लात मारने और शत्रु [—पक्ष के सैनिकों] को देख कर उन्हें दाँतों से काटने लगा। (५) वह निश्शंक नर (कन्ह) श्रेष्ठ घोड़े पर [उस रण—] धरा में था, जब कि देखो, यह बीतक बीता। (६) वह (कन्ह) हर के मुंडमाल में संस्थित हुआ और वह (पट्टन) लिया जाकर रवि रथ में जोता गया।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. धा. तब कान्हो, अ. फ. तबहि कान्ह। २. फ. चौहुवानु, ना. चहुवान। ३. म. तुरी, ना. तुरीय। ४. मो. पलानु (=पल्लानउ), धा. पल्ल्यो, अ. फ. पल्लान्यो, म. ना. पलांन्यौ।

(२) १. धा. हंस किरन कित उठ्ठि, मो. हिंस कनकि उठु (=उठउ), अ फ. हींस (हास-फ.) क्रम करि उठ्यो, म. ना. उ. स. हिंसि (हसि-म.) किनकि (कनकि-ना.) वर उठ्यौ। २. मो. अपणु (=अपणउ), धा. अप्पही, ना. अपनौ, म. उ स. अप्पन। ३. मो. पहिचानु (=पहिचानउ), धा. अ. फ. पिछान्यो, म. ना. उ. स. पहिचान्यौ।

(३) १. धा. कह करि, फ. कह कर, म वह कर, ना. उ. स. उहि कर, केवल मो. म. में 'उहि करि'। २. मो. लीउ (=लिअउ), धा. लयो, ना उ. म लयौ, स. लइयौ, अ. फ. गहै। ३. धा. गहव, मो. गहिवि, अ. फ. गहवि, ना. गहिग, म उ. स. गहिव। ४. मो. उपटि (=उपटइ), धा. अ. उपट्टइ, फ. ना. उ स. उपट्टै, म उपटै।

(४) १ मो उहु मारिहि लात हू धाय, धा. उह मारइ हु धाइ, अ फ. वह मारे तह (वह-फ.) धाइ, म वह मारैं लत्तनि धाय, स मारैं लत्तनि धाय, ना. वह मारै लातनि धाइ। २. मो. धा देषि, अ फ. ना म. उ. स. षुदि। ३. ना. म उ स दतनि। ४ मो. कटि (=कटइ), धा अ. कट्टइ फ. कट्टहि, म कटै, ना. कट्टै।

(५) मो. उह, धा. वह, शेष में 'वह'। २. ना. णिसकु। ३. मो. हि (=हइ), धा हय, अ. फ. हैं, ना. हैं, ना. है, म. हैं। ४. ना. सुधरु, म. उ. स. सुधर। ५. मो. दिष्षहुं बित्तक बित्तयु (= बित्तयउ), धा. अ फ. पिष्षहु (पिषिहि-फ.) चित कुचित्तयो, ना. म. उ स. पिष्षहु बित्तक (चित्तक-ना.) वित्तयौ।

(६) १. मो उहु, धा. म. अ. फ. वह, स. वर, ना. तह, उ स. वर। २. मो. मुंड माल हर सुठयो, धा. म. रुंड माल हर सठयो, अ. फ. सीस हार हरगु थयो, ना. उ. स. मुड माल हर संठयौ। ३. फ. रथ्थहि, अ. ना. रथ्थह। ४. मो जुतयु (=जुत्तयउ), धा. जुत्तयो, ना. म. जुत्तयौ, शेष में 'जुत्तयो'। ५. मो में यहाँ और है: इम जंपिय चंद बिरदिउ दस कोस चहुआन गउ।

टिप्पणी—(३) उपट्ट < उत्पाटय्। (६) संठव < संस्थापय्।

[२२]

दोहरा— धरणी कन्ह परत प्रगट[१] उठ्ठि[२] पंगु न्रिप हंकि[३] । (१)
मनु*[१] अकाल[२] अवली° जरल°[३] गाहि° अतुट्टि°[४] घनु°[५] रक[६] ॥ (२)

अर्थ—(१) प्रकट रूप मे कन्ह के धरणी पर गिरते ही, पंगु राज (जयचंद) [इस प्रकार] हुंकार उठा, (२) मानो अकाल में उस [रंक] अवली ने जो रो रही हो अटूट धन प्राप्त किया हो।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।
० चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।

(१) १. धा. धरनह कन्हह परत ही, अ. फ. धरनी कन्ह परत्त ही, ना. म. उ स. धरनि कन्ह परतह प्रगट (प्रगटि–म.)। २. धा. अ फ. प्रगट, मो उठि, ना. म उ स. उठ्यो। ३. धा ना त्रिप हक, अ. फ. दल हफ, म. उ. स. नृप हक्कि।

(२) १. धा. मन, मो. मनु, अ. फ तनु, ना. मनु (= मनः ?), म. मनौ, उ. स मनो। २ यहाँ से 'रंक' के पूर्व तक का अंश धा. में नहीं है। ३ मो. अबला जरज, अ. फ अवली उरल, ना म. उ. स. सकरह (सकइर–ना. सकर–उ.) हसि। ४. मो. गहिअ तुटि, अ. फ गहहि ट्रुट्टि, ना. गइ टूटि, म. उ. गहिय तुट्टि। ५ मो. धनु, शेष में 'निधि'। ६. मो. रंफि, धा. रक, शेष सभी में 'रंक'।

टिप्पणी—(२) रल < रट्=रोना, चिल्लाना।

[२३]

दोहरा— तब झुकित[१] अल्हन षग्ग गहि[२] भयउ*[३] अप्प[४] बल रूप[५]। (१)
सिर अप्पउं*[१] स्वामी कजह[२] हनउं*[३] गयंदन[४] यूप[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) तब अल्हन ! खड्ग ग्रहण करके झुका और स्वयं बल रूप हुआ; (२) [उसने कहा,] "मैं स्वामी के कार्य के लिए [अपना] सिर अर्पित करूंगा और हाथियों के यूप (धुर–अग्रभाग) को मारूंगा"।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) मो. झुकित, शेष सभी में 'झुकि'। २. मो. षगहि, शेष सभी में 'षग्ग गहि'। ३. मो. भयु (= भयउ), शेष में 'भयो' या 'भयौ'। ४. मो. ना. आप, शेष में 'अप्पु' या 'अप्प'। ५. ना. कोटि, म उ. स. कोट।

(२) १. मो. अपु (= अपउ), म. अपौं, ना अप्पौं। २ अ. फ. कर (करि–फ.) स्वामिकै, ना. कर स्वामि कह, म. कर सामिकौ, उ. स. कर स्वामि कों (कौ—उ.)। ३. मो. हनु (= हनउ) ना. हन्यौ, शेष में 'हनौं'। ४. मो. गय धर, ना. अ. फ. गयदनि, म. उ. स. गयदन। ५. मो अ जूप (यूप–मो.), ना० जोटि, म. उ. स. जोट।

टिप्पणी— (१) षग्ग < खड्ग। (२) कज < कार्य।

[२४]

कवित—सिर तुट्टइ*[१] रुंधइ*[२] गयंद वड्ढउ*[३] कट्टारउ*[४]। (१)
तउ*[१] समरी[२] महामाय[३] देवि दीनउ*[४] हुंकारउ*[५]। (२)
अमिय कलस[१] आयास लिअउ*[२] अच्छरी[३] उच्छंगह[४]। (३)
तब सु भई परतक्खि[१] अरीत अरीत कहत कह[२]। (४)

अल्हन कुमार विभ्रम भयउ[*१] रण‡ किहि‡ वानकि मनि मन्यउ*[*२] । (५)*
तिम तिम[१] तिलोयन[२] गंगधर तिम तिम संकर सिर धुन्यउ[*३] ॥ (६)*

अर्थ—(१) [अल्हन का] सिर जब टूटने (गिरने) लगा, उसने कटार निकाल ली और वह गजेन्द्रों का रुद्ध करने लगा। (२) तब उसने महामाया का स्मरण किया और [उसके स्मरण पर] देवी ने हुङ्कार दिया (किया)। (३) आकाश में अमृत-कलश अप्सरा ने उसको क्रोड (गोद) में ले लिया, (४) और 'अरिक्त' 'अरिक्त' [अर्थात् अब अल्हन के आगमन से स्वर्ग की रिक्तता शेष नहीं रही] कहती हुई वह प्रत्यक्ष हुई। (५) [किन्तु] अल्हन कुमार को विभ्रम हुआ; [उसके] मन में यह विचार बना हुआ था कि रण किस वर्णक (रूप) में हो रहा था, (६) [अतः] ज्यों ज्यों वह यह विचार करता था, त्यों त्यों त्रिलोचन, गंगाधर, शंकर अपना सिर पीट रहे थे [कि वह वीर अब भी पृथ्वी की माया से अपने मुक्तकर उनकी मुंडमाल में स्थान नहीं ग्रहण कर रहा था]।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
‡ चिह्नित शब्द ना. में त्रुटित हैं।

(१) १. मो. तुटि (=तुटइ), धा. म. उ. स. तुटे, अ टुट्टइ, ना. फ. टुट्टे। २ मो. रुधि (=रुंधइ), धा. रुधयो, अ फ. ना वर धयौ, म. उ. स. रुध्यौ (रुध्यौ–म.) ३. मो. गयद कढु (=कढउ), धा ना उ. स गयंद कढ्यौ, म करह कढयो, अ फ गेंद कढ्ढियो। ४ मो. कटारु (=कटारउ), धा. कट्टारो, शेष में ना. कट्टारौ।

(२) १ मो. तु (=तउ), धा. तिह, अ फ. तह, ना तह, म उ. स तहाँ। २. अ. फ. सुमिरी, म. समरीय, उ. स सुमरिय, ना समरी। ३. मो. माहमाय, धा. फ. महामाइ, अ. उ. स. महमाय, ना. म. महमाय। ४. मो. देवि होंतु (> दीनउ), धा. देवि दीन्हो, ना. देवदिन्नौ, अ. फ. देवि दिद्धं, म. उ. स. देवि दीनौ। ५ मो. हुकारु (=हुकारउ), धा. हुकारो, म. ना. हुकारौ, शेष में 'हुकारौ'।

(३) १. फ. असी सकल, म. अमिय सद। २, मो. लीउ (=लिअउ), धा. लियो, फ. सियौं, ना. म. लयौ। ४. अ. फ. उछग तह।

(४) १. धा. भयो परत तिहि रह, मो. तब सुभई परतकि, अ. फ. भइ पर तिष्षि सु (सि–फ) तथ्थ, ना. म. उ. स. तह (तहाँ मनह–ना.) सुभई परतष्षि। २. धा. अ. फ. ना. रह जय जय सु कहकह, म उ. स. अरित अरि कहते वहगह।

(५) १. म. कुमार विभ्रम झयु (< भयउ), धा. अ फ कुमार विभ्रम, सुभौ (भो–धा.), उ. स. कुमार विभ्रम हुम्यौ, म. कुआर विभ्रम सुभौ, ना कुनार झुझ्यौ रिषह। २. धा. रनक विमानहि मनु मन्यो, मो रण किहि वानकि मुनि (< मनि) मुन्यु (< मन्यउ), अ. फ. भौ कवि रन मान मन्यौ, म. उ. स. रनकि विमानह मतु (मन–म. तु–उ.) मन्यो (मन्यौ–म.), ना.–ति मन मन्यौं।

(६) १. धा. तिम थहि, अ. फ. निम आहि, ना. तामीहि, म उ. तिहि दरस, स तिहि दससि। २. धा. सो लोयन, मो. लोयन, म. उ. स. ति (त्रि–म. उ.) लोचन। ३. मो. तिम तिम सकर सिर धुन्यु (धुन्यउ), धा ना. म अ. फ. तिम तिम संवर सिर धुन्यो (धुन्यौ–म.), उ. स. तिम संकर सिर धर धन्यौ।

टिप्पणी—(१) तुट्ट < त्रुट्। (२) समर < स्मरय्। (३) अमिय < अमृत। आयास < आकाश। अच्छरी < अप्सरा। उछग < उत्संग। (४) परतक्खि < प्रत्यक्ष। अरीत < अरिक्त। कह < कथा। (५) वानक < वर्णक। (६) तिलोयन < त्रिलोचन।

[२५]

दोहरा—धुनि[१] सीस[×] ईस सिर[२] अल्हनह[३] धनि धनि[४] कहि[५] प्रथिराज । (१)
सुनि कुप्पउ[१] अचलेस वर[२] मुहि वर देषिवि राज[३] ॥ (२)

अर्थ—(१) ईश (शिव) अल्हन के लिए सिर पीट रहे थे, [यह देखकर] पृथ्वीराज ने कहा, "अल्हन धन्य है, धन्य है।" (२) यह सुन कर अचलेश कुपित हुआ, और [उसने कहा,] "राजा मेरा बल देखे।"

पाठान्तर—× चिह्नित शब्द ना में नहीं है।

(१) १. ना. म. उ. धुनत, स. धुनित। २. ना. भिर। ३. मो. अलनह। ४. मो. धिन धिन, धा. धन धन। ५. मो. किहि (< कहि)।

(२) १. धा. कुप्यो, मो. कोप्यौ, अ. फ. कुप्पउ, ना. म. उ. स. कुप्यौ। २. म. भर, ना. आ. फ. तव। ३ धा महो वरन दिविराज, अ फ महिवर देव विरान, ना. म उ स. मुहि बल (बरु–ना) देषिव (देखिसु–म., देविव–ड.) राज।

टिप्पणी—(२) वर < बल।

[२६]

कवित— करि ज[१] पइज[*२] अचलेसु झुकित[३] चहुवान षग्ग गहि[४] । (१)
अरि दल बल संघरउ[*१] पूरि[२] धर‡ भरत[२] रुधिर दह[४] । (२)
मच्छ ति[१] हेवर[२] फुरहि[३] कच्छ गज कुंभ विदारहि[४] । (३)
उग्र्र[१] हंस उडि[२] चलहि हंस[३] मुख कमल विराजहि[४] । ‡ (४)
चउसठ्ठि[१] सद्द जय जय करहि छत्रपति वरि[२] संचरिग[३] । (५)
बोहित्थ वीर बाहर तनउ[१] दिल्लिय पति चढि उत्तरिग[२] ॥ (६)

अर्थ—(१) जब अचलेश ने प्रतिज्ञा की और वह चहुवान (पृथ्वीराज) की खड्ग ग्रहण कर झुका, (२) उसने अरिदल-बल का संहार किया और धरा में रुधिर के द्रह पूरित होकर भर गए। (३) [उस द्रह में] मत्स्य श्रेष्ठ अश्व थे, जो स्फुरित हो रहे थे, कच्छप वे गज कुंभ थे, जिनको वह विदीर्ण कर रहा था, (४) जो हंस (प्राण) ऊपर [निकल कर] उड़ रहे थे, वे ही हंस थे और जो मुख थे, वे ही उसके कमल थे। (५) चौसठ [योगिनियाँ] 'जय जय' शब्द कर रही थीं, और वे छत्रपतियों का वरण कर के संचरण कर रही थीं। (६) [इस द्रह से पार होने के लिए] बोहित (जहाज) वीर बाहर पुत्र अचलेश था, जिस पर चढ़ कर दिल्ली पति (पृथ्वीराज) उस द्रह से पार हुआ।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
‡ चिह्नित शब्द या चरण फ. में नहीं है।

(१) १. मो. करिज, धा. करिइ, अ. फ. करित, ना. करिय, म. करवि, उ. स. करिवि। २. मो पिज (पइज), धा. ना म. पेज। ३. धा. झुकति, मो. ना. झुकित, अ. झुक्वित, फ. धुकिति, म. प्रबल, ऊमुछल, स. सुछल। ४ धा. गहि, मो. गिहि (< गहि), अ. फ. ना गह।

(२) १. धा. सम्परिग, मो. सिंधुर, अ. संघरिग, फ. संघरिग, म. संघरयौ, उ स. संहरयौ, ना. सघरो। २. फ. पूर। ३. धा. मरति, अ. भरिग, फ. भ्रगं, म. भिरत, ना. उ. स. भरित। ४. धा. ना. दह, म. उ. स. दहि।

(३) १ ना. मुरछित। २ धा हयवर, अ. फ. हयनर, ना. म उ. हैवर (हैवर-म.)। ३. मो. फुरिहि (< फुरहि), ना. फिरहि, म. उ. स तिरहि। ४. धा. ना. अ. फ. म. उ. स. विराजहि, मो. मात्र में 'विदारहि'।

(४) १. धा. उवर, अ. फ. उवरि। २. धा अ. फ उड, म. डिग। ३. अ फ तब्ब। ४. म सुराजहि।

(५) १ मो. चुनठि (=चउसट्ठि), धा चउसठिठ, ना चोसठिठ, म. चवसठ, अ. फ चवसठिठ। २. धा. छत्रपतिय परि, अ फ. छत्रपति ति वर (वर-अ.), ना. छत्रपनिन परि, उ. स छत्रपत्ति परि, म. वन (> छत्र) पतिपरि। ३. अ. संगरिग, फ समरिग, म उ. स. संचरिय।

(६) १. मो. बाहर तनु (=तनउ), धा. बाहर भरिउ, ना. अ. बाहर तनौ, फ. बाहरि तनौ, म. बारह (< बाहर) तनौ, उ. स. बाहर तनै। २. धा. चढियउ तुरिग, म उ. स. चढि उत्तरिय, फ. चचढि उत्तरिग।

टिप्पणी—(१) षग्ग < खड्ग। (२) दह < द्रह। (३) मच्छ < मत्स्य। है < हय। फुर < स्फुर्। (४) उबर < उपरि। (५) सद्द < शब्द।

[२७]

दोहरा— *अचल अचेत ज[१] षेत हुअ[२] परी[३] पंग बहुराय[४]। (१)*
पट्टनवइ पहु पट्ट छर[१] विंझ विरच्यहु धाय[२]॥ (२)

अर्थ—(१) जब [रण-] क्षेत्र में अचलेश अचेत हुआ, पंग (जयचद) की सेना लौट पड़ी (उसने पुनः आक्रमण कर दिया); (२) [इस समय] पट्टन पति के पट्ट प्रभु को (?) छलने वाले विंझल ने दौड़ कर [युद्ध की] रचना की।

पाठान्तर—(१) १. धा. जु, अ. फ. म उ. स जु, ना नि। २. ना. हुव। ३. मो. परी, शेष सभी में 'परिग'। ४. धा. बहुराइ।

(२) मो पटनवर पुहु पठछर, धा. पट्टनवइ पहु पट्टछर, अ. पट्टन कल्यउ पट्टछर, फ. पछा। कल्यउ पट्ट छर, ना. म. उ. स. पट्टनछर अरु पट्टछर। २. मो. वठु (=वठउ) वीरच्युहु धाय, धा. विधु विरवर धाइ, अ. विझ विरझ्झहु धाय, फ. विंझ वीर वहु धाय, म. उ स. उठे (उठ-म.) विंझ विरुझाय, ना. उठे वीर विरुझाय।

टिप्पणी—(२) वइ < पति। पहु < प्रभु।

[२८]

आर्या कवित्त—*कल[१] न कलउ[*२] अरियन[३] तुं[४] मिलउ[*५] मरहरि न[६] मग्गउ[७]। (१)*
*अबस न लिअउ[*१] जसहीन न भयउ[*२] अमग्ग न लग्गउ[३]। (२)*
पहु[१] न लज्यउ[२] जीवत न गयउ[३] अपजस नहि[४] सुनयउ[५]। (३)
*इयर[१] जिम[२] दव्वर[३]गि रहउ[*४] गाहंत[०५] न[०] गहयउ[०६]। (४)*

*वलि गयउ[१] न मंदिर दिसि[०२] रहउ[*३] मरण जाणि झुमझउ[४] अनी[५] । (५)*
बिझ[०] लगि[०१] दाग[०२] तिलक[०३] मिसि[०४] वहु[०] वहु[‡०] बहु[‡०] भग्गुलधनी[५] ॥ (६)

अर्थ—(१) [विझ ने] कल (चैन) नही किया, वह शत्रुओं से नहीं मिला, और न भयभीत होकर [रण से] भागा। (२) उसने अयश नही प्राप्त किया, और वह यशहीन नही हुआ, न वह अमार्ग मे लगा। (३) उसने प्रभु (स्वामी) को लज्जित नही किया, वह जीते जी [रण क्षेत्र से] नही गया और उसने अपयश नही सुना। (४) इतर जनो की भाँति वह दबैल नही रहा और पकड़े जाते हुए पकड़ा नही गया। (५) वह मंदिर (घर) की दिशा में लौटकर नहीं चला गया, वहीं बना रहा, और मरना जानकर सेना (युद्ध) मे जूझा। (६) विझ का दाग लगा तो तिलक के मिस [अतः] हे भग्गुल धनी, तुम धन्य हो, धन्य हो, धन्य हो।

पाठांतर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
‡ चिह्नित शब्द फा. में नही हैं।
० चिह्नित शब्द धा. में नहीं हैं।

(१) १. धा. अ. म उ. स कलि, मो. ना. कल, फ. कल्य। २. मो कलु (=कलउ), धा. अ. कल्यउ, फ. कल्यय, ना उ स कल्यौ, म. कलिय। ३. धा अरिनन, म. अलिय, फ. अरियत, उ. स. असियन। ४. धा. मो नु, शेष सभी में 'न'। ५ मो मिलु (=मिलउ), धा. मिलिउ, अ. फ. मिल्यउ, ना. उ. स. मिल्यौ, म. मिलिय। ६. धा भरहर विनु, अ. फ भरहरि दिन, ना. हरि भरि नहि, म. भरहरि नह, उ. स भरहरि नहि। ७ मो भगु (=भगउ), अ. भग्गउ, धा. भग्यो, ना. म. उ. स. भग्गौ।

(२) १ मो. अजस न लीउ (=लिअउ), धा. अजस न लिय, अ. फ. अजसु न लयउ, ना. अजस न लयौ, म. उ. स. अजसु (अजमु–म.) न लयो। २. मो. जसहिन भयु (=भयउ), धा. जसहीन भग्गयो, ना. जसहीन न भयौ, अ. फ जसहीन न भयउ, म. जस वित भयौ, उ. स. जसवनि भयो। ३. धा. अगमन लगयो, मो. अमग न लगु (=लगउ), अ फ. आमग्ग (आमग–फ.) न लग्यउ, ना अमगि नहिन लग्यौ, म. उ स. अमग्ग न लग्गौ।

(३) १. मो. पुहु, धा. पहु, शेष सभी में 'पहु'। २ मो. लीउ (=लिअउ), धा. लिअउ, अ. फ. लज्यउ, ना. लीयौ, म. उ. स लयो (< लयो=लजौ)। ३. मो. जीवत न ग्यु (=गयउ), धा. जीवत गह्यो, अ. जीव न गहयउ, फ. जीव ना गहिउ, ना. म. उ. स. जीवत न गयौ। ४. फ. नाही, म. उ. स. नह। ५. धा. हुम्यो, मो. सुनयु (=सुनयउ), ना. म. उ. स. सुनयौ।

(४) १ मो. ईयार, धा. कायर, अ. फ. इयर, ना अवरणि, म उ. स. और न। २. मो. धा. ना. जिम, अ. फ जेम, म उ. स. ज्यों। ३ मो. –र, धा. दवरि, ना दवर, फ. दज्जुरि, शेष में 'दवरि'। ४. धा न रह्यो, मो. णि रहु (=रहउ), अ न रह्यउ, फ वाहिउ, म. नयो, उ. स. न गयो, ना. णि रह्यौ। ५. म. ग्राह ग्राहत। ६. ना. म. उ. स. न गह्यौ, अ. फ. न गयउ।

(५) १. धा. ना चलि गयो, मो. चलि गयु (=गयउ), फ. वलि गयउ, अ. चलि गयउ शेष में 'चलि गयो' या 'चलि गयौ'। २ फ. मंदरु दिसि, म मदिर दिसि, ना. मदिर दिशह। ३. मो. रहु (=रहउ), धा रह्यो, अ. रह्यउ; शेष में 'रह्यो' या 'रह्यौ'। ४. मो. जानि झुझु (=झुझ्झउ), धा. जानि झुक्यो, अ. जानि जुझ्यौ, फ. जान जुझ्यौ, म. झुझ्यौ, उ. स. ना. झुझ्यो। ५. धा. म. उ. स. अनिय।

(६) १. अ. फ. विझल, म. उ. स. विंझदिय, ना. वींझदयौ। २. स. दा, ना. दागु। ३. अ. जिलक, फ. जलीक, म. तिलकहि, ना. उ. स. तिलकह। ४. ना. म. उ. स. मिसह, अ. मिस। ५. मो. बहुल भंगि संभरि धनी, धा.—भग्गुल धविय, अ. बहु बहु बहु भग्गुल धनी, फ. बहु भगल धनी, म. बह

बह बह भगुर धनीय, उ स. बह बह बह भग्गल धनिय, ना. — हु मग समर धनी।

टिप्पणी—(२) अभग्ग < अमार्ग। (३) पहु < प्रभु। (४) इयर < इतर। (५) वल < वल्य्=लोट पड़ना। वहु < वाह [फा.]।

[२९]

दोहरा—परत देषि चालुक[१] धर[२] करिग्र[३] पंग दल कूह। (१)
जिम[१] सु[२] देव इंदहि परसि[४] रहैं विटि[५] अरि जूह[६]॥ (२)

अर्थ—(१) चालुक विझ को धरा पर गिरते देख कर पग (जयचंद) के दल ने [इस प्रकार] कुहराम किया, (२) जिस प्रकार इंद्रदेव के पार्श्व मे (पास) [आकर] अरि यूथ [राक्षस-दल] उन्हे वेष्ठित कर (घेर) रहे।

पाठांतर—(१) १. मो. फ. चालुक। २. ना. रिण, फ धर। ३ म उ. स. ना. करिग।
(२) १. धा. इम, अ. जिमि। २. फ स.। ३ मो इदिहि, ना. इदह, म. उ. स. इद्रह। ४. अ. फ परसि। ५ मो. ना. अ. फ. विंट, धा. विरि, धा विरि, म वट, उस. बांटि। ६. म. उ. स. अनजूह।
टिप्पणी—(२) परस < पार्श्व। विंट < वेष्ठित।

[३०]

कवित—राह रूप[१] कमधुज्ज गज्जि[२] लग्गउ*[३] अयास कहु[४]। (१)
धार तित्थ उरि[१] जांनि फिरउ*[२] पंमार न्हान[३] तहं[४]। (२)
रुधिर[१] मधु[२] जव जीव करि तनु तिल मिलि पिंड उसि[३]। (३)
जु रत्त सीस अरि गहिग[१] पांनि[२] [सो]* गहे[३] केसि[४] कुसि[५] (४)
करि त्रिपति[१] सार नृप पंगु दल[२] अब्बू[३] पति जप सब्ब कियु[४]। (५)
उग्रहउ*[१] ग्रहन[२] प्रथिराज रवि सलष अलष भुव[३] दान दियु[४]॥ (६)

अर्थ—(१) कमधुज्ज (जयचंद) राहु रूप होकर गर्जन करके आकाश को जा लगा [और उसने रविरूप पृथ्वीराज को ग्रसना चाहा]। (२) [उस ग्रहण से अपने स्वामी को मुक्त करने के लिए] धारा-तीर्थ (रण-क्षेत्र) को हृदय मे [अच्छा तीर्थ] जानकर [सलष] पमार उसमे स्नान करने के लिए मुड़ा (३) रुधिर का मधु था, जीवो का यव था, हाथियों के शरीर का तिल था इस प्रकार सब मिल कर उसका [दान का पिंड बना; (४) शत्रुओं के रक्त सिर जो उसने पकड़ रक्खे थे, वही उसने हाथों में कुश-काँस पकड़ रखे थे; (५) सार (शास्त्रास्त्र) से पंग नृप (जयचद) के दल को तृप्त कर आबूपति (सलष) ने सब जप किए, (६) तदनतर सलष ने अलख भुजदान (प्रहार) देकर पृथ्वीराज रवि को उस ग्रहण से मुक्त किया।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
(१) १. मो. रहो रोपि, शेष सभी में 'राहरूप'। २. अ. फ. कमधुज्ज गज्ज, ना. कम धज्जगंजि। ३. धा. लग्यो, मो. लगु (= लगउ) अ. फ. लग्यउ, म. लग्गौ, ना. उ. स. लग्यौ। ४. धा. आयासहि,

अ. फ. आयास कइ, ना. आयास कई, उ. स. आकासइ, म. आसनइ ।

(२) धा. धारि तत्थ उर, फ. धार तित्थ उरि, अ. म धार तित्थउर, ना. धार तित्थ तिसं । २. मो. फिरु (= फिरउ), धा. फिरिउ, अ फ. फि र्यो, ना. म. उ. स. फिरयौ । ३. मो. पंमार कन्ह, धा. पांवारु नन्ह, शेष में 'पामार न्हान' । ४. धा. तहिं, फ. तिह ।

(३) १. धा. रुधि, अ. फ. गुद्द्सु (स-फ.) शेष में शेष में 'रुधिर' । २. ना. मढि. । ३. धा. जब करि जीव तनु तिलमिलि पिंड उसि, अ. फ. ज्व (कज-फ.) जीव तिल सु (स-फ.) तन सीस पिंड उस, ना. जव जीव ततुत तिल मिलहि पिंड उस, म उ. स. जब करिय जीव तनु (तन-म.) तिल नि षड अस (षड असि-म.) ।

(४) १. धा. रत्त सास अरि गहिग, मो. जुरत सीस अरु गहिग, अ. फ. रत्त सुजल कर षग्ग, म. उ. स. जुरित सीस अरि (अरि-म.) गहिय, ना नचित सीस अरि गहहि । २. अ. फ. तहा, म. मानि, शेष में 'पानि' । ३. मो. गहे, धा सुढियइ, अ. फ. सोहि य, म. ना. उ. स. सोभियहि । ४. फ. हुसा । ५. मो. धा. कुसि, ना कुश ।

(५) १. धा. अ. फ. ना म. उ. स. त्रिपनि, केवल मो. मे 'त्रिपति' । २. अ. फ. पगह नृपति । ३. ना. अब्बुव, म. अबूल । ४. मो. जप सब कियु (= कियउ ?), फा जप सब्बु किय, अ. फ. ना. जस पुव्वु (पुव्व.-ना.) किय, म. उ. स. जप सव्व किय ।

(६) १. मो. उग्रहु (= उग्रहउ), धा. अउ ग्रह्यो. अ. ना. म. उ. स. उग्रह्यौ । २. धा. ग्रहति, ना. गहन । ३. मो. भुव, धा. भुज, शेष में 'भुज' । ४. मो. दियु (= दियउ ?), धा. दिय, शेष में 'दिय' ।

टिप्पणी—(१) राइ < राहु । गज्ज < गर्ज । (२) तित्थ < तीर्थ । (५) त्रिपति < तृप्ति । (६) भुव < भुअ < भुज ।

[३१]

दोहरा—दिअउ दान जब्ब पंमार बलि[१] अरि पंगह समर[२] षेल । (१)
मरन[१] जानि[२] मन[३] मज्झ ततु[४] लरिग लषन बघ्घेल[५] ॥ (२)

अर्थ—(१) जब [सलष] पमार ने [इस प्रकार] बलि का दान दिया, और शत्रु (जयचंद) के साथ उसने खेल किया, (२) मन मे मरण का ही तत्त्व जानकर लखन बघेल लड गया ।

पाठान्तर—(१) १. धा. दीउ (=दिअउ) दान पावार जव, मो. दीउ (=दिअउ) दान जब पमार बल, अ. दिअउ (दियौ-फ.) दान पावार जब, ना. दीय दान पामार जब, म. उ. स. दियौ दान पम्मार बलि (बल-म.) । २. धा. पगह सब, म. उ. स सारगसम ।

(२) १. फ. परति । २. फ मानि । ३. मो. मर (< मन), फ. म । ४. धा. मझ रित, अ. मझ रन, फ. बिझ्झि रन, म. उ स. मझि रत, ना मज्झरत । ५. मो. लरिग लषन बघ्घेलि, धा. गिरि लक्खिनह बघेल, अ. फिरि लष्षनह बघेल, फ. फिरि लष्षन हट्ठौ, ना. म. उ. स. लरि लष्षन बघ्घेल ।

[३२]

कवित—जित्ति समरि[१] लष्षन वघेल अरि हनिग[२] षग्ग वर[३] । (१)
ति घर तुट्टि[०१] धरनिहि[०२] परिग्ग[०३] निवरंति[०४] अध्ध[५] धर । (२)

तिहि गिध्धारव[१] रुल्लिग°[२] अंत्र°[३] गहि° अंतर लुक्किग । (३)*
तरुणि[१] तेज रस वसिग[२] पवन पवनह घन वज्जिग[३] । (४)*
इहि नादि[१] ईश मथ्थउ धुनउ[२] अमिअ बिंदु[३] ससि° उल्लसउ*[४] । (५)*
विड्डरउ धवर[१] संकिअ गवरि टरिग[२] गग संकर हसउ[३] ॥ (६)*

अर्थ—(१) समर मे जहाँ लखन बघेल ने श्रेष्ठ खड्ग से शत्रुओ का हनन किया, (२) [वहीं] उसका भी धड़ टूट कर धरणी पर गिर पडा और उसने आधे धडो को समाप्त कर दिया। (३) उसके [धड़ के] लिए गीधो का शोर होने लगा, और वे [उसकी] आँतो को लेकर अतरिक्ष में लुक गए (अतर्हित हो गए)। (४) [उसके सूर्य लोक मे पहुँचने पर] तरणि (सूर्य)का तेज और रस (सौन्दर्य) [उसके तेज और रस (सौन्दर्य) के सामने] बासी पड़ गया; उसके पवन (प्राण) पवनो स मिड गए और घन बजने लगे—एक प्रचड निनाद करने लगे। (५) उस निनाद को सुनकर [और ऐसे वीर का निधन जानकर] ईश (शिव) ने माथा पीट लिया, और [उनके मस्तक के] चन्द्रमा ने उल्लसित होकर अमृत बिंदु गिरा दिए; (६) [किंतु इस नाद से ही जब] उनका धवल बैल भडक गया, गौरी शकित हो गई, गंगा हट गई, और शकर हँस पडे।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ से हैं।

° चिह्नित शब्द धा. में त्रुटित हैं।

(१) १. धा. जिते समर, मो. जिति (=जितइ ?) समरि, म. जिति (=जितइ ?) समर, अ. ना. जित समर, फ. जित समर, स. जीति समर। २. धा. आहनति, अ. फ आहनिव, ना. अरि हने। ३. म. यंग (< पग) बल।

(२) १. अ. धुकि, फ. धुंक, ना. ढुट्टि, स. तुट्टि। २. अ. धरि निंह, फ. धरनिह, उ. स. धरनहि, म. ना. धरनिय। ३. अ. फ. परत, ना. ढुकत, म. उ. स. धुकत। ४. अ. ना. उ. स. निवरंत, फ. निवरति, म निबरत। ५. म. अध अध।

(३) १. धा. तहाँ गिद्ध——, मो तिहि गिधारवी, अ. रातह अंतावलि, फ. तिह अंतरि पिन, म. उ. स. तहं (तहाँ–म.) गिद्धारव, ना. तिहि गिधारुव। २. अ ढलइ, फ तुलिइ, ना. म. उ. स. रुरिग। ३. मो. अत्र, अ. गिद्ध, फ. गद्धि, ना म. उ. स. अत। ४ धा. अतरु लगयो, मो. अतर लूकगि, अ. अतर लग्गाउ, फ. अंतर लिगउ, ना. अतह लज्यौ, म. अतह लगीय, उ. स. अतर लग्गिग।

(४) १. मो. तरुणी, धा फ. तरुन, अ. तरुनि, ना. तरुणि, म. उ. स. तरनि। २. धा. सब्बासु, अ. फ. गइ (गय–फ.) सुक्कि (सूकि–फ), ना. म. उ. स. रसवसह। ३. धा. पमुकि पावन घन चग्ग्यो, मो. पवन पवनह घन वज्जगि, अ फ. लग्गि पवनाहत वग्गउ (हवगउ–फ.), ना. पमुकि पवन घन बज्यौ, उ. स. पवन पवना घन वज्जिग, म पवन पन घन बगीय।

(५) १. धा अ. फ ना. तिहि (तिहिं–ना.) सद्द म उ. स. तिहिं नाद (नाई–उ.)। २. मो. ईस मथु (=मथउ) धुनु (=धुनउ), धा. सीस संकर धुन्य, अ. फ ईस मथ्थउ (मथ्थव–फ.) डुल्यउ, ना. ईश मथ्थह धुन्यौं, म. उ. स. ईस मथ्यौ (मथौ–म.) धुन्यौ। ३. अ. फ. ना. म. उ. स. बुंद। ४. मो. उलसु (=उलसउ), धा. उलहस्यो, अ. फ. उलहस्यउ, ना. म. उ. स. उल्लस्यौ।

(६) १. मो. विडरु (=बिडरउ) धवर, धा. विड्डुरच्यउ धवल, अ. बिड्डुरि वयल्ल, फ. विडरीय व यल्ल, म. विडुर्यौ धवल, ना. उ स. विडर्यौ धवल। २ धा. अ फ. डरिग, ना. डरीय, म. उ. स टरिय। ३. मो संकर हसु (=हसउ),धा. सकर हस्यो, अ. संकरु हस्यर, फ. ईशरु हस्यर, उ. स. संकर हस्यो, ना. म संकर हस्यौ।

टिप्पणी—(१) षग्ग < खड्ग। (३) रुल < रोरूय्=खूब शोर क ना। लुक=छिपना। (४) वसिअ< उषित्=बासो, पर्युषित। (५) मथ्थ < मस्तक। अमिअ < अमृत।

[३३]

दोहरा—परत[१] वघेल्ल सुमेल्ल[२] किय रन[३] राठउर*[४] सुभार। (१)
जब दस कोस ढिल्लिय रही[१] फिरि तोमर पाहार[२] ॥ (२)

अर्थ—(१) वघेल [लल्लन] के गिरत ही रण में राठौर (जयचंद) ने भारी मेला (हल्ला-धावा) किया। (२) जब दिल्ली दस कोस रह गई, तब तोंवर पहाड राय [युद्ध के लिए] लौटा।

*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

पाठान्तर—(१) १ फ परित। २. धा सुमेल। ३ धा रठि, म. रिन, फ राउ। ४. मो. राठुर (=राठउर), धा. राठोर, अ. राठ्योर, फ राठोर, म. ना. उ. स रठ्ठौर।

(२) १. धा. मो. जब दस को दिल्ली (दिलीय—मो) रहिय (रही—मो.), अ. फ. ना. दस योजन ढिल्ली परहि (परहू—ना), म. उ. स. कनवज ढिल्ली (ढिलीय, म उ) ककरह। २ धा फिरि तोंवर त पहार, अ. फ. फिर तांवर पाहार, ना. फिरि तूवर पाहार, म. उ. स. तोवर (तौअरि—म.) तिष्ठ पहार।

[३४]

कवित—दल पंगनि[१] रट्ठवर[२] फुनि ले[३] चंपिय ढिल्लिय घर[४]। (१)
तब जपइ* प्रथिराज[१] पंड वंसह[२] पाहार नर[३]। (२)
हर हथ्थहि[१] हरि गहहि[२] वाम रष्षिहि[३] इनि वारहि[४]। (३)
सेस सीसु कंपियउ[१] दाढ[२] डुल्लिय[३] भुवि[४] भारह[५]।× (४)
कहइ*[१] चंद अपुव्व[२] सुनु[३] नृप रषइ*[४] बिहु भुज[५] भरउ*[६]। (५)
फिरि कंपि संकि[१] जयचंद दल तोमर सिरि[२] टट्टर धरउ*[३] ॥ (६)

अर्थ—(१) राठौर पंग (जयचंद) के दल ने फिर दिल्ली की धरा को दबाया, (२) तब पृथ्वीराज ने कहा "पाडव वंश में पहाड [राय] नर [उत्पन्न हुआ] है।" (३) हरि ने हर का हाथ पकडा और कहा, "हे वामदेव इस बार तुम्ही रक्षा करो।" (४) शेष का सिर काँप गया और उनकी डाढ भूमि के भार से डोल गई। (५) चंद कहता है, "यह अपूर्व [बात] सुनो, हे नृप, (पहाड राय) तुम [इस धरती को] दोनों भारी भुजाओं से रक्खो।" (६) तदनंतर जयचंद का दल काँप कर शंकित हो गया कि तोमर [पहाड़ राय] ने सिर पर टट्टर (शिरस् त्राण) धारण किया है।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।
× चिह्नित चरण म. में नहीं है।

दिल्लिय धर, ना. ढिल्लीवर, फ. ढिलि धारत, म. ढिलीय भर, उ. स. दिल्लिय भर।

(२) १. मो. तब जपि (=जपइ) प्रथ.राज, धा. तब जंप्यो प्रिथिराज, अ फ. तब जंपै पृथिराज, म. उ. स. तब जपिय प्रिथिराज, ना. तूअर निछि पहार। २ ना. वसीय। ३. धा. पहुरण हर, मो. म. उ. स. पाहर नर, अ. पहार नर, फ. पाहारत नर।

(३) १. धा. मो. हरि हथ्थहि, अ. हर हथ्थहि, फ. हर हथ्थहि, ना. हरि हत्थह, म. उ. स. हरि हथ्थां। २. फ. गहि, स. गहिहि। ३ धा. बान रक्खहि, अ. फ ना. बान रष्षइ (रष्ष—फ. ना.), म. उ. स. वाम रष्ष (रषे—म)। ४. धा. इनि वारह, अ. फ. इहि (इह—फ) वारह, ना. वर वारह, म इह वीरह, उ. स. इहि बीरह।

(४) मो. कपीयु (=कपियउ), धा. कपिग्उ, अ फ. ना कपियौ, उ. स. कपिय। २. धा दाढ, अ. फ. ना. डाढ, उ. स ड्ढ। ३. धा. दिल्ली, मो. दिलीय, अ फ. ढिलीय, ना. उ स. डुल्लिय। ४ धा. भइं, ना. भुइ, अ. फ. भूमि। ५. स. भोरह।

(५) १. मो कहिहि, धा कहै, अ. फ. म. उ स. कवि, ना. कहि (=कहइ)। २ मा अपूव, धा. इस अपुव, म अ. फ. यह अपुव्व, ना. उ स. यह आपुव्व। ३. धा अ. फ. ना. सुनि। ४. रषि (=रषइ), धा. अ. फ. रक्खहि (रष्षहि-अ. फ.), म उ. स. बीर मत्र, ना नृप रष्षन। ५. धा विहु भुव, अ. फ. बिहु (वेहू-फ.) भुव, ना. दुहु भुज, म उ. स. उद्धर। ६ मो. भरु (=भरउ), धा. भरयो, अ. फ. म. उ स. भरयौ, ना भिरयो।

(६) १. अ फ फिरि (फिरु-फ.) कपियौ जंपि, उ. स. ठठुक्यौ सेन, म ठठुक्यौ देषि। २. मो. फ तोमर ग्गिर, अ. तोमर सिरि, स. तोमर जए, उ. तोमर तव, म तब तौअर, ना. तिन सम लरि। ३. मो. टट्टर धरु (=धरउ), धा. टट्टर धरयो, अ. फ. म. उ. स. टट्टर धरयौ, ना. तूवर परयौ।

टिप्पणी—(४) दाढ < दंष्ट्रा। भुवि < भूमि।

[३५]

कवित—वेद कोस[१] हर सिंघ[२] उभय[३] त्रियत[४] वड गुज्जर[५]। (१)
काम[१] बान हर नयन निडर[२] नीडर[३] सोइ[४] सुमभ्भर[५]। (२)
छगन पटन[१] पल्लानि कन्ह[२] षंची[३] दिग पालह[४]। (३)
अल्हन द्वादस सकल[१] अचल विद्या गनि[२] कालह। (४)
सिंगार[१] विभ्भ[२] सलषह[३] सुकथ[४] लषन पाहार आहार सुउ[५]। (५)
इत्तनइ सूर भूझंति ही[१] ढिल्लियपति प्रथिराज भउ[२]॥ (६)*

अर्थ—(१) वेद [४] कोस हर सिंह [खींच ले गया], और उभय त्रियत [६] बड गूजर [कनक]; (२) काम-बाण [५] तथा हर नयन [३ —अर्थात् आठ कोस—निडर नीडर उसी सीध में (सीधे दिल्ली की दिशा में) [खींच ले गया]; (३) छगन ने पट्टन [नामक घोड़े को] पलाना तो कन्ह ने [पृथ्वीराज को] दिग्पाल [१०] कोस खींचा, (४) अल्हन ने कुल द्वादश कोस [खींचा] और अचलेश ने काल की गणना कर (?) विद्या [१४] कोस खींचा, विभ्र ने श्रृंगार [१६], सुकथ—पंचाख्यान—[५ ?] सलष, लषन तथा पहाड़ राय ने आहार [१०, १० ?] कोस [खींचा], ऐसा मैंने सुना है। (६) इतने शूरों के जूझते ही पृथ्वीराज दिल्लीपति हुआ—अथवा दिल्ली पहुँच गया।

पाठान्तर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. म. वेदे कोस। २. मो. हर सघ, धा. ना. हरि सिंघ, म. हरसिंह। ३. फ. उभउ। ४.

धा. तिअतिहि, अ. तिग्गनि, फ तियगुन, ना. तृतीय। ५. मो. गूजर, धा गुज्जर, शेष में 'गुज्जर'।

(२) १ धा. अ. फ. इक्क, मो ना. म उ स. काम। २. फ तिडर। ३. म. निभुर (< निडुर), ना. निडुर। ४. धा. भुइ, मो. सोइ, अ. फ. भय, ना. मो, म. उ. स. भूमि। ५ मो. सूझर, धा मज्झर, अ. फ. रुझ्झर, म. स. सुझझर, उ. सुद्धर, ना. हुब्भर।

(३) १. धा. छगन पत्त, अ छगन पत्त, फ. छगन पति, ना. उ. स. छगन पट्ट, म. चाज पटन। २. मो. कन, शेष सभी में 'कन्ह'। ३. धा. ना. पचीय। ४. धा. अ. फ. म. ना. दूगपालह (दूगपालहि-फ.)।

(४) १. धा. अ. फ. अल्ह वाल (चाल-फ.) द्वादसनि, ना. म. उ. स. अल्ह (अल्हन-ना.) बाल द्वादसह। २. अ. विध भनि, फ. विना भनि।

(५) १. अ. फ. म. ना. श्रृंगार (श्रृगारु-फ.)। २. ना. बीर। ३. मो. सिधिह, धा. सालष्ष, ना. सलषन। ४. धा. दिय, अ फ. ना. लयन। ५. धा. अ. फ. पगुराउ फिरि गेह गउ, मो. लषन पाहार आहार सुउ, ना. सुकथ पहार तिपंच चौ, म उ स लषन पहारति (पनपहाति-म.) पंच चय।

(६) १. धा. अ. फ सामत सत्त जुज्झे प्रथम, मो इतनि (= इतनइ) सूर झुझतिहि, म. उ. स. इत्तने सूर सथ झुझ्झे (झझ-म.) तह ना इतन सूर झुब्भ त रण। २. मो. धा. अ. फ ढिल्ली (दिल्ली-मो. ढिल्लीय-अ. फ.) पति प्रिथिराज (प्रथीराज-मो.) भउ, ना. म. उ. स सोरौं (सोरं-म.) पुर (परि-ना) प्रथिराज अय (भो.-ना)।

टिप्पणी—(२) सूझ < शुद्ध=सीध। (५) सुअ < श्रुत = सुना गया। (६) पत्त < प्राप्त।

[३६]

दोहरा-- दुहु नृपतिन रण धर कुसल[१] लभ्यु[२] सु कित्तिय[३] भूरु[४]। (१)
जिहि गुनि[१] प्रगटत[२] पिंड किय तिहि संघरि गए[३] सूरु[४]॥ (२)

अर्थ—(१) दोनो नृपतियो का रण धरा पर कुशल हुआ, और दोनों ने भूरि कीर्त्ति लाभ किया। (२) अपने जिस गुण से अपने पिंड प्रकट किए थे, उसी गुण से शूर संहार को प्राप्त हुए।

पाठांतर—(१) १. धा. भ्रित घर कुसल न जेतु मह, अ. फ राजन भृत घर (घरि-फ) कुसर हुव, ना. राजाधृति घर कुशल हुव, म. उ स राजत भ्रित (भ्रत-म.) घर केलि सह। २. म. लाभ, ना. लब्ध। ३. मो. करत्तीय। ४. ना. नूर, म. उ स. पूर।

(२) १. धा. तिहि मुख, अ. फ ना. म. उ. स. जिहि गुन। २. धा. प्रगटसु, फ. प्रगटिति, म. प्रगट। ३. धा. तिहि सघरि गय, अ. फ ते सघरि गय, ना. तिहि स्हारिग, उ. स. तिहि उत्तरि सुर, म. तिहि बतर सुर। ४. म. उ. स. मूर।

टिप्पणी—(१) धर < धरा।

९. पृथ्वीराज-संयोगिता का केलि-विलास और षड् ऋतु

[१]

अडिल्ल— ढिल्लिय[१] पति ढिल्लिय[२] संपत्तउ[*३] । (१)
फिरि पहु[१] पंग राय[२] घरि[३] जत्तउ[*४] । (२)
जिम राजन[१] संजोगि[२] सुरत्तउ[*३] । (३)
सुहु दुहु[*१] कहन[२] चदु[३] हउ[*४] रत्तउ[*५] ॥ (४)

अर्थ—(१) दिल्ली पति (पृथ्वीराज) दिल्ली सप्राप्त हुआ—पहुँचा, (२) तदनतर प्रभु पगराज (जयचद) घर कन्नौज गया । (३) जिस प्रकार राजा (पृथ्वीराज) संयोगी में अनुरक्त हुआ, (४) [उस] सुख-दुःख के कहने के लिए मैं चंद अनुरक्त हुआ ।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं ।

(१) १. मो. म. उ. स. दिल्लिय (दिलीय– मा. न.) ना. ढिल्ली । २. मो दिल्लिय, म. दिल्ली, ना. ढिल्ली । ३. मो. सपतु (= सपतउ), धा. सपत्तउ, अ. फ. जु सपत्तउ (सपत्तौउ–फ.), म. उ. स. सपत्तौ, ना. सपत्तौ ।

(२) १. मो. पुहु शेष में 'पहु' । २. धा. रगराउ । ३. धा. फ. उ. स. ग्रह, अ. ना. गृह, म. ग्रेह । ४. मो. जतु (= जत्तउ), धा. जत्तउ, अ. ना. उ. स. जत्तौ, म. जतौ, फ. जुत्तह ।

(३) १. मो. फिरि पुहु पंग राय, ना. जिम जिम राइ । २. मो. सयोग, शेष सभी में 'संजोगि' । ३. मो. सु रतु (= रत्तउ), धा. फ. सुरत्तउ, अ. म. उ. स. ना. सुरत्तौ ।

(४) १. मो. सुहु दुह (< दुहु), धा. फ. म. उ. सुहदुह, ना. दुह दुह । २. म. उ. म. करन । ३. मो. कंन्ह, म. वंदि । ४. मो. हु (= हउ), धा. मनु, अ. फ. न, म. उ. स. महि, ना. मन । ५. मो. रतु (= रत्तउ), धा. फ. रतउ, अ. रक्तउ, ना. म. उ. स. मत्तौ ।

टिप्पणी—(१) संपत्तउ < सप्राप्त । (३) रत्त < रक्त । (४) सुह < सुख । दुह < दुःख ।

[२]

दोहरा— दिवं[१] मंडन[२] तारक[३] सयल[४] सर[×] मंडन[×] कमलांनु[×] । (१)
जसं[×१] मंडन[×] नर[×] भर[×] सयल[×२] महि[३] मंडन महिलांनु[४] ॥ (२)

अर्थ—(१) आकाश के मंडन (आभूषण) समस्त तारे होते हैं, और सर के मंडन (आभूषण)

कमल होते हैं, (२) [राजाओं के] यश के मडन (आभूषण) समस्त भट जन होते हैं और मही के मडन (आभूषण) महल होते हैं।

पाठांतर—X चिह्नित शब्द ना. में नहीं है।

(१) १. अ. दिवि। २ फ. मडक। ३. म. तार। ४. मो. सव, अ. सघन, फ. सयनु. ना. म. उ. स. सकल।

(२) १. अ. उ. स. रन, फ. रनु, म. रिन। २. मो. सय, धा. सयल, म. गहर, अ. फ. सुहरु, उ. स. सुभर, ना. में भी 'सयल' रहा होगा, जिस कारण उसमें प्रथम चरण के 'सयल' के बाद दूसरे चरणके 'सयल' तक की शब्दावली उसमें छूट गई। ३ मो. मिहि, ना. घर। ४. मो. मिहिलान, धा. महिलानु, फ. महिलाल।

टिप्पणी—(१)-(२) सयल < सकल।

[३]

दोहरा—महिलउ[*१] मंडन नृपति ग्रिह*[२] कनक कंति*[३] ललनानि*[४]। (१)*

तिहि[१] उप्परि*[२] संजोगि नग*[३] धरि रष्षउ*[*४] वर वानि*[५] ॥ (२)*

अर्थ—(१) महलों के भी मंडन (आभूषण) राजा (पृथ्वीराज) के रनिवास की कनक-कांतिवाली ललनाएं थीं, (२) और उनके ऊपर [राजा ने] नग के समान वर वर्णी (अच्छे वर्ण वाली) संयोगिता को रक्खा।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द संशोधित पाठ के हैं।

(१) १. मो. मिहिल (< मिहिलउ), धा. अ. फ. पहिलहि, ना. पहिलै, म. उ. स. महिलन। २. मो. नृपति ग्रिहि, म. मडन राजग्रिह, ना. मड नृपति गृह। ३. मो कंन, शेष सभी में 'कंति'। ४. धा. अ. फ. उ. स. ललनानि, मो. म. ललनान।

(२) १. अ. फ. तिनि, ना. म. स. ता, उ. तात। २. मो. ऊपरि, धा. फ. म. ना. उप्परि, अ. उ. स. उप्पर। ३. मो. संयोगन, फ. सजोगि नामु, म. संजोगि नम, शेष में 'सजोगि नग'। ४. मो. धरि रषु (=रष्षउ), धा धरि रक्खयो, अ फ. विधि रष्षिय, ना. धनि राजन, म. उ. स. धरि राजन। ५. मो. म. उ. स. वलवान (वलबांन—म.), धा. वलिवान, अ. फ. बर बानि, ना. बलिवानि।

टिप्पणी—(१) कंति < कान्ति। (२) बानि < वर्णी।

[४]

दोहरा—सुभ[१] हरम्य*[२] मंडिग*[३] नृपति दिपति*[४] दीप*[५] दिव लोक। (१)*

मुकरु[१] मऊष*[२] अमृत*[३] झरहि करहि*[४] जु मनहि*[५] असोक ॥ (२)*

अर्थ—(१) नृपति (पृथ्वीराज) ने शुभ (सुखदायक) हर्म्य बनवाया, जिसके दीप आकाश लोक तक प्रदीप्त होते थे। (२) उसके मुकुरों में [चंद्रमा की] मयूखों का अमृत झड़ा करता था, जो [दंपति के] मन को विशोक किया करता था।

पाठान्तर—(१) १. अ. सुम्भ, फ. सुज। २. अ. फ. हरम्मि। ३. धा. मडिम, अ. फ. मंडिय।

मो. दीपत, स. दीपति। ५. ना. दीव।

(२) १. मो. मुकव, धा. मुकल, अ. फ मुकल, ना. मुकर, उ. म. मुकुर, म. मुकर। २. धा. मो. अ. मुष (=मउष), फ. मुषु, ना. म. मयूष, उ. स. मउप। ३. म अमृति। ४. मो. करिहि, ना. करइ, ५. धा. जु मतुइ, फ. म. ति मनइ।

टिप्पणी—(२) मुकल < मुकुर। मउष < मयूख।

[५]

रासा—अगरं धूम[१] मुष गउष[२] उन्नयउ[३] मेघ जनु। (१)*
त[१] मोर मराल[२] निरत्तहिं रत्तहि[३]‡ मत्त[४] धुन[५]। (२)
सारंग साटिग[१] रंग पहक्क ति[२] पंषि रसि[४]। (३)
विज्जुलिका कलसति[१] झमंकहि[२] जासु[३] मिसि[४]॥ (४)

अर्थ—(१) [उस हर्म्य के] गवाक्षों के मुखों में अगुरु-धूम [शोभित] था, [जो ऐसा लगता था] मानो उन्नमित मेघ हो, (२) जिस [मेघ सदृश धूम] को देख कर मोर तथा मराल नृत्य करते और मत्त ध्वनि मे शब्द करते थे, (३) सारग (चातक) और सारिका क्रीड़ा करते थे और पक्षी गग आनंद पूर्वक चहकते थे, (४) और जिस मेघ सदृश धूम के मिस से [उस हर्म्य के] कलश बिजली [के सदृश] चमकते थे।

पाठान्तर— * चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है
‡ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।

(१) ना धूप, म. उ. स. धुम्म। २. मो. गुप्प (< गउष), धा. गोउष, अ. ना. गौष, फ. गौषि, म. उ. स. गौषह (गोषहं–म.)। ३. धा. उन्नए, मो. उनयन, अ. फ. कि उन्नय, ना. म. उनयौ, ना. उ. स. उन्नयो (उन्नयौ–ना. म.)।

(२) १. मो. त, धा ना. अ. फ. में यह शब्द नहीं है, म. उ. स. तहय। २. म. उ. स. मल्हार। ३. मो. निरत्त टेरहि, धा. निरत्तहि रन्नहि, अ. फ. म. उ. स. निरत्तहि, ना. निरतहि रट्टहि। ४. धा. मित्त। ५. मो. धुनं, धा. फ. धनु, अ. धुन, ना. म. उ. स. धनु (घन–उ. स.)।

(३) १. मो. शारिग साटिग, शेष में 'सारंग सारंग'। २. धा. ना. म. उ. स. पहुक्कहि, अ. पहक्कहि, फ. पहक्करि। ३. मो. अ. फ. ना. पंष। ४. मो. रस, धा. रसि, म. रिस।

(४) धा. अ. विज्जल काक लसति, मो. विज्जुलि काक सति, फ. विज्जलका कलसंत, स. विज्जुलि कोकल सानि, म. उ. विज्जुलिका कल सानि। २. धा. झमक्कहि, अ. झम ध्धुहि, ना. किमक्कहि। ३. मो. जास, धा. जासु, शेष सभी में 'जासु'। ४. मो. अ. ना. मिस, शेष में 'मिसि'।

टिप्पणी—(१) गउंष < गवाक्ष। उन्नयउ < उन्नमित। (२) रण्=शब्द करना। धुन < ध्वनि। (३) साटिग < सारिका। पंषि < पक्षी। (४) विज्जुलिका < विद्युत्। कलस < कलश।

[६]

रासा—दादुर सादुर[१]+‡° सोर नव नूपुर[२] नारि घन। (१)
मिलि सुरमध्धि[१] मधु° व्रत[२] माधुर[३] मंजुल[४] मन। (२)
सालिक[१] पंच पचीस[२] प्रजंक त[३] दून[४] तस[५]। (३)

तहं तहं[१] अथ्थि[२] सुवीन[३] प्रवीन ति[४] दासि[५] दस ॥ (४)

अर्थ—(१) [उस हर्म्य में] सघन नारियों के नव नूपुरों का रव दादुर तथा शार्दूल के शोर के सदृश था। (२) [उन नूपुरों के] स्वर के मध्य मधुव्रती और मधुर-प्रिय मधुकर मंजु मन से आ मिलते थे। (३) [उस हर्म्य मे] पाँच-पचीस (अनेक) शालिकाएँ (सारियाँ) थीं, और उनमें उनकी दूनो पर्यङ्क (पलँगे) [प्रत्येक मे दो-दो] थी। (४) और उन [सारियों] में वीणा में प्रवीण दस-दस दासियों की अथाइयाँ थी।

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द मो. में नहीं है।
+ चिह्नित शब्द अ. में नहीं है।
‡ चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
¶ चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. 'सादुर' शब्द धा. अ. फ. में नहीं है, पूर्ववर्ती शब्द से साम्य के कारण छूट गया है, ना. दादुर, उ. सारुर। २. मो नव नूपपर, धा जु नूपुर, अ. सु नूपुर, फ सुर्नूपुर, ना. म. उ. स. नवप्पुर।

(२) १. मो. मिलि सुर मध्य, धा. मिमिलि सुर मध, अ. मिलिसुर मद्धि, फ. मिलि सुर मधु। २. धा. व्रत–कदाचित् पूर्ववर्ती 'मध' के साम्य के कारण 'मधु व्रत' का 'मधु' धा. में छूट गया है, फ. उ. स. मधुवृत। ३. फ माधुर, म. माधुरं, ना. मधुर। ४. मो. में यह शब्द नहीं है, अ. मंजि, फ. ना. मंज, म. उ. स. मझ्झि।

(३) १. मो. फ सालुक। २. फ. पाविस, म. पवीस। ३. मो. प्रजतक, अ. म. उ. स. प्रजकति, फ. प्रयकित, ना. व्रजंकति। ४. अ. फ. में यह शब्द छूटा हुआ है। ५. अ. दस, फ. धिस, ना. रस, म. दस।

(४) १. धा. तह तह, मो. ताहां ताहां, अ. फ. ना. तह तह, उ. स. तह, म. तहां। २. धा. म. अथि, अ. फ. इथ्थि, ना. अच्छि। ३. मो. सुचि, धा. सुरचीन्ह, अ. ना. सुवीन, फ सुथान, उ. स. परवीन, म. प्रवी–। ४. म. स वीनति, उ स. सुवीनति। ५. मो. अ. फ. दास, शेष में 'दासि'।

टिप्पणी—(१) सोर < शोर [फा.]। (३) सालक < शालिका=घर के कमरे। प्रजक < पर्यङ्क। (४) अथ्थि < आस्थान = अथाई। वीन < वीणा।

[७]

रासा—के[१] जुव[२] जूथ[३] जि[४] वाद[५] प्रमादहि[६] मंद[७] गति। (१)
के चल[१] अंचल[२] बायु[३] निरूपहि[४] सद्द[५] रति[६]। (२)
के वर[१] भाष[२] पराकृति[३] संकृति[४] देव सुर। (३)
के गुन ग्यान सुजान[१] विराजहि[२] राज वर ॥ (४)

अर्थ—(१) [उस हर्म्य में] या तो जुवती-यूथ, जो [वाद्यों का] वादन करता था, अपनी मंद गति से [राजा को] प्रमादित करता था, (२) या तो वह अपने हिलते हुए अंचल के वायु से शब्द-रति (ध्वनि-प्रेम) का निरूपण करता था, (३) या तो वह श्रेष्ठ प्राकृत अथवा देव-स्वर (देव-वाणी) संस्कृत मे संभाषण करता था (४) और या तो वह गुण-ज्ञान-सुजान श्रेष्ठ राजा का मनोरंजन (?) करता था।

पाठान्तर—(१) १. धा. कैव। २. मो. घूव, धा. धुव, म. जुअ, शेष सभी में 'जुव'। ३. धा. यूथ, म. ना उ. स. जुथ्थ। ४. अ. फ. ना. म. उ. स. ज। ५. म. वावि, ना. वादि, अ. फ. वाषि। ६. धा. प्रमादति, फ. प्रकाहरि, ना. प्रमादिहि। ७. मो. माद, शेष सभी में 'मद'।

(२) १. म. उ. स. ना. वल, अ. वर, फ उर। २. अ. फ. अंचर। ३. धा. वाद, अ. वाइ, फ. बीय, ना. वाम, म. वाय, ३. स. षाय। ४. धा. निरुप्पहि, अ. फ. तिरूपहि। ५. अ अष, फ. अदि, ना. साद, म. उ. स. सरद। ६. म. रिति।

(३) १. म. तेवर। २. धा. भाषि, फ. भाषु। ३ धा. पराक्रिति, अ. फ. पराक्ति, उ. स. ना. पराक्रत, म. पराक्रित। ४. धा. संक्रिति, अ फ. राकृति; म. ससक्रित, उ. स. सकृत, ना. आकृत।

(४) १. अ. फ. ना. म. उ. स. वर बीन (वर बीन प्रवीन–फ) (तु० पूर्ववर्ती छन्द का अतिम-चरण)। २. अ. फ. विराजइ वीर वर, उ. स. विराजित राजहि वार वर, म. विराजत राज दरवार कर, ना. विराजइ राजहि राव।

टिप्पणी—(२) सद्द < शब्द। (३) पराक्रति < प्राकृत। सक्रति < संस्कृत।

[८]

रासा—इह[१] विधि विलसि विलास असार सुसार[२] किय[३]। (१)
दइ*[१] सुष जोग संजोगि[२] सोइ[३] प्रथिराज जिय[४]। (२)
अहनिसि सुध्धि° न° जानहि[१] माननि[२] प्रौढ रति। ‡ (३)
गुरु बंधव भृत[१] लोइ[२] भई विपरीत[३] गति ॥‡ (४)

अर्थ—(१) इस प्रकार विलासों को विलस कर [पृथ्वीराज ने] सुसार (सामर्थ्य–शक्ति) को भी असार कर दिया; (२) वह संयोगिता को सुख-योग प्रदान करे, यही पृथ्वीराज के जी में रहा करता था; (३) मानिनी (संयोगिता) की प्रौढ़ रति में [पड़ कर] वह दिन और रात की भी सुधि नहीं जानता था—नहीं जानता था कि कब दिन होता है और कब रात; (४) परिणाम-स्वरूप उसके गुरु, बांधवों, भृत्यों और लोक (प्रजा) की गति विपरीत [उसके विरुद्ध] हो चली।

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ के हैं।
° चिह्नित शब्द धा. में नहीं है।
‡ चिह्नित चरण अ. फ. में नहीं हैं।

(१) १. म. उ. स. इन। २. धा. फ. असार तिसार, अ. असार तसार, ना. असारु संसार, म. म. आसर सुसार। ३. म. कीय।

(२) १. मो. दि (=दइ), धा. दिव, अ. फ. म. उ. स. छै। २. मो. योग सयोग, म जोगि संयोगि, अ. फ. जोग संयोजन (संयोजनि–फ.) शेष में 'जोग सजोगि'। ३. धा अ. फ. उ. स. प्रिथी, ना. प्रथी, म. भोगि। ४. म. प्रीय, ना. प्रिय।

(३) १. धा. अह निसि सुधि न जानन, म. अह निसि सुधि न जानिये, ना. दै सुष सुष सजोग (तुल० चरण २)। २. धा. मानिनि, म. मानिय, ना. प्रभानी।

(४) १. धा. बध धव भृति, ना. वंधौ।

म. में यह छंद ९.२४ तथा १२. १२० पर दो बार आता है। ९.२४ का पाठांतर ऊपर दिया जा चुका है और १२. ६१० में इन चरणों का पाठ है :

ज्यों रति संगम भार न जाने रयन (रयनि–म.) दिन ।
केत कि कुसुम लुभाय रह्यौ मनु (मेनु–म.) भ्रमर मन ।

म. में यह छंद दो प्रसंगों में आता है; एक तो पृथ्वीराज के कन्नौज-प्रयाण के पूर्व (९.२४) और पुनः यहाँ पर । प्रथम स्थान पर पाठ धा. मो. का ही है, दूसरे स्थान पर पाठ उ. स. का है । अ. फ. में ये दोनों चरण नहीं है ।

टिप्पणी—(४) भृत < भृत्य । लोइ < लोक ।

[९]

साटिका —सामग्गं कलधूत नूत[१] सिखरा[३] मधुलेहि[४] मधु[५] वेष्टिता[६] । (१)
वाते[१] सीत सुगंध मंद सरसा[२] आलोल सा चेष्टिता । (२)
कंठी कंठ[१] कुलाहले मुकलया[२] कामस्य[३] उद्दीपनी[४] । (३)
रत्ते रत्त वसंत पत्त° सरसा°[१] संजोगि°[२] भोगाइते°[३] ॥ (४)

अर्थ—(१) [जिस वसंत मे वृक्षों के] शिखरों पर [पुष्पाभरण के कारण] नूतन कलधूत (सोने-चाँदी) की समग्रता हो गई है और मधुलेहिन (भ्रमर) मधु-वेष्ठित हो रहे है, (२) वात (वायु) शीतल मद और सुगधित तथा सरस हो गई है और वह चपलता के साथ चेष्टित हो गई है—बह रही है, (३) कंठी (कोकिल) के कंठ के कोलाहल से मुकुलों (कलियों) में काम का उद्दीपन हो रहा है, (४) तथा जो वसंत सरस [लाल] पत्तों के कारण लाल हो रहा है, सयोगिता ऐसे वसन्त में [पृथ्वीराज द्वारा] भोगायित हो रही है ।

पाठान्तर—० चिह्नित शब्द धा में नहीं हैं ।

यह छद ना. में २९.८६ आ. तथा ४१ १० है । यहाँ पर ना. का पाठान्तर ४१.१० का दिया जा रहा है ।

(१) १. मो. सामंता, अ फ स्यामंग, ना. सामग्ग, म. उ स. स्यामंगं । २. धा. अच्छ, मो. नृ । ३. अ. सिषिरे, फ. ना. शिषरे, म उ. सिषरे, स सिषर । ४ धा. अ. फ. म. मधुरेहि, ना. मधुरेय, उ. स. मधुरे । ५. म. उ. समधू । ६. म चेष्टिता ।

(२) १. अ. फ. वाता । २. धा. सरिसा । ३. म. स ।

(३) १. धा. अ. फ. कूल, मो. म. उ स कठ । २. धा. वकुलया, अ. फ. वकुल, कामानि, मा. कामाय । ४. धा. उद्दीप—'अ. फ उद्दीपनो' म. उ. स उद्दोपने, ना. उद्दीपन ।

(४) १. धा. मैं 'रत्ते रत्त वसत' के अनतर की छद नही शब्दावली की है । अ. फ. रे (रैं–फ.) तेते दिवसा तपंति सरिसा, म. उ. स. रत्ते रत्त वसंत मत्त सरसा । २. मो. सयोग, अ. फ. म. उ. स. संजोग ना. संजोगि । ३ मो. भोगायनी, अ. फ. भोगाइते, ना. म. उ. स. भोगायते ।

टिप्पणी—(१) सामग्गं < सामग्र्य=सम्पूर्णता । (४) पत्त < पत्र ।

[१०]

साटिका—दीहा[१] दिव्य[२] सदंग[३] कोप[४] अनिला [५]आवर्त्त मित्ताकर[६] । (१)
रेन[१] सेन[२] दिसान[३] थान मलिना[४] गोमग्ग आडंबर[५] । (२)

नीरे नीर[1] अपीन[2] छीन[3] छपया[4] तपया तरुणया तनं[6] । (३)
मलया चंदन[1] चंद मंद[2] किरणा[3] सु ग्रीष्म[4] आसेचनं[5]‡ ॥ (४)

अर्थ—(१) [पृथ्वीराज से संयोगिता कहती है,] "[जिस ग्रीष्म में] दिन दिव्य (तप्त लौहादि) [के समान] हो रहे हैं, अनिल (वायु) शब्द करती हुई कुपित हो गई है, और मित्राकर (सूर्य की किरणों) से उत्पन्न आवर्त्त (ववडर) उठने लगे हैं, (२) रेणु की सेनाओं से दिशाएँ तथा स्थान मलिन हो रहे हैं, [यथा] गो-मार्ग (गायों के खरिक में जाने-आने के मार्ग) में उठे हुए आडंबर (गर्द-गुबार) से हों, (३) जहाँ जो भी नीर था वह अपीन (क्षीण) हो गया है, रात्रि भी क्षीण हो गई है, और तप (गर्मी) का तनु तरुण हो गया है, (४) मलय [समीर], चंदन और चद्रमा की मंद किरणे ही [ऐसे] ग्रीष्म में [मुरझाते हुए प्राणों का] आसेचन (सिंचन) करने वाले हो रहे हैं।"

पाठान्तर—‡चिह्नित शब्द फ. में नहीं है।

(१) १. मो. दिहा । २. धा. दव्व, मो. दिव्य, अ. फ. म. उ. स. दिव्व। ३. मो. शदंअ, धा. म. उ. स. सदंग, अ. फ. सुदग, ना. समद। ४. धा. कूप। ५. मो. अनिली, म. अनिलं, फ. अनिलु। ६. मो. धा. अ. फ. मित्राकर (=मित्ताकर), ना. म. मिताकरे।

(२) १ धा. रेणे, अ. फ. रेने, ना. म. उ. स. रेन (रेण—ना. म.)। २ धा. सेणि। ३. धा. नदीस, मो. दि, शेष अश शब्द का नहीं है, अ. फ. दिसेन। ४. ना. उ. मश्नि, स. मिलन, म. मलिने। ५. मो. आडंमर, म. ना. आडबरे।

(३) १. अ. फ. नीरे नीर, म. नीर णीर। २. धा. अवीन, फ. अपीरु। ३. धा. छीनि, फ. बीन। ४. धा. म. छिपया। ५. स. तरुर्या। ६. फ. तमं।

(४) १. फ. चदल। २. अ. फ. नद। ३. धा. किरणा, मो. म. ना. किरणी, अ. फ. किरणे, म. उ. स. किरनं। ४. धा. अ. फ. म. ग्रीष्मे च, ना. ग्रीष्मे सु, उ. ग्रीष्म च, स. ग्रीष्म च। ५. मो. अषेमनं, धा. आसेबनं, अ. आषेचन, उ. स. आष्वन, म. आषेमन, फ में 'आ' के बाद अगले छद के 'वसुधरा' (चरण. ३) के 'व' तक का अश नहीं है।

टिप्पणी—(१) दीहा < दिवस। सद < सद्द < शब्द। (२) रेन < रेणु। थान < स्थान। गोमग्ग < गोमार्ग। (३) छीन < क्षीण।

[११]

साटिका—आर्द्रे[1] वद्दल[2] मत्त मत्त[3] विषया[4] दामिनि[5] दामायते ।‡(१)*
दादुर्ले[1] दल[2] सोर मोर सरसा[3] पप्पीहान्[4] चीहायते ।‡+(२)
शृंगाराय‡[1] व‡सुंधरा[2] ललितया[3] सलिता[6] समुद्रायते[7] । (३)
यामिन्या[1] सम वासरे[2] विसरता[3] प्रावृट्[4] पश्यामि ते ॥ (४)

अर्थ—(१) "[जल से] आर्द्र बादल विषय में मत्त हो रह हैं, और [उनकी प्रिया] दामिनी दमक रही है; (२) दादुरों का दल मोरों के साथ ही शोर कर रहा है और पपीहे चीत्कार कर रहे हैं; (३) लालित्यपूर्वक वसुन्धरा ने शृंगार किया है, और सरिता [बढ़कर] समुद्रायित हो रही (समुद्र बन रही) है (४) यामिनी के समान ही [अंधकार पूर्ण] होकर वासर (दिन) भी जा

रहे (व्यतीत हो रहे) हैं, वर्षा मे ऐसा दिखाई पड़ रहा है।"

पाठान्तर—* चिह्नित शब्द सशोधित पाठ का है।

‡ चिह्नित अक्षर, शब्द और चरण फ. में नहीं है।

+ चिह्नित चरण अ. में नहीं है।

(१) १. उ. अद्दे, म स. अब्दे। २. मो. बादल, धा. अ. म. ना. उ. स. वद्दल। ३. यह शब्द उ, में नहीं है। ४. अ. दिसया, ना. दिशेया, उ. स. विसया। ५. मो. दामिनी, धा. अ. ना. उ. स. दामिन्थ, म. दामन्य।

(२) १. धा. दद्दूरे, मो. दादुले अ. फ. म उ. स. दादूरं, म. दादूल, ना. दाहुल्यं। २ उ. स. दर। ३. धा उ. स. सरिसा, ना. करण। ४. मो. पषीहान (< पप्पोहान), धा. म. ना. उ. स. पप्पीह।

(३) धा. अ सिंगाराय, स. श्रृगारीय। २. मो. चवुधरा। ३. धा. अ. फ. सुलक्षिता, म. ससलिता, स. मलिलता, उ. सलिलता। ४. मो. सालिता, म उ. स. लीला। ७. म. समुद्राय, उ. सुद्रायते।

(४) १. ना. जामन्यं। २. उ. स वासुरो, म. वासरो। ३. धा. अ. फ. विसरिता, मो. ना. विसरजा (विशरजा–म.), म विसुरता, उ. स. विसरता। ४ मो परवट, धा. अ. प्रावृट सु, फ. प्रावृस्य, ना. पुरपट्ट, उ. स. पावरन, म. पावस्य। ५. मो पश्चांमिते, ना. वस्यामिते, उ. स. पथानते, म. पंथामही।

टिप्पणी—(१) आले < आर्द्र। (२) दादुल्ल < दर्दुर। चीह = चीत्कार करना। (३) सलिता < सरिता।

[१२]

साटिका—पित्ते पुत्त[१] सनेह गेह[२] भुगता[३] युक्तानि दिव्या दिने[४]। (१)

राजा छत्रनि साजि[१] राजि[२] षितया[३] नंदाननब्भासने[४]। (२)

कुसमे[१] कातिक[२] चंद निम्मल[३] कला दीपांनि वर दायते[४]। (३)

मां मुक्कइ[१] पिय बाल नाल[२] समया सरदाय दरदायते[३]॥ (४)*

अर्थ—(१) "जो पिता-पुत्रादि के स्नेह और गृह का भोग कर रही है, [अथवा] जो युक्ता (सयोगिनी) हैं, उसके लिए दिन दिव्य है; (२) राजागण छत्रो को साजकर और [अपनी क्षिति पर शोभित होकर आनंद युक्त आननो से भाषित हो रहे है; (३) कुसुमों और चद्रमा की कलाएँ कार्तिक में निर्मल हो गई हैं, और दीप वरदायी हो रहे है—दीप दान ने लोग वाञ्छित फल प्राप्त कर रहे हैं; (४) हे प्रिय, बाला को इस [कमल] नाल [के निकलने] के समय मे ने छोड़ा [क्योकि] शरद का दल दिखाई पड रहा है।

पाठांतर—*चिह्नित शब्द संशोधित पाठ का है।

(१) १. धा पत्ते, पत्त मा पित्ते पित्र, अ. फ उ स पित्ते पुत्त (पुत्र–फ) म. पुते पित्रि, ना. पुत्र पुत्रि। २. धा नेह, ग्रेह। ३ धा. भुगतान, मो युक्तान, अ. सुक्ता, फ. मुक्तादि, ना. जुगतानि, उ. स. जुगतान, म. जुक्तान। ४ म. दिव्याइने, धा. ना. स. दिव्यादने, फ. दिव्यादन।

(२) १. धा. अ फ. साज। २. धा. अ फ. म. राज। ३ धा. अ फ. म ना. छितया, उ. स. छितिया। ४. मो. निदाननभयासने, धा निद्दादला भासिते, उ. फ. निंदाचला भासिते (भासितो–अ.), उ. स. निदायिनीबासने, म. नदाननंभासने, उ. स. निदायिनी वासने, ना. नद्दातिन ब्भासने।

(३) १. धा. कुसुम अ. म. उ. स. ना कुसुमे। २. धा. अ. फ. कातिग, ना. म. कंतिक (= कत्तिक), उ. स. षतन। ३. धा निम्मल, शेष में 'निर्मल'। ४. धा अ. फ. दीपान (दीपन–फ.) वरदायते (वायते–धा.), उ. स. दीपाय वरदायने, म. दीपा वरदाइने, ना. दीपायन वरदायते।

(४) १. मो मूंकि (= मुक्कइ), धा. अ. फ. म उ. स. मुक्के, ना मूके। २. म. जाल। ३. फ. सरदाइ दरदाइते, उ. स. सरदाथ दरदायने, म. सरदावर दाइने।

टिप्पणी—(१) गेह < गृह। (२) षित < क्षिति। (३) मुक < मुच्। (४) दर < दल। दा ल < दर्शय् (?) = दिखलाना।

[१३]

साटिका—छीनं[१] वासर स्वास दीघ[२] निसया शीतं जनेतं[३] वने[४]। (१)
सज्ज[१] संजर[२] वान यौवन तया[३] आनंग[४] आनंगने[५]। (२)*
यउ बाला तरुणी निवृत्तपत्त नलिणी[१] दीना न जीवा षिणे[२]। (३)*
मा कांत[१] हिमवंत[२] मत्त[३] गमने[४] प्रमदा[५] न आलंबने[६]॥ (४)

अर्थ—"(१) वासर श्वास के सदृश क्षीण हो रहा है, और निशा दीर्घ होने लगी है, बस्तियों और वनों मे शीत व्याप्त हो रहा है, (२) यौवन के कारण शय्या संज्वर-कारिणी हो गई है, और अनग ही अनंग [का अधिकार] हो गया है, (३) जो बाला तरुणी है, वह निवृत्त-पत्र (जिसके पत्ते झड़ गए हैं, ऐसी) नलिनी के सदृश इस प्रकार दीन हो गई है कि क्षण भर भी जीवित न रहेगी। (४) हे कान्त, मत्त हेमंत में गमन न करो, क्योंकि प्रमदा आलंबन (अवलंब) हीन हो जावेगी।"

पाठान्तर—(१) १. धा. अ. फ. छीनं, म. च्छीनं, ना. उ. स. छिन्न। २. मो. सास दीघ, धा. स्वास दिघ्घ, ना. म दिग्घ दिग्घ, उ. स. सीत दीघ। ३. धा. सीत जीतं, अ. फ. सीते (सीत–फ.) न जीत। ४. धा. अ. ना. वने, मो. वनं, फ. पिते, म. तने।

(२) १. धा. अ. फ. सज्जा, स. सेजं, उ. सेस, म सिज्जा। २. धा. साझर, म. सिज्जर, मो. अ. फ. ना. उ. स. सज्जर (< संजर)। ३. धा. वाण जुव्वन तया, अ. फ. वास जूइ तनया, ना. वान या वनतया, म. उ स. वानया वनितया (वनितया–म.)। ४. धा. आमंग। ५. धा आनदने, अ. आनगते, फ. आनंगिते, उ स. आलिंगने, म. आमगने।

(३) मो. यु (=यउ) वाला तरुणी व्रतपत्त नलणी, धा. अ. फ. बाला ततु निवृत्त पत्त (निवृत्ति पत्ति–फ.) नलिनी, उ. म. यों बाला तरणी वियोग पतनं, म ज्यौं बाला नलिनी निवृत्ति पतिनी, ना. जे बाला तरुणी व्रतत्ति नलिनी। २. मो. दीनेश दीना न जीवा षिणे, धा. अ. फ. दीना नि (न–अ. फ.) जीव छिने, म. दीना न नाचाक्षने, उ. स. नलिनी दहते हिम।

(४) १. धा अ. फ. सा क्रांति, ना. मा कंते, म. माक ते, ना. उ. स. मा मुक्के। २. मो. हिमव्रंत, ना. हिमवत्त। ३. धा. समत, ना. वत्त। ४. अ फ. गवने, ना. गहने। ५. मो. म. प्रमुदा। ६. धा. अ. निआलंबने, फ. निआलबिने, उ. स. निरालंबन।

टिप्पणी—(२) सज्ज < शय्या। संजर < सज्वर। (३) षिण < क्षण।

[१४]

साटिका—रोमाली वन नीर निघ्घ वरये[१] गिरि डंग[२] नारायते[३]। (१)

पव्वय[१] पीन२ कुचानि३ जानि सयला[४] फुंकार[५] झुंकारये[६] । (२)
शिशिरे सर्वरि[१] वारुणो च२ विरहा[३] मम[४] हृदय[५] विदारये[६] । (३)
मा कांत[१] मृगवध्घ[२] सिंघ३ गमने[४] कि देव[५] उव्वारये[६] ॥ (४)

अथ—(१) "[मेरी] रोमावली वन है, श्रेष्ठ स्नेह-नीर ही गिरि और द्रंग की जल की धारा है, (२) [मेरे] पीन कुच मानो समस्त पर्वत हैं, मेरी जो फुङ्कार (सीत्कार) है, वही मानो [पवन का] झकोर है, (३) शिशिर की शर्वरी (रात्रि) मे विरह ही वह वारण (हाथी) है जो मेरे हृदय [की वाटिका] को तहस-नहस कर रहा है, (४) उस विरह रूपी मृग (वनचारी वारण) का वध करने वाले सिंह, हे कात, तुम गमन मत करो; हे देव क्या, नारी के हृदय को इस विरह-वारण से उबारोगे ?"

पाठान्तर—(१) १. धा. रोमाली वन नील भूधरवरं, अ. फ. रोगाली घननील भूधर (भूधरि—फ.) धर, ना. म. उ. स. रोमाली (रोमावली—म , रोमावलि—ना.) वन (ना. में यह शब्द नहींहै) नीर निद्ध (निद्धि—म.) चरयो (निबयो—उ., चरयौ—ना.) । २. धा. रुंगु, अ. फ. उंगु (ऊग—फ.), म. ना. स. दग, उ. दत । ३. धा. नारानते, मो. रारायते, म. नीरायते, ना. नाराइते ।

(२) १. मो. अ. फ. पवया, म. पचय । २. ना. पीर । ३. म. कुवानि । ४. अ. सिथिला, फ. सिथला, ना. सलया, म. उ स. मलया । ५. अ. फ. कुकार (कुकारु—फ), म. हुकार, ना. फुकार । ६ मो. झंकारये, धा. झूकारया, अ. फ झुकारया, ना. म उ. स झुकारए ।

(३) १. मो शशिरे सर्वनि, फ. शिशिरे सर्वनि, ना. ससिरे श्रव्वरि । २. धा. ना. वारुणी च, अ. वारिणेयं, फ. वारणेय, म. वारणोच, उ. स. वारुनीय । ३. म. विरही । ४. धा. सा, मो. मम, शेष में 'मा'। ५. मो. दूदय, धा. हिंद, अ फ. हष्ट, ना. उ. स. हद्द, म. सद्द । ६. धा. मुद्दारया, ना. मुच्चारए, उ. स. मुव्वारए, म. सवारए ।

(४) १. धा. काते, अ. फ. क्राते, ना. म. उ. स. कते । २. धा. म्रिगवग्ग, अ. फ. मृगवद्ध । ३. म. उ. स. मध्य, ना. सद्ध । ४ धा. गमणे, अ. फ. गत्तने । ५. मो. देइ अ. फ. दोव, उ. स. दव । ६, धा. धुच्चारया, अ. उछारये, फ उछारया, ना. म. उ स. उच्चारये ।

टिप्पणी—(१) रोमाल = रोमावली । निध्ध < स्निग्ध । ंग < द्रङ्ग = नगर । नार < जल ।(२) पव्वय < पर्वत । सयल < सकल । (३) वारुण < वारण। (४) उव्वार < उद्+वर्तय (?) ।